हिन्दी, मराठी, गुजराती और अङ्ग्रेजी चार
भाषाओं में अलग अलग प्रसिद्ध होनेवाला

वेदों का भाषांतर।

प्रति मास में ६४ पृष्ठ: ३२ पृष्ठ संहिता [स्वर और पदपाठ सहित]

* * ३२ पृष्ठ भाषान्तर। * *

वर्ष १] जुलै १९११—आषाढ संवत १९६८ [अंक १

वार्षिक मूल्य डाकव्ययसह ४ रु.

हिन्दी

श्रुतिबोध.

सम्पादक।

रामचन्द्र विनायक पटवर्धन, [illegible]
अच्युत बलवंत कोल्हटकर, [illegible]
दत्तो अप्पाजी तुलजापुरकर [illegible]

स्थाणुरयं भारहार किलाभूत् ।
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।

यास्काचार्य

प्रकाशक—प्राणशंकर अमृतराम दीक्षित
'श्रुतिबोध' ऑफिस, ४७, कालबादेवी रोड, मुम्बई.

है। ऋग्वेद में प्रार्थना, यजुर्वेद में यज्ञसंबंधी उपयुक्त मंत्र, सामवेद में परमेश्वर का यशोगायन और अथर्ववेद में धर्मज्ञान का विवेचन किया है।

फ्रान्स या जर्मनी का हिन्दुस्थान से कोई संबंध नहीं है। उन देशों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे भारत के आचार विचार साहित्य और विद्वानों की प्रशंसा करें। उसके अतिरिक्त भारत को वर्तमान काल में प्रमुखत्व भी नहीं प्राप्त है। इससे यह संभव है कि. अन्य देशवासी हिन्दुओं को तिरस्कारदृष्टि से देखें। किन्तु ऐसी दशा होने पर भी उन देशों के विचारवान पुरुषों ने हिन्दुओं के अनेक ग्रन्थों का बहुत आदर किया है। इससे स्पष्ट है और यह प्रत्येक निःपक्षपाती मनुष्य को मानना होगा कि उन ग्रंथों में अवश्य कोई विलक्षण ओज और विशेषता है। वेदों का पता जब जर्मन पंडितों को लगा और उनकी दृष्टि इन पर पड़ी, तो वेदों के निसर्गसौन्दर्य को देख वे मुग्ध हो गये। उनमें से कितने ही तो यहां तक मोहित हुए कि उन्होंने आद्योपान्त वेदों का अध्ययन कर डाला। किसीको वेदों की भाषा पसंद आई. किसीको उनकी सादी और सरल रचना भाई, उनके काव्य पर कोई लट्टू हो गया, कोई उनमें तत्वज्ञान पाकर आनंदित हुआ। इन सबमें रोट नामक विद्वान ने बहुत परिश्रम पूर्वक वेदों का परिशीलन किया और वेदविषयक साहित्य चिरस्थायी करनेके अभिप्राय से उन्होंने अन्य कई विद्वानों की सहायता से अपना सुप्रसिद्ध कोश बना डाला। हो सकता है कि अर्थविषयमें कुछ मत भेद हो. परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह कोश बड़ी आस्था और अत्यन्त परिश्रम से तय्यार किया गया।

अर्वाचीन शोधकों का मत है कि वेद कम से कम दस हजार वर्ष पुराने हैं। इतने प्राचीन कालके ग्रंथ की भाषा अवश्य ही अव्यवस्थित, बेजोड़ और भद्दी होनी चाहिये; परन्तु वेदों में यह बात नहीं है। बल्कि उनका काव्य सरल, सुबोध और मधुर है। कविताका सम्पूर्ण सौन्दर्य वेदों में कूट कूट कर भरा हुआ है।

वेदों में अक्षरों के ऊपर और नीचे रेखा मारकर कुछ स्वर दिखाये है। उन्हींके अनुसार वेदपाठी लोग अपनी गर्दन या हाथ हिलाकर मन्त्रों का उच्चारण करते हैं। वेदों की यह बात भी ध्यान देने योग्य है। भाषण करनेमें शब्दों के कुछ विवक्षित अक्षरों पर जोर देकर उच्चारण करनेका प्रचार बहुतसी भाषाओं में है। अक्षरों की ध्वनि की इस विशेषता को ही स्वर कहते है। जब तक वेदों का अधिक प्रचार था तब तक उनके अनुसार स्वरोच्चारण के नियम मालूम थे। किन्तु संस्कृत का प्रचार बन्द होनेके बाद उसके स्वरों का भी लोप हो गया। वेदों में स्वर तीन प्रकार के हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित।

उदात्त स्वर दिखानेके लिये अक्षर पर कोई चिन्ह नहीं लगाते। अनुदात्त स्वर में अक्षर के नीचे एक आड़ी रेखा खींच देतें हैं और स्वरित स्वर दिखानेके लिये अक्षरको ऊपर खड़ी लकीर खींचते हैं। स्वरित अक्षरके आगे जितने अनुदात्त अक्षर आते हैं उन पर कोई चिन्ह नहीं लगाया जाता। वेदों का स्वरूप शुद्ध रखने और उनका सूक्ष्मार्थ और सत्यार्थ निश्चित करनेमें स्वरों का बहुत उपयोग किया गया है।

वेदों के विषय में एक बात विशेषरूप से ध्यान देने की है। वह यह कि उनमें पाठान्तर नाम मात्र को भी नहीं है। हमारे प्राचीन ऋषि महर्षिओं ने ऐसे परिश्रम से उनकी रक्षा की, कि उनमें अपपाठ या भिन्नपाठ को घुसने को अवसर ही न मिला इसके लिये उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, थोडी ही है। यों तो वेदों के अर्थसंबंध में बहुत कुछ मतभेद है, परन्तु जो कहीं ब्राह्मणों की उपेक्षा के कारण वेदों का पाठ भी शुद्ध न होता, तो आज तत्वार्थज्ञान का लोप ही हो जाता।

वेदों के अर्थसंबंध में यहां कुछ कहना आवश्यक है। (भगवान यास्काचार्य ने ऐसे लोगों की निन्दा की है, जो बिना अर्थ समझे वेदों का पाठ करते हैं। इससे स्पष्ट है कि उनके समय में भी ऐसे लोग थे जो अर्थ की अपेक्षा शब्दों का विशेष महत्व समझते थे। पीछे सायणाचार्य ने अपना सुप्रसिद्ध भाष्य तय्यार किया। उससे जनसाधारण को वेदों का अर्थ कैसा सुलभ हो गया यह सभी जानते हैं। उनके इसी प्रशंसनीय प्रयत्न के फलस्वरूप आज वेदों का अर्थ समझ ने में सबको सहायता मिलती है। किन्तु कालचक्र के प्रभाव से दशा यहां तक बदल गई है कि अब आङ्गरेजी भाषा देशी भाषा के समान हो रही है। इस लिये यह आवश्यक है कि वेदों का भाषांतर अङ्गरेजी या किसी भाषा में किया जाय। यह स्थिति अच्छी है अथवा बुरी, या संस्कृत भाषा का इतना ऱ्हास होने देना योग्य है अथवा नहीं, यह प्रश्न अलग है। परन्तु धर्म के पुनर्जीवित करनेका कैसा भी प्रयत्न काल देश वर्तमान के अनुसार करना ही चाहिये। इसी लिये हमने वेदों का भाषान्तर अङ्ग्रेजी, मराठी, हिन्दी और गुजराती इन चार प्रचलित भाषाओं में करना आरंभ किया है। हिन्दी भाषा का प्रसार भारत में सबसे अधिक है। तो भी जो उसको न समझें उनके लिये हमने अंगरेजी भाषान्तर रक्खा है। इससे वे अपनी तृषा बुझा सकते हैं। इस प्रकार हमें आशा है कि इन चार भाषाओं के योग से हम वेदों का ज्ञान भारत के कोने कोने में फैला सकते हैं। आजपर्यन्त देश की किसी किसी भाषा में वेदों का अनुवाद करने का थोड़ा बहुत प्रयत्न किया जा चुका है,

किन्तु समस्त देशवासियों के सुभीते की दृष्टि से और विस्तृत प्रमाण पर वेदों का अनुवाद करनेका यह पहिला ही प्रयत्न है। हम आशा करते हैं कि इसको यशस्वी करनेमें हमारे देशबन्धु अपनी सहानुभूति से हमको कृतार्थ करनेकी कृपा करेंगे। आजतक वेदों के जितने भाषान्तर हुए हैं उनकी अपेक्षा यह भाषान्तर कुछ अलग दृष्टि से किया गया है। मनुष्य प्रायः समाज, मत, कुटुंब आदि के पाश में फंसा ही रहता है। इस लिये प्रत्येक विषय में उसका कोई अपना विशेष मत हुआ करता है। ऐसा मनुष्य जब किसी वेद समान धर्मग्रन्थ का अनुवाद करता है, तो अनुवाद मूल का प्रतिबिंब प्रायः नहीं होता; वह अनुवाद खास उसीके मत का चित्रपट होता है। ऐसा न होने पावे और वेदों का कथन ज्यों का त्यों अपने देशवासिओं के सामने धर सकें, इस अभिप्राय से अपने निज के विचारों को अलग रखकर केवल सत्यबुद्धि से हम वेदों का भाषांतर करना चाहते हैं। इस भाषान्तर में कहीं कहीं हम पौर्वात्य और पाश्चात्य इन दोनों ही विद्वानों को छोड़कर कोई तीसरा ही भिन्न अर्थ करेंगे, परन्तु उससे हमारे पाठकों को यह कदापि न समझना चाहिये कि वह अर्थ हमने किसी पक्ष, पंथ अथवा मतविशेष को पुष्ट करनेके अभिप्राय से किया है। ऐसा कभी न होगा। जो अर्थ हम स्वीकार नहीं करेंगे उसका उल्लेख स्वतन्त्र अङ्क में किया जायगा। उससे पाठकों को आप ही विदित होगा कि कौनसा अर्थ उचित है और कौन नहीं। भाषान्तर में जहां बहुत ही आवश्यक जचेगा वहां हम कुछ नोट देंगे। किसी किसी जगह देवता अथवा पद-पाठ की बड़ी गड़बड़ देखनेमें आती है, परन्तु वहां भी अभी हम कुछ नोट नहीं देंगे। अभी केवल सरल भाषान्तर किया जावेगा। जहां कहीं बहुत विवाद होगा, या व्याक रण संबंधी कोई विशेष कठिनता समझानेकी आवश्यकता होगी, या जहां अर्थ संबंध में टीकाकारों का तीव्र मतभेद होगा अथवा पदपाठ या देवता के संबंध में जहां विशेष-रूपसे स्पष्टीकरण करना आवश्यक होगा, इन सबका सविस्तर विचार करनेके लिये साधक बाधक प्रमाणों के साथ हम प्रसंगानुसार विशेष अङ्क निकाला करेंगे। सामान्यपाठक लोग इतनी टीका टिप्पणी के बखेड़ में नहीं पड़ना चाहते। उनको तो केवल सरल भाषान्तर चाहिये। भाषान्तर में किसी प्रकार विच्छेद न हो इस कारण से हम अलग ही एक विशेष अंक छापना अच्छा समझते हैं। आशा है कि इससे साधारण पाठक और तार्किक विद्वान भी संतोष प्राप्त कर सकेंगे।

भाषान्तर शुद्ध हिन्दी भाषा में हो, इसकी ओर हमारा विशेष लक्ष रहेगा। वेद यदि हिन्दी भाषा में होते तो जैसी उनकी भाषा होती, हमारी राय में ठीक वैसी ही भाषान्तर की भाषा होनी चाहिये। अच्छा भाषान्तर वही है जो पढ़ने में मनो-

रंजक हो। जिस भाषान्तर में केवल मूल शब्द के समर्थकशब्द मात्र रख दिये गये हों वह भाषान्तर नहीं कहा जा सकता—वह केवल बेगार का काम है। भाषान्तर पढ़ कर यह न मालूम होना चाहिये कि यह भाषान्तर है।

मूल के शब्द ज्यों के त्यों उठाकर अनुवाद में रख देनेसे भी अनुवाद होना नहीं कहा जा सकता। मूल के सब शब्द और सब अर्थ भाषान्तर में प्रतिबिम्बित होना चाहिये। कभी कभी मूल के शब्दार्थ की अपेक्षा मूलका संकल्पित अर्थ और भी अधिक होता है। ऐसी जगह भाषान्तर में अधिक शब्दों का व्यवहार करके अर्थ समझाना आवश्यक है। कहीं कहीं मूल में कोई अर्थभरित गहन शब्द या प्रयोजनगर्भ वाक्यरचना आ जाती है ऐसे स्थानपर भी बिना अधिक शब्द के व्यवहार के काम नहीं चलता। इससे भाषान्तर में कोई दोष नहीं आता, क्यों कि ऐसा किये बिना अच्छा भाषान्तर हो सकता ही नहीं। उदाहरणार्थ

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम॥ ऋ. १. १२. २

इस ऋचा में जिस क्रम से शब्द रखे हुए हैं उसके देखते ही अर्थ की विशेषता का आभास होता है। इस सूक्त को गानेवाले मानो भक्ति में इतने लीन हो गये हैं कि सदा की वाक्यरीति छोड़ कर "अग्निमग्निं" कहने लगे। मूल का यह भाव जिस तरह हिंदीभाषा में आ सके उसी रीति से भाषान्तर करना चाहिये। ऐसे स्थान में एक एक मूल शब्द की टक्कर के लिये एक एक हिन्दी शब्द रखदेनेसे भाषान्तर का सत्यानाश करना है। शब्दों की गणना न करके मूल का भाव भाषान्तर में होना चाहिये। इसी पर दृष्टि रखकर सरल हिंदीभाषा में यह भाषान्तर किया गया है। यदि ऐसा न करके "मक्षिकास्थाने मक्षिका" का अवलम्बन किया जाता तो कौन ऐसे पाठक हैं जो भाषान्तर द्वारा मूलके अर्थ को समझ सकते?

ऋचा, वर्ग, अध्याय और अष्टक इन्हीं चारों में ऋग्वेद विभक्त किया गया है। ऋचा, एक मंत्र या एक श्लोक को कहते हैं। कई ऋचाएं मिलकर एक वर्ग और बहुतसे वर्ग मिलकर एक अध्याय होता है। प्रथमाध्याय में ३७ वर्ग हैं। आठ अध्यायों का एक अष्टक होता है। ऋग्वेद ऐसे ही आठ अष्टकों में पूरा हुआ है। इसको विभक्त करनेकी और भी पद्धति है। उसके अनुसार कुछ ऋचाओं का एक सूक्त, कई सूक्तों का एक अनुवाक और बहुतसे अनुवाक मिलकर एक मंडल होता है। इस रीति से ऋग्वेद के दस मंडल हैं। अष्टक केवल अङ्कगणित की दृष्टि से ऋग्वेद के ८ भाग करनेसे बने हैं, विषय की भिन्नता के ध्यान से ऐसा नहीं किया। यही बात अध्यायों में है। वे भी केवल हिसाब बराबर रखने के लिये प्रत्येक अष्टक में आठ आठ रखे गये हैं। किन्तु मंडल और सूक्त में यह बात नहीं है। उनका विभाग कुछ तो

विषय और कुछ ऋषिसंबंध की दृष्टि से किया गया है। इस लिये अष्टक विभाग की अपेक्षा यह अधिक उपयोगी और उचित है। साथ ही सुभीते की दृष्टि से देखिये तो अष्टकों का भी कुछ महत्त्व है। इस लिये हमने दोनों ही विभाग प्रत्येक पृष्ठ के सिरे पर लिख दिये हैं।

" श्रुतिबोध " प्रकाशित करनेकी विज्ञप्ति किये आज प्रायः तीन मास हुए। हमको यह लिखते बड़ा हर्ष होता है कि इस बीच में सैकड़ों सज्जनों ने ग्राहकों की सूची में अपने नाम लिखा कर अपनी धार्मिकता का परिचय दिया और दिखा दिया है कि भारत में धर्मजिज्ञासुओं का अब भी ह्रास नहीं हुआ। इससे और भी उत्साहित होकर हम आज " श्रुतिबोध " का यह प्रथमांक सुविज्ञ पाठक महाशयों की सेवा में समर्पित करते हैं। हिन्दी भाषा के पाठकों को प्रतिमास ६४ पृष्ठ और बड़े आकार की ऐसी पुस्तक डाक महसूल सहित मात्र ४) रु. वार्षिक में भेट की जायगी। दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिये कि सालभर में मूल वेद और भाषान्तर का लगभग ८०० पृष्ठ का भारी ग्रंथ हम कुल ४) में दे देने को तैयार हैं। यही नहीं, यदि हमारे देशवासियों ने हमारे इस परिश्रम को सार्थक किया तो हम मूल्य और भी कम कर देंगे। सारांश यह कि हर तरह से इसमें रिआयत की जायगी, जिससे देशभर में इसका प्रचार बढ़े। ईसाइओं के धर्मग्रंथ बायबल देखिये, करोड़ों की संख्या में प्रति वर्ष छपती है। इस पर भी यह हालत, कि एक वर्ष की आवृत्ति की कोई प्रति दूसरे वर्ष के लिये नहीं बचती ! ऐसी ही दशा यदि हिन्दुओं के हिन्दुस्थान में हिन्दुओं के वेद की न हो, तो बस, यह कहना होगा कि हममें जीवन्त मनुष्य अब रहे ही नहीं।

इस काम में हमने किसीसे धन की सहायता नहीं मांगी, और न आप ही किसीने दी। अपने ही धन, अपने ही श्रम और अपने देशबन्धुओं की गुणज्ञता पर ही भरोसा करके हमने यह भारी काम अपने सिर पर उठाया है। होना तो यह चाहिये था कि वेदों का भाषान्तर देश के गरीब से गरीब मनुष्य के हाथों में पहुंचाया जाता; परन्तु यह भरपूर धन साहाय्य के बिना हो नहीं सकता। ऐसी दशा में यही बहुत है कि पांच सात वर्षों के अन्दर चारों वेद, मूल और अर्थ सहित, अत्यन्त अल्प मूल्य में देशवासियों को देवें। यही हमारा उद्देश है आशा है पूर्ण होगा।

" श्रुतिबोध " में मूल वेद और भाषान्तर की पुस्तकें अलग अलग बांधी जा सकें, इस अभिप्राय से दोनों अलग छापे गये हैं। उत्तम कागज सुन्दर छपाई और सफाई के विषय में भी हमने अपने हिसाब कोई कसर बाकी नहीं रखी। ' सुबोधिनी ' प्रेस के उदार स्वामी और चतुर मॅनेजर ने हमारे इस कार्य का महत्व समझकर सदा सस्वर संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती और अंग्रेजी के नवीन टाईपों द्वारा तथा अन्य

रीति से पत्र के मनोहर बनानेमें अत्यन्त परिश्रम किया है । यदि इन महाशयों से ऐसी सहायता न मिलती, तो 'श्रुतिबोध' ऐसे चित्ताकर्षक रूप में पाठकों के सामने उपस्थित हो सकता, इसमें सन्देह है ।

अनेक महाशयों ने हमको लिखा कि 'श्रुतिबोध' में सायणाचार्य की टीका और भाषान्तर भी दिया जाना चाहिये, परन्तु कार्य शीघ्र सम्पूर्ण होना चाहिये, अतः हम उनकी इस सूचना को स्वीकार नहीं कर सके । इसके सिवाय और भी बहुतसे मित्रों, शुभचिन्तकों और वेदाभिमानी सज्जनों ने हमको कई प्रकारकी सूचनाएं दीं । ग्राह्य मालूम हुई हमने उन्हें स्वीकार किया । इनके अतिरिक्त कुछ महाशयों ने ऐसा भी लिखा कि मूल वेद देवनागरी लिपी में छापकर गुजराती में छापो किसीने तामिल अथवा तेलगू अक्षरों में छापने की सलाह दी । किसीने कहा मराठी आदि में भाषान्तर न करके केवल सरल संस्कृत भाषा में कीजिये, किसीने लिखा सम्पूर्ण वेद भाषान्तर सहित छापकर ६०—७० अङ्क साथ भेज देना, किसी किसीने ऐसी इच्छा भी प्रकट की कि हम यजुर्वेदी हैं, इससे पहले उसी वेद का भाषान्तर होना चाहिये, किसीने कहा कि कृष्णयजुर्वेद का भाषान्तर मत करें तो हम ग्राहक होंगे इत्यादि । ऐसी ही अनेकानेक सूचनाएं हमको मिलीं । पर यह ग्राह्य नहीं हैं, यह स्पष्ट है । जो हो इस सब पत्रव्यवहार से देशवासियों की वेदविषयक निष्ठा और "श्रुतिबोध" के प्रति उनका उत्साह भली भांति प्रकट होता है ।

अन्तमें हम उन सज्जनों का धन्यवाद किये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने इस काम में हमारी सहायता की, सहानुभूति दिखाई अथवा प्रोत्साहित किया । इसके अतिरिक्त हम उन विद्वानों का भी आभार मानते हैं जो इस आधुनिक समय में वेदार्थ प्रगट करनेका प्रयत्न करचुके हैं । ये चाहे किसी भी दृष्टि से किये गये हों और हमसे चाहे कितने भी भिन्न हों, तो भी हम अपनी कृतज्ञता इन ग्रंथकारों के प्रति प्रकट करते हैं । यदि वेदों का समग्र प्रकाशन-कार्य हम समाप्ति तक पहुंचा सके और उसके द्वारा हिन्दूधर्म और भी पवित्र हो तथा उसपर लोगों का प्रेम और भी बढ़ सके तो हम इसको परमोपयोगी मानेंगे और अपना परिश्रम सार्थक समझेंगे । किन्तु इसके लिये ईश्वर की कृपा होना चाहिये । इसके प्राप्त करनेकी अभिलाषा से वेदों के निम्न लिखीत मंत्र द्वारा ईश्वरवंदना करके हम इस प्रस्तावना को समाप्त करते हैं:—

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्रणोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ १. ११. २.

प्रथमोऽष्टकः

॥ ऋग्वेदः ॥

प्रथमं मण्डलम्

[प्रथमोऽध्यायः]

[प्रथमोऽनुवाकः]

॥ १ ॥ १-९ मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥ षड्जः स्वरः ॥

॥ हरिः ॐ ॥

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥१॥
अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥
अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥
अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद्देवेषु गच्छति ॥ ४ ॥
अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरा गमत् ॥५॥१ ॥
यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥
उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम् । नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥
राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥

अग्निं । ईळे । पुरःऽहितं । यज्ञस्य । देवं । ऋत्विजं । होतारं । रत्नऽधातमं ॥१॥ अग्निः । पूर्वेभिः । ऋषिऽभिः । ईड्यः । नूतनैः । उत । सः । देवान् । आ । इह । वक्षति ॥ २ ॥ अग्निना । रयिं । अश्नवत् । पोषं । एव । दिवेऽदिवे । यशसं । वीरवत्ऽतमं ॥३॥ अग्ने । यं । यज्ञं । अध्वरं । विश्वतः । परिऽभूः । असि । सः । इत् । देवेषु । गच्छति ॥ ४ ॥ अग्निः । होता । कविऽक्रतुः । सत्यः । चित्रश्रवःऽतमः । देवः । देवेभिः । आ । गमत् ॥ ५ ॥ १ ॥ यत् । अंग । दाशुषे । त्वं । अग्ने । भद्रं । करिष्यसि । तव । इत् । तत् । सत्यं । अंगिरः ॥ ६ ॥ उप । त्वा । अग्ने । दिवेऽदिवे । दोषाऽवस्तः । धिया । वयं । नमः । भरंतः । आ । इमसि ॥ ७ ॥ राजंतं । अध्वराणां । गोपां । ऋतस्य । दीदिविं । वर्धमानं । स्वे । दमे ॥ ८ ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ९ ॥ २ ॥

॥ २ ॥ १-९ मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ देवता-१-३ वायुः । ४-६ इन्द्रवायू । ७-९ मित्रावरुणौ ॥ छन्दः-१,२ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(२) वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः । तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १ ॥
वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः । सुतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥
वायो तव प्रपृञ्चती धेना जिगाति दाशुषे । उरूची सोमपीतये ॥ ३ ॥
इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥
वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानां वाजिनीवसू । तावा यातमुप द्रवत् ॥ ५ ॥ ३ ॥
वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम् । मक्ष्वि१त्था धिया नरा ॥ ६ ॥
मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् । धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ७ ॥
ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा । क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ ८ ॥

सः । नः । पिताऽइव । सूनवे । अग्ने । सुऽउपायनः । भव । सचस्व । नः । स्वस्तये ॥ ९ ॥ २ ॥
वायो इति । आ । याहि । दर्शत । इमे । सोमाः । अरंऽकृताः । तेषां । पाहि । श्रुधि । हवं ॥ १ ॥ वायो इति । उक्थेभिः । जरंते । त्वां । अच्छ । जरितारः । सुतऽसोमाः । अहःऽविदः ॥ २ ॥ वायो इति । तव । प्रऽपृञ्चती । धेना । जिगाति । दाशुषे । उरूची । सोमऽपीतये ॥ ३ ॥ इंद्रवायू इति । इमे । सुताः । उप । प्रयःऽभिः । आ । गतं । इंदवः । वां । उशंति । हि ॥ ४ ॥ वायो इति । इंद्रः । च । चेतथः । सुतानां । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू । तौ । आ । यातं । उप । द्रवत् ॥ ५ ॥ ३ ॥ वायो इति । इंद्रः । च । सुन्वतः । आ । यातं । उप । निःऽकृतं । मक्षु । इत्था । धिया । नरा ॥ ६ ॥ मित्रं । हुवे । पूतऽदक्षं । वरुणं । च । रिशादसं । धियं । घृताचीं । साधंता ॥ ७ ॥ ऋतेन । मित्रावरुणौ । ऋतऽवृधौ । ऋतऽस्पृशा । क्रतुं । बृहंतं । आशाथे इति ॥ ८ ॥ कवी इति । नः । मित्रावरुणा ।

क॒वी नो॑ मि॒त्रावरु॑णा तुविजा॒ता उ॑रु॒क्षया॑ । दक्षं॑ दधाते अ॒पस॑म् ॥९॥४॥

॥ ३ ॥ १—१२ मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ देवता—१-३ अश्विनौ । ४—६ इन्द्रः । ७—९ विश्वे देवाः । १०—१२ सरस्वती ॥ छन्दः—२ निचृद्गायत्री । ४, ११ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । १, ३, ५-१०, १२ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(३) अश्वि॑ना॒ यज्व॑री॒रिषो॒ द्रव॑त्पाणी॒ शुभ॑स्पती । पुरु॑भुजा चन॒स्यत॑म् ॥१॥
अश्वि॑ना॒ पुरु॑दंससा॒ नरा॒ शवी॑रया धि॒या । धिष्ण्या॒ वन॑तं॒ गिरः॑ ॥ २ ॥
दस्रा॑ यु॒वाक॑वः सु॒ता नास॑त्या वृ॒क्तब॑र्हिषः । आ या॑तं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥
इन्द्रा या॑हि चित्रभानो सु॒ता इ॒मे त्वा॒यवः॑ । अण्वी॑भि॒स्तना॑ पू॒तासः॑ ॥४॥
इन्द्रा या॑हि धि॒येषि॒तो विप्र॑जूतः सु॒ताव॑तः । उप॒ ब्रह्मा॑णि वा॒घतः॑ ॥ ५ ॥
इन्द्रा या॑हि॒ तूतु॑जान॒ उप॒ ब्रह्मा॑णि हरिवः । सु॒ते द॑धिष्व न॒श्चनः॑ ॥६॥५॥
ओमा॑सश्चर्षणीधृतो॒ विश्वे॑ देवास॒ आग॑त । दाश्वां॑सो दा॒शुषः॑ सु॒तम् ॥७॥
विश्वे॑ दे॒वासो॑ अ॒प्तुरः॑ सु॒तमा ग॑न्त॒ तूर्ण॑यः । उ॒स्रा इ॑व॒ स्वस॑राणि ॥ ८ ॥

तु॒वि॒ऽजा॒तौ । उ॒रु॒ऽक्षया॑ । दक्ष॑म् । द॒धा॒ते॒ इति॑ । अ॒पस॑म् ॥९॥४॥ अश्वि॑ना । यज्व॑रीः । इषः॑ । द्रव॑त्पाणी॒ इति॒ द्रव॑त्ऽपाणी । शुभः॑ । प॒ती॒ इति॑ । पुरु॑ऽभुजा । च॒न॒स्यत॑म् ॥१॥ अश्वि॑ना । पुरु॑ऽदंससा । नरा॑ । शवी॑रया । धि॒या । धिष्ण्या॑ । वन॑तम् । गिरः॑ ॥२॥ दस्रा॑ ॥ यु॒वाक॑वः । सु॒ताः । नास॑त्या । वृ॒क्तऽब॑र्हिषः । आ । या॒त॒म् । रु॒द्र॒व॒र्त॒नी॒ इति॑ रुद्रऽवर्तनी ॥३॥ इन्द्र॑ । आ । या॒हि॒ । चि॒त्र॒भा॒नो॒ इति॑ चित्रऽभानो । सु॒ताः । इ॒मे । त्वा॒ऽयवः॑ । अण्वी॑भिः । तना॑ । पू॒तासः॑ ॥ ४ ॥ इन्द्र॑ । आ । या॒हि॒ । धि॒या । इ॒षि॒तः । विप्र॑ऽजूतः । सु॒तऽव॑तः । उप॑ । ब्रह्मा॑णि । वा॒घतः॑ ॥ ५ ॥ इन्द्र॑ । आ । या॒हि॒ । तूतु॑जानः । उप॑ । ब्रह्मा॑णि । ह॒रि॒ऽवः॒ । सु॒ते । द॒धि॒ष्व॒ । न॒ः । चनः॑ ॥ ६ ॥ ५ ॥ ओमा॑सः । च॒र्ष॒णि॒ऽधृ॒तः॒ । विश्वे॑ । दे॒वा॒सः॒ । आ । ग॒त॒ । दा॒श्वांसः॑ । दा॒शुषः॑ । सु॒तम् ॥ ७ ॥ विश्वे॑ । दे॒वासः॑ । अ॒प्ऽतुरः॑ । सु॒तम् । आ । ग॒न्त॒ । तूर्ण॑यः । उ॒स्राःऽइ॑व । स्वस॑राणि ॥८॥

विश्वे देवासो अस्रिध एहिमायासो अद्रुहः। मेधं जुषन्त वह्नयः ॥ ९ ॥
पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥
चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनां। यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥
महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना। धियो विश्वा विराजति।
॥ १२ ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

॥ ४ ॥ १-१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः-३ विराड् गायत्री। १० निचृद्गायत्री। १, २, ४-९ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(४) सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे। जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥
उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब। गोदा इद्रेवतो मदः ॥ २ ॥
अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम्। मा नो अति रुध आ गहि ॥३॥
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्। यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥४॥
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत। दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥ ५ ॥ ७ ॥

विश्वे। देवासः। अस्रिधः। एहिऽमायासः। अद्रुहः। मेधं। जुषंत। वह्नयः ॥ ९ ॥ पावका। नः। सरस्वती। वाजेभिः। वाजिनीऽवती। यज्ञं। वष्टु। धियाऽवसुः ॥१०॥ चोदयित्री। सूनृतानां। चेतंती। सुऽमतीनां। यज्ञं। दधे। सरस्वती ॥११॥ महः। अर्णः। सरस्वती। प्र। चेतयति। केतुना। धियः। विश्वाः। वि। राजति।
॥ १२ ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

सुरूपऽकृत्नुं। ऊतये। सुदुघांऽइव। गोऽदुहे। जुहूमसि। द्यविऽद्यवि ॥ १ ॥ उप। नः। सवना। आ। गहि। सोमस्य। सोमऽपाः। पिब। गोऽदाः। इत्। रेवतः। मदः ॥ २ ॥ अथ। ते। अंतमानां। विद्याम। सुऽमतीनां। मा। नः। अति। रुधः। आ। गहि ॥ ३ ॥ परा। इहि। विग्रं। अस्तृतं। इंद्रं। पृच्छ। विपःऽचितं। यः। ते। सखिऽभ्यः। आ। वरं। ॥ ४ ॥ उत। ब्रुवंतु। नः। निदः। निः। अन्यतः। चित्। आरत। दधानाः। इंद्रे। इत्। दुवः ॥ ५ ॥ ७ ॥ उत। नः। सुऽभ-

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः । स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥
एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम् । पतयन्मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥
अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः । प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥८॥
तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो । धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥
यो रायोऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तस्मा इन्द्राय गायत ॥१०॥८॥

॥ ५ ॥ १-१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । ३ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । ५-७, ९ निचृद्गायत्री । ८ पादनिचृद्गायत्री । आर्च्युष्णिक् ४, १० गायत्री । ऋषभः स्वरः ॥

(५) आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत । सखायः स्तोमवाहसः ॥१॥
पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥
स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्याम् । गमद्वाजेभिरा स नः ॥३॥
यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः । तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥

गान् । अरिः । वोचेयुः । दस्म । कृष्टयः । स्याम । इत् । इंद्रस्य । शर्मणि ॥ ६ ॥ आ । ईं । आशुं । आशवे । भर । यज्ञऽश्रियं । नृऽमादनं । पतयत् । मंदयत्ऽसखं ॥ ७ ॥ अस्य । पीत्वा । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । घनः । वृत्राणां । अभवः । प्र । आवः । वाजेषु । वाजिनं ॥ ८ ॥ तं । त्वा । वाजेषु । वाजिनं । वाजयामः । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । धनानां । इंद्र । सातये ॥ ९ ॥ यः । रायः । अवनिः । महान् । सुऽपारः । सुन्वतः । सखा । तस्मै । इंद्राय । गायत ॥ १० ॥ ८ ॥ आ । तु । आ । इत । नि । सीदत । इंद्रं । अभि । प्र । गायत । सखायः । स्तोमऽवाहसः ॥१॥ पुरुऽतमं । पुरूणां । ईशानं । वार्याणां । इंद्रं । सोमे । सचा । सुते ॥ २ ॥ सः । घ । नः । योगे । आ । भुवत् । सः । राये । सः । पुरंऽध्यां । गमत् । वाजेभिः । आ । सः । नः ॥३॥ यस्य । संऽस्थे । न । वृण्वते । हरी इति । समत्ऽसु । शत्रवः । तस्मै । इंद्राय । गायत ॥ ४ ॥

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये । सोमासो दध्याशिरः ॥५॥ ९ ॥
त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः । इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥६॥
आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः । शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥७॥
त्वां स्तोमा अवीवृधन्त्वामुक्था शतक्रतो । त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥ ८ ॥
अक्षितोतिः सनेदिमं वाजमिन्द्रः सहस्रिणम् । यस्मिन्विश्वानि पौंस्या ॥९॥
मा नो मर्ता अभि द्रुहन्तनूनामिन्द्र गिर्वणः । ईशानो यवया वधम् ॥१०॥१०॥

॥ ६ ॥ १–१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ देवता–१–३ इन्द्रः । ४, ६, ८, ९, मरुतः । ५, ७ मरुत इन्द्रश्च । १० इन्द्रः ॥ छन्दः–२ विराड् गायत्री ४, ८ निचृद्गायत्री । १, ३, ५–७, ९, १० गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(६) युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥
युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे । शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥

सुतऽपाव्ने । सुताः । इमे । शुचयः । यंति । वीतये । सोमासः । दधिऽआशिरः ॥ ५ ॥९॥ त्वं । सुतस्य । पीतये । सद्यः । वृद्धः । अजायथाः । इंद्र । ज्यैष्ठ्याय । सुक्रतो इति सुऽक्रतो ॥६॥ आ । त्वा । विशंतु । आशवः । सोमासः । इंद्र । गिर्वणः । शं । ते । संतु । प्रऽचेतसे ॥ ७ ॥ त्वां । स्तोमाः । अवीवृधन् । त्वां । उक्था । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । त्वां । वर्धंतु । नः । गिरः ॥ ८ ॥ अक्षितऽऊतिः । सनेत् । इमं । वाजं । इंद्रः । सहस्रिणं । यस्मिन् । विश्वानि । पौंस्या ॥ ९ ॥ मा । नः । मर्ताः । अभि । द्रुहन् । तनूनां । इंद्र । गिर्वणः । ईशानः । यवय । वधं ॥१०॥१० ॥ युंजंति । ब्रध्नं । अरुषं । चरंतं । परि । तस्थुषः । रोचंते । रोचना । दिवि ॥ १ ॥ युंजंति । अस्य । काम्या । हरी इति । विऽपक्षसा । रथे । शोणा । धृष्णू इति । नृऽवाहसा ॥ २ ॥ केतुं । कृण्वन् । अकेतवे । पेशः । मर्याः । अपेशसे । सं । उषत्ऽभिः । अजायथाः ॥ ३ ॥ आत् । अह । स्वधां । अनु । पुनः । गर्भऽत्वं ।

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥
वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥५॥११॥
देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः । महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥
इन्द्रेण सं हि दृक्षसे सञ्जग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ ७ ॥
अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ ८ ॥
अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि । समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥
इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि । इन्द्रं महो वा रजसः ॥१०॥१२॥

॥ ७ ॥ १—१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—२, ४ निचृद्गायत्री । ८, १० पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । ९ पादनिचृद्गायत्री । १, ३, ५—७ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(७) इन्द्रमिद्गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥
इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥२॥
इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥

आऽईरिरे । दधानाः । नाम । यज्ञियं ॥ ४ ॥ वीळु । चित् । आरुजत्नुऽभिः । गुहा । चित् । इंद्र । वह्निऽभिः । अविंदः । उस्रियाः । अनु ॥५॥११॥ देवऽयंतः । यथा । मतिं । अच्छ । विदद्वसुं । गिरः । महां । अनूषत । श्रुतं ॥ ६ ॥ इंद्रेण । सं । हि । दृक्षसे । संऽजग्मानः । अबिभ्युषा । मंदू इति । समानऽवर्चसा ॥७॥ अनवद्यैः । अभिद्युऽभिः । मखः । सहस्वत् । अर्चति । गणैः । इंद्रस्य । काम्यैः ॥ ८ ॥ अतः । परिऽज्मन् । आ । गहि । दिवः । वा । रोचनात् । अधि । सं । अस्मिन् । ऋंजते । गिरः ॥९॥ इतः । वा । सातिं । ईमहे । दिवः । वा । पार्थिवात् । अधि । इंद्रं । महः । वा । रजसः ॥१०॥१२॥ इंद्रं । इत् । गाथिनः । बृहत् । इंद्रं । अर्केभिः । अर्किणः । इंद्रं । वाणीः । अनूषत ॥ १ ॥ इंद्रः । इत् । हर्योः । सचा । संऽमिश्लः । आ । वचःऽयुजा । इंद्रः । वज्री । हिरण्ययः ॥ २ ॥ इंद्रः । दीर्घाय । चक्षसे । आ । सूर्यं । रोहयत् । दिवि । वि । गोभिः । अद्रिं । ऐरयत् ॥ ३ ॥

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च। उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥
इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे। युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥ १३ ॥
स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि। अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ ६ ॥
तुंजेतुंजे य उत्तरे स्तोमा इंद्रस्य वज्रिणः। न विंधे अस्य सुष्टुतिं ॥ ७ ॥
वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा। ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ८ ॥
य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति। इंद्रः पंच क्षितीनां ॥ ९ ॥
इंद्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः ॥१०॥१४॥२॥

॥ तृतीयोऽनुवाकः ॥

॥ ८ ॥ १—१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री । २ प्रतिष्ठा गायत्री । १० वर्धमाना गायत्री । ३—५, ६, ७—९ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(८) एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम्। वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥

इंद्र। वाजेषु। नः। अव। सहस्रऽप्रधनेषु। च। उग्रः। उग्राभिः। ऊतिऽभिः ॥ ४ ॥ इंद्रं। वयं। महाऽधने। इंद्रं। अर्भे। हवामहे। युजं। वृत्रेषु। वज्रिणं। ॥५॥१३॥ सः। नः। वृषन्। अमुं। चरुं। सत्राऽदावन्। अप। वृधि। अस्मभ्यं। अप्रतिऽस्कुतः ॥ ६ ॥ तुंजेतुंजे। ये। उत्ऽतरे। स्तोमाः। इंद्रस्य। वज्रिणः। न। विंधे। अस्य। सुऽस्तुतिं ॥ ७ ॥ वृषा। यूथाऽइव। वंसगः। कृष्टीः। इयर्ति। ओजसा। ईशानः। अप्रतिऽस्कुतः ॥ ८ ॥ यः। एकः। चर्षणीनां। वसूनां। इरज्यति। इंद्रः। पंच। क्षितीनां ॥ ९ ॥ इंद्रं। वः। विश्वतः। परि। हवामहे। जनेभ्यः। अस्माकं। अस्तु। केवलः ॥ १० ॥ १४ ॥ २ ॥

॥ तृतीयोऽनुवाकः ॥

आ। इंद्र। सानसिं। रयिं। सऽजित्वानं। सदाऽसहं। वर्षिष्ठं। ऊतये। भर ॥ १ ॥

नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै । त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥
इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि । जयेम सं युधि स्पृधः ॥ ३ ॥
वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयं । सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥
महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे । द्यौर्न प्रथिना शवः ॥५॥ १५ ॥
समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ । विप्रासो वा धियायवः ॥६॥
यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते । उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥
एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही । पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥
एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते । सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे ॥ ९ ॥
एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या । इन्द्राय सोमपीतये ॥१०॥१६॥

नि । येन॑ । मुष्टिऽहत्यया॑ । नि । वृत्रा । रुणधा॑महै । त्वाऽऊ॑तासः । नि । अर्व॑ता॥२॥
इंद्र॑ । त्वाऽऊ॑तासः । आ । वयं । वज्रं । घना । ददीमहि । जयेम । सं । युधि । स्पृधः॥३॥
वयं । शूरे॑भिः । अस्तृ॑ऽभिः । इंद्र॑ । त्वया॑ । युजा । वयं । ससह्याम॑ । पृतन्यतः ॥४॥
महान् । इंद्रः । परः । च । नु । महिऽत्वं । अस्तु । वज्रिणे॑ । द्यौः । न । प्रथिना ।
शवः ॥ ५ ॥ १५ ॥ संऽओहे । वा । ये । आश॑त । नरः । तोकस्य॑ । सनि॑तौ ।
विप्रा॑सः । वा । धियाऽयवः॑ ॥ ६ ॥ यः । कुक्षिः । सोमऽपात॑मः । समुद्रःऽइ॑व ।
पिन्व॑ते । उर्वीः । आपः॑ । न । काकुदः॑ ॥ ७ ॥ एव । हि । अस्य । सूनृता॑ । विऽ-
रप्शी । गोऽमती । मही । पक्वा । शाखा॑ । न । दाशुषे॑ ॥ ८ ॥ एव । हि । ते ।
विऽभूतयः । ऊतयः॑ । इंद्र । माऽव॑ते । सद्यः । चित् । संति॑ । दाशुषे॑ ॥ ९ ॥ एव ।
हि । अस्य । काम्या॑ । स्तोमः॑ । उक्थं । च । शंस्या॑ । इंद्रा॑य । सोम॑ऽपीतये ॥१०॥१६॥

॥ ९ ॥ १–१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ७, १० निचृद्गायत्री । ५,६ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । २, ४, ८, ९ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(९) इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः । महाँ अभिष्टिरोजसा ॥ १ ॥
एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने । चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥
मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे । सचैषु सवनेष्वा ॥ ३ ॥
असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥ ४ ॥
सं चोदय चित्रमर्वाग्राध इन्द्र वरेण्यम् । असदित्ते विभु प्रभु ॥ ५ ॥ १७ ॥
अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः । तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥
सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ ७ ॥
अस्मे धेहि श्रवो बृहद्द्युम्नं सहस्रसातमम् । इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ ८ ॥

इंद्र । आ । इहि । मत्सि । अंधसः । विश्वेभिः । सोमपर्वऽभिः । महान् । अभिष्टिः । ओजसा ॥ १ ॥ आ । ईं । एनं । सृजत । सुते । मंदिं । इंद्राय । मंदिने । चक्रिं । विश्वानि । चक्रये ॥ २ ॥ मत्स्व । सुऽशिप्र । मंदिऽभिः । स्तोमेभिः । विश्वऽचर्षणे । सचा । एषु । सवनेषु । आ ॥ ३ ॥ असृग्रं । इंद्र । ते । गिरः । प्रति । त्वां । उत् । अहासत । अजोषाः । वृषभं । पतिं ॥ ४ ॥ सं । चोदय । चित्रं । अर्वाक् । राधः । इंद्र । वरेण्यं । असत् । इत् । ते । विऽभु । प्रऽभु ॥ ५ ॥ १७ ॥ अस्मान् । सु । तत्र । चोदय । इंद्र । राये । रभस्वतः । तुविऽद्युम्न । यशस्वतः ॥ ६ ॥ सं । गोऽमत् । इंद्र । वाजऽवत् । अस्मे इति । पृथु । श्रवः । बृहत् । विश्वऽआयुः । धेहि । अक्षितं ॥ ७ ॥ अस्मे इति । धेहि । श्रवः । बृहत् । द्युम्नं । सहस्रऽसातमं । इंद्र । ताः । रथिनीः ।

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्। होम गन्तारमूतये ॥ ९ ॥
सुतेसुते न्योकसे बृहद्बृहत एदरिः। इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥ १८ ॥

॥ १० ॥ १–१२ मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः–१–३, ५, ६ विराडनुष्टुप्। ८ निचृदनुष्टुप्। ४ भुरिगुष्णिक्। ७, ९–१२ अनुष्टुप् ॥ गान्धारः स्वरः। ४ ऋषभः स्वरः ॥

(१०) गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥
यत्सानोः सानुमारुहद्भूर्यस्पष्ट कर्त्वम्।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥
युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ ३ ॥

इषः ॥ ८ ॥ वसोः। इंद्रं। वसुऽपतिं। गीःऽभिः। गृणंतः। ऋग्मियं। होम। गंतारं। ऊतये ॥ ९ ॥ सुतेऽसुते। निऽओकसे। बृहत्। बृहते। आ। इत्। अरिः। इंद्राय। शूषं। अर्चति ॥ १० ॥ १८ ॥

गायंति। त्वा। गायत्रिणः। अर्चंति। अर्कं। अर्किणः। ब्रह्माणः। त्वा। शतक्रतो इति शतऽक्रतो। उत्। वंशंऽइव। येमिरे ॥ १ ॥ यत्। सानोः। सानुं। आ। अरुहत्। भूरि। अस्पष्ट। कर्त्वं। तत्। इंद्रः। अर्थं। चेतति। यूथेन। वृष्णिः। एजति ॥ २ ॥ युक्ष्व। हि। केशिना। हरी इति। वृषणा। कक्ष्यऽप्रा। अथ। नः। इंद्र। सोमऽपाः। गिरां। उपऽश्रुतिं। चर ॥ ३ ॥

एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्या रुव ।
ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥ ५ ॥

तमित्सखित्व ईमहे तं राये तं सुवीर्ये ।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥ ६ ॥ १९ ॥

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः ।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥ ७ ॥

नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः ।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥ ८ ॥

आ । इहि । स्तोमान् । अभि । स्वर । अभि । गृणीहि । आ । रुव । ब्रह्म । च । नः । वसो इति । सचा । इंद्र । यज्ञं । च । वर्धय ॥ ४ ॥ उक्थं । इंद्राय । शंस्यं । वर्धनं । पुरुनिःऽसिधे । शक्रः । यथा । सुतेषु । नः । ररणत् । सख्येषु । च ॥५॥ तम । इत् । सखिऽत्वे । ईमहे । तं । राये । तं । सुऽवीर्ये । सः । शक्रः । उत । नः । शकत् । इंद्रः । वसु । दयमानः ॥ ६ ॥ १९ ॥ सुऽविवृतं । सुनिःऽअजं । इंद्र । त्वाऽदातं । इत् । यशः । गवां । अप । व्रजं । वृधि । कृणुष्व । राधः । अद्रिऽवः ॥ ७ ॥ नहि । त्वा । रोदसी इति । उभे इति । ऋघायमाणं । इन्वतः । जेषः । स्वःऽवतीः । अपः । सं । गाः । अस्मभ्यं । धूनुहि ॥ ८ ॥ आश्रुत्ऽकर्ण । श्रुधि । हवं । नु । चित् । दधिष्व ।

आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवं नू चिद्दधिष्व मे गिरः ।
इन्द्र स्तोममिमं मम कृष्वा युजश्चिदन्तरम् ॥ ९ ॥
विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम् ।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥ १० ॥
आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब ।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥
परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः ।
वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥ २० ॥

॥ ११ ॥ १-८ जेता माधुच्छन्दस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुप् छन्दः ॥ गान्धारः स्वरः ॥

(११) इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

मे । गिरः । इंद्र । स्तोमं । इमं । मम । कृष्व । युजः । चित् । अंतरं ॥९॥ विद्म । हि । त्वा । वृषन्ऽतमं । वाजेषु । हवनऽश्रुतं । वृषन्ऽतमस्य । हूमहे । ऊतिं । सहस्रऽसातमां ॥ १० ॥ आ । तु । नः । इंद्र । कौशिक । मंदसानः । सुतं । पिब । नव्यं । आयुः । प्र । सु । तिर । कृधि । सहस्रऽसां । ऋषिं ॥ ११ ॥ परि । त्वा । गिर्वणः । गिरः । इमाः । भवंतु । विश्वतः । वृद्धऽआयुं । अनु । वृद्धयः । जुष्टाः । भवंतु । जुष्टयः ॥ १२ ॥ २० ॥

इंद्रं । विश्वाः । अवीवृधन् । समुद्रऽव्यचसं । गिरः । रथिऽतमं । रथिनां । वाजानां । सतऽपतिं । पतिं ॥ १ ॥

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।

त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।

यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥

पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।

इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥

त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम् ।

त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥

तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन् ।

उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥

मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।

विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥

सख्ये । ते । इंद्र । वाजिनः । मा । भेम । शवसः । पते । त्वां । अभि । प्र । नोनुमः । जेतारं । अपराऽजितं ॥ २ ॥ पूर्वीः । इंद्रस्य । रातयः । न । वि । दस्यंति । ऊतयः । यदि । वाजस्य । गोऽमतः । स्तोतृऽभ्यः । मंहते । मघं ॥ ३ ॥ पुरां । भिंदुः । युवा । कविः । अमितऽओजाः । अजायत । इंद्रः । विश्वस्य । कर्मणः । धर्ता । वज्री । पुरुऽस्तुतः ॥ ४ ॥ त्वं । वलस्य । गोऽमतः । अप । अवः । अद्रिऽवः । बिलं । त्वां । देवाः । अबिभ्युषः । तुज्यमानासः । आविषुः ॥ ५ ॥ तव । अहं । शूर । रातिऽभिः । प्रति । आयं । सिंधुं । आऽवदन् । उप । अतिष्ठंत । गिर्वणः । विदुः । ते । तस्य । कारवः ॥ ६ ॥ मायाभिः । इंद्र । मायिनं । त्वं । शुष्णं । अव । अतिरः । विदुः । ते । तस्य । मेधिराः । तेषां । श्रवांसि । उत् । तिर ॥७॥ इंद्रं । ईशानं ।

इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत ।

सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥८॥२१॥३॥

॥ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

॥ १२ ॥ १-१२ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥ षड्जः स्वरः ॥

(१२) अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १ ॥

अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् ।

हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २ ॥

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे ।

असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥

ओजसा । अभि । स्तोमाः । अनूषत । सहस्रं । यस्य । रातयः । उत । वा । संति । भूयसीः ॥ ८ ॥ २१ ॥ ३ ॥

॥ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अग्निं । दूतं । वृणीमहे । होतारं । विश्वऽवेदसं । अस्य । यज्ञस्य । सुऽक्रतुं ॥१॥
अग्निंऽअग्निं । हवीमऽभिः । सदा । हवंत । विश्पतिं । हव्यऽवाहं । पुरुऽप्रियं ॥ २ ॥
अग्ने । देवान् । इह । आ । वह । जज्ञानः । वृक्तऽबर्हिषे । असि । होता । नः । ईड्यः ॥ ३ ॥

ताँ उ॒श॒तो वि बो॑धय॒ यद॑ग्ने॒ यासि॑ दू॒त्य॑म् ।
दे॒वैरा स॑त्सि ब॒र्हिषि॑ ॥ ४ ॥
घृता॑हवन दीदिवः॒ प्रति॑ ष्म॒ रिष॑तो दह ।
अग्ने॒ त्वं र॑क्ष॒स्विनः॑ ॥ ५ ॥
अ॒ग्निना॒ग्निः समि॑ध्यते क॒विर्गृ॒हप॑ति॒र्युवा॑ ।
ह॒व्य॒वाड् जु॒ह्वा॑स्यः ॥ ६ ॥ २२ ॥
क॒विम॒ग्निमुप॑ स्तुहि स॒त्यध॑र्माणमध्व॒रे ।
दे॒वम॑मीव॒चात॑नम् ॥ ७ ॥
यस्त्वाम॑ग्ने ह॒विष्प॑तिर्दू॒तं दे॑व सप॒र्यति॑ ।
तस्य॑ स्म प्रावि॒ता भ॑व ॥ ८ ॥
यो अ॒ग्निं दे॒ववी॑तये ह॒विष्माँ॑ आ॒विवा॑सति ।
तस्मै॑ पावक मृळय ॥ ९ ॥
स नः॑ पावक दीदि॒वोऽग्ने॑ दे॒वाँ इ॒हा व॑ह ।
उप॑ य॒ज्ञं ह॒विश्च॑ नः ॥ १० ॥

तान् । उ॒श॒तः । वि । बो॒ध॒य॒ । यत् । अ॒ग्ने॒ । यासि॑ । दू॒त्य॑म् । दे॒वैः । आ । स॒त्सि॒ । ब॒र्हिषि॑ ॥ ४ ॥ घृत॑ऽआहवन । दी॒दि॒ऽवः॒ । प्रति॑ । स्म॒ । रिष॑तः । द॒ह॒ । अग्ने॑ । त्वम् । र॒क्ष॒स्विनः॑ ॥ ५ ॥ अ॒ग्निना॑ । अ॒ग्निः । सम् । इ॒ध्य॒ते॒ । क॒विः । गृ॒हऽप॑तिः । युवा॑ । ह॒व्य॒ऽवाट् । जु॒हुऽआ॑स्यः ॥ ६ ॥ २२ ॥ क॒विम् । अ॒ग्निम् । उप॑ । स्तु॒हि॒ । स॒त्यऽध॑र्माणम् । अ॒ध्व॒रे । दे॒वम् । अ॒मी॒व॒ऽचात॑नम् ॥ ७ ॥ यः । त्वाम् । अ॒ग्ने॒ । ह॒विःऽप॑तिः । दू॒तम् । दे॒व॒ । स॒प॒र्यति॑ । तस्य॑ । स्म॒ । प्र॒ऽअ॒वि॒ता । भ॒व॒ ॥ ८ ॥ यः । अ॒ग्निम् । दे॒वऽवी॑तये । ह॒विष्मा॑न् । आ॒ऽविवा॑सति । तस्मै॑ । पा॒व॒क॒ । मृ॒ळ॒य॒ ॥ ९ ॥ सः । नः॒ । पा॒व॒क॒ । दी॒दि॒ऽवः॒ । अग्ने॑ । दे॒वान् । इ॒ह । आ । व॒ह॒ । उप॑ ।

स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा ।
रयिं वीरवतीमिषम् ॥ ११ ॥
अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः ।
इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥१२॥२३॥

॥ १३ ॥ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ १ ॥ देवता–इध्मः समिद्धो वाग्निः । २ तनूनपात् । ३ नराशंसः । ४ इळः । ५ बर्हिः । ६ देवीर्द्वारः । ७ उषासानक्ता । ८ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ । ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः । १० त्वष्टा । ११ वनस्पतिः । १२ स्वाहाकृतयः ॥ गायत्री छन्दः ॥ षड्जः स्वरः ॥

(१३) सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते ।
होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥
मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे ।
अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥
नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये ।
मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥
अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह ।
असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥

यज्ञं । हविः । च । नः ॥ १० ॥ सः । नः । स्तवानः । आ । भर । गायत्रेण । नवीयसा । रयिं । वीरऽवतीं । इषं ॥ ११ ॥ अग्ने । शुक्रेण । शोचिषा । विश्वाभिः । देवहूतिऽभिः । इमं । स्तोमं । जुषस्व । नः ॥ १२ ॥ २३ ॥
सुऽसमिद्धः । नः । आ । वह । देवान् । अग्ने । हविष्मते । होतरिति । पावक । यक्षि । च ॥१॥ मधुऽमंतं । तनूऽनपात् । यज्ञं । देवेषु । नः । कवे । अद्य । कृणुहि । वीतये ॥२॥ नराशंसं । इह । प्रियं । अस्मिन् । यज्ञे । उप । ह्वये । मधुऽजिह्वं । हविःऽकृतं ॥३॥ अग्ने । सुखऽतमे । रथे । देवान् । ईळितः । आ । वह । असि । होता । मनुःऽहितः ॥४॥

स्तृणीत बर्हिरानुषग्घृतपृष्ठं मनीषिणः ।

यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥ ५ ॥

वि श्रयन्तामृतावृधो द्वारो देवीरसश्चतः ।

अद्या नूनं च यष्टवे ॥ ६ ॥ २४ ॥

नक्तोषसा सुपेशसास्मिन्यज्ञ उप ह्वये ।

इदं नो बर्हिरासदे ॥ ७ ॥

ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी ।

यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ८ ॥

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।

बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ९ ॥

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये ।

अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

स्तृणीत । बर्हिः । आनुषक् । घृतऽपृष्ठं । मनीषिणः । यत्र । अमृतस्य । चक्षणं ॥५॥ वि । श्रयंतां । ऋतऽवृधः । द्वारः । देवीः । असश्चतः । अद्य । नूनं । च । यष्टवे ॥६॥२४॥ नक्तोषसा । सुऽपेशसा । अस्मिन् । यज्ञे । उप । ह्वये । इदं । नः । बर्हिः । आऽसदे । ॥७॥ ता । सुऽजिह्वौ । उप । ह्वये । होतारा । दैव्या । कवी इति । यज्ञं । नः । यक्षतां । इमं ॥ ८ ॥ इळा । सरस्वती । मही । तिस्रः । देवीः । मयःऽभुवः । बर्हिः । सीदंतु । अस्रिधः ॥ ९ ॥ इह । त्वष्टारं । अग्रियं । विश्वऽरूपं । उप । ह्वये । अस्माकं । अस्तु । केवलः ॥ १० ॥ अव । सृज । वनस्पते । देव । देवेभ्यः ।

अव॑ सृजा वनस्पते॒ देव॑ दे॒वेभ्यो॑ ह॒विः ।

प्र दा॒तुर॑स्तु॒ चेत॑नम् ॥ ११ ॥

स्वाहा॑ य॒ज्ञं कृ॑णोत॒नेन्द्रा॑य॒ यज्व॑नो गृ॒हे ।

तत्र॑ दे॒वाँ उप॑ ह्वये ॥ १२ ॥ २५ ॥

॥ १४ ॥ १-१२ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ गायत्री छन्दः ॥ षड्जः स्वरः ॥

(१४) ऐभि॑रग्ने॒ दुवो॒ गिरो॒ विश्वे॑भि॒ः सोम॑पीतये ।

दे॒वेभि॑र्याहि॒ यक्षि॑ च ॥ १ ॥

आ त्वा॒ कण्वा॑ अहूषत गृ॒णन्ति॑ विप्र ते॒ धियः॑ ।

दे॒वेभि॑रग्न॒ आ ग॑हि ॥ २ ॥

इ॒न्द्र॒वा॒यू बृह॒स्पतिं॑ मि॒त्राग्निं पू॒षणं॒ भग॑म् ।

आ॒दि॒त्यान्मारु॑तं ग॒णम् ॥ ३ ॥

प्र वो॑ भ्रियन्त॒ इन्द॑वो मत्स॒रा मा॑दयि॒ष्णवः॑ ।

द्र॒प्सा मध्व॑श्चमू॒षदः॑ ॥ ४ ॥

ह॒विः । प्र । दा॒तुः । अ॒स्तु॒ । चेत॑नं ॥ ११ ॥ स्वाहा॑ । य॒ज्ञं । कृ॒णो॒त॒न॒ । इं॒द्रा॑य । यज्व॑नः । गृ॒हे । तत्र॑ । दे॒वान् । उप॑ । ह्व॒ये॒ ॥ १२ ॥ २५ ॥

आ । ए॒भिः॒ । अ॒ग्ने॒ । दुवः॑ । गिरः॑ । विश्वे॑भिः । सोम॑ऽपीतये । दे॒वेभिः॑ । या॒हि॒ । यक्षि॑ । च॒ ॥१॥ आ । त्वा॒ । कण्वाः॑ । अ॒हू॒ष॒त॒ । गृ॒णंति॑ । वि॒प्र॒ । ते॒ । धियः॑ । दे॒वेभिः॑ । अ॒ग्ने॒ । आ । ग॒हि॒ ॥२॥ इं॒द्र॒वा॒यू इति॑ । बृह॒स्पतिं॑ । मि॒त्रा । अ॒ग्निं । पू॒षणं॑ । भगं॑ । आ॒दि॒त्यान् । मारु॑तं । ग॒णं ॥३॥ प्र । वः॒ । भ्रि॒यं॒ते॒ । इंद॑वः । म॒त्स॒राः । मा॒द॒यि॒ष्णवः॑ । द्र॒प्साः । मध्वः॑ । च॒मू॒ऽसदः॑ ॥ ४ ॥

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः ।
हविष्मन्तो अरंकृतः ॥५॥

घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः ।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥६॥२६॥

तान्यजत्राँ ऋतावृधोऽग्ने पत्नीवतस्कृधि ।
मध्वः सुजिह्व पायय ॥ ७ ॥

ये यजत्रा य ईड्यास्ते ते पिबन्तु जिह्वया ।
मधोरग्ने वषट्कृति ॥ ८ ॥

आकीं सूर्यस्य रोचनाद्विश्वान्देवाँ उषर्बुधः ।
विप्रो होतेह वक्षति ॥ ९ ॥

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना ।
पिबा मित्रस्य धामभिः ॥१०॥

त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि ।
सेमं नो अध्वरं यज ॥ ११ ॥

(ईळते । त्वां । अवस्यवः । कण्वासः) । वृक्तऽबर्हिषः । हविष्मंतः । अरंऽकृतः ॥ ५ ॥ घृतऽपृष्ठाः । मनःऽयुजः । ये । त्वा । वहंति । वह्नयः । आ । देवान् । सोमऽपीतये ॥ ६ ॥ २६ ॥ तान् । यजत्रान् । ऋतऽवृधः । अग्ने । पत्नीऽवतः । कृधि । मध्वः । सुऽजिह्व । पायय ॥७॥ ये । यजत्राः । ये । ईड्याः । ते । ते । पिबंतु । जिह्वया । मधोः । अग्ने । वषट्ऽकृति ॥८॥ आकीं । सूर्यस्य । रोचनात् । विश्वान् । देवान् । उषःऽबुधः । विप्रः । होता । इह । वक्षति ॥९॥ विश्वेभिः । सोम्यं । मधु । अग्ने । इंद्रेण । वायुना । पिब । मित्रस्य । धामऽभिः ॥१०॥ त्वं । होता । मनुःऽहितः । अग्ने । यज्ञेषु । सीदसि । सः । इमं । नः । अध्वरं ।

युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः ।

ताभिर्देवाँ इहा वह ॥ १२॥ २७ ॥

॥ १५ ॥ १–१२ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता—ऋतवः । १ इन्द्रः । २ मरुतः । ३ त्वष्टा । ४ अग्निः । ५ इन्द्रः । ६ मित्रावरुणौ । ७–१० द्रविणोदाः । ११ अश्विनौ । १२ अग्निः ॥ गायत्री छन्दः ॥ षड्जः स्वरः ॥

(१५) इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः ।

मत्सरासस्तदोकसः ॥ १ ॥

मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद्यज्ञं पुनीतन ।

यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥ २ ॥

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना ।

त्वं हि रत्नधा असि ॥ ३ ॥

अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु ।

परि भूष पिब ऋतुना ॥ ४ ॥

युज्व ॥ ११ ॥ युक्ष्व । हि । अरुषीः । रथे । हरितः । देव । रोहितः । ताभिः । देवान् । इह । आ । वह ॥ १२ ॥ २७ ॥

इन्द्र । सोमं । पिब । ऋतुना । आ । त्वा । विशन्तु । इन्दवः । मत्सरासः । तत्ऽओकसः ॥ १ ॥ मरुतः । पिबत । ऋतुना । पोत्रात् । यज्ञं । पुनीतन । यूयं । हि । स्थ । सुऽदानवः ॥२॥ अभि । यज्ञं । गृणीहि । नः । ग्नावः । नेष्टरिति । पिब । ऋतुना । त्वं । हि । रत्नऽधाः । असि ॥ ३ ॥ अग्ने । देवान् । इह । आ । वह । सादय । योनिषु । त्रिषु । परि । भूष । पिब । ऋतुना ॥ ४ ॥

ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु ।

तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ॥ ५ ॥

युवं दक्षं धृतव्रत मित्रावरुण दूळभम् ।

ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥ ६ ॥ २८ ॥

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे ।

यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥

द्रविणोदा ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे ।
देवेषु ता वनामहे ॥ ८ ॥

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत ।

नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥ ९ ॥

यत्त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे ।

अध स्मा नो ददिर्भव ॥ १० ॥

ब्राह्मणात् । इन्द्र । राधसः । पिब । सोमं । ऋतून् । अनु । तव । इव । हि । सख्यं । अस्तृतं ॥ ५ ॥ युवं । दक्षं । धृतऽव्रता । मित्रावरुणा । दुःऽदभं । ऋतुना । यज्ञं । आशाथे इति ॥६॥ २८ ॥ द्रविणःऽदाः । द्रविणसः । ग्रावऽहस्तासः । अध्वरे । यज्ञेषु । देवं । ईळते ॥७॥ द्रविणःऽदाः । ददातु । नः । वसूनि । यानि । शृण्विरे । देवेषु । ता । वनामहे ॥८॥ द्रविणःऽदाः । पिपीषति । जुहोत । प्र । च । तिष्ठत । नेष्ट्रात् । ऋतुऽभिः । इष्यत ॥९॥ यत् । त्वा । तुरीयं । ऋतुऽभिः । द्रविणःऽदः । यजामहे । अध । स्म । नः । ददिः । भव ॥१०॥ अश्विना । पिबतं । मधु । दीद्यग्नी इति दीदिऽअग्नी । शुचिऽव्रता । ऋतुना । यज्ञऽ-

अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता ।

ऋतुना यज्ञवाहसा ॥ ११ ॥

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि ।

देवान्देवयते यज ॥ १२ ॥ २९ ॥

॥ १६ ॥ १–९ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥ षड्जः स्वरः ॥

(१६) आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये ।

इन्द्र त्वा सूरचक्षसः ॥ १ ॥

इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोप वक्षतः ।

इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २ ॥

इन्द्रं प्रातर्हवामह इन्द्रं प्रयत्यध्वरे ।

इन्द्रं सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

उप नः सुतमा गहि हरिभिरिन्द्र केशिभिः ।

सुते हि त्वा हवामहे ॥ ४ ॥

वाहसा ॥ ११ ॥ गार्हऽपत्येन । सन्त्य । ऋतुना । यज्ञऽनीः । असि । देवान् । देवऽयते । यज ॥ १२ ॥ २९ ॥

आ । त्वा । वहन्तु । हरयः । वृषणं । सोमऽपीतये । इंद्र । त्वा । सूरऽचक्षसः ॥१॥ इमाः । धानाः । घृतऽस्नुवः । हरी इति । इह । उप । वक्षतः । इंद्रं । सुखऽतमे । रथे ॥२॥ इंद्रं । प्रातः । हवामहे । इंद्रं । प्रऽयति । अध्वरे । इंद्रं । सोमस्य । पीतये ॥ ३ ॥ उप । नः । सुतं । आ । गहि । हरिऽभिः । इंद्र । केशिऽभिः । सुते । हि । त्वा । हवामहे ॥४॥

सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम् ।

गौरो न तृषितः पिब ॥५॥ ३० ॥

इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि ।

ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥ ६ ॥

अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शन्तमः ।

अथा सोमं सुतं पिब ॥ ७ ॥

विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति ।

वृत्रहा सोमपीतये ॥ ८ ॥

सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो ।

स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥ ९ ॥ ३१ ॥

॥ १७ ॥ १-९ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—२ यवमध्या विराड् गायत्री । ४ पादनिचृद् गायत्री । ५ भुरिगार्चि गायत्री । ६ निचृद्गायत्री । ८ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । १, ३, ७, ९, गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

सः । इमं । नः । स्तोमं । आ । गहि । उप । इदं । सवनं । सुतं । गौरः । न । तृषितः । पिब ॥ ५ ॥ ३० ॥ इमे । सोमासः । इंदवः । सुतासः । अधि । बर्हिषि । तान् । इंद्र । सहसे । पिब ॥६॥ अयं । ते । स्तोमः । अग्रियः । हृदिऽस्पृक् । अस्तु । शंऽतमः । अथ । सोमं । सुतं । पिब ॥ ७ ॥ विश्वं । इत् । सवनं । सुतं । इंद्रः । मदाय । गच्छति । वृत्रऽहा । सोमऽपीतये ॥८॥ सः । इमं । नः । कामं । आ । पृण । गोभिः । अश्वैः । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । स्तवाम । त्वा । सुऽआध्यः ॥ ९ ॥ ३१ ॥

(१७) इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे ।
ता नो मृळात ईदृशे ॥ १ ॥
गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः ।
धर्तारा चर्षणीनाम् ॥ २ ॥
अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ ।
ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥
युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनां ।
भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ४ ॥
इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् ।
क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥ ३२ ॥
तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि ।
स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥
इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे ।
अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥ ७ ॥
इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा ।
अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

इंद्रावरुणयोः। अहं । संऽराजोः। अवः । आ। वृणे । ता। नः। मृळातः। ईदृशे ॥१॥ गंतारा। हि। स्थः। अवसे। हवं। विप्रस्य। माऽवतः। धर्तारा। चर्षणीनां ॥ २ ॥ अनुऽकामं। तर्पयेथां। इंद्रावरुणा। रायः। आ। ता। वां। नेदिष्ठं। ईमहे ॥३॥ युवाकु। हि। शचीनां। युवाकु। सुऽमतीनां। भूयाम। वाजऽदाव्नां। ॥४॥ इंद्रः। सहस्रऽदाव्नां। वरुणः। शंस्यानां। क्रतुः। भवति। उक्थ्यः ॥५॥३२॥ तयोः। इत्। अवसा। वयं। सनेम। नि। च। धीमहि। स्यात्। उत। प्रऽरेचनं ॥६॥ इंद्रावरुणा। वां। अहं। हुवे। चित्राय। राधसे। अस्मान्। सु। जिग्युषः। कृतं ॥ ७ ॥ इंद्रावरुणा। नु। नु। वां। सिसासंतीषु। धीषु। आ। अस्मभ्यं। शर्म। यच्छतं ॥ ८ ॥

प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे ।
यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥ ९ ॥ ३३ ॥ ४ ॥

॥ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

॥ १८ ॥ १–९ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता १–३ ब्रह्मणस्पतिः । ४ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रश्च सोमश्च । ५ बृहस्पतिदक्षिणे । ६–८ सदसस्पतिः । ९ सदसस्पतिर्नाराशंसो वा ॥ छन्दः–१ विराड् गायत्री । ३, ६. ८ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । ४ निचृद्गायत्री । ५ पादनिचृद्गायत्री । २, ७, ९ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः

(१८) सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ १ ॥
यो रेवान्यो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः ।
स नः सिषक्तु यस्तुरः ॥ २ ॥
मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य ।
रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३ ॥
स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥
त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् ।
दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ५ ॥ ३४ ॥

प्र । वां । अश्नोतु । सुऽस्तुतिः । इंद्रावरुणा । यां । हुवे । यां । ऋधाथे इति । सधऽस्तुतिं ॥ ९ ॥ ३३ ॥ ४ ॥

॥ पञ्चमोऽनुवाकः ॥

सोमानं स्वरणं कृणुहि । ब्रह्मणः । पते । कक्षीवंतं । यः । औशिजः ॥१॥ यः । रेवान् । यः । अमीवऽहा । वसुऽवित् । पुष्टिऽवर्धनः । सः । नः । सिसक्तु । यः । तुरः ॥२॥ मा । नः । शंसः । अररुषः । धूर्तिः । प्रणक् । मर्त्यस्य । रक्ष । नः । ब्रह्मणः । पते ॥३॥ सः । घ । वीरः । न । रिष्यति । यं । इंद्रः । ब्रह्मणः । पतिः । सोमः । हिनोति । मर्त्यं ॥४॥ त्वं । तं । ब्रह्मणः । पते । सोमः । इंद्रः । च । मर्त्यं । दक्षिणा । पातु । अंहसः ॥ ५ ॥ ३४ ॥ सदसः । पतिं । अद्भुतं । प्रियं । इंद्रस्य । काम्यं । सनिं ।

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ६ ॥
यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन ।
स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥
आदृध्नोति हविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् ।
होत्रा देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥
नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सप्रथस्तमम् ।
दिवो न सद्ममखसम् ॥ ९ ॥ ३५ ॥

॥ १९. ॥ १—९. मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता अग्निर्मरुतश्च ॥ छन्दः—२ निचृद्गायत्री । ९ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । १, ३ ८ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(१९.) प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ १ ॥
नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ २ ॥
ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ३ ॥

मेधां । अयासिषं ॥ ६ ॥ यस्मात् । ऋते । न । सिध्यति । यज्ञः । विपःऽचितः । चन । सः । धीनां । योगं । इन्वति ॥७॥ आत् । ऋध्नोति । हविःऽकृतिं । प्राञ्चं । कृणोति । अध्वरं । होत्रा । देवेषु । गच्छति ॥८॥ नराशंसं । सुऽधृष्टमं । अपश्यं । सप्रथःऽतमं । दिवः । न । सद्मऽमखसं ॥ ९ ॥ ३५ ॥

प्रति । त्यं । चारुं । अध्वरं । गोऽपीथाय । प्र । हूयसे । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥१॥ नहि । देवः । न । मर्त्यः । महः । तव । क्रतुं । परः । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥ २ ॥ ये । महः । रजसः । विदुः । विश्वे । देवासः । अद्रुहः । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥ ३ ॥

य उ॒ग्रा अ॒र्कमा॑नृ॒चुरना॑धृष्टास॒ ओज॑सा ।
मरु॑द्भिरग्न॒ आ ग॑हि ॥ ४ ॥
ये शु॒भ्रा घो॒रव॑र्पसः सुक्ष॒त्रासो॑ रि॒शाद॑सः ।
मरु॑द्भिरग्न॒ आ ग॑हि ॥ ५ ॥ ३६ ॥
ये नाक॒स्याधि॑ रोच॒ने दि॒वि दे॒वास॒ आस॑ते ।
मरु॑द्भिरग्न॒ आ ग॑हि ॥ ६ ॥
य ई॒ङ्खय॑न्ति॒ पर्व॑तान् ति॒रः स॑मु॒द्रम॑र्ण॒वम् ।
मरु॑द्भिरग्न॒ आ ग॑हि ॥ ७ ॥
आ ये त॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभि॑स्ति॒रः स॑मु॒द्रमोज॑सा ।
मरु॑द्भिरग्न॒ आ ग॑हि ॥ ८ ॥
अ॒भि त्वा॑ पू॒र्वपी॑तये सृ॒जामि॑ सो॒म्यं मधु॑ ।
मरु॑द्भिरग्न॒ आ ग॑हि ॥ ९ ॥ ३७ ॥ १ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ये । उ॒ग्राः । अ॒र्कम् । आ॒नृ॒चुः । अना॑धृष्टासः । ओज॑सा । म॒रुत्ऽभिः॑ । अग्ने॑ । आ । ग॒हि॒ ॥ ४ ॥ ये । शु॒भ्राः । घो॒रऽव॑र्पसः । सु॒ऽक्ष॒त्रासः॑ । रि॒शाद॑सः । म॒रुत्ऽभिः॑ । अ॒ग्ने॒ । आ । ग॒हि॒ ॥ ५ ॥ ३६ ॥ ये । नाक॑स्य । अधि॑ । रो॒च॒ने । दि॒वि । दे॒वासः॑ । आस॑ते । म॒रुत्ऽभिः॑ । अ॒ग्ने॒ । आ । ग॒हि॒ ॥६॥ ये । ई॒ङ्खय॑न्ति । पर्व॑तान् । ति॒रः । स॒मु॒द्रम् । अ॒र्ण॒वम् । म॒रुत्ऽभिः॑ । अ॒ग्ने॒ । आ । ग॒हि॒ ॥७॥ आ । ये । त॒न्वन्ति॑ । र॒श्मिऽभिः॑ । ति॒रः । स॒मु॒द्रम् । ओज॑सा । म॒रुत्ऽभिः॑ । अ॒ग्ने॒ । आ । ग॒हि॒ ॥ ८ ॥ अ॒भि । त्वा॒ । पू॒र्वऽपी॑तये । सृ॒जामि॑ । सो॒म्यम् । मधु॑ । म॒रुत्ऽभिः॑ । अ॒ग्ने॒ । आ । ग॒हि॒ ॥ ९ ॥ ३७ ॥ १ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

प्रथम अष्टक । प्रथम अध्याय]

॥ ऋग्वेद ॥

प्रथम मण्डल । [प्रथम अनुवाक]

॥ १ ॥ १-९ मधुच्छन्दा ऋषि ॥ अग्नि देवता ॥

अग्नि यज्ञ का अग्रणी है । यज्ञ का प्रमुख देव भी वही है । यज्ञ के हविर्भाग को उन देवताओं को पहुंचानेवाला सन्माननीय आचार्य भी वही है । उनके पास असंख्य रत्नों की अमूल्य निधि है । इस लिये ऐसे अग्निदेव को मैं भक्तिपुर:सर स्तवन करता हूं । १

पूर्व कालीन ऋषि प्रेम से इन अग्नि की स्तुति करते थे । और अर्वाचीन ऋषि भी उनके स्तवन को सर्वथैव योग्य समझते हैं । हमारे यज्ञ में वह समस्त देवताओं को ले आते हैं । २

इन्ही अग्नि के कारण भक्तों को वैभव प्राप्त होता है । और वह वैभव भी कैसा, कि जो दिन प्रति दिन वृद्धिंगत होता जाता है । वीरश्रेष्ठ पुरुषों को ही जो जयश्री प्राप्त हो सकती है वही जयश्री अग्नि की कृपा से पूजकों को प्राप्त होती है । ३

(हे अग्निदेव, जिस यज्ञ पर चारों ओर आपकी दृष्टि रहती है उसी यज्ञ को सब देव ग्रहण करते हैं ।) ४

सब देवों को उनके हविर्भाग अग्निद्वारा ही प्राप्त होते हैं । बुद्धिशाली पण्डितों को ज्ञानसामर्थ्य उन्हींसे प्राप्त होता है । उनके दिये हुए वर निःसंशय सफल होते ही हैं । कोई भक्त चाहे कितने ही स्थानों पर उनसे प्रार्थना करे, उसकी प्रार्थना उनके कानों तक नहीं पहुंचे, यह असंभव है । ऐसे अग्नि देवसमुदाय के साथ यहां पधारे हुए हैं । ५ (१)

हे अग्निदेव, हे अंगिरस्, अपने उपासकों को आप जो मङ्गल आशीर्वचन देंगे, वह अवश्य ही सत्य होगा । इसमें तनिक भी शङ्का नहीं । ६

हे अग्निदेव, नित्य, रात और दिन, अन्तःकरण से आपकी वंदना करता हुआ मैं आपके चरणों का आश्रय करता हूं । ७

क्यों कि प्रत्येक पुण्ययज्ञ में आप विराजमान होते हैं। सब विधियों का रक्षण करनेवाले आप ही हैं । आपका तेज अत्यंत देदीप्यमान है । आप यज्ञ में जब स्थित होते हैं तभी आपको असीम आनन्द प्राप्त होता है । ८

हे अग्निदेव, हम आपके बच्चे हैं । हमारा लाड प्यार आप उत्तम रीति से पिता समान कीजिये । हमारे पास से दूर मत हों । इसी में हमारा मङ्गल है । ९ (२)

सूक्त २

मधुच्छन्दा ऋषि ॥ देवता, १-३ वायु; ४-६ इंद्रवायु; ७-९ मित्रावरुण ॥

हे दर्शनीय वायुदेव, आप आइये । ये सोमरस हमने आप ही के लिये तय्यार करके रखे हैं । इन का सेवन कीजिये और हमारी प्रार्थना सुनिये । १

यागकाल के उत्तम ज्ञानी और स्तोत्रप्रबंध करनेवाले विद्वान् सोमरस सिद्ध करके आपका महत्व सुंदर सुंदर स्तोत्रोंद्वारा गाते हैं । २

आपका शब्द विश्वसंचारी है । उसके सुनने से ही हमारी सब कामनाएं परिपूर्ण हो जातीं हैं । आपकी सोमपान की इच्छा होते ही आपका शब्द आपके भक्तों के पास पहूंच जाता है । ३

हे इंद्रवायु, यहां सोमरस सिद्ध करके रखे हुए हैं । हमारे लिये वरप्रसाद लेकर आइये । इन सोमरसों की भी ऐसी इच्छा है कि आप उनका सेवन करें । ४

हे वायुदेव, वेगसामर्थ्य आपका और इन्द्र का वैभव है । आप दोनो ही शीघ्रतापूर्वक पधारिये । क्यों कि आप जानते ही हैं कि सोमरसों की कैसी रूचि है । ५ (३)

हे वीरश्रेष्ठ, इन सोमरसों को जिनको मैंने भक्तिपूर्वक तय्यार किया है, पान करनेके लिये आप और इन्द्र दोनो ही पधारिये । ६

पवित्र कार्यों में जिनका सामर्थ्य का आधार है, ऐसे मित्र को मैं निमंत्रण करता हूं । दुष्टों को नष्ट करनेवाले जो वरुण हैं उनको भी मैं भक्तिपूर्वक बुलाता हूं । इन दोनों की इच्छा से ही पृथ्वी पर पर्जन्यवृष्टि होती है । ७

विश्वके नियमों का पालन मित्र और वरुण के कारण ही होता है। और वे स्वयं भी उन नियमों के पालन करनेको श्रेष्ठ मानते हैं। वे अपनी सामर्थ्य को भी धर्मनीति से काम में लाते हैं। ८

सर्वोपकारी और सर्वव्यापी मित्र और वरुण की बुद्धिसंपन्नता अपूर्व है। उनका बल कृतिरूपसे प्रगट होता है। ९ (४)

सूक्त ३

मधुच्छन्दा ऋषि ॥ देवता, १-३ अश्वी; ४-६ इंद्र; ७-९ विश्वेदेव; १०-१२ सरस्वती. ॥

हे अश्विन, दानकर्म से आपका हाथ आर्द्र हुवा है। जगत् में जिसको शुभ कहते हैं उसके स्वामी आपही हैं। असंख्य भक्तों को आपही का आधार है। हमारे हवी को कृपापूर्वक स्वीकार कीजिये। १

हे अश्विन, आपके अनेक अद्भुत काम हमको मालूम हैं। आपका शौर्य जगप्रसिद्ध है और आपका धैर्य अप्रतिम है। हमारी स्तुति को आप कृपापूर्वक स्वीकार कीजिये। २

हे सत्यस्वरूप अश्विने, आप क्लेशनिवारक कहकर प्रसिद्ध हैं। आप भीषण पराक्रम करनेवाले हैं। आप यहां पधारिये। क्यों कि यह देखिये, हमने दर्भ के अग्र वगैरह निकाल कर और स्वादिष्ट पदार्थ मिश्रण करके, सोमरसों को तय्यार कर रखा है। ३

हे इन्द्र, आपकी कान्ति अलौकिक है। यहां आइये। ये सोमरस हमने आपके वास्ते उङ्गलिओं से निचोड़कर रखे हैं। ये सदा ही शुद्ध हैं। ४

हे इन्द्र, बड़े बड़े विद्वानों ने आपकी स्तुति की है और मैं भी आपको भक्तिपूर्वक बुलाता हूं। इस लिये मेरी प्रार्थना स्वीकार करनेके वास्ते आप यहां आइये। मैं आपकी अर्चना करनेवाला हूं और ये सोमरस मैंने सिद्ध करके रखे हुए है। ५

पीतवर्ण के अश्व पर आरूढ होनेवाले हे इन्द्रदेव, हमारे स्तवनको अङ्गिकार करनेके लिये आप यहां शीघ्र पधारिये और हमारे इन सोमरसों से संतुष्ट हों.। ६ (५)

हे विश्वे देवगण, आप जगत् की रक्षा करनेवाले और अखिल प्राणिमात्र का

पोषण करनेवाले हैं। मैं आप को हविर्भाग अर्पण करता हूं इसलिये आप यहां आइये। आपकी औदार्यबुद्धि सर्व प्रसिद्ध है। ७

हे विश्वे देवगण, जगत् की रक्षा आप ही करते हैं। जैसी उत्सुकतासे, गौएं सायंकाल को घर की ओर दौड़ती हैं, वैसी ही उत्सुकता से आप हमारा सोम ग्रहण करनेके लिये यहां आइये। ८

सब के चिन्ता रखनेवाले विश्वदेवों ने हमारे हवीको स्वीकार किया है। उनकी माया अतर्क्य है। वे किसीका द्रोह नहीं करते, और उनका अहित करनेकी सामर्थ्य भी किसी में नहीं है। ९

जगत् को पावन करनेवाली सरस्वती हमारे यज्ञ के हविर्भाग की इच्छा प्रेमसे करें का बुद्धिसामर्थ्य भी अपार है। १०

सत्य भाषण में माधुर्य लानेवाली यही है, और उत्तम विचारों को उत्पन्न करनेवाली भी यही है। यही सरस्वती हमारे यज्ञ को स्वीकार करती है। ११

वह अपने प्रकाश से ज्ञान के महासागर की स्पष्ट कल्पना हमको कर देती है। इस संसार में जहां जहां बुद्धि पाई जाती है वहां साम्राज्य करनेवाली देवी भी यही है। १२ (६)

अनुवाक २.

सूक्त ४

मधुच्छन्दा ऋषि ॥ देवता, इंद्र ॥

उत्तम प्रकार के अन्न अर्पण करनेसे जैसे गौ प्रसन्न होकर भरपूर दूध देनेको तय्यार होती है उसी तरह आप हमसे भी प्रसन्न हों, इस लिये हम प्रत्यही आपके हवि अर्पण करते हैं। यह सुंदर विश्व आप ही ने उत्पन्न किया है। १

इन हमारे सोमरसों के हवि ग्रहण करनेको आप यहां आइये। आपको सोमरस बहुत प्रिय है, इस लिये हमारे इस सोमरस को चाखिये। आपका वैभव अपार है आपके प्रसन्न होनेसे गोधनादि ऐश्वर्य सहज ही प्राप्त होता है। २

आपका अन्तःकरण तो दयाशील है ही, पर अपने अन्तःकरणके अंतर्भाग की भी हमको पहचान होने दीजिये। हमको अपनेसे दूर मत कीजिये। आप यहां पधारिये। ३

इन्द्र बुद्धिशाली, अजेय, और प्रज्ञावान हैं, तुमको अपने अत्यंत प्रिय से प्रिय मित्र से भी अधिक हैं, उनके पास जा कर जो मांगना हो सो मांग। ४

इंद्र पर श्रद्धा रखने से कल्याण के इतर मार्ग तुम्हारे लिये बंद हो जायंगे ऐसा हमारे निंदक चाहें तो भले ही कहें, ५ (७)

अथवा आपके भक्त हमारे उपर ऐसे उद्गार ही निकालें कि आपकी भक्ति के कारण हम बड़े भाग्यवान हैं, परंतु हे अघटित कृत्य करनेवाले इंद्रदेव, हमारा निश्चय तो यही है कि हम आपके सौख्यमय आश्रय के नीचे रहेंगे। ६

सर्वव्यापी इंद्र को सोमरस अर्पण करो। सोमरसपान शरीर के सब अङ्गो में नयी स्फूर्ति उत्पन्न करनेवाला है। सोमरस ही यज्ञ की शोभा है। शूरों को पूरा संतोष इसी मे होता है। इसी के कारण शरीर में चैतन्य उत्पन्न होता है। हमारे परम प्रिय इंद्र भी इसी से आनंदित होते हैं। ७

इन्ही सोमरसों को पान करके, हे महापराक्रमी इंद्रदेव, आप शत्रुओं को नष्ट करने वाले हुए, और शूरत्व के कृत्यों मे आप ने शूरों की रक्षा की। ८

हे महापराक्रमी इंद्रदेव, शौर्यके कामों में आप अपना पराक्रम दिखाते हैं। वैभव प्राप्ति की इच्छा से हम आपके भय का वर्णन करते हैं। ९

जो संपत्ति का स्वामी है, जिसका महत्व अपार है, जो सहज ही संकट में से पार कर देता है, और जो सोमरस अर्पण करनेवाले भक्तों का परम सखा है, ऐसे इंद्र का यशोगान करो। १० (८)

सूक्त ५

मधुच्छन्दा ऋषि । देवता, इन्द्र ॥

स्तोत्र गाने में कुशल मित्रो, यहां आओ, बैठो, और इंद्र के लिये गान करो। १

निचोड़कर सोमरस को तय्यार करने के बाद तुम इंद्र का पाचारण करो। यह इंद्रदेव श्रेष्ठों के शिरोमणि और स्पृहणीय संपत्ती के स्वामी हैं। २

आपसे हमको वैभव प्राप्त हो। हमारे उत्कृष्ट लाभों में और हमारे सद्विचारों में आप का वास हो। आप अपने पूरे सामर्थ्य से हमारे पास आइये। ३

जिन के सुसज्जित घोडों का भी शत्रु सामना नहीं कर सकते ऐसे इंद्रकी महिमा गाओ। ४

अभी अभी जिनको निचोड कर रखा है और जो पवित्र हैं, जिनमें दही मिश्रित किया हुआ है, ऐसे सोमरस, इस इच्छा से कि इंद्र उनको चखें, सोमप्रिय इंद्र के पास जा रहे हैं। ५ (९)

हे पराक्रमी इंद्रदेव, जगत पर प्रभुत्व रखने की इच्छा से आप सोमपान करने के लिये एकदम प्रगल्भ रूप से प्रगट हुए। ६

स्तुति से आनंदित होने वाले हे इंद्रदेव, शरीर के सब अङ्गों को प्रमोदित करने वाले ये सोमरस आपके मुख में प्रवेश करें, और आपको आनंद दें। आप ज्ञान-मंडित हैं। ७

हे प्रज्ञानशाली इंद्र, स्तुति से आपके महत्व का बखान हुआ, स्तवनों से आप की महिमा सर्वत्र विदित हुई। हमारे स्तोत्रों से आपकी श्रेष्ठता बढ़े। ८

हे अखण्ड रक्षण करने वाले इंद्र, हमको एकही ऐसी सामर्थ्य दीजिये, जिस की बराबरी अन्य हजारों सामर्थ्यें भी न कर सकें, और जिससे यावत् पराक्रमों के काम सहज हो सकें। ९

हे सर्वस्तुत्य इंद्रदेव, मर्त्यजन में कोई भी हमारे शरीर को हानि पोहुंचाने को समर्थ न हो। सर्वत्र आपकी सत्ता होने से एकाएक हमारा वध किसी के हाथ से न हो। १० (१०)

सूक्त ६

मधुच्छन्दा ऋषि। देवता, १-३ इन्द्र; ४, ६, ८, ९ मरुत; ५, ७ मरुत आणि इन्द्र; १० इन्द्र॥

ये तेजोगोल आकाश में चमकते हैं। ये परिचारकों की भांति इस मध्यवर्ती देव-

ता के यात्रा पर निकलने की तय्यारी करते हैं। यह मध्यवर्ती तेज सामर्थ्यवान उज्वल और सर्वव्यापी है। १

ये परिचारकगण उसके रथ के दोनों तरफ घोड़े जोड़ते हैं। ये घोड़े इतने सुंदर हैं कि देखतेही उनको प्राप्त करने की अभिलाषा होती है। वे कुम्मैत हैं, और इस पराक्रमी देवता की सवारी जब ले जाते हैं तब उन के अंगों का तेज दृष्टिगोचर होता है। २

अहा! अचेतन को चेतन कर के और आकारहीन को साकार बनाकर तुम उषा के साथ साथ प्रगट हुए। ३

यज्ञकर्म के सर्व श्रेष्ठ नाम को धारण कर सृष्टिक्रम के अनुसार उनका गर्भ-वास हुआ। ४

हे इंद्रदेव, दुर्भेद्य पर्वत भेदनेवाले अशनि नामक शस्त्रद्वारा गुहा फोड़ कर आपने प्रभारूपी धेनुओं की खोज लगाई। ५ (११)

अभीष्ट वैभव देनेवाले इन्द्र के लिये भक्तोंने बहुत से स्तोत्र कहे। इन्द्र का महत्व और यश सभी को मालूम है। ६

निर्भीक इन्द्रके साथ जब आप संचार करते दिखते हैं उस समय दोनों का तेज समान और दोनों ही आनंदित मालूम होते हैं। ७

इन्द्र के अनुचर सब को प्रिय और अति तेजस्वी होते हैं। उन में ढूंढने से भी कोई अवगुण नहीं मिल सकता। इन से विभूषित देवता के प्रीत्यर्थ हमारे यज्ञ में उच्च घोष से अर्चन हो रहा है। ८

इस लिये हे सर्वव्यापी देव, द्युलोक से अथवा प्रकाशमान अंतरिक्ष से आप यहां आइये। इस यज्ञ में मैं आपका दास आपके स्तोत्र गा गा कर अपनी वाणी को अलंकृत करता हूं। ९

इन्द्रदर्शन ही हमारा अभीष्ट है। वह दिव्यलोक में, भू लोक में, अथवा महान् अंतरिक्ष में, चाहे जहां हो, हम को प्राप्त हो। १० (१२)

सूक्त ७

मधुच्छन्दा ऋषि । देवता, इन्द्र ॥

गाथा गाने वाले ऋषिओं ने अपनी अनेक गाथाओं में इन्द्र की स्तुति की । अर्क पाठक विद्वानों ने भी अर्चन किया । यों इन्द्र की स्तुति अनेक स्तोत्रों द्वारा हो चुकी है । १

पीत वर्ण अश्वों के स्वामी केवल इन्द्र हैं । यह वज्रधारी इन्द्र सब अविनाशी संपत्ति के प्रभु हैं । २

सब को दिखे, इस रीति से इन्द्र ने आकाश में सूर्य की स्थापना की । अपने वज्र से (मेघरूपी) पर्वत को उस ने हिला दिया । ३

हे इन्द्र, आप उग्ररूप हैं, इस लिये जहां साहस के कृत्य हो रहे हैं और जहां वीर युद्ध कर रहे हैं ऐसे स्थानों में अपने उग्र साधनों से हमारी रक्षा कीजिये । ४

शत्रुओं के आनेपर हम इन्द्र को पुकारते हैं । बड़े बड़े युद्धों और छोटी छोटी लड़ाईयों में भी हम इन्द्रकी दोहाई देते हैं, क्यों कि वही वज्रधारी हमारी पूर्ण सहाय्य करने वाला है । ५ (१३)

वृष्टि के योग से सदा औदार्य प्रगट करने वाले हे इन्द्र, आप कुछ भी संकोच न करके मेघपटल को दूर कर दीजिये। ६

आपका पराक्रम वर्णन करनेवाली जितनी प्रार्थनाएं हैं उनमें भी हे इन्द्र, आपके योग्य कोई स्तुति मुझ को नहीं मिलती । ७

शानदार गतिवाला वृषभ जैसे वृषभसमुदाय का मार्ग प्रदर्शक बनता है, उसी प्रकार इस जगत् के स्वामी इन्द्र सर्व मानवों को संतुष्ट कर के उन को आगे बढ़ने को प्रवृत्त करते हैं । ८

संपूर्ण जगत्, सर्व संपत्ति और पांचों लोक इन पर एक मात्र इन्द्रका स्वामित्व है । ९

संसार के हितार्थ हम प्रत्येक स्थान से तुम्हारे प्रिय इन्द्र का पाचारण करते हैं । वह इन्द्र केवल हमारा पक्षपाती हो । १० (१४)

अनुवाक ३.

सूक्त ८

मधुच्छन्दा ऋषि । देवता, इन्द्र ॥

हे इन्द्र, हमारा संरक्षण करके हमको ऐसा वैभव दीजिये, कि जिससे हमको संतोष हो, जिसके द्वारा हमको प्रभुत्व प्राप्त हो, जो अविनाशी हो और जो संसार में उत्कृष्ट हो । १

वह वैभव ऐसा हो, कि जब आप अश्वारूढ होकर हमारा संरक्षण करें तो केवल मुष्टिप्रहार से हम अपने शत्रुओं का नाश कर सकें । २

आपके संरक्षण में जब हम घन भी हाथ में लें, तो वह वज्र बन जाता है, और हम युद्धस्थल में अपने शत्रुओं को जीत सकते हैं । ३

आपकी सहायता होनेसे हम अपने शत्रुओं को, चाहे वे कितने ही संग्राम-निपुण हों, शूर अस्त्रवेत्ताओं की मदद से परास्त कर सकते हैं । ४

यह वज्रधारी इन्द्र श्रेष्ठ हैं, बल्कि इससे भी अधिक हैं । इन का महत्व ऐसे ही चिरकाल तक बना रहे । उनका बल आकाश की तरह अनंत है । ५ (१५)

शूर पुरुष युद्धस्थल में जो कुछ प्राप्त करते हैं, बालबच्चों से मनुष्य को जो सुख प्राप्त होता है, अथवा, एकाग्र बुद्धि से स्तवन करनेसे विद्वान् लोग जो कुछ संपादन करते हैं, ६

या सोमरस के पान से भक्तों का जो उदर सागर की भांति भर जाता है, अथवा जिस कंठ में विशाल नदी की भांति सोमरस प्रवाहित होता है, ७

ये सब इन्द्र के आशीर्वचन के प्रभाव से होता है। आपके उत्तम आशिर्वचन पकफलयुक्त वृक्ष की भांति आपके दासों को फल देते हैं, और गोधनादि संपत्ति और इतर अनेक सुख भी प्रदान करते हैं। ८

हे इन्द्र, आपकी सामर्थ्य और भक्तों के रक्षण करनेके मार्ग हमारे समान दासों के लिये सदा ही अनुकूल हैं। ९

इन्द्र के ये स्पृहणीय और प्रंशसनीय स्तोत्र इन्द्र को सोमपान के लिये प्रवृत्त करें। १० (१६)

सूक्त ९.

मधुच्छन्दा ऋषि। देवता, इन्द्र ॥

हे इंद्र आइये, और जहां जहां हम सोमयाग करते हैं वहां हमारे हवि को मानपूर्वक स्वीकार कीजिये। अपनी सामर्थ्य से आप हमारे रक्षक हुए हैं १

इन विश्वकर्ता आनंदी इन्द्र को यह उत्साह वर्धक और आनंददायक सोमरस तय्यार होते ही अर्पण करो। २

हे दिव्यमुकुटधारी इन्द्र, हे सर्वद्रष्टा देव, इस प्रमोददायक स्तवन से आप आनंदित हों, और जहां हम हवि अर्पण करते हों वहां आपका वास हो ३

हे इन्द्र, जब हम आपके लिये स्तवनोक्तियों का उच्चारण करने लगते हैं तो वे इससे पहिले ही अधीर होकर आप के पास चली आती हैं। आप उनके नाथ और उनकी कामनाएं पूर्ण करनेवाले स्वामी हैं। ४

हे इन्द्र, हमको अप्रतिम और स्पृहणीय धन प्रदान कीजिये। सचमुच आपके पास ही अत्यंत उत्कृष्ट और विपुल धन है। ५ (१७)

हे सहस्रकांति इन्द्र, हमको ऐसा वैभव दीजिये कि जिससे हम धनार्जन करनेको प्रवृत्त हों। इसके लिये हमारे हाथ मे मन:पूर्वक प्रयत्न हों, और उनमे हम को यश मिले। ६

हे इन्द्र, गोधनादि वैभव हमारे पास बहुत है, हमारी सामर्थ्य बड़ी है, और हम दीर्घायुषी हैं, ऐसी हमारी कीर्ति का सर्वत्र प्रसार हो, और वह कभी खण्डित न हो। ७

हे इन्द्र, हमारी कीर्ति बढ़ा कर हमको अपार वैभव दीजिये, और हमको रथ प्राप्त हों ऐसी कृपा हम पर कीजिये। ८

अनेक प्रकार की स्तुतिओं से अपने संरक्षणार्थ आओ, हम इन्द्रका पाचारण करें। वह इस वैभव के राजा हैं। उन्हींके विषय में छंदोबद्ध कविताएं की जाती हैं। वह बुलाने के साथ ही आ उपस्थित होते हैं। ९

प्रत्येक सोमयज्ञ के स्थान में वास करनेवाले इन श्रेष्ठ इन्द्रदेव की आराधना उनका यह भक्त उच्चस्वर से और मनकी तृप्ति होने तक करता है। १० (१८)

———:०:———

सूक्त १०

मधुच्छन्दा ऋषि । देवता. इन्द्र ॥

गायत्री वृत्त द्वारा उपासक गण आपका यशोगान करते हैं और अर्क नामक स्तोत्र रचनेवाले आपकी अर्चा अर्कों से करते हैं। हे बलशाली इंद्र, जैसे ध्वजा ऊंची खडी की जाती है वैसे ही विद्वानों ने आपको श्रेष्ठता दी है। १

इन्द्र के भक्त ने जब एक पर्वत शिखर पर से दूसरे पर्वत शिखर पर जाकर इन्द्र के अगाध कृत्यों को देखा तब पर्जन्याधिपति इन्द्र ने उसके मन के भाव को समझ लिया, और अपने दल बल सहित वह वहां आने को तैयार हुए। २

हे इन्द्र, आपके अश्व वृष्टि उत्पन्न करनेवाले हैं। उनके अयाल लम्बे हैं और उनके शरीर के कारण उनके बन्धन तङ्ग हो रहे हैं। हे सोमप्रिय देव, ऐसे घोडों को अपने रथ में जोडिये और जहांसे हमारी प्रार्थना सुनाई दे, हमारे उतने निकट आ जाइये। ३

हे सम्पत्तिरूप इन्द्र, यहां आइये। हमारी प्रार्थना की बढ़ाई कीजिये, उसको उत्तम बनाइये, उसके लिये प्रशंसनीय उद्गार निकाल कर उसका स्वीकार कीजिये और हमारे यज्ञ को कामप्रद बनाइये। ४

✓ सब अर्थ पूर्ण करनेवाले इन्द्र के लिये उत्कृष्ट स्तोत्र का गाना चाहिये। ऐसा करनेसे हमारे पुत्रपौत्रों पर और हमारे इष्टमित्रों पर इन्द्र अपनी कृपादृष्टि रखेंगे। ५

उन्हीके प्रेम की वाञ्छा करके हम उनके पास जाते हैं। सम्पत्ति के लिये

भी हम उन्हीकी शरण में जाते हैं। शौर्य प्राप्ति की इच्छा से भी हम उन्हीका आश्रय लेते हैं। इस लिये वही इन्द्र हमें वैभव देकर हमको कर्तृत्व शक्ति प्रदान करें। ६ (१६)

हे इन्द्र आपकी कृपा से प्राप्त होनेवाली कीर्ति का ही सर्वत्र प्रसार होता है। वही सहज में प्राप्त हो सकती है। हे वज्रधर देव, धेनुसमुदाय को मुक्त कीजिये। यह कृपा हम पर कीजिये। ७

जब आपको क्रोध आता है तब भूलोक और द्युलोक दोनों ही आपके सामने आने का साहस नहीं कर सकते। स्वर्ग के जल पर स्वामित्व स्थापन कर के धेनुओं को हमारे पास भेज दीजिये। ८

हे इंद्र, आपके कान चहुंओर लगे रहते हैं। मेरी प्रार्थना सुनिये और स्तुति स्वीकार कीजिये। आप मेरे मित्र हैं। आप अंतःकरण में मेरा यह स्तवन रख लीजिये। ९

कामना परिपूर्ण करनेवाले देवताओं में आप सब से श्रेष्ठ हैं, यह हम जानते हैं। हम यह भी जानते हैं कि आप ही प्रार्थना शीघ्र सुना करते हैं। पर्जन्यवृष्टि पर आपका अधिकार होने से हम आपकी कृपाकी याचना करते हैं। उस कृपा की योग्यता दूसरों से सहस्रगुणा अधिक है। १०

हे इन्द्र, हे कौशिक, सुप्रसन्न अन्तःकरण से हमारा सोमरस शीघ्र स्वीकार कीजिये। हमारी आयु की वृद्धि कीजिये और हमको दूसरों की अपेक्षा सहस्रगुणा श्रेष्ठ ऋषित्व अर्पण कीजिये। ११

हे सर्वस्तुत्य इन्द्र, ये हमारे स्तोत्र सर्वांश में आप ही का स्तवन करें, ये स्वीकार किये जानेके योग्य हों, आपके हाथ से इनका आदर हो और आपकी अनन्त आयु की भांति ये स्तोत्र भी चिरकाल तक जीवित रहें। १२

सूक्त ११

जेता माधुच्छन्दस ऋषि । देवता-इन्द्र ।

समुद्र को भी व्याप्त करनेवाले इंद्र का यश विश्वमें अखिल स्तुतिवचनों ने श्रृंगित किया है । इंद्र सब के राजा हैं। सब सामर्थ्यों के यह अधिपति हैं। समस्त महारथी वीरों से भी यह अत्यंत श्रेष्ठ हैं। १

हे सामर्थ्योधिपति इंद्र, आप हमारे रक्षणकर्ता हैं, इस कारण हमको अपने सामर्थ्य पर भरोसा होनेसे भयका नाम भी नहीं रहता। आप शत्रुओं के विजेता हैं। आपका पराजय करनेके लिये कौन समर्थ है ? हम आपको पुन: पुन: नमस्कार करते हैं। २

इंद्र के पास गोधनादि सम्पत्ति अपार है। भक्तों को उस पराक्रमी का औदार्य सदा ही वैभव अर्पण करता रहता है, तो भी उसके दातृत्व अथवा संरक्षण शक्ति का कभी ह्रास नहीं होता। ३

शत्रुओं के सुदृढ़ नगरों का उच्छेदक यही इंद्र है। उनकी तरुणावस्था सदा बनी रहती है। वह बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं। यह आरम्भ से ही पराक्रमी अवतीर्ण हुए। सर्व कर्मों में इनका आधार है। वज्र इनका शस्त्र है, इन इंद्र की स्तुति अनेकों ने की है। ४

हे वज्रधर इंद्र, गौओं का समुदाय बलने हस्तगत कर लिया था, आपने उसका कोट तोड़ दिया। जब देवताओं को अत्यन्त पीडा हुई, तब वे नि:संशय आपके आश्रय में आये। ५

हे शूर इंद्र, आपके औदार्य के इन कामों पर मोहित होकर आपकी स्तुति गाता हुआ मैं आपके पास आया, क्यों कि आप कृपासिन्धु हैं। इतर स्तोत्रकर्ता-गण जो पास खड़े थे उन्होंने भी आपका वह पराक्रम अवलोकन किया। ६

शुष्ण इतना हिकमती है तो भी आपने युद्धचमत्कार से उसको परास्त किया बुद्धिमान पुरुषोंने यह भी अवलोकन किया। इस लिये उनकी अवश्य करने योग्य स्तुति का आप आदर कीजिये। ७

अपने सामर्थ्य से जगत् पर सत्ता चलानेवाले इन इंद्र की आराधना अनेक स्तुतिओं के योग से हुई। इंद्र के उपकारकृत्य सहस्रों हैं, बल्कि उनकी संख्या इससे भी अधिक है। ८ (२१)

सूक्त १२

अनुवाक ४.

ऋषि, मेधातिथि काण्व। देवता, अग्नि।

अग्नि देवताओं के दूत हैं। अग्नि के हाथ से देवताओं को हवि पहुंचती है। अग्नि सर्वज्ञ हैं। अग्नि ही हमारे इस यज्ञ के सच्चे ज्ञानसामर्थ्य हैं। इस लिये हम उन-के आगमनकी इच्छा करते हैं। १

जिस देवता को पुनः पुनः बुलानेकी आवश्यकता पड़ती है वह यह अग्नि ही हैं। क्यों कि यह अखिल मानवों के राजा हैं। यह सर्व देवताओं को हवि पहुंचाते हैं। यह सब के प्रिय हैं। २

हे अग्नि, यह आपको मालूम ही है कि सोमरस में से दर्भ के अग्र इत्यादिक निकाल कर सब सिद्धता कर रखी है। इस लिये सब देवताओं को यहां ले आइये। आप हवि पहुंचानेवाले हैं इस लिये आप हमारे अत्यन्त पूज्य हैं। ३

हे अग्निदेव, जब आप दूत होकर देवताओं के पास जावें उस समय हमारे हवि के विषय में उन के मनों में इच्छा उत्पन्न करके उन को जागृत कीजिये। इस दर्भासन पर देवताओं के साथ आप विराजमान हों। ४

घृत की हविओं से उज्ज्वल होनेवाले हे अग्निदेव, हमारे शत्रुओं का नाश कीजिये । उन्होंने राक्षसों से मेल किया हुआ है । ५

अग्नि जहां एक बार प्रदीप्त हुई कि वह अपने सामर्थ्य से ही वृद्धिंगत होती जाती है । अग्नि देव की बुद्धिमत्ता अपूर्व है । गृहों के सच्चे अधिपति यही हैं । इन की तरुणावस्था अबाधित है । इनके द्वारा सर्व देवताओं को हवि पहुंचती है । इनका मुख ज्वालामय है । ६ (२२)

यज्ञ में अग्नि की स्तुति किये जाओ । अग्नि परम ज्ञाता हैं । सत्यही उनका नियम है । सर्व रोगों का उच्चाटन अग्निदेव करते हैं । ७

हे अग्निदेव, जो यागकर्त्ता आपको देवताओं का दूत मान कर आपका पूजन करता है उस के रक्षण की चिन्ता कीजिये । ८

हे सबको पावन करनेवाले अग्निदेव, जो यागकर्त्ता देवताओं को सन्तुष्ट करने-के लिये आपकी सेवा करता है उसको आप सुख से रखिये । ९

हे सबको पावन करनेवाले दीप्तिमान अग्निदेव, हमारे यज्ञ और हवि के निकट देवताओं को ले आइये । १०

हे अग्निदेव, आप ऐसे ही सर्व विख्यात हैं, इस लिये हमने नवीन स्तोत्र रच-कर आपकी स्तुति की है । इस लिये हमको संपत्ति प्रदान कीजिये और आपके प्रसाद से हमको वीर्यशाली संतति भी प्राप्त हो । ११

हे अग्निदेव, आपका तेज अत्यन्त उज्ज्वल है । आप हमारे स्तोत्रों को स्वीकार कीजिये और जो हवि हम सब देवताओं को अर्पण करते हैं, उन का स्वीकार कीजिये । १२ (२३)

सूक्त १३

१ समिद्ध अग्नि । २ तनूनपात् । ३ नराशंस । ४ इल । ५ बर्हि । ६ द्वाररूप देवताएं । ७ उषा और नक्त । ८ दो होता । ९ सरस्वती, इला और भारति । १० त्वष्टा । ११ वनस्पति । १२ स्वाहा ॥

हे अग्निदेव, हमने अपने यज्ञ में हवि सिद्ध करके रखो है । इसको स्वीकार करनेके लिये आप प्रदीप्त होकर सब देवताओं को ले आइये । हे पुण्यकृत् देव, हे हवि-दार्ता, हमारा यज्ञ पूर्ण कीजिये । १

हे प्रज्ञानशाली अग्निदेव, आप स्वयंजात हैं । हमारा हवि देवताओं को प्राप्त हो, इस लिये उनको इस यज्ञमें लें आइयें और हवि उनको अर्पण कीजिये । यहां सोमरस सिद्ध करके रखें हैं[७] । २

इस यज्ञ में हम अग्निका पाचारण करते हैं । वह हमको बहुत प्रिय हैं । उनकी स्तुति करना योग्य है[८] । उनकी जिव्हा में माधुर्य है । हवि[१०] की पूर्णता उन्हींसे होती है । ३

हे अग्निदेव, आपका स्तवन सबने किया है । आप हवि पहुंचानेवाले हैं । आप मनुष्यजाति के हितकर्ता हैं । अत्यन्त सुखदायक रथ में बैठकर आप सब देवताओं को ले आइये । ४

---

१. इस सूक्त को आप्री सूक्त कहते हैं ।
२. हविष्मते । ३. सुसमिद्धः । ४. होतः ॥
५. तनूनपात् । ६. कृणुहि । ७. मधुमन्तम ॥
८. नराशंसम । ९. मधुजिह्वम । १०. हविष्कृतम ॥
११. ईळितः । १२. मनुर्हितः । १३. सुखतमे ॥

हे सुज्ञ ऋत्विज, जिनके पृष्ठभाग चमकते हैं ऐसे दर्भासनों को पास पास बिछाओ, उन्हींपर हमको अविनाशी रूप का दर्शन होगा । ५

यज्ञ की सिद्धि के लिये आज यज्ञ मंडप के पवित्र द्वार शीघ्र खोलो[3] । यहां याग विधिओंका उत्तम परिपालन होता है । यह यज्ञमंडप इतना विशाल है कि इसमें प्रवेश करनेवालों को तनिक भी अड़चन नहीं होती[4] । ६ (२४)

नक्त और उषस इन दोनों स्वरूपवान देवताओं का मैं इस यज्ञ में निमन्त्रण करता हूं । उनके बैठनेके लिये यहां दर्भ बिछाये[6] हुए हैं । ७

उन दोनों दिव्य प्रज्ञायुक्त और मधुरभाषी होताओं को मैं बुलाता हूं । वे हमारा यज्ञ सिद्ध करें । ८

इला सरस्वती और मही ये तीनों सौख्यदायिनी अमर देवियां इस दर्भ पर विराजमान हों । ९

उस सर्वदर्शी और सर्वश्रेष्ठ त्वष्ट्र देवता का हम इस यज्ञ में आमंत्रण करते हैं । उनका प्रेम केवल हम पर हो । १०

हे वनस्पतिदेव, देवताओं को हवि का दान कीजिये और यज्ञकर्ता को ज्ञानप्राप्ति कराइये । ११

यागकर्ता के घर में इन्द्र को यज्ञ अर्पण करो । इस यज्ञ में मैं सब देवताओं को आमंत्रण करता हूं । १२ (२५)

---

१. स्तृणीत । २. चक्षणम्. ॥
३. असश्चतः । ४. ऋतावृधा ॥
५. सुपेशसा. । ६. आसदे ॥
७. सुजिह्वा । ८. यक्षताम् ॥
९. मयोभुवः । १०. अस्रिधः ॥
११. विश्वरूपम् । १२. अग्नियम् ॥
१३. सृज । १४. चेतनम् ॥
१५. कृणोतन । १६. हुवे ॥

सूक्त १४

ऋषि–मेधातिथि काण्व । देवता - विश्वेदेवा ।

हे अग्निदेव, सोमपान की इच्छा से और हमारे स्तवन तथा उपासना स्वीकार करनेके लिये सब देवताओं सहित यहां पधारिये और हमारा याग सफल कीजिये । १

कण्वोंने आपका आमंत्रण किया था । हे तीव्रशाली अग्निदेव, ये स्तोत्र भी आपकी स्तुति गाते हैं । सब देवताओं को लेकर यहां आइये । २

इन्द्र, वायु, बृहस्पति, मित्र, अग्नि, पूषा, भग, आदित्य और मरुद्गण, . ३

इन सब देवताओं के लिये यह सोमरस यहां भरकर रखा हुआ है इसको चखनेसे बहुत सुख प्राप्त होता है । इससे चित्त बहुत आल्हादित होता है । यह बड़ा मधुर है, और पात्रों के किनारे तक भरा होनेसे बाहर गिरता मालूम होता है । ४

सोमवल्ली की जड़ें निकाल कर सुन्दर हवि तैयार करके यह कण्व आपका पूजन करनेके लिये बैठा है । उसकी इच्छा ऐसी है कि आप उसकी रक्षा करें । ५

जो अश्व को और सब देवताओं को सोमपान के लिये ले आते हैं, जिनकी पीठ चमकती हैं और जो आपके रथ में अपनी प्रेरणा से ही जुड़ जाते हैं, ६ (२६)

---

१. दुवः ॥
२. अहूषत ॥
३. म्रियन्त । ४. मत्सराः ५. चमूषदः । ६ द्रप्साः ॥
७. वृक्तबर्हिषः । ८. अवस्यवः ॥
९. घृतपृष्ठाः । १०. मनोयुजः ॥

ऐसे पुण्यकारी अश्वों की भेट उनकी सहचरियों से कराइये। इन अश्वों के कारण सब विधि यथायोग्य चलती हैं; इस लिये, हे मधुरभाषी देव, इन अश्वों को सोमरस भी चखाइये। ७

हे अग्निदेव, जिन देवताओं को यज्ञ समर्पण करना उचित है और जो देवता स्तवन करने योग्य हैं, उन सबकी जिव्हाएं इस यज्ञ में मधुर सोमरस का आस्वादन करें। ८

यह विद्वान होता उषःकाल में जागृत होनेवाले देवताओं को सुप्रकाशित सूर्यलोक से ले आता है। ९

हे अग्नि, भूतलपर जब मित्र की किरणें पड़ें, उसी समय आप इन्द्र और वायु सहित पधार कर इस मधुर सोमरस का पान कीजिये। १०

अग्ने, आप हव्यवाहक हैं। मनुष्यजाति के हितकर्ता भी हैं। प्रत्येक यज्ञ में आप ही विराजमान होते हैं। आप हमारा यज्ञ सिद्ध कीजिये। ११

हे देव, आप अपने रक्तवर्ण और चपल घोड़ों को रथ में जोड़िये और उनके द्वारा देवताओं को यहां ले आइये। १२ (२७)

---

१. यजत्राः। २. ऋतावृधः॥
३. वषट्कृति॥
४. विप्रः। ५. आर्की–सूर्यस्य रोचनात्॥
६. धामभिः॥
७. सीदसि। ८. यज॥
९. अरुषीः। १०. हरितः॥

सूक्त १५

ऋषि मेधातिथि काण्व ॥ देवता–ऋतु । १ इंद्र । २ मरुत ३ त्वष्टा । ४ अग्नि । ५ इंद्र । ६ मित्रा-वरुण । ७–१० द्रविणोदा । ११ अश्विन । १२ अग्नि ॥

• हे इंद्र, ऋतुओं सहित सोमपान कीजिये । ये सोमरस के उछलनेवाले बिन्दु[1] आपके उदर में प्रवेश करें । इनका प्राशन करनेमे आपको हर्ष होगा[2] । आपका उदर ही उनके लिये योग्य स्थान है । १

हे मरुत, ऋतुओं सहित इन पात्रों[3] से सोमपान कीजिये । आपके हाथ से ही हमारा यज्ञ पवित्र हो । दानशूरता[4] के लिये आप ही बहुत प्रसिद्ध हैं । २

हे सपत्नीक नेष्टृदेव, हमारे यज्ञ की प्रशंसा कीजिये और ऋतुओं सहित पधारकर सोमपान कीजिये । उत्कृष्ट रत्नों की निधि[5] आप ही के पास है । ३

हे अग्निदेव, देवताओं को यहां ले आइये और तीनेनों आसनों पर उनको यहां विराजित[6] कीजिये । उनको विविधरूप से अलंकृत[7] कीजिये और ऋतुओं सहित सोम-पान कीजिये । ४

हे इंद्र, ऋतुओं के सोमपान कर लेनेके बाद आप इन सुन्दर पात्रों में सोमरस को[8] चखिये । आपकी मित्रता चिरकाल तक टिकनेवाली[9] है । ५

हे विधिपरिपालक मित्र वरुण, आप दोनो ऋतुओं सहित पधारकर इस यज्ञका अंगीकार[10] करते हैं । यहां सर्व सिद्धता उत्तम रीति से की हुई है और विघ्न[11] डालनेके लिये कोई भी समर्थ नहीं है । ६ (२८)

---

१ इन्दवः । २ मत्सरासः ॥
३ पोत्रात् । ४ सुदानवः ॥
५ रत्नधाः ॥
६ सादय । ७ भूष ॥
८ राधसः । ९ अस्तृतम् ॥
१० आशाथे । ११ धृतव्रता ॥

द्रविणोद के लिये इस यज्ञ में सोमरस निकालनेके अभिप्राय से वैभवकी इच्छा रखनेवाले ऋत्विज हाथों में मावा लिये बैठे हैं। इस देवताका पूजन प्रत्येक यज्ञ में करते हैं। ७

जिस वैभव का महत्व दूर दूर तक प्रसिद्ध हो ऐसा वैभव हमको यह द्रविणोद प्रदान करें। उसकी प्राप्ति के लिये हम सब देवताओं से प्रार्थना करते हैं। ८

अब नेष्टा और ऋतु के स्थान से आगे चलो। सोमरस की हवि तैयार करो, क्यों कि इन द्रविणोदस को सोमरस की इच्छा हुई है। ९

हे द्रविणोदस देव, आप अनुक्रम से चौथे हैं। हम ऋतुओं सहित आपको हवि अर्पण करते हैं। इस लिये मनःपूर्वक हमको प्रसाद दीजिये। १०

हे देदीप्यमान और पुण्यवन् अश्विन, यज्ञको सिद्ध करनेवाले इन ऋतुओं सहित आप मधुर सोमरस का सेवन कीजिये। ११

हे उदार देव, सब गृहस्वामी आप ही हैं, इस लिये ऋतु प्रमाण से यज्ञ का अध्वर्युत्व आपको मिला है। हमारी विनती का आदर करके इस यज्ञमें सब देवताओं-को पहुंचाइये। १२ (२९)

---

१ द्रविणसः ॥
२ वनामहे ॥
३ जुहोत । ४ पिपीषति ॥
५ यजामहे । ६ ददिः ॥
७ दीद्यग्नी । ८ यज्ञवाहसा ॥
९ सन्त्य । १० यज्ञनीः ।

सूक्त १६

ऋषि—काण्व । देवता इन्द्र ।

हे इंद्रदेव, आप वृष्टि[1] करनेवाले हैं। आपके लिये सोमरस तैयार करके रखा है। उसके लिये आपके हरिद्वर्ण[2] अश्व[3] सूर्य का दर्शन करते करते आपको यहां ले आयें। १

इन लावों[4] में इतना घी लगाया है कि टपका पड़ता है।[5] उनका सेवन करनेके लिये सर्व सुखसामग्री से सुसज्जित रथ में बैठे हुए इन्द्र को हरिद्वर्ण अश्व लिये आते हैं। २

प्रातःकाल में हम इंद्र को बुलाते हैं। यज्ञ प्रारंभ करके हम इंद्र का पाचारण करते हैं। सोमरस का पान करानेके लिये हम इंद्र का आह्वान करते हैं। ३

देखो, इंद्र के घोड़ों की अयाल कैसी दीर्घ है। हे इंद्र, ऐसे अश्वों को जोड़कर हमारे सोमरस का पान करनेके लिये आइये। सोमरस निचोड़कर रखते ही हम आपको बुलाते हैं। ४

हमारी प्रार्थना सुननेके लिये आप यहां आइये। हमारे सोमरस के स्वीकार करनेके लिये आप यहां पधारिये। प्यासे हरिणों[6] की भांति उत्सुकतापूर्वक इस सोमरस को पीजिये। ५ (३०)

---

१ वृषणम्। २ हरयः। ३ सूरचक्षसः॥
४ धानाः। ५ घृतस्नुवः॥
६ गौरः॥

दर्भ पर रखे हुए पात्रों में सोमरस के बिन्दु रखे हुए हैं। हे इंद्र, आप श्रम-परिहार करनेके लिये इनको चखिये। ६

हमारी इस स्तुति से आप सन्तुष्ट हों। यह अति सुन्दर है। यह आपके अन्तःकरण में प्रवेश करे। हमारे तैयार किये हुए सोमरस को आप पीजिये। ७

जिस जिस यज्ञ में सोमरस निकालकर रखा होता है, वहीं यह शत्रुओं के संहारक इंद्र उसको चखनेके लिये जाते हैं। इंद्र को उसमे ही बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। ८

हे सामर्थ्यवान इंद्र, हमको धेनु अश्व इत्यादि वैभव प्राप्त हों; बस यही हमारी इच्छा है। उसे आप परिपूर्ण कीजिये। हम एकाग्र बुद्धि से आपका स्तवन करें। ९ (३१)

---

१ सहस्र ॥

२ मदाय ॥

३ स्वाध्यः ॥

सूक्त १७.

ऋषि—मेधातिथि काण्व । देवता—इन्द्र, वरुण ।

जगत् पर साम्राज्य करनेवाले इन्द्र वरुण से मैं करुणा का प्रार्थी हूं । उनकी शरण में जानेसे ही वे हमको सुखी करते हैं । १

हे इन्द्र वरुण हमारे सरीखे भाविकों के पुकारते ही आप हमारा रक्षण करनेको तैयार रहते है । अखिल प्राणी मात्रके पोषणकर्त्ता आप ही हैं । २

हे इन्द्र वरुण, हमको इतनी सम्पत्ति दीजिये, कि हम तृप्त हो जायं । आप दोनो ही उदार देवता हमारे अत्यन्त निकट रहें यही हमारी इच्छा हैं । ३

सामर्थ्य लाभ करानेवाली आपकी कृपा में हम भी शरीक हैं और उत्कृष्ट कार्यक्षमता के भी हमी पात्र हैं । ४

सहस्रविधि दानकर्म करनेवालों में इन्द्र ही श्रेष्ठ हैं । जो अत्यन्त स्तुत्य हैं । उनमें वरुण ही का मान सबसे बड़ा है । इन दोनों की सामर्थ्य प्रशंसनीय है । ५ (३२)

हम उनकी कृपा से सम्पत्ति प्राप्त करतें हैं और अपनी पूर्ण इच्छानुसार उसे संग्रहित करते हैं तो भी उनके पास सम्पत्ति ज्यों की त्यों भरपूर बनी रहती है । ६

हे इन्द्र वरुण, अपूर्व सुखप्राप्ति की इच्छा से हम आपको बुलाते हैं । हमको सर्वत्र विजयशीली कीजिये । ७

---

१ अव । २ ईदृशा ॥
३ गन्तारा । ४ चर्षणीनाम् ॥
५ ईमहे ॥
६ वाजदाव्राम् । ७ युवाकु ॥
८ सहस्रदाव्राम ॥
९ नि-धीमहि । १० प्ररेचनम् ॥
११ सु-जिग्युषः ॥

हे इन्द्र वरुण, हमारा मन अत्यन्त आतुर होकर सर्वदा आप ही का चिन्तन करता है, इस लिये आप हमारा कल्याण कीजिये। ८

हे इन्द्र वरुण, आप दोनों ही के लिये मैं एक ही सुन्दर स्तुति अर्पण करता हूं। आप ही उसको उत्तेजित करते हैं। इस लिये वह आप दोनों को सर्वथा मान्य होगी। ९ (३३)

अनुवाक ५.

सूक्त १८.

ऋषि मेधातिथि काण्व। देवता १—३ ब्रह्मणस्पति। ४ ब्रह्मणस्पति, इन्द्र, सोम। ५ ब्रह्मणस्पति, दक्षिणा। ६—७ सदसस्पति। ८ सदसस्पति अथवा नराशंस॥

हे ब्रह्मणस्पति, उशिजा के पुत्र कक्षिवान ने आपको सोम[1] अर्पण किया है। उसको आप तेजस्विता अर्पण कीजिये। १

जो वैभवशाली और व्याधियों के हरनेवाले हैं, जिनके पास भरे हुए द्रव्य के कोष हैं जो जगत् का पालनपोषण करनेवाले हैं और भक्तों के लिये शीघ्रतापूर्वक आते हैं, ऐसे ब्रह्मणस्पति हम पर अनुग्रह करें। २

हे ब्रह्मणस्पति, शत्रु के शाप अथवा किसी भी मनुष्य के कपट से हमको कोई बाधा न पड़े। आप हमारी रक्षा कीजिये। ३

---

१ सिषासंतीषु॥

२ सधस्तुतिम॥

३ सोमानम्। ४ स्वरणम्॥

५ धुरः। ६ सिसक्तु॥

७ शंसः। ८ मा-प्रणक्॥

इन्द्र, ब्रह्मणस्पति और सोम जिस दुर्बल की रक्षा करनेका अभिमान करते हैं वह वीर्यवान हो जाता है और कभी भी उसका नाश नहीं होता । ४

हे ब्रह्मणस्पति, इन्द्र और दक्षिणा से मिलकर उस गरीब की रक्षा पातकों से कीजिये । ५ (३४)

अद्भुत पराक्रम करनेवाले प्रज्ञारूप सदसस्पति के पास मैं गया हूं । वह उदार[2] हैं, भक्ति करनेके योग्य हैं और उनका मित्रत्व अगाध है । ६

जिनकी सहायता बिना ज्ञानी मनुष्यों के यज्ञ की भी सिद्धि होना अशक्य है, उन्हींसे हमको बुद्धिमत्ता की प्राप्ति[3] होती है । ७

हवि अर्पण करनेके कार्य को वह सफल करते हैं और यदि उसमें कोई त्रुटि रह जाती है तो उसको संभाल लेते हैं इसी लिये हमारा हविर्भाग देवताओं के पास पहुंच जाता है । ८

नराशंस का आज मुझे दर्शन हुआ । वह बड़े पराक्रमी हैं और उनकी कीर्ति अत्यन्त विशाल है । उनकी कान्ति प्रत्यक्ष द्युलोक की भांति चमकती है । ९ (३५)

सूक्त १९.

ऋषि- मेधातिथि काण्व । देवता—अग्नि, मरुत ।

हे अग्निदेव, इस मनोहर यज्ञ में सोम अर्पण करनेके लिये आपका निमंत्रण किया जाता है । इस लिये मरुद्गण सहित आप यहां आइये । १

---

१ हिनोति ।
२ सनि ॥
३ योगं ॥
४ हविष्कृतिम । ५ ऋध्नोति । ६ प्राञ्चं कृणोति ॥
७ सप्रथस्तमम् ॥
८ गोपीथाय ॥

आप इतने श्रेष्ठ हैं कि आपकी सामर्थ्य के सामने देवता या मनुष्य किसी की भी गति नहीं है। इस लिये हे अग्निदेव, आप मरुद्गण सहित यहां आइये। २

द्वेषविकार से सदा रहित रहनेवाले और रजोलोक के अगाध ज्ञानी मरुद्देवों सहित हे अग्निदेव, आप यहां पधारिये। ३

जो उग्रकृति मरुत् अपने तेज से किसी के पराक्रम की भी परवाह न करके अर्क की याचना करते हैं, उनके सहित हे अग्निदेव, यहां पधारिये। ४

जिनका अत्यन्त शुभ्र वर्ण है और शरीर बहुत दीर्घाकार है, जो महा पराक्रमी प्रसिद्ध है और दुष्टों का उन्मूलन करनेवाले हैं, ऐसे मरुत देवों सहित हे अग्निदेव, यहां पधारिये। ५ (३६)

स्वर्ग के ऊपर देदीप्यमान द्युलोक में वास करनेवाले मरुत देवों सहित, हे अग्निदेव, आप यहां आइये। ६

ऊंची ऊंची तरंगवाले समुद्रों में जो पर्वतों को उलट पलट कर देता है ऐसे मरुतों के सहित हे अग्निदेव, आप यहां पधारिये। ७

जो अपनी सामर्थ्य से सम्पूर्ण समुद्र पर अपनी किरणों को व्याप्त कर देते हैं ऐसे मरुतों के साथ हे अग्निदेव, यहां आइये। ८

यह मधुर सोमरस मैं आपको अर्पण करता हूं। मेरी इच्छा है कि सबके पहले आप उसका प्राशन कीजिये। इस लिये हे अग्निदेव, मरुद्गण को लेकर आप यहां आइये। ९ (३७)

---

१ परः ॥
२ घोरवर्पसः । ३ सुभ्रभासः । ४ रिशादसः ॥
५ रोचने ॥
६ अर्णवम् । ७ तिरः । ८ ईखयंति ॥
९ तन्वन्ति ॥
१० पूर्वपीतयं ॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

द्वितीय आवृत्ति

हिन्दी, मराठी, गुजराती और अङ्गरेजी चार भाषाओं में अलग अलग प्रसिद्ध होनेवाला

वेदों का भाषांतर।

प्रति मास में ६४ पृष्ठ; ३२ पृष्ठ संहिता [स्वर और पदपाठ सहित]
* * ३२ पृष्ठ भाषान्तर। * *

वर्ष १] ऑगस्ट १९१२—आषाढ़ शके १८३४ [अंक २

वार्षिक मूल्य डाकव्ययसह ४ रु.

हिन्दी

श्रुतिबोध.

सम्पादक।

रामचंद्र विनायक पटवर्धन, बी. ए. एल् एल्. बी.
अच्युत बलवंत कोल्हटकर, बी. ए. एल् एल्. बी.
दत्तो अप्पाजी तुलजापुरकर, बी. ए. एल् एल्. बी.

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत् ।
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।
यास्काचार्य.

प्रकाशक—प्राणशंकर अमृतराम दीक्षित.
'श्रुतिबोध' ऑफिस, ४७, कालबादेवी रोड़, बम्बई.

Printed by Bhagvanlal Tribhuvan for the Proprietor, at the "*Subodhini*" *Press* Bazargate, Street, Fort, Bombay.

॥ अथ प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

॥ २० ॥ १-८ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता—ऋभवः ॥ छन्दः— ३ विराड्गायत्री । ४ निचृद्गायत्री । ५, ८ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । १, २, ६, ७ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(२०) अयं देवाय जन्मने स्तोमो विप्रेभिरासया ।
अकारि रत्नधातमः ॥ १ ॥

य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षुर्मनसा हरी ।
शमीभिर्यज्ञमाशत ॥ २ ॥

तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथं ।
तक्षन्धेनुं सबर्दुघाम् ॥ ३ ॥

युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः ।
ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥ ४ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अयं । देवाय । जन्मने । स्तोमः । विप्रेभिः । आसया । अकारि । रत्नऽधातमः ॥ १ ॥ ये । इन्द्राय । वचःऽयुजा । ततक्षुः । मनसा । हरी इति । शमीभिः । यज्ञं । आशत ॥२॥ तक्षन् । नासत्याभ्यां । परिऽज्मानं । सुऽखं । रथं । तक्षन् । धेनुं । सबःऽदुघां ॥ ३ । युवाना । पितरा । पुनरिति । सत्यऽमन्त्राः । ऋजुऽयवः । ऋभवः । विष्टी । अक्रत ॥ ४ ॥

सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता ।
आदित्येभिश्च राजभिः ॥ ५ ॥ १ ॥

उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् ।
अकर्त चतुरः पुनः ॥ ६ ॥

ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते ।
एकमेकं सुशस्तिभिः ॥ ७ ॥

अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया ।
भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ ॥ २ ॥

॥ २१ ॥ १-६ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवते—इन्द्राग्नी ॥ छन्दः—१ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । ५ निचृद्गायत्री । २, ३, ४, ६, गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(२१) इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मसि ।
ता सोमं सोमपातमा ॥ १ ॥

ता यज्ञेषु प्र शंसतेन्द्राग्नी शुम्भता नरः ।
ता गायत्रेषु गायत ॥ २ ॥

सं । वः । मदासः । अग्मत । इंद्रेण । च । मरुत्वता । आदित्येभिः । च । राजऽभिः ॥ ५ ॥ १ ॥ उत । त्यं । चमसं । नवं । त्वष्टुः । देवस्य । निःऽकृतं । अकर्त । चतुरः । पुनरिति ॥ ६ ॥ ते । नः । रत्नानि । धत्तन । त्रिः । आ । साप्तानि । सुन्वते । एकंऽएकं । सुशस्तिऽभिः ॥ ७ ॥ अधारयंत । वह्नयः । अभजंत । सुऽकृत्यया । भागं । देवेषु । यज्ञियं ॥ ८ ॥ २ ॥

इह । इंद्राग्नी इति । उप । ह्वये । तयोः । इत् । स्तोमं । उश्मसि । ता । सोमं । सोमऽपातमा ॥ १ ॥ ता । यज्ञेषु । प्र । शंसत । इंद्राग्नी इति । शुंभत । नरः । ता । गायत्रेषु ।

ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे ।
सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥

उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम् ।
इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥

ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्ष उब्जतम् ।
अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥ ५ ॥

तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पदे ।
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥ ३ ॥

॥ २२ ॥ १-२१ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता १-४ अश्विनौ । ५-८ सविता । ९, १० अग्निः । ११ देव्यः । १२ इन्द्राणीवरुणान्यग्नाय्यः । १३, १४, द्यावापृथिव्यौ । १५ पृथिवी । १६ विष्णुर्देवो वा । १७-२१ विष्णुः ॥ छन्दः - १-३, ८, १२, १७, १८, पिपीलिकामध्यानिचृद्गायत्री । ६, १९ निचृद्गायत्री । १५ विराड् गायत्री । ४, ५, ७, ९, ११, १३, १४, १६, २०, २१ गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(२२) प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ १ ॥

गायत ॥ २ ॥ ता । मित्रस्य । प्रऽशस्तये । इंद्राग्नी इति । ता । हवामहे । सोमऽपा । सोमऽपीतये ॥ ३ ॥ उग्रा । संता । हवामहे । उप । इदं । सवनं । सुतं । इंद्राग्नी इति । आ । इह । गच्छतां ॥ ४ ॥ ता । महांता । सदस्पती इति । इंद्राग्नी इति । रक्षः । उब्जतं । अप्रजाः । संतु । अत्रिणः ॥ ५ ॥ तेन । सत्येन । जागृतं । अधि । प्रऽचेतुने । पदे । इंद्राग्नी इति । शर्म । यच्छतं ॥ ६ ॥ ३ ॥

प्रातःऽयुजा । वि । बोधय । अश्विनौ । आ । इह । गच्छतां । अस्य । सोमस्य । पीतये ॥ १ ॥

या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा ।
अश्विना ता हवामहे ॥ २ ॥

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती ।
तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥

नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः ।
अश्विना सोमिनो गृहम् ॥ ४ ॥

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुप ह्वये ।
स चेत्ता देवता पदम् ॥ ५ ॥ ४ ॥

अपां नपातमवसे सवितारमुप स्तुहि ।
तस्य व्रतान्युश्मसि ॥ ६ ॥

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ।
सवितारं नृचक्षसम् ॥ ७ ॥

सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः ।
दाता राधांसि शुम्भति ॥ ८ ॥

या । सुऽरथा । रथिऽतमा । उभा । देवा । दिविऽस्पृशा । अश्विना । ता । हवामहे ॥२॥ या । वां । कशा । मधुऽमती । अश्विना । सूनृताऽवती । तया । यज्ञं । मिमिक्षतं ॥३॥ नहि । वां । अस्ति । दूरके । यत्र । रथेन । गच्छथः । अश्विना । सोमिनः । गृहं ॥४॥ हिरण्यऽपाणिं । ऊतये । सवितारं । उप । ह्वये । सः । चेत्ता । देवता । पदं । ॥५॥ ४ ॥ अपां । नपातं । अवसे । सवितारं । उप । स्तुहि । तस्य । व्रतानि । उश्मसि ॥ ६ ॥ विऽभक्तारं । हवामहे । वसोः । चित्रस्य । राधसः । सवितारं । नृऽचक्षसं ॥ ७ ॥ सखायः । आ । नि । सीदत । सविता । स्तोम्यः । नु । नः । दाता । राधांसि । शुंभति ॥ ८ ॥

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप ।
त्वष्टारं सोमपीतये ॥ ९ ॥
आ ग्ना अग्न इहावसे होत्रां यविष्ठ भारतीम् ।
वरूत्रीं धिषणां वह ॥ १० ॥ ५ ॥
अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः ।
अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥ ११ ॥
इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये ।
अग्नायीं सोमपीतये ॥ १२ ॥
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।
पिपृतां नो भरीमभिः ॥ १३ ॥
तयोरिद्घृतवत्पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः ।
गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥ १४ ॥

अग्ने । पत्नीः । इह । आ । वह । देवानां । उशतीः । उप । त्वष्टारं । सोमऽपीतये ॥ ९ ॥ आ । ग्नाः । अग्ने । इह । अवसे । होत्रां । यविष्ठ । भारतीं । वरूत्रीं । धिषणां । वह ॥ १० ॥ ५ ॥ अभि । नः । देवीः । अवसा । महः । शर्मणा । नृऽपत्नीः । अच्छिन्नऽपत्राः । । सचंतां ॥ ११ ॥ इह । इंद्राणीं । उप । ह्वये । वरुणानीं । स्वस्तये । अग्नायीं । सोमऽपीतये । ॥ १२ ॥ मही । द्यौः । पृथिवी । च । नः । इमं । यज्ञं । मिमिक्षतां । पिपृतां । नः । भरीमऽभिः ॥ १३ ॥ तयोः । इत् । घृतऽवत् । पयः । विप्राः । रिहंति । धीतिऽभिः । गंधर्वस्य । ध्रुवे । पदे ॥ १४ ॥

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ १५ ॥ ६ ॥

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे ।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।
समूळ्हमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९ ॥

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ २० ॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ २१ ॥ ७ ॥

स्योना । पृथिवि । भव । अनृक्षरा । निऽवेशनी । यच्छ । नः । शर्म । सऽप्रथः । ॥१५॥६॥ अतः । देवाः । अवंतु । नः । यतः । विष्णुः । विऽचक्रमे । पृथिव्याः । सप्त । धामऽभिः ॥१६॥ इदं । विष्णुः । वि । चक्रमे । त्रेधा । नि । दधे । पदं । संऽऊळ्हं । अस्य । पांसुरे ॥ १७ ॥ त्रीणि । पदा । वि । चक्रमे । विष्णुः । गोपाः । अदाभ्यः । अतः । धर्माणि । धारयन् ॥१८॥ विष्णोः । कर्माणि । पश्यत । यतः । व्रतानि । पस्पशे । इंद्रस्य । युज्यः । सखा ॥ १९ ॥ तत् । विष्णोः । परमं । पदं । सदा । पश्यंति । सूरयः । दिविऽइव । चक्षुः । आऽततं । ॥२०॥ तत् । विप्रासः । विपन्यवः । जागृऽवांसः । सं । इंधते । विष्णोः । यत् । परमं । पदं ॥ २१ ॥ ७ ॥

॥ २३ ॥ १—२४ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता—१ वायुः । २, ३ इन्द्रवायू । ४–६ मित्रावरुणौ । ७–९ इन्द्रो मरुत्वान् । १०–१२ विश्वेदेवाः । १३–१५ पूषा । १६–२२ आपः । २३–२४ अग्निः ॥ छंदः—१–१८ गायत्री । १९ पुरउष्णिक् । २० अनुष्टुप् । २१ प्रतिष्ठा । २२–२४ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१–१८, २१ षड्जः । १९ ऋषभः । २०, २२–२४ गान्धारः ॥

(२३) तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे ।
वायो तान्प्रस्थितान्पिब ॥ १ ॥

उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये ।
सहस्राक्षा धियस्पती ॥ ३ ॥

मित्रं वयं हवामहे वरुणं सोमपीतये ।
जज्ञाना पूतदक्षसा ॥ ४ ॥

ऋतेन यावृतावृधावृतस्य ज्योतिषस्पती ।
ता मित्रावरुणा हुवे ॥ ५ ॥ ८ ॥

तीव्राः । सोमासः । आ । गहि । आशीःऽवंतः । सुताः । इमे । वायो इति । तान् । प्रऽस्थितान् । पिब ॥ १ ॥ उभा । देवा । दिविऽस्पृशा । इंद्रवायू इति । हवामहे । अस्य । सोमस्य । पीतये ॥ २ ॥ इंद्रवायू इति । मनःऽजुवा । विप्राः । हवंते । ऊतये । सहस्रऽअक्षा । धियः । पती इति ॥ ३ ॥ मित्रं । वयं । हवामहे । वरुणं । सोमऽपीतये । जज्ञाना । पूतऽदक्षसा ॥ ४ ॥ ऋतेन । यौ । ऋतऽवृधौ । ऋतस्य । ज्योतिषः । पती इति । ता । मित्रावरुणा । हुवे ॥ ५ ॥ ८ ॥

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करतां नः सुराधसः ॥ ६ ॥

मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये ।
सजूर्गणेन तृम्पतु ॥ ७ ॥

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।
विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ ८ ॥

हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा ।
मा नो दुःशंस ईशत ॥ ९ ॥

विश्वान्देवान्हवामहे मरुतः सोमपीतये ।
उग्रा हि पृश्निमातरः ॥ १० ॥ ९ ॥

जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया ।
यच्छुभं याथना नरः ॥ ११ ॥

हस्काराद्विद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः ।
मरुतो मृळयन्तु नः ॥ १२ ॥

वरुणः । प्रऽअविता । भुवत् । मित्रः । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः । करतां । नः । सुऽराधसः ॥ ६ ॥ मरुत्वंतं । हवामहे । इंद्रं । आ । सोमपीतये । सऽजूः । गणेन । तृंपतु ॥७॥ इंद्रऽज्येष्ठाः । मरुत्ऽगणाः । देवासः । पूषऽरातयः । विश्वे । मम । श्रुत । हवं ॥८॥ हत । वृत्रं । सुऽदानवः । इंद्रेण । सहसा । युजा । मा । नः । दुःऽशंसः । ईशत ॥ ९ ॥ विश्वान् । देवान् । हवामहे । मरुतः । सोमऽपीतये । उग्राः । हि । पृश्निऽमातरः ॥ १० ॥९॥ जयतांऽइव । तन्यतुः । मरुतां । एति । धृष्णुऽया । यत् । शुभं । याथना । नरः ॥ ११ ॥ हस्कारात् । विऽद्युतः । परि । अतः । जाताः । अवंतु । नः । मरुतः । मृळयंतु । नः ॥ १२ ॥

आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः ।
आजा नष्टं यथा पशुम् ॥ १३ ॥

पूषा राजानमाघृणिरपगूळ्हं गुहा हितम् ।
अविन्दच्चित्रबर्हिषम् ॥ १४ ॥

उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्ताँ अनुसेषिधत् ।
गोभिर्यवं न चर्कृषत् ॥ १५ ॥ १० ॥

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम् ।
पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥ १६ ॥

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ १७ ॥

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः ।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ १८ ॥

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये ।
देवा भवत वाजिनः ॥ १९ ॥

आ । पूषन् । चित्रऽबर्हिषं । आघृणे । धरुणं । दिवः । आ । अज । नष्टं । यथा । पशुं ॥ १३ ॥ पूषा । राजानं । आघृणिः । अपऽगूळ्हं । गुहा । हितं । अविंदत् । चित्रऽबर्हिषं ॥१४॥ उतो इति । सः । मह्यं । इंदुऽभिः । षट् । युक्तान् । अनुऽसेसिधत् । गोभिः । यवं । न । चर्कृषत् ॥१५॥१०॥ अंबयः । यंति । अध्वऽभिः । जामयः । अध्वरिऽयतां । पृंचतीः । मधुना । पयः ॥ १६ ॥ अमूः । याः । उप । सूर्ये । याभिः । वा । सूर्यः । सह । ताः । नः । हिन्वंतु । अध्वरं ॥ १७ ॥ अपः । देवीः । उप । ह्वये । यत्र । गावः । पिबंति । नः । सिंधुऽभ्यः । कर्त्वं । हविः ॥१८॥ अप्ऽसु । अंतः । अमृतं । अप्ऽसु । भेषजं । अपां । उत । प्रऽशस्तये । देवाः । भवत । वाजिनः ॥१९॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशम्भुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥ २० ॥ ११ ॥
आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ २१ ॥
इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ २२ ॥
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ २३ ॥
सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा ।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः ॥२४॥१२॥५॥

॥ षष्ठोऽनुवाकः ॥

॥ २४ ॥ १-१५ शुनःशेप आजीगर्तिः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरात ऋषिः । देवता—१ प्रजापतिः । २ अग्निः । ३-५ सविता भगो वा । ६-१५ वरुणः ॥ छन्दः—१, २, ६-१५ त्रिष्टुप् । ३-५ गायत्री ॥ स्वरः—१, २, ६-१५ धैवतः । ३-५ षड्जः ॥

(२४) कस्य नूनं कतमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।

अप्ऽसु । मे । सोमः । अब्रवीत् । अन्तः । विश्वानि । भेषजा । अग्निम् । च । विश्वऽशम्भुवम् । आपः । च । विश्वऽभेषजीः ॥ २० ॥ ११ ॥ आपः । पृणीत । भेषजम् । वरूथम् । तन्वे । मम । ज्योक् । च । सूर्यम् । दृशे ॥२१॥ इदम् । आपः । प्र । वहत । यत् । किम् । च । दुःऽइतम् । मयि । यत् । वा । अहम् । अभिऽदुद्रोह । यत् । वा । शेपे । उत । अनृतम् ॥ २२ ॥ आपः । अद्य । अनु । अचारिषम् । रसेन । सम् । अगस्महि । पयस्वान् । अग्ने । आ । गहि । तम् । मा । सम् । सृज । वर्चसा ॥ २३ ॥ सम् । मा । अग्ने । वर्चसा । सृज । सम् । प्रऽजया । सम् । आयुषा । विद्युः । मे । अस्य । देवाः । इन्द्रः । विद्यात् । सह । ऋषिऽभिः ॥२४॥१२॥५॥

॥ षष्ठोऽनुवाकः ॥

कस्य । नूनम् । कतमस्य । अमृतानाम् । मनामहे । चारु । देवस्य । नाम । कः । नः ।

को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ १ ॥

अग्नेर्वयं प्रथमस्यामृतानां मनामहे चारु देवस्य नाम ।

स नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च ॥ २ ॥

अभि त्वा देव सवितरीशानं वार्याणाम् ।

सदावन्भागमीमहे ॥ ३ ॥

यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः ।

अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥ ४ ॥

भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा ।

मूर्धानं राय आरभे ॥ ५ ॥ १३ ॥

नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।

नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥६॥

मह्यै । अदितये । पुनः । दात् । पितरं । च । दृशेयं । मातरं । च ॥१॥ अग्नेः । वयं । प्रथमस्य । अमृतानां । मनामहे । चारु । देवस्य । नाम । सः । नः । मह्यै । अदितये । पुनः । दात् । पितरं । च । दृशेयं । मातरं । च ॥२॥ अभि । त्वा । देव । सवितः । ईशानं । वार्याणां । सदा । अवन् । भागं । ईमहे ॥ ३ ॥ यः । चित् । हि । ते । इत्था । भगः । शशमानः । पुरा । निदः । अद्वेषः । हस्तयोः । दधे ॥४॥ भगऽभक्तस्य । ते । वयं । उत् । अशेम । तव । अवसा । मूर्धानं । रायः । आऽरभे । ॥ ५ ॥ १३ ॥ नहि । ते । क्षत्रं । न । सहः । न । मन्युं । वयः । चन । अमी इति । पतयंतः । आपुः । न । इमाः । आपः । अनिऽमिषं । चरंती । न । ये । वातस्य । प्रऽमिनंति । अभ्वं ॥ ६ ॥

अबुध्ने राजा वरुणो वनस्योर्ध्वं स्तूपं ददते पूतदक्षः ।
नीचीनाः स्थुरुपरि बुध्न एषामस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः ॥७॥
उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उ ।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥८॥
शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमुर्वी गभीरा सुमतिष्टे अस्तु ।
बाधस्व दूरे निरृतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥९॥
अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः ।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति ॥१०॥१४॥
तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः ।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः ॥११॥

अबुध्ने । राजा । वरुणः । वनस्य । ऊर्ध्वं । स्तूपं । ददते । पूतऽदक्षः । नीचीनाः । स्थुः । उपरि । बुध्नः । एषां । अस्मे इति । अंतः । निऽहिताः । केतवः । स्युरिति स्युः । ॥ ७ ॥ उरुं । हि । राजा । वरुणः । चकार । सूर्याय । पंथां । अनुऽएतवै । ऊँ इति । अपदे । पादा । प्रतिऽधातवे । अकः । उत । अपऽवक्ता । हृदयऽविधः । चित् ॥ ८ ॥ शतं । ते । राजन् । भिषजः । सहस्रं । उर्वी । गभीरा । सुऽमतिः । ते । अस्तु । बाधस्व । दूरे । निःऽऋतिं । पराचैः । कृतं । चित् । एनः । प्र । मुमुग्धि । अस्मत् ॥ ९ ॥ अमी इति । ये । ऋक्षाः । निऽहितासः । उच्चा । नक्तं । ददृश्रे । कुह । चित् । दिवा । ईयुः । अदब्धानि । वरुणस्य । व्रतानि । विऽचाकशत् । चंद्रमाः । नक्तं । एति ॥ १० ॥१४॥ तत् । त्वा । यामि । ब्रह्मणा । वंदमानः । तत् । आ । शास्ते । यजमानः । हविःऽभिः । अहेळमानः । वरुण । इह । बोधि । उरुऽशंस । मा । नः । आयुः । प्र । मोषीः ॥ ११ ॥

तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तदयं केतो हृद आ वि चष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद्गृभीतः सो अस्मान्राजा वरुणो मुमोक्तु ॥ १२ ॥
शुनःशेपो ह्यह्वद्गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः ।
अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥ १३ ॥
अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥ १४ ॥
उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।
अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १५ ॥ १५ ॥

॥ २५ ॥ १–२१ शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥ षड्जः स्वरः ॥

(२५) यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् ।
मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

तत् । इत् । नक्तं । तत् । दिवा । मह्यं । आहुः । तत् । अयं । केतः । हृदः । आ । वि । चष्टे । शुनःशेपः । यं । अह्वत् । गृभीतः । सः । अस्मान् । राजा । वरुणः । मुमोक्तु ॥ १२ ॥ शुनःशेपः । हि । अह्वत् । गृभीतः । त्रिषु । आदित्यं । द्रुऽपदेषु । बद्धः । अव । एनं । राजा । वरुणः । ससृज्यात् । विद्वान् । अदब्धः । वि । मुमोक्तु । पाशान् ॥ १३ ॥ अव । ते । हेळः । वरुण । नमःऽभिः । अव । यज्ञेभिः । ईमहे । हविःऽभिः । क्षयन् । अस्मभ्यं । असुर । प्रचेत इति प्रऽचेतः । राजन् । एनांसि । शिश्रथः । कृतानि ॥ १४ ॥ उत् । उत्ऽतमं । वरुण । पाशं । अस्मत् । अव । अधमं । वि । मध्यमं । श्रथय । अथ । वयं । आदित्य । व्रते । तव । अनागसः । अदितये । स्याम ॥ १५ ॥ २५ ॥

यत् । चित् । हि । ते । विशः । यथा । प्र । देव । वरुण । व्रतं । मिनीमसि । द्यविऽद्यवि ॥ १ ॥

मा नो॑ व॒धाय॑ ह॒त्नवे॑ जिही॒ळा॒नस्य॑ रीरधः ।
मा हृ॑णा॒नस्य॑ म॒न्यवे॑ ॥२॥

वि मृ॑ळी॒काय॑ ते॒ मनो॑ र॒थीरश्वं॒ न संदि॑तम् ।
गी॒र्भिर्व॑रुण सीमहि ॥३॥

परा॒ हि मे॒ विम॑न्यवः॒ पत॑न्ति॒ वस्य॑इष्टये ।
वयो॒ न व॑स॒तीरुप॑ ॥ ४ ॥

क॒दा क्ष॑त्र॒श्रियं॒ नर॒मा वरु॑णं करामहे ।
मृ॒ळी॒काया॑रु॒चक्ष॑सम् ॥ ५ ॥ १६ ॥

तदित्स॑मा॒नमा॑शाते॒ वेन॑न्ता॒ न प्र यु॑च्छतः ।
धृ॒तव्र॑ताय दा॒शुषे॑ ॥ ६ ॥

वेदा॒ यो वी॒नां प॒दम॒न्तरि॑क्षेण॒ पत॑ताम् ।
वेद॑ ना॒वः स॑मु॒द्रियः॑ ॥ ७ ॥

वेद॑ मा॒सो धृ॒तव्र॑तो॒ द्वाद॑श प्र॒जाव॑तः ।
वेदा॒ य उ॑प॒जाय॑ते ॥ ८ ॥

मा । नः॒ । व॒धाय॑ । ह॒त्नवे॑ । जि॒ही॒ळा॒नस्य॑ । री॒र॒धः॒ । मा । हृ॒णा॒नस्य॑ । म॒न्यवे॑ ॥ २ ॥ वि । मृ॒ळी॒काय॑ । ते॒ । मनः॑ । र॒थीः । अश्वं॑ । न । संऽदि॑तं । गीः॒ऽभिः । व॒रु॒ण॒ । सी॒म॒हि॒ ॥३॥ परा॑ । हि । मे॒ । विऽम॑न्यवः । पतं॑ति । वस्यः॑ऽइष्टये । वयः॑ । न । व॒स॒तीः । उप॑ ॥ ४ ॥ क॒दा । क्ष॒त्र॒ऽश्रियं॑ । नरं॑ । आ । वरु॑णं । क॒रा॒म॒हे॒ । मृ॒ळी॒काय॑ । उ॒रु॒ऽचक्ष॑सं ॥ ५ ॥ १६ ॥ तत् । इत् । स॒मानं॑ । आ॒शा॒ते॒ इति॑ । वेनं॑ता । न । प्र । यु॒च्छ॒तः॒ । धृ॒तऽव्र॑ताय । दा॒शुषे॑ ॥६॥ वेद॑ । यः । वी॒नां । प॒दं । अं॒तरि॑क्षेण । पत॑तां । वेद॑ । ना॒वः । स॒मु॒द्रियः॑ ॥७॥ वेद॑ । मा॒सः । धृ॒तऽव्र॑तः । द्वाद॑श । प्र॒जाऽव॑तः । वेद॑ । यः । उ॒प॒ऽजाय॑ते ॥८॥

वेद॒ वात॑स्य वर्त॒निमु॒रोर्ऋ॒ष्वस्य॑ बृह॒तः ।
वेदा॒ ये अ॒ध्यास॑ते ॥ ९ ॥

नि ष॑साद धृ॒तव्र॑तो॒ वरु॑णः प॒स्त्या॒स्वा ।
साम्रा॑ज्याय सु॒क्रतुः॑ ॥ १० ॥ १७ ॥

अतो॒ विश्वा॒न्यद्भु॑ता चिकि॒त्वाँ अ॒भि प॑श्यति ।
कृता॑नि॒ या च॒ कर्त्वा॑ ॥ ११ ॥

स नो॑ वि॒श्वाहा॑ सु॒क्रतु॑रादि॒त्यः सु॒पथा॑ करत् ।
प्र ण॒ आयूं॑षि तारिषत् ॥१२॥

बिभ्र॑द्द्रा॒पिं हि॑र॒ण्यय॒ं वरु॑णो वस्त नि॒र्णिज॑म् ।
परि॒ स्पशो॒ नि षे॑दिरे ॥१३॥

न यं दिप्स॑न्ति दि॒प्सवो॒ न द्रुह्वा॑णो॒ जना॑नाम् ।
न दे॒वम॒भिमा॑तयः ॥ १४ ॥

उ॒त यो मानु॑षे॒ष्वा यश॑श्च॒क्रे अ॒साम्या ।
अ॒स्माक॑मु॒दरे॒ष्वा ॥१५॥ १८॥

वेद॑ । वात॑स्य । व॒र्त॒निम् । उ॒रोः । ऋ॒ष्वस्य॑ । बृ॒ह॒तः । वेद॑ । ये । अ॒धि॒ऽआस॑ते ॥९॥ नि । स॒सा॒द॒ । धृ॒तऽव्र॑तः । वरु॑णः । प॒स्त्या॑सु । आ । साम्ऽरा॑ज्याय । सु॒ऽक्रतुः॑ ॥१०॥१७॥ अतः॑ । विश्वा॑नि । अद्भु॑ता । चि॒कि॒त्वान् । अ॒भि । प॒श्य॒ति॒ । कृता॑नि । या । च॒ । कर्त्वा॑ ॥११॥ सः । नः॒ । वि॒श्वाहा॑ । सु॒ऽक्रतुः॑ । आ॒दि॒त्यः । सु॒ऽपथा॑ । क॒र॒त् । प्र । नः॒ । आयूं॑षि । ता॒रि॒ष॒त् ॥१२॥ बिभ्र॑त् । द्रा॒पिम् । हि॒र॒ण्यय॑म् । वरु॑णः । व॒स्त॒ । निः॒ऽनिज॑म् । परि॑ । स्पशः॑ । नि । से॒दि॒रे॒ ॥ १३ ॥ न । यम् । दिप्स॑न्ति । दि॒प्सवः॑ । न । द्रुह्वा॑णः । जना॑नाम् । न । दे॒वम् । अ॒भिऽमा॑तयः ॥१४॥ उ॒त । यः । मानु॑षेषु । आ । यशः॑ । च॒क्रे । असा॑मि । आ । अ॒स्माक॑म् । उ॒दरे॑षु । आ ॥ १५ ॥ १८ ॥

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु ।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥ १६ ॥

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् ।
होतेव क्षदसे प्रियम् ॥१७॥

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि ।
एता जुषत मे गिरः ॥ १८ ॥

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय ।
त्वामवस्युरा चके ॥ १९ ॥

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि ।
स यामनि प्रति श्रुधि ॥ २० ॥

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत ।
अवाधमानि जीवसे ॥ २१ ॥ १९ ॥

॥ २६ ॥ १-१० शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ८, ९ आर्ची उष्णिक् । २, ६, निचृद्गायत्री । ३ प्रतिष्ठा गायत्री । ४, १० गायत्री । ५, ७ विराड् गायत्री ॥ स्वरः—१, ८, ९ ऋषभः । २, ६, ३, ४, १०, ५, ७ षड्जः ॥

परा । मे । यंति । धीतयः । गावः । न । गव्यूतीः । अनु । इच्छंतीः । उरुऽचक्षसं ॥१६॥ सं । नु । वोचावहै । पुनः । यतः । मे । मधु । आऽभृतं । होताऽइव । क्षदसे । प्रियं ॥१७॥ दर्शं । नु । विश्वऽदर्शतं । दर्शं । रथं । अधि । क्षमि । एताः । जुषत । मे । गिरः ॥१८॥ इमं । मे । वरुण । श्रुधि । हवं । अद्य । च । मृळय । त्वां । अवस्युः । आ । चके ॥ १९ ॥ त्वं । विश्वस्य । मेधिर । दिवः । च । ग्मः । च । राजसि । सः । यामनि । प्रति । श्रुधि ॥२०॥ उत् । उत्ऽतमं । मुमुग्धि । नः । वि । पाशं । मध्यमं । चृत । अव । अधमानि । जीवसे ॥ २१ ॥ १९ ॥

(२६) वसिष्वा हि मियेध्य वस्त्राण्यूर्जां पते।

सेमं नो अध्वरं यज ॥ १ ॥

नि नो होता वरेण्यः सदा यविष्ठ मन्मभिः।

अग्ने दिवित्मता वचः ॥ २ ॥

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये।

सखा सख्ये वरेण्यः ॥ ३ ॥

आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा।

सीदन्तु मनुषो यथा ॥ ४ ॥

पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च।

इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥ ५ ॥ २० ॥

यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे।

त्वे इद्धूयते हविः ॥ ६ ॥

प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः।

प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ७ ॥

वसिष्व। हि। मियेध्य। वस्त्राणि। ऊर्जाम्। पते। सः। इमम्। नः। अध्वरम्। यज ॥ १ ॥ नि। नः। होता। वरेण्यः। सदा। यविष्ठ। मन्मऽभिः। अग्ने। दिवित्मता। वचः ॥ २ ॥ आ। हि। स्म। सूनवे। पिता। आपिः। यजति। आपये। सखा। सख्ये। वरेण्यः ॥ ३ ॥ आ। नः। बर्हिः। रिशादसः। वरुणः। मित्रः। अर्यमा। सीदन्तु। मनुषः। यथा ॥ ४ ॥ पूर्व्य। होतरिति। अस्य। नः। मन्दस्व। सख्यस्य। च। इमाः। ऊं इति। सु। श्रुधि। गिरः ॥ ५ ॥ २० ॥ यत्। चित्। हि। शश्वता। तना। देवम्ऽदेवम्। यजामहे। त्वे इति। इत्। हूयते। हविः ॥ ६ ॥ प्रियः। नः। अस्तु। विश्पतिः। होता। मन्द्रः। वरेण्यः। प्रियाः। सुऽअग्नयः। वयम् ॥ ७ ॥

स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः ।
स्वग्नयो मनामहे ॥ ८ ॥

अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम् ।
मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ ९ ॥

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।
चनो धाः सहसो यहो ॥ १० ॥ २१ ॥

॥ २७ ॥ १–१३ शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ देवता—१–१२ अग्निः । १३ विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१—१२ गायत्री । १३ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१–१२ षड्जः । १३ धैवतः ॥

(२७) अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥

स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥ ३ ॥

सुऽअग्नयः । हि । वार्यं । देवासः । दधिरे । च । नः । सुऽअग्नयः । मनामहे ॥ ८ ॥ अथ । नः । उभयेषां । अमृत । मर्त्यानां । मिथः । सन्तु । प्रऽशस्तयः ॥ ९ ॥ विश्वेभिः । अग्ने । अग्निऽभिः । इमं । यज्ञं । इदं । वचः । चनः । धाः । सहसः । यहो इति ॥ १० ॥ २१ ॥

अश्वं । न । त्वा । वारऽवन्तं । वन्दध्यै । अग्निं । नमःऽभिः । सम्ऽराजन्तं । अध्वराणां ॥ १ ॥ सः । घ । नः । सूनुः । शवसा । पृथुऽप्रगामा । सुऽशेवः । मीढ्वान् । अस्माकं । बभूयात् ॥ २ ॥ सः । नः । दूरात् । च । आसात् । च । नि । मर्त्यात् । अघऽयोः । पाहि । सदं । इत् । विश्वऽआयुः ॥ ३ ॥

इमम् ऊ षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् ।

अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ४ ॥

आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।

शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ५ ॥ २२ ॥

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ ।

सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ ६ ॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।

स यन्ता शश्वतीरिषः ॥ ७ ॥

नकिरस्य सहन्त्य पर्येता कयस्य चित् ।

वाजो अस्ति श्रवाय्यः ॥ ८ ॥

स वाजं विश्वचर्षणिरर्वद्भिरस्तु तरुता ।

विप्रेभिरस्तु सनिता ॥ ९ ॥

जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय ।

स्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ १० ॥ २३ ॥

इमं । ऊं इति । सु । त्वं । अस्माकं । सनिं । गायत्रं । नव्यांसं । अग्ने । देवेषु । प्र । वोचः ॥ ४ ॥
आ । नः । भज । परमेषु । आ । वाजेषु । मध्यमेषु । शिक्ष । वस्वः । अंतमस्य ॥ ५ ॥ २२ ॥
विऽभक्ता । असि । चित्रभानो इति चित्रऽभानो । सिंधोः । ऊर्मौ । उपाके । आ ।
सद्यः । दाशुषे । क्षरसि ॥ ६ ॥ यं । अग्ने । पृत्ऽसु । मर्त्यं । अवाः । वाजेषु । यं ।
जुनाः । सः । यंता । शश्वतीः । इषः ॥ ७ ॥ नकिः । अस्य । सहंत्य । परिऽएता ।
कयस्य । चित् । वाजः । अस्ति । श्रवाय्यः ॥ ८ ॥ सः । वाजं । विश्वऽचर्षणिः । अर्वत्ऽभिः ।
अस्तु । तरुता । विप्रेभिः । अस्तु । सनिता ॥ ९ ॥ जराऽबोध । तत् । विविड्ढि । विशेऽविशे
यज्ञियाय । स्तोमं । रुद्राय । दृशीकं ॥ १० ॥ २३ ॥

स नो महाँ अनिमानो धूमकेतुः पुरुश्चन्द्रः ।
धिये वाजाय हिन्वतु ॥ ११ ॥
स रेवाँ इव विश्पतिर्दैव्यः केतुः शृणोतु नः ।
उक्थैरग्निर्बृहद्भानुः ॥ १२ ॥
नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नम आशिनेभ्यः ।
यजाम देवान्यदि शक्नवाम मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि देवाः ॥ १३ ॥ २४ ॥

॥ २८ ॥ १-९ शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ इन्द्रयज्ञसोमा देवताः ॥ छन्दः-१-६ अनुष्टुप् । ७-९ गायत्री ॥ स्वरः—१-६ गान्धारः ७-९ षड्जः ॥

(२८) यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ १ ॥
यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ २ ॥

सः । नः । महान् । अनिऽमानः । धूमऽकेतुः । पुरुऽचन्द्रः । धिये । वाजाय । हिन्वतु ॥ ११ ॥ सः । रेवान्ऽइव । विश्पतिः । दैव्यः । केतुः । शृणोतु । नः । उक्थैः । अग्निः । बृहत्ऽभानुः ॥ १२ ॥ नमः । महत्ऽभ्यः । नमः । अर्भकेभ्यः । नमः । युवऽभ्यः । नमः । आशिनेभ्यः । यजाम । देवान् । यदि । शक्नवाम । मा । ज्यायसः । शंसम् । आ । वृक्षि । देवाः ॥ १३ ॥ २४ ॥

यत्र । ग्रावा । पृथुऽबुध्नः । ऊर्ध्वः । भवति । सोतवे । उलूखलऽसुतानाम् । अव । इत् । ऊँ इति । इन्द्र । जल्गुलः ॥ १ ॥ यत्र । द्वौऽइव । जघना । अधिऽसवन्या । कृता । उलूखलऽसुतानाम् । अव । इत् । ऊँ इति । इन्द्र । जल्गुलः ॥ २ ॥

यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ३ ॥

यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन्यमितवा इव ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥४॥

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे ।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥ ५ ॥ २५ ॥

उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित् ।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६ ॥

आयजी वाजसातमा ता ह्युच्चा विजर्भृतः ।
हरी इवान्धांसि बप्सता ॥ ७ ॥

ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः ।
इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥ ८ ॥

यत्र । नारी । अपऽच्यवं । उपऽच्यवं । च । शिक्षते । उलूखलऽसुतानां । अव । इत् । ऊं इति । इंद्र । जल्गुलः ॥३॥ यत्र । मंथां । विऽबध्नते । रश्मीन् । यमितवैऽइव । उलूखलऽसुतानां । अव । इत् । ऊं इति । इंद्र । जल्गुलः ॥ ४ ॥ यत् । चित् । हि । त्वं । गृहेऽगृहे । उलूखलक । युज्यसे । इह । द्युमत्ऽतमं । वद । जयतांऽइव । दुंदुभिः ॥५॥२५॥ उत । स्म । ते । वनस्पते । वातः । वि । वाति । अग्रं । इत् । अथो इति । इंद्राय । पातवे । सुनु । सोमं । उलूखल ॥ ६ ॥ आयजी इत्याऽयजी । वाजऽसातमा । ता । हि । उच्चा । विऽजर्भृतः । हरी इवेति हरीऽइव । अंधांसि । बप्सता ॥ ७ ॥ ता । नः । अद्य । वनस्पती इति । ऋष्वौ । ऋष्वेभिः । सोतृऽभिः । इंद्राय । मधुऽमत् । सुतं ॥ ८ ॥

उच्छिष्टं चम्वोर्भर सोमं पवित्र आ सृज ।

नि धेहि गोरधि त्वचि ॥ ९ ॥२६॥

॥ २९ ॥ १-७ शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ पङ्क्तिश्छन्दः ॥ पञ्चमः स्वरः ॥

(२०) यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥

शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥

नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ३ ॥

ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः ।

आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ४ ॥

उत् । शिष्टं । चम्वोः । भर । सोमं । पवित्रे । आ । सृज । नि । धेहि । गोः । अधि । त्वचि ॥ ९ ॥ २६ ॥

यत् । चित् । हि । सत्य । सोमऽपाः । अनाशस्ताःऽइव । स्मसि । आ । तु । नः । इंद्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ १ ॥ शिप्रिन् । वाजानां । पते । शचीऽवः । तव । दंसना । आ । तु । नः इंद्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ २ ॥ नि । स्वापय । मिथुऽदृशा । सस्तां । अबुध्यमाने इति । आ । तु । नः । इंद्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ ३ ॥ ससंतु । त्याः । अरातयः । बोधंतु । शूर । रातयः । आ । तु । नः । इंद्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ ४ ॥

समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ५ ॥
पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ ६ ॥
सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम् ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७॥२७॥

॥ ३० ॥ १-२२ शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ देवता—१-१६ इन्द्रः । १७-१९ अश्विनौ । २०-२२ उषाः ॥ छन्दः—१—१०, १२-१५, १७-२२ गायत्री । ११ पादनिचृद्गायत्री । १६ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—२२ षड्जः । १६ धैवतश्च ॥

(३०) आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम् ।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः ॥ १ ॥

सं । इंद्र । गर्दभं । मृण । नुवंतं । पापया । अमुया । आ । तु । नः । इंद्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ ५ ॥ पताति । कुण्डृणाच्या । दूरं । वातः । वनात् । अधि । आ । तु । नः । इंद्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ ६ ॥ सर्वं । परिऽक्रोशं । जहि । जंभय । कृकदाश्वं । आ । तु । नः । इंद्र । शंसय । गोषु । अश्वेषु । शुभ्रिषु । सहस्रेषु । तुविऽमघ ॥ ७ ॥ २७ ॥

आ । वः । इंद्रं । क्रिविं । यथा । वाजऽयंतः । शतऽक्रतुं । मंहिष्ठं । सिंचे । इंदुऽभिः ॥ १ ॥

शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम् ।
एदु निम्नं न रीयते ॥ २ ॥

सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे ।
समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् ।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ४ ॥

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते ।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥ ५ ॥ २८ ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो ।
समन्येषु ब्रवावहै ॥ ६ ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥

आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ८ ॥

शतं । वा । यः । शुचीनां । सहस्रं । वा । सम्ऽआशिरं । आ । इत् । ऊं इति । निम्नं । न । रीयते ॥ २ ॥ सं । यत् । मदाय । शुष्मिणे । एना । हि । अस्य । उदरे । समुद्रः । न । व्यचः । दधे ॥३॥ अयं । ऊं इति । ते । सं । अतसि । कपोतःऽइव । गर्भऽधिं । वचः । तत् । चित् । नः । ओहसे ॥ ४ ॥ स्तोत्रं । राधानां । पते । गिर्वाहः । वीर । यस्य । ते । विऽभूतिः । अस्तु । सूनृता ॥५॥ २८ ॥ ऊर्ध्वः । तिष्ठ । नः । ऊतये । अस्मिन् । वाजे । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । सं । अन्येषु । ब्रवावहै ॥ ६ ॥ योगेऽयोगे । तवःऽतरं । वाजेऽवाजे । हवामहे । सखायः । इंद्रं । ऊतये ॥ ७ ॥ आ । घ । गमत् । यदि । श्रवत् । सहस्रिणीभिः । ऊतिऽभिः । वाजेभिः । उप । नः । हवं ॥ ८ ॥

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥

तं त्वा वयं विश्ववारा शास्महे पुरुहूत ।
सखे वसो जरितृभ्यः ॥ १० ॥ २९॥

अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम् ।
सखे वज्रिन्त्सखीनाम् ॥ ११ ॥

तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन्तथा कृणु ।
यथा त उश्मसीष्टये ॥ १ २ ॥

रेवतीर्नः सधमाद इंद्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १ ३ ॥

आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।
ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ १४ ॥

अनु । प्रत्नस्य । ओकसः । हुवे । तुविऽप्रतिं । नरं । यं । ते । पूर्वं । पिता । हुवे ॥ ९ ॥ तं । त्वा । वयं । विश्वऽवार । आ । शास्महे । पुरुऽहूत । सखे । वसो इति । जरितृऽभ्यः ॥१०॥२९॥ अस्माकं । शिप्रिणीनां । सोमऽपाः । सोमऽपाव्नां । सखे । वज्रिन् । सखीनां ॥११॥ तथा । तत् । अस्तु । सोमऽपाः । सखे । वज्रिन् । तथा । कृणु । यथा । ते । उश्मसि । इष्टये ॥१२॥ रेवतीः । नः । सधऽमादे । इंद्रे । संतु । तुविऽवाजाः । क्षुऽमंतः । याभिः । मदेम ॥१३॥ आ । घ । त्वाऽवान् । त्मना । आप्तः । स्तोतृऽभ्यः । धृष्णो इति । इयानः । ऋणोः । अक्षं । न । चक्र्योः ॥ १४ ॥

आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥ ३० ॥

शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि ।
स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥१६॥

आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया ।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः ।
समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥

न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः ।
परि द्यामन्यदीयते ॥ १९ ॥

कस्त उषः कधप्रिये भुजे मर्तो अमर्त्ये ।
कं नक्षसे विभावरि ॥ २० ॥

आ । यत् । दुवः । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । आ । कामं । जरितॄणां । ऋणोः । अक्षं । न । शचीभिः ॥१५॥३०॥ शश्वत् । इन्द्रः । पोप्रुथत्ऽभिः । जिगाय । नानदत्ऽभिः । शाश्वसत्ऽभिः । धनानि । सः । नः । हिरण्यऽरथं । दंसनाऽवान् । सः । नः । सनिता । सनये । सः । नः । अदात् ॥ १६ ॥ आ । अश्विनौ । अश्वऽवत्या । इषा । यातं । शवीरया । गोऽमत् । दस्रा । हिरण्यऽवत् ॥ १७ ॥ समानऽयोजनः । हि । वां । रथः । दस्रौ । अमर्त्यः । समुद्रे । अश्विना । ईयते ॥१८॥ नि । अघ्न्यस्य । मूर्धनि । चक्रं । रथस्य । येमथुः । परि । द्यां । अन्यत् । ईयते ॥१९॥ कः । ते । उषः । कधऽप्रिये । भुजे । मर्तः । अमर्त्ये । कं । नक्षसे । विभाऽवरि ॥२०॥

वयं हि ते अमन्मह्यान्तादा पराकात् ।
अश्वे न चित्रे अरुषि ॥ २१ ॥
त्वं त्येभिरा गहि वाजेभिर्दुहितर्दिवः ।
अस्मे रयिं नि धारय ॥२२॥ ३१ ॥६ ॥

॥ सप्तमोऽनुवाकः ॥

॥ ३१ ॥ १–१८ हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः १–७, ९–१५, १७ जगती । ८, १६, १८ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः १–७, ९–१५, १७ निषादः । ८, १६, १८ धैवतः ॥

(३१) त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा ।
तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ १ ॥
त्वमग्ने प्रथमो अङ्गिरस्तमः कविर्देवानां परि भूषसि व्रतम् ।
विभुर्विश्वस्मै भुवनाय मेधिरो द्विमाता शयुः कतिधा चिदायवे ॥ २ ॥

वयं । हि । ते । अमन्महि । आ । अंतात् । आ । पराकात् । अश्वे । न । चित्रे । अरुषि ॥ २१ ॥ त्वं । त्येभिः । आ । गहि । वाजेभिः । दुहितः । दिवः । अस्मे इति । रयिं । नि । धारय ॥ २२ ॥ ३१ ॥ ६ ॥

॥ सप्तमोऽनुवाकः ॥

(त्वं । अग्ने । प्रथमः । अंगिराः । ऋषिः ।) देवः । देवानां । अभवः । शिवः । सखा । तव । व्रते । कवयः । विद्मनाऽअंपसः । अजायंत । मरुतः । भ्राजत्ऽऋष्टयः ।
॥१॥ त्वं । अग्ने । प्रथमः । अंगिरःऽतमः । कविः । देवानां । परि । भूषसि । व्रतं ।
विऽभुः । विश्वस्मै । भुवनाय । मेधिरः । द्विऽमाता । शयुः । कतिधा । चित् ।
आयवे ॥ २ ॥

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो मा॑त॒रिश्व॑न आ॒विर्भ॑व सुक्रतू॒या वि॒वस्व॑ते ।
अरे॑जेतां॒ रोद॑सी होतृ॒वूर्येऽस॑घ्नोर्भा॒रमय॑जो म॒हो व॑सो ॥ ३ ॥
त्वम॑ग्ने॒ मन॑वे॒ द्याम॑वाशयः पुरू॒रव॑से सु॒कृते॑ सु॒कृत्त॑रः ।
श्वा॒त्रेण॒ यत्पि॒त्रोर्मुच्य॑से॒ पर्या त्वा॒ पूर्व॑मनय॒न्नाप॑रं॒ पुनः॑ ॥ ४ ॥
त्वम॑ग्ने वृष॒भः पु॑ष्टि॒वर्ध॑न॒ उद्य॑तस्रुचे भवसि श्र॒वाय्यः॑ ।
य आहु॑तिं॒ परि॒ वेदा॒ वष॑ट्कृति॒मेका॑यु॒रग्रे॒ विश॑ आ॒विवा॑ससि ॥५॥३२॥
त्वम॑ग्ने वृजि॒नव॑र्तनिं॒ नरं॒ सक्म॑न्पिपर्षि वि॒दथे॑ विचर्षणे ।
यः शूर॑साता॒ परि॑तक्म्ये॒ धने॑ द॒भ्रेभि॑श्चि॒त्समृ॑ता॒ हंसि॒ भूय॑सः ॥ ६ ॥
त्वं तम॑ग्ने अमृत॒त्व उ॑त्त॒मे मर्तं॑ दधासि॒ श्रव॑से दि॒वेदि॑वे ।
यस्ता॑तृषा॒ण उ॒भया॑य॒ जन्म॑ने॒ मयः॑ कृ॒णोषि॒ प्रय॒ आ च॑ सू॒रये॑ ॥ ७ ॥

त्वं । अ॒ग्ने॒ । प्र॒थ॒मः । मा॒त॒रिश्व॑ने । आ॒विः । भ॒व॒ । सु॒क्र॒तु॒ऽया । वि॒वस्व॑ते । अरे॑जेतां । रोद॑सी॒ इति॑ । हो॒तृ॒ऽवूर्ये॑ । अस॑घ्नोः । भा॒रं । अय॑जः । म॒हः । व॒सो॒ इति॑ ॥३॥ त्वं । अ॒ग्ने॒ । मन॑वे । द्यां । अ॒वा॒श॒यः॒ । पु॒रू॒रव॑से । सु॒ऽकृते॑ । सु॒कृत्ऽत॑रः । श्वा॒त्रेण॑ । यत् । पि॒त्रोः । मुच्य॑से । परि॑ । आ । त्वा॒ । पूर्वं॑ । अ॒न॒य॒न् । आ । अप॑रं । पुन॒रिति॑ । ४॥ त्वं । अ॒ग्ने॒ । वृ॒ष॒भः । पु॒ष्टि॒ऽवर्ध॑नः । उद्य॑तःऽस्रुचे । भ॒व॒सि॒ । श्र॒वाय्यः॑ । यः । आऽहु॑तिं । परि॑ । वेद॑ । वष॑ट्ऽकृतिं । एक॑ऽआयुः । अग्रे॑ । विशः॑ । आ॒ऽविवा॑ससि ॥५॥३२॥ त्वं । अ॒ग्ने॒ । वृ॒जि॒नऽव॑र्तनिं । नरं॑ । सक्म॑न् । पि॒प॒र्षि॒ । वि॒दथे॑ । वि॒ऽच॒र्ष॒णे॒ । यः । शूर॑ऽसाता । परि॑ऽतक्म्ये । धने॑ । द॒भ्रेभिः॑ । चि॒त् । सम्ऽऋ॑ता । हंसि॑ । भूय॑सः ॥ ६ ॥ त्वं । तं । अ॒ग्ने॒ । अ॒मृ॒त॒ऽत्वे । उ॒त्ऽत॒मे । मर्तं॑ । द॒धा॒सि॒ । श्रव॑से । दि॒वेऽदि॑वे । यः । त॒तृ॒षा॒णः । उ॒भया॑य । जन्म॑ने । मयः॑ । कृ॒णोषि॑ । प्रयः॑ । आ । च॒ । सू॒रये॑ ॥ ७ ॥

त्वं नो अग्ने सनये धनानां यशसं कारुं कृणुहि स्तवानः ।
ऋध्याम कर्मापसा नवेन देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ ८ ॥

त्वं नो अग्ने पित्रोरुपस्थ आ देवो देवेष्वनवद्य जागृविः ।
तनूकृद्बोधि प्रमतिश्च कारवे त्वं कल्याण वसु विश्वमोपिषे ॥ ९ ॥

त्वमग्ने प्रमतिस्त्वं पितासि नस्त्वं वयस्कृत्तव जामयो वयम् ।
सं त्वा रायः शतिनः सं सहस्रिणः सुवीरं यन्ति व्रतपामदाभ्य ॥१०॥३३॥

त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्य विश्पतिम् ।
इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते ॥ ११ ॥

त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ॥ १२ ॥

त्वं । नः । अग्ने । सनये । धनानां । यशसं । कारुं । कृणुहि । स्तवानः । ऋध्याम । कर्म । अपसा । नवेन । देवैः । द्यावापृथिवी इति । प्र । अवतं । नः ॥ ८ ॥ त्वं । नः । अग्ने । पित्रोः । उपऽस्थे । आ । देवः । देवेषु । अनवद्य । जागृविः । तनूऽकृत् । बोधि । प्रऽमतिः । च । कारवे । त्वं । कल्याण । वसु । विश्वं । आ । उपिषे ॥ ९ ॥ त्वं । अग्ने । प्रऽमतिः । त्वं । पिता । असि । नः । त्वं । वयःऽकृत् । तव । जामयः । वयं । सं । त्वा । रायः । शतिनः । सं । सहस्रिणः । सुऽवीरं । यंति । व्रतऽपां । अदाभ्य ॥ १० ॥ ३३ ॥ त्वां । अग्ने । प्रथमं । आयुं । आयवे । देवाः । अकृण्वन् । नहुषस्य । विश्पतिं । इळां । अकृण्वन् । मनुषस्य । शासनीं । पितुः । यत् । पुत्रः । ममकस्य । जायते ॥११॥ त्वं । नः । अग्ने । तव । देव । पायुऽभिः । मघोनः । रक्ष । तन्वः । च । वंद्य । त्राता । तोकस्य । तनये । गवां । असि । अनिऽमेषं । रक्षमाणः । तव । व्रते ।

त्वमग्ने यज्यवे पायुरन्तरोऽनिषङ्गाय चतुरक्ष इध्यसे ।
यो रातहव्योऽवृकाय धायसे कीरेश्चिन्मन्त्रं मनसा वनोषि तम् ॥१३॥

त्वमग्न उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद्रेक्णः परमं वनोषि तत् ।
आध्रस्य चित्प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्र दिशो विदुष्टरः ॥१४॥

त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः ॥१५॥३४॥

इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात् ।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम् ॥ १६ ॥

मनुष्वदग्ने अङ्गिरस्वदङ्गिरो ययातिवत्सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्यं जनमा सादय बर्हिषि यक्षि च प्रियम् ॥१७॥

त्वं । अग्ने । यज्यवे । पायुः । अंतरः । अनिषंगाय । चतुःऽअक्षः । इध्यसे । यः । रातऽहव्यः । अवृकाय । धायसे । कीरेः । चित् । मंत्रं । मनसा । वनोषि । तं ॥१३॥ त्वं । अग्ने । उरुऽशंसाय । वाघते । स्पार्हं । यत् । रेक्णः । परमं । वनोषि । तत् । आध्रस्य । चित् । प्रऽमतिः । उच्यसे । पिता । प्र । पाकं । शास्सि । प्र । दिशः । विदुःऽतरः ॥१४॥ त्वं । अग्ने । प्रयतऽदक्षिणं । नरं । वर्मऽइव । स्यूतं । परि । पासि । विश्वतः । स्वादुऽक्षद्मा । यः । वसतौ । स्योनऽकृत् । जीवऽयाजं । यजते । सः । उपऽमा । दिवः ॥१५॥३४॥ इमां । अग्ने । शरणिं । मीमृषः । नः । इमं । अध्वानं । यं । अगाम । दूरात् । आपिः । पिता । प्रऽमतिः । सोम्यानां । भृमिः । असि । ऋषिऽकृत् । मर्त्यानां ॥ १६ ॥ मनुष्वत् । अग्ने । अंगिरस्वत् । अंगिरः । ययातिऽवत् । सदने । पूर्वऽवत् । शुचे । अच्छ । याहि । आ । वह । दैव्यं । जनं । आ । सादय । बर्हिषि । यक्षि । च । प्रियं ॥ १७ ॥

एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा ।
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या ॥१८॥३५॥

॥ ३२ ॥ १–१५ हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ इंद्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छंदः ॥ धैवतः स्वरः ॥

(३२) इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री ।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥ १ ॥
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ २ ॥
वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आ सायकं मघवादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥ ३ ॥
यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥ ४ ॥

एतेन । अग्ने । ब्रह्मणा । ववृधस्व । शक्ती । वा । यत । ते । चकृम । विदा । वा । उत । प्र । नेषि । अभि । वस्यः । अस्मान् । सं । नः । सृज । सुऽमत्या । वाजऽवत्या ॥ १८ ॥ ३५ ॥

इंद्रस्य । नु । वीर्याणि । प्र । वोचं । यानि । चकार । प्रथमानि । वज्री । अहन् । अहिं । अनु । अपः । ततर्द । प्र । वक्षणाः । अभिनत । पर्वतानां ॥ १ ॥ अहन् । अहिं । पर्वते । शिश्रियाणं । त्वष्टा । अस्मै । वज्रं । स्वर्यं । ततक्ष । वाश्राःऽइव । धेनवः । स्यंदमानाः । अंजः । समुद्रं । अव । जग्मुः । आपः ॥ २ ॥ वृषऽयमाणः । अवृणीत । सोमं । त्रिऽकद्रुकेषु । अपिबत । सुतस्य । आ । सायकं । मघऽवा । अदत्त । वज्रं । अहन् । एनं । प्रथमऽजां । अहीनां ॥ ३ ॥ यत । इंद्र । अहन् । प्रथमऽजां । अहीनां । आत । मायिनां । अमिनाः । प्र । उत । मायाः । आत । सूर्यं । जनयन् । द्यां । उषसं । तादीत्ना । शत्रुं । न । किल । विवित्से ॥४॥

अहन्वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥५॥३६॥

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम् ।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान ।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥ ७ ॥

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः ।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव ॥ ८ ॥

नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार ।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥

अहन् । वृत्रं । वृत्रऽतरं । विऽअंसं । इंद्रः । वज्रेण । महता । वधेन । स्कंधांसिऽइव । कुलिशेन । विऽवृक्णा । अहिः । शयते । उपऽपृक् । पृथिव्याः ॥५॥३६॥ अयोद्धाऽइव । दुःऽमदः । आ । हि । जुह्वे । महाऽवीरं । तुविऽबाधं । ऋजीषं । न । अतारीत् । अस्य । संऽऋतिं । वधानां । सं । रुजानाः । पिपिषे । इंद्रऽशत्रुः ॥६॥ अपात् । अहस्तः । अपृतन्यत । इंद्रं । आ । अस्य । वज्रं । अधि । सानौ । जघान । वृष्णः । वध्रिः । प्रतिऽमानं । बुभूषन् । पुरुऽत्रा । वृत्रः । अशयत् । विऽअस्तः ॥ ७ ॥ नदं । न । भिन्नं । अमुया । शयानं । मनः । रुहाणाः । अति । यंति । आपः । याः । चित् । वृत्रः । महिना । परिऽअतिष्ठत् । तासां । अहिः । पत्सुतःऽशीः । बभूव ॥ ८ ॥ नीचाऽवयाः । अभवत् । वृत्रऽपुत्रा । इंद्रः । अस्याः । अव । वधः । जभार । उत्ऽतरा । सूः । अधरः । पुत्रः । आसीत् । दानुः । शये । सहऽवत्सा । न । धेनुः ॥ ९ ॥

दुसरा अध्याय.

सूक्त २०.

ऋषि—मेधातिथि कण्व । देवता ऋभु ।

जीवनमरण के बंधनों से जिन देवों¹ का छुटकारा नहीं हुआ उनके लिये यह स्तुति विद्वान उपासकों ने स्वमुख से गाई थी । इसके योग से उत्कृष्ट वैभव की प्राप्ति होती है ।　　१

आज्ञा होते ही अपने आप रथ में जुड़ जानेवाले दोनो अश्व देवताओंने अपनी कल्पना से इन्द्रके लिये निर्मित किये, जिन्होंने अपने अद्भुत कृत्यों से यज्ञों में अपने को सन्मान का पात्र बनाया.　　२

जिन्होंने अश्वी देवताओं के लिये सर्वत्र विचरनेवाला सुखकारक रथ बनाया और जिन्होंने दूध देनेवाली गौ को भी उत्पन्न किया.　　३

इन ऋभुओं के लिये जो प्रार्थना की जाती है वह निःसंशय सफल होती है । उनकी वृत्ति बड़ी सरल है । उन्होंने अपने सामर्थ्य से मातापिता को पुनः तरुण बनाया ।　　४

१ मूल मन्त्रमें यह शब्द एकवचनही है । परन्तु यहां बहुवचन का उपयोग करना चाहिये । २ जन्मने ॥
३ शमीभिः ॥
४ परिज्मानम् ॥
५ विष्टी ॥

मरुद्गण से मंडित इन्द्र और राजश्री से विभूषित आदित्य के पास ऋभु तुम्हारे लिये गये हैं। वे मूर्तिमान आनंद हैं। ५ (१)

इसके अतिरिक्त त्वष्टा देवता के बताये प्रसिद्ध चमसे के पुनः चार चमसे इन्होंने बनाये। ६

आप ऐसे पराक्रमी हैं, इस लिये अपना उत्तम आशीर्वाद और इक्कीस प्रकार के रत्न हम भक्तों में से प्रत्येक को दीजिये। ७

अन्य देवताओं को जैसा यज्ञ का भाग मिलता है वैसा ही इन्होंने अपने लिये भी प्राप्त किया हुआ है। यह श्रेष्ठ है। इन्होंने यज्ञ हवि को स्वीकार किया। ८ (२

सूक्त २१.

ऋषि मेधातिथि काण्व । देव [illegible] इन्द्र, अग्नि । [illegible]

इन्द्र और अग्नि इन दोनों को मैं यहां बुलाता हूं। उन्हीं की स्तुति करने की हमारी इच्छा है। वे सोमरस का प्राशन करें। उनको सोमरस भाता है। १

हे मनुष्य, यज्ञ में इन्द्र और अग्नि का स्तवन कर। उनको स्तुतियों से अलंकृत कर। गानों में उनका गायन कर। २

१ सदासः ।
२ एकमेकम् ।
३ अभजन्त ॥
४ उश्मसि ।
५ शुम्भत ॥

मित्र के गौरव[1] के लिये मैं सोमपानार्थ सोमप्रिय इन्द्र और अग्नि का पाचारण करता हूं । ३

तैयार करके रखे हुए हवि के पास मैं उन उग्र परन्तु उदार देवताओं को बुलाता हूं । वह इन्द्र और अग्नि यहां पधारें । ४

हे सर्वश्रेष्ठ इन्द्राग्नि देव आप सर्व लोकसमुदाय का रक्षण करनेवाले हैं । राक्षसों का शासन कीजिये । दुष्ट निःसन्तान हों । ५

चैतन्य–तेज से अतिशय उज्ज्वल स्थान में विराज कर हे इन्द्राग्निदेव, आप अपने सुप्रसिद्ध सत्यत्व का ध्यान रखें और हमको सौख्य अर्पण करें । ६ (३)

सूक्त २२.

ऋषि मेधातिथि काण्व । देवता १–४ अश्वि । ५–८ सविता । ९–१० अग्नि । ११ देवी । १२ इन्द्राणी वरुणानी, अग्नायी । १३–१४ द्यावा, पृथ्वी । १६ विष्णु अथवा देव । १७–२१ विष्णु ।

प्रातःकाल में रथ जोड़कर सिद्ध होनेवाले अश्वी देवताओं के पास जाकर उनको जताओ । वे सोमरस का प्राशन करने के लिये यहां पधारें । १

जिनका रथ उत्कृष्ट है, जो महारथी योद्धाओं में श्रेष्ठ हैं और जो द्युलोक पर्यन्त जाते हैं, ऐसे दोनो अश्वि देवों का मैं पाचारण करता हूं । २

१ प्रशस्तये ॥
२ सन्ता ॥
३ सदसस्पती ॥
४ प्रचेतुन पदं ॥
५ रुजा ॥
६ हवामहे ॥

आपके रथ के चाबुक की ध्वनि सुनते ही यज्ञकर्ताओं में आपके सन्मानार्थ मधुर सोमरस तैयार करनेकी उतावली पड़ जाती है और सत्य तत्व का मनोहर लाभ होने की सबको आशा होने लगती है। उसके योग से हमारे यज्ञ में सुखसमृद्धि की धारा प्रवाहित कीजिये। ३

हे अश्विन, सोमरस अर्पण करनेवाले जिस भक्त के घर अपने रथ द्वारा जानेके लिये जब आप तैयार हो जाते हैं तो वह घर आपके लिये कुछ भी दूर नहीं है। ४

स्वर्ण की भांति कान्तिमान हाथवाले सविता देवता का आमन्त्रण मैं अपने संरक्षण के लिये करता हूं। सविता देवता परम पद के ज्ञाता हैं। ५ । ४ ।

जल में से अवतीर्ण होनेवाले सविता देवता की स्तुति अपने संरक्षण के लिये करो। उन्हीकी आज्ञा हमको मान्य है। ६

सविता देवता को हम भक्तिपूर्वक बुलाते हैं। सब मनुष्योंपर उनकी दृष्टि रहती है। यह आश्चर्यकारक और मन को आल्हादित करनेवाली सम्पत्ति सबको बांटते हैं। ७

आओ मित्रो, बैठो: क्या हमको सविता की स्तुति नहीं करना है? वह दानी हैं। मनोरम ऐश्वर्य को शोभायुक्त करते हैं। ८

हे अग्निदेव, सन्तोषपूर्वक यहां आनेके लिये तैयार बैठी हुई देवपत्नी तथा त्वष्टा देवता को सोमपानार्थ लेकर यहां आइये। ९

---

१ मिमिक्षतम ॥
२ सोमिनः ॥
३ वत्ता ॥
४ उश्मसि ॥
५ राधसः ॥
६ राधांसि ॥
७ उशतीः ॥

होत्रा, भारती, वरूत्री और धिषणा इन अत्यन्त तरुण देवस्त्रियों को, हे अग्नि-देव, हमारे संरक्षण के लिये यहां ले आइये। १० (५)

वीरपत्नी के मार्ग में कहीं भी विघ्न न पड़े, वह हमारे पास आकर हमको कृपा, सौख्य और आनंद की प्राप्ति करावें। ११

अपने क्षेमके लिये हम इन्द्राणी, वरुणानी और अग्नायी को सोमपानार्थ बुलाते हैं। १२

मही, द्यौ और पृथ्वी हमारे यज्ञ पर सुखसमृद्धि की धारा प्रवाहित करें। वह हमारी भरपूर उन्नति करें। १३

उनके घृत परिपूर्ण दुग्ध की प्रशंसा गंधर्वों के लोक में विद्वान पुरुष अपने स्तोत्रों द्वारा करते हैं। १४

हे पृथ्वी आप हम पर सन्तुष्ट हों। आप किसी का नाश नहीं होने देतीं आपमें सबका समावेश होता है। हमको अतिशय सौख्य प्रदान कीजिये। १५ (६)

पृथ्वी के सप्त प्रदेशों सहित समस्त जग में विष्णु ने जहां जहां आक्रमण किया, देवगण उन स्थानों परसे हमारी रक्षा करें। १६

---

१ रना: ॥
२ सचन्ताम् ॥
३ स्वस्तये ॥
४ भरीमभिः ॥
५ रिहन्ति ॥
६ स्योना ॥
७ अतः ॥

विष्णु ने सब स्थानों पर आक्रमण किया। उन्होंने तीन पग धरे। उनके पदरज में ही सब व्याप्त हो गये। १७

अजेय और जगत् संरक्षक विष्णु ने उन स्थानों में धर्म नियम स्थापित करके तीन पग से आक्रमण किया। १८

जिन अलौकिक पराक्रमी कृत्यों के योग से विष्णु ने जगत में अखिल कर्म अवलोकन किये उन कृत्यों पर तनिक दृष्टि डालो। विष्णु इन्द्र का सहायता और मित्र है। १९

ज्ञाता लोक विष्णु के परम पद का सदा निरीक्षण करते रहते हैं। ऐसे समय आकाश की ओर टक टकी लगी रहने की भांति उनकी दृष्टि विस्तीर्ण होती है। २०

सदा जागकर परम भक्ति से विष्णु के परम पद का स्तवन करनेवाले बुद्धिमान पुरुष सर्वत्र उसको प्रसिद्ध करते हैं। २१ (७)

---

१ सम्‌ढुम ॥

२ अदाभ्यः ॥

३ पश्यतो ॥

४ दिवीव ॥

५ विपन्यवः ॥

सूक्त २३.

ऋषि मेधातिथि काण्व । देवता १ वायु । २, ३ इंद्र वायु । ४, ५ मित्र, वरुण । ७-९ मरुत्वान् । १०-१२ विश्वेदेवा । १३-१५ पूषा । १६-२२ आप । २३, २४ अग्नि

यह सोम तीव्र हैं । आप आइये । दही मिलाकर इनको तैयार करके रखा है हे वायुदेव, इनको चखिये वे आपहीके वास्ते रखे हुए हैं । १

इस सोमरसका प्राशन करनेके लिये मैं इन्द्र और वायुका आव्हान करता हूं । ये दोनो द्युलोक पर्यन्त चल जा सकते हैं । २

विद्वानोंने अपने संरक्षणार्थ इन्द्र और वायु का ही पाचारण किया। मन की गति-की भांति इनकी गति भी शीघ्र है । उनके हजारो नेत्र हैं । वे सर्व बुद्धिमता के अधिपति हैं । ३

हम मित्र और वरुणको सोमपानार्थ निमंत्रित करते हैं । वे बडे ज्ञानी हैं और पवित्र कार्योंमें अपने सामर्थ्य का उपयोग करते हैं । ४

नीति मार्गसे नीति नियमनका ज्ञान वृद्धिंगत करनेवाले, तेजके अधिष्ठाता मित्र वरुणको मैं हवि अर्पण करता हूं । ५ (८)

१ आशीर्वन्तः ॥
२ दिविस्पृशा ॥
३ [illegible]जुवा ॥
४ पूतदक्षसा ॥
५ ज्योतिष्पती ॥

हमारा रक्षण करने के जितने मार्ग है, उन सबमें मित्र हमारी रक्षा करें और वरुणभी हमारे संरक्षक हो। वे दोनों हमको बहुत सुखी करें. ६

इंद्रको मरुद्देवो सहित हम सोमपानार्थ बुलाते हैं। हमारे पास आकर उनको सन्तोष हो। ७

हे इन्द्रको प्रमुख रखनेवाले मरुद्देव, आप पूषाके स्नेही हैं। आप सर्व हमारी पुकारको सुनिये। ८

हे अति उदार देव, अपने मित्र इन्द्रके पराक्रमकी सहायता लेकर वृत्रका वध कीजिये। वह अभद्रभाषी हमारा स्वामी न हो। ९

हम सोमपानार्थ सब मरुद्देवो का निमंत्रण करते हैं। वास्तवमें वे पृश्नीके पुत्र बडे उग्र हैं। १० (९.)

विजय पाकर आये हुए वीरोंकी भांति मरुद्देवो की गर्जना बडे जोरसे सुन पडती हैं। हे शूर जिस मार्गमें हमारा कल्याण है उसका अवलम्बन कीजिये। ११

विद्युत्-लताके प्रचंड हास्यमें से अवतीर्ण होनेवाले मरुद्देव हमारी रक्षा करें। वे हमको सुखी रखे। १२

---

१ करताम् ॥
२ मरुत्वन्तम॥
३ विश्वे ॥॥
४ दुःशंसः ॥
५ पृश्निमातरः ॥
६ पायना ॥
७ हस्कारात् ॥

हे अत्यंत देदीप्यमान पूषन् चित्रविचित्र रंगके मयूरपंखोंसे सुसज्जित आकाशके *बालकको भटके हुए बछडेकी भांति ढूंढकर ले आइये। १३

रंगबरंगे मयूरपंखोंसे सुसज्जित, परंतु गुहामें छिपाये जानेके कारण अदृष्ट, ऐसे हमारे राजा पुनः देदीप्यमान पूषणसे मिले। १४

जिस तरह कृषक बैलोंके योगसे धानको उत्पन्न करके घर ले आता है, उसी तरह यह पूषण छ ऋतुओंको सोमरस पानार्थ हमारे पास ले आवे। १५ (१०)

अपने जलोंको माधुर्यसे परिपूरित करके भाविक यज्ञ कर्ताओंकी ये प्रेममयी माताएं अपने मार्गोंसे बहती है। १६

जो सूर्यके पास है, अथवा सूर्य जिनके समीप है, वह सब यज्ञको यशस्वी करें। १७

जहां हमारे धेनु जल पीते हैं उन जलदेवताओंका मैं आमंत्रण करता हूं इन नदीयोंको हवि अर्पण करना योग्य है। १८

---

* आकाशका बालक कौन है यह मूलमें स्पष्ट रीतिसे लिखा हुआ नहीं है।

१ धरुणम् ॥

२ अपगूळ्हम् ॥

३ अनुसेषिधत् ॥

४ जायय: ॥ यह ऋचा नदीके विषयमें है।

५ हिन्वन्ति ॥

६ कर्त्वम् ॥

जल के बीच में अमृत है. जल के बीच में औषधिके गुण है, जल का स्तवन करनेके लिये हे देव शीघ्रता कीजिये,   १६

सोमने हमको कहा है कि, जल के अंदर सब औषधियां वास करती है, और अग्निदेव सब लोगों का कल्याणकर्ता है । जल सब रोगों का नाश करनेवाला है ।   २० (११)

हे जलदेवताओ, हमारा शरीर प्रतिदिन स्वस्थ रहनेके लिये तथा हमको सूर्यका दर्शन होनेके लिये आप हमको अत्युत्कृष्ट औषध दीजिये ।   २१

हे जलदेवताओ हमारे शरीरमें यदि कोई दुष्टता वास करती हो, अथवा किसीके साथ हमने शत्रुत्व किया हो, अथवा किसीके साथ खराब वर्ताव किया हो, अथवा असत्य भाषण किया हो तो सब हमारे दुष्ट आचरण का नाश करो ।   २२

हे जल देवताओ, मैं अभी आपके पास आया हूं और मैं आपके मधुर रसमें सम्मीलित हुआ हूं; हे जलमें रहनेवाले अग्निदेव, आप यहां पधारिये और हमारा मिलाप तेज के साथ कर दीजिये.   २३

हे अग्निदेव, आप तेज, सन्तति और आयुष्य हमको दीजिये ; वैसा करनेमें हमारा वैभव परमेश्वर को मालुम होगा, और ऋषी तथा इंद्र को भी मालुम पडेगा । २४(१२)

---

१ वाजिनः ॥
२ विश्वशम्भुवम् ॥
३ वरूथम् ॥
४ शपे ॥
५ पयस्वान् ॥
६ संसृज ॥

अनुवाक ६.

सूक्त २४.

ऋषि—~~शुनःशेप आजीगर्ति~~; कृत्रिम, विश्वामित्र, देवरात,। देवता—१ प्रजापति, २ अग्नि, ३—५ सविता अथवा भग, ६—१५ वरुण

वह कौन सा सुन्दर नाम है—सर्व अमर देवताओं में वह किस देवता का मनो-[1] हर नाम है—जिसके हम स्मरण करें ? अदिती से पुनः मेरी कौन भेंट करायेगा, जिससे मैं जनक और जननी को देख सकूं। १

सब अमर देवताओं में प्रमुख जो अग्निदेव है उन्हीके मोहक नामका मैं स्मरण[2] करता हूं। वह अदिति से पुनः मेरी भेंट करायेंगे, जिससे मैं जनक और जननी को देख सकूंगा। २

हे हमारा निरन्तर रक्षण करनेवाले सविता—देवता आप समस्त स्पृहणीय वस्तु-ओं के स्वामी है। हम अपने योग्य सम्पत्ति का भाग आपसे मांगते हैं। ३

इसी प्रकार वह प्रशंसनीय भाग भी आपके हाथमें है, जिसकी निंदा करनेकी किसीमें भी शक्ति नहीं है और जिसे दुष्ट जनभी कोई आघात नहीं पहुंचा सकते। ४

ऐसा भाग्य आपही की कृपा से हमको प्राप्त हो और सम्पत्ति के सर्वोच्च शिखर पर हम सुस्थिर होकर बढ़ें। सब मनुष्यों को भाग्य बांटनेवाले आप ही है। ५ (१३)

---

१ मनामहे ॥
२ अमृतानाम् ॥
३ ईमहे ॥
४ शशमानः ॥
५ उदशेम ॥

ये अत्यंत ऊंचे उडनेवाले पक्षी, ये एक निमिष भी स्थिर न रहनेवाले जल या जो वायुका दर्प हरण करते है वे सब ही आपके पराक्रम, बल अथवा कोप की बराबरी नहीं कर सकते। ६

भला, आकाश का भी कोई आधार है ? पर वहांभी पवित्र पराक्रम करनेवाले राजा वरुण वृक्षका स्तंभ खड़ाकर देते है। खडा करते ही वृक्षकी जड ऊपर और शाखाएं नीचे हो गयीं। इन्हींके आन्दर आवश्य ही हमारा निवासस्थान होगा। ७

सूर्यको दैनिक प्रवास करनेके लिये वरुणराजाने उनका मार्ग विस्तृत किया। जहां पग धरनेका स्थान नहीं था वहां उन्होंने चलने योग्य पंथ बना दिया। कटु वचन बोलनेवालों का वरुण अत्यंत तिरस्कार करते हैं। ८

हे राजा वरुण, आपकी औषधियां सैंकडों क्या, सहस्रावधि हैं। आपकी कृपा असीम और अविच्छिन्न हो। हमारे नाशकारक दुःखोंको मिटाकर उनका उन्मूलन कीजिये और हमारे हाथमे जो पाप हुए हो उनको दूर कीजिये. ९

जो नक्षत्र आकाशमें चमकते हैं वे केवल रात्रिमें दृष्टिगोचर होते है। दिनमें वे कहां चले जाते हैं। वरुण की आज्ञा कभी उल्लंघन नहीं हो सकती। चन्द्रमा रात को प्रकाशमान होकर उदय होता है. १० (१४)

१ हिंसन्ति ॥
२ स्तूपम ॥ यह जगत्की वृक्षका वर्णन होगा।
३ हृदयाविधः ॥
४ प्रमुमुग्धि ॥
५ विचाकशत् ॥

इसी कारणसे स्तुति स्तोत्रों द्वारा आपको नमस्कार करनेके लिये मैं आपके पास आता हूं, इसी कारणसे याग करनेवाले भक्त हवि अर्पण करके आपसे याचना करते हैं। हे वरुण, कोप न करके यहां जागृत अवस्थामें रहिये और हमारी आयु कम न कीजिये। आपकी कीर्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है! ११

रात-दिन सब लोक मुझसे यही बात कहते हैं और मेरे हृदयका भी ऐसाही स्पष्ट उपदेश है कि बंधनोंमें जकडे हुए शुनःशेपने भक्तिपूर्वक जिन वरुण राजाका आह्वान किया था वही हमको बंधनोंसे मुक्त करेंगे। १२

तीन स्तम्भोंसे[3] जकडकर बांधे हुए शुनःशेपने आदित्यकी पुकार की। भला, ज्ञानवान वरुण-राजाको कौन हानि पहुंचा सकता है? वही शुनःशेपके बंधन शिथिल करें और उसको मुक्त करें। १३

नमस्कारसे, यागसे और हविसे आपका कोप शांत करनेके लिये हे वरुण, हम आपकी प्रार्थना करते हैं। आप शत्रुका नाश करनेवाले हो, और अत्यंत ज्ञानवान हो, आप हमारे लिये यहां वास कीजिये, हे वरुण आप हमारे पातकका नाश कीजिये. १४

हे वरुण आप हमारे ऊपरके बाजूपर तथा पीछेके बाजूपर बंधे हुए पाश शिथिल करो; हे आदित्य, आपका आश्रय करके हम पापसे मुक्त होकर अदिती का आश्रय करनेके लिये योग्य होवे। १५ (१५)

---

१ अहेळमानः ॥
२ अक्रतु ॥
३ द्रुपदेषु ॥
४ शिश्रथः ॥
५ अनागसः ॥

सूक्त २५.

ऋषि–शुनःशेप आजीगर्ति । देवता–वरुण ॥

हे वरुण, हम आपकी प्रजा हैं; यदि आपकी किसी आज्ञा का हम उल्लंघन करते हो, १

उसके बदले आप कोपायमान होकर यदि वधका दंड नियत किया हो, तो कृपया वह दण्ड हमको मत दीजिये। हमपर मन्तप्त होकर हमको अपने क्रोध की वली न दीजिये। २

हे वरुण, जैसे कोई महारथी घोडे को डोरीसे मजबूत बांध रखता है (जिससें घोडा भाग न जाय) वैसेही आपसे सुखप्राप्ति की इच्छासे अनेक स्तोत्रों द्वारा अपना मन आपके चरणोंमें बद्ध रखते हैं। ३

जिस प्रकार पक्षी अपने निवास स्थान को लौटते हैं उसी तरह हमारी सब उच्चतम मनः कल्पनाएँ सुखलाभार्थ आपकी ओर दौडती हैं। ४

पराक्रम ही जिनका अलंकार है ऐसे सर्व साक्षी वरुण को अपनी सुख समृद्धि के लिये भला हम कब ले आयेंगे। ५ (१६)

वास्तवमें ये दोनों ही अत्यन्त कृपा से उसका स्तोत्र एकसाथ स्वीकार करते हैं। आज्ञाधारक यागकर्ताओं को वे कभी निराश नहीं करते। ६

जो अन्तरिक्षमें परिश्रम करनेवाले पक्षीओं के मार्ग जानता है, जो समुद्र निवासी होनेके कारण जहाजों के पथ से परिचित है; ७

---

१ व्रतम् ॥
२ हत्नवे ॥
३ संदितम् ॥
४ विमन्यवः ॥
५ क्षत्रश्रियम् ॥
६ समानम् ॥ ये दोनों याने मित्र और वरुण।
७ वीनाम् ॥

जो अपनी आज्ञा का पालन सबसे कराते है जिनको बारह मासका—जिनमें प्रत्येकमें मनुष्योंकी लगातार वृद्धि होती है—ज्ञान है, और जिसको अधिक मास की भी खबर रहती है; ८

जो सर्व संचारी उत्तुंगगामी सामर्थ्यवान वायु की गति जानते हैं और वायुलोक के ऊपर जो कुछ हैं उससे भी जो परिचित है; ९

ऐसे सामर्थ्यवान वरुण, अपनी आज्ञाओं का पालन कराते हुए अपने साम्राज्य को जगप्रसिद्ध करनेके लिये मर्त्र लोकोंमें आकर विराजमान हुए हैं। १० (१७)

इस लिये वह ज्ञानवान देव उन सब आश्चर्यों का—जो उसने उत्पन्न किये हैं और जो वैसे ही अभी और उत्पन्न करनेवाला है- अवलोकन करता रहता है। ११

वह सब सामर्थ्यवान आदित्य हमको सुपथपर ले जावे । वह हमारी आयुष्य की वृद्धि करें। १२

अपना स्वर्णमय कवच पहनकर उन्होंने देदीप्यमान वस्त्र धारण किये हैं। चारों ओर उनके दूत बैठे हैं। १३

इनको दुष्ट लोक डरा नहीं सकते, मनुष्य जाति के शत्रु इनको भयभीत नहीं कर सकते, पापी खल भी इनको भयचकित करनेमें समर्थ नहीं है। १४

---

१ उपजायते ॥
२ ऋष्वस्य ॥
३ पस्त्या ॥
४ चिकित्वान् ॥
५ तविषत् ॥
६ द्रापिं ॥
७ द्रिप्सवः ॥

इसके अतिरिक्त उनका वैभव मनुष्य जाति भरमें प्रसिद्ध है । आधा तौहा वैभव प्रसिद्ध हो सो बात नहीं पूर्ण रूपसे प्रसिद्ध है । यहां क्या, स्वयं अपने शरीरमें इन्होंने कीर्तिप्रद सुन्दर रचना की हुई है । १५ (१८)

गौ जिस प्रकार उत्सुकतासे अपने चारा रखे हुए स्थानको लौटती है वैसे ही इन सर्वदर्शी देवके विषयमें हमारी प्रेमपूरित प्रार्थना पुनः इन्हींके पास जाती है । १६

हमारा मधुर हवि बिलकुल तैयार है । इस लिये अपने परस्पर अब कुछ प्रत्यक्ष भाषण होने दो । यह हवि आपको बहुत प्रिय है । यागकर्ता की भांति आप उसका स्वीकार करते हैं । १७

अपने रूपके कारण सम्पूर्ण विश्वमें जिनकी ख्याति है उनका दर्शन आज हमको प्राप्त हुआ । इस पृथ्वीपर उनका रथ मैंने देखा । हमारी इस स्तुतिका उन्होंने स्वीकार किया है । १८

हे वरुण, हमारी पुकार सुनिये, और हमको सुखमें रखिये । आपकी कृपा हमपर हो, इस इच्छासे हम आपसे याचना करते हैं । १९

हे प्रज्ञाशील देव सम्पूर्ण पृथ्वी और स्वर्गपर आप ही की सत्ता है । इसलिये जाते समय हमको आश्वासन दीजिये । २०

हम चिरकाल पर्यन्त आयुष्यका उपभोग कर सकें, इस लिये हमारे शरीरके ऊपरी भागका पाश शिथिल कीजिये, मध्य और नीचेके भागवाले बंधन भी खोल दीजिये । २१ (१९)

---

१ असामि ॥
२ गव्यूतीः ॥
३ अदर्श ॥
४ अभिश्रमि ॥
५ माचकं ॥
६ यामनि ॥
७ विपाशा ॥

सूक्त २६.

ऋषि–शुनःशेप आजीगर्ति । देवता–अग्नि ॥

हे सामर्थ्याधिपति देव, हे यज्ञार्ह अग्नि, अपने दिव्य वस्त्रोंको धारण कीजिये। और यों विभूषित होकर हमारे यज्ञ को सिद्ध कीजिये। १

हे अत्यन्त तरुण अग्निदेव, हमारा वचन श्रवण कीजिये। आप दिव्य कान्तिसे युक्त हैं। अन्तःकरणपूर्वक किये हुए स्तवन आपही को शोभा देते हैं। आपही हमारे हविको पहुचाते हैं। २

सचमुच वह पुत्रोंके लिये पिता समान है। अग्नि संबंधी मनुष्यों के लिये कुटुम्बी की भांति है और मित्रों के लिये अत्युत्तम मित्र है। ऐसे वह (अग्नि) हमारे यज्ञको सिद्ध करते हैं। ३

जैसे मनुष्य दर्भके आसनपर बैठते हैं, उसी तरह खलोंका नाश करनेवाले वरुण, मित्र और अर्यमा देवभी प्रेमपूर्वक आकर दर्भासनोंपर विराजमान हो। ४

देवताओंको हवि अर्पण करनेवाले हे पुराण पुरुष, हमारे हविसे सन्तुष्ट हो, हमारे प्रेमसे आनंदित हो और हमारी प्रार्थना श्रवण कर। ५ (२०)

जो हवि हम नित्य अलग अलग देवताओं को देते है वह आपही को अर्पण होते हैं। ६

---

१ मियध्य ॥
२ दिवित्मता ॥
३ आपये ॥
४ रिशादसः ॥
५ अधि ॥
६ शश्वता ॥

हम शुभकारक अग्निका पूजन करनेवाले उनको बहुत प्रिय है। उन पर ही हमारा सच्चा प्रेम है। वह प्रेम करने के योग्य है। वह आनंद देनेवाले हैं। वह देवताओं को हवि पहुंचाते हैं। सर्व मानवोंके वह राजा हैं। ७

शुभकारक अग्निसे सरल रखनेवाले देवताओंने अपने लिये अत्यन्त स्पृहणीय वैभव तैयार करके रखा है। हमभी कल्याणकारी अग्निके भक्त हैं, इस लिये उनका चिन्तन करते हैं। ८

और अब हे अमरदेव, यज्ञ के दोनों ओर बैठे हुए हम लोगोंमें परस्पर प्रेम-संभाषण होना चाहिये। ९

सामर्थ्यसे प्रादुर्भूत होनेवाले हे अग्निदेव, अन्य सर्व अग्नियों सहित यहां पधारकर इस यज्ञ और इस स्तोत्रको प्रेमपूर्वक स्वीकार कीजिये। १० (२१)

सूक्त २७.

ऋषि–शुनःशेप आजीगर्ति। देवता–१–१२ अग्नि १३ विश्वदेव॥

कवचं पहनाकर सजाये हुए अश्वकी तरह, अनेक बार वन्दन करके, मुझे आप अपना सन्मान करने दीजिए, आप प्रत्येक यज्ञ में बिराजमान होते रहते हैं। १

यह दाता अपने सामर्थ्य के योगसे अनेक स्थानों में गमन करता है। यह उत्तम सुख देनेवाला है। वह हमारे लिये कृपा की वर्षा करे। २

---

१ विश्पतिः॥
२ दधिरे॥
३ प्रशस्तयः॥
४ विश्वेभिः॥
५ वारवन्तम्॥
६ मीढ्वान्॥

आप सबके प्राण[1] हैं। वे आप, हम चाहे आपके पास हों या दूर हो, पापी मनुष्यों से सदैव हमारी रक्षा कीजिये। ३

हे अग्निदेव! सब कामनाओं को परिपूर्ण करनेवाले ये नवीन स्तोत्र जो हमने गाये[2] हैं उनकी आपने देव-समुदाय में प्रशंसा की है। ४

सर्वोत्कृष्ट और मध्यम श्रेणीका सामर्थ्य प्राप्त होते समय आप हमारे पास रहें[3] और हमें यह भी सिखाइये कि, अन्तिम श्रेणीमें जिस सम्पत्ति की गणना है वह कैसे प्राप्त करना चाहिए। ५ (२२)

अलौकिक कान्तिसे दैदीप्यमान रहनेवाले हे देव! आप सम्पत्ति का विभाग करते हैं। आप कृपा के सागर हैं, अतएव आपकी प्रसाद-लहरों के पास जो भक्त खड़ा रहता है उसके लिए आप तुरन्त ही सम्पत्ति के नद बहाते हैं। ६

सचमुच आप युद्ध में जिस मनुष्य के संरक्षक बनते हैं और जिसको आप शूरता के कामों में प्रेरणा करते हैं उसकी सत्ता शाश्वत संम्पत्ति पर प्रस्थापित होती है। ७

फिर वह चाहे जैसा हो, हे बलशाली देव! उसे कोई रोक नहीं सकता। चारों ओर उसके सामर्थ्य की कीर्ति छा जाती है। ८

यह सर्व संचारी देव हमसे हमारे अश्वों सहित, पराक्रम के कार्य पूर्ण करावे और विद्वान स्तोताओं सहित हमें सम्पत्ति[4] प्रदान करे। ९

---

१ विश्वायुः ॥
२ सनिम् ॥
३ आभज ॥
४ आभक ॥
५ इषः ॥
६ अतिश्रवाय्यः ॥
७ सनिता ॥

स्तवनोंसे जागृत होनेवाले हे देव ! आप यज्ञकर्म से सम्बन्ध रखनेवाले प्रत्येक मनुष्य के लिए कोई ऐसा स्तोत्र चुनकर निकाल दें जो रुद्र को प्रिय हो । १० (२३)

ये अग्निदेव अत्यन्त श्रेष्ठ हैं । इनके गुणों की गणना ही नहीं । धूम्र उनके ध्वजा के ऊपरका चिन्ह है । उनकी कान्ति बहुत विस्तृत है । वे बुद्धिमत्ता और सामर्थ्य प्राप्त करनेमें हमारी योजना करें । ११

किसी वैभवशील राजाकी भांति हमारी स्तुतियों से मोहित होकर वे अग्निदेव हमारी प्रार्थना श्रवण करें । वे मानवों के राजा हैं, वे दिव्य सौन्दर्य की मूर्ति हैं । उनका तेज प्रखर है । १२

श्रेष्ठ व्यक्तियों को मेरा नमस्कार है, छोटों को मेरा नमस्कार है, तरुणों को मेरा नमस्कार है और जो वृद्ध हैं उन्हें भी मेरा नमस्कार है । आइये, यदि हो सके तो हम सब लोग देवताओं के सन्मानार्थ याग करें । हे देवताओ ! जो सब से श्रेष्ठ है उसकी स्तुति करने में मैं कभी न चूकूं । १३ (२४)

सूक्त २८.

ऋषि—शुनःशेप आजीगर्ति । देवता—इन्द्र, यज्ञ, सोम ॥

जो रस सोमवल्लियों से निकालने में बड़ी पेंदीवाली मुसला ऊपर लाना पड़ता है उन, उलूखल में बहनेवाले, सोमरसों को, हे इन्द्र देव, आप उत्सुक होकर स्वीकार करें । १

जिन सोमरसों के लिये, युगुल जंघाओं की भांति परस्पर संलग्न होनेवाले, दो रस—निष्पादक पाषाण तैयार किये जाते हैं, उन, उलूखल में बहनेवाले सोमरसों को, हे इन्द्र महाराज, आप बड़ी उत्सुकता से स्वीकार करें । २

---

१ दर्शीकम् ॥
२ अतिमान: ॥
३ रेवान् ॥
४ आशिनेभ्यः ॥
५ पृथुबुध्नः ॥
६ जल्गुलः ॥

जिसके योग से स्त्री को, हाथ आगे[1]–पीछे कर के मन्थन करनेका पाठ मिलता है उस उलूखल से बहनेवाले सोमरसों का, हे इन्द्र देव, आप बड़े उत्साह से स्वीकार करें। ३

जो सोमरस निकालते समय मानो मथानी (रई) को जलदीसे न दौड़ने देनेही के लिए उसके डोरियां बांधते हैं, उन, उलूखल से बहनेवाले सोमरसों का, हे इन्द्रजी, आप बड़े उत्साह से स्वीकार करें। ४

हे उलूखल प्रत्येक घर में चलते समय तुम ऐसी गम्भीर ध्वनि किया करो जैसे विजयी सेना का सन्मान करने के लिए दुंदुभी गर्जती हो। ५ (२५)

हे उत्तम काष्ठ! यह वायु तुम्हारे सामनेही बह रही है। हे उलूखल इन्द्र को सोमपान मिलने के लिए तुम सोमरस तैयार करो। ६

ये दो यज्ञ–सम्बन्धी उपकरण, जिनके कारण सामर्थ्य का अत्यन्त लाभ होता है, इस प्रकारकी ध्वनि उत्पन्न करते हैं जैसे घास चरते समय घोड़े। ७

अतएव, हे उच्चता से शोभनेवाले काष्ठ के उत्तम उपकरणो, सोम निकालने में निपुण ऋत्विजों की सहायता लेकर, तुम इन्द्र के लिए मधुर सोमरस तयार करो। ८

नीचे गिरे हुए सोमरस को दो चमसों में भरो और पवित्र दर्भों से टपकने के लिए डालो। वृषभ–चर्म पर उसे ला कर रखो। ९ (२६]

---

१ अपच्यवम्–उपेच्यवम् ॥
२ यमित वा ॥
३ उलूखलम् ॥
४ अयामित् ॥
५ बप्सता ॥
६ ऋष्व ॥

सूक्त २९.

ऋषि—शुनःशेप आजीगर्ति । देवता-इन्द्र ।

हे सत्यस्वरूप और अत्यन्त उदार इन्द्र, जब कि हमारा यह हाल है कि कहीं भी हमारा मान नहीं है, तब आप ऐसा करें कि जिससे धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन, और सहस्रो भोग-वस्तु ओं की हमारी श्रेष्ठता शीघ्र ही बढ़े। १

हे सुन्दर मुकुट धारण करनेवाले अत्यन्त उदार इन्द्र, हे सामर्थ्याधिपति, हे पराक्रमी देव, अपनी अद्भुत कृति से ऐसा कीजिए कि जिसमें धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन और सहस्रो भोग—वस्तु ओंकी हमारी श्रेष्ठता शीघ्र ही बढ़े। २

एक दुसरे की ओर बराबर दृष्टि डालनेवाली उन दोनों को निद्रित करिये। ऐसा कीजिए कि जिससे वे जगने न पावें और पड़ी ही रहें। हे अत्यन्त उदार इन्द्र! ऐसा कीजिए कि जिससे धेनु, अश्व उज्ज्वल धन और सहस्रों भोग्य वस्तुओं में हमारी श्रेष्ठता शीघ्र ही बढ़े। ३

वे हमारे शत्रु निद्रित हों, परन्तु हे शूर, हमारे स्नेही अवश्यही जागृत रहें। हे अत्यन्त उदार इन्द्र, ऐसा कीजिए कि धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन, और सहास्रवधि भोग्य वस्तुओं में हमारा सामर्थ्य शीघ्र ही बढ़े। ४

ऐसी अभद्र भाषा बोलनेवाले गधे को मार डालिये। हे अत्यन्त उदार इन्द्र, ऐसा कीजिए कि धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन और सहस्रों भोग्य पदार्थों का हमारा सामर्थ्य शीघ्र ही बढ़े। ५

१ अनाशस्ता ॥
२ तुवीमघ ॥
३ अबुध्यमाने ॥
४ शुभ्रिषु ॥
५ तुवन्तम्॥

वक्रमार्ग से जानेवाली वायुका, बहुत दूरवाले वन से भी आगे, पतन हो । हे अत्यन्त उदार इन्द्र, ऐसा कीजिए कि जिससे धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन और सहस्रो भोग्य पदार्थों में हमारी श्रेष्ठता शीघ्र ही बढ़ जाय । ६

सब शत्रुओं का संहार कीजिए । और हमारा नाश करने के लिये जो कोई ताक[1] बैठा हो उसे मार डालिये । हे अत्यन्त उदार इन्द्र, ऐसा कीजिए कि जिससे धेनु, अश्व, उज्ज्वल धन और सहस्रो भोग के पदार्थों में हमारा सामर्थ्य शीघ्र ही बढ़े । ७ (२७)

सूक्त ३०.

ऋषि शुनःशेप । देवता १-१६ इन्द्र, १७-१९ अश्वि, २०-२२ उषा ॥

जिनका सामर्थ्य शतगुण बड़ा है, और जो तुम्हें प्रिय हैं, ऐसे इन्द्र देव की स्तुति में निमग्न हुए हे ऋत्विजो, जिस प्रकार कोई कुआं पानी से लबालब भर दिया जाय उसी प्रकार मानो हम उन अति उदार इन्द्र को सोमरस से भर देते हैं । १

जिस प्रकार जल ढालू भाग की ओर बहता जाता है उसी प्रकार सोमरस की ओर इन इन्द्र महाराज की स्वाभाविकही प्रवृत्ति होती है—फिर चाहे वे दुग्ध मिश्रित सोम के सहस्र चमसे हों अथवा, जिसमें कुछभी मिश्र नहीं किया ऐसे शुद्ध सोम के सौ ही चमस हों । २

---

१ कृकदाश्वम ॥
२ कृकदाश्वम ॥
३ किर्वि ॥
४ समाशिरां ॥

जो सोमरस सामर्थ्यवान् [illegible] को सन्तुष्ट करता है उस से उनका उदर समुद्र की भांति भरे जाता है । ३

यह सोम आपके लिए तैयार कर रखा है । जिस प्रकार कपोत पक्षी अपने छोटे बच्चों[2] की ओर प्रेम से जाता है उसी प्रकार आप बड़े प्रेम से इस सोम रस की ओर आ रहे हैं । और इसी लिये आप हमारी स्तुति को भी स्वीकार करते हैं । ४

हे इन्द्र, आप सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुओं के स्वामी हैं और स्तुति करने पर आप अपने भक्तों की ओर आते है । हे वीर, हम आपका स्तोत्र गाते[3] हैं, अतएव आपकी ओर से हमें सत्यप्रेम से परिपूर्ण वैभव प्राप्त हो । ५ (२८)

हे अत्यन्त बलशाली इन्द्र, पराक्रम के इस कार्य में हमारी रक्षा करने के लिए आप उठ कर खड़े हो जाइये । अन्यों[4] को छोड़ कर, आइये, हम एक दूसरे से सम्भाषण करें । ६

जब वैभव प्राप्त करलेने का अवसर आता है, अथवा जब जब शूरता के कर्म दिखलाने का मौका आता है तब तब, अपनी संरक्षा के लिए, हम इन्द्र के स्नेह पात्र भक्त, उन अत्यन्त बलाढ्य इन्द्र का आह्वान करते हैं । ७

यदि[6] हमारी स्तुति उन्हें सुन पड़ती है तो अपने हजारों प्रकार के संरक्षा के मार्ग प्रकट करते हुए और अपना सामर्थ्य सब को दिखलाते हुए ये इन्द्र देव हमारी पुकार के अनुरोध से निस्सन्देह यहां प्राप्त होते हैं । ८

---

१ व्यचो दधे ॥

२ गर्भधि ॥

३ गिर्वाहः ॥

४ अन्येषु ॥

५ योगेयोगे ॥

६ यदि श्रवत् ॥

जिन इन्द्र को पहले तुम्हारे पिता ने पुकारा था उन्हीं, अनेक शत्रुओं की भी परवा न करनेवाले, शूर इन्द्र से, अपने पुरातन दिव्य स्थान से यहां आने के लिए, मैं विनती करता हूं। ९

हे हमारे प्रिय इन्द्र, आज हम आपकी स्तुति करते हैं। सम्पूर्ण विश्वमें, आपके सिवाय, प्रेम करने योग्य, कोई नहीं है! अनेक विद्वानों ने आपका स्तवन किया है। जो भक्त आपके स्तोत्र गाते हैं उनके आप मूर्तिमन्त भाग्य ही हैं १० (२६)

हे वज्रधारी इन्द्र, आप हमारे और हमारी सहचारिणियों के हितकर्त्ता हैं। सब सोमरस-प्रिय देवताओं में आपही का सोम पर अत्यन्त प्रेम है। ११

हे वज्रधारी देव, हे हमारे मित्र, आप ऐसा कीजिए—आपकी इच्छा से ऐसा हो—कि हम आपही की कृपा की इच्छा करें। १२

हमारे सहवास में इन्द्रको आनन्द हो और वैभवयुक्त तथा समृद्धि—परिपूर्ण ऐसा अतिशय सामर्थ्य हमें प्राप्त हो कि जिससे हमें हर्ष हो १३

आपको आपही की उपमा देनी चाहिए; आप हमारे आप्त हैं। आपको प्रार्थना करने से, हे शूर देव, आप भक्तोंके लिए (रथचक्रके) अक्षकी तरह दौड़ते रहे हैं। १४

---

१ तुविप्रतिं ॥
२ विश्ववार ॥
३ शिप्रिणीनां ॥
४ दक्षे ॥
५ सधमादे ॥
६ स्वावान ॥

हे अत्यन्त बुद्धिशाली इन्द्र, अपने सेवकों का हव्य ग्रहण करने के लिए और उनकी इच्छाएं परिपूर्ण करने के लिए, आप अपने सब सामर्थ्यों सहित (रथचक्र के) अक्षकी भांति दौड़े है। १९ (३०)

अपने अत्यन्त फड़कनेवाले, ठेहनानेवाले और वेग से श्वासोच्छ्वास करनेवाले अश्वों के योगसे इन्द्र सदैवही सम्पत्ति जीतकर लाते रहे हैं। ऐसे अद्भुत कार्य करनेवाले और हमपर उदारता दिखलानेवाले उन इन्द्रदेवने हमारे वैभव की वृद्धि करनेके लिए हमें सुवर्णरथ दिया है ! १६

+ हे अश्विनो, आप अश्वादिकोंसे परिपूर्ण और कल्याणप्रद सम्पत्ति लेकर आइये। अहो सुन्दर देवताओ, आप हमें जो वैभव दें उसमें धेनु और सुवर्ण का संग्रह भरपूर हो। १७

हे सुन्दर अश्विनो, आप जो अविनाशी रथ दोनों के लिए मिलकर जुटाते हो वह सचमुच समुद्र में भी गमन करता है। १८

आपने अपने रथ का एक चक्र ऐसे पर्वत के मस्तकपर, जो अभेद्य है, भिड़ाया था। दूसरा चक्र द्युलोक के आसपास भ्रमण करता रहता है। १९

+ हे स्तुतिप्रिय, उषे ! हे अमर देवते ! आपके बाहु–बन्धन में किस मानवको स्थान मिलेगा ? हे देदीप्यमान देवी ! किसके लिए आपका आगमन हो रहा है ? २०

---

१ आ-अक्षणोः ॥
२ पोप्रुथद्भिः ॥
३ शवीरया ॥
४ समानयोजनः ॥
५ अघ्न्यस्य ॥
६ मक्षमं ॥

चित्रविचित्र वर्णकी किसी तुरंगी के समान सुशोभित दिखनेवाली हे प्रकाशमान उषादेवते ! हम, दूर अथवा निकट रहते हुए, वास्तव में, आपही का ध्यान करते रहते थे । २१

हे आकाशकन्या उषे, आप अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य सहित इधरके लिए पधारिये, और हमारे लिए वैभव भी लेते आइये । २२ (३१)

अनुवाक ७.

सूक्त ३१.

ऋषि-हिरण्यस्तूप आंगिरस । देवता-अग्नि ॥

हे अग्निदेव ! पहले अंगिराऋषि और देव आप ही हैं । देवताओं के कल्याण-कारक मित्र भी आपही थे । देदीप्यमान शस्त्रों को धारण करनेवाले और ज्ञान-सामर्थ्य युक्त बुद्धिमान मरुद्गण आपही के आज्ञानुसार अवतीर्ण हुए । १

हे अग्निदेव ? सब से पहले और प्रमुख अंगिरा आपही है । आपका ज्ञान अतिशय है । देवताओं की पवित्र आज्ञाओंको आपही सुशोभित करते है । आप सर्व-व्यापी है । आपमें विलक्षण बुद्धिमत्ता है । [illegible] । सचमुच प्राणीमात्र और मनुष्य के हितके लिए आप कितनेही स्थानों में वास करते है । २

---

१ अश्वे ॥

२ दुहितर्दिवः ॥

३ अपसा ॥

४ द्विमाता ॥

हे अग्निदेव, आपही सब के पहले थे। आप अपने सामर्थ्यसहित विवस्वान और मातरिश्वा के लिए प्रकट हो। आप तो मूर्तिमान वैभवही है। होतृस्थान में जब सबने आपकी नियुक्ति की तब आपने वह कार्यभार सहन किया और सब श्रेष्ठ देवताओं को यज्ञ पहुँचाया। उसे देखकर आकाश और सम्पूर्ण पृथ्वी (आश्चर्यसे) कांपने लग गये। ३

हे अग्निदेव, मनुके लिए आपने द्युलोक में प्रवेश किया और सत्कृत्यों से प्रख्यात पुरूरवाके लिए आपने अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किये। जिस समय घर्षण क्रिया से आपके मातापिता की ओर से आपको प्रेरणा होती है उस समय ऋत्विज लोग आपको प्रथम पूर्व ओर और फिर पश्चिम ओर लिये फिरते हैं। ४

हे अग्निदेव, आपको हव्य अर्पण करने के लिए जो मनुष्य यज्ञ–चमस उठता है उसकी सम्पत्ति की आप वृद्धि करते हैं। आप अत्यन्त बलिष्ठ और कीर्तिमान् हैं। अग्ने, इस जगत् में जो आहुति दी जाती है उसका ज्ञान रखनेवाले ऋत्विज को आप सब मे पहले अखंड आयु अर्पण करते हुए इस जगत् में वास करते हैं। ५ (३२)

हे सर्वव्यापी अग्निदेव, जो मनुष्य पापमार्गका अवलम्बन करता है, उसे आप योग्य कर्ममें प्रवृत्त करते है। शूरोंके ही प्राप्त करने योग्य सम्पत्ति के लिए जब युद्ध होने लगता है तब आप थोडेही लोगों के हाथ मे अनेक शत्रुओं को मरवा डालते है। ६

हे अग्निदेव, आप उस मनुष्यकी दिन-प्रति-दिन कीर्ति बढ़ाते है। और उसे उत्तम अविनाशी पद पर आप चढ़ाते है। विद्वान् भक्तके लिए आपका अन्तः करण अत्यन्त उत्कंठित होता है और आप उसे इतनी समृद्धि तथा सौख्य अर्पण करते है कि जितनी उसे दोनों जन्मों के लिए बस होती है। ७

---

१ अरंकेर्ता ॥
२ अवाशय: ॥
३ अवाप्य: ॥
४ ऋतसाता ॥
५ तानूपान: ॥

(~~हे अग्निदेव, हम [illegible] के लिए आपका स्तवन करते है~~,) अतएव आप हमें कल्याणकारी कीर्ति अर्पण कीजिए; नवीन कर्मोंका आचरण कर के हम सांगोपांग आपका भजन कर्म करें। हे द्यावापृथ्वीयो, सब देवताओं सहित आप हमारी रक्षा करें। ८

हे निष्कलंक अग्निदेव, आप सब देवों में श्रेष्ठ है। माता पिता के बिलकुल निकट ही आपका निवास रहता है। आप हमारे लिए जागृत रहे। आप, जो सबके शरीर निर्माण करनेवाले हैं, अपनी भक्ति करनेवाले पर मनमें अत्यन्त प्रेम रखिये और जागरूक रहिये। आप प्रत्यक्ष कल्याण ही है। आप सब प्रकारका द्रव्य सर्वत्र बो रखते है। ९

हे अग्निदेव, आपका अन्तःकरण अत्यन्त दयाशील है। आप हमारे पिता है। हम आपके आस हैं, हे अजित देव, सैकड़ों, प्रायः हजारों सुखों से परिपूर्ण सम्पत्ति, आपकी ओर आपही आप चली आती है। आप अतिशय शूर और अपनी आज्ञाओं का परिपालन करा लेनेवाले है। १० (३३)

हे अग्निदेव, सारे संसारका जीवन आपही पर अवलम्बित है। सबकी आयुर्वृद्धि होने के लिए ही देवताओं ने प्रथम आपको उत्पन्न करके (~~मनुष्य का सेनापति बनाया~~) तथा जिस समय मेरे पिताको पुत्रप्राप्ति हुई उस समय मनुष्य मात्र को सज्ञान करने वाली इला भी आपने उत्पन्न की। ११

हे वन्दनीय अग्निदेव, आप अपनी सर्व संरक्षक शक्तियों के योगसे हमारा, और हमपर उपकार करनेवालोंका, प्रतिपालन कीजिए। आप अपने नियमानुसार, एक निमिष भी न भूलते हुए, जगत् की रक्षा करते हैं। हमारा यह कौटुम्बिक वैभव परम्परा से ऐसाही स्थिर रहने के लिए (~~आप हमारे लड़केबच्चों और गाई बैलों को संभालते रहते है~~)। १२

---

१ सनये ॥
२ ओपिवे ॥
३ अदाभ्य ॥
४ विश्पति ॥
५ पायुभिः ॥

हे अग्निदेव, यार्ग करनेवाले भक्त के आप, बिलकुल हृदय से सहायकारी हैं। और हे चार नेत्रों से विभूषित रहनेवाले देव, जो कभी किसीपर शस्त्र नहीं उठाता उसके लिए आप प्रेमसे उद्दीपित होते हैं। आप सबका पोषण करते हैं, आप के हाथ से किसीका भी नाश नहीं होता। (जो ~~स्तुति कर्त्ता आपको हवि अर्पण करता है वह चाहे जितना गरीब हो, आप उसकी स्तुति को हृदय पूर्वक स्वीकार करते~~ है। १३

हे अग्निदेव जो उपासक आपका अत्यन्त ~~स्तवन करता~~ है उसके लिये आप सब वैभव—वह वैभव जो अत्यन्त स्पृहणीय है,—सिद्ध कर रखते हैं। सब लोग कहते हैं कि आपका भक्त चाहे स्वयं अपना पोषण करने में भी सब प्रकार से असमर्थ हो, तथापि आप अत्यन्त प्रेमसे उसको संभालनेवाले पिताही बन जाते हैं। आपका ज्ञान तो अलौकिक ही है, तथापि आप इतने वत्सल हैं कि छोटे छोटे बच्चों को आप दिशा और उपदिशा सिखाते रहते हैं। १४

जैसे अच्छी तरह सजा हुआ कवच शूरों की रक्षा करता है वैसे ही पवित्र और सदाचारी पुरुष का आप सब प्रकार से परिपालन करते हैं। स्वादिष्ट भोजन तैयार करके जो अपने घरमें (अतिथियों को) सन्तुष्ट करता है और इस प्रकार जो प्राणि मात्र के लिए मानो कुछ अनुष्ठान ही करता है उसे श्रेष्ठता में स्वर्ग की भी उपमा भली लगती है। १५ (३४)

हे अग्निदेव, जिस कुमार्ग से हम दूर तक गये थे उसके लिए-उस पातक के लिये आप हमें क्षमा करें। आप हमारे आप्त, हमारे पिता, सोमरस अर्पण करनेवाले भक्तों के हितकर्त्ता सब के पोषणकरने वाले, और अज्ञ मानवको श्रेष्ठ ऋषि—पदवी तक पहुँचाने वाले है। १६

~~मनु, अंगिरस और ययाति के पास जिस प्रकार आप पहले जाते थे~~ उसी प्रकार हे पवित्र अग्निदेव, हे अंगिरस, आप हमारे सदन की ओर आइये, और दिव्यलोक के सब लोगों को भी साथ लेते आइये। उनको आसन पर बिठाइये और उनका प्रिय हव्य उन्हें अर्पण कीजिए। १७

---

१ यज्यवे ॥
२ स्पार्ह ॥
३ प्रयतदक्षिणं ॥
४ शराणि ॥
५ दैव्यं जनं ॥

(हे अग्निदेव, हमने अपने सामर्थ्य और बुद्धि का उपयोग करके यह जो स्तोत्र बनाया है उसके योग से आप आनन्दित हों और हमें शक्ति तथा उत्तम बुद्धिमत्ता प्रदान करें। हमें अत्यन्त स्पृहणीय वैभव की ओर ले जाने वाले आपही हैं।) १८(३५)

सूक्त ३२.

ऋषि हिरण्यस्तूप आंगिरस । देवता–इन्द्र ॥

मैंने यहां वज्रधारी इन्द्र के पराक्रम प्रेमपूर्वक गाये हैं । अखिल पराक्रम के कर्मों में पहला स्थान इन्हींको देना पड़ेगा । इन्हीं इन्द्रदेव ने अहि का वध किया, उदकों के लिए मार्ग निकाल दिया और पर्वतों के हृदय विदारण किये । १

त्वष्टा देव ने उन्हें वज्र तैयार कर दिया था। (उसे धारण करके) उन्हों ने, पर्वतों में दबाव जमा कर बैठे हुए अहि का वध किया। (उसके साथ) और वत्स के लिए जैसे गौवें रांभती हैं वैसे ही भारी शब्द करते हुए पानी के नद के नद बहने लगे और बड़े वेग से समुद्र में जा मिले। २

शूरता की तेजी में आने पर इन्द्रको सोमकी इच्छा हुई और तीन यज्ञों में उन्हों ने वह पान किया। उन्हीं उदार इन्द्र ने वज्र को अपना आयुध बनाकर सब अहियों में ज्येष्ठ अहि वृत्र का वध किया। ३

हे इन्द्र, जिस समय आपने सब अहियों से ज्येष्ठ अहि का वध किया और कपटकर्मों में प्रवीण रिपुओं के कपट व्यूहों का विध्वंस किया उस समय सूर्य, उषा और द्युलोक को जन्म प्राप्त हुआ और आपका हाथ पकड़नेवाला कोईभी शत्रु आपके लिए नहीं बचा। ४

---

१ अभि–वस्यः ॥
२ वक्षणाः॥
३ वाश्राः॥
४ प्रथमजाम ॥
५ मायिनाम ॥

वृत्र नामका अहि क्रूर अवश्य था, परन्तु वास्तव में उसकी क्रूरता उसके नामसेभी अधिक थी परन्तु इन्द्रने अपने अत्यन्त उग्र वज्रसे उसके बाहु काटकर उसे मार डाला। जिस प्रकार कुल्हाड़ी से किसी वृक्षकी डालें काट डाली जायं उसी प्रकार छिन्न विच्छिन्न होकर मरा हुआ अहि पृथ्वी पर गिर पड़ा। ५ (३६)

इस व्यर्थ अभिमान में आकर, कि हमारा प्रतिस्पर्धी कोई भी नहीं है, अहि ने महापराक्रमी, अजित, और अनेक शत्रुओं के लिए भी भारी इन्द्र का आह्वान किया। परन्तु उनके अत्यन्त उग्र शस्त्रों के सामने वह टिक नहीं सका। पर इन्द्रसे वह इतनी शत्रुता रखता था कि बड़े बड़े दुर्गों को भी उसने बिलकुल चूर चूर कर डाला। ६

हाथ और पैर टूट गये, तथापि अहि इन्द्र से युद्ध करता ही रहा। इन्द्रने उसकी पर्वतप्राय भुजाओं पर अपना वज्र चलाया। निस्सत्व हो जाने पर भी पराक्रमी पुरुष की ऐंठ दिखलानेवाला अहि अस्तव्यस्त हो छार छार होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। ७

पृथ्वीपर फैले हुए किसी महानदकी तरह जब कि वृत्र भूमिपर पड़ा हुआ था तब जलोंके प्रवाह धैर्य से उमड कर उसके शरीर पर से बहने लगे। अपने सामर्थ्य से जिन उदकों को वृत्र ने बन्द कर रखा था उन्हीं के पैरों पर वह मर कर गिर पड़ा! ८

~~वृत्र की माता उसके शरीर पर आड़ी गिर पड़ी~~। इन्द्रने अपना उग्र वज्र उसके पेटके नीचे से चलाया। अर्थात् माता ऊपर पड़ी हुई थी और उसके नीचे उसका पुत्र वृत्र पड़ा हुआ था। इस दशा में वह दानु ऐसी जान पड़ने लगी जैसे कोई धेनु अपने बछड़े को पेटके नीचे लिये हुए हो? ९

---

१ व्यंसम् ॥
२ तुविबाधम् ॥
३ वृष्णः ॥
४ पर्वतःश्रीः ॥
५ नीचावया ॥

हिन्दी, मराठी, गुजराती और अङ्गरेजी चार भाषाओं में अलग अलग प्रसिद्ध होनेवाला

वेदों का भाषांतर।

प्रति मास में ६४ पृष्ठ: ३२ पृष्ठ संहिता [स्वर और पदपाठ सहित]

* * ३२ पृष्ठ भाषान्तर। * *

वर्ष १] सितम्बर १९१२—श्रावण संवत् १९६८ [अंक ३

वार्षिक मूल्य डाकव्ययसहित ४ रु.

सम्पादक।

रामचंद्र विनायक पटवर्धन, बी. ए. एल् एल्. बी.
अच्युत बलवन्त कोल्हटकर, बी. ए. एल् एल्. बी.
दत्तो अप्पाजी तुळजापुरकर, बी. ए. एल् एल्. बी.

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत्।
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।

यास्काचार्य

प्रकाशक—प्राणशंकर अमृतराम दीक्षित.

'श्रुतिबोध' ऑफिस, ४७, कालबादेवी रोड, बम्बई.

Printed by Pranshankar Amritram Dixit for the Proprietor, at the "Subodhini" Press, Bazargate Street, Fort, Bombay.

अंग्रेजी प्रवेश.

अंग्रेजी प्रवेश अथवा संभाषणकी रीतिसे अंग्रेजी सीखनेका नमूना। सीखनेवालोंके लिये बड़ी उपयोगी पुस्तक। इसमें संभाषण रीतिसे अंग्रेजी सीखनेका ढङ्ग अच्छी तरह टिप्पणी देकर दिखलाया गया है।

ज॰ वि॰ ओक एम. ए.
तळेगाव—दाभाडे,
जि॰ पुना.

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥१०॥३७॥
दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥ ११ ॥
अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२॥
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च ।
इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥ १३ ॥
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत् ।
नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥

अतिष्ठंतीनां । अनिऽवेशनानां । काष्ठानां । मध्ये । निऽहितं । शरीरं । वृत्रस्य । निण्यं । वि । चरंति । आपः । दीर्घं । तमः । आ । अशयत् । इंद्रऽशत्रुः ॥ १० ॥ ३७ ॥ दासऽपत्नीः । अहिऽगोपाः । अतिष्ठन् । निऽरुद्धाः । आपः । पणिना । इव । गावः । अपां । बिलं । अपिऽहितं । यत् । आसीत् । वृत्रं । जघन्वान् । अप । तत् । ववार ॥ ११ ॥ अश्व्यः । वारः । अभवः । तत् । इंद्र । सृके । यत् । त्वा । प्रतिऽअहन् । देवः । एकः । अजयः । गाः । अजयः । शूर । सोमं । अव । असृजः । सर्तवे । सप्त । सिंधून् ॥१२॥ न । अस्मै । विऽद्युत् । न । तन्यतुः । सिसेध । न । यां । मिहं । अकिरत् । ह्रादुनिं । च । इंद्रः । च । यत् । युयुधाते इति । अहिः । च । उत । अपरीभ्यः । मघऽवा । वि । जिग्ये ॥१३॥ अहेः । यातारं । कं । अपश्यः । इंद्र । हृदि । यत् । ते । जघ्नुषः । भीः । अगच्छत् । नव । च । यत् । नवतिं । च । स्रवंतीः । श्येनः । न । भीतः । अतरः । रजांसि ॥ १४ ॥

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य च शृङ्गिणो वज्रबाहुः ।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान्न नेमिः परि ता बभूव ॥१५॥३८॥२॥

॥ इति प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ ३३ ॥ १—१५ हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः १, २, ४, ८, ९, १२, १३ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ६, १० त्रिष्टुप् । ५, ७, ११ विराट् त्रिष्टुप् । १४, १५ भुरिक् पंक्तिः ॥ स्वरः— १—१३ धैवतः । १४, १५ पञ्चमः ॥

(३३) एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १ ॥

इंद्रः । यातः । अवऽसितस्य । राजा । शमस्य । च । शृंगिणः । वज्रऽबाहुः । सः । इत् । ऊं इति । राजा । क्षयति । चर्षणीनां । अरान् । न । नेमिः । परि । ता । बभूव ॥ १५ ॥ ३८ ॥ २ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आ । इत । अयाम । उप । गव्यंतः । इंद्रं । अस्माकं । सु । प्रऽमतिं । ववृधाति ।
अनामृणः । कुवित् । आत् । अस्य । रायः । गवां । केतं । परं । आऽवर्जते । नः ॥ १ ॥

उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥ २ ॥
नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि ।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥ ३ ॥
वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥
परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥ १ ॥
अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः ।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥ ६ ॥

उप । इत् । अहं । धनऽदां । अप्रतिऽइतं । जुष्टां । न । श्येनः । वसतिं । पतामि । इंद्रं । नमस्यन् । उपऽमेभिः । अर्कैः । यः । स्तोतृऽभ्यः । हव्यः । अस्ति । यामन् ॥ २ ॥ नि । सर्वऽसेनः । इषुऽधीन् । असक्त । सं । अर्यः । गाः । अजति । यस्य । वष्टि । चोष्कूयमाणः । इंद्र । भूरि । वामं । मा । पणिः । भूः । अस्मत् । अधि । प्रऽवृद्ध ॥ ३ ॥ वधीः । हि । दस्युं । धनिनं । घनेन । एकः । चरन् । उपऽशाकेभिः । इंद्र । धनोः । अधि । विषुणक् । ते । वि । आयन् । अयज्वानः । सनकाः । प्रऽइतिं । ईयुः ॥ ४ ॥ परा । चित् । शीर्षा । ववृजुः । ते । इंद्र । अयज्वानः । यज्वऽभिः । स्पर्धमानाः । प्र । यत् । दिवः । हरिऽवः । स्थातः । उग्र । निः । अव्रतान् । अधमः । रोदस्योः ॥ ५ ॥ १ ॥ अयुयुत्सन् । अनवद्यस्य । सेनां । अयातयंत । क्षितयः । नवऽग्वाः । वृषऽयुधः । न । वध्रयः । निःऽअष्टाः । प्रवत्ऽभिः । इंद्रात् । चितयंतः । आयन् ॥ ६ ॥

त्वमेतान्रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे ।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ७ ॥
चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः ।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात्सूर्येण ॥ ८ ॥
परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम् ।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥ ९ ॥
न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन् ।
युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥१०॥२॥
अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥ ११ ॥

त्वं । एतान् । रुदतः । जक्षतः । च । अयोधयः । रजसः । इंद्र । पारे ।
अव । अदहः । दिवः । आ । दस्युं । उच्चा । प्र । सुन्वतः । स्तुवतः । शंसं ।
आवः ॥ ७ ॥ चक्राणासः । परिऽनहं । पृथिव्याः । हिरण्येन । मणिना । शुंभमानाः ।
न । हिन्वानासः । तितिरुः । ते । इंद्रं । परि । स्पशः । अदधात् । सूर्येण ॥ ८ ॥
परि । यत् । इंद्र । रोदसी इति । उभे इति । अबुभोजीः । महिना । विश्वतः । सीं ।
अमन्यमानान् । अभि । मन्यमानैः । निः । ब्रह्मऽभिः । अधमः । दस्युं । इंद्र ॥ ९ ॥
न । ये । दिवः । पृथिव्याः । अंतं । आपुः । न । मायाभिः । धनऽदां । परिऽअभूवन् ।
युजं । वज्रं । वृषभः । चक्रे । इंद्रः । निः । ज्योतिषा । तमसः । गाः । अदुक्षत् ॥१०॥२॥
अनु । स्वधां । अक्षरन् । आपः । अस्य । अवर्धत । मध्ये । आ । नाव्यानां ।
सध्रीचीनेन । मनसा । तं । इंद्रः । ओजिष्ठेन । हन्मना । अहन् । अभि । द्यून् ॥११॥

न्यविध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन्यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥
अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत् ।
सं वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥
आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥ १४ ॥
आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम् ।
ज्योक्चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥१५॥३॥

नि । अविध्यत् । इलीबिशस्य । दृळ्हा । वि । शृंगिणं । अभिनत् । शुष्णं । इंद्रः । यावत् । तरः । मघऽवन् । यावत् । ओजः । वज्रेण । शत्रुं । अवधीः । पृतन्युं ॥ १२ ॥ अभि । सिध्मः । अजिगात् । अस्य । शत्रून् । वि । तिग्मेन । वृषभेण । पुरः । अभेत् । सं । वज्रेण । असृजत् । वृत्रं । इंद्रः । प्र । स्वां । मतिं । अतिरत् । शाशदानः ॥ १३ ॥ आवः । कुत्सं । इंद्र । यस्मिन् । चाकन् । प्र । आवः । युध्यंतं । वृषभं । दशऽद्युं । शफऽच्युतः । रेणुः । नक्षत । द्यां । उत् । श्वैत्रेयः । नृऽसह्याय । तस्थौ ॥ १४ ॥ आवः । शमं । वृषभं । तुग्र्यासु । क्षेत्रऽजेषे । मघऽवन् । श्वित्र्यं । गां । ज्योक् । चित् । अत्र । तस्थिऽवांसः । अक्रन् । शत्रुऽयतां । अधरा । वेदना । अकः ॥ १५ ॥ ३ ॥

॥ ३४ ॥ १–१२ हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१. ६ विराड् जगती। २. ३. ७, ८ । निचृज्जगती । ५. १०. ११ जगती । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । १२ निचृत त्रिष्टुप् । ९ भुरिक् पंक्तिः ॥ स्वरः—१–३, ५–८. १०,११ निषादः ४. १२. ९ पञ्चमः ॥

(३४) त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना ।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥ १ ॥

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा ॥२॥

समाने अहन्त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥३॥

त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम् ।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ॥ ४ ॥

त्रिः । चित् । नः । अद्य । भवतं । नवेदसा । विऽभुः । वां । यामः । उत । रातिः । अश्विना । युवोः । हि । यंत्रं । हिम्याऽइव । वाससः । अभिऽआयंसेन्या । भवतं । मनीषिऽभिः ॥ १ ॥ त्रयः । पवयः । मधुऽवाहने । रथे । सोमस्य । वेनां । अनु । विश्वे । इत् । विदुः । त्रयः । स्कंभासः । स्कभितासः । आऽरभे । त्रिः । नक्तं । याथः । त्रिः । ऊं इति । अश्विना । दिवा ॥२॥ समाने । अहन् । त्रिः । अवद्यऽगोहना । त्रिः । अद्य । यज्ञं । मधुना । मिमिक्षतं । त्रिः । वाजऽवतीः । इषः । अश्विना । युवं । दोषाः । अस्मभ्यं । उषसः । च । पिन्वतं ॥ ३ ॥ त्रिः । वर्तिः । यातं । त्रिः । अनुऽव्रते । जने । त्रिः । सुप्रऽअव्ये । त्रेधाऽइव । शिक्षतं । त्रिः । नांद्यं । वहतं । अश्विना । युवं । त्रिः । पृक्षः । अस्मे इति । अक्षराऽइव । पिन्वतं ॥४॥

त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः ।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद्रथम् ॥५॥

त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः ।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥६॥४॥

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम् ।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ॥७॥

त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस्त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम् ।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ॥८॥

क्व त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व त्रयो वन्धुरो ये सनीळाः ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः ॥९॥

त्रिः । नः । रयिं । वहतं । अश्विना । युवं । त्रिः । देवऽताता । त्रिः । उत । अवतं । धियः । त्रिः । सौभगऽत्वं । त्रिः । उत । श्रवांसि । नः । त्रिऽस्थं । वां । सूरे । दुहिता । आ । रुहत् । रथं ॥ ५ ॥ त्रिः । नः । अश्विना । दिव्यानि । भेषजा । त्रिः । पार्थिवानि । त्रिः । ऊं इति । दत्तं । अत्ऽभ्यः । ओमानं । शंऽयोः । ममकाय । सूनवे । त्रिऽधातु । शर्म । वहतं । शुभः । पती इति ॥ ६ ॥ ४ ॥ त्रिः । नः । अश्विना । यजता । दिवेऽदिवे । परि । त्रिऽधातु । पृथिवीं । अशायतं । तिस्रः । नासत्या । रथ्या । पराऽवतः । आत्माऽइव । वातः । स्वसराणि । गच्छतं ॥७॥ त्रिः । अश्विना । सिंधुऽभिः । सप्तमातृऽभिः । त्रयः । आऽहावाः । त्रेधा । हविः । कृतं । तिस्रः । पृथिवीः । उपरि । प्रवा । दिवः । नाकं । रक्षेथे इति । द्युऽभिः । अक्तुऽभिः । हितं ॥ ८ ॥ क्व । त्री । चक्रा । त्रिऽवृतः । रथस्य । क्व । त्रयः । वंधुरः । ये । सऽनीळाः । कदा । योगः । वाजिनः । रासभस्य । येन । यज्ञं । नासत्या । उपऽयाथः ॥ ९ ॥

आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः ।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥ १० ॥
आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥११॥
आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम् ।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥१२॥५॥

॥ ३५॥ १—११ हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ देवताः १ अग्निर्मित्रावरुणौ रात्रिः सविता । २—११ सविता ॥ छन्दः—१ विराड् जगती । ९ निचृज्जगती । २, ५, १०, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ६ त्रिष्टुप् । ७, ८ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ९ निषादः । २, ५, १०, ११, ३, ४, ६ धैवतः । ७, ८ पञ्चमः ॥

(३५) ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे ।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये ॥ १ ॥

आ । नासत्या । गच्छतं । हूयते । हविः । मध्वः । पिबतं । मधुऽपेभिः । आसऽभिः । युवोः । हि । पूर्वं । सविता । उषसः । रथं । ऋताय । चित्रं । घृतऽवन्तं । इष्यति ॥१०॥ आ । नासत्या । त्रिऽभिः । एकादशैः । इह । देवेभिः । यातं । मधुऽपेयं । अश्विना । प्र । आयुः । तारिष्टं । निः । रपांसि । मृक्षतं । सेधतं । द्वेषः । भवतं । सचाऽभुवा ॥ ११ ॥ आ । नः । अश्विना । त्रिऽवृता । रथेन । अर्वाञ्चं । रयिं । वहतं । सुऽवीरं । शृण्वन्ता । वां । अवसे । जोहवीमि । वृधे । च । नः । भवतं । वाजऽसातौ ॥ १२ ॥ ५ ॥

ह्वयामि । अग्निं । प्रथमं । स्वस्तये । ह्वयामि । मित्रावरुणौ । इह । अवसे । ह्वयामि । रात्रीं । जगतः । निऽवेशनीं । ह्वयामि । देवं । सवितारं । ऊतये ॥ १ ॥

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ २ ॥
याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।
आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः ॥३॥
अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः॥४॥
वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन्रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः ।
शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ५ ॥
तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥ ६ ॥ ६॥

आ । कृष्णेन । रजसा । वर्तमानः । निऽवेशयन् । अमृतं । मर्त्यं । च । हिरण्ययेन । सविता । रथेन । आ । देवः । याति । भुवनानि । पश्यन् ॥२॥ याति । देवः । प्रऽवता । याति । उत्ऽवता । याति । शुभ्राभ्यां । यजतः । हरिऽभ्यां । आ । देवः । याति । सविता । पराऽवतः । अप । विश्वा । दुःऽइता । बाधमानः ॥३॥ अभिऽवृतं । कृशनैः । विश्वऽरूपं । हिरण्यऽशम्यं । यजतः । बृहंतं । आ । अस्थात् । रथं । सविता । चित्रऽभानुः । कृष्णा । रजांसि । तविषीं । दधानः ॥ ४ ॥ वि । जनान् । श्यावाः । शितिऽपादः । अख्यन् । रथं । हिरण्यऽप्रउगं । वहंतः । शश्वत् । विशः । सवितुः । दैव्यस्य । उपऽस्थे । विश्वा । भुवनानि । तस्थुः ॥ ५ ॥ तिस्रः । द्यावः । सवितुः । द्वौ । उपऽस्था । एका । यमस्य । भुवने । विराषाट् । आणिं । न । रथ्यं । अमृता । अधि । तस्थुः । इह । ब्रवीतु । यः । उं इति । तत् । चिकेतत् ॥ ६ ॥ ६ ॥

वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद्गभीरवेपा असुरः सुनीथः ।
क्वे३दानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥ ७ ॥

अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ९ ॥

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि
देव ॥ ११ ॥ ७ ॥ ७ ॥

वि । सुऽपर्णः । अंतरिक्षाणि । अख्यत् । गभीरऽवेपाः । असुरः । सुऽनीथः । क्व । इदानीं । सूर्यः । कः । चिकेत । कतमां । द्यां । रश्मिः । अस्य । आ । ततान ॥७॥ अष्टौ । वि । अख्यत् । ककुभः । पृथिव्याः । त्री । धन्व । योजना । सप्त । सिंधून् । हिरण्यऽअक्षः । सविता । देवः । आ । अगात् । दधत् । रत्ना । दाशुषे । वार्याणि ॥ ८ ॥ हिरण्यऽपाणिः । सविता । विऽचर्षणिः । उभे इति । द्यावापृथिवी इति । अंतः । ईयते । अप । अमीवां । बाधते । वेति । सूर्यं । अभि । कृष्णेन । रजसा । द्यां । ऋणोति ॥ ९ ॥ हिरण्यऽहस्तः । असुरः । सुऽनीथः । सुऽमृळीकः । स्वऽवान् । यातु । अर्वाङ् । अपऽसेधन् । रक्षसः । यातुऽधानान् । अस्थात् । देवः । प्रतिऽदोषं । गृणानः ॥ १० ॥ ये । ते । पंथाः । सवितरिति । पूर्व्यासः । अरेणवः । सुऽकृताः । अंतरिक्षे । तेभिः । नः । अद्य । पथिऽभिः । सुऽगेभिः । रक्ष । च । नः । अधि । च । ब्रूहि । देव ॥११॥७॥७॥

॥ अष्टमोऽनुवाकः ॥

कण्वो

॥ ३६ ॥ १-२० घौर ऋषिः ॥ १-२० अग्निर्देवता ॥ छन्दः-१, १२ भुरिगनुष्टुप्। २ निचृत्सतः पङ्क्तिः। ४ निचृत्पङ्क्तिः। १०, १४ निचृद्विष्टारपङ्क्तिः। १८ विष्टारपङ्क्तिः। २० सतः पङ्क्तिः। ३, ११ निचृत्पथ्या बृहती। ५, १६ निचृद्बृहती। ६ भुरिग् बृहती। ७ बृहती। ८ स्वराड् बृहती। ९ निचृदुपरिष्टाद्बृहती। १३ उपरिष्टाद्बृहती। १५ विराट् पथ्याबृहती। १७ विराडुपरिष्टाद्बृहती। १९ पथ्याबृहती ॥ स्वरः-१, १२ गान्धारः। २, ४, १०, १४, १८, २० पञ्चमः। ३, ११, ५, १६, ६-९, १३, १५, १७, १९ मध्यमः ॥

(३६) प्र वो यह्वं पुरूणां विशां देवयतीनाम्।
अग्निं सूक्तेभिर्वचोभिरीमहे यं सीमिदन्य ईळते ॥ १ ॥
जनासो अग्निं दधिरे सहोवृधं हविष्मन्तो विधेम ते।
स त्वं नो अद्य सुमना इहाविता भवा वाजेषु सन्त्य ॥ २ ॥
प्र त्वा दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयो दिवि स्पृशन्ति भानवः ॥ ३ ॥
देवासस्त्वा वरुणो मित्रो अर्यमा सं दूतं प्रत्नमिन्धते।
विश्वं सो अग्ने जयति त्वया धनं यस्ते ददाश मर्त्यः ॥ ४ ॥

॥ अष्टमोऽनुवाकः ॥

प्र । वः । यह्वं । पुरूणां । विशां । देवऽयतीनां । अग्निं । सुऽउक्तेभिः । वचःऽभिः । ईमहे । यं । सीं । इत् । अन्ये । ईळते ॥ १ ॥ जनासः । अग्निं । दधिरे । सहःऽवृधं । हविष्मंतः । विधेम । ते । सः । त्वं । नः । अद्य । सुऽमनाः । इह । अविता । भव । वाजेषु । संत्य ॥ २ ॥ प्र । त्वा । दूतं । वृणीमहे । होतारं । विश्वऽवेदसं । महः । ते । सतः । वि । चरंति । अर्चयः । दिवि । स्पृशंति । भानवः ॥ ३ ॥ देवासः । त्वा । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । सं । दूतं । प्रत्नं । इंधते । विश्वं । सः । अग्ने । जयति । त्वया । धनं । यः । ते । ददाश । मर्त्यः ॥ ४ ॥

मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥८॥
त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥ ६ ॥
तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥ ७ ॥
घ्नन्तो वृत्रमतरन्रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे ।
भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ ८ ॥
सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः ।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥
यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन ।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥ १० ॥९॥

मंद्रः । होता । गृहऽपतिः । अग्ने । दूतः । विशां । असि । त्वे इति । विश्वा । संऽगतानि । व्रता । ध्रुवा । यानि । देवाः । अकृण्वत ॥५॥८॥ त्वे इति । इत् । अग्ने । सुऽभगे । यविष्ठ्य । विश्वं । आ । हूयते । हविः । सः । त्वं । नः । अद्य । सुऽमनाः । उत । अपरं । यक्षि । देवान् । सुऽवीर्या ॥ ६ ॥ तं । घ । ईं । इत्था । नमस्विनः । उप । स्वऽराजं । आसते । होत्राभिः । अग्निं । मनुषः । सं । इंधते । तितिर्वांसः । अति । स्रिधः ॥७॥ घ्नंतः । वृत्रं । अतरन् । रोदसी इति । अपः । उरु । क्षयाय । चक्रिरे ।(भुवत् । कण्वे । वृषा । द्युम्नी । आऽहुतः)। क्रंदत् । अश्वः । गोऽइष्टिषु ॥८॥ सं । सीदस्व । महान् । असि । शोचस्व । देवऽवीतमः । वि । धूमं । अग्ने । अरुषं । मियेध्य । सृज । प्रऽशस्त । दर्शतं । ॥ ९ ॥ यं । त्वा । देवासः । मनवे । दधुः । इह । यजिष्ठं । हव्यऽवाहन ।(यं । कण्वः ।

यम॒ग्निं मेध्या॑तिथिः॒ कण्व॑ ई॒ध ऋ॒तादधि॑।
तस्य॒ प्रेषो॑ दीदियु॒स्तमि॒मा ऋच॒स्तम॒ग्निं व॑र्धयामसि ॥ ११ ॥
रा॒यस्पू॑र्धि स्वधा॒वोऽस्ति॒ हि तेऽग्ने॑ दे॒वेष्वाप्य॑म्।
त्वं वाज॑स्य॒ श्रुत्य॑स्य राजसि॒ स नो॑ मृळ म॒हाँ अ॑सि ॥ १२ ॥
ऊ॒र्ध्व ऊ॒ षु ण॑ ऊ॒तये॒ तिष्ठा॑ दे॒वो न स॑वि॒ता ।
ऊ॒र्ध्वो वाज॑स्य॒ सनि॑ता॒ यद॒ञ्जिभि॑र्वा॒घद्भि॑र्वि॒ह्वया॑महे ॥ १३ ॥
ऊ॒र्ध्वो नः॑ पा॒ह्यंह॑सो॒ नि के॒तुना॒ विश्वं॒ सम॒त्रिणं॑ दह ।
कृ॒धी न॑ ऊ॒र्ध्वाञ्च॒रथा॑य जी॒वसे॑ वि॒दा दे॒वेषु॑ नो॒ दुवः॑ ॥ १४ ॥
पा॒हि नो॑ अग्ने र॒क्षसः॑ पा॒हि धू॒र्तेरराव्णः॑ ।
पा॒हि रीष॑त उ॒त वा॒ जिघां॑सतो॒ बृह॑द्भानो॒ यवि॑ष्ठ्य ॥ १५ ॥ १० ॥

मेध्यंऽअतिथिः। धुनऽस्पृतं। यं। वृषा। यं। उपऽस्तुतः॥ १० ॥ ९ ॥ यं। अग्निं। मेध्यंऽअतिथिः। कण्वः। ईधे। ऋतात्। अधि। तस्य। प्र। इषः। दीदियुः। तं। इमाः। ऋचः। तं। अग्निं। वर्धयामसि ॥ ११ ॥ रायः। पूर्धि। स्वधाऽवः। अस्ति। हि। ते। अग्ने। देवेषु। आप्यं। त्वं। वाजस्य। श्रुत्यस्य। राजसि। सः। नः। मृळ। महान्। असि ॥ १२ ॥ ऊर्ध्वः। ऊं इति। सु। नः। ऊतये। तिष्ठ। देवः। न। सविता। ऊर्ध्वः। वाजस्य। सनिता। यत्। अंजिऽभिः। वाघत्ऽभिः। विऽह्वयामहे ॥ १३ ॥ ऊर्ध्वः। नः। पाहि। अंहसः। नि। केतुना। विश्वं। सं। अत्रिणं। दह। कृधि। नः। ऊर्ध्वान्। चरथाय। जीवसे। विदाः। देवेषु। नः। दुवः ॥ १४ ॥ पाहि। नः। अग्ने। रक्षसः। पाहि। धूर्तेः। अराव्णः। पाहि। रिषतः। उत। वा। जिघांसतः। बृहद्भानो इति बृहत्ऽभानो। यविष्ठ्य ॥ १५ ॥ १० ॥

घनेव विष्वग्वि जह्यराव्णस्तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक् ।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत ॥ १६ ॥

अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम् ।
अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् ॥ १७ ॥

अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे ।
अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः ॥ १८ ॥

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः ॥ १९ ॥

त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये ।
रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह ॥२०॥११॥

घनाऽइव । विष्वक् । वि । जहि । अराव्णः । तपुःऽजंभ । यः । अस्मऽध्रुक् । यः । मर्त्यः । शिशीते । अति । अक्तुऽभिः । मा । नः । सः । रिपुः । ईशत ॥ १६ ॥ अग्निः । वव्ने । सुऽवीर्यं । अग्निः । कण्वाय । सौभगं । अग्निः । प्र । आवत् । मित्रा । उत । मेध्यऽअतिथिं । अग्निः । साता । उपऽस्तुतं ॥ १७ ॥ अग्निना । तुर्वशं । यदुं । पराऽवतः । उग्रऽदेवं । हवामहे । अग्निः । नयत् । नवऽवास्त्वं । बृहत्ऽरथं । तुर्वीतिं । दस्यवे । सहः ॥ १८ ॥ नि । त्वां । अग्ने । मनुः । दधे । ज्योतिः । जनाय । शश्वते । दीदेथ । कण्वे । ऋतऽजातः । उक्षितः । यं । नमस्यंति । कृष्टयः ॥ १९ ॥ त्वेषासः । अग्नेः । अमऽवंतः । अर्चयः । भीमासः । न । प्रतिऽइतये । रक्षस्विनः । सदं । इत् । यातुऽमावतः । विश्वं । सं । अत्रिणं । दह ॥ २० ॥ ११ ॥

॥ ३७ ॥ १-१५ कण्वो घौर ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः- १, २, ४, ६-८, १२ गायत्री । ३, ९, ११, १४, निचृद् गायत्री । ५ विराड् गायत्री । १०, १५ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री १३ पादनिचृद्गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(३७) क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम् ।
कण्वा अभि प्र गायत ॥ १ ॥

ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः ।
अजायन्त स्वभानवः ॥ २ ॥

इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान् ।
नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥ ३ ॥

प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे ।
देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ ४ ॥

प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम् ।
जम्भे रसस्य वावृधे ॥ ५ ॥ १२ ॥

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः ।
यत्सीमन्तं न धूनुथ ॥ ६ ॥

क्रीळं । वः । शर्धः । मारुतं । अनर्वाणं । रथेऽशुभं । कण्वाः । अभि । प्र । गायत ॥ १ ॥ ये । पृषतीभिः । ऋष्टिऽभिः । साकं । वाशीभिः । अंजिऽभिः । अजायंत । स्वऽभानवः ॥ २ ॥ इहऽइव । शृण्वे । एषां । कशाः । हस्तेषु । यत् । वदान् । नि । यामन् । चित्रं । ऋंजते ॥ ३ ॥ प्र । वः । शर्धाय । घृष्वये । त्वेषऽद्युम्नाय । शुष्मिणे । देवत्तं । ब्रह्म । गायत ॥ ४ ॥ प्र । शंस । गोषु । अघ्न्यं । क्रीळं । यत् । शर्धः । मारुतं । जंभे । रसस्य । ववृधे ॥ ५ ॥ १२ ॥ कः । वः । वर्षिष्ठः । आ । नरः । दिवः । च । ग्मः । च । धूतयः । यत् । सीं । अंतं । न । धूनुथ ॥ ६ ॥

नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे ।
जिहीत पर्वतो गिरिः ॥ ७ ॥
येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः ।
भिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥
स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे ।
यत्सीमनु द्विता शवः ॥ ९ ॥
उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत ।
वाश्रा अभिज्ञु यातवे ॥ १० ॥ १३ ॥
त्यं चिद्घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् ।
प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ११ ॥
मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन ।
गिरीँरचुच्यवीतन ॥ १२ ॥
यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना ।
शृणोति कश्चिदेषाम् ॥ १३ ॥

नि । वः । यामाय । मानुषः । दध्रे । उग्राय । मन्यवे । जिहीत । पर्वतः । गिरिः ॥ ७॥ येषां । अज्मेषु । पृथिवी । जुजुर्वान्ऽइव । विश्पतिः । भिया । यामेषु । रेजते ॥ ८ ॥ स्थिरं । हि । जानं । एषां । वयः । मातुः । निःऽएतवे । यत् । सीं । अनु । द्विता । शवः ॥ ९ ॥ उत् । ऊं इति । त्ये । सूनवः । गिरः । काष्ठाः । अज्मेषु । अत्नत । वाश्राः । अभिऽज्ञु । यातवे ॥ १० ॥ १३ ॥ त्यं । चित् । घ । दीर्घं । पृथुं । मिहः । नपातं । अमृध्रं । प्र । च्यवयंति । यामभिः ॥ ११ ॥ मरुतः । यत् । ह । वः । बलं । जनान् । अचुच्यवीतन । गिरीन् । अचुच्यवीतन ॥ १२ ॥ यत् । ह । यांति । मरुतः । सं । ह । ब्रुवते । अध्वन् । आ । शृणोति । कः । चित् । एषां ॥ १३ ॥

प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः।
तत्रो षु मादयाध्वै ॥ १४ ॥

अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषाम्।
विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥ १५ ॥ १४ ॥

॥ ३८ ॥ १-१५ कण्वो घौर ऋषिः॥ मरुतो देवता॥ छन्दः—१, ८, ११, १३, १५, ४, गायत्री। २, ३, ५, ९, १० निचृद्गायत्री। ३ पादनिचृद्गायत्री। ७, १२ पिपीलिका मध्या निचृत्। १४ यवमध्या विराड् गायत्री॥ षड्जः स्वरः॥

(३८) कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः।
दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥

क्व नूनं कद्वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः।
क्व वो गावो न रण्यन्ति ॥ २ ॥

क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता।
को३विश्वानि सौभगा ॥ ३ ॥

प्र। यात। शीभं। आशुऽभिः। संति। कण्वेषु। वः। दुवः। तत्रो इति। सु। मादयाध्वै ॥१४॥ अस्ति। हि। स्म। मदाय। वः। स्मसि। स्म। वयं। एषां। विश्वं। चित्। आयुः। जीवसे ॥ १५ ॥ १४ ॥

कत्। ह। नूनं। कधऽप्रियः। पिता। पुत्रं। न। हस्तयोः। दधिध्वे। वृक्तऽबर्हिषः ॥१॥ क्व। नूनं। कत्। वः। अर्थं। गंत। दिवः। न। पृथिव्याः। क्व। वः। गावः। न। रण्यंति ॥२॥ क्व। वः। सुम्ना। नव्यांसि। मरुतः। क्व। सुविता। को३इति। विश्वानि। सौभगा॥ ३ ॥

यद्यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन ।

स्तोता वो अमृतः स्यात् ॥ ४ ॥

मा वो मृगो न यवसे जरिता भूदजोष्यः ।

पथा यमस्य गादुप ॥ ५ ॥ १५ ॥

मो षु णः परापरा निर्ऋतिर्दुर्हणा वधीत् ।

पदीष्ट तृष्णया सह ॥ ६ ॥

सत्यं त्वेषा अमवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियासः ।

मिहं कृण्वन्त्यवाताम् ॥ ७ ॥

वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति ।

यदेषां वृष्टिरसर्जि ॥ ८ ॥

दिवा चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन ।

यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति ॥ ९ ॥

यत् । यूयं । पृश्निऽमातरः । मर्तासः । स्यातन । स्तोता । वः । अमृतः । स्यात् ॥ ४ ॥ मा । वः । मृगः । न । यवसे । जरिता । भूत् । अजोष्यः । पथा । यमस्य । गात् । उप ॥ ५ ॥ १५ ॥ मो इति । सु । नः । पराऽपरा । निःऽऋतिः । दुःऽहना । वधीत् । पदीष्ट । तृष्णया । सह ॥ ६ ॥ सत्यं । त्वेषाः । अमऽवंतः । धन्वन् । चित् । आ । रुद्रियासः । मिहं । कृण्वंति । अवातां ॥ ७ ॥ वाश्राऽइव । विऽद्युत् । मिमाति । वत्सं । न । माता । सिसक्ति । यत् । एषां । वृष्टिः । असर्जि ॥ ८ ॥ दिवा । चित् । तमः । कृण्वंति । पर्जन्येन । उदऽवाहेन । यत् । पृथिवीं । विऽउंदंति ॥ ९ ॥ अध । स्वनात् । मरुतां । विश्वं । आ । सद्म । पार्थिवं ।

अधं स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम्।

अरेजन्त प्र मानुषाः ॥ १० ॥ १६ ॥

मरुतो वीळुपाणिभिश्चित्रा रोधस्वतीरनु ।

यातेमखिद्रयामभिः ॥ ११ ॥

स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम्।

सुसंस्कृता अभीशवः ॥ १२ ॥

अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम्।

अग्निं मित्रं न दर्शतम् ॥ १३ ॥

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः ।

गाय गायत्रमुक्थ्यम् ॥ १४ ॥

वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम् ।

अस्मे वृद्धा असन्निह ॥ १५ ॥ १७ ॥

अरेजंत। प्र। मानुषाः ॥१०॥१६॥ मरुतः। वीळुपाणिऽभिः। चित्राः। रोधस्वतीः। अनु। यात। ईं। अखिद्रयामऽभिः ॥११॥ स्थिराः। वः। संतु। नेमयः। रथाः। अश्वासः। एषां। सुऽसंस्कृताः। अभीशवः ॥१२॥ अच्छ। वद। तना। गिरा। जरायै। ब्रह्मणः। पतिं। अग्निं। मित्रं। न। दर्शतं ॥१३॥ मिमीहि। श्लोकं। आस्ये। पर्जन्यःऽइव। ततनः। गाय। गायत्रं। उक्थ्यं ॥१४॥ वंदस्व। मारुतं। गणं। त्वेषं। पनस्युं। अर्किणं। अस्मे इति। वृद्धाः। असन्। इह ॥१५॥१७॥

॥ ३९ ॥ १—१० कण्वो घौर ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ९, पथ्याबृहती ७ उपरिष्टाद्विराड् बृहती । २, ८, १०, विराट् सतः पङ्क्तिः । ४, ६, निचृत्सतः पङ्क्तिः । ३ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१, ५, ९, ७, मध्यमः । २, ८, १०, ४, ६, पञ्चमः । ३ गान्धारः ॥

(३०) प्र यदित्था परावतः शोचिर्न मानमस्यथ ।
कस्य क्रत्वा मरुतः कस्य वर्पसा कं याथ कं ह धूतयः ॥ १ ॥

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २ ॥

परा ह यत्स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु ।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम् ॥ ३ ॥

नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः ।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥ ४ ॥

प्र । यत् । इत्था । पराऽवतः । शोचिः । न । मानं । अस्यथ । कस्य । क्रत्वा । मरुतः । कस्य । वर्पसा । कं । याथ । कं । ह । धूतयः ॥१॥ स्थिरा । वः । सन्तु । आयुधा । पराऽनुदे । वीळु । उत । प्रतिऽस्कभे । युष्माकं । अस्तु । तविषी । पनीयसी । मा । मर्त्यस्य । मायिनः ॥२॥ परा । ह । यत् । स्थिरं । हथ । नरः । वर्तयथ । गुरु । वि । याथन । वनिनः । पृथिव्याः । वि । आशाः । पर्वतानां ॥३॥ नहि । वः । शत्रुः । विविदे । अधि । द्यवि । न । भूम्यां । रिशादसः । युष्माकं । अस्तु । तविषी । तना । युजा । रुद्रासः । नु । चित् । आऽधृषे ॥४॥ प्र । वेपयन्ति । पर्वतान् । वि ।

प्र वेपयन्ति पर्वतान्वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥ ५ ॥ १८ ॥
उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥
आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥ ७ ॥
युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते ।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥ ८ ॥
असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः ।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥ ९ ॥

विचंति । वनस्पतीन् । प्रो इति । आरत । मरुतः । दुर्मदाःऽइव । देवासः । सर्वया । विशा ॥५॥१८॥ उपो इति । रथेषु । पृषतीः । अयुग्ध्वं । प्रष्टिः । वहति । रोहितः । आ । वः । यामाय । पृथिवी । चित् । अश्रोत् । अबीभयंत । मानुषाः ॥६॥ आ । वः । मक्षु । तनाय । कं । रुद्राः । अवः । वृणीमहे । गंत । नूनं । नः । अवसा । यथा । पुरा । इत्था । कण्वाय । बिभ्युषे ॥ ७ ॥ युष्माऽइषितः । मरुतः । मर्त्यऽइषितः । आ । यः । नः । अभ्वः । ईषते । वि । तं । युयोत । शवसा । वि । ओजसा । वि । युष्माकाभिः । ऊतिऽभिः ॥८॥ असामि । हि । प्रऽयज्यवः । कण्वं । दद । प्रऽचेतसः । असामिऽभिः । मरुतः । आ । नः । ऊतिऽभिः । गंत । वृष्टिं । न । विऽद्युतः ॥ ९ ॥

असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० ॥ १९ ॥

॥ ४० ॥ १-८ कण्वो घौर ऋषिः ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्दः– १, ८ निचृदुपरिष्टाद्बृहती । २, ५ पथ्याबृहती । ३, ७ आर्चीत्रिष्टुप् । ४, ६ सतःपङ्क्तिर्निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः– १, २, ८, ५ मध्यमः । ३, ७ धैवतः । ४, ६ पञ्चमः ॥

(४०) उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥
त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते ।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥ २ ॥
प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥
यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥

असामि । ओजः । बिभृथ । सुऽदानवः । असामि । धूतयः । शवः । ऋषिऽद्विषे । मरुतः । परिऽमन्यवे । इषुं । न । सृजत । द्विषं ॥ १० ॥ १९ ॥

उत् । तिष्ठ । ब्रह्मणः । पते । देवऽयन्तः । त्वा । ईमहे । उप । प्र । यन्तु । मरुतः । सुऽदानवः । इन्द्र । प्राशूः । भव । सचा ॥ १ ॥ त्वां । इत् । हि । सहसः । पुत्र । मर्त्यः । उपऽब्रूते । धने । हिते । सुऽवीर्यं । मरुतः । आ । सुऽअश्व्यं । दधीत । यः । वः । आऽचके ॥ २ ॥ प्र । एतु । ब्रह्मणः । पतिः । प्र । देवी । एतु । सूनृता । अच्छ । वीरं । नर्यं । पङ्क्तिऽराधसं । देवाः । यज्ञं । नयन्तु । नः ॥ ३ ॥ यः । वाघते । ददाति । सूनरं । वसु । सः । धत्ते । अक्षिति । श्रवः । तस्यै । इळां । सुऽवीरां । आ । यजामहे । सुप्रऽतूर्तिं । अनेहसं ॥ ४ ॥ प्र । नूनं । ब्रह्मणः । पतिः ।

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम् ।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥५॥२०॥
तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥ ६ ॥
को देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम् ।
प्रप्र दाश्वान्पस्त्याभिरस्थितान्तर्वावत्क्षयं दधे ॥ ७ ॥
उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित्सुक्षितिं दधे ।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः ॥ ८ ॥ २१ ॥

॥ ४१ ॥ १-९ कण्वो घौर ऋषिः ॥ देवता-१-३, ७-९ वरुणमित्रार्यमणः । ४-६ आदित्याः ॥
छन्दः-१, ४-५, ८ गायत्री । २-३, ६ विराड् गायत्री । ७, ९ निचृद्गायत्री ॥ १-९ षड्जः स्वरः ॥

(४१) यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
नू चित्स दभ्यते जनः ॥ १ ॥

मंत्रं । वदति । उक्थ्यं । यस्मिन् । इंद्रः । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । देवाः । ओकांसि । चक्रिरे ॥५॥२०॥ तं । इत् । वोचेम । विदथेषु । शंऽभुवं । मंत्रं । देवाः । अनेहसं । इमां । च । वाचं । प्रतिऽहर्यथ । नरः । विश्वा । इत् । वामा । वः । अश्नवत् ॥ ६ ॥ कः । देवऽयंतं । अश्नवत् । जनं । कः । वृक्तऽबर्हिषं । प्रऽप्र । दाश्वान् । पस्त्याभिः । अस्थित । अंतःऽवावत् । क्षयं । दधे ॥ ७ ॥ उप । क्षत्रं । पृंचीत । हंति । राजऽभिः । भये । चित् । सुऽक्षितिं । दधे । न । अस्य । वर्ता । न । तरुता । महाऽधने । न । अर्भे । अस्ति । वज्रिणः ॥ ८ ॥ २१ ॥

यं । रक्षंति । प्रऽचेतसः । वरुणः । मित्रः । अर्यमा । नु । चित् । सः । दभ्यते । जनः ॥ १ ॥

यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः ।
अरिष्टः सर्व एधते ॥ २ ॥
वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम् ।
नयन्ति दुरिता तिरः ॥ ३ ॥
सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते ।
नात्रावखादो अस्ति वः ॥ ४ ॥
यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा ।
प्र वः स धीतये नशत् ॥५॥२२॥
स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना ।
अच्छा गच्छत्यस्तृतः ॥ ६ ॥
कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः ।
महि प्सरो वरुणस्य ॥ ७ ॥
मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् ।
सुम्नैरिद्व आ विवासे ॥ ८ ॥

यं । बाहुताऽइव । पिप्रति । पांति । मर्त्यं । रिषः । अरिष्टः । सर्वः । एधते ॥ २ ॥ वि । दुःऽगा । वि । द्विषः । पुरः । घ्नंति । राजानः । एषां । नयंति । दुःऽइता । तिरः ॥३॥ सुऽगः । पंथाः । अनृक्षरः । आदित्यासः । ऋतं । यते । न । अत्र । अवऽखादः । अस्ति । वः ॥४॥ यं । यज्ञं । नयथ । नरः । आदित्याः । ऋजुना । पथा । प्र । वः । सः । धीतये । नशत् ॥ ५ ॥ २२ ॥ सः । रत्नं । मर्त्यः । वसु । विश्वं । तोकं । उत । त्मना । अच्छ । गच्छति । अस्तृतः ॥६॥ कथा । राधाम । सखायः । स्तोमं । मित्रस्य । अर्यम्णः । महि । प्सरः । वरुणस्य ॥ ७ ॥ मा । वः । घ्नंतं । मा । शपंतं । प्रति । वोचे । देवऽयंतं । सुम्नैः । इत् । वः । आ ।

चतुरश्चिद्ददमानाद्बिभीयादा निधातोः ।
न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ॥ ९ ॥ २३ ॥

॥ ४२ ॥ १—१० कण्वो घौर ऋषिः ॥ पूषा देवता ॥ छन्दः—१, ९ निचृद्गायत्री । २, ३, ५—८, १० गायत्री । ४ विराड् गायत्री ॥ षड्जः स्वरः ॥

(४२) सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात् ।
सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः ॥ १ ॥
यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति ।
अप स्म तं पथो जहि ॥ २ ॥
अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् ।
दूरमधि स्रुतेरज ॥ ३ ॥
त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित् ।
पदाभि तिष्ठ तपुषिम् ॥ ४ ॥
आ तत्ते दस्र मन्तुमः पूषन्नवो वृणीमहे ।
येन पितॄनचोदयः ॥ ५ ॥ २४ ॥

विवासे ॥ ८ ॥ चतुरः । चित् । ददमानात् । बिभीयात् । आ । निऽधातोः । न । दुःऽउक्ताय । स्पृहयेत् ॥ ९ ॥ २३ ॥

सं । पूषन् । अध्वनः । तिर । वि । अंहः । विऽमुचः । नपात् । सक्ष्व । देव । प्र । नः । पुरः ॥१॥ यः । नः । पूषन् । अघः । वृकः । दुःऽशेवः । आऽदिदेशति । अप । स्म । तं । पथः । जहि ॥२॥ अप । त्यं । परिऽपंथिनं । मुषीवाणं । हुरःऽचितं । दूरं । अधि । स्रुतेः । अज ॥३॥ त्वं । तस्य । द्वयाविनः । अघऽशंसस्य । कस्य । चित् । पदा । अभि । तिष्ठ । तपुषिं ॥ ४ ॥ आ । तत् । ते । दस्र । मंतुऽमः । पूषन् । अवः । वृणीमहे । येन । पितॄन् । अचोदयः ॥ ५ ॥ २४ ॥

अधा नो विश्वसौभग हिरण्यवाशीमत्तम ।

धनानि सुषणा कृधि ॥ ६ ॥

अति नः सश्चतो नय सुगा नः सुपथा कृणु ।

पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ७ ॥

अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने ।

पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ८ ॥

शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम् ।

पूषन्निह क्रतुं विदः ॥ ९ ॥

न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि ।

वसूनि दस्ममीमहे ॥ १० ॥ २५ ॥

॥ ४३ ॥ १—९ कण्वो घौर ऋषिः ॥ देवता—१, २, ४—६ रुद्रः । ३ मित्रावरुणौ । ७—९ सोमः ॥ छन्दः—१—४, ७, ८ गायत्री । ५ विराड्गायत्री । ६ पादनिचृद्गायत्री । ९ अनुष्टुप् ॥ स्वरः १—८ षड्जः । ९ गान्धारः ॥

(४३) कद्रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे ।

वोचेम शंतमं हृदे ॥ १ ॥

अध । नः । विश्वऽसौभग । हिरण्यवाशीमत्ऽतम । धनानि । सुऽसना । कृधि ॥ ६ ॥ अति । नः । सश्चतः । नय । सुऽगा । नः । सुऽपथा । कृणु । पूषन् । इह । क्रतुम् । विदः ॥ ७ ॥ अभि । सुऽयवसम् । नय । न । नवऽज्वारः । अध्वने । पूषन् । इह । क्रतुम् । विदः ॥ ८ ॥ शग्धि । पूर्धि । प्र । यंसि । च । शिशीहि । प्रासि । उदरम् । पूषन् । इह । क्रतुम् । विदः ॥ ९ ॥ न । पूषणम् । मेथामसि । सुऽउक्तैः । अभि । गृणीमसि । वसूनि । दस्मम् । ईमहे ॥ १० ॥ २५ ॥

कत् । रुद्राय । प्रऽचेतसे । मीळ्हुःऽतमाय । तव्यसे । वोचेम । शम्ऽतमम् ।

यथा नो अदितिः करत्पश्वे नृभ्यो यथा गवे ।
यथा तोकाय रुद्रियम् ॥ २ ॥

यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति ।
यथा विश्वे सजोषसः ॥ ३ ॥

गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम् ।
तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥ ४ ॥

यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते ।
श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥ ५ ॥ २६ ॥

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये ।
नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ६ ॥

अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् ।
महि श्रवस्तुविनृम्णम् ॥ ७ ॥

मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त ।
आ न इन्दो वाजे भज ॥ ८ ॥

हृदे ॥ १ ॥ यथा । नः । अदितिः । करत् । पश्वे । नृऽभ्यः । यथा । गवे । यथा । तोकाय । रुद्रियं ॥ २ ॥ यथा । नः । मित्रः । वरुण । यथा । रुद्रः । चिकेतति । यथा । विश्वे । सऽजोषसः ॥ ३ ॥ गाथऽपतिं । मेधऽपतिं । रुद्रं । जलाषऽभेषजं । तत् । शंऽयोः । सुम्नं । ईमहे ॥ ४ ॥ यः । शुक्रःऽइव । सूर्यः । हिरण्यंऽइव । रोचते । श्रेष्ठः । देवानां । वसुः ॥ ५ ॥ २६ ॥ शं । नः । करति । अर्वते । सुऽगं । मेषाय । मेष्ये । नृऽभ्यः । नारिऽभ्यः । गवे ॥ ६ ॥ अस्मे इति । सोम । श्रियं । अधि । नि । धेहि । शतस्य । नृणां । महि । श्रवः । तुविऽनृम्णं ॥ ७ ॥ मा । नः । सोमऽपरिबाधः । मा । अरातयः । जुहुरंत । आ । नः । इंदो इति । वाजे । भज ॥ ८ ॥

याास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धामन्नृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥ २७ ॥ ८ ॥

॥ नवमोऽनुवाकः ॥

॥ ४४ ॥ १—१४ प्रस्कण्व ऋषिः ॥ देवता १—१४ अग्निः ॥ छन्दः—१, ७ उपरिष्टाद्विराड्बृहती । ३ निचृदुपरिष्टाद्बृहती । ५, ११ निचृत्पथ्याबृहती । १२ भुरिग्बृहती । १३ पथ्याबृहती । २, ४, ८, १४ विराट् सतः पंक्तिः । १० विराड्विस्तारपंक्तिः । ९ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ७, ३, ५, ११—१३ मध्यमः । २, ४, ६, ८, १४, १० पञ्चमः । ९ धैवतः ॥

(४४) अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य ।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ १ ॥
जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम् ।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥
अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।
धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ॥ ३ ॥

याः । ते । प्रऽजाः । अमृतस्य । परस्मिन् । धामन् । ऋतस्य । मूर्धा । नाभा । सोम । वेनः । आऽभूषन्तीः । सोम । वेदः ॥ ९ ॥ २७ ॥ ८ ॥

॥ नवमोऽनुवाकः ॥

अग्ने । विवस्वत् । उषसः । चित्रं । राधः । अमर्त्य । आ । दाशुषे । जातऽवेदः । वह । त्वं । अद्य । देवान् । उषःऽबुधः ॥ १ ॥ जुष्टः । हि । दूतः । असि । हव्यऽवाहनः । अग्ने । रथीः । अध्वराणां । सऽजूः । अश्विऽभ्यां । उषसा । सुऽवीर्यं । अस्मे इति । धेहि । श्रवः । बृहत् ॥ २ ॥ अद्य । दूतं । वृणीमहे । वसुं । अग्निं । पुरुऽप्रियं । धूमऽकेतुं । भाःऽऋ-

श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४ ॥

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥ २८ ॥

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥ ७ ॥

सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥

जीकं । विऽउष्टिषु । यज्ञानां । अध्वरऽश्रियं ॥ ३ ॥ श्रेष्ठं । यविष्ठं । अतिथिं । सुऽआहुतं । जुष्टं । जनाय । दाशुषे । देवान् । अच्छ । यातवे । जातऽवेदसं । अग्निं । ईळे । विऽउष्टिषु ॥ ४ ॥ स्तविष्यामि । त्वां । अहं । विश्वस्य । अमृत । भोजन । अग्ने । त्रातारं । अमृतं । मियेध्य । यजिष्ठं । हव्यऽवाहन ॥ ५ ॥ २८ ॥ सुऽशंसः । बोधि । गृणते । यविष्ठ्य । मधुजिह्वः । सुऽआहुतः । प्रस्कण्वस्य । प्रऽतिरन् । आयुः । जीवसे । नमस्य । दैव्यं । जनं ॥ ६ ॥ होतारं । विश्वऽवेदसं । सं । हि । त्वा । विशः । इंधते । सः । आ । वह । पुरुऽहूत । प्रऽचेतसः । अग्ने । देवान् । इह । द्रवत् ॥ ७ ॥ सवितारं । उषसं । अश्विना । भगं । अग्निं । विऽउष्टिषु । क्षपः । कण्वासः । त्वा । सुतऽसोमासः । इंधते । हव्यऽवाहं । सुऽअध्वर ॥ ८ ॥

पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९ ॥

अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्वविता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥ २९ ॥

नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद्देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥ ११ ॥

यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ॥ १२ ॥

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः ।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३ ॥

पतिः । हि । अध्वराणां । अग्ने । दूतः । विशां । असि । उषःऽबुधः । आ । वह । सोमऽपीतये । देवान् । अद्य । स्वःऽदृशः ॥ ९ ॥ अग्ने । पूर्वाः । अनु । उषसः । विभावसो इति विभाऽवसो । दीदेथ । विश्वऽदर्शतः । असि । ग्रामेषु । अविता । पुरःऽहितः । असि । यज्ञेषु । मानुषः ॥ १० ॥ २९ ॥ नि । त्वा । यज्ञस्य । साधनं । अग्ने । होतारं । ऋत्विजं । मनुष्वत् । देव । धीमहि । प्रऽचेतसं । जीरं । दूतं । अमर्त्यं ॥ ११ ॥ यत् । देवानां । मित्रऽमहः । पुरःऽहितः । अंतरः । यासि । दूत्यं । सिंधोःऽइव । प्रऽस्वनितासः । ऊर्मयः । अग्नेः । भ्राजंते । अर्चयः ॥ १२ ॥ श्रुधि । श्रुत्ऽकर्ण । वह्निऽभिः । देवैः । अग्ने । सयावऽभिः । आ । सीदंतु । बर्हिषि । मित्रः । अर्यमा । प्रातःऽ-

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबन्तु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥ १४ ॥ ३० ॥

॥ ४५ ॥ १—१० प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ १—१० अग्निर्देवा देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक् । ५ उष्णिक् । २, ३, ७, ८ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । ६, ९, १० विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—१, ५ ऋषभः । २—४, ६-१० गान्धारः ॥

(४५) त्वमग्ने वसूँरिह रुद्राँ आदित्याँ उत ।
यजा स्वध्वरं जनं मनुजातं घृतप्रुषम् ॥ १ ॥

श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः ।
तान्रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥ २ ॥

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत् ।
अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ॥ ३ ॥

महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ॥ ४ ॥

यावानः । अध्वरं ॥ १३ ॥ शृण्वन्तु । स्तोमं । मरुतः । सुऽदानवः । अग्निऽजिह्वाः । ऋतऽवृधः । पिबन्तु । सोमं । वरुणः । धृतऽव्रतः । अश्विऽभ्यां । उषसा । सऽजूः ॥ १४ ॥ ३० ॥

त्वं । अग्ने । वसून् । इह । रुद्रान् । आदित्यान् । उत । यज । सुऽअध्वरं । जनं । मनुऽजातं । घृतऽप्रुषं ॥ १ ॥ श्रुष्टीऽवानः । हि । दाशुषे । देवाः । अग्ने । विऽचेतसः । तान् । रोहितऽअश्व । गिर्वणः । त्रयःऽत्रिंशतं । आ । वह ॥ २ ॥ प्रियमेधऽवत् । अत्रिऽवत् । जातऽवेदः । विरूपऽवत् । अंगिरस्वत् । महिऽव्रत । प्रस्कण्वस्य । श्रुधि । हवं ॥ ३ ॥ महिऽकेरवः । ऊतये । प्रियऽमेधाः । अहूषत । राजन्तं । अध्वराणां । अग्निं । शुक्रेण । शोचिषा ॥ ४ ॥

घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः ।
याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा ॥ ५ ॥ ३१ ॥

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः ।
शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥ ६ ॥

नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥ ७ ॥

आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः ।
बृहद्भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्ताय दाशुषे ॥ ८ ॥

प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य ।
इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ॥ ९ ॥

अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः ।
अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्न्यम् ॥ १० ॥ ३२ ॥

घृतऽआहवन । सन्त्य । इमाः । ऊं इति । सु । श्रुधि । गिरः । याभिः । कण्वस्य । सूनवः । हवन्ते । अवसे । त्वा ॥ ५ ॥ ३१ ॥ त्वां । चित्रश्रवःऽतम । हवन्ते । विक्षु । जन्तवः । शोचिःऽकेशं । पुरुऽप्रिय । अग्ने । हव्याय । वोळ्हवे ॥ ६ ॥ नि । त्वा । होतारं । ऋत्विजं । दधिरे । वसुवित्ऽतमं । श्रुत्ऽकर्णं । सप्रथःऽतमं । विप्राः । अग्ने । दिविष्टिषु ॥ ७ ॥ आ । त्वा । विप्राः । अचुच्यवुः । सुतऽसोमाः । अभि । प्रयः । बृहत् । भाः । बिभ्रतः । हविः । अग्ने । मर्ताय । दाशुषे ॥ ८ ॥ प्रातःऽयाव्नः । सहःऽकृत । सोमऽपेयाय । सन्त्य । इह । अद्य । दैव्यं । जनं । बर्हिः । आ । सादय । वसो इति ॥ ९ ॥ अर्वाञ्चं । दैव्यं । जनं । अग्ने । यक्ष्व । सहूतिऽभिः । अयं । सोमः । सुऽदानवः । तं । पात । तिरःऽअह्न्यं ॥ १० ॥ ३२ ॥

वृत्रका शरीर ऐसे जलप्रवाहों में डूब गया था जिन्हें कभी रुकावट और विश्रान्ति नहीं थी। उसके शरीर पर जलके प्रवाह आनन्दपूर्वक बहते थे और वह इन्द्र शत्रु बड़े अंधकार में जा पड़ा था, १० (३७)

अहि ने जिन जलों को प्रतिबन्ध में रखा था और इस कारण जो जल उस दुष्ट के दास हुए थे वे, पणि की प्रतिबन्ध में रखी हुई गौओं की तरह बन्दिवान हो गये थे। उदकों के निवासस्थान, जो पहले बन्द हो गये थे, इन्द्र ने वृत्र को मार कर, खोल दिये। ११

हे इन्द्र, आपही एक श्रेष्ठ देवता हैं। जिस समय आपके आयुध पर अहि ने प्रहार किया उस समय, अश्व के लिए तैयार किये हुए कवच की तरह आपने उसकी कुछ परवा नहीं की। आपने गौओं को प्राप्त कर लिया; हे शूर आपने सोमरस भी प्राप्त कर लिया और सप्त नदियों का प्रवाह जारी करने के लिए आपने उन्हें बन्धमुक्त किया। १२

विद्युत्प्रयोग अथवा गर्जना, इन दोनों में से एक का भी वृत्र के लिए कोई उपयोग नहीं हुआ। तथा उन्हों ने जो पर्जन्य वृष्टि की और जो वज्र चलाये उनका भी उसके लिए कोई उपयोग नहीं हुआ। जिस समय इन्द्र और अहि का युद्ध हुआ उस समय उन्हीं दान शूर इन्द्र ने चिरकालीक विजय सम्पादन किया। १३

हे इन्द्र, जब कि वृत्र को मारने के बाद आपके हृदय में भय ने प्रवेश किया तब ऐसा कौन आपको देख पड़ा, जो वृत्रवध का बदला आपसे ले सकता हो? क्योंकि जैसे कोई भयचकित श्येन पक्षी (फर फर) आकाश में उड़ जाता है उसी प्रकार आप (जल्दीसे) (निन्यानवे नदियां लांघते हुए पार निकल गये) १४

---

१ निण्यम् ॥
२ बिलम् ॥
३ सर्तवे ॥
४ मिहम् ॥
५ अतरः ॥

इन्द्र सम्पूर्ण चराचर सृष्टिके स्वामी हैं। जो प्राणी शृंगयुक्त हैं और जो निरुपद्रवी हैं उन दोनोंपर उनकी सत्ता है। उनके बाहु वज्रके समान हैं; सब मानवोंके राजा वही हैं। जिस प्रकार रथचक्रकी दौड़ पहियेके आरोंको घेर लेती है उसी प्रकार इन्द्रने यह सब वेष्टित कर लिया है। १५ (३८)

॥ दूसरा अध्याय समाप्त ॥

तिसरा अध्याय.

सूक्त ३३.

ऋषि—हिरण्यस्तूप आंगिरस। देवता—इन्द्र।

आइये, गोधनकी इच्छासे हम इन्द्रके पास चलें। वही हमारी बुद्धिमत्ताकी अत्यन्त वृद्धि करते हैं। वे अमर हैं। क्या वे वैभव और गोधन प्राप्त करनेका मुख्य साधन हमें बतला देंगे? १

---

१ वर्षणानाम ॥

२ गव्यन्तः ॥

जिस प्रकार श्येनपक्षी अपने मन के रहने की जगह की ओर उड़जाता है (उसी प्रकार, मार्गमें उत्तमोत्तम स्तोत्रोंसे इन्द्रकी वन्दना करते हुए, मैंने उसके पास गमन किया)। ये इन्द्र सम्पत्ति देनेवाले, शत्रुओंसे कभी हार न जानेवाले और भक्तोंद्वारा अर्चन करने योग्य हैं। २

अपनी सब सेना साथ में लेकर इन्होंने बाण के तरकश (पीठ पर) बांधे हैं। ये बहुत श्रेष्ठ हैं। जिसे उनकी इच्छा होती है उसे देने के लिए वे उसके पास गाड़ ले जाते हैं। हे अत्यन्त श्रेष्ठ इन्द्र, अनेक प्रकारकी उत्कृष्ट सम्पत्ति लेकर आइये और हमारे लिए कृपणता न धारण कीजिए। ३

हे इन्द्र, यद्यपि आप अपने अनुचरों सहित चले थे तथापि घन के समान अपने शस्त्रसे आप अकेले ही सम्पत्तिमान दस्युका वध कर डाला ! वे चारों ओर से आपके धनुष पर एकदम टूट पड़े तथापि उन्हीं सनकों का ही नाश हुआ। आपका यजन करना उन्हें कभी मालूम ही न था। ४

हे उग्र इन्द्र, आपकी स्थिरता बखानने योग्य है और आपके अश्व पीतावर्ण के हैं। जब आपने, अपनी आज्ञा न माननेवाले दुष्टों को अन्तरिक्ष, पृथिवी और स्वर्ग से निकाल दिया तब उन्होंने अपने मस्तक (लज्जासे) पीछे फेर लिये। वे स्वयं तो आपका यजन कभी करते न थे; किन्तु अन्य यजन करनेवाले लोगों से स्पर्धा अवश्य किया करते थे। ५ (१)

इन्द्र, जो सर्वतोपरि दोषरहित है, उनकी सेना से भी इन्होंने युद्ध मचाया ! नवग्वों ने खड़े होकर इन्द्रको उत्तेजना दी। सामर्थ्यवान पुरुषोंसे लड़नेमें निर्बल लोगों की जैसी दुर्गति होती है वैसी ही जब उनकी भी दशा हो गई तब उन्हें इन्द्र की शक्ति का पूरा परिचय मिला और वे (जो मार्ग उन्हें सूझ पड़े उन) मार्गों से भग गये। ६

---

१ धनदाम ॥
२ समर्यः ॥
३ विषुणक ॥
४ हरिवः ॥
५ अनवद्यस्य ॥

उनके हँसने या रोने की कुछ भी परवा न करते हुए, हे इन्द्र, आपने उनसे युद्ध किया और उन्हें रजोलोक के बाहर निकाल दिया। दस्यु जब उच्च द्युलोक में था तब आपने उसे दग्ध किया और जिसने, आपके लिए सोमरस तैयार करके (आपका स्तवन किया उसके स्तोत्रका आपने स्वीकार किया।) ७

सुवर्ण भूषणों से सज्जित होकर उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी का परिवेष्टन किया। उन्होंने बहुतसा अपना पराक्रम प्रकट किया, तथापि वे इन्द्रका पराभव नहीं कर सके। उनके दूतों को इन्द्रने सूर्य के द्वारा हतवीर्य किया। ८

हे इन्द्र, जिस समय आपने, अपने सामर्थ्य से पृथ्वी और स्वर्ग पर, सब प्रकारसे, अपनी सत्ता प्रस्थापित की उस समय आपने अपना अपमान करनेवालों का अपने भक्तों के द्वारा पराभव करवाया और अपने तीव्र शस्त्रों से दस्यु को पराजित किया। ९

स्वर्ग और पृथ्वीका जिन्होंने अन्त लगाया वे भी अपने कपटजालों से धन दाता इन्द्रको नहीं घेर सके। सामर्थ्यवान इन्द्रने अपने वज्र को ही अपना सहायक माना और अपने तेज के योग से धेनुओं को अंधकार से निकाला। १० (२)

इन्द्रने जो मार्ग निकाल दिया उस मार्ग से जल के प्रवाह बहने लगे। परन्तु वृत्र ने, ऐसी महानदी में पैठकर, विशालरूप धारण किया, जिसमें नौका भी चल सकती है। फिर इन्द्रने वृत्र के वध में ही अपना पूरा ध्यान लगाया और उसे सदा के लिए पृथ्वी में मिला दिया। ११

---

१ अदहः ॥
२ स्वधाः ॥
३ महिना ॥
४ वृषभः ॥
५ धृनु ॥

इलीबिशा के दुर्गम दुर्ग आपने ढहा दिये और शृंगयुक्त शुष्ण का आपने विदारण किया। आपके साथ जिस शत्रु ने युद्ध किया उसी का आपने, अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य और वेग का उपयोग करके, वज्र से वध किया। १२

उनका सहायक वज्र उनके शत्रुओंको ताक कर चला। अपने तीव्र शस्त्रों से उन्होंने शत्रुओं के नगर ढहा दिये। इन्द्रने अपने वज्रको वृत्रसे मिला दिया और उसका संहार करके अपने मन का हौसला पूरा किया। १३

(हे इन्द्र, जिस कुत्सपर आपका अत्यन्त प्रेम था उसकी आपने रक्षा की और वीर्यशाली दशद्यु जब युद्धमें भिड़ा था तब उसकी सहायता करने को आप दौड़े। घोड़ों की टापों से उड़ी हुई धूल आकाशतक पहुंची, सूर्य को भी ऐसी अस्पष्टता प्राप्त हुई कि जिससे लोग फिर उसकी सत्ता को स्वीकार कर सकें।) १४

तुग्रियों के समुदाय में आपने उसके शान्तस्वभाव वाले वृषभोंकी रक्षा की और जब कि भूमि—सम्पादन की ईर्ष्या से युद्ध हो रहा था तब, हे उदार इन्द्र, आपने उसकी धेनुओंको सम्हाला। यहां बहुत कालपर्यन्त जमकर जिन्हों ने शत्रुताका बर्ताव किया उन अपने रिपुओं को आपने अत्यन्त अमंगल वेदना सहन कराई। १५ (३)

---

१ एतन्युम ॥

२ शाशदानः ॥

३ वृषभम् ॥

४ ज्योक ॥

सूक्त ३४.

ऋषि—हिरण्यस्तूप आङ्गिरस : देवता अश्विन ॥

हे सर्वज्ञ अश्विनो, आज आप तीनोंबार हमारे ही हूजिये । आपकी गति¹ सर्वत्र है । आपकी दानशूरता भी चारों ओर प्रसिद्ध है । जिस प्रकार वस्त्र और जाड़े की रात का अत्यन्त निकट सम्बन्ध रहता है उसी प्रकार आप दोनों एक दूसरे से संलग्न हैं । मुझ भक्त के आप वश हूजिये । १

यह सब को विदित हो है कि आप के जिस रथ के द्वारा मधुररस प्राप्त होता है उसके तीन पहिये हैं और वह सोम के मार्ग में गमन करता है । उस रथ का तोल सम्हालने के लिए उस पर तीन स्तम्भ खड़े किये गये हैं । हे अश्विनो, आप तीन बार रात को और तीन ही बार दिन को परिभ्रमण करते हैं । २

एक ही दिन में तीन बार आप (भक्तों के) पातक नष्ट करते है । आज आप तीन बार हमारे यज्ञ पर माधुर्य की वर्षा कीजिए । हे अश्विनो, आप (प्रतिदिन) सुप्रभात और संध्या के समय, हम पर ऐसे कृपा प्रसाद की रेल-पेल करते रहिए कि जिससे हमें सामर्थ्य प्राप्त हो । ३

आप तीन बार अपने निवासस्थान की ओर जाइये: तीन बार आप अपने आज्ञापालक भक्तों की ओर गमन कीजिए । और ऐसा कीजिए कि, जिसमें जो पुरुष अत्यन्त रक्षा करने योग्य है, उन्हें मानो, तीन बार से, तीन ही प्रकार की कोई शिक्षा मिलती हो । हे अश्विनो, आप हमें तीन बार ऐसा वैभव अर्पण कीजिए कि जिससे हमारे मन को आनन्द हो । और हमारे पोषण का ऐसा उत्तम प्रबन्ध कीजिए कि सब लोग कहने लगें कि, " हमारा ऐसा अटल सौभाग्य है । " ४

१ विभुः ॥
२ पवयः ॥
३ अवद्यगोहना ॥
४ पृक्षः ॥

हे अश्विनो, तीन बार सम्पत्ति लेकर हमारे पास आइये: जब कि तीन बार देवों का यजन हो रहा हो तब आप हमारे सद्विचारों को तथा सौभाग्य और सत्कीर्ति को भी तीन बार बढ़ाइये। (आकाश की) दुहिता ने आप के त्रिचक्री रथ में स्वर्ग में आरोहण किया था। ५

हे अश्विनो, स्वर्ग, पृथ्वी और उदक, तीनों से प्राप्त की हुई, तीनों प्रकार की, औषधें तीन तीन बार हमें दीजिए। कल्याण कारी सम्पत्ति के आप अधिपति हैं, और हमें कल्याण की इच्छा है: अतएव अपने तीनों महातत्वों से हमारे पुत्र को निर्भय कीजिए और, साथ ही, उस पर अपनी कृपादृष्टि भी रखिये। ६ (४)

हे अश्विनो, प्रति दिन तीन बार आपका यजन करना ठीक है। तीनों महातत्व साथ लेकर, आपने पृथिवी के चारों ओर विश्रान्ति ली है। हे सत्यस्वरूप अश्विनो, आप अत्यन्त दूर प्रदेश से रथ पर बैठ कर आइये, और जिस प्रकार प्राणवायु शरीर में प्रवेश करता है उसी प्रकार आप अपने तीन निवासस्थानों को गमन कीजिए। ७

हे अश्विनो, सप्तजननी के समान शोभा देनेवाली (सप्त) नदियों के साथ आप यहां आइये। यहां तीन यज्ञपात्र तैयार हैं और तीन प्रकारका हव्य बना रक्खा है। पृथिवी के तीन प्रदेश हैं। आप स्वर्ग के ऊपर परिभ्रमण करके स्थिर अन्तरिक्ष की रात दिन रक्षा करते रहते हैं। ८

आपके त्रिकोणाकृति रथ के तीन चक्र कहां हैं ? जिस पर रथवान के बैठने की उत्तम जगह बनी हुई है उस तुम्हारे रथ के बन्धुरें कहां हैं ? हे सत्यस्वरूप अश्विनो, जिस पर आरूढ़ होकर आप यज्ञ में पधारते हैं उस शक्तिवान रासभ को आप कब जोतेंगे ? ९

१ त्रिवृत् ॥
२ शुभस्पती ॥
३ त्रिधातुः ॥
४ आहावा ॥
५ वंधुरः ॥ (पिंजरोंमें मिले हुए जो तीन खंड दण्ड लगे रहते हैं.)

हे सत्यस्वरूप अश्विनो, इधर आइये । यह हव्य आपको अर्पण किया जाता है । आपका मुख मधुपान करने के लिए तैयार ही रहता है; अतएव आप स्वमुख से मधुर सोमरस पान कीजिए । आपका अवर्णनीय और घृतसमृद्ध रथ सविता देव, उषा के भी पहले, हमारे यज्ञ में भेज देते हैं । १०

हे सत्यस्वरूप अश्विनो तेंतीस देवों को साथ लेकर इस मधुर पेय के लिए आइये । हमारी आयु की वृद्धि कीजिए, पातकों का क्षालन कीजिए, हमारे शत्रुओंका निरोध कीजिये और हमें सदा अपने समागमका लाभ दीजिए । ११

हे अश्विनो, अपने त्रिकोणाकृति रथके द्वारा, वीर्यवान सन्ततिसे युक्त, सम्पत्ति हमारे पास ले आइये । आप हमारी प्रार्थना सुननेके लिए तैयार ही हैं; अतएव अपनी रक्षाके लिए हम आपको बार बार पुकारते हैं । जब पराक्रम के योग से सम्पत्ति प्राप्त होनेका सम्भव हो तब आप ऐसा कीजिए कि जिससे हमारे वैभवमें वृद्धि हो । १२ (५)

सूक्त ३५.

ऋषि-हिरण्यस्तूप आंगिरस । देवता-अग्नि मित्र वरुण, रात्रि, सविता । २-११ सविता ॥

हम अपने कल्याण के लिए पहले अग्निका पाचारण करते हैं । हम अपनी रक्षा के लिए मित्र-वरुण को भी यहां बुलाते हैं । सारे जगत को अपने अपने स्थानपर पहुँचानेवाली रात्रि को भी हम आमंत्रण देते हैं । हम अपना प्रतिपालन करने के लिए सविता देव को भी पुकारते हैं । १

१ आसभिः ॥
२ तारिष्टम ॥
३ शृण्वन्ता ॥
४ निवेशनीम ॥

(सम्पूर्ण भुवनोंका अवलोकन करनेवाले सवितादेव अपने सुवर्णमय रथ में बैठकर कृष्णवर्ण आकाश से मार्ग आक्रमण करते हुए, और अमर्त्य तथा मर्त्य सबको अपने अपने उद्योग में प्रवृत्त करते हुए, चले आ रहे हैं। २

सवितादेव उच्च और पुरोगामी मार्गमें गमन करते हैं। वे यजनीय हैं। वे अपने शुभ्र अश्वोंपर आरोहण करके चलते हैं। सवितादेव सम्पूर्ण पापोंका नाश करते हुए बहुत दूरवाले प्रदेशसे इधर आ रहे हैं। ३

सवितादेव हमारे लिये पूज्य हैं। उनके किरण चित्रविचित्र रंग के हैं। उनमें कृष्णवर्ण अंधकार को दूर करने का सामर्थ्य है। वे देखिये अपने सुवर्णभूषित रथ में बैठे हुए हैं। इस रथ का आड़ा डण्डा भी सुवर्ण का बना हुआ है। रथ के जितने भिन्न भिन्न आकार होते हैं वे सब इस रथ में पाये जाते हैं। ४

जिसका जुआ सुवर्णका है, ऐसे रथ को वहन करनेवाले सवितादेव के अश्व जिनके पैर सफेद शुभ्र हैं उन्होंने सब लोकोंपर स्वच्छ प्रकाश डाला है। सारे लोक और मनुष्य निरन्तर सवितादेव के समीपही वास करते हैं। ५

कुल द्युलोक तीन हैं। इनमें से दो सवितादेव के सन्निध रहते हैं और एकका स्थान यम के प्रदेश में है। सम्पूर्ण अमर विश्व, पहिये के अक्ष (अक्ष) के ... है, सवितादेव पर अवलम्बित है। जिसे इस बात का ज्ञान हो उसे बोलनेके लिए आगे बढ़ने दीजिए। ६ (६)

---

१ रजसा ॥

२ परावतः ॥

३ तविषीम ॥

४ अरुष्यन् ॥

५ चिकेतन ॥

जिनकी गति बहुत सुन्दर है, जिनकी प्रयाणपद्धति में बहुत गम्भीरता है, जो (शत्रुओं के) संहारकर्त्ता हैं और जिनमें उत्तम मार्गदर्शकता है उन्हीं सवितादेव ने सम्पूर्ण अन्तरिक्ष पर प्रकाश फैलाया है। इस समय सूर्य भला कहां होंगे ? यह किसे मालूम होगा कि उनकी रश्मियोंने कौन से द्युलोक तक मंजल मारी है ? 　७

उन्होंने पृथ्वी की आठों दिशा, तीनों निर्जल प्रदेश और सातों नदियों को सुप्रकाशित किया है। जिनके नेत्र सुवर्णकी तरह चमकदार हैं वे सवितादेव, अपने उपासकों के लिए उत्तमोत्तम रत्न साथ लिये हुए, बिलकुल पासही आ पहुँचे हैं। 　८

दूर ऊपर तक संचार करनेवाले और कांचनकी तरह सुन्दरवर्णके हस्तों से सुशोभित सविता स्वर्ग और पृथिवी के बीच में अपना मार्ग आक्रमण करते रहते हैं। वे रोगों का निर्मूलन करते हैं, सूर्यकी ओर गमन करते हैं और कृष्णवर्ण अन्तरिक्ष में द्युलोकतक जा पहुँचते हैं। 　९

जिनके हस्त सुवर्णकी तरह सुन्दर हैं, जो शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं जो उत्तम मार्गदर्शक हैं, जिनकी कृपासे सारे सुख प्राप्त होते हैं, और जो स्वकीयों का अभिमान रखनेवाले हैं वे सविता हमारी ओर आवें। प्रत्येक सायंकालमें जिनकी कीर्ति गाई जाती है वे सवितादेव, राक्षसों और यातुधानों का संहार करते हुए, यहां आने के लिए तैयार हुए हैं। 　१०

हे सवितादेव, धूल आदि निकाल कर जो अन्तरिक्ष के प्राचीन मार्ग स्वच्छ कर रखे गये हैं उन सुगम मार्गों से आज (यहां आकर) हमारी रक्षा कीजिए और हमें आशीर्वाद दीजिए। 　११ (७)

---

१ सुनीथः ।

२ दाशुषे ॥

३ अमीवाम् ॥

४ सुमृळीकः ॥

५ पूर्व्याम ॥

सूक्त ३६.

अनुवाक ८.

ऋषि–घोर । देवता–अग्नि ॥

देवके दर्शनकी उत्कंठा रखनेवाले तुम्हारे समान जो अनेक लोग हैं उनका अभिमान रखनेवाले अग्निदेव की प्रार्थना में सौन्दर्य–परिप्लुत स्तोत्रों से करता हूं । अन्य मनुष्य भी इन्हींका स्तवन करते रहते हैं । १

सामर्थ्य की वृद्धि करनेवाले अग्निको लोगों ने संस्थापना की है । हम भी उन्हें हव्य अर्पण करके प्रकट कराते हैं । हे अति उदार अग्निदेव, आप, इस जगह पराक्रमके कार्यों में प्रसन्न चित्तसे, हमारे रक्षक हों । २

आप सब देवोंको हव्य पहुँचानेवाले और अखिल ज्ञान सम्पूर्ण हैं; आपको हम अपना प्रतिनिधि चुनते हैं । आप बड़े हैं । आपकी दीप्ति सर्वत्र संचार करती है और आपके प्रकाशरश्मि स्वर्ग तक जा पहुंचते हैं । ३

आप (देवोंके) अत्यन्त पुरातन प्रतिनिधि हैं । वरुण, मित्र, और अर्यमा सब आपको प्रज्वलित करते रहते हैं । हे अग्निदेव, जो मानव आपको धन अर्पण करता है वह आपकी सहायता से सम्पूर्ण विश्व पर विजय प्राप्त करता है । ४

१ यह्वम् ॥
२ सहोवृधम् ॥
३ प्र-स्तृतम् ॥
४ ददाश ॥

हे अग्निदेव, आप हमारे हवि आनन्द से देवों तक पहुँचा देते हैं। आप हमारे गृहोंके स्वामी और सब लोगोंके प्रतिनिधि हैं। देवोंने जितने सनातन नियम बनाये हैं वे सब आपके यहां एकत्र हुए हैं। ५

हे अत्यन्त तरुण अग्निदेव, आप उत्तम भाग्य से युक्त हैं; आप में सम्पूर्ण हवि अर्पण किये जाते हैं। इस लिए आज, और इसके आगे भी हमें अत्यन्त सामर्थ्य प्राप्त कराकर, ऐसा किजिए कि जिससे हमारा यज्ञ प्रसन्न हृदय से देवों को प्राप्त हो। ६

भक्तिनम्र उपासक, स्वयं अपने तेजसे देदीप्यमान अग्निका अर्चन करते हैं। जिन पुरुषों ने शत्रुओं पर जय प्राप्त किया है वे अग्निको हव्य अर्पण करके प्रदीप्त करते हैं। ७

अपने शत्रुओं का नाश करके वे उस संकट से पार हुए। स्वर्ग, पृथ्वी और जल प्रवाहों को अपना निवासस्थान बनाने के लिए उन्होंने उनका विस्तार किया। सामर्थ्यवान अग्नि को पुकार करने पर वे कण्व के लिये सम्पत्तिदायक हों और गोधन आदि वैभव के विषय में हमें इच्छा उत्पन्न होने पर (न कि सिर्फ गौओं का ही शब्द, किन्तु) अश्वों का भी टेहनाना सुनाई दे। ८

हे अग्निदेव, आप श्रेष्ठ हैं। आप अपने आसन पर विराजमान हूजिये। देव समुदाय की ओर आप सदैव पधारते रहते हैं। अपना तेज प्रकट होने दीजिए। आप यज्ञ के योग्य हैं। आपका स्तवन बहुत होता रहता है। आप अपने शीघ्र संचारी और रमणीय आकार धारण करनेवाले धुएं के टोल छोड़ दीजिए। ९

सब देवों को हव्य पहुंचानेवाले हे अग्ने, आप अत्यन्त पवित्र हैं। मनु के लिए देवों ने यहां आपकी स्थापना की और। **कण्व, मेध्यातिथी, वृषा और उप-स्तुत** ने आप में उदारता प्रकट करने की, स्फूर्ति उत्पन्न की। १० (६)

---

१ मन्द्रः ॥
२ सुवीर्या ॥
३ स्वराजम ॥
४ गविष्टिषु ॥
५ देववीतमः ॥
६ धनस्पृतम् ॥

जिन्हें मेध्यातिथी और कण्व नियम से भी अधिक उज्ज्वलित करते हैं उन्हीं अग्नि की ज्वालाओं ने अपना प्रखर तेज प्रकट किया है। (ये मन्त्र उन्हीं अग्निदेव की महत्ता वर्णन कर रहे हैं। उन्हीं की हम भी स्तुति करते हैं)। ११

हे हवियों से शोभित होनेवाले अग्निदेव, आप हमारे वैभव को पूर्ण कीजिए। सचमुच आप देवों के अत्यन्त समीपीय सम्बन्धी हैं। जो सामर्थ्य कीर्ति होने योग्य है, उसके स्वामी आपही हैं। आप श्रेष्ठ हैं: आप हमें सौख्य अर्पण कीजिए। १२

सविता देव की तरह आप हमारी रक्षा के लिए सज्ज होकर खड़े हों। जो कि अंजली बांध कर आपका स्तवन करनेवाले भक्तों के साथ हम आपको पुकारते हैं, इस लिए आप उठकर खड़े हो जाइये और हमें सामर्थ्य दीजिए। १३

हमारे लिए खड़े होकर हमें पापों से बचाइये और अपनी ज्वलन शक्ति से सब खलों को दग्ध कर डालिये। हमें उठाकर खड़ा कीजिए, जिससे हम संसार में सुख पूर्वक संचार कर सकें। देव समुदाय में आपने हमारा हव्य ग्रहण किया है। १४

हे अग्निदेव, राक्षसों से हमारी संरक्षा कीजिए। लोग द्रव्य डुबाने के मिस से जो कपट करते हैं उनका उपसर्ग हमें न पहुँचने दीजिए। जो हमारी हत्या या वध करने के लिए उत्तेजित हुआ हो उस से भी, हे अत्यन्त तरुण और प्रकाशमान देव, हमें बचाइये। १५। १०।

१ इंधे ॥

२ स्वधावः ॥

३ ऊतये ॥

४ विदाः ॥

५ अररुण ॥

हे अग्निदेव, आपकी दंष्ट्रा मानों ज्वालों ही से बनी हुई जान पड़ती है। जो हमारा धन डुबानेवाला हो उसे, घन के सदृश किसी शस्त्र से, बिलकुल ही मार डालिये। जो (नीच) मनुष्य रात भर जाग कर हमारे विरुद्ध ममलहत करता हो उस हमारे शत्रु का हम पर अधिकार न चले। १६

अग्निदेव ने स्वयं पसन्द करके उत्तम सामर्थ्ययुक्त और उत्कृष्ट भाग्य कण्व को प्राप्त करा दिया। अग्नि ने मित्रों की रक्षा की। तथा उन्होंने, द्रव्योपार्ज्जन के समय, मेध्यातिथि और उपस्तुत का भी प्रतिपाल किया। १७

हम तुर्वश, यदु, और उग्रदेव को, उनके अत्यन्त दूरस्थान से, यहां आने के लिये, अग्नि के द्वारा, प्रार्थना करते हैं। दस्यु का नियंत्रण करनेवाले ये अग्निदेव नववास्त्व बृहद्रथ और तुर्वीति को यहां ले आवें। १८

हे अग्निदेव, मनु ने इस नाते से, कि आप लोकहित के लिए प्रकाश करनेवाली ज्योति हैं, सदैव के लिए आप की स्थापना की। आप न्याय नीति के साथ प्रकट हुए। घृत का हव्य आप को सदा अर्पण किया जाता है। जिन्हें विश्व के सम्पूर्ण लोग नमन करते हैं वही आप कण्व के लिए प्रदीप्त हुए थे। १९

अग्नि की ज्वालाएं उज्ज्वल, प्रबल, भयप्रद और ऐसी हैं कि जिनके निकट जाना असम्भव है। (हे अग्निदेव) राक्षस, पिशाच और सम्पूर्ण दुष्ट लोगों को सदा के लिए दग्ध कर डालिए। २० (११)

१ अत्यकभिः ॥
२ मानो ॥
३ परावत ॥
४ ऋतजातः ॥
५ अमवन्त ॥

सूक्त ३७.

ऋषि कण्व घोर । देवता मरुत॥

हे (कण्व, मरुद्गणों को सम्बोधन करके स्तवन कीजिए)। ये मरुद्गण सुन्दर रीति से रथ पर विराजमान हुए हैं। परन्तु वे अपने रथ में अश्व नहीं जुड़ाया करते। इन्हें क्रीड़ा बहुत अच्छी लगती है। १

ये मरुद्गण स्वयंप्रकाशित हैं। ये अपनी चित्तल हरिणी, अपनी तलवारें, अपने भाले, और अपने आभरण साथ लेकर इस जगत में प्रकट हुए। २

जिस समय वे अपने हाथ से अपनी चाबुक की आवाज करते हैं उस समय वह मुझे ऐसी सुनाई देती है मानो वह चाबुक यहीं बज रही हो। मार्ग में चलते समय वे उसे बड़ी सुन्दर रीति से (अपने हाथ में) रखते हैं। ३

अपने प्रिय इन मरुद्गणों की प्रसन्नता के लिए किसी दैविक स्तोत्र का गान करो। ये मरुद्गण (शत्रुओं को) कुचल डालनेवाले, तेजोविभव से युक्त और अत्यन्त प्रबल हैं। ४

धेनुओं को प्राप्त करने के लिये, पराक्रमी और क्रीडा निपुण मरुद्गणों का स्तवन करो। स्वादिष्ट रसोंका सेवन करके ये वीर्यवान हुए। ५ (१२)

स्वर्ग और पृथिवी को हिला डालनेवाले हे मरुद्देवताओ, (इस विश्व में) ऐसा कौन श्रेष्ठ है कि जिसे तुम (पृथ्वी के) सिरे तक फेंक नहीं दे सके? ६

१ अनश्वासः ॥
२ पृषतीभिः ॥
३ वदान ॥
४ देवत्तए ॥
५ जम्भे ॥
६ धूतयः ॥

आपके गमन करते समय, आपके उग्र कोप से भयभीत होकर मनुष्य प्रत्येक बार आधार ढूंढने लगे हैं । कठोर शिखरों वाला पर्वत तक (आपका कोप देखकर) भय कम्पित होगा । ७

इन मरुद्देवों का संचार आरम्भ होते ही, यह पृथ्वी, उनके आगमन के समय, डर से, इस प्रकार थर थर कांपने लगती है जैसे वार्धक्य से जीर्ण हुआ कोई नृपति । ८

इनका जहां जन्म हुआ वह स्थान अत्यन्त स्थिर है । अपनी माता के पेट से बाहर निकलने के लिए वे पक्षी ही बन गये । क्यों कि उनका सामर्थ्य द्विगुणित था । ९

इसके अतिरिक्त इन वाग्देवी के पुत्रों ने विश्व की सीमाएं बहुत दूरतक बढ़ाई, ताकि धेनु अपने वत्स के पास अच्छी तरह जा सके । १० (१३)

अपने मार्ग से जाते समय वे मेघ के बालक को नीचे गिरा देते हैं । इस मेघ बालक का आकार दीर्घ और विस्तृत है । उसे प्रायः कोई हानि नहीं पहुँचा सकता । ११

हे मरुद्देवताओ, आपका सामर्थ्य इतना बड़ा है कि उससे आप सब लोगों को हिला डालते हैं और पर्वतों को भी कम्पित करते हैं । १२

जिस समय मरुद्देव गमन करते हैं उस समय मार्ग में आपसमें उनका सम्भाषण होता है । वह क्या किसी (भाग्यवान) पुरुष को सुनाई देता होगा १३

१ यामाय ॥
२ जुजुर्वान ॥
३ निर्ऋतं ॥
४ अज्मेषु ॥
५ पृथुम ॥
६ अच्युच्यवीतन ॥
७ अध्वन ॥

अपने शीघ्रसंचारी वाहन पर बैठ कर तुरन्त ही यहां आइये। कण्व–मण्डली में आपके लिए हव्य रखा है; उसमें आनन्द मानिये। १४

वास्तव में आनन्द होने ही के लिए यह यहां रखा हुआ है। हम मनोभाव से केवल इन्हींके भक्त हैं। इन्होंने सम्पूर्ण जीवन हमारे अधीन कर रखा है, जिससे हम दीर्घकाल तक इस जगत् में रह सकें। १५ (१४)

सूक्त ३८.

ऋषि—काण्व घोर। देवता– मरुत्॥

जिस प्रकार अपने पुत्र के तोतले वचन सुनने के लिए लोलुप होकर पिता उसका हाथ प्रेमसे आकर पकड़ता है उसी प्रकार, हे मरुद्देवताओ, आप हमें वास्तवमें कब अपने हाथ में लेंगे? सोमरसमें पड़े हुए दर्भ के टुकड़े निकालकर हमने उसे आपके लिए तैयार कर रखा है। १

वास्तवमें आप किस ओर को–किस प्रदेशको मन करके—जाने के लिए स्वर्ग से चले हैं? क्या आप पृथ्वीकी ओर से नहीं आये? आपकी गौएं कहां हैं? उनका रांभना नहीं सुनाई देता। २

हे मरुद्देवताओ, आपके लाये हुए अपूर्व वैभव कहां है? आपसे प्राप्त होनेवाली सम्पत्ति कहां है? आपसे हमें जो सर्वसुन्दर सौभाग्य प्राप्त होनेवाले हैं वे कहां रखे हैं? ३

---

१ शोभम॥
२ जीवसे॥
३ कर्णप्रिय.
४ रण्यन्ति॥
५ सुम्ना॥

हे पृश्नियों के पुत्रो, यदि मर्त्यों में ही आप गिने जाते होंगे और आपकी स्तुति करनेवाला आपका उपासक मात्र अमरत्व पाता होगा, ४

तो सचमुच ही, जैसे किसी हरिनके घास चरनेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं कर सकता, वैसे ही आपके सेवक पर भी किसीकी अपकृपा नहीं हो सकती और यम के मार्ग से जाने के लिए वे कभी बाध्य नहीं हो सकते ! ५ (१५)

निर्दयता से हानि करनेवाली और बराबर बढ़ने जानेवाली सत्यानाशी (आपत) देवता हमें नाश करने में समर्थ न हो । महत्वाकांक्षा के साथही साथ उसका भी निपात हो । ६

सचमुच, ये बलशाली, परन्तु भय उत्पन्न करनेवाले देवता, बिलकुल ऊसर प्रदेशमें भी, वृष्टि करते हैं, और वायुकी ओर से वह वृष्टि खंडित नहीं होने देते । ७

जब उनके द्वारा पर्जन्य की वृष्टि होती है तब बछड़े के लिए रंभानेवाली गौ की तरह बिजली गर्जना करती है और माता जैसे अपने बच्चेको पेट से लगा लेती है उसी प्रकार (सारे जगतको) यह जोर से चिपका लेती है । ८

जिस समय ये पृथ्वी को पानी से तलातल कर देते हैं उस समय उदक की वृष्टि करनेवाले पर्जन्य के द्वारा ये दिन में भी घना अंधकार छा देते हैं । ९

---

१ स्थातन ॥
२ अजोष्यः ॥
३ दुर्हणा ॥
४ अवाताम ॥
५ मिमाति ॥
६ व्युन्दन्ति ॥

मरुतों की गर्जना सुनते ही इस पृथ्वी पर का एक एक घर हिल जाता है। यही नहीं, बल्कि मनुष्य तक थरथर कांपने लगता है।   १० (१६)

हे मरुतदेवताओं, मार्गमें क्लेश न पाते हुए, नाना प्रकार की मनोहर नदियों के किनारे किनारे अपनी सामर्थ्यवान भुजाओं का प्रताप प्रकट करते हुए गमन कीजिए।   ११

आपके रथों के पहियों की दौड़ें अभंग हों। आपके रथ और उनके घोड़े भारी हों। आपके हाथ की लगामें चित्रित हों।   १२

स्तुति करने की इच्छासे, ब्रह्मणस्पति को सम्बोधित करके, और उसी प्रकार अग्नि तथा इस सुन्दर मित्र को भी ध्यान में रखकर, निरन्तर स्तोत्रों से प्रार्थित करते रहो।   १३

सतत बरसानेवाली वृष्टि की तरह उच्च घोष करके स्तोत्र पाठ करो। स्तुतियो से परिपूर्ण किसी सुन्दर गीत का गान करो।   १४

जो सामर्थ्यवान तथा स्तुति करने योग्य हैं और अनेक स्तोत्रों से जिनका महात्म्य वर्णन किया गया है उन मरुतों के समुदाय को वन्दन करो। वे श्रेष्ठ मरुत् यहां, हमारे ऊपर अनुग्रह करने के लिए, बैठे हुए हों।   १५ (१७)

---

१ मद्म ॥

२ अखिद्रयामभिः ॥

३ अभीशवः ॥

४ दर्शतम् ॥

५ ततनः ॥

६ पनस्युम ॥

सूक्त ३९.

ऋषि कण्व घोर । देवता-मरुत ॥

सम्पूर्ण जगत को हिला देनेवाले हे मरुतो, जो कि आप अग्निज्वाला की तरह अपना प्रतिबिम्ब, इस प्रकार दूरके प्रदेश से, आगे की ओर डाल रहे हो, इस लिए किसकी कर्[१]मन से—किसके आग्रहसे—किसको मन में लाकर—वास्तव में किस पर अनुग्रह करने के लिए—आप चले है ? १

शत्रुओं का सत्यानाश करने के लिए आपके आयुध बराबर चलते रहे, और आपका बल उनका योग्य प्रतिकार करे। प्रशंसनीय सामर्थ्य केवल आपही के पास हो; कपटी मनुष्य के पास कभी न हो। २

हे वीरो, जब स्थिर पदार्थों को आप उनके स्थान से हिलाते हो, और अत्यन्त जड़ वस्तुओं को भी जब आप (वेगों की तरह) फिराते हो, तब पृथ्वीपर के वृक्षों और पर्वत की दरिखोरियों में आपका गमन होता रहता है। ३

हे शत्रुसंहारक मरुद्देवताओ, वास्तव में स्वर्ग अथवा पृथ्वी पर अब आपका कोई शत्रु नहीं बचा। हे भयप्रद देवताओ आपको सदैव सामर्थ्य प्राप्त हो, ताकि आप शत्रु पर आक्रमण कर सकें। ४

---

१ कत्वा ॥

२ पनीयसी ॥

३ व्याशाः ॥

४ तविषी ॥

वे पर्वतोंको कँपाते हैं और बड़े बड़े वृक्षों को भग्न करते हैं। ये मरुद्देव, मदोन्मत्त मनुष्य की तरह, अपने परिवार के साथ, इतस्ततः संचार करते रहते हैं। ५ (१८)

आपने चित्रविचित्र रंग की हरिनियोंको अपने रथ में जुटाया है और उन सब के आगे एक लाल रंग का हरिन रथ को खींच रहा है। पृथ्वी ध्यानपूर्वक आपके आने की आहट ले रही है और मनुष्य भय से व्याकुल हो रहे हैं। ६

हे रुद्रो, आप जिस प्रकार हमारी रक्षा करते हैं उस प्रकार की रक्षा की याचना, हम, सदैव, और वह भी तुरन्त हो, किससे करें? आप पहले जिस प्रकार हमारी रक्षा की लालसा से आते थे उसी प्रकार अब भी इस भयातुर कण्व को प्रसन्न करने के लिए यहां आइये। ७

कोई भी मनुष्य, फिर वह चाहे आपका भेजा हुआ हो, चाहे अन्य मनुष्यों का चिताया हुआ हो, यदि हम पर आक्रमण करने के लिए आता हो तो आप अपने सामर्थ्य से, शक्ति से, अथवा अपने भक्तजन संरक्षक शस्त्रों से उसके दो टुकड़े कर डालिये। ८

हे अत्यन्त ज्ञानशील और यज्ञार्ह मरुद्देवताओ, आप कण्व को जो कुछ वैभव अर्पण करनेवाले हो वह सम्पूर्ण अर्पण कीजिए और जिस प्रकार विद्युल्लता का आकर्षण पर्जन्य वृष्टि की ओर होता है, उसी प्रकार आप, हमारी संरक्षा के सम्पूर्ण साधन लेकर, हमारी ओर आइये। ९

---

१ विञ्चन्ति ॥
२ रोहितः ॥
३ मक्षु ॥
४ शवसा ॥
५ प्रयज्यवः ॥

सम्पूर्ण जगत् को हिला डालनेवाले और दानकर्मनिपुण मरुद्देवताओ, आप अपना सब सामर्थ्य और शक्ति अपने पास रखिये, और जो क्रोधाविष्ट पुरुष ऋषियों का भी द्वेष करता हो उस पर, बाणकी तरह, कोई शत्रु छोड़ दीजिए। (१० । १९)

सूक्त ४०.

ऋषि—कण्व घोर । देवता ब्रह्मणस्पति ॥

हे ब्रह्मणस्पतिदेव, उठिये, देवताओं की भक्ति करनेवाले उपासक आपके दर्शन की इच्छा करते हैं। अत्यन्त उदार मरुत यहां आवें। हे इन्द्र, उनके साथ आप (सोमरस) का आस्वाद लीजिए। १

सामर्थ्यसे प्रादुर्भूत होनेवाले हे देव, धन की राशि प्राप्त करने के अवसर पर (प्रत्येक) मनुष्य आपही को बुलाता है। हे मरुतो, जो (भक्त) आपको पुकारे उसके लिए सुन्दर अश्वों से युक्त उत्तम सामर्थ्य तैयार कर रखिये। २

ब्रह्मणस्पति यहां आवें, देवी सूनृता इधर आगमन करें। देवता लोग हमें ऐसा यज्ञ करने की स्फूर्ति दें कि जो उत्साह से हुआ करे, जो मनुष्यों के लिए हितकारी हो और जिससे अनेकों को सन्तोष प्राप्त हो। ३

वह धन, जो मनुष्य जाति के लिए अत्यन्त उपयोगी है, भाविक पुरुष को जो कोई अर्पण करता है वह अक्षय कीर्ति पाता है। उसके कल्याणार्थ हम इला देवी को हव्य अर्पण करते हैं। इला देवी ऐसी है जो वीरों का लाभ कराती है, शत्रुओं का निःपात करती है और जिसे कोई हानि नहीं पहुंचा सकता। ४

---

१ परिमन्यवे ॥
२ प्राशुः ॥
३ आवक्षे ॥
४ पङ्क्तिराधसम ॥
५ सुप्रतूर्तिम ॥

सचमुच जिसमें इन्द्र, वरुण, मित्र और अर्यमा देवता वास करते हैं वह अत्यन्त प्रशंसायोग्य मंत्र ब्रह्मणस्पति पढ़ रहे हैं । ५ (२०)

यज्ञ में हम, हे देवताओ, वही कल्याणकारी और अविनाशी मंत्र पढ़ते जायं ; हे वीरो, आप इस स्तुतिको भी अंगीकार कर रहे हैं, अतएव आपके भक्तको आप से प्राप्त होनेवाले सम्पूर्ण सुख (निस्सन्देह) भोगने को मिलेंगे । ६

भक्तिमान मनुष्य को कौन ग्रस सकता है ? सोमरस से दर्भो के अग्र निकाल डालनेवाले उपासक को कौन पराभूत करेगा ? हव्य अर्पण करनेवाले मनुष्यका, उसके सम्पूर्ण परिवार सहित (आज तक सदैव) उत्कर्ष ही होता रहा है और उसने (सदाही) सम्पूर्ण समृद्धि से भरे हुए भवन खड़े किये हैं । ७

वे (ब्रह्मणस्पति) अपना सम्पूर्ण बल एकत्र करेंगे, क्योंकि राजाओं के द्वारा वही (शत्रुका) वध कराते रहते हैं ; भय के अवसर पर भी वे (निर्भय) निवासस्थान तैयार कर रखते हैं ; छोटे, अथवा बड़े युद्धमें भी, इन्ही वज्रधारी देव का सामना करनेवाला अथवा उनका पराभव करनेवाला कोई नहीं । ८ (२१)

सूक्त ४१.

ऋषि कण्व घोर । देवता १–३ ७-८ वरुण, मित्र अर्यमा । ४–६ आदित्य ॥

अत्यन्त प्रज्ञावान मित्र, वरुण और अर्यमा देव जिसकी रक्षा करते हैं उस मनुष्य के लिए क्या किसी के द्वारा हानि होना सम्भव है ? १

---

१ उक्थ्यम ॥
२ प्रतिहर्यथ ॥
३ पस्त्याभि
४ सुक्षितिम ॥
५ दभ्यते ॥

जिन मनुष्यों का, मानों अपनी भुजा पर उनका सब भार लिये हुए, वे पोषण और शत्रु से रक्षण करते हैं वे मनुष्य सम्पूर्ण भय से मुक्त होकर वैभवशाली बनते हैं। २

ये (सम्पूर्ण विश्व के) राजा अपने सामने उनके (अर्थात् भक्तों के) संकटों का और शत्रुओं का नाश करते हैं और उनके अरिष्ट समूल नष्ट करते हैं। ३

हे आदित्यो, जो नीतिपथ की ओर जाता है उसका मार्ग सुगम और निष्कंटक होता है। अतएव, आपको भी बुरे (मनुष्य) का हविः मिलना कभी सम्भव नहीं। ४

हे शूर आदित्यो, जिस यज्ञ के लिए आप सरल मार्ग दिखलाकर मार्गोपदेशक बनते हैं वह क्या कभी आपका स्तवन करना भूलेगा? ५ (२२)

वह मनुष्य कहीं पराभव न पाते हुए उत्तम सम्पत्ति, सब प्रकारका वैभव और सन्तति को आपही आप प्राप्त करता है। ६

प्राणप्रिय स्नेहियो, मित्र और अर्यमा का स्तोत्र और वरुण का उत्कृष्ट हव्य हमें भला किस प्रकार सजाना चाहिए? ७

जो मनुष्य आपको गाली गलौज करे अथवा आपकी घृणा करे—फिर वह चाहे भाविक ही क्यों न हो तथापि—उसके साथ मेरा सम्भाषण न हो। आपही की दी हुई सम्पत्ति पर मैं सन्तोष मान कर चलता हूं। ८

---

१ बाहुतेव ॥
२ दुर्गा ॥
३ अवबादः ॥
४ नशत् ॥
५ अस्तृतः ॥
६ प्सरः ॥
७ सुम्नैः ॥

जो चारों (पुरुषार्थ) देनेवाला है और जिसके पास सम्पत्ति का कोश है, उसका भय सदा रखना चाहिए। उसके विषय में दुरुक्ति बोलने की लालसा न रखनी चाहिए। ६ (२३)

सूक्त ४२.

ऋषि-कण्व घोर । देवता-पूषा ॥

हे पूषा, हमें मार्ग में ले जाइये; हे विमोचन पुत्र, हमें संकटों से मुक्त कीजिए, हे देव, हमारे पास ही चलिये। १

हे पूषा, जो घृणायोग्य और दुष्ट भेड़िया हमारा मार्गोपदेशक बनना चाहता हो उसे मार्ग से निकाल डालिये। २

जो कपटी चोर हमारे मार्ग में विघ्न करता है उसे मार्ग से दूर भगा दीजिए। ३

दुर्वचनी और दुष्पी मनुष्य के तापदायक शरीरपर—फिर वह कोई भी हो—पैर रखकर खड़े हो जाओ। ४

हे सुन्दर प्रज्ञावान पूषा, जिस अपने कृपाप्रसाद के योग से आपने हमारे पितरों को वैभव सम्पन्न किया उसी आपके कृपाप्रसाद की हम इच्छा करते हैं। ५ (२४)

---

१ निधातोः ॥
२ तिर ॥
३ दुःशेवः ॥
४ दुराध्यितम् ॥
५ तपुषिम् ॥
६ मन्तुमः ॥

हे सकलसौभाग्यवन्त, हे सुवर्णशस्त्रों से विभूषित देव, हमें सकल सम्पत्ति सुलभ कीजिए । ६

जो हमारा पीछा करनेवाले हों उनके बीच से हमें बचा ले जाइये और हमारे मार्ग जाने के लिए सुलभ कर दीजिए । हे पूषा, यह आपको विदित ही है कि यहां क्या करना उचित है । ७

हमें ऐसे प्रदेश में ले जाइये जहां तृणकी विपुलता हो और मार्ग में कोई भी नवीन ताप उत्पन्न न हो । हे पूषा, यह आपको विदित ही है कि यहां क्या करना उचित है । ८

हे पूषा, आप सामर्थ्यवान हैं (इस लिए) हमारी (इच्छाएं) परिपूर्ण कीजिए हमें (सम्पत्ति) दीजिए । हमें तृप्त कीजिए । यह आपको विदित ही है कि यहां क्या करना उचित है । ९

(हम पूषा की निन्दा कदापि नहीं कर सकते; किन्तु उत्तम स्तोत्रों से उसका स्तवन करेंगे) इस सुन्दर देवता से हम वैभव की याचना करते हैं । १० (२५)

सूक्त ४३.

ऋषि–कण्व घोर । देवता १, २, ४, ६ रुद्र, ३ मित्र और वरुण, ७–९ सोम ॥

अत्यन्त प्रज्ञाशालि, अतिशय उदार, अतिशय बलवान और हृदय को अत्यन्त प्रमोददायक रुद्रको प्रसन्न करने के लिए हम भला स्तोत्र कब पढ़ें ? १

---

१ सुपाणा ॥
२ सश्चतः ॥
३ क्रतुम् ॥
४ विदः ॥
५ मेधामसि ॥
६ मीळ्हुष्टमाय ॥

इसके योग से अदिति देवी हमारे बालबच्चों के लिए, गौओं के लिए, सेवक जनों के लिए और पशुओं के लिए रुद्र के उत्तम आशीर्वाद लावेगी। २

(और) इसके योग से मित्र, वरुण, रुद्र, और उनके साथवाले सब (देवों) को हमारी पहचान रहेगी। ३

अपने कल्याण की इच्छा रखनेवाला भक्त, सब स्तुतियों के नाथ, सब यागों के स्वामी, और जलोपधियों के प्रभु रुद्र से जो धन मागता है उसी धन की हम याचना करते हैं। ४

रुद्र देवताओं के श्रेष्ठ वैभव हैं और इनका तेज देदीप्यमान सूर्य के समान और कान्ति सुवर्ण के समान है। ५ (२६)

ये ऐसा करते हैं कि जिससे हमारा अश्व, मेढ़ी, मेढ़ा, हमारे दास, दासी और धेनु उत्तम रीतिसे आनन्द में रह सकती हैं। ६

हे सोम हमारे लिए सैकडों मनुष्योंका धन और अनेक शूरोंकी यश संचित कर रखिये. ७

सोमको सतानेवाले अथवा हम से शत्रुता रखनेवाले लोग हमारे साथ उपद्रव न करें। हे इन्द्र, सामर्थ्यका कृत्य होते समय आप हमारे निकट रहिए, ८

---

१ तोकाय ॥
२ सजोषसः ॥
३ सुम्नम् ॥
४ शुक्रः ॥
५ सुगम् ॥
६ तुविनृम्णम् ॥
७ वाजे ॥

आप अमर हैं। आपका जो प्रजाजन नीतिमत्ताके अत्युच्च स्थल पर अधिष्ठित होता है उसे, हे सोम, आपने अपने पेट में लगाया है—उसे आपने अपने मस्तक पर धारण किया है, आपको यह मालूम है कि वे (दिव्य तेजसे) विभुषित हुए। ९ (२७)

अनुवाक ९.

सूक्त ४४.

ऋषि—प्रस्कण्व। देवता—अग्नि ॥

हे अमर अग्निदेव, आप उषा देवी के आश्चर्यकारक और उज्ज्वल वरदान हैं। हे अखिल ज्ञानवन्त, आप प्रातःकाल में प्रबुद्ध होनेवाले देवों को, आज हव्य अर्पण करनेवाले भक्त के पास ले आइये। १

हे अग्निदेव, आप अध्वर यज्ञों की सांगता करानेवाले और देवों को हव्य पहुँचानेवाले हैं। अतएव, आप सचमुच हमारे प्रिय प्रतिनिधि हैं। अश्विन और उषा के साथ आकर आप हमें उत्तम पराक्रम से युक्त विपुल कीर्ति का अधिकारी बनाइये। २

अग्निदेव मानो यज्ञों के वैभव ही हैं। वे तेजःस्वरूप, धूम्र की ध्वजा से युक्त, अनेकों को प्रिय, और मूर्तिमान सम्पत्ति ही हैं। उनको हम उषःकाल का स्वच्छ प्रकाश पड़ते ही अपना प्रतिनिधि नियत करते हैं। ३

---

१ नाभा ॥
२ उषर्बुधः ॥
३ श्रवः ॥
४ भाऋजीकम् ॥

जो श्रेष्ठ और अत्यन्त तरुण हैं; तथा जो उत्तम हवियों का सन्मान प्राप्त करनेवाले अतिथि, और हव्य अर्पण करनेवालों भक्तजनों को प्रिय हैं, उन सर्वज्ञ अग्निदेव की उषःकाल का स्वच्छ प्रकाश पड़ते ही, मैं स्तुति करता हूं। ४

विश्व को पालनकरनेवाले हे अमर अग्नि, हव्य पहुँचानेवाले यज्ञार्ह देव, आप हमारे अत्यन्त पूज्य संरक्षणकर्ता हैं; अतएव मैं आपका स्तवन करूंगा। ५ (२८)

आप मधुरभाषी, और सुन्दर हवियों का सन्मान पानेवाले हैं। हे अत्यन्त तरुण देव, आपके स्तवन भी उत्तमोत्तम हुए हैं। इस लिए स्तुति करनेवाले भक्तों के लिए आप जागरूक रहिये। ([illegible], ताकि वे दीर्घकाल तक जगत में रहें) और देवसमुदाय को हमारी प्रणति अर्पण कीजिए। ६

आप देवताओं को हव्य पहुँचानेवाले और सर्वज्ञ है। सचमुच आपही को सब लोग प्रदीप्त करते हैं। इस लिए सबकी ओर से निमंत्रित होनेवाले हे अग्निदेव, आप अत्यन्त प्रज्ञाशील देवताओं को सत्वर यहां ले आइये। ७

रात्रि के समाप्त होने पर स्वच्छ प्रातःकाल होते ही सविता, उषा, अश्वि, भग और अग्नि को (यहां ले आइये)। हे यज्ञ के सिद्धिदाता अग्निदेव, आप देवताओं को हव्य पहुँचानेवाले हैं। अतएव ये कण्व सोमरस तैयार करके, आपको प्रज्वलित कर रहे हैं। ८

---

१ व्युष्टिषु ॥
२ प्रियेध्य ॥
३ स्वाहुतः ॥
४ इन्धते ॥
५ सुतसोमासः ॥

हे अग्निदेव, सचमुच आप यज्ञों के स्वामी और मनुष्यों के प्रतिनिधि हैं। प्रभातकाल में ही जागृत होनेवाले और स्वर्गलोकको अपनी दृष्टि में रखनेवाले—देवों को आज सोमपान के लिए ले आइये। ९

दीप्तिवैभवों से युक्त रहनेवाले हे अग्निदेव, आप सम्पूर्ण विश्व में अत्यन्त सुन्दर हैं। आप पूर्वकालीन उषाओं के पीछे पीछे प्रकाशित होते रहते थे। ग्रामों में आपही सबों के संरक्षण करनेवाले हैं और यज्ञों में जो (यज्ञ) मनुष्यों को प्रिय है उसके अग्रणी भी आप ही हैं। १० (२०)

आप यज्ञों के साधनीभूत, देवताओं को हव्य पहुँचानेवाले आचार्य, अत्यन्त प्रज्ञाशील, सत्वर गमन करनेवाले प्रतिनिधि और मृत्युरहित हैं। हे देव, आपही को हम जन समुदाय में (लेजाकर) प्रस्थापित करते हैं। ११

आप स्वमित्रों को आनन्ददायक (यज्ञ के) आचार्य और हमारे अन्तरंग हैं। आप जब देवों के दूतकर्म के लिए गमन करते हैं तब आपकी ज्वाला, बड़ी बड़ी गर्जना करनेवाले सिंधु की लहरों की तरह, शोभित होती है। १२

हे अग्निदेव, आपके कान प्रार्थना सुनने के लिए बिलकुल तत्पर रहते हैं। अपने साथ संचार करनेवाले और भक्तों की चिन्ता रखनेवाले देवताओं के साथ आप (हमारी स्तुति) सुनिये, हमारे यज्ञ में पधारनेवाले मित्र और अर्यमा प्रातः-कालही दर्भासन पर विराजमान हो जावें। १३

---

१ स्वर्दृशः ॥
२ विभावसोः ॥
३ जीरम् ॥
४ मित्रमहः ॥
५ ग्रावाणः ॥

मरुद्देव, जो अतिशय उदार हैं—और जो नीतिनियमों को उत्तेजना देते हैं तथा अग्नि के द्वारा जिनकी जिह्वा तृप्त होती है—वे हमारी स्तुति श्रवण करें। अपने अनुशासन को कार्यरूप में परिणत करनेवाले वरुण, अश्विन और उषा के साथ, सोम का पान करें। १४ (३०)

सूक्त ४५.

ऋषि—प्रस्कण्व काण्व। देवता-अग्नि, देव॥

हे अग्निदेव, वसु, रुद्र और आदित्यों का सन्मान कीजिए। घृत का हव्य देनेवाले, उत्तम यज्ञ करनेवाले और मनु से जन्मे हुए जो पुरुष हों उनका भी इस यज्ञ में सन्मान कीजिए। १

रक्तवर्ण अश्वों से युक्त रहनेवाले हे स्तुतिप्रिय अग्निदेव, (सब) देवता अत्यन्त प्रज्ञावान हैं और हवि अर्पण करनेवाले भक्त की प्रार्थना सुनने में सचमुच ही वे अत्यन्त तत्पर रहते हैं। (इस लिए) उन्हें यहां ले आइये। उनकी कुल संख्या तैंतीस है। २

हे जातवेद अग्निदेव, आपकी आज्ञाएं बहुत श्रेष्ठ हैं। आप प्रियमेध की तरह, अत्रि की तरह, विरूप की तरह और अंगिरा की तरह, प्रस्कण्व की भी पुकार सुनिये। ३

बड़े बड़े स्तोत्र गानेवाले प्रियमेधों ने अपनी रक्षा के लिए, स्वतेज से यज्ञ में प्रकाशमान होनेवाले देदीप्यमान अग्नि को ही आमंत्रण दिया था। ४

---

१ अग्निजिह्वा॥
२ घृतप्रुषम्॥
३ श्रुष्टीवानः॥
४ श्रुधि॥
५ महिकेरवः॥

घृत की हवियों का स्वीकार करनेवाले हे उदार देव, जिन स्तुतियों के द्वारा कण्व के पुत्र आपको हवन करते हैं उन्हें आप श्रवण कीजिए। ५ (३१)

प्रार्थना श्रवण करने में आपकी शक्ति आश्चर्यकारक है। आप अनेक जनों को प्रिय हैं। आपके केश ज्वालारूप हैं। हे अग्निदेव, (देवों के पास) हव्य ले जाने के लिए, इस जगत के लोग, आपका पूजन करते रहते हैं। ६

आप हवि अर्पण करनेवाले, यज्ञ के आचार्य, अत्यन्त सम्पत्तिमान, भक्तों की पुकार सुननेवाले और अत्यन्त कीर्तिमान हैं। विद्वान लोग यज्ञ में आपही की संस्थापना करते हैं। ७

हे अग्निदेव, जिन्होंने सोमरस तैयार कर रखा है, जो अतिशय कान्ति से युक्त हैं और जिन्होंने हव्य हाथ में लिया है उन विद्वान लोगोंने भक्तिशील मनुष्यों के लिए, आपका मन हवि के अन्न की ओर आकर्षित किया है। ८

सामर्थ्य से जन्म पानेवाले हे उदार अग्निदेव, हे सूनिमन्त वैभव, प्रातःकाल में ही बाहर गमन करनेवाले देव समुदायों को, आज, इस यज्ञ में सोमपान के लिए, दर्भासनों पर, ला बैठाइये। ९

हे अग्निदेव, देवसमुदायों को यहां ले आइये और उन सब को एक ही बार आहुति देकर तृप्त कीजिए। हे अत्यन्त उदार देवो, यहां यह सोम रखा है। इसे आप पान कीजिए। यह कल का तैयार किया हुआ है। १० (३२)

---

१ घृताहवन ॥
२ विश्रु ॥
३ दिविष्टिषु ॥
४ बृहद्भाः ॥
५ प्रातर्याव्णः ॥
६ तिरोअह्नयम् ॥

हिन्दी, मराठी, गुजराती, और अङ्गरेजी चार
भाषाओं में अलग अलग प्रसिद्ध होनेवाला

वेदों का भाषांतर ।

प्रति मास में ६४ पृष्ठ; ३२ पृष्ठ संहिता [स्वर और पदपाठ सहित]

* * ३२ पृष्ठ भाषान्तर । * *

वर्ष १] अक्तूबर १९१२—भाद्रपद संवत् १९६९ [संख्या ४

वार्षिक मूल्य डाकव्ययसहित रु. ४.

हिन्दी

श्रुतिबोध.

सम्पादक ।

रामचंद्र विनायक पटवर्धन. बी. ए. एल्. एल्. बी.
अच्युत बलवंत कोल्हटकर. बी. ए. एल्. एल्. बी.
दत्तो अप्पाजी तुलजापुरकर. बी. ए. एल्. एल्. बी.

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत् ।
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।

यास्काचार्य.

प्रकाशक—प्राणशंकर अमृतराम दीक्षित.
'श्रुतिबोध' ऑफिस, ४७, कालकादेवी रास्ता, बम्बई.

Printed by Pranshankar Amritram Dixit for the Proprietor, at the "Subodhini" Press, Bazargate Street, Fort, Bombay.

अंग्रेजी प्रवेश.

अंग्रेजी प्रवेश अथवा संभाषणकी रीतिसे अंग्रेजी सीखनेका नमूना। मास्टरोंके लिये बडी उपयोगी पुस्तक। इसमें संभाषण रीतिसे अंग्रेजी सीखनेका ढङ्ग अच्छी तरह टिप्पणी देकर दिखलाया गया है।

जनार्दन विनायक ओक एम. ए.

तळेगांव—दाभाडे.

जि० पुना.

॥ ४६ ॥ १—१५ प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, १० विराड्गायत्री । ३, ११, ६, १२, १४, गायत्री । ५, ७, ९, १३, १५, २, ४, ८, निचृद्गायत्री ॥ १—१५ षड्जः स्वरः ॥

(४६) एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥

या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।
धिया देवा वसुविदा ॥ २ ॥

वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि ।
यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥ ३ ॥

हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा ।
पिता कुटस्य चर्षणिः ॥ ४ ॥

आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा ।
पातं सोमस्य धृष्णुया ॥ ५ ॥ ३३ ॥

एषो इति । उषाः । अपूर्व्या । वि । उच्छति । प्रिया । दिवः । स्तुषे । वाम् । अश्विना । बृहत् ॥ १ ॥ या । दस्रा । सिन्धुऽमातरा । मनोतरा । रयीणाम् । धिया । देवा । वसुऽविदा ॥ २ ॥ वच्यन्ते । वाम् । ककुहासः । जूर्णायाम् । अधि । विष्टपि । यत् । वाम् । रथः । विऽभिः । पतात् ॥ ३ ॥ हविषा । जारः । अपाम् । पिपर्ति । पपुरिः । नरा । पिता । कुटस्य । चर्षणिः ॥ ४ ॥ आऽदारः । वाम् । मतीनाम् । नासत्या । मतऽवचसा । पातम् । सोमस्य । धृष्णुऽया ॥ ५ ॥ ३३ ॥

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।
तामस्मे रासाथामिषम् ॥ ६ ॥

आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे ।
युञ्जाथामश्विना रथम् ॥ ७ ॥

अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः ।
धिया युयुज्र इन्दवः ॥ ८ ॥

दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे ।
स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥ ९ ॥

अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः ।
व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥ १० ॥ ३४ ॥

अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया ।
अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥ ११ ॥

या । नः । पीपरत् । अश्विना । ज्योतिष्मती । तमः । तिरः । तां । अस्मे इति । रासाथां । इषं ॥ ६ ॥ आ । नः । नावा । मतीनां । यातं । पाराय । गंतवे । युंजाथां । अश्विना । रथं ॥ ७ ॥ अरित्रं । वां । दिवः । पृथु । तीर्थे । सिंधूनां । रथः । धिया । युयुज्रे । इंदवः ॥ ८ ॥ दिवः । कण्वासः । इंदवः । वसु । सिंधूनां । पदे । स्वं । वव्रिं । कुह । धित्सथः ॥ ९ ॥ अभूत् । ऊं इति । भाः । ऊं इति । अंशवे । हिरण्यं । प्रति । सूर्यः । वि । अख्यत् । जिह्वया । असितः ॥ १० ॥ ३४ ॥ अभूत् । ऊं इति । पारं । एतवे । पंथाः । ऋतस्य । साधुऽया । अदर्शि ।

तत्सादिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति ।
मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥ १२ ॥
वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा ।
मनुष्वच्छम्भू आ गतम् ॥ १३ ॥
युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् ।
ऋता वनथो अक्तुभिः ॥ १४ ॥
उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम् ।
अविद्रियाभिरूतिभिः ॥ १५ ॥ ३५ ॥ ३ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ ४७ ॥ १-१० प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ निचृत्पथ्या बृहती । ३, ७ पथ्या बृहती । ९ विराट् पथ्या बृहती । २, ६, ८ निचृत्सतः पंक्तिः । ४, १० सतः पंक्तिः ॥ स्वरः—१, ५, ३, ७, ९ मध्यमः । २, ६, ८, ४, १० पञ्चमः ॥

(४७) अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥१॥

वि । सुतिः । दिवः ॥ ११ ॥ तत्ऽतत् । इत् । अश्विनोः । अवः । जरिता । प्रति । भूषति । मदे । सोमस्य । पिप्रतोः ॥ १२ ॥ वावसाना । विवस्वति । सोमस्य । पीत्या । गिरा । मनुष्वत् । शंभू इति शंऽभू । आ । गतं ॥ १३ ॥ युवोः । उषाः । अनु । श्रियं । परिऽज्मनोः । उपऽआचरत् । ऋता । वनथः । अक्तुऽभिः ॥ १४ ॥ उभा । पिबतं । अश्विना । उभा । नः । शर्म । यच्छतं । अविद्रियाभिः । ऊतिऽभिः ॥ १५ ॥ ३५ ॥ ३ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अयं । वां । मधुमत्ऽतमः । सुतः । सोमः । ऋतऽवृधा । तं । अश्विना । पिबतं । तिरःऽअह्न्यं । धत्तं । रत्नानि । दाशुषे ॥ १ ॥

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥२॥

अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥ ३ ॥

त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥४॥

याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्वस्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५॥१॥

सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

त्रिऽवंधुरेण । त्रिऽवृता । सुऽपेशसा । रथेन । आ । यातं । अश्विना । कण्वासः । वां । ब्रह्म । कृण्वंति । अध्वरे । तेषां । सु । शृणुतं । हवं ॥२॥ अश्विना । मधुमत्ऽतमं । पातं । सोमं । ऋतऽवृधा । अथ । अद्य । दस्रा । वसु । बिभ्रता । रथे । दाश्वांसं । उप । गच्छतं ॥ ३ ॥ त्रिऽसधस्थे । बर्हिषि । विश्वऽवेदसा । मध्वा । यज्ञं । मिमिक्षतं । कण्वासः । वां । सुतऽसोमाः । अभिऽद्यवः । युवां । हवंते । अश्विना ॥ ४ ॥ याभिः । कण्वं । अभिष्टिऽभिः । प्र । आवतं । युवं । अश्विना । ताभिः । सु । अस्मान् । अवतं । शुभः । पती इति । पातं । सोमं । ऋतऽवृधा ॥ ५ ॥ १ ॥ सुऽदासे । दस्रा । वसु । बिभ्रता । रथे । पृक्षः । वहतं । अश्विना । रयिं । समुद्रात् । उत । वा । दिवः । परि । अस्मे इति । धत्तं ।

यन्नासत्या पराव॒ति यद्वा॒ स्थो अधि॑ तु॒र्वशे॑ ।
अतो॒ रथे॑न सु॒वृता॑ न॒ आ ग॑तं सा॒कं सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ ॥७॥

अ॒र्वाञ्चा॑ वां॒ सप्त॑यो ऽध्वर॒श्रियो॒ वह॑न्तु॒ सव॒नेदुप॑ ।
इषं॑ पृ॒ञ्चन्ता॑ सु॒कृते॑ सु॒दान॑व॒ आ ब॒र्हिः सी॑दतं नरा ॥८॥

तेन॑ नासत्या ग॑तं॒ रथे॑न॒ सूर्य॑त्वचा ।
येन॒ शश्व॑दू॒हथु॑र्दा॒शुषे॒ वसु॒ मध्वः॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥९॥

उ॒क्थेभि॑र॒र्वागव॑से पुरू॒वसू॑ अ॒र्कैश्च॒ नि ह्व॑यामहे ।
शश्व॒त्कण्वा॑नां॒ सद॑सि प्रि॒ये हि कं॒ सोमं॑ प॒पथु॑रश्विना ॥१०॥२॥

॥ ४८ ॥ १—१६ प्रस्कण्व ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ७, ९ विराट् पथ्या बृहती । ५, १०, १३ निचृत् पथ्या बृहती । १२ बृहती । १४ पथ्या बृहती । ८, ६, १४ विराट् सत पंक्तिः । २, १०, १६ निचृत्सतः पंक्तिः । ८ पंक्तिः ॥ स्वरः—१, ३, ५, ७, ९, ११, १३, १२, १४ मध्यमः । [illegible] १४, [illegible] १० [illegible] १६ [illegible] पञ्चमः ॥

४८) स॒ह वा॒मेन॑ न उषो॒ व्यु॑च्छा दुहितर्दिवः ।
स॒ह द्यु॒म्नेन॑ बृह॒ता वि॑भावरि रा॒या दे॑वि॒ दास्व॑ती ॥१॥

पुरु स्पृहे ॥ ६ ॥ यत् । ना॒स॒त्या॒ । प॒रा॒ऽवति॑ । यत् । वा॒ । स्थः । अधि॑ । तु॒र्वशे॑ । अतः॑ । रथे॑न । सु॒ऽवृता॑ । नः॒ । आ । ग॒त॒म् । सा॒कम् । सूर्य॑स्य । र॒श्मिऽभिः॑ ॥ ७ ॥ अ॒र्वाञ्चा॑ । वा॒म् । सप्त॑यः । अ॒ध्व॒र॒ऽश्रियः॑ । वह॑न्तु । सव॑ना । इत् । उप॑ । इष॑म् । पृ॒ञ्चन्ता॑ । सु॒ऽकृते॑ । सु॒ऽदान॑वे । आ । ब॒र्हिः । सी॒द॒त॒म् । न॒रा॒ ॥ ८ ॥ तेन॑ । ना॒स॒त्या॒ । आ । ग॒त॒म् । रथे॑न । सूर्य॑ऽत्वचा । येन॑ । शश्व॑त् । ऊ॒हथुः॑ । दा॒शुषे॑ । वसु॑ । मध्वः॑ । सोम॑स्य । पी॒तये॑ ॥ ९ ॥ उ॒क्थेभिः॑ । अ॒र्वाक् । अव॑से । पु॒रु॒वसू॒ इति॑ पुरु॒ऽवसू॑ । अ॒र्कैः । च॒ । नि । ह्व॒या॒म॒हे॒ । शश्व॑त् । कण्वा॑नाम् । सद॑सि । प्रि॒ये । हि । क॒म् । सोम॑म् । प॒पथुः॑ । अ॒श्वि॒ना॒ ॥ १० ॥ २ ॥

स॒ह । वा॒मेन॑ । नः॒ । उ॒षः॒ । वि । उ॒च्छ॒ । दु॒हि॒तः॒ । दि॒वः॒ । स॒ह । द्यु॒म्नेन॑ । बृ॒ह॒ता । वि॒भा॒ऽव॒रि॒ । रा॒या । दे॒वि॒ । दास्व॑ती ॥ १ ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्विश्वसुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।
उदीरय प्रति मा सूनृता उषश्चोद राधो मघोनाम् ॥२॥

उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।
ये अस्या आचरणेषु दध्रिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥

उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥ ४ ॥

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥ ३ ॥

वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥ ६ ॥

अश्वऽवतीः । गोऽमतीः । विश्वऽसुविदः । भूरि । च्यवन्त । वस्तवे । उत् । ईरय । प्रति । मा । सूनृताः । उषः । चोद । राधः । मघोनां ॥ २ ॥ उवास । उषाः । उच्छात् । च । नु । देवी । जीरा । रथानां । ये । अस्याः । आऽचरणेषु । दध्रिरे । समुद्रे । न । श्रवस्यवः ॥ ३ ॥ उषः । ये । ते । प्र । यामेषु । युंजते । मनः । दानाय । सूरयः । अत्र । अह । तत् । कण्वः । एषां । कण्वऽतमः । नाम । गृणाति । नृणां ॥ ४ ॥ आ । घ । योषाऽइव । सूनरी । उषाः । याति । प्रऽभुंजती । जरयंती । वृजनं । पत्ऽवत् । ईयते । उत् । पातयति । पक्षिणः ॥ ५ ॥ ३ ॥ वि । या । सृजति । समनं । वि । अर्थिनः । पदं । न । वेति । ओदती । वयः । नकिः । ते । पप्तिऽवांसः । आसते । विऽउष्टौ । वाजिनीऽ

एषायुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥७॥

विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।
अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥ ८ ॥

उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥१०॥४॥

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥ ११ ॥

यति ॥ ६ ॥ एषा । अयुक्त । पराऽवतः । सूर्यस्य । उत्ऽअयनात् । अधि । शतं । रथेभिः । सुऽभगा । उषाः । इयं । वि । याति । अभि । मानुषान् ॥ ७ ॥ विश्वं । अस्याः । ननाम । चक्षसे । जगत् । ज्योतिः । कृणोति । सूनरी । अप । द्वेषः । मघोनी । दुहिता । दिवः । उषाः । उच्छत् । अप । स्रिधः ॥ ८ ॥ उषः । आ । भाहि । भानुना । चंद्रेण । दुहितः । दिवः । आऽवहंती । भूरि । अस्मभ्यं । सौभगं । विऽउच्छंती । दिविष्टिषु ॥ ९ ॥ विश्वस्य । हि । प्राणनं । जीवनं । त्वे इति । वि । यत् । उच्छसि । सूनरि । सा । नः । रथेन । बृहता । विभाऽवरि । श्रुधि । चित्रऽमघे । हवं ॥ १० ॥ ४ ॥ उषः । वाजं । हि । वंस्व । यः । चित्रः । मानुषे । जने । तेन । आ । वह । सुऽकृतः । अध्वरान् । उप । ये । त्वा । गृणंति । वह्नयः ॥ ११ ॥

विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्यमुषो वाजं सुवीर्यम् ॥१२॥

यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत ।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥ १३ ॥

ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि ।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥१४॥

उषो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।
प्र नो यच्छतादवृकं पृथु च्छर्दिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥१५॥

सं नो राया बृहता विश्वपेशसा मिमिक्ष्वा समिळाभिरा ।
सं द्युम्नेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥१६॥५॥

विश्वान् । देवान् । आ । वह । सोमऽपीतये । अन्तरिक्षात् । उषः । त्वम् । सा । अस्मासु । धाः । गोऽमत् । अश्वऽवत् । उक्थ्यम् । उषः । वाजम् । सुऽवीर्यम् ॥ १२ ॥ यस्याः । रुशन्तः । अर्चयः । प्रति । भद्राः । अदृक्षत । सा । नः । रयिम् । विश्वऽवारम् । सुऽपेशसम् । उषाः । ददातु । सुग्म्यम् ॥ १३ ॥ ये । चित् । हि । त्वाम् । ऋषयः । पूर्वे । ऊतये । जुहूरे । अवसे । महि । सा । नः । स्तोमान् । अभि । गृणीहि । राधसा । उषः । शुक्रेण । शोचिषा ॥ १४ ॥ उषः । यत् । अद्य । भानुना । वि । द्वारौ । ऋणवः । दिवः । प्र । नः । यच्छतात् । अवृकम् । पृथु । छर्दिः । प्र । देवि । गोऽमतीः । इषः ॥ १५ ॥ सम् । नः । राया । बृहता । विश्वऽपेशसा । मिमिक्ष्व । सम् । इळाभिः । आ । सम् । द्युम्नेन । विश्वऽतुरा । उषः । महि । सम् । वाजैः । वाजिनीऽवति ॥ १६ ॥ ५ ॥

॥ ४९ ॥ १—४ प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ निचृदनुष्टुप् छन्दः ॥ गान्धारः स्वरः ॥

(४९) उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।

वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १ ॥

सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।

तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २ ॥

वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।

उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥

व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।

तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ॥६॥

॥ ५० ॥ १—१३ प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ सूर्यो देवता ॥ छन्दः १, ६ निचृद्गायत्री । २, ४, ८, ९ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । ३ गायत्री । ७ यवमध्या विराड्गायत्री । १०, ११ निचृदनुष्टुप् । १२, १३ अनुष्टुप् ॥ स्वरः— १—९ षड्जः । १०—१३ गान्धारः ॥

(५०) उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।

दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ १ ॥

उषः । भद्रेभिः । आ । गहि । दिवः । चित् । रोचनात् । अधि । वहन्तु । अरुणऽप्सवः । उप । त्वा । सोमिनः । गृहं ॥ १ ॥ सुऽपेशसं । सुऽखं । रथं । यं । अधिऽअस्थाः । उषः । त्वं । तेन । सुऽश्रवसं । जनं । प्र । अव । अद्य । दुहितः । दिवः ॥ २ ॥ वयः । चित् । ते । पतत्रिणः । द्विऽपत् । चतुःऽपत् । अर्जुनि । उषः । प्र । आरन् । ऋतून् । अनु । दिवः । अंतेभ्यः । परि ॥३॥ विऽउच्छंती । हि । रश्मिऽभिः । विश्वं । आऽभासि । रोचनं । तां । त्वां । उषः । वसुऽयवः । गीःऽभिः । कण्वाः । अहूषत ॥ ४ ॥ ६ ॥

उत् । ऊं इति । त्यं । जातऽवेदसं । देवं । वहंति । केतवः । दृशे । विश्वाय । सूर्यं ॥ १ ॥

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः ।

सूराय विश्वचक्षसे ॥ २ ॥

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु ।

भ्राजन्तो अग्नयो यथा ॥ ३ ॥

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य ।

विश्वमा भासि रोचनम् ॥ ४ ॥

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान् ।

प्रत्यङ्विश्वं स्वर्दृशे ॥ ५ ॥ ७ ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु ।

त्वं वरुण पश्यसि ॥ ६ ॥

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः ।

पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥ ७ ॥

अप । त्ये । तायवः । यथा । नक्षत्रा । यंति । अक्तुऽभिः । सूराय । विश्वऽचक्षसे ॥ २ ॥ अदृश्रं । अस्य । केतवः । वि । रश्मयः । जनान् । अनु । भ्राजंतः । अग्नयः । यथा ॥ ३ ॥ तरणिः । विश्वऽदर्शतः । ज्योतिःऽकृत् । असि । सूर्य । विश्वं । आ । भासि । रोचनं ॥ ४ ॥ प्रत्यङ् । देवानां । विशः । प्रत्यङ् । उत् । एषि । मानुषान् । प्रत्यङ् । विश्वं । स्वः । दृशे ॥ ५ ॥ ७ ॥ येन । पावक । चक्षसा । भुरण्यंतं । जनान् । अनु । त्वं । वरुण । पश्यसि ॥ ६ ॥ वि । द्यां । एषि । रजः । पृथु । अहा । मिमानः । अक्तुऽभिः । पश्यन् । जन्मानि । सूर्य ॥ ७ ॥

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य ।
शोचिष्केशं विचक्षण ॥ ८ ॥

अयुक्त सप्त शुन्ध्युवः सूरो रथस्य नप्त्यः ।
ताभिर्याति स्वयुक्तिभिः ॥ ९ ॥

उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥ १२ ॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन सहसा सह ।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषते रधम् ॥ १३ ॥ ८॥९॥

सप्त । त्वा । हरितः । रथे । वहन्ति । देव । सूर्य । शोचिःऽकेशं । विऽचक्षण ॥ ८ ॥ अयुक्त । सप्त । शुन्ध्युवः । सूरः । रथस्य । नप्त्यः । ताभिः । याति । स्वयुक्तिऽभिः ॥ ९ ॥ उत् । वयं । तमसः । परि । ज्योतिः । पश्यन्तः । उत्ऽतरं । देवं । देवऽत्रा । सूर्यं । अगन्म । ज्योतिः । उत्ऽतमं ॥ १० ॥ उत्ऽयन् । अद्य । मित्रऽमहः । आऽरोहन् । उत्ऽतरां । दिवं । हृत्ऽरोगं । मम । सूर्य । हरिमाणं । च । नाशय ॥ ११ ॥ शुकेषु । मे । हरिमाणं । रोपणाकासु । दध्मसि । अथो इति । हारिद्रवेषु । मे । हरिमाणं । नि । दध्मसि ॥ १२ ॥ उत् । अगात् । अयं । आदित्यः । विश्वेन । सहसा । सह । द्विषंतं । मह्यं । रंधयन् । मो इति । अहं । द्विषते । रधं ॥ १३ ॥ ८ ॥ ९ ॥

॥ दशमोऽनुवाकः ॥

॥ ५१ ॥ १-१५ सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः- १, ९, १० जगती । २, ५, ८ विराड् जगती । ११-१३ निचृज्जगती । ३, ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६, ७, त्रिष्टुप् । १४, १५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ स्वरः- १, २, ९, १०, ५, ११-१३, ८ निषादः । ३, ४, ६, ७, १४, १५ धैवतः ॥

(५१) अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम् ।
यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत ॥ १ ॥
अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम् ।
इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत् ॥ २ ॥
त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित् ।
ससेन चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥ ३ ॥

॥ दशमोऽनुवाकः ॥

अभि । त्यं । मेषं । पुरुऽहूतं । ऋग्मियं । इन्द्रं । गीःऽभिः । मदत । वस्वः । अर्णवं । यस्य । द्यावः । न । विऽचरंति । मानुषा । भुजे । मंहिष्ठं । अभि । विप्रं । अर्चत ॥ १ ॥ अभि । ईं । अवन्वन् । सुऽअभिष्टिं । ऊतयः । अंतरिक्षऽप्रां । तविषीभिः । आऽवृतं । इंद्रं । दक्षासः । ऋभवः । मदऽच्युतं । शतऽक्रतुं । जवनी । सूनृता । आ । अरुहत् ॥ २ ॥ त्वं । गोत्रं । अंगिरःऽभ्यः । अवृणोः । अप । उत । अत्रये । शतऽदुरेषु । गातुऽवित् । ससेन । चित् । विऽमदाय । अवहः । वसु । आजौ । अद्रिं । वावसानस्य । नर्तयन् ॥ ३ ॥ त्वं । अपां । अपिऽधा-

त्वमपामपिधानावृणोरपाधारयः पर्वते दानुमद्वसु ।
वृत्रं यदिन्द्र शवसावधीरहिमादित्सूर्यं दिव्यारोहयो दृशे ॥ ४ ॥
त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥५॥ ९ ॥
त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥६॥
त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते ।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥ ७ ॥

धाना । अवृणोः । अप । अधारयः । पर्वते । दानुऽमत् । वसु । वृत्रं । यत् । इन्द्र । शवसा । अवधीः । अहिं । आत् । इत् । सूर्यं । दिवि । आ । अरोहयः । दृशे ॥ ४ ॥ त्वं । मायाभिः । अप । मायिनः । अधमः । स्वधाभिः । ये । अधि । शुप्तौ । अजुह्वत । त्वं । पिप्रोः । नृऽमनः । प्र । अरुजः । पुरः । प्र । ऋजिश्वानं । दस्युऽहत्येषु । आविथ ॥ ५ ॥ ९ ॥ त्वं । कुत्सं । शुष्णऽहत्येषु । आविथ । अरंधयः । अतिथिऽग्वाय । शंबरं । महांतं । चित् । अर्बुदं । नि । क्रमीः । पदा । सनात् । एव । दस्युऽहत्याय । जज्ञिषे ॥ ६ ॥ त्वे इति । विश्वा । तविषी । सध्र्यक् । हिता । तव । राधः । सोमऽपीथाय । हर्षते । तव । वज्रः । चिकिते । बाह्वोः । हितः । वृश्च । शत्रोः । अव । विश्वानि । वृष्ण्या ॥ ७ ॥

वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।

शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥८॥

अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रतानाभूभिरिन्द्रः श्नथयन्ननाभुवः।

वृद्धस्य चिद्वर्धतो द्यामिनक्षतः स्तवानो वम्रो वि जघान संदिहः ॥९॥

तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः।

आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः ॥१०॥१०॥

मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वङ्कू वङ्कुतराधि तिष्ठति।

उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः ॥११॥

वि। जानीहि। आर्यान्। ये। च। दस्यवः। बर्हिष्मते। रंधय। शासत्। अव्रतान्। शाकी। भव। यजमानस्य। चोदिता। विश्वा। इत्। ता। ते। सधऽमादेषु। चाकन ॥ ८ ॥ अनुऽव्रताय। रंधयन्। अपऽव्रतान्। आऽभूभिः। इंद्रः। श्नथयन्। अनाभुवः। वृद्धस्य। चित्। वर्धतः। द्याम्। इनक्षतः। स्तवानः। वम्रः। वि। जघान। संऽदिहः ॥ ९ ॥ तक्षत्। यत्। ते। उशना। सहसा। सहः। वि। रोदसी इति। मज्मना। बाधते। शवः। आ। त्वा। वातस्य। नृऽमनः। मनःऽयुजः। आ। पूर्यमाणम्। अवहन्। अभि। श्रवः ॥ १० ॥ १० ॥ मन्दिष्ट। यत्। उशने। काव्ये। सचा। इंद्रः। वंकू इति। वंकुऽतरा। अधि। तिष्ठति। उग्रः। ययिम्। निः। अपः। स्रोतसा। असृजत्। वि। शुष्णस्य। दृंहिताः। ऐरयत्। पुरः ॥११॥ आ। स्म। रथम्। वृषऽपानेषु।

आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ॥१२॥
अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते ।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३॥
इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः ।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥ १४ ॥
इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय तवसेऽवाचि ।
अस्मिन्निन्द्र वृजने सर्ववीराः स्मत्सूरिभिस्तव शर्मन्त्स्याम ॥१५॥११॥

तिष्ठसि । शार्यातस्य । प्रऽभृताः । येषु । मंदसे । इंद्र । यथा । सुतऽसोमेषु । चाकनः । अनर्वाणं । श्लोकं । आ । रोहसे । दिवि ॥ १२ ॥ अददाः । अर्भां । महते । वचस्यवे । कक्षीवते । वृचयां । इंद्र । सुन्वते । मेना । अभवः । वृषणश्वस्य । सुक्रतो इति सुऽक्रतो । विश्वा । इत् । ता । ते । सवनेषु । प्रऽवाच्या ॥ १३ ॥ इंद्रः । अश्रायि । सुऽध्यः । निरेके । पज्रेषु । स्तोमः । दुर्यः । न । यूपः । अश्वऽयुः । गव्युः । रथऽयुः । वसुऽयुः । इंद्रः । इत् । रायः । क्षयति । प्रऽयंता ॥ १४ ॥ इदं । नमः । वृषभाय । स्वऽराजे । सत्यऽशुष्माय । तवसे । अवाचि । अस्मिन् । इंद्र । वृजने । सर्वऽवीराः । स्मत् । सूरिऽभिः । तव । शर्मन् । स्याम ॥ १५ ॥ ११ ॥

॥ ५२ ॥ १–१५ सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ८ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् । ९, १० स्वराट् त्रिष्टुप् । १२, १३, १५ निचृत् त्रिष्टुप् । २–४ निचृज्जगती । ५, १४ जगती । ६, ११ विराड् जगती ॥ स्वरः—१, ७—१०, १२, १३, १५ धैवतः । २–६, ११, १४ निषादः ॥

(५२) त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते ।
अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥१॥
स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे ।
इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥ २ ॥
स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः ।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥ ३ ॥
आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः ।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ॥ ४ ॥

त्यं । सु । मेषं । महय । स्वःऽविदं । शतं । यस्य । सुऽभ्वः । साकं । ईरते । अत्यं । न । वाजं । हवनऽस्यदं । रथं । आ । इंद्रं । ववृत्यां । अवसे । सुवृक्तिऽभिः ॥ १ ॥ सः । पर्वतः । न । धरुणेऽषु । अच्युतः । सहस्रऽऊतिः । तविषीषु । ववृधे । इंद्रः । यत् । वृत्रं । अवधीत् । नदीऽवृतं । उब्जन् । अर्णांसि । जर्हृषाणः । अंधसा ॥ २ ॥ सः । हि । द्वरः । द्वरिषु । वव्रः । ऊधनि । चंद्रऽबुध्नः । मदऽवृद्धः । मनीषिभिः । इंद्रं । तं । अह्वे । सुऽअपस्यया । धिया । मंहिष्ठऽरातिं । सः । हि । पप्रिः । अंधसः ॥ ३ ॥ आ । यं । पृणंति । दिवि । सद्मऽबर्हिषः । समुद्रं । न । सुऽभ्वः । स्वाः । अभिष्टयः । तं । वृत्रऽहत्ये । अनु । तस्थुः । ऊतयः । शुष्माः । इंद्रं । अवाताः । अह्रुतऽप्सवः ॥ ४ ॥ अभि । स्वऽवृष्टिं । मदे । अस्य । युध्यतः । रघ्वीःऽइव ।

अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः ।
इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधीँरिव त्रितः ॥५॥१२॥
परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत् ।
वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥ ६ ॥
ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥७॥
जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः ।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥ ८ ॥
बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्यमकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ९ ॥

प्रवणे । सस्रुः ॥ ऊतयः । इंद्रः । यत् । वज्री । धृषमाणः । अंधसा । भिनत् । वलस्य । परिधीन्ऽइव । त्रितः ॥ १२ ॥ परि । ईम् । घृणा । चरति । तित्विषे । शवः । अपः । वृत्वी । रजसः । बुध्नं । आ । अशयत् । वृत्रस्य । यत् । प्रवणे । दुःऽगृभिश्वनः । निऽजघंथ । हन्वोः । इंद्र । तन्यतुं ॥ ६ ॥ ह्रदं । न । हि । त्वा । निऽऋषंति । ऊर्मयः । ब्रह्माणि । इंद्र । तव । यानि । वर्धना । त्वष्टा । चित् । ते । युज्यं । ववृधे । शवः । ततक्ष । वज्रं । अभिभूतिऽओजसं ॥ ७ ॥ जघन्वान् । ऊं इति । हरिऽभिः । संभृतक्रतो इति संभृतऽक्रतो । इंद्र । वृत्रं । मनुषे । गातुऽयन् । अपः । अयच्छथाः । बाह्वोः । वज्रं । आयसं । अधारयः । दिवि । आ । सूर्यं । दृशे ॥ ८ ॥ बृहत् । स्वःऽचंद्रं । अमऽवत् । यत् । उक्थ्यं । अकृण्वत । भियसा । रोहणं । दिवः । यत् । मानुषऽप्रधनाः । इंद्रं । ऊतयः । स्वः । नृऽसाचः । मरुतः । अमदन् । अनु ॥ ९ ॥

द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते ।
वृत्रस्य यद्बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः ॥१०॥१३॥
यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन्विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥११॥
त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वःपरिभूरेष्या दिवम् ॥१२॥
त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः ।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥१३॥
न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः ।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् ॥१४॥

द्यौः । चित् । अस्य । अमऽवान् । अहेः । स्वनात् । अयोयवीत् । भियसा । वज्रः । इंद्र । ते । वृत्रस्य । यत् । बद्बधानस्य । रोदसी इति । मदे । सुतस्य । शवसा । अभिनत् । शिरः ॥ १० ॥ १३ ॥ यत् । इत् । नु । इंद्र । पृथिवी । दशऽभुजिः । अहानि । विश्वा । ततनंत । कृष्टयः । अत्र । अह । ते । मघऽवन् । विऽश्रुतं । सहः । द्यां । अनु । शवसा । बर्हणा । भुवत् ॥ ११ ॥ त्वं । अस्य । पारे । रजसः । विऽओमनः । स्वभूतिऽओजाः । अवसे । धृषत्ऽमनः । चकृषे । भूमिं । प्रतिऽमानं । ओजसः । अपः । स्वरिति स्वः । परिऽभूः । एषि । आ । दिवं ॥ १२ ॥ त्वं । भुवः । प्रतिऽमानं । पृथिव्याः । ऋष्वऽवीरस्य । बृहतः । पतिः । भूः । विश्वं । आ । अप्राः । अंतरिक्षं । महिऽत्वा । सत्यं । अद्धा । नकिः । अन्यः । त्वाऽवान् ॥ १३ ॥ न । यस्य । द्यावापृथिवी इति । अनु । व्यचः । न । सिंधवः । रजसः । अंतं । आनशुः । न । उत । स्वऽवृष्टिं । मदे । अस्य । युध्यतः । एकः । अन्यत् । चकृषे । विश्वं । आनुषक् ॥ १४ ॥

आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ।
वृत्रस्य यद्भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥ १५ ॥ १४ ॥

॥ ५३ ॥ १-११ सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द–जगती १०-११ त्रिष्टुप्

(५३) न्यू१षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः ।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥ १ ॥
दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥२॥
शचीव इन्द्र पुरुकृद्द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः ॥ ३ ॥

आर्चन् । अत्र । मरुतः । सस्मिन् । आजौ । विश्वे । देवासः । अमदन् । अनु । त्वा । वृत्रस्य । यत् । भृष्टिऽमता । वधेन । नि । त्वं । इंद्र । प्रति । आनं । जघंथ ॥ १५ ॥ १४ ॥

नि । ऊं इति । सु । वाचं । प्र । महे । भरामहे । गिरः । इंद्राय । सदने । विवस्वतः । नु । चित् । हि । रत्नं । ससताऽइव । अविदत् । न । दुःऽस्तुतिः । द्रविणःऽदेषु । शस्यते ॥ १ ॥ दुरः । अश्वस्य । दुरः । इंद्र । गोः । असि । दुरः । यवस्य । वसुनः । इनः । पतिः । शिक्षाऽनरः । प्रऽदिवः । अकामऽकर्शनः । सखा । सखिऽभ्यः । तं । इदं । गृणीमसि ॥ २ ॥ शचीऽवः । इंद्र । पुरुऽकृत् । द्युमत्ऽतम । तव । इत् । इदं । अभितः । चेकिते । वसु । अतः । संऽगृभ्य । अभिऽभूते । आ । भर । मा । त्वाऽयतः । जरितुः । कामं । ऊनयीः ॥ ३ ॥

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥
समिन्द्र राया समिषा रभेमहि सं वाजेभिः पुरुश्चन्द्रैरभिद्युभिः ।
सं देव्या प्रमत्या वीरशुष्मया गोअग्रयाश्वावत्या रभेमहि ॥ ५ ॥ १५ ॥
ते त्वा मदा अमदन्तानि वृष्ण्या ते सोमासो वृत्रहत्येषु सत्पते ।
यत्कारवे दश वृत्राण्यप्रति बर्हिष्मते नि सहस्राणि बर्हयः ॥६॥
युधा युधमुप घेदेषि धृष्णुया पुरा पुरं समिदं हंस्योजसा ।
नम्या यदिन्द्र सख्या परावति निबर्हयो नमुचिं नाम मायिनम् ॥७॥
त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत्पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥८॥

एभिः । द्युऽभिः । सुऽमनाः । एभिः । इंदुऽभिः । निःऽरुंधानः । अमतिं । गोभिः । अश्विना । इंद्रेण । दस्युं । दरयंत इंदुऽभिः । युतऽद्वेषसः । सं । इषा । रभेमहि । ॥ ४ ॥ सं । इंद्र । राया । सं । इषा । रभेमहि । सं । वाजेभिः । पुरुऽचंद्रैः । अभिद्युऽभिः । सं । देव्या । प्रऽमत्या । वीरऽशुष्मया । गोऽअग्रया । अश्वऽवत्या । रभेमहि ॥ ५ ॥ १५ ॥ ते । त्वा । मदाः । अमदन् । तानि । वृष्ण्या । ते । सोमासः । वृत्रऽहत्येषु । सत्ऽपते । यत् । कारवे । दश । वृत्राणि । अप्रति । बर्हिष्मते । नि । सहस्राणि । बर्हयः ॥ ६ ॥ युधा । युधं । उप । घ । इत् । एषि । धृष्णुऽया । पुरा । पुरं । सं । इदं । हंसि । ओजसा । नम्या । यत् । इंद्र । सख्या । पराऽवति निऽबर्हयः । नमुचिं । नाम । मायिनं ॥ ७ ॥ त्वं । करंजं । उत । पर्णयं । वधीः । तेजिष्ठया । अतिथिऽग्वस्य । वर्तनी । त्वं । शता । वंगृदस्य । अभिनत् । पुरः । अनानुऽदः । परिऽसूताः । ऋजिश्वना ॥ ८ ॥ त्वं । एतान् ।

त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥ ९ ॥
त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥
य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११॥१६॥

॥ ५४ ॥ १-११ सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्द- जगती, त्रिष्टुप्

(५४) मा नो अस्मिन्मघवन्पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शवसः परीणशे ।
अक्रन्दयो नद्यो रोरुवद्वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत ॥१॥
अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि ।
यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते ॥ २ ॥

जनऽराज्ञः । द्विः । दश । अबंधुना । सुऽश्रवसा । उपऽजग्मुषः । षष्टिं । सहस्रा । नवतिं । नव । श्रुतः । नि । चक्रेण । रथ्या । दुःऽपदा । अवृणक् ॥ ९ ॥ त्वं । आविथ । सुऽश्रवसं । तव । ऊतिऽभिः । तव । त्रामऽभिः । इंद्र । तूर्वयाणं । त्वं । अस्मै । कुत्सं । अतिथिऽग्वं । आयुं । महे । राज्ञे । यूने । अरंधनायः । ॥ १० ॥ ये । उत्ऽऋचि । इंद्र । देवऽगोपाः । सखायः । ते । शिवऽतमाः । असाम त्वां । स्तोषाम । त्वया । सुवीराः । द्राघीयः । आयुः । प्रऽतरं । दधानाः । ॥ ११ ॥ १६ ॥

मा । नः । अस्मिन् । मघऽवन् । पृत्ऽसु । अंहसि । नहि ते । अंतः । शवसः । परिऽनशे । अक्रंदयः । नद्यः । रोरुवत् वना । कथा । न । क्षोणीः । भियसा । सं । आरत ॥ १ ॥ अर्च । शक्राय । शाकिने । शचीऽवते । शृण्वंतं । इंद्रं । महयन् । अभि । स्तुहि । यः । धृष्णुना । शवसा । रोदसी इति । उभेइति । वृषा । वृषऽत्वा । वृषभः । निऽऋंजते ॥ २ ॥

अर्चा दिवे बृहते शूष्यं वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥३॥
त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शंबरं भिनत्।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥४॥
नि यद्वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद्व्रन्दिनो रोरुवद्वना।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि ॥५॥ १७ ॥
त्वमाविथ नर्यं तुर्वशं यदुं त्वं तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्वं पुरो नवतिं दंभयो नव ॥ ६ ॥
स घा राजा सत्पतिः शूशुवज्जनो रातहव्यः प्रति यः शासमिन्वति।
उक्था वा यो अभिगृणाति राधसा दानुरस्मा उपरा पिन्वते दिवः ॥७॥

अर्च । दिवे । बृहते । शूष्यं । वचः । स्वऽक्षत्रं । यस्य । धृषतः । धृषत् । मनः । बृहत्ऽश्रवाः । असुरः । बर्हणा । कृतः । पुरः । हरिऽभ्यां । वृषभः । रथः । हि । सः ॥ ३ ॥ त्वं । दिवः । बृहतः । सानु । कोपयः । अव । त्मना । धृषता । शंबरं । भिनत् । यत् । मायिनः । व्रंदिनः । मंदिना । धृषत् । शितां । गभस्तिं । अशनिं । पृतन्यसि ॥ ४ ॥ नि । यत् । वृणक्षि । श्वसनस्य । मूर्धनि । शुष्णस्य । चित् । व्रंदिनः । रोरुवत् । वना । प्राचीनेन । मनसा । बर्हणाऽवता । यत् । अद्य । चित् । कृणवः । कः । त्वा । परि ॥ ५ ॥ १७ ॥ त्वं । आविथ । नर्यं । तुर्वशं । यदुं । त्वं । तुर्वीतिं । वय्यं । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । त्वं । रथं । एतशं । कृत्व्ये । धने । त्वं । पुरः । नवतिं । दंभयः । नव ॥ ६ ॥ सः । घ । राजा । सत्ऽपतिः । शूशुवत् । जनः । रातऽहव्यः । प्रति । यः । शासं । इन्वति । उक्था । वा । यः । अभिऽगृणाति । राधसा । दानुः । अस्मै । उपरा । पिन्वते । दिवः ॥ ७ ॥ असमं । क्षत्रं । असमा ।

असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्रसोमपा अपसा सन्तु नेमे ।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥ ८ ॥
तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः ।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥ ९ ॥
अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः ।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते ॥१०॥
स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम् ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन्राये च नः स्वपत्या इषे धाः ॥११॥१८॥

॥ ५५ ॥ १–८ सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः–जगती

(५५) दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति ।
भीमस्तुविष्माञ्चर्षणिभ्य आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥१॥

मनीषा । प्र । सोमऽपाः । अपसा । संतु । नेमे । ये । ते । इंद्र । ददुषः । वर्धयंति । महि । क्षत्रं । स्थविरं । वृष्ण्यं । च ॥ ८ ॥ तुभ्यं । इत् । एते । बहुलाः । अद्रिऽदुग्धाः । चमूऽसदः । चमसाः । इंद्रऽपानाः । वि । अश्नुहि । तर्पय । कामं । एषां । अथ । मनः । वसुऽदेयाय । कृष्व ॥ ९ ॥ अपां । अतिष्ठत् । धरुणऽह्वरं । तमः । अंतः । वृत्रस्य । जठरेषु । पर्वतः । अभि । ईं । इंद्रः । नद्यः । वव्रिणा । हिताः । विश्वाः । अनुऽस्थाः । प्रवणेषु । जिघ्नते ॥ १० ॥ सः । शेऽवृधं । अधि । धाः । द्युम्नं । अस्मे इति । महि । क्षत्रं । जनाषाट् । इंद्र । तव्यं । रक्ष । च । नः । मघोनः । पाहि । सूरीन् । राये । च । नः । सुऽअपत्ये । इषे । धाः ॥११॥१८॥

दिवः । चित् । अस्य । वरिमा । वि । पप्रथे । इंद्रं । न । मह्ना । पृथिवी । चन । प्रति । भीमः । तुविष्मान् । चर्षणिऽभ्यः । आऽतपः । शिशीते । वज्रं । तेजसे । न । वंसगः ॥ १ ॥

सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात्स युध्म ओजसा पनस्यते ॥२॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं न भोजसे महो नृम्णस्य धर्मणामिरज्यसि।
प्र वीर्येण देवताति चेकिते विश्वस्मा उग्रः कर्मणे पुरोहितः ॥ ३ ॥
स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते चारु जनेषु प्रब्रुवाण इन्द्रियम्।
वृषा छन्दुर्भवति हर्यतो वृषा क्षेमेण धेनां मघवा यदिन्वति ॥ ४ ॥
स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः।
अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम्॥५॥१९॥
स हि श्रवस्युः सदनानि कृत्रिमा क्ष्मया वृधान ओजसा विनाशयन्।
ज्योतींषि कृण्वन्नवृकाणि यज्यवेऽव सुक्रतुः सर्तवा अपः सृजत् ॥ ६ ॥

सः। अर्णवः। न। नद्यः। समुद्रियः। प्रति। गृभ्णाति। विऽश्रिताः। वरीमऽभिः। इंद्रः। सोमस्य। पीतये। वृषऽयते। सनात्। सः। युध्मः। ओजसा। पनस्यते ॥ २ ॥ त्वं। तं। इंद्र। पर्वतं। न। भोजसे। महः। नृम्णस्य। धर्मणां। इरज्यसि। प्र। वीर्येण। देवता। अति। चेकिते। विश्वस्मै। उग्रः। कर्मणे। पुरःऽहितः ॥३॥ सः। इत्। वने। नमस्युऽभिः। वचस्यते। चारु। जनेषु। प्रऽब्रुवाणः। इंद्रियं। वृषा। छंदुः। भवति। हर्यतः। वृषा। क्षेमेण। धेनां। मघऽवा। यत्। इन्वति ॥ ४ ॥ सः। इत्। महानि। संऽइथानि। मज्मना। कृणोति। युध्मः। ओजसा। जनेभ्यः। अध। चन। श्रत्। दधति। त्विषिऽमते। इंद्राय। वज्रं। निऽघनिघ्नते ॥ ५ ॥ १९ ॥ सः। हि। श्रवस्युः। सदनानि। कृत्रिमा। क्ष्मया। वृधानः। ओजसा। विऽनाशयन्। ज्योतींषि। कृण्वन्। अवृकाणि। यज्यवे। अव। सुऽक्रतुः। सर्तवै। अपः। सृजत्। ॥ ६ ॥

दानाय मनः सोमपावन्नस्तु तेऽर्वाञ्चा हरी वन्दनश्रुदा कृधि ।
यमिष्ठासः सारथयो य इन्द्र ते न त्वा केता आ दभ्नुवन्ति भूर्णयः ॥७॥
अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।
आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥८॥ ॥२०॥

॥ ५६ ॥ १-६ सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ जगती—छन्दः ॥

॥ ५६ ॥ एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।
दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥ १ ॥
तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः ।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा ॥ २ ॥
स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः ।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥ ३ ॥
देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥ ४ ॥

दानाय । मनः । सोमऽपावन् । अस्तु । ते । अर्वाञ्चा । हरी इति । वन्दनऽश्रुत् । आ । कृधि । यमिष्ठासः । सारथयः । ये । इन्द्र । ते । न । त्वा । केताः । आ । दभ्नुवन्ति । भूर्णयः ॥ ७ ॥ अप्रऽक्षितम् । वसु । बिभर्षि । हस्तयोः । अषाळ्हम् । सहः । तन्वि । श्रुतः । दधे । आऽवृतासः । अवतासः । न । कर्तृऽभिः । तनूषु । ते । क्रतवः । इन्द्र । भूरयः ॥ ८ ॥ २० ॥

एषः । प्र । पूर्वीः । अव । तस्य । चम्रिषः । अत्यः । न । योषाम् । उत् । अयंस्त । भुर्वणिः । दक्षम् । महे । पाययते । हिरण्ययम् । रथम् । आऽवृत्य । हरिऽयोगम् । ऋभ्वसम् ॥ १ ॥ तम् । गूर्तयः । नेमन्ऽइषः । परीणसः । समुद्रम् । न । सम्ऽचरणे । सनिष्यवः । पतिम् । दक्षस्य । विदथस्य । नु । सहः । गिरिम् । न । वेनाः । अधि । रोह । तेजसा ॥ २ ॥ सः । तुर्वणिः । महान् । अरेणु । पौंस्ये । गिरेः । भृष्टिः । न । भ्राजते । तुजा । शवः । येन । शुष्णम् । मायिनम् । आयसः । मदे । दुध्रः । आभूषु । रमयत् । नि । दामनि ॥ ३ ॥ देवी । यदि । तविषी । त्वाऽवृधा । ऊतये । इन्द्रम् । सिसक्ति । उषसम् । न । सूर्यः । यः । धृष्णुना । शवसा । बाधते । तमः । इयर्ति । रेणुम् । बृहत् । अर्हरिऽस्वनिः ॥ ४ ॥

वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्याहन्वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ ५ ॥
त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्याऽरुजः ॥६॥२१॥

॥ ५७ ॥ १-६ सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ जगती छन्दः ॥

॥ ५७ ॥ प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥ १ ॥
अध ते विश्वमनु हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः ।
यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः ॥ २ ॥
अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥
इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो ।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः ॥ ४ ॥

वि । यत् । तिरः । धरुणं । अच्युतं । रजः । अतिस्थिपः । दिवः । आताँसु । बर्हणा । स्वःऽमीळ्हे । यत् । मदे । इंद्र । हर्ष्या । अहन् । वृत्रं । निः । अपां । औब्जः । अर्णवं । ॥ ५ ॥ त्वं । दिवः । धरुणं । धिषे । ओजसा । पृथिव्याः । इंद्र । सदनेषु । माहिनः । त्वं । सुतस्य । मदे । अरिणाः । अपः । वि । वृत्रस्य । समया । पाष्या । अरुजः ॥ ६ ॥ २१ ॥ प्र । मंहिष्ठाय । बृहते । बृहत्ऽरये । सत्यऽशुष्माय । तवसे । मतिं । भरे । अपांऽइव । प्रवणे । यस्य । दुःऽधरं । राधः । विश्वऽआयु । शवसे । अपऽवृतं ॥१॥ अध । ते । विश्वं । अनु । ह । असत् । इष्टये । आपः । निम्नाऽइव । सवना । हविष्मतः । यत् । पर्वते । न । संऽअशीत । हर्यतः । इंद्रस्य । वज्रः । श्नथिता । हिरण्ययः ॥२॥ अस्मै । भीमाय । नमसा । सं । अध्वरे । उषः । न । शुभ्रे । आ । भर । पनीयसे । यस्य । धाम । श्रवसे । नाम । इंद्रियं । ज्योतिः । आकारि । हरितः । न । अयसे ॥ ३ ॥ इमे । ते । इंद्र । ते । वयं । पुरुऽस्तुत । ये । त्वा । आऽरभ्य । चरामसि । प्रभुवसो । इति । प्रभुऽवसो । नहि । त्वत् । अन्यः । गिर्वणः । गिरः । सघत् । क्षोणीःऽइव । प्रति । नः । हर्य । तत् । वचः ॥ ४ ॥ भूरि । ते । इंद्र । वीर्यं । तव । स्मसि ।

भूरि त इन्द्र वीर्यं तव स्मस्यस्य स्तोतुर्मघवन्काममा पृण ।
अनु ते द्यौर्बृहती वीर्यं मम इयं च ते पृथिवी नेम ओजसे ॥ ५ ॥
त्वं तमिन्द्र पर्वतं महामुरुं वज्रेण वज्रिन्पर्वशश्चकर्तिथ ।
अवासृजो निवृताः सर्तवा अपः सत्रा विश्वं दधिषे केवलं सहः ॥६॥२२॥

॥ एकादशोऽनुवाकः ॥

॥ ५८ ॥ १-९ नोधा गौतम ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः जगती ॥

(५८) नू चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः ।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति॥१॥
आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् ॥ २ ॥
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥ ३ ॥
वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥ ४ ॥

अस्य । स्तोतुः । मघऽवन् । कामं । आ । पृण । अनु । ते । द्यौः । बृहती । वीर्यं । मम । इयं । च । ते । पृथिवी । नेमे । ओजसे ॥ ५ ॥ त्वं । तं । इन्द्र । पर्वतं । महां । उरुं । वज्रेण । वज्रिन् । पर्वऽशः । चकर्तिथ । अव । असृजः । निऽवृताः । सर्तवै । अपः । सत्रा । विश्वं । दधिषे । केवलं । सहः ॥६॥ २२ ॥

नु । चित् । सहःऽजाः । अमृतः । नि । तुंदते । होता । यत् । दूतः । अभवत् । विवस्वतः । वि । साधिष्ठेभिः । पथिऽभिः । रजः । ममे । आ । देवऽताता । हविषा । विवासति ॥ १ ॥ आ । स्वं । अद्म । युवमानः । अजरः । तृषु । अविष्यन् । अतसेषु । तिष्ठति । अत्यः । न । पृष्ठं । प्रुषितस्य । रोचते । दिवः । न । सानु । स्तनयन् । अचिक्रदत् ॥२॥ क्राणाः । रुद्रेभिः । वसुऽभिः । पुरःऽहितः । होता । निऽसत्तः । रयिषाट् । अमर्त्यः । रथः । न । विक्षु । ऋंजसानः । आयुषु । वि । आनुषक् । वार्या । देवः । ऋण्वति । ३ ॥ वि । वातऽजूतः । अतसेषु । तिष्ठते । वृथा । जुहूभिः । सृण्या । तुविऽस्वनिः । तृषु । यत् । अग्ने । वनिनः । वृषऽयसे । कृष्णं । ते । एम । रुशत्ऽऊर्मे । अजर ॥ ४ ॥

तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः ।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥ ५ ॥ २३ ॥
दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः ।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने ॥ ६ ॥
होतारं सप्त जुह्वो यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु ।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥ ७ ॥
अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात्पूर्भिरायसीभिः ॥ ८ ॥
भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥ २४ ॥

॥ ५९ ॥ १-७ नोधा गौतम ऋषिः ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

(५९) वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते ।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँ उपमिद्ययन्थ ॥ १ ॥

तपुःऽजंभः । वने । आ । वातऽचोदितः । यूथे । न । सह्वान् । अव । वाति । वंसगः । अभिऽव्रजन् । अक्षितं । पाजसा । रजः । स्थातुः । चरथं । भयते । पतत्रिणः । ॥ ५ ॥ २३ ॥ दधुः । त्वा । भृगवः । मानुषेषु । आ । रयिं । न । चारुं । सुऽहवं । जनेभ्यः । होतारं । अग्ने । अतिथिं । वरेण्यं । मित्रं । न । शेवं । दिव्याय । जन्मने ॥ ६ ॥ होतारं । सप्त । जुह्वः । यजिष्ठं । यं । वाघतः । वृणते । अध्वरेषु । अग्निं । विश्वेषां । अरतिं । वसूनां । सपर्यामि । प्रयसा । यामि । रत्नं ॥ ७ ॥ अच्छिद्रा । सूनोइति । सहसः । नः । अद्य । स्तोतृऽभ्यः । मित्रऽमहः । शर्म । यच्छ । अग्ने । गृणंतं । अंहसः । उरुष्य । ऊर्जः । नपात् । पूःऽभिः । आयसीभिः ॥ ८ ॥ भव । वरूथं । गृणते । विभाऽवः । भव । मघऽवन् । मघवत्ऽभ्यः । शर्म । उरुष्य । अग्ने । अंहसः । गृणंतं । प्रातः । मक्षु । धियाऽवसुः । जगम्यात् ॥ ९ ॥ २४ ॥

वयाः । इत् । अग्ने । अग्नयः । ते । अन्ये । त्वेइति । विश्वे । अमृताः । मादयंते । वैश्वानर । नाभिः । असि । क्षितीनां । स्थूणाऽइव । जनान् । उपऽमित् । ययंथ । ॥ १ ॥ मूर्धा । दिवः । नाभिः । अग्निः । पृथिव्याः । अथ । अभवत् । अरतिः ।

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः ।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय ॥ २ ॥
आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि ।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥ ३ ॥
बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो॒ न दक्षः ।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥ ४ ॥
दिवश्चित्ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम् ।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ५ ॥
प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते ।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥ ६ ॥
वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा ।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान् ॥ ७ ॥ २५ ॥

॥ ६० ॥ १-५ नोधा गौतम-ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप्-छन्दः ॥

(६०) वह्निं यशसं विदथस्य केतुं सुप्राव्यं दूतं सद्योअर्थम् ।
द्विजन्मानं रयिमिव प्रशस्तं रातिं भरद्भृगवे मातरिश्वा ॥ १ ॥

रोदस्योः । तं । त्वा । देवासः । अजनयंत । देवं । वैश्वानर । ज्योतिः । इत् । आर्याय ॥ २ ॥ आ । सूर्ये । न । रश्मयः । ध्रुवासः । वैश्वानरे । दधिरे । अग्ना । वसूनि । या । पर्वतेषु । ओषधीषु । अप्ऽसु । या । मानुषेषु । असि । तस्य । राजा ॥ ३ ॥ बृहती । इवेति । बृहतीऽइव । सूनवे । रोदसी इति । गिरः । होता । मनुष्यः । न । दक्षः । स्वःऽवते । सत्यऽशुष्माय । पूर्वीः । वैश्वानराय । नृऽतमाय । यह्वीः ॥ ४ ॥ दिवः । चित् । ते । बृहतः । जातऽवेदः । वैश्वानर । प्र । रिरिचे । महिऽत्वं । राजा । कृष्टीनां । असि । मानुषीणां । युधा । देवेभ्यः । वरिवः । चकर्थ ॥ ५ ॥ प्र । नु । महिऽत्वं । वृषभस्य । वोचं । यं । पूरवः । वृत्रऽहनं । सचंते । वैश्वानरः । दस्युं । अग्निः । जघन्वान् । अधूनोत् । काष्ठाः । अव । शंबरं । भेत् ॥ ६ ॥ वैश्वानरः । महिम्ना । विश्वऽकृष्टिः । भरत्ऽवाजेषु । यजतः । विभाऽवा । शातऽवनेये । शतिनीभिः । अग्निः । पुरुऽनीथे । जरते । सूनृताऽवान् ॥ ७ ॥ २५ ॥

वह्निं । यशसं । विदथस्य । केतुं । सुप्रऽअव्यं । दूतं । सद्यःऽअर्थं । द्विऽजन्मानं । रयिंऽइव । प्रऽशस्तं । रातिं । भरत् । भृगवे । मातरिश्वा ॥ १ ॥

अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः ।
दिवश्चित्पूर्वो न्यसादि होतापृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः ॥ २ ॥
तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत्सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः ।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त ॥ ३ ॥
उशिक्पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु ।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ॥ ४ ॥
तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः ।
आशुं न वाजम्भरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ५ ॥ २६ ॥

॥ ६१ ॥ १-१६ नोधा गौतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

(६१) अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय ।
ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥
अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति ।
इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥

अस्य । शासुः । उभयासः । सचन्ते । हविष्मन्तः । उशिजः । ये । च । मर्ताः । दिवः । चित् । पूर्वः । नि । असादि । होता । आऽपृच्छ्यः । विश्पतिः । विक्षु । वेधाः ॥ २ ॥ तं । नव्यसी । हृदः । आ । जायमानं । अस्मत् । सुऽकीर्तिः । मधुऽजिह्वं । अश्याः । यं । ऋत्विजः । वृजने । मानुषासः । प्रयस्वन्तः । आयवः । जीजनन्त ॥ ३ ॥ उशिक् । पावकः । वसुः मानुषेषु । वरेण्यः । होता । अधायि । विक्षु । दमूनाः । गृहऽपतिः । दमे । आ । अग्निः । भुवत् । रयिऽपतिः । रयीणां ॥ ४ ॥ तं । त्वा । वयं । पतिं । अग्ने । रयीणां । प्र । शंसामः । मतिऽभिः । गोतमासः । आशुम् । न । वाजम्ऽभरम् । मर्जयन्तः । प्रातः । मक्षु । धियाऽवसुः । जगम्यात् ॥ ५ ॥ २६ ॥

अस्मै । इत् । ऊं इति । प्र । तवसे । तुराय । प्रयः । न । हर्मि । स्तोमम् । माहिनाय । ऋचीषमाय अध्रिऽगवे । ओहम् । इन्द्राय । ब्रह्माणि । राततमा ॥ १ ॥ अस्मै । इत । ऊं इति । प्रयः ऽइव । प्र । यंसि । भरामि । आङ्गूषम् । बाधे । सुऽवृक्ति । इन्द्राय । हृदा । मनसा । मनीषा । प्रत्नाय । पत्ये । धियः । मर्जयन्त ॥ २ ॥ अस्मै । इत् । ऊं इति । त्यम् । उपऽमम् । स्वःऽसाम् । भरामि । आङ्गूषम् । आस्येन । मंहिष्ठम् । अच्छोक्तिऽभिः । मतीनाम् । सुवृक्तिऽभिः । सूरिम् ।

अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥ ३ ॥
अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ ४ ॥
अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५ ॥ २७ ॥
अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं१ रणाय ।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥ ६ ॥
अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥
अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८ ॥
अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ९ ॥

वावृधध्यै ॥ ३ ॥ अस्मै । इत् । ऊम । इति स्तोमम । सम । हिनोमि । रथम । न । तष्टाऽइव । तत्ऽसिनाय । गिरः । च । गिरः । च । गिर्वाहसे । सुऽवृक्ति । इन्द्राय । विश्वमऽइन्वम । मेधिराय ॥ ४ ॥ अस्मै । इत । ऊं । इति । सप्तिमऽइव । श्रवस्या । इन्द्राय । अर्कम । जुह्वा । सम । अञ्जे । वीरम् । दानऽओकसम् । वन्दध्यै । पुराम । गूर्तऽश्रवसम् । दर्माणम् ॥ ५ ॥ २७ ॥ अस्मै । इत । ऊम् इति । त्वष्टा । तक्षत । वज्रम् । स्वपःऽतमम । स्वर्यम । रणाय । वृत्रस्य चित । विदत । येन । मर्म । तुजन । ईशानः । तुजता । कियेधाः ॥ ६ ॥ अस्य । इत । ऊम । इति । मातुः । सवनेषु । सद्यः । महः । पितुम् । पपिऽवान् । चारु । अन्ना । मुषायत् । विष्णुः । पचतम । सहीयान । विध्यत् । वराहम् । तिरः । अद्रिम । अस्ता ॥ ७ ॥ अस्मै । इत । ऊम इति । ग्नाः । चित् । देवऽपत्नीः । इन्द्राय । अर्कम । अहिऽहत्ये । ऊवुरित्यूवुः । परि । द्यावापृथिवी । इति । जभ्रे । उर्वी इति । न । अस्य । ते इति । महिमानम् । परि । स्तइतिस्तः ॥ ८ ॥ अस्य इत । एव । प्र । रिरिचे । महिऽत्वम् । दिवः । पृथिव्याः । परि । अन्तरिक्षात । स्वऽराट् । इन्द्रः । दमे । आ । विश्वऽगूर्तः । सुऽअरिः अमत्रः । ववक्षे । रणाय ॥ ९ ॥

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १० ॥ २८ ॥
अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥
अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥
अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥
अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥ १४ ॥
अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५ ॥
एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६ ॥ २९ ॥

अस्य । इत् । एव । शवसा । शुषन्तम् । वि । वृश्चत् । वज्रेण । वृत्रम् । इन्द्रः । गाः । न । व्राणाः । अवनीः । अमुञ्चत् । अभि । श्रवः । दावने । सऽचेताः ॥ १० ॥ २८ ॥ अस्य । इत् । ऊम् इति । त्वेषसा । रन्त । सिन्धवः । परि । यत् । वज्रेण । सीम् । अयच्छत् । ईशानऽकृत् । दाशुषे । दशस्यन् । तुर्वीतये । गाधम् । तुर्वणिः । करिति कः ॥ ११ ॥ अस्मै । इत् । ऊम् इति । प्र । भर । तूतुजानः । वृत्राय । वज्रम् । ईशानः । कियेधाः । गोः । न । पर्व । वि । रद । तिरश्चा । इष्यन् । अर्णांसि । अपाम् । चरध्यै ॥ १२ ॥ अस्य । इत् । ऊम् इति । प्र । ब्रूहि । पूर्व्याणि । तुरस्य । कर्माणि । नव्यः । उक्थैः । युधे । यत् । इष्णानः । आयुधानि । ऋघायमाणः । निऽरिणाति । शत्रून् ॥ १३ ॥ अस्य । इत् । ऊम् इति । भिया । गिरयः । च । दृळ्हाः । द्यावा । च । भूम । जनुषः । तुजेते इति । उपो इति । वेनस्य । जोगुवानः । ओणिम् । सद्यः । भुवत् । वीर्याय । नोधाः ॥ १४ ॥ अस्मै । इत् । ऊम् इति । त्यत् । अनु । दायि । एषाम् । एकः । यत् । वव्ने । भूरेः । ईशानः । प्र । एतशम् । सूर्ये । पस्पृधानम् । सौवश्व्ये । सुस्विम् । आवत् । इन्द्रः ॥ १५ ॥ एव । ते । हारिऽयोजन । सुऽवृक्ति । इन्द्र । ब्रह्माणि । गोतमासः । अक्रन् । आ । एषु । विश्वऽपेशसम् । धियम् । धाः । प्रातः । मक्षु । धियाऽवसुः । जगम्यात् ॥ १६ ॥ २९ ॥

सूक्त ४६.

ऋषि- प्रस्कण्व काण्व; देवता- अश्विन ॥

वह अपूर्व तेजोयुक्त उषादेवी, जो द्युलोकों को प्रिय है, अपना प्रकाश डाल रही है। हे अश्विनो, मैं हृदयसे आपकी स्तुति करता हूं। १

ये अश्विनीदेव सुन्दर हैं। सिन्धु उनकी जननी है। जब हम वेगवान पुरुषोंसे इनकी तुलना करते हैं तब जान पड़ता है कि ये अपने वेगसे मनको भी पीछे कर देते हैं। ये हृदयपूर्वक (भक्तों को) धन अर्पण करते हैं। २

आपके उन अश्वोंके योगसे, जो वेगसे दौड़नेमें मानों पक्षी ही हैं, जब आपका रथ सदासे उड़ता जाता है उस समय अति पुरातन स्वर्गलोकमें भी आपके स्तोत्र गाये जाते हैं। ३

ये सर्वसंचारी और सर्वतृप्तीकारक (सूर्य) देव, कि जिनपर उदकोंका प्रेम है और जिनसे पानीके बादल उत्पन्न होते हैं, आपको हवियोंसे सन्तुष्ट करते हैं। ४

हे स्तुतिप्रिय और सत्यस्वरूप अश्विनीदेवताओं! (सोमरस) आपके मनके कपाट खोलता है। अतएव, आप मनमानी रीतिसे सोमरस पान कीजिए। ५ (३३)

---

१ अपूर्व्या ॥

२ मनोतरा ॥

३ विभिः ॥

४ कुटस्य ॥

५ धृष्णुया ॥

अहो अश्विनो, आप हमें अपनी उस कृपा का लाभ करा दीजिए कि जो उज्ज्वल प्रकाश डालकर हमें अंधकार से निकाले। ६

आप यहां पधारिये, ताकि आपकी कृपारूपी नौका में बैठकर हम (दुःखसागर) से पार हो सकें। हे अश्विनो आप अपना रथ जोतिये। ७

जब कि नदियों के किनारे से आप गमन करते हैं तब आपका रथ ही, स्वर्गलोक में भी विस्तीर्ण, आपकी नौका होती है। आपके लिए भक्तिपूर्वक हमने यहां सोमरस तैयार कर रखे हैं। ८

हे कण्वो ! स्वर्ग के प्रदेश में आल्हाददायक तेज भर रहा है और नदियों के निवासस्थान में तेजःपुंज वैभव दृग्गोचर हो रहा है। अतएव, (हे अश्विनो,) आप अपने दिव्य देह भला कौनसी जगह ले जाइयेगा ? ९

यह देखिये, चारों ओर अपने रश्मि फेंकने के लिए प्रभा सज्ज हुई है। और यह देखिये, इधर सूर्य (उदय हुआ)। यह कांचन की ही प्रतिमा है। कृष्णवर्ण (अग्नि ने भी) अपनी जिव्हा बाहर निकालकर अपनी दीप्ति प्रकट की है। १०

हमें दुःखसे पार लगाने के लिए धर्मनीति का मार्ग स्पष्ट देख पड़ने लगा है और—स्वर्ग की वह प्रभा दृष्टि पड़ने लगी है। ११

---

१ रम्भाथाम ॥

२ तीर्थं ॥

३ वाव्रिम ॥

४ अम्भिनः ॥

५ सूनिः ॥

सोमपानमें आनन्द होते ही जो अश्विनदेव भक्तोंको भरपूर वैभव देते हैं उनके उस कृपा प्रसादका स्तोतृजन सदा बखान करते रहता है। १२

जिस प्रकार (पहले) आप मनुकी भेटको गये थे उसी प्रकार हमारी प्रार्थनाओंसे और सोमरसपान से प्रेरित होकर, विवस्वत के लिए अपना तेज प्रकट करते हुए हमारे कल्याणकर्ता आप यहां आइये। १३

आपके परिभ्रमण करते समय आपके मार्गके अनुरोधसे उषाने भी अपना मार्ग क्रमण आरम्भ किया। रातमें किये हुए यागकर्म आपको बहुत अच्छे लगते हैं। १४

हे अश्विनो, आप दोनों अपनी अखण्ड कृपासे हमें सौख्य अर्पण कीजिए और दोनों सोमरस का पान कीजिए। १५ (३५)

चौथा अध्याय

सूक्त ४७.

ऋषि-प्रस्कण्व काण्व, देवता-अश्विन ॥

नीतिधर्म-परिपालनमें आनन्द माननेवाले हे अश्विनीदेवताओ, यह अत्यन्त माधुर्ययुक्त सोमरस आपके लिए निकाल रखा गया है। वह कलका ही तैयार किया हुआ है:—उसका पान कीजिए और अपने भक्तोंके लिए उत्तम सम्पत्तिका भाण्डार भर रखिये। १

- - - -

१ जरिता ॥

२ शम्भू ॥

३ श्रियम ॥

४ अस्त्रिधिपाभिः ॥

हे अश्विनो, जिस आपके रथमें तीन बन्धुर हैं, जो त्रिकोणाकृति है और जो देखनेमें सुन्दर है उस अपने रथमें बैठकर यहां आइये । (इस यज्ञमें कण्व आपकी स्तुति करते हैं । उनकी पुकार आप श्रवण कीजिए) २

न्यायनीतिके उत्तेजना देनेवाले हे अश्विनीदेवताओ, इस अत्यन्त मधुर सोमरस का पान कीजिये और हे मरूपवान देवो, अपने रथ के द्वारा बहुतसी सम्पत्ति ले आकर भक्तजनोंके पास पधारिये । ३

इस रीतिसे बिछे हुए दर्भासनपर, कि जिसपर आप दोनों एकदम बैठ सकेंगे, आरूढ होकर हे सर्वज्ञ देवो, आप हमारे यज्ञको माधुर्य से परिप्लुत कीजिए । हे अश्विनो, ये तेजस्वीपन से सुशोभित होनेवाले कण्व सोमरस तैयार करके आपको निमन्त्रण दे रहे हैं । ४

हे अश्विनो, आपने जिस (अपनी कृपा के सामर्थ्यसे कण्वकी रक्षा की उसी सामर्थ्यसे युक्त होकर हमारी भी रक्षा कीजिए) क्योंकि आप सम्पूर्ण मंगलताके स्वामी और न्यायनीति को उत्तेजना देनेवाले हैं । ५ । १ ।

अहो सुन्दर अश्विन देवो, जो कि आप सुदास के लिए सम्पत्ति ले आये, इस लिए अपने रथके द्वारा (हमारे लिए भी) जीवन-सामर्थ्य ले आइये । जिसे बहुत लोग ताकते रहते हैं वही वैभव हमें अर्पण कीजिए । फिर उसे आप चाहे महासागरसे लावें, चाहे स्वर्गके आसपासवाले प्रदेश से लावें । ६

---

१ सुपेशसा ॥
२ दाश्वांसम् ॥
३ त्रिषधस्थे ॥
४ अभिष्टिभिः ॥
५ पृक्ष ॥

हे सत्यस्वरूप अश्विनदेवताओ, आप तुर्वश के समीप रहिए अथवा बहुत दूर रहिए। वहां से, अपने सुन्दर रथ में बैठकर यहां आइये और आते समय सूर्य के किरणों को भी साथ लेते आइये। ७

आपके अश्व, जो यज्ञ के लिए लतासम्भूत हैं, आपको हमारे हव्यों की ओर ले आवें। अहो शूरो, जो सदाचारी भक्त आपको प्रेम से हव्य अर्पण करता है उसे पूर्ण समृद्धि प्रदान करके आप इस कुशासन पर विराजमान हूजिए। ८

हे सत्यस्वरूप अश्विनी देवताओ, सूर्य को भी आच्छादित करदेनेवाले अपने रथ में बैठकर इधर आइये। जब जब आपको मधुर सोमरस पान करने की इच्छा होती है तब तब आप सदा इसी रथ के द्वारा अपने भक्तों के लिए सोमरस लाते रहते हैं। ९

अनेक वैभवों से सम्पन्न अश्विनीदेवोंको हम स्तुतिस्तोत्र गाकर अपनी ओर पाचारण करते हैं। (हे अश्विनो, आपने अपने प्रिय कण्वों के सदन में जाकर सचमुच सदा सोमपान किया है) १० (८)

सूक्त ४८.

ऋषि प्रस्कण्व, देवता—उषः ॥

हे द्युलोक–दुहिते उषादेवी, आप अपनी अत्यन्त सुन्दर कान्ति के साथ यहां हमारे लिए सुप्रकाशित हूजिए। हे देदीप्यमान देवी, आप दानशूर हैं, अतएव विपुल सम्पत्ति और वैभव साथ लेकर (यहां प्रकाश फैलाइये)। १

---

१ सुव्रता ॥
२ इषम् ॥
३ सूर्यत्वचा ॥
४ पपथुः ॥
५ दास्वती ॥

ये उषा अश्व, धेनु, और इस विश्वके उत्तम उत्तम सौख्य अपने साथ लेकर (जगती-तलपर) प्रकाश फैलाने के लिए (आकाश में) उतर कर आई हैं। हे उषे, आप मेरे साथ मधुर सम्भाषण कीजिए और श्रीमन्त पुरुषोंके पास जितना धन होता है उतना धन हमें अर्पण कीजिए। २

उषाने अपना प्रकाश फैलाया है और वह ऐसाही अपना प्रकाश फैलावेगी। (सायंकालके कारण ठहरजानेवाली गाड़ियोंको) आगे जाने के लिए यही प्रेरणा करती है; क्योंकि जिस तरह (समुद्रपर्यटन के लिए जानेवाले) साहसी लोग समुद्र की ओर दृष्टि लगाकर बैठते हैं उसी तरह सम्पूर्ण रथ उषाके आगमन की प्रतीक्षा करते हुए बैठे रहते हैं। ३

आपका आगमन होनेपर जो विद्वान लोग दानकर्म करनेके लिए अपने मनकी प्रवृत्ति करते हैं उनका यश, यह कण्व—कुलका श्रेष्ठ पुरुष कण्व, इस यज्ञमें (बड़े सन्मानसे) गाता रहता है। ४

किसी सुन्दर स्त्री की तरह यह उषा विलास करती हुई और सम्पूर्ण दुरितोंको नाश करती हुई आ रही है। जिनके पैर हैं उन प्राणियो को यह चलाने लगती है और जिनके पंख हैं उन जीवोंको यह अन्तरिक्ष में उड़ने के लिए प्रवृत्त करती है। ५ (३)

जो उद्योगशील हैं और जिन्हें धन कमानेकी इच्छा है उन्हें वह अपने अपने काममें प्रवृत्त करती है। इस उदार देवीको विश्रान्ति की बिलकुलही आवश्यकता नहीं जान पडती। जहां यह उत्साह—वर्धन करनेवाली उषादेवी प्रकाशमान हुई कि बस, जिसे उड़नेका सामर्थ्य है, ऐसा एक भी पक्षी (घोंसले में) बैठा नहीं रहता। ६

---

१ स्यन्दन्त ॥

२ जीरा ॥

३ वृजनम ॥

४ ओदती ॥

सूर्य के उदयस्थान से भी आगेवाले दूरके प्रदेशसे यह अपने (अश्व) जोत लाई है। यह परोपकारी उषा सौ रथों में बैठकर मनुष्यों के पास आती है।   ७

इसका दर्शन होते ही सम्पूर्ण जगत् ने इसे प्रणाम किया है। यह उपकारी उषा (सबको) प्रकाश देती है। द्युलोक की इस उदार कन्याने सम्पूर्ण द्वेषकारक और बाधक जीवों का उन्मूलन करडाला है।   ८

हे द्युलोककन्ये उषादेवी, हमारे यज्ञकर्म शुरू होने के लिए यहां अपना प्रकाश फैलाकर और हमें अतिशय सौख्य का लाभ कराकर अपने आल्हाददायक किरणोंसे यहां प्रकट हूजिए।   ९

हे सुखदायिनी देवी, जब आप अपना प्रकाश फैलाती हैं तब जान पड़ता है कि, आपसे विश्वको, अपना प्राण--अपना चैतन्य--मिल गया। हे उज्वल और अलौकिक उदारता प्रकट करनेवाली देवी, आप अपने बड़े रथ में बैठकर आइये और हमारी पुकार सुनिये।   १० (४)

हे उषादेवी, अपने शरीर में ऐसा सामर्थ्य लाइये कि जिस पर सम्पूर्ण मनुष्यों को आश्चर्य हो। उस सामर्थ्य के द्वारा, हमारा कल्याण करनेवाले देवताओं को, जो उपासक आपका स्तवन करते हैं उनके यज्ञों के समीप ले आइये   ११

---

१ सुभगा ॥

२ सुभः ॥

३ चन्द्रेण ॥

४ चित्रामघे ॥

५ वन्हयः ॥

हे उषादेवी, सम्पूर्ण देवताओंको अन्तरिक्ष से, सोमपानके लिए, यहां ले आइये, और, हे उषे, हमारे शरीरमें ऐसा सामर्थ्य लाइये कि जिसके द्वारा हम अपना वीर्य दिखला सकें, जिसकी बहुत प्रशंसा हो और जिसके कारण हम धेनुओं और अश्वोंका लाभ कर सकें ! १२

यह उषा, कि जिसके उज्ज्वल और कल्याणकारक किरण देख पड़ने लगे हैं, हमको प्रयास न पड़ते हुए ऐसी उत्तम प्रकारकी सम्पत्ति अर्पण करें कि जिसे सब लोग चाहते हों । १३

जिन प्राचीन ऋषियों ने, हे श्रेष्ठ उषादेवी, अपनी रक्षाके लिए आपको पाचारण किया (उनकी पूजा की आप पात्र हुई) हे उज्ज्वल कान्तिसे (युक्त रहनेवाली) उषा, आप हमपर अपनी कृपा कीजिये और हमारे स्तोत्रों पर अपनी प्रशंसाबुद्धि व्यक्त कीजिए । १४

हे उषादेवी, जो कि आज आपने अपने तेजसे स्वर्गके द्वार खोल दिये हैं, इस लिए, हे देवी, ऐसा कीजिये कि जिससे हमें ऐसा विशाल मन्दिर मिले कि, जहां शत्रुओं का भय न हो, और हमारे विषय में ऐसी कृपा रखिये कि जिससे हमें धेनु प्राप्त हों । १५

हे सामर्थ्यवान श्रेष्ठ उषादेवी, हमें अखिल प्रकारकी सम्पत्तियोंसे, समृद्धि-योंसे, सर्वत्र फैलनेवाले कीर्तिवैभवसे और बलसे परिपूर्ण कर दीजिए । १६ (५)

---

१ उक्थम ॥

२ रुशतः ॥

३ अभिगृणीहि ॥

४ अस्मकम ॥

५ विश्वंपशसा ॥

सूक्त ४९.

ऋषि-प्रस्कण्व काण्व; देवता—उषा ।

हे उषादेवि, देदीप्यमान द्युलोक के ऊपरवाले भागकी ओरसे, अपनी कल्याण-प्रद कान्तिसे (विभूषित होकर) यहां आइये । आपके रक्तवर्ण अश्व, सोमरस अर्पण करनेवाले भक्त के भवन की ओर आपको ले आवें । १

हे उषादेवी, जिस सुखदायक और सुन्दर रथपर आप विराजमान हुई हैं उसके द्वारा आकर, हे द्युलोक कन्ये, उत्तम कीर्ति की इच्छा करनेवाले इन मनुष्यों की रक्षा कीजिये । २

हे देदीप्यमान देवि, द्युलोक के आसपासवाले भागोंमें आपका आगमन होते ही, उड़नेवाले पक्षी, तथा द्विपाद और चतुष्पाद प्राणी, बाहर निकलने के लिए तैयार हुए । ३

जो कि आप अपने किरणों से प्रकाश फैलाकर सम्पूर्ण जगत को प्रकाशमय कर डालती हैं उन्हीं आपकी (हे उषे, कण्वों ने, सम्पत्ति की इच्छा धारण करके, स्तोत्रोंके द्वारा, पुकार की है) ४ (६)

सूक्त ५०.

ऋषि-प्रस्कण्व काण्व; देवता-सूर्य ।

उस सर्वज्ञ सूर्य को उसके रश्मि यहां ले आ रहे हैं, ताकि सबको उसका दर्शन हो जाय । १

---

१ अरुणप्सवः ॥

२ ऋतून् ॥

३ रोचनम ॥

इस सर्वदर्शी सूर्य को देखकर नक्षत्र, रातके साथ, चोरों की तरह भागते हैं। २

जब यह सम्पूर्ण लोकों पर प्रकाश फैलाने के लिए आता है तब अग्नि की तरह तेजस्वी इसके उज्ज्वल रश्मि दिखाई देते हैं। ३

हे सूर्य, आप प्रकाश देनेवाले, सब में अत्यन्त सुन्दर और सर्व-संचारी हैं। इस अखिल जगत् पर प्रकाश फैलाकर आप उसमें उज्ज्वलता लाते हैं। ४

देवसमुदाय, मनुष्य. (किंबहुना) सम्पूर्ण विश्व के सामने आप स्पष्ट रीती से प्रकाशमान होते हैं, ताकि आपका प्रकाश सब को दिखाई दे। ५ (७)

इस के द्वारा हे वरुण, हे जगत् को पावन करनेवाले देव. आप सब लोगों का भार सहन करनेवाले इस जगत की ओर, अपने नेत्रों से देख सकते हैं। ६

हे सूर्य, आप, सब प्राणिमात्र का निरीक्षण करते हुए, और रात्रि के द्वारा दिनका मापन करते हुए, द्युलोकपर, तथा विस्तीर्ण रजोलोकपर, आगमन करते हैं। ७

---

१ तायवः ॥

२ तरणिः ॥

३ प्रत्यङ् ॥

४ भुरण्यन्तम ॥

५ मिमानः ॥

हे सर्व निरीक्षक सूर्यदेव, आपके केश[1] दीप्तिमय हैं; आपको सात रक्तवर्ण अश्व रथ के द्वारा लाते रहते हैं। ८

जो (रथ के अगले भाग में जुटाये जाने के कारण) [illegible] हुए से भासते हैं। ऐसे सात घोड़े[2] सूर्यने अपने रथ में जुटाये हैं; वे रथ का जुआं आपही आप गर्दन पर लेनेवाले हैं; अतएव उन्हें सज्ज करके वह बाहर प्रयाण करता है। ९

हम उस उत्तम तेज को ढूँढते हुए, कि जो सम्पूर्ण अंधकार पर अपनी प्रबलता प्रकट कर सकता है, इस उत्कृष्ट ज्योति की ओर—सूर्य की ओर—आये। यह देव सम्पूर्ण देवों[3] में श्रेष्ठ है। १०

स्वमित्रों[4] को आनन्द देनेवाले हे सूर्य, आज (यहां) उदय होकर और इस ऊपर देख पड़नेवाले आकाश पर आरोहण करके मेरा हृद्रोग और कॉवॅल नष्ट कीजिए। ११

हम अपने कॉवॅल तोते पर और रोपणा का नामक पक्षियों पर छोड़ते[6] हैं। अथवा हम ऐसा करते हैं कि जिससे हमारे कॉवॅल हारिद्रव पक्षियों पर चले जायँगे। १२

अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य से सज्ज होकर, मेरे शत्रुओंको मेरे शरण में आने के लिए बाध्य करता हुआ, यह आदित्य यहां उदय हुआ है। मैं शत्रु के पंजे[7] में कभी न जाऊं। १३ (८)

---

१ शोचिष्केशं ॥
२ शुन्ध्युवः ॥
३ देवत्रा ॥
४ मित्रमहः ॥
५ हरिमाणम ॥
६ दध्मसि ॥
७ रन्धम ॥

अनुवाक १०

सूक्त ५१.

ऋषि सव्य आंगिरस; देवता–इन्द्र ॥

उस मेषरूपधारी इन्द्र को स्तुति से सन्तुष्ट करो । इसे (संकट के समय) अनेकों ने पाचारण किया है. इसके स्तोत्र सर्वत्र गाये जाते हैं और यह सम्पत्ति का महोदधि है । मानवोंके कल्याणार्थ किये हुए जिसके कार्य, जहां जाइये वहीं, किरणों के समान ही दृग्गोचर होते हैं उस अत्यन्त उदार और प्रज्ञाशाली इन्द्र को अर्चा करो । १

सामर्थ्यवान ऋभु, (भक्तों की) रक्षा करने में सब प्रकार से समर्थ, अन्तरिक्ष में व्याप्त रहनेवाले, (अखिल) सामर्थ्यों से युक्त और (शत्रुओं के) आनन्द में विघ्न डालनेवाले इन्द्रके पास, माहात्म्यभूत होकर, आये । इस अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र को उनके उत्तेजनाप्रद शब्दोंने स्फूर्ति चढ़ाई । २

(जहां धेनुओं को बन्दकर रखा था वह किला आपने अंगिरस के लिए खोल दिया और सैकड़ों दरवाजों से आपने अत्रि के लिए मार्ग ढूंढ निकाला । वावसान के युद्ध में अपना वज्र (शत्रुसमुदाय में) नचाते हुए आपने विमद को धनधान्य अर्पण किया ।) ३

---

१ मावुषा: ॥

२ मदच्युतम् ॥

३ शतदुरेषु ॥

आपने उदक के ऊपरका आवरण निकाल डाला और पर्वतों में पैठकर विपुल सम्पत्ति हस्तगत कर ली। हे इन्द्र जब आपने अपने सामर्थ्यसे वृत्र—अहि को मार डाला तब आपने इस रीतीसे द्युलोक में सूर्यकी स्थापना की कि जिससे वह अच्छी तरहसे सबको दिखाई दे। ४

युक्ति प्रयुक्तियों के बल पर आपने कपटी शत्रुओं को खूब ही छकाया; तथा जो लोग आपकी हँसी[1] करने के लिए आपको हवि अर्पण करनेका ढोंग करते उनको भी आपने अपनी युद्धप्रणालीसे जीत लिया। मानवों के कल्याणकी इच्छा धारण करने वाले (हे इन्द्र)(आपने पिप्रुके पुरोंका विध्वंस किया, और दस्यु जब मारने को आये तब ऋजिश्वान की आपने रक्षा की) ५ (६)

(शुष्ण जब मारने को दौड़ा तब आपने कुत्स की रक्षा की और अतिथिग्व का पक्ष लेकर आपने शम्बर को चूरचूर कर डाला। अर्बुद के समान बड़ा होनेपर भी आप उस पर पैर रखकर खड़े हो गये। दस्युओं का हनन करने के लिए ही आप पुरातन काल मे जन्म लेने आये हैं।) ६

आप में सम्पूर्ण सामर्थ्य पूर्णतया सुस्थापित हुआ है; सोमपान के लिए आपके आनन्द में उल्लास आता रहता है। भुजाओं पर रखे हुए आपके वज्र की (सब को) पहचान है। (उसे लेकर) आप शत्रु के अखिल सामर्थ्यों का विदारण कीजिए। ७

१ शुभी ॥

२ हन्येषु ॥

३ हर्षते ॥

(आर्य कौन है और दस्यु कौन है,) यह अच्छी तरह पहचान रखिये और जो आपकी आज्ञा पालनेवाले नहीं हैं उनका शासन करके उन्हें अपने उपासकों के शरणमें आनेके लिये बाध्य कीजिये। आप सामर्थ्यवान हैं। अपने भक्तोंको आप (उत्कर्षपर) पहुँचाइये। आपके सर्व पराक्रम यज्ञमें (गाते समय मुझे आनन्द देते हैं। ८

जो इन्द्र की आज्ञा मानते हैं उनके आगे, आज्ञा न मानने वाले लोगों को नम्र होनेके लिये, बाध्य करके इन्द्र भक्तों की ओर से अभक्तिनों का नाश कराते रहते हैं। वम्र आपका स्तवन करता रहा; इसी लिये वह अपने शत्रु की एकत्रित की हुई सम्पत्ति का विध्वंस कर सका। यह उसका शत्रु पहले ही से बहुत बलवान हो गया था, तिस परभी उसका बल बढ़ ही रह था और वह स्वर्गतक जा भिड़ा था। ९

उशन ने आपनी शक्ति के योग से जो सामर्थ्य आपके लिए निर्माण किया उसमें इतना बल है कि वह द्युलोक और भूलोक दोनों के लिए भारी हो रहा है। मानवों के हित करने की बुद्धि रखने वाले (हे इन्द्र,) अपने को स्वयं रथ में जुटा लेने वाले वायु के अश्वों ने, सर्वत्र भरे रहनेवाले आपको, विपुल कीर्ति प्राप्त करा दी है। १०। १०।

जिस समय उशनाकाव्या के सहित इन्द्र संन्तुष्ट हुए उस समय, गेंट से टेढ़े टेढ़े चलनेवाले अश्वों में से अत्यन्त उत्कृष्ट अश्वों पर, उन्होंने आरोहण किया। उस प्रतापी देवता ने प्रवाहरूप से जलों को बिलकुल छोड कर उन्हें शीघ्र गति दी और-शुष्ण के दृढ़ दुर्ग का उन्हों ने विदारण किया। ११

---

१ शाकी ॥

२ अनामुवः ॥

३ वृमणः ॥

४ वंकुतराः ॥

सामर्थ्यवान् पुरुष जिसका पान करते हैं उस सोमरस का आस्वाद लेते हुए आप रथ पर आरूढ़ होते हैं। शार्यात के सोमरस के चमस तैयार हैं। इससे आपको भी बड़ा आनन्द होता है। हे इन्द्र, (हमारे) तैयार किये हुए सोमरस के विषय में जैसे जैसे आपकी प्रीति[1] बढ़ती जाती है वैसे वैसे आप द्युलोक में आप ही आप कीर्ति के पात्र होते जाते हैं। १२

(हे इन्द्र, आपके स्तोत्र गानेवाले और आपको सोमरस अर्पण करनेवाले वृद्ध कक्षिवान को आपने कोमल वयवाली वृचया अर्पण की) हे बुद्धिसामर्थ्यवान देव, वृषणश्व की कन्या मेना भी आपही बने। आपके ये सब कार्य यज्ञ में गाने योग्य हैं। १३

विपत्काल में सदाचारी लोगों ने इन्द्र का ही आश्रय किया है। जैसे दरवाजे का खम्भ नहीं टलता(वैसेही पंजों के कुल में इन्द्र की पूजा कभी रुक नहीं सकती) धेनु, रथ और वित्त से प्रीति रखनेवाले और दानकर्म में शूर एक इन्द्र ही सारे वैभवों के स्वामी हैं। १४

सामर्थ्यवान, स्वतेज से युक्त, सत्यकार्य में बलका विनियोग करनेवाले और शक्तिसम्पन्न(इन्द्रके सन्मानार्थ हमने यह नम्र स्तुति गाई है) हे इन्द्र, हम अपने यहां के सब पराक्रमी पुरुष और विद्वान् लोगों के सहित इस संकट के समय में आपकी कृपा का आधार मान कर रहें। १५ (११)

---

१ वाकनः ॥

२ अभीम् ॥

३ निरेके ॥

सूक्त ५२.

ऋषि-सव्य आंगिरस; देवता इन्द्र ॥

(प्रकाश को प्राप्त कर लेनेवाले मेष की अच्छी तरह अर्चना करो। सैकड़ों स्तोतें एकत्र बैठकर इसीकी कीर्ति गाते रहते हैं जिस प्रकार किसी जोशीले घोड़े को, यज्ञ के लिए जानेवाले रथ में, (जुटाने के लिए प्रयत्न पूर्वक) खींच कर लाना होता है उसी प्रकार इन्द्र को, अपनी रक्षा के लिए, हम, सुन्दर स्तोत्रों के द्वारा, खींच-लाने में समर्थ हों)। १

जिस समय हवियों से सन्तुष्ट होकर इन्द्र ने, नदियों का मार्ग खोलते हुए, जलों को प्रतिबन्ध करनेवाले वृत्र का वध किया उस समय, अपने ही सामर्थ्य से (परिवेष्टित होकर) और कठिन भूभाग पर रहनेवाले पर्वत की तरह स्थिर रह कर, हजारों प्रकार से भक्तों की रक्षा करनेवाले इन्द्र अधिकाधिक बड़े ही होते गये। २

शत्रुओं में शत्रु की तरह रहनेवाले, और (गाड़के) रेत की तरह दिखनेवाले (इस अन्तरिक्ष में) व्याप्त हो रहनेवाले इन्द्र का मुख्य निवासस्थान आल्हाददायक प्रकाश में है और विद्वान लोगोंने (सोमरस अर्पण करके) उनका आनन्द बढ़ाया है। मनमें बहुत तत्परता रख कर, परम उदार इन्द्राको मै आह्वाहन करता हूं। अन्न की समृद्धि करनेवाले वही हैं। ३

यज्ञगृह में आसनपर विराजमान होनेवाले जिन के उत्साही सेवक जिन्हें द्युलोक में, समुद्र की तरह सोमरस से भर डालते हैं उन्हीं इन्द्र के समीप, उनके सामर्थ्यवान, किसी के प्रतिरोध की परवा न करनेवाले, और सरलाकृति सहायक, वृत्रवध के अवसर पर खड़े थे। ४

---

१ स्वार्विदम ॥
२ सहस्रमूतिः ॥
३ उरिषु ॥
४ अद्भुतप्सवः ॥

जिस समय सोमरस से उत्साह परिप्लुत होनेवाले वज्रधर इन्द्र ने त्रिता की भांति बल के आसपास के दुर्ग तोड़ डाले उस समय हर्ष के आवेश में युद्ध करनेवाले उस देव के सहायक, पर्जन्यवृष्टि को प्रतिबन्ध करनेवाले उस (वृत्र) पर इस प्रकार टूट पड़े जैसे नदियां ढालू जगह से वेग के साथ दौड़ते जाती हैं। १ (१२)

हे इन्द्र, जिस समय आपने, पराजय करने में दुष्कर वृत्र की ठुड्डी के नीचे अपना वज्र फेंक कर मारा उस समय आपका तेज आपके चारों ओर फैल गया, आपके सामर्थ्य का प्रकाश पड़ा और उदकों को प्रतिबन्ध करनेवाला (वृत्र) रजोलोक के तल पर मर कर गिर पड़ा. ६

जो स्तोत्र आपकी महती बढ़ाते हैं वे इस प्रकार आपकी ओर दौड़ते आते हैं जैसे उदक के प्रवाह किसी दह की ओर दौड़ते हुए जाते हैं। त्वष्टा ने ही आपके लिए उपयोगी आपका सामर्थ्य बढ़ाया और ऐसा वज्र आपके लिए तैयार किया जो शत्रुओं का पराभव करने में समर्थ है। ७

हे सामर्थ्य परिप्लुत रहनेवाले इन्द्रदेव ! मानवों के हित के लिए उदकों के बहने का मार्ग खोलने के लिए आपने अपने अश्वों के द्वारा वृत्र का वध किया। आपने अपनी भुजाओं पर लोह का बना हुआ वज्र धारण किया और सूर्यदेव की द्युलोक में इस रीति से स्थापना की कि जिससे वह सब की दृष्टि पड़े। ८

जिस समय मनुष्यों ने डर से आपका प्रभावशाली, आपही आप आल्हाद उत्पन्न करनेवाला, दीर्घ और स्वर्गलोक तक प्रवेश करनेवाला स्तोत्र गाया, जिस समय मनुष्यों के हित के लिए युद्ध में प्रवृत्त होनेवाले, स्वर्ग में सदा शूरों का सहवास करनेवाले और इन्द्र के साह्यभूत होनेवाले मरुतों ने इन्द्र को प्रोत्साहन दिया, ९

और जिस समय, हे इन्द्र, द्युलोक और भूलोक दोनों में पीड़ा उत्पन्न करनेवाले वृत्र का शिर, सोमरस की आनन्ददायक स्फूर्ति में, आपके वज्रने अपने सामर्थ्य से, काट डाला, उस समय, भय के कारण बलिष्ठ स्वर्गलोक भी, उस अहि की गर्जना से थर थर कांपने लगा। १० (१३)

यदि सचमुच, हे इन्द्र ! पृथिवी दसगुनी बड़ी हो जायगी और मनुष्य की आयु चिरकाल तक टिकनेवाली हो जायगी, तभी हे उदार (देव,) आपका विख्यात सामर्थ्य, शक्ति और पराक्रम के विषय में, द्युलोक में समा सकेगा। ११

मन में अत्यन्त उत्साह रखनेवाले हे इन्द्र, जो कि आप अपने ही पराक्रम से अपनी रक्षा करने में समर्थ हैं वही आपने रजोलोक और आकाश के उस पार (रहकर) इस पृथिवी को अपने सामर्थ्य के मापने का माप ही बनाया है। आप उदक और प्रकाश को व्याप्त करके द्युलोक में भी प्रवेश करते हैं। १२

आपने इस पृथिवी को माप डाला है और जिसमें अति उच्च योग्यता के शूर पुरुष हैं ऐसे विशाल (स्वर्गलोक) के आप स्वामी हो बैठे हैं। आपने अपने सामर्थ्य से सब अन्तरिक्ष व्याप्त कर डाला है। सचमुच आपके समान इस जगत् में दूसरा और कोई भी नहीं। १३

जिनकी व्यापकता की बराबरी द्युलोक अथवा भूलोक दोनों नहीं कर सके और अन्तरिक्ष की नदियां भी जिनका अन्त नहीं पा सकीं, तथा सोमरस के आनन्द के आवेश में, उदकों का प्रतिबन्ध करनेवाले वृत्र से युद्ध करते समय भी (जिनका पूर्ण ज्ञान किसी को भी नहीं हुआ) उन्हीं आपने अकेले, आत्म-व्यतिरिक्त सम्पूर्ण जगत् को, अपने वश में कर रखा है। १४

हे इन्द्र, जिस समय आपने अपने तीक्ष्ण शस्त्र से वृत्र के मुखपर वार किया उस समय, उस युद्ध के प्रसंग में, मरुतों ने आपकी पूजा की और सब देवताओं ने आपको प्रोत्साहन दिया। १५ (१४)

सूक्त ५३.

ऋषि—सव्य आंगिरस; देवता—इन्द्र ॥

(इन प्रभु इन्द्र को सम्बोधन करके हम स्तोत्र गाने को बैठते हैं। विवस्वान् के भवन में हम उन्हें स्तुति अर्पण करते हैं। सोते सोते (जैसे किसी को) कोई द्रव्य ला दे, वैसे ही उन्होंने हमें सम्पत्ति प्रदान की है। (ऐसे) धनदाता की कोई कभी बुरी स्तुति नहीं करते।) १

आप अश्व, धेनु और धान्य देनेवाले हैं। सब सम्पत्ति के स्वामी और प्रभु आपही है। पुरातन काल से आप मानवों के मार्गदर्शक है; आपने किसी की आशा को कभी भंग नहीं किया; आप अपने मित्रों के (प्राणप्रिय) मित्र हैं; आप के ऐसे बड़े होने के कारण हम आप के सन्मानार्थ यह स्तोत्र गाते हैं। २

हे ज्ञानसामर्थ्ययुक्त इन्द्र, हे अनेक महन् कार्य करनेवाले और अत्यन्त दीप्तिशाली देव, यह जो वैभव आसपास प्रकाशमान हो रहा है वह आपहीका हैं। इस लिए, शत्रुको पराभूत करनेवाले हे इन्द्र, वह हमें ला दीजिए। आप अपने भक्ति करनेवाले स्तोता का मनोरथ भग्न न होने दीजिए। ३

इन (यज्ञ की) अग्निज्वालाओं से और इस सोमरस के बिन्दुओं से मन में सन्तुष्ट होकर आप धेनु और अश्व हमें देकर हमारी दरिद्रता नष्ट कीजिए। सोमरस अर्पण कर के इन्द्र के हाथ से दस्युओं का वध कराकर हम शत्रुओं से बिलकुल निर्मुक्त होंगे और धन धान्य से समृद्ध बनेंगे। ४

हम सम्पत्ति से, धान्यसंचय से, और अनेक तरह से आनन्दकारक और तेजस्विता से युक्त सामर्थ्य से सुसमृद्ध होंगे। तथा जिसके कारण हमारे यहां के शूर पुरुषों का बल दृष्टि पड़ेगा और जिससे गौओंका लाभ प्रमुख है तथा अश्व भी मिल सकते हैं, ऐसी आपकी दिव्य कृपा भी हमें प्राप्त होगी। ५ (१५)

वृत्रवध के मौके पर, हे सज्जनों के नायक (इन्द्र), उन आनन्दकारक पेयों से, उन उत्साहवर्धक हवियों से, और उन सोमरसों से, आपको (अवश्य ही) नवीन आवेश आया। क्योंकि (उसके जोर में) आपने किसी के प्रतिरोध की परवा न करते हुए, आपके लिए दर्भासन लगा कर आप की कीर्ति गानेवाले भक्तों के लिए दस हजार वृत्रोंको काट डाला। ६

जिस समय हे इन्द्र, आपने अपने प्राणप्रिय भक्त नमी को साथ ले कर नमुचि नामक कपटी (राक्षस को) अत्यन्त दूर प्रदेश में जाकर काट डाला· उस समय, (रणसंग्राम में) बड़े आवेश से घुसनेवाले आपको युद्ध के पिछे युद्ध करना पड़ा और अपने सामर्थ्य से आप पुरों के पीछे पुरों का विध्वंस करने लगे। ७

अतिथिग्व के अत्यन्त तेजस्वी चक्र के द्वारा आपने करंज और पर्णय का वध किया। ऋजिश्वान के घेरे हुए वृंगद के सौ पुर आपने उध्वस्त कर डाले। आपके दातृत्व से (सचमुच) किसी की बराबरी नहीं की जा सकती। ८

आप सत्कीर्तियोंसे मंडित हैं। जिस समय सुश्रवस को असहाय देखकर बीस राजाओंने उस पर चढ़ाई की उस समय एक ऐसा रथचक्र लेकर, कि जिसके सामने कोई टिक नहीं सकता था, आपने उनका (साथही) उनके साठ हजार निन्नानवे लोगों का उच्छेद कर डाला। ९

हे इन्द्र, आपने अपने कृपाछत्र से सुश्रवस की रक्षा की और अपनी सहायता देकर तुर्वयाण का बचाव किया। आपने इस श्रेष्ठ और तरुण नृपति के सामने कुत्स, अतिथिग्व, और आयुको शरण आनेके लिए बाध्य किया। १०

हम सब देवताओं की रक्षा में रहनेवाले हैं। हम को आप अपना प्राणप्रिय भक्त बनाकर अब आगे भी सौख्य में ही रखिये। अत्यन्त दीर्घ और चिरकालिक आयु का भोग करते हुए, अपनी कृपा से प्राप्त हुए हमारे यहां के शूर मनुष्यों के सहित, अपना स्तवन करते हुए हमें बैठने दीजिए। ११ (१६)

सूक्त ५४.

ऋषि—सव्य आङ्गिरस; देवता—इन्द्र ॥

हे उदार देव, इस युद्धमें, ऐसे कठिन अवसर में, हमें न छोड़िये। सचमुच आपके सामर्थ्य का अन्त लगाना असम्भव है। आपने अपनी गर्जना करते ही नदियों और वृक्षों को जोर से चिल्लाने के लिए बाध्य किया। (ऐसी दशा में) आपके डर से भला मनुष्य क्यों नहीं एकत्र हो सकते? १

सामर्थ्यवान पराक्रमी और बलवान इन्द्रकी अर्चा करो (भक्तों की पुकार) सुनने के लिए तैयार रहनेवाले (इन्द्र का गौरव करके उनका स्तवन करो) शक्तिसामर्थ्य युक्त इन्द्र अपनी दृढ़ शक्ति और वीर्य के द्वारा द्युलोक और भूलोक दोनों को भूषित करते हैं। २

जिस शूर के अन्तःकरण में अपने सामर्थ्य के विषय में विश्वास है और साहस की ओर जिसकी प्रवृत्ति है उस देदीप्यमान और श्रेष्ठ (इन्द्र को) सम्बोधन कर के कोई प्रभावशाली स्तोत्र पढ़ो। उस की कीर्ति विशाल है, वह शत्रुओं का नाश करनेवाला है, वह पराक्रमी है, वह हरिद्वर्ण अश्व रथ के आगे जुटाता है। वह सामर्थ्यवान है और (भक्तों की ओर जानेवाला) वह (मानों) रथ ही है। ३

जिस समय हाथ में दृढ़ता से पकड़े हुए तीक्ष्ण वज्र से आपने, आनन्द देनेवाले सोमरस के योग से स्फूर्ति चढ़ने के कारण, कपटी (राक्षसों की) दस्यु से युद्ध किया उस समय विस्तीर्ण द्युलोक का शिखर भी आपने हिला डाला और अपने वज्र के प्रहार से शंबर का शरीर विदीर्ण किया। ४

जब कि वृक्षों को रुलाकर शुष्ण की भी सेना को आपने वायु के शिखर पर ले जाकर काट डाला और जब कि अपने उत्साही मन की प्रवृत्ति (ऐसेही पराक्रम की ओर) रख कर अब भी आप (ऐसे पराक्रम) दिखलाते रहते हैं तब फिर आपसे अधिक श्रेष्ठ और कौन है? ५ (१७)

(आपने नर्य, तुर्वश और यदु की रक्षा की। हे सामर्थ्यवान (इन्द्र) आप ने वय्य तुर्वीति की भी रक्षा की। संग्राम का प्रसंग आने पर आपने रथ और एतश की रक्षा की और (शत्रुओं के) निन्नानवे पुर ढहा दिये।) ६

इन्द्रको हव्य अर्पण करके जो उनके अनुशासन पर चलता है वह सज्जनों में प्रमुख मनुष्य, राजा बन कर, अभिवृद्धि को प्राप्त होता है। अथवा जो सन्तोषदायक हव्य अर्पण कर के उनको सम्बोधन कर के स्तोत्र पढ़ता है उसके लिए ऊपर से, द्युलोक से, विपुल (धन की) वृष्टि होती है।) ७

आपके बल की सीमा नहीं, आप की बुद्धिमत्ता की भी सीमा नहीं। जो सोमपान करनेवाले आप के उपासक, आप के, जो दान कर्म में प्रवीण हैं, श्रेष्ठ सामर्थ्य की और विशाल शक्ति की बड़ाई गाते हैं वे अपने सत्कृत्यों से अभिवृद्धि को प्राप्त होते हैं। ८

पाषाण के बने हुए उलूखल में डालकर निचोये हुए, पात्र में भर रखे हुए और (हे इन्द्र,) आपके पान करने के ही हेतु से तैयार किये हुए ये सोमरस के अनेक चमस आप ही के लिए रखे हुए हैं। आप उनका पान कीजिए, इन के विषय में आपकी जितनी वांछा हो उतनी सब तृप्त कर लीजिए और हमें सम्पत्ति देने में अपने मन की प्रवृत्ति कीजिए। ९

अंधकार, उदकों के प्रवाह को बन्द करके, बैठा था और पर्वत भी वृत्र के जठर में था। परन्तु इन्द्र ने उन (जलों को) प्रतिबन्ध करनेवाले राक्षस की रोकी हुई नदियों के लिए मार्ग निकाल दिया, ताकि वे सब अवरुद्ध प्रदेश से, एक की तरह दूसरी, दूसरी की तरह तिसरी बहने लगें। १०

तो अब हमें हे इन्द्र, ऐसा वैभव अर्पण कीजिए कि जिस से हमारा सौख्य बढ़े, और लोगों की अपेक्षा बढ़ा चढ़ा हुआ विपुल शौर्य तथा बल भी हमें दिजिए। हे औदार्यशालि देव, हमारी रक्षा, और हमारे यहां के विद्वान् लोगों का भी परिपालन कीजिए और हमें ऐसा वैभव तथा समृद्धि दीजिए कि जिसमें उत्तम सन्तति का भी समावेश हो। ११ (१८)

सूक्त ५५.

ऋषि—सव्य आंगिरस; देवता-इन्द्र।

इसकी श्रेष्ठता द्युलोक से भी अधिक है। पृथ्वी भी अपनी बड़ाई में इन्द्र की बराबरी नहीं कर सकती। यह (शत्रुओं को) भीतिप्रद, सामर्थ्यवान और मानवों के लिए अपना प्रताप दिखलानेवाला है और, कोई वृषभ जैसे (अपने सींगों में तीक्ष्णता लाने के लिए) उन्हें पैनाता है वैसे ही अपना वज्र अधिक तीक्ष्ण होने के लिए वह उसकी धार तेज करता है। १

समुद्र में निवास करके, किसी महासागर की तरह, अपने आश्रय में आनेवाली सब नदियों का, वह अपने श्रेष्ठ सामर्थ्य के द्वारा स्वीकार करता है, सोमपान करने की इच्छा से वह किसी वृषभ की भांति अपनी शक्ति प्रदर्शित करता है। अपने (अलौकिक) बल के कारण यह योद्धा सनातन काल से स्तवन का पात्र हुआ है। २

हे इन्द्र ! उस पर्वत को मानो ग्रस लेने के लिए ही आप अत्यन्त पौरुष और पराक्रम अपने लिए प्राप्त कर लेते हैं; (सब अद्भुत कृत्यों में ये उग्र (इन्द्र) अगुआपन लेते हैं और अपने सामर्थ्य में सब देवताओं को पीछे कर देते हैं। ३

सब लोगों में अपने कल्याणप्रद सामर्थ्य की प्रसिद्ध करनेवाले सिर्फ इन्द्र की ही नमस्कृति पूर्वक स्तुति होती रहती है। जिस समय हव्य अर्पण करनेवाला भक्त अपने कल्याण की इच्छा से (इन्द्र की) स्तुति में प्रवृत्त होता है उस समय पराक्रमी इन्द्र उस पर सन्तुष्ट होते हैं, उसके आगे वे अपना रमणीयत्व प्रकट करते हैं। ४

यही योद्धा अपने बल और सामर्थ्य के द्वारा जनहित के लिए बड़े बड़े युद्ध करता है, और इसी लिए, तेजस्वी तथा घातक वज्रसे शत्रुओं पर बार बार प्रहार करनेवाले इन्द्र पर (सब लोग) श्रद्धा रखते हैं। ५ (१९)

सचमुच कीर्ति की इच्छा रखनेवाले इस सामर्थ्यवान इन्द्रने, पृथिवी की तरह विशाल रूप धारण करके, अपने पराक्रम से (शत्रुओं के) बनाये हुए भवनों का विध्वंस करके और यजन करनेवाले भक्तों के लिए (आकाशस्थ) ज्योतियों को संकटसे विमुक्त करके जलों के प्रवाहों को बन्धमुक्त किया ताकि वे फिर बहने लगें। ६

हे सोमपान करनेवाले इन्द्र ! आपका मन हमारे विषय में दातृत्व बुद्धि धारण करे और हमारी नम्र स्तुति सुननेवाले हे देव, आप अपने पीतवर्ण अश्व हमारी ओर घुमाइये। हे इन्द्र, आपके सारथी आपके अश्वों को वश में रखने में अत्यन्त कुशल हैं और इस लिए आपके अश्व चाहे जितने चपल हों, वे आपको इधर उधर नहीं ले जाते। ७

हे इन्द्र, आप विख्यात हैं; आप ऐसा वैभव अपने हाथ में रखते हैं जिसका कभी विनाश नहीं। आपने ऐसा सामर्थ्य अपने शरीर में धारण किया है जो शत्रुओं को बढ़ने नहीं देता। कर्तृत्ववान् पुरुष जिसके आसपास खड़े हैं ऐसे कुएं की तरह शोभित होनेवाली आपकी अनेक शक्तियां, हे इन्द्र ! आपके शरीर में निवास कर रही हैं। ८ (२०)

सूक्त ५६.

ऋषि–सव्य आंगिरस; देवता–इन्द्र ।

जिस प्रकार कोई तुरग तुरगी के लिए उत्सुक होता है उसी प्रकार, इस उपासक ने चमसों में जो सोमरस भरपूर भर रखा है उसे पीने के लिए, यह उतावली से उत्सुक हुआ है। जिस में पीतवर्ण अश्व जुटे हुए हैं ऐसा अपना बड़ा रथ इधर को घुमाकर यह इन्द्र महत्कार्य के लिए अत्यन्त आवश्यक सामर्थ्य-दायक सोमरस पान करता है। १

जिस प्रकार प्रवास के लिए जाते समय धनार्जनेच्छु (साहसी) लोगों की समुद्र पर भीड़ लगती है उसी प्रकार हव्य बनाकर तैयार कर रखे हुए स्तोत्र जनों की इसके आसपास भीड़ लगती है। जिस प्रकार ये सुन्दर युवतियां (अर्थात् उषा) पर्वत पर आरूढ़ हुई हैं उसी प्रकार (हे देव,) आप इस सामर्थ्याधिपति (सूर्य) को पर्वत पर संस्थापित कीजिए; क्यों कि यह यज्ञ का केवल बल ही है। २

वह शत्रुओं का नाश करनेवाला और श्रेष्ठ है। उसका अत्यन्त शुद्ध बल अपने सामर्थ्य से प्रत्येक युद्ध में गिरि शिखर की भांति चमकता रहता है। इस बल के द्वारा इस अजित देव ने, (सोम रस के कारण उत्पन्न हुए) आनन्द के वेग में, अपना लोहेका वज्र ले कर, कपटी शुष्ण का (पराभव किया और उसे) शृंखलाबद्ध कर के कारागृह में डाल दिया। ३

जिस समय तू ही लुटपन से बढ़ाई हुई शक्तिरूपी देवी, जैसे सूर्य उषा पर आसक्त होता है वैसेही, स्वसंरक्षणार्थ इन्द्र का आश्रय करती है उस समय अपने प्रतापी सामर्थ्य से अंधकार का नाश करने वाला यह देव जयघोष करते हुए सारी मलिनता को दूर कर देता है। ४

जिस समय आपने अपने सामर्थ्य से द्युलोक की सीमा पर रजो—लोककी दृढ़ता और सुस्थिरता से संस्थापना की और जब (सोमरस से उत्पन्न हुए) हर्ष के वेग में आपने बड़े आवेश से युद्ध में वृत्र का वध किया तब आपके हाथ से उदक का संचय बन्धमुक्त हुआ। इन्द्र, आप श्रेष्ठ हैं; आप पृथ्वी के प्रदेश में अपने सामर्थ्य से आकाश के बालक को ले आते हैं। सोमरस के कारण उत्पन्न होनेवाले हर्ष के वेग में आपने उदकों के लिए मार्ग खोल दिया और वृत्र के पत्थरवाले घेरे का उच्छेद कर डाला। ५ (२१)

सूक्त ५७

ऋषि-सव्य आंगिरस; देवता-इन्द्र ॥

अत्यन्त उदार, श्रेष्ठ, अत्यन्त वैभवशाली, सत्य, सामर्थ्यवान् और पराक्रम के पुतलेही (इस देव) को प्रसन्न करने के लिए मैं स्तुति अर्पण करता हूं। जिस प्रकार, ढालू जमीन की ओर जो पानी फूट जाता है वह किसी प्रतिबन्ध को भी न मानते हुए सर्वत्र फैल जाता है उसी प्रकार, इसके सर्वत्र दृग्गोचर होनेवाले और अखंड जारी रहनेवाले कृपाप्रसाद के कपाट (भक्तों के शरीर में) सामर्थ्य लाने के लिए सदैव खुले रहते हैं। १

जिस समय सुवर्णमय, सुन्दर परन्तु प्राणघातक, वज्र पर्वत पर फेकने की तरह (वृत्र के शरीर पर जा गिरा उस समय सम्पूर्ण विश्व आपकी पूजा करने में प्रवृत्त हुआ और ढालू जमिन की ओर जैसे पानीका प्रवाह) सरासर बहता जाता है (उसी प्रकार भक्तों के हव्य बराबर आपकी ओर आने लगे)। २

जिसके तेज, नाम, बल और प्रकाश की चारों ओर प्रशंसा होने के लिए आपने उन्हें सर्वत्र प्रसृत होने में, इन्द्र के पीतवर्ण अश्वों का भांति ही, प्रवृत्त किया उस भीतिप्रद परन्तु स्तुतिस्तोत्र गाने योग्य इन्द्रको, उषा की भांति, कान्तिमान दिख पड़नेवाली हे युवति, । इस यज्ञ में, नमस्कृति अर्पण करके ले आइये। ३

अनेकों ने जिनकी स्तुति की ऐसे हे वैभवशाली इन्द्र, हम सब प्रकार से आप ही के हैं; क्योंकि आपका आश्रय करके हम इस जगत् में सुखपूर्वक रहते हैं। हे स्तुति-प्रिय देव, आपके अतिरिक्त अन्य किसी कों भी स्तुति नहीं प्राप्त होती; इस लिए जिस प्रकार पृथ्वी (जीव मात्र को) जगह देती है वैसे ही आप भी हमारे स्तोत्रों का स्वीकार कीजिए। ४

हे इन्द्र ! आप का बल विपुल है; हम आप ही के है। आप अपने इस भक्तकी इच्छा पूर्ण कीजिए। इस विशाल द्युलोकने आपके सामर्थ्य से अपने सामर्थ्य की तुलना कर देखी है और यह पृथ्वी भी आप के पराक्रम के सामने नम्र हो गई है। ५

हे वज्रधारी इन्द्र, आपने अपने वज्र से उस बड़े और विशाल पर्वत के टुकड़े टुकड़े कर डाले। रोक डाले हुए जल-प्रवाह फिर जारी होने के लिए आप ही मार्ग निकाल दिया। सचमुच जितना कुछ सामर्थ्य है, सब आप ही अकेले धारण करते हैं। ६ (२२)

अनुवाक ११

सूक्त ५८.

ऋषि–नोधा गौतम; देवता–अग्नि ।

यह (देवताओं को) हव्य पहुंचानेवाला अग्नि विवस्वान का दूत हुआ है। इसी लिए यह सामर्थ्य से जन्म लेनेवाला अमर्त्य देव कभी थक नहीं जाता। वह उत्तम मार्गों से रजोलोक का आक्रमण करता है और यज्ञ में (देवताओं को) हव्य अर्पण करके उनका आदरातिथ्य करता है। १

यह जरा–भय–रहित अग्नि देव अपने अन्न को सत्वर और आतुरता से स्वीकार करके काष्ठ में (प्रज्वलित होकर) रहता है। जब इसको घृत अर्पण किया जाता है तब उसका पृष्ठ भाग किसी (ताजे तवाने) अश्व की भांति प्रफुल्लित देख पड़ता है। इसने मानो स्वर्ग के भी सिर तक प्रतिशब्द उत्पन्न करते हुए गर्जना की है। २

जो कर्तृत्वशालि है, रुद्र और वसु ने जिसे प्रमुखता दी है जिसने वैभव जित लाया है और जिसे मृत्युभय नहीं है ऐसा यह हविर्दाता (अग्नि) (यहां) आकर विराजमान हुआ है। यह देव इस जगत में रहनेवाले सब मनुष्यों में प्रतिष्ठा प्राप्त करके किसी रथ की तरह बराबर सम्पत्ति ले आता रहता है। ३

वायुसे प्रेरित होते ही यह बड़ी गर्जना करके अपनी जिव्हारूप लपट साथ लिये हुए काष्ठ समुदाय में सहज रीति से जा बैठता है। ज्वलउज्वालाओं से परिवेष्टित और वार्धक्य पीड़ा से निर्मुक्त रहनेवाले हे अग्निदेव, जब आप काष्ठ समुदाय में अपना सामर्थ्य एकदम प्रकट करते हैं तब आपका मार्ग (धुए से) काला हो जाता है। ४

यह अग्नि, जिसकी दंष्ट्रा ज्वालामय है, वायु से प्रेरित होकर जब काष्ठ समुदाय में प्रवेश करता है तब, कोई शक्तिमान वृषभ जैसे अपने समूह में निर्भय संचार करता है वैसे ही, यह संचार करने लगता है। जब यह अविनाशी रजोलोक से अपने सामर्थ्य के द्वारा गमन करता है तब सम्पूर्ण चराचर सृष्टी को इस पक्षिराज का भय मालूम होने लगता है। ५ (२३)

सम्पत्ति की तरह सुन्दर रहनेवाले, सब लोगों को पुकारने में सुलभ लगनेवाले, और दिव्य लोक के पुरुषों को मित्र की भांति सुखदायक होनेवाले हे श्रेष्ठ हविर्दाता अग्निदेव, जब आप भृगुओं के अतिथि हुए तब उन्होंने मानव समुदाय में आपको सन्मान से जगह दी। ६

(भक्तों को) सब सम्पति अर्पण करनेवाले अग्निका मैं हवियों से पूजन करता हूं और इस कारण मुझे उत्कृष्ट सम्पति भी प्राप्त होती है। यह अग्नि (देवों को) हव्य पहुंचानेवाला है; इस लिए हव्य अर्पण करनेवाले सप्त ऋत्विज (सदा) यह इच्छा करते रहते हैं कि इस यज्ञार्ह अग्नि का यज्ञ में आगमन हो। ७

सामर्थ्य से जन्म पानेवाले और स्वामित्रों को आनन्द देनेवाले हे अग्निदेव, जो भक्त आपका स्तवन करते हैं उन्हें आज आप अक्षय सुख प्राप्त करा दें। हे शक्ति-पुत्र अग्ने, जो आपकी स्तुति गाते हैं उन सेवकों के लिए लोहे के नगर बनाकर आप संकट से उनकी रक्षा कीजिए। ८

हे दीप्तिमान अग्निदेव, आप स्तुति करनेवाले अपने भक्तों के कवच बन जाय; हे उदार देव, जो आपको हव्य अर्पण करते हैं उनके आप प्रत्यक्ष कल्याण ही हो जाय। अग्ने, आप अपने स्तोतृजनों की संकट से रक्षा करते ही रहते हैं; अतएव असंख्य स्तुति-स्तोत्रों से मंडित यह (अग्निदेव) प्रातःसमय शीघ्र ही (हमारे यज्ञ की ओर) पधारे। ९ (२४)

सूक्त ५९.

ऋषि-नोधा गौतम; ॥ देवता-अग्नि वैश्वानर ॥

हे अग्निदेव, अन्य सम्पूर्ण अग्नि आपकी शाखा हैं। सम्पूर्ण अमर (देवता) आपही में अत्यन्त सन्तोष पाते हैं। सम्पूर्ण विश्व के विषय में मित्रता धारण करनेवाले हे अग्निदेव, आप सम्पूर्ण पृथ्वी के मध्यबिन्दु (केन्द्र) हैं। १

अग्नि द्युलोक का मस्तक और पृथिवी की नाभि है; इसके सिवाय यह द्युलोक और भूलोक का अधिपति हुआ है। सम्पूर्ण विश्वके विषय में मित्रता धारण करनेवाले हे अग्निदेव, आप ऐसे श्रेष्ठ देव हैं, इसी कारण आपको देवताओं ने इस हेतु से निर्माण किया है, ताकि आप आर्यजनों की (मार्गदर्शक) ज्योति ही हों। २

जिस प्रकार सूर्य में निरन्तर रश्मियों का वास रहता है उसी प्रकार सम्पूर्ण विश्व के विषय में मित्रता धारण करनेवाले इस अग्नि में सब वैभव संस्थापित हुए हैं। जिन द्रव्यनिधियों का पर्वतों, वनस्पतियों अथवा मर्त्यलोक में निवास रहता है उन सब के आप अकेले ही राजा हैं ३

मानो इस उदार अग्नि के लिए ही द्युलोक और भूलोक इतने विस्तीर्ण हो गये हैं। इस प्रकाशमान सत्यबल से युक्त, सम्पूर्ण विश्व के विषय में मित्रभाव धारण करनेवाले और सब शूरों में श्रेष्ठ (अग्निदेव को) यह उपासक, किसी प्रज्ञावान पुरुष की तरह, बड़े बड़े असंख्य स्तोत्र अर्पण कर रहा है। ४

सम्पूर्ण विश्व के विषय में मित्रता धारण करनेवाले हे सर्वज्ञ अग्निदेव, आपकी महिमा इस विस्तीर्ण द्युलोक से भी अधिक है। आप सम्पूर्ण मानव समुदाय के राजा हैं। राक्षसों से युद्ध करके आपने देवताओं को सुरक्षित कर दिया। ५

वृत्र का वध करनेवाले जिस (अग्नि) का आश्रय सब लोग ढूँढते हैं उस सामर्थ्यवान देवकी महिमा (इस स्तोत्र में) मैंने गाई है। सम्पूर्ण विश्व के विषय में मित्रता रखनेवाले इस अग्निने दस्युओं का वध करके (उदकों के मार्ग का) प्रतिबन्ध नष्ट किया और शम्बर को छिन्नविच्छिन्न कर डाला। ६

सम्पूर्ण विश्व के विषय में मित्रता धारण करनेवाला और अपने सामर्थ्य से सर्वत्र वास करनेवाला यह पूज्य और दीप्तिमान अग्नि भारद्वाज कुल के पुरुषों में (आकर विराजमान हुआ है।) जिसकी वाणी मधुर परन्तु सत्यपरिप्लुत है उसी अग्नि की, शातवनेय और पुरुणीथ के यज्ञ में, सैकड़ों स्तोत्रों से स्तुति हुई है। ७ (२५)

सूक्त ६०.

ऋषि–नोधा गौतम ॥ देवता अग्नि ॥

जो (हमारा हव्य देवता ओं तक) पहुँचानेवाला है, वह मूर्तिमान कीर्ति ही है, यज्ञ की जो केवल ध्वजा ही है, जो यज्ञगृह में अत्यन्त रखने योग्य है, जो हमारा दूत बनकर देवताओं के पास तुरंत ही गमन करता है, जो दो बार जन्मता है, उत्कर्ष की भांति जो प्रशंसनीय है और जो केवल वैभव की मूर्ति ही है, ऐसे उस अग्नि को भृगुओं के लिए मातरिश्वा ले आया । १

हव्य ग्रहण करने के लिए उत्सुक होनेवाले (जो देव) और जो मर्त्यलोक के (मानव हैं वे) इस प्रकार उभयलोक इसकी आज्ञा मान्य करते रहते हैं (सम्पूर्ण लोगों के लिए) जो सन्मानपूर्वक सत्कार करने योग्य है, जो सम्पूर्ण मानवों में उनका राजा बन कर रहता है और जिसका कर्तृत्व विलक्षण है वही यह हविर्दाता सूर्योदय के पूर्व ही यहां आकर स्थानापन्न हुआ है । २

जिसे उसकी उपासना करनेवाले इस जगत् के मानव अपने संकटसमय में हवियों से प्रज्वलित करते आये हैं उसी (भक्तों के) हृदय में प्रकट होनेवाले और मधुर भाषण करनेवाले अग्नि को, हमारा यह हृदय–पूर्वक गाया हुआ नवीन स्तोत्र, जा मिले । ३

(हवियों के लिए) उत्सुकता रखनेवाला (सम्पूर्ण जगत को) पावन करनेवाला और जो (मानो) प्रत्यक्ष वैभवही है उसी हविर्दाता अग्नि की यहां इन मर्त्य–मानवों के समुदाय में स्थापना की गई है । अपने भक्तों के गृह में निवास करनेवाले और गृह में गृहाधिपति कहलाकर शोभनेवाले इस अग्नि ही की ओर सम्पूर्ण सम्पत्तियों की प्रभुता आज तक (निर्बाध रूप से) रहती आई है । ४

हे अग्निदेव, अश्व की पीठ पर जैसे (कोई साईस) हाथ फिराता है उसी प्रकार आप, जो सामर्थ्य प्राप्त करा देनेवाले हैं, (उन पर वायु झुलाते हुए हम गौतम–कुलोत्पन्न (आप के भक्त), सर्व सम्पत्तियों के स्वामी आप की, अनेक स्तोत्रों के द्वारा, स्तुति करते हैं । स्तुति स्तोत्र ही इन अग्निदेव का वैभव है । ये प्रातःकाल शीघ्रही यहां पधारें) । ५ (२६)

सूक्त ६१.

ऋषि–नोधा गोतम ॥ देवता इन्द्र ॥

प्रबल, वेगवान और श्रेष्ठ (इन्द्र को) सम्बोधन करके ही मैं यह हव्य तथा यह स्तवन अर्पण करता हूं । मैं उस स्तवनीय और निर्विघ्न रीति से संचार करनेवाले इन्द्र का ध्यान कर के ऐसी स्तुति (गाता हूं) कि जो उसे अर्पण करने योग्य है और ऐसे स्तोत्र गाता हूं कि जो आजतक उसके सन्मानार्थ रचे हुए स्तोत्रों में उत्कृष्ट है । १

सचमुच इस देवता को मानों मैं हव्य ही अर्पण कर रहा हूं । इस (शत्रु) विनाशक देवता को मैं एक सुन्दर स्तवन अर्पण करता हूं । इन्द्र जो (इस विश्व का) पुरातन प्रभु है उसके प्रीत्यर्थ (विद्वान उपासकोंने) अपना अन्तःकरण, मन, बुद्धि लगा कर (अनेकानेक) स्तोत्र गाये हैं । २

सचमुच जिसकी उपमा दूसरे स्तोत्रों को दी जानी चाहिए और जो प्रकाश का लाभ करा देनेवाला है वही स्तोत्र मैं उस (इन्द्र) की प्रसन्नता के लिए ही गाता हूं । उस अत्यन्त उदार और प्रज्ञाशाली देव का माहात्म्य मैं अपनी मनमानी सुन्दर स्तुतियों से वर्णन करना चाहता हूं । ३

जिस मनुष्य को रथ की आवश्यकता होती है उसके पास जैसे कोई बढ़ई रथ तैयार करके भेजता है उसी प्रकार सचमुच इस (इन्द्र के पास) मैं अपनी स्तुति भेजता हूं । उसी प्रकार सुन्दर सुन्दर स्तवन और ऐसा (एक स्तोत्र) जो सर्वत्र स्वीकार किया जायगा, भक्तों के स्तवनों का स्वीकार करनेवाले इस इन्द्रके पास मैं भेज देता हूं । ४

जैसे कोई अश्व सजाकर तैयार करते हैं वैसे ही मैं सचमुच, कीर्ति प्राप्त करने की इच्छा रखकर, स्ववाणी से इन्द्र के प्रीत्यर्थ एक स्तोत्र भली प्रकार से सजाता हूं । उसके द्वारा, मेरी यह इच्छा है कि, वीर्यशाली, सर्व दानशूरता के आगर, (शत्रुओं के) पुरों का विध्वंस करनेवाले और–जिनकी कीर्ति सर्वत्र गाते रहते हैं उन इन्द्र को अपनी प्रणति अर्पण की जाय । ५ (२७)

शत्रु पर) प्रहार करनेवाले जिस वज्र से शत्रुओं का संहार करते हुए इस बलशाली विश्वाधिपतिने वृत्र के मर्मस्थल ही की खबर ली वह उज्ज्वल और वधकर्म के लिए अत्यन्त उपयोगी वज्र सचमुच इस (इन्द्र के प्रीत्यर्थ ही त्वष्टा देव ने तैयार कर दिया । ६

सचमुच अपनी माता के किये हुए याग में ही इसने एकदम उत्कृष्ट पेय पान किया और हवियों का उत्कृष्ट (आस्वाद लिया) बलवान विष्णु भी (इसके लिए) ऐसे हवि हरण कर लाया जिनकी पाकसिद्धि उत्तम हुई थी। (उनका भोजन करके) अस्त्रविद्या में प्रवीण देवने,(उस कुमार के शरीर पर अपना तिरछा वज्र फेंककर, उसे छिन्न-भिन्न कर डाला)। ७

अहि का वध करनेवाले(इस इन्द्रकी प्रसन्नता के लिए ही स्त्रियों ने भी—स्वयं देवपत्नियों ने—एक सुन्दर स्तोत्र रचा) विस्तीर्ण द्युलोक और भूलोक का उसने आकलन किया है । परन्तु हां, उनकी महिमा आकलन करने का सामर्थ्य उनके शरीर में नहीं है ७

सचमुच इसकी महिमा द्युलोक भूलोक और अन्तरिक्ष, इन सब से भी अधिक है । स्वतेज से विराजमान होनेवाले इन्द्र का घर घर स्तवन होता रहता है । यह सामर्थ्यवान इन्द्र (शत्रुओं से लड़ने के लिए) उच्च घोष करके (एकदम) बढ़ गया । ८

जगत का शोषण करनेवाले वृत्र को इन्द्रने स्वसामर्थ्य से वज्र लेकर छिन्नभिन्न कर डाला । अपनी कीर्ति फैलाने के लिए दानकर्म की ओर मन की प्रवृत्ति रखनेवाले इस इन्द्र ने, धेनु की तरह प्रतिबन्ध में पड़े हुए जल प्रवाह के लिए मार्ग खोल दिया । १० (२८)

जिस समय अपने वज्र से उस (वृत्र को) जीता उस समय, यह उस सामर्थ्य का प्रताप ! कि नदियां आनन्द से दौड़ने लगीं । सम्पूर्ण विश्वपर आधिपत्य स्थापन करनेवाले और, हवि अर्पण करनेवाले भक्तों के विषय में दातृत्व बुद्धि धारण करनेवाले, और (शत्रुओं का) संहार करनेवाले इन्द्र ने ही तुर्वीति के लिए पानी को उतार दिया । ११

आप जगत् के प्रभु और सामर्थ्यवान् हैं, अतएव इस वृत्र पर निशाना लगा कर सत्वर वज्र फेंकिये। उदकों के प्रवाहों को पुनः प्रवाहित करने के लिए इन में गति उत्पन्न कीजिए और इस (वृत्र के शरीर की) प्रत्येक संधि पर आड़े वार कर के, किसी बैल की देह की संधियों की तरह, उनका विदारण कीजिए। १२

सचमुच वेग से (शत्रु पर टूट) पड़नेवाले इस देवता के, पुरातन काल से लेकर, पराक्रम गाने लगो। स्तुतियों के द्वारा यह शरण जाने योग्य है, क्योंकि लड़ाई करने के लिए अपने आयुध बढ़ा कर और [शत्रुओं को] मार कर वह उनका सत्यानाश कर डालता है। १३

सचमुच इसके जगत में अवतीर्ण होते ही इसके डर से अत्यन्त स्थिर प्रत्यक्ष पर्वत तक—यही क्यों, किन्तु भूलोक और द्युलोक भी कांपने लगते हैं। [इस सुन्दर देव के भक्त संरक्षण—सामर्थ्य की प्रशंसा करनेवाला नोधा एकाएक बहुतसा पराक्रम कर दिखलाने लगा। १४

सचमुच यह इन्द्र, जो विपुल (सम्पत्ति का) अकेला ही मालिक है, इन सकल वस्तुओं में से जिस जिस वस्तु की इच्छा करता गया वह वह उसे अर्पण होती गई। जब सूर्य से एतशा की यह स्पर्धा हुई, कि अश्व पर अच्छा बैठनेवाला कौन है, तब एतशा चूं कि सोमरस के उत्तम हवि अर्पण करनेवाला इन्द्र का भक्त था, इस कारण उसने एतशा की रक्षा की। १५

हे पीतवर्ण अश्वोंपर आरोहण करनेवाले इन्द्र, इस प्रकार गौतमों ने ये स्तोत्र इतनी सुन्दर रीति से, सचमुच आप ही के प्रीत्यर्थ बनाये हैं। इन स्तोत्रों पर आप सब प्रकार से कृपादृष्टि रखिये। स्तुति स्तोत्रों के वैभव से परिपूर्ण यह [इन्द्र] हमारे यहां प्रातःकाल शीघ्र ही आगमन करे। १६ (२९)

हिन्दी, मराठी, गुजराती और अङ्ग्रेजी चार
भाषाओं में अलग अलग प्रसिद्ध होनेवाला

वेदों का भाषांतर ।

प्रति मास में ६४ पृष्ठ; ३२ पृष्ठ संहिता [स्वर और पदपाठ सहित]
* * ३२ पृष्ठ भाषान्तर । * *

वर्ष १] || नवम्बर १९१२. | [संख्या ५

वार्षिक मूल्य डाकव्ययसहित रु. ४

हिन्दी

श्रुतिबोध.

सम्पादक,

रामचंद्र विनायक पटवर्धन, बी. ए. एल्. एल्. बी.
अच्युत बलवंत कोल्हटकर, बी. ए. एल्. एल्. बी.
दत्तो आप्पाजी तुळजापुरकर, बी. ए. एल्. एल्. बी.

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत् ।
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ॥

[illegible]

'श्रुतिबोध' ऑफिस, ४७, कालकादेवी रोड, बम्बई.

प्रति अंकका मूल्य आठ आने.

इन्द्र. वृत्र-वृत्रमाता.

INDRA. VRITRA-VRITRA'S MOTHER.

मण्डल १, सूक्त ३२, ऋचा ९, पृष्ठ ६०.

Mandal 1, Sukta 32, Verse 9, Page 60.
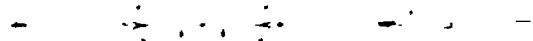
॥ अथ प्रथमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ ६२ ॥ गौतमो नोधा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

(६२) प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १ ॥
प्र वो महे महि नमो भरध्वमाङ्गूष्यं शवसानाय साम ।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञा अर्चन्तो अङ्गिरसो गा अविन्दन् ॥ २ ॥
इन्द्रस्याङ्गिरसां चेष्टौ विदत्सरमा तनयाय धासिम् ।
बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः समुस्रियाभिर्वावशन्त नरः ॥ ३ ॥
स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३नवग्वैः ।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥ ४ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

प्र । मन्महे । शवसानाय । शूषं । आंगूषं । गिर्वणसे । अंगिरस्वत् ।
सुवृक्तिऽभिः । स्तुवते । ऋग्मियाय । अर्चाम । अर्कं । नरे । विऽश्रुताय ॥ १ ॥
प्र । वः । महे । महि । नमः भरध्वं । आंगूष्यं । शवसानाय । साम । येन । नः ।
पूर्वे । पितरः । पदऽज्ञाः । अर्चंतः । अंगिरसः । गाः । अविंदन ॥ २ ॥ इंद्रस्य ।
अंगिरसां । च । इष्टौ । विदत् । सरमा । तनयाय । धासिं । बृहस्पतिः । भिनत् ।
अद्रिं । विदत् । गाः । सं । उस्रियाभिः । वावशंत । नरः ॥ ३ ॥ सः ।
सुऽस्तुभा । सः । स्तुभा । सप्त । विप्रैः । स्वरेण । अद्रिं । स्वर्यः । नवऽग्वैः ।
सरण्युऽभिः । फलिऽगं । इंद्र । शक्र । वलं । रवेण । दरयः । दशऽग्वैः ॥ ४ ॥

गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वंरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ॥ ५ ॥ १ ॥

तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः ।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्यश्चतस्रः ॥ ६ ॥
द्विता वि वव्रे सनजा सनीळे अयास्यः स्तवमानेभिरर्कैः ।
भगो न मेने परमे व्योमन्नधारयद्रोदसी सुदंसाः ॥ ७ ॥
सनाद्दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः ।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥ ८ ॥
सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु विद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥ ९ ॥

गृणानः । अंगिरःऽभिः । दस्म । वि । वः । उषसा । सूर्येण । गोभिः । अंधः । वि । भूम्याः । अप्रथयः । इंद्र । सानु । दिवः । रजः । उपरं । अस्तभायः ॥ ५ ॥ १ ॥ तत् । ऊं इति । प्रयक्षऽतमं । अस्य । कर्म । दस्मस्य । चारुऽतमं । अस्ति । दंसः । उपऽह्वरे । यत् । उपराः । अपिन्वत् । मधुऽअर्णसः । नद्यः । चतस्रः ॥ ६ ॥ द्विता । वि । वव्रे । सनऽजा । सनीळे इति सऽनीळे । अयास्यः । स्तवमानेभिः । अर्कैः । भगः । न । मेने इति । परमे । विऽओमन् । अधारयत् । रोदसी इति । सुऽदंसाः ॥ ७ ॥ सनात् । दिवं । परि । भूम । विरूपे इति विऽरूपे । पुनःऽभुवा । युवती इति । स्वेभिः । एवैः । कृष्णेभिः । अक्ता । उषाः । रुशत्ऽभिः । वपुःऽभिः । आ । चरतः । अन्याऽअन्या ॥ ८ ॥ सनेमि । सख्यं । सुऽअपस्यमानः । सूनुः । दाधार । शवसा । सुऽदंसाः । आमासु । चित् । दधिषे । पक्वं । अंतरिति । पयः । कृष्णासु । रुशत् । रोहिणीषु ॥ ९ ॥

सनात्सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः ।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥ १० ॥ २ ॥

सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः ।
पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषाः ॥ ११ ॥
सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म ।
द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः ॥ १२ ॥
सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद्ब्रह्म हरियोजनाय ।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १३ ॥३ ॥

॥ ६३ ॥ गौतमो नोधा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

(६३) त्वं महाँ इन्द्र यो ह शुष्मैर्द्यावा जज्ञानः पृथिवी अमे धाः ।
यद्ध ते विश्वा गिरयश्चिदभ्वा भिया दृळ्हासः किरणा नैजन् ॥ १ ॥

सनात् । सऽनीळाः । अवनीः । अवाताः । व्रता । रक्षंते । अमृताः । सहःऽभिः । पुरु । सहस्रा । जनयः । न । पत्नीः । दुवस्यंति । स्वसारः । अह्रयाणं ॥ १० ॥ २ ॥

सनाऽयुवः । नमसा । नव्यः । अर्कैः । वसुऽयवः । मतयः । दस्म । दद्रुः । पतिं । न । पत्नीः । उशतीः । उशंतं । स्पृशंति । त्वा । शवसाऽवन् । मनीषाः ॥ ११ ॥ सनात् । एव । तव । रायः । गभस्तौ । न । क्षीयंते । न । उप । दस्यंति । दस्म । द्युऽमान् । असि । क्रतुऽमान् । इंद्र । धीरः । शिक्ष । शचीऽवः । तव । नः । शचीभिः ॥ १२ ॥ सनाऽयते । गोतमः । इंद्र । नव्यं । अतक्षत् । ब्रह्म । हरिऽयोजनाय । सुऽनीथाय । नः । शवसान । नोधाः प्रातः । मक्षु । धियाऽवसुः । जगम्यात् ॥ १३ ॥ ३ ॥

त्वं । महान् । इंद्र । यः । ह । शुष्मैः । द्यावा । जज्ञानः । पृथिवी इति । अमे । धाः । यत् । ह । ते । विश्वा । गिरयः । चित् । अभ्वा । भिया । दृळ्हासः । किरणाः । न । एजन् ॥ १ ॥

आ यद्धरी इन्द्र विव्रता वेरा ते वज्रं जरिता बाह्वोर्धात् ।
येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥ २ ॥
त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट् ।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ ३ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्र चोदीः सखा वृत्रं यद्वज्रिन्वृषकर्मन्नुभ्नाः ।
यद्ध शूर वृषमणः पराचैर्वि दस्यूँर्योनावकृतो वृथाषाट् ॥ ४ ॥
त्वं ह त्यदिन्द्रारिषण्यन्दृळ्हस्य चिन्मर्तानामजुष्टौ ।
व्यस्मदा काष्ठा अर्वते वर्घनेव वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रान् ॥ ५ ॥ ४ ॥
त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते ।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६ ॥

आ । यत् । हरी इति । इंद्र । विऽव्रता । वेः । आ । ते । वज्रं । जरिता । बाह्वोः । धात् । येन । अविहर्यतक्रतो इत्यविहर्यतऽक्रतो । अमित्रान् । पुरः । इष्णासि । पुरुऽहूत । पूर्वीः ॥ २ ॥ त्वं । सत्यः । इंद्र । धृष्णुः । एतान् । त्वं । ऋभुक्षाः । नर्यः । त्वं । षाट् । त्वं । शुष्णं । वृजने । पृक्षे । आणौ । यूने । कुत्साय । द्युऽमते । सचा । अहन् ॥ ३ ॥ त्वं । ह । त्यत् । इंद्र । चोदीः । सखा । वृत्रं । यत् । वज्रिन् । वृषऽकर्मन् । उभ्नाः । यत् । ह । शूर । वृषऽमनः । पराचैः । वि । दस्यून् । योनौ । अकृतः । वृथाषाट् ॥ ४ ॥ त्वं । ह । त्यत् । इंद्र । अरिषण्यन् । दृळ्हस्य । चित् । मर्तानां । अजुष्टौ । वि । अस्मत् । आ । काष्ठाः । अर्वते । वः । घनाऽइव । वज्रिन् । श्नथिहि । अमित्रान् ॥ ५ ॥ ४ ॥ त्वां । ह । त्यत् । इंद्र । अर्णऽसातौ । स्वःऽमीळ्हे । नरः । आजा । हवंते । तव । स्वधाऽवः । इयं । आ । सऽमर्य । ऊतिः । वाजेषु । अतसाय्या । भूत् ॥ ६ ॥

त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन्पुरो वज्रिन्पुरुकुत्साय दर्दः ।
बर्हिर्न यत्सुदासे वृथा वर्गंहो राजन्वरिवः पूरवे कः ॥ ७ ॥
त्वं त्यां न इन्द्र देव चित्रामिषमापो न पीपयः परिज्मन् ।
यया शूर प्रत्यस्मभ्यं यंसि त्मनमूर्जं न विश्वध क्षरध्यै ॥ ८ ॥
(अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता) नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ९ ॥ ५ ॥

॥ ६४ ॥ गोतमो नोधा ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ पञ्चदशी त्रिष्टुप्, शिष्टा जगत्यः ॥

(६४) वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥ १ ॥

त्वं । ह । त्यत् । इंद्र । सप्त । युध्यन् । पुरः । वज्रिन् । पुरुऽकुत्साय । दर्दरिति दर्दः । बर्हिः । न । यत् । सुऽदासे । वृथा । वर्क् । अंहोः । राजन् । वरिवः । पूरवे । करिति कः ॥ ७ ॥ त्वं । त्यां । नः । इंद्र । देव । चित्रां । इषं । आपः । न । पीपयः । परिऽज्मन । ययां । शूर । प्रति । अस्मभ्यं । यंसि । त्मनं । ऊर्जं । न । विश्वधं । क्षरध्यै ॥ ८ ॥ अकारि । ते । इंद्र । गोतमेभिः । ब्रह्माणि । आऽउक्ता । नमसा । हरिऽभ्यां । सुऽपेशसं । वाजं । आ । भर । नः । प्रातः । मक्षु । धियाऽवसुः । जगम्यात् ॥ ९ ॥ ५ ॥

वृष्णे । शर्धाय । सुऽमखाय । वेधसे । नोधः । सुऽवृक्तिं । प्र । भर । मरुत्ऽभ्यः । अपः । न । धीरः । मनसा । सुऽहस्त्यः । गिरः । सं । अंजे । विदथेषु । आऽभुवः ॥ १ ॥

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥ २ ॥
युवानो रुद्रा अजरा अभोग्घनो ववक्षुरध्रिगावः पर्वता इव ।
दृळ्हा चिद्विश्वा भुवनानि पार्थिवा प्र च्यावयन्ति दिव्यानि मज्मना ॥ ३ ॥
चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुरृष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥ ४ ॥
ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥ ५ ॥ ६ ॥

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥ ६ ॥

ते । जज्ञिरे । दिवः । ऋष्वासः । उक्षणः । रुद्रस्य । मर्याः । असुराः । अरेपसः । पावकासः । शुचयः । सूर्याःऽइव । सत्वानः । न । द्रप्सिनः । घोरऽवर्पसः ॥ २ ॥ युवानः । रुद्राः । अजराः । अभोक्ऽहनः । ववक्षुः । अध्रिऽगावः । पर्वताःऽइव । दृळ्हा । चित् । विश्वा । भुवनानि । पार्थिवा । प्र । च्यवयंति । दिव्यानि । मज्मना ॥ ३ ॥ चित्रैः । अंजिऽभिः । वपुषे । वि । अंजते । वक्षःऽसु । रुक्मान् । अधि । येतिरे । शुभे । अंसेषु । एषां । नि । मिमृक्षुः । ऋष्टयः । साकं । जज्ञिरे । स्वधया । दिवः । नरः ॥ ४ ॥ ईशानऽकृतः । धुनयः । रिशादसः । वातान् । विऽद्युतः । तविषीभिः । अक्रत । दुहंति । ऊधः । दिव्यानि । धूतयः । भूमिं । पिन्वंति । पयसा । परिऽज्रयः ॥ ५ ॥ ६ ॥ पिन्वंति । अपः । मरुतः । सुऽदानवः । पयः । घृतऽवत् । विदथेषु । आऽभुवः । अत्यं । न । मिहे । वि । नयंति । वाजिनं । उत्सं । दुहंति । स्तनयंतं । अक्षितं ॥ ६ ॥

महिषासो मायिनश्चित्रभानवो गिरयो न स्वतवसो रघुष्यदः ।
मृगा इव हस्तिनः खादथा वना यदारुणीषु तविषीरयुग्ध्वम् ॥ ७ ॥
सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः ।
क्षपो जिन्वन्तः पृषतीभिर्ऋष्टिभिः समित्सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥ ८ ॥
रोदसी आ वदता गणश्रियो नृषाचः शूराः शवसाहिमन्यवः ।
आ वन्धुरेष्वमतिर्न दर्शता विद्युन्न तस्थौ मरुतो रथेषु वः ॥ ९ ॥
विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः ।
अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ॥ १० ॥ ७ ॥
हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो न पर्वतान् ।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ११ ॥

महिषासः । मायिनः । चित्रऽभानवः । गिरयः । न । स्वऽतवसः । रघुऽस्यदः । मृगाःऽइव । हस्तिनः । खादथ । वना । यत् । आरुणीषु । तविषीः । अयुग्ध्वं ॥ ७ ॥ सिंहाःऽइव । नानदति । प्रऽचेतसः । पिशाःऽइव । सुऽपिशः । विश्वऽवेदसः । क्षपः । जिन्वंतः । पृषतीभिः । ऋष्टिऽभिः । सं । इत् । सऽबाधः । शवसा । अहिऽमन्यवः ॥ ८ ॥ रोदसी इति । आ । वदत । गणऽश्रियः । नृऽसाचः । शूराः । शवसा । अहिऽमन्यवः । आ । वंधुरेषु । अमतिः । न । दर्शता । विऽद्युत् । न । तस्थौ । मरुतः । रथेषु । वः ॥ ९ ॥ विश्वऽवेदसः । रयिऽभिः । संऽओकसः । संऽमिश्लासः । तविषीभिः । विऽरप्शिनः । अस्तारः । इषुं । दधिरे । गभस्त्योः । अनंतऽशुष्माः । वृषऽखादयः । नरः ॥ १० ॥ हिरण्ययेभिः । पविऽभिः । पयःऽवृधः । उत् । जिघ्नंते । आऽपथ्यः । न । पर्वतान् । मखाः । अयासः । स्वऽसृतः । ध्रुवऽच्युतः । दुध्रऽकृतः । मरुतः । भ्राजत्ऽऋष्टयः ॥ ११ ॥

घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि ।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥ १२ ॥
प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥ १३ ॥
चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन ।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥ १४ ॥
नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त ।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १५ ॥८॥ ११ ॥

घृषुं । पावकं । वनिनं । विऽचर्षणिं । रुद्रस्य । सूनुं । हवसा । गृणीमसि । रजःऽतुरं । तवसं । मारुतं । गणं । ऋजीषिणं । वृषणं । सश्चत । श्रिये ॥ १२ ॥ प्र । नु । सः । मर्तः । शवसा । जनान् । अति । तस्थौ । वः । ऊती । मरुतः । यं । आवत । अर्वत्ऽभिः । वाजं । भरते । धना । नृऽभिः । आऽपृच्छ्यं । क्रतुं । आ । क्षेति । पुष्यति ॥ १३ ॥ चर्कृत्यं । मरुतः । पृत्ऽसु । दुस्तरं । द्युऽमन्तं । शुष्मं । मघवत्ऽसु । धत्तन । धनऽस्पृतं । उक्थ्यं । विश्वऽचर्षणिं । तोकं । पुष्येम । तनयं । शतं । हिमाः ॥ १४ ॥ नु । स्थिरं । मरुतः । वीरऽवन्तं । ऋतिऽसहं । रयिं । अस्मासु । धत्त । सहस्रिणं । शतिनं । शूशुऽवांसं । प्रातः । मक्षु । धियाऽवसुः । जगम्यात् ॥ १५ ॥ ८ ॥ ११ ॥

॥ द्वादशोऽनुवाकः ॥

६५ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ६५ ॥ पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम् ।
सजोषा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन्विश्वे यजत्राः ॥ १ ॥
ऋतस्य देवा अनु व्रता गुर्भुवत्परिष्टिर्द्यौर्न भूम ।
वर्धन्तीमापः पन्वा सुशिश्विमृतस्य योना गर्भे सुजातम् ॥ २ ॥
पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शंभु ।
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ॥ ३ ॥
जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति ।
यद्वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः ॥ ४ ॥
श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत् ।
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः ॥ ५ ॥ ९ ॥

पश्वा । न । तायुं । गुहा । चतंतं । नमः । युजानं । नमः । वहंतं । सऽजोषाः । धीराः । पदैः । अनु । ग्मन । उप । त्वा । सीदन् । विश्वे । यजत्राः ॥ १ ॥ ऋतस्य । देवाः । अनु । व्रता । गुः । भुवत् । परिष्टिः । द्यौः । न । भूम । वर्धंति । ईं । आपः । पन्वा । सुऽशिश्विं । ऋतस्य । योना । गर्भे । सुऽजातं ॥ २ ॥ पुष्टिः । न । रण्वा । क्षितिः । न । पृथ्वी । गिरिः । न । भुज्म । क्षोदः । न । शंऽभु । अत्यः । न । अज्मन् । सर्गऽप्रतक्तः । सिंधुः । न । क्षोदः । कः । ईं । वराते ॥ ३ ॥ जामिः । सिंधूनां । भ्राताऽइव । स्वस्रां । इभ्यान् । न । राजा । वनानि । अत्ति । यत् । वातऽजूतः । वना । वि । अस्थात् । अग्निः । ह । दाति । रोम । पृथिव्याः ॥४॥ श्वसिति । अप्ऽसु । हंसः । न । सीदन् । क्रत्वा । चेतिष्ठः । विशां । उषःऽभुत् । सोमः । न । वेधाः । ऋतऽप्रजातः । पशुः । न । शिश्वा । विऽभुः । दूरेऽभाः ॥ ५ ॥ ९ ॥

॥ ६६ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ६६ ॥ रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः ।
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥ १ ॥
दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम् ।
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति ॥ २ ॥
दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ।
चित्रो यदभ्राट् श्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥ ३ ॥
सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका ।
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥ ४ ॥
तं वश्चराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्धम् ।
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्वर्दृशीके ॥ ५ ॥ १० ॥

रयिः । न । चित्रा । सूरः । न । संऽदृक् । आयुः । न । प्राणः । नित्यः । न । सूनुः ।
तक्वा । न । भूर्णिः । वना । सिसक्ति । पयः । न । धेनुः । शुचिः । विभाऽवा ॥ १ ॥
दाधार । क्षेमं । ओकः । न । रण्वः । यवः । न । पक्वः । जेता । जनानां । ऋषिः । न ।
स्तुभ्वा । विक्षु । प्रऽशस्तः । वाजी । न । प्रीतः । वयः । दधाति ॥ २ ॥ दुरोकऽशोचिः ।
क्रतुः । न । नित्यः । जायाऽइव । योनौ । अरं । विश्वस्मै । चित्रः । यत् । अभ्राट् ।
श्वेतः । न । विक्षु । रथः । न । रुक्मी । त्वेषः । समत्ऽसु ॥ ३ ॥ सेनाऽइव ।
सृष्टा । अमं । दधाति । अस्तुः । न । दिद्युत् । त्वेषऽप्रतीका । यमः । ह । जातः । यमः ।
जनिऽत्वं । जारः । कनीनां । पतिः । जनीनां ॥ ४ ॥ तं । वः । चराथा । वयं ।
वसत्या । अस्तं । न । गावः । नक्षन्ते । इद्धं । सिन्धुः । न । क्षोदः । प्र । नीचीः ।
ऐनोत् । नवन्त । गावः । स्वः । दृशीके ॥ ५ ॥ १० ॥

॥ ६७ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ६७ ॥ वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम् ।
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥ १ ॥
हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद्गुहा निषीदन् ।
विदन्तीमत्र नरो धियंधा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥ २ ॥
अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ।
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥ ३ ॥
य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य ।
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥ ४ ॥
वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः ।
चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ॥ ५ ॥ ११ ॥

वनेषु । जायुः । मर्तेषु । मित्रः । वृणीते । श्रुष्टिं । राजाऽइव । अजुर्यं । क्षेमः । न । साधुः । क्रतुः । न । भद्रः । भुवत् । सुऽआधीः । होता । हव्यऽवाट् ॥ १ ॥ हस्ते । दधानः । नृम्णा । विश्वानि । अमे । देवान् । धात् । गुहा । निऽसीदन् । विदंति । ईं । अत्र । नरः । धियंऽधाः । हृदा । यत् । तष्टान् । मंत्रान् । अशंसन् ॥ २ ॥ अजः । न । क्षां । दाधार । पृथिवीं । तस्तंभ । द्यां । मंत्रेभिः । सत्यैः । प्रिया । पदानि । पश्वः । नि । पाहि । विश्वऽआयुः । अग्ने । गुहा । गुहं । गाः ॥ ३ ॥ यः । ईं । चिकेत । गुहा । भवंतं । आ । यः । ससाद । धारां । ऋतस्य । वि । ये । चृतंति । ऋता । सपंतः । आत् । इत् । वसूनि । प्र । ववाच । अस्मै ॥ ४ ॥ वि । यः । वीरुत्ऽसु । रोधत् । महिऽत्वा । उत । प्रऽजाः । उत । प्रऽसूषु । अंतरिति । चित्तिः । अपां । दमे । विश्वऽआयुः । सद्मऽइव । धीराः । संऽमाय । चक्रुः ॥ ५ ॥ ११ ॥

॥ ६८ ॥ शाक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ६८ ॥ श्रीणन्नुप स्थाद्दिवं भुरण्युः स्थातुश्चरथमक्तून्व्यूर्णोत् ।
परि यदेषामेको विश्वेषां भुवद्देवो देवानां महित्वा ॥ १ ॥
आदित्ते विश्वे क्रतुं जुषन्त शुष्काद्यद्देव जीवो जनिष्ठाः ।
भजन्त विश्वे देवत्वं नाम ऋतं सपन्तो अमृतमेवैः ॥ २ ॥
ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ।
यस्तुभ्यं दाशाद्यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान्रयिं दयस्व ॥ ३ ॥
होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणां ।
इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥ ४ ॥
पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः ।
वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ॥ ५ ॥ १२ ॥

श्रीणन् । उप । स्थात् । दिवं । भुरण्युः । स्थातुः । चरथं । अक्तून् । वि । ऊर्णोत् । परि । यत् । एषां । एकः । विश्वेषां । भुवत् । देवः । देवानां । महिऽत्वा ॥ १ ॥ आत् । इत् । ते । विश्वे । क्रतुं । जुषंत । शुष्कात् । यत् । देव । जीवः । जनिष्ठाः । भजंत । विश्वे । देवऽत्वं । नाम । ऋतं । सपंतः । अमृतं । एवैः ॥ २ ॥ ऋतस्य । प्रेषाः । ऋतस्य । धीतिः । विश्वऽआयुः । विश्वे । अपांसि । चक्रुः । यः । तुभ्यं । दाशात् । यः । वा । ते । शिक्षात् । तस्मै । चिकित्वान् । रयिं । दयस्व ॥ ३ ॥ होता । निऽसत्तः । मनोः । अपत्ये । सः । चित् । नु । आसां । पतिः । रयीणां । इच्छंत । रेतः । मिथः । तनूषु । सं । जानत । स्वैः । दक्षैः । अमूराः ॥ ४ ॥ पितुः । न । पुत्राः । क्रतुं । जुषंत । श्रोषन् । ये । अस्य । शासं । तुरासः । वि । रायः । और्णोत् । दुरः । पुरुऽक्षुः । पिपेश । नाकं । स्तृभिः । दमूनाः ॥ ५ ॥ १२ ॥

॥ ६९ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥६९॥ शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः ।
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥ १ ॥
वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम् ।
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥ २ ॥
पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत् ।
विशो यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः ॥ ३ ॥
नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ ।
तत्तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि ॥ ४ ॥
उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै ।
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवन्त विश्वे स्वर्दृशीके ॥ ५ ॥ १३ ॥

शुक्रः । शुशुक्वान् । उषः । न । जारः । पप्रा । समीची इति सम्ऽईची । दिवः । न । ज्योतिः । परि । प्रऽजातः । क्रत्वा । बभूथ । भुवः । देवानां । पिता । पुत्रः । सन् ॥ १ ॥ वेधा । अदृप्तः । अग्निः । विऽजानन् । ऊधः । न । गोनां । स्वाद्म । पितूनां । जने । न । शेवः । आऽहूर्यः । सन् । मध्ये । निऽसत्तः । रण्वः । दुरोणे ॥ २ ॥ पुत्रः । न । जातः । रण्वः । दुरोणे । वाजी । न । प्रीतः । विशः । वि । तारीत् । विशः । यत् । अह्वे । नृऽभिः । सऽनीळाः । अग्निः । देवऽत्वा । विश्वानि । अश्याः ॥ ३ ॥ नकिः । ते । एता । व्रता । मिनंति । नृऽभ्यः । यत् । एभ्यः । श्रुष्टिं । चकर्थ । तत् । तु । ते । दंसः । यत् । अहन् । समानैः । नृऽभिः । यत् । युक्तः । विवेः । रपांसि ॥ ४ ॥ उषः । न । जारः । विभाऽवा । उस्रः । संज्ञातऽरूपः । चिकेतत् । अस्मै । त्मना । वहंत । दुरः वि । ऋण्वन् । नवंत । विश्वे । स्वः । दृशीके ॥५॥१३॥

॥ ७० ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ द्विपदा विराट् छन्दः ॥

॥ ७० ॥ वनेम पूर्वीरर्यो मनीषा अग्निः सुशोको विश्वान्यश्याः ।
आ दैव्यानि व्रता चिकित्वाना मानुषस्य जनस्य जन्म ॥ १ ॥
गर्भो यो अपां गर्भो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्भश्चरथाम् ।
अद्रौ चिदस्मा अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो अमृतः स्वाधीः ॥ २ ॥
स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद्यो अस्मा अरं सूक्तैः ।
एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च विद्वान् ॥ ३ ॥
वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातुश्च रथमृतप्रवीतम् ।
अराधि होता स्वर्निषत्तः कृण्वन्विश्वान्यपांसि सत्या ॥ ४ ॥
गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः ।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥ ५ ॥
साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ॥ ६ ॥ १४ ॥

वनेम । पूर्वीः । अर्यः । मनीषा । अग्निः । सुऽशोकः । विश्वानि । अश्याः । आ । दैव्यानि । व्रता । चिकित्वान् । आ । मानुषस्य । जनस्य । जन्म ॥ १ ॥ गर्भः । यः । अपां । गर्भः । वनानां । गर्भः । च । स्थातां । गर्भः । चरथां । अद्रौ । चित् । अस्मै । अंतः । दुरोणे । विशां । न । विश्वः । अमृतः । सुऽआधीः ॥ २ ॥ सः । हि । क्षपाऽवान् । अग्निः । रयीणां । दाशत् । यः । अस्मै । अरं । सुऽउक्तैः । एता । चिकित्वः । भूम । नि । पाहि । देवानां । जन्म । मर्तान् । च । विद्वान् ॥ ३ ॥ वर्धान् । यं । पूर्वीः । क्षपः । विऽरूपाः । स्थातुः । च । रथं । ऋतऽप्रवीतं । अराधि । होता । स्वः । निऽसत्तः । कृण्वन् । विश्वानि । अपांसि । सत्या ॥ ४ ॥ गोषु । प्रऽशस्ति । वनेषु । धिषे । भरंत । विश्वे । बलिं । स्वः । नः । वि । त्वा । नरः । पुरुऽत्रा । सपर्यन् । पितुः । न । जिव्रेः । वि । वेदः । भरंत ॥ ५ ॥ साधुः । न । गृध्नुः । अस्ताऽइव । शूरः । याताऽइव । भीमः । त्वेषः । समत्ऽसु ॥ ६ ॥ १४ ॥

॥ ७१ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

॥ ७१ ॥ उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः ।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥ १ ॥
वीळु चिद्दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण ।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥ २ ॥
दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः ।
अतृष्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥
मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय ॥ ४ ॥
महे यत्पित्र ईं रसं दिवे करव त्सरत्पृशन्यश्चिकित्वान् ।
सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिं धात् ॥ ५ ॥ १५ ॥

उप । प्र । जिन्वन् । उशतीः । उशन्तं । पतिं । न । नित्यं । जनयः । सऽनीळाः । स्वसारः । श्यावीं । अरुषीं । अजुष्रन् । चित्रं । उच्छन्तीं । उषसं । न । गावः ॥ १ ॥ वीळु । चित् । दृळ्हा । पितरः । नः । उक्थैः । अद्रिं । रुजन् । अङ्गिरसः । रवेण । चक्रुः । दिवः । बृहतः । गातुं । अस्मे इति । अहः । स्वः । विविदुः । केतुं । उस्राः ॥ २ ॥ दधन् । ऋतं । धनयन् । अस्य । धीतिं । आत् । इत् । अर्यः । दिधिष्वः । विऽभृत्राः । अतृष्यन्तीः । अपसः । यन्ति । अच्छ । देवान् । जन्म । प्रयसा । वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥ मथीत् । यत् । ईं । विऽभृतः । मातरिश्वा । गृहेऽगृहे । श्येतः । जेन्यः । भूत् । आत् । ईं । राज्ञे । न । सहीयसे । सचा । सन् । आ । दूत्यं । भृगवाणः । विवाय ॥ ४ ॥ महे । यत् । पित्रे । ईं । रसं । दिवे । करः । अव । त्सरत् । पृशन्यः । चिकित्वान् । सृजत् । अस्ता । धृषता । दिद्युं । अस्मै । स्वायां । देवः । दुहितरि । त्विषिं । धात् ॥ ५ ॥ १५ ॥

स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून् ।
वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥ ६ ॥
अग्निं विश्वा अभि पृक्षः सचन्ते समुद्रं न स्रवतः सप्त यह्वीः ।
न जामिभिर्वि चिकिते वयो नो विदा देवेषु प्रमतिं चिकित्वान् ॥ ७ ॥
आ यदिषे नृपतिं तेज आनद् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके ।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥ ८ ॥
मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे ।
राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा ॥ ९ ॥
मा नो अग्ने सख्या पित्र्याणि प्र मर्षिष्ठा अभि विदुष्कविः सन् ।
नभो न रूपं जरिमा मिनाति पुरा तस्या अभिशस्तेरधीहि ॥ १० ॥ १६ ॥

स्वे । आ । यः । तुभ्यं । दमे । आ । विऽभाति । नमः । वा । दाशात् । उशतः । अनु । द्यून् । वर्धो इति । अग्ने । वयः । अस्य । द्विऽबर्हाः । यासत् । राया । सऽरथं । यं । जुनासि ॥ ६ ॥ अग्निं । विश्वाः । अभि । पृक्षः । सचंते । समुद्रं । न । स्रवतः । सप्त । यह्वीः । न । जामिऽभिः । वि । चिकिते । वयः । नः । विदाः । देवेषु । प्रऽमतिं । चिकित्वान् ॥ ७ ॥ आ । यत् । इषे । नृऽपतिं । तेजः । आनद् । शुचि । रेतः । निऽसिक्तं । द्यौः । अभीके । अग्निः । शर्धं । अनवद्यं । युवानं । सुऽआध्यं । जनयत् । सूदयत् । च ॥ ८ ॥ मनः । न । यः । अध्वनः । सद्यः । एति । एकः । सत्रा । सूरः । वस्वः । ईशे । राजाना । मित्रावरुणा । सुपाणी इति सुऽपाणी । गोषु । प्रियं । अमृतं । रक्षमाणा ॥ ९ ॥ मा । नः । अग्ने । सख्या । पित्र्याणि । प्र । मर्षिष्ठाः । अभि । विदुः । कविः । सन् । नभः । न । रूपं । जरिमा । मिनाति । पुरा । तस्याः । अभिऽशस्तेः । अधि । इहि ॥ १० ॥ १६ ॥

॥ ७२ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

॥ ७२ ॥ नि काव्या॑ वे॒धसः॒ शश्व॑तस्क॒र्हस्ते॒ दधा॑नो॒ नर्या॑ पु॒रूणि॑ ।
अ॒ग्निर्भु॑वद्रयि॒पती॑ रयी॒णां स॒त्रा च॑क्रा॒णो अ॒मृता॑नि॒ विश्वा॑ ॥ १ ॥
अ॒स्मे व॒त्सं परि॒ षन्तं॒ न वि॑न्दन्नि॒च्छन्तो॒ विश्वे॑ अ॒मृता॒ अमू॑राः ।
श्र॒म॒युवः॑ पद॒व्यो॑ धियं॒धास्त॒स्थुः प॒दे प॑र॒मे चार्व॒ग्नेः ॥ २ ॥
ति॒स्रो यद॑ग्ने श॒रद॒स्त्वामिच्छुचिं॑ घृ॒तेन॒ शुच॑यः सप॒र्यान् ।
नामा॑नि चिद्दधिरे य॒ज्ञिया॒न्यसू॑दयन्त त॒न्वः॑ सु॒जाताः॑ ॥ ३ ॥
आ रोद॑सी बृह॒ती वेवि॑दानाः॒ प्र रु॒द्रिया॑ जभ्रिरे य॒ज्ञिया॑सः ।
वि॒दन्मर्तो॑ ने॒मधि॑ता चिकि॒त्वान॒ग्निं प॒दे प॑र॒मे त॑स्थि॒वांस॑म् ॥ ४ ॥
सं॒जा॒ना॒ना उप॑ सीदन्नभि॒ज्ञु पत्नी॑वन्तो नम॒स्यं॑ नमस्यन् ।
रि॒रि॒क्वांस॑स्त॒न्वः॑ कृण्वत॒ स्वाः सखा॒ सख्यु॑र्नि॒मिषि॒ रक्ष॑माणाः ॥५॥ १७॥

नि । काव्या॑ । वे॒धसः॑ । शश्व॑तः । क॒रिति॑ कः । हस्ते॑ । दधा॑नः । नर्या॑ । पु॒रूणि॑ ।
अ॒ग्निः । भु॒व॒त् । र॒यि॒ऽपतिः॑ । र॒यी॒णाम् । स॒त्रा । च॒क्रा॒णः । अ॒मृता॑नि । विश्वा॑ ॥ १ ॥
अ॒स्मे इति॑ । व॒त्सम् । परि॑ । सन्त॑म् । न । वि॒न्द॒न् । इ॒च्छन्तः॑ । विश्वे॑ । अ॒मृताः॑ । अमू॑राः ।
श्र॒म॒ऽयुवः॑ । प॒द॒ऽव्यः॑ । धि॒य॒म्ऽधाः । त॒स्थुः । प॒दे । प॒र॒मे । चारु॑ । अ॒ग्नेः ॥ २ ॥ ति॒स्रः ।
यत् । अ॒ग्ने॒ । श॒रदः॑ । त्वाम् । इत् । शुचि॑म् । घृ॒तेन॑ । शुच॑यः । स॒प॒र्यान् । नामा॑नि ।
चि॒त् । द॒धि॒रे॒ । य॒ज्ञिया॑नि । असू॑दयन्त । त॒न्वः॑ । सु॒ऽजाताः॑ ॥ ३ ॥ आ । रोद॑सी॒ इति॑ ।
बृ॒ह॒ती इति॑ । वेवि॑दानाः । प्र । रु॒द्रियाः॑ । ज॒भ्रि॒रे॒ । य॒ज्ञिया॑सः । वि॒दत् । मर्तः॑ ।
ने॒मऽधि॑ता । चि॒कि॒त्वान् । अ॒ग्निम् । प॒दे । प॒र॒मे । त॒स्थि॒ऽवांस॑म् ॥ ४ ॥ स॒म्ऽजा॒ना॒नाः ।
उप॑ । सी॒द॒न् । अ॒भि॒ऽज्ञु । पत्नी॑ऽवन्तः । न॒म॒स्य॑म् । न॒म॒स्य॒न्निति॑ नमस्यन् । रि॒रि॒क्वांसः॑ ।
त॒न्वः॑ । कृ॒ण्व॒त॒ । स्वाः । सखा॑ । सख्युः॑ । नि॒ऽमिषि॑ । रक्ष॑माणाः ॥ ५ ॥ १७ ॥

त्रिः सप्त यद्गुह्यानि त्वे इत्पदाविदन्निहिता यज्ञियासः ।
तेभी रक्षन्ते अमृतं सजोषाः पशूञ्च स्थातॄञ्चरथं च पाहि ॥ ६ ॥
विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक् शुरुधो जीवसे धाः ।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥ ७ ॥
स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
विदद्गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥ ८ ॥
आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।
मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥ ९ ॥
अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन् ।
अध क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् ॥ १० ॥ १८ ॥

त्रिः । सप्त । यत् । गुह्यानि । त्वे इति । इत् । पदा । अविदन् । निऽहिता । यज्ञियासः । तेभिः । रक्षन्ते । अमृतं । सऽजोषाः । पशून् । च । स्थातॄन् । चरथं । च । पाहि ॥ ६ ॥ विद्वान् । अग्ने । वयुनानि । क्षितीनां । वि । आनुषक् । शुरुधः । जीवसे । धाः । अंतःऽविद्वान् । अध्वनः । देवऽयानान् । अतंद्रः । दूतः । अभवः । हविःऽवाट् ॥ ७ ॥ सुऽआध्यः । दिवः । आ । सप्त । यह्वीः । रायः । दुरः । वि । ऋतऽज्ञाः । अजानन् । विदत् । गव्यं । सरमा । दृळ्हं । ऊर्वं । येन । नु । कं । मानुषी । भोजते । विट् ॥ ८ ॥ आ । ये । विश्वा । सुऽअपत्यानि । तस्थुः । कृण्वानासः । अमृतऽत्वाय । गातुं । मह्ना । महत्ऽभिः । पृथिवी । वि । तस्थे । माता । पुत्रैः । अदितिः । धायसे । वेरिति वेः ॥ ९ ॥ अधि । श्रियं । नि । दधुः । चारुं । अस्मिन् । दिवः । यत् । अक्षी इति । अमृताः । अकृण्वन् । अध । क्षरंति । सिंधवः । न । सृष्टाः । प्र । नीचीः । अग्ने । अरुषीः । अजानन् ॥ १० ॥ १८ ॥

॥ ७३ ॥ शक्तिपुत्रः पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

॥ ७३ ॥ र॒यिर्न यः पि॑तृवि॒त्तो व॑यो॒धाः सु॒प्रणी॑तिश्चिकि॒तुषो॒ न शासुः॑ ।
स्यो॒न॒शीरति॑थि॒र्न प्री॑णा॒नो होते॑व॒ सद्म॑ विध॒तो वि ता॑रीत् ॥ १ ॥
दे॒वो न यः स॑वि॒ता स॒त्यम॑न्मा॒ क्रत्वा॑ नि॒पाति॑ वृ॒जना॑नि॒ विश्वा॑ ।
पु॒रु॒प्र॒श॒स्तो अ॒मति॒र्न स॒त्य आ॒त्मेव॒ शेवो॑ दिधि॒षाय्यो॑ भूत् ॥ २ ॥
दे॒वो न यः पृ॑थि॒वीं वि॒श्वधा॑या उप॒क्षेति॑ हि॒तमि॑त्रो॒ न राजा॑ ।
पु॒रः॒सदः॑ शर्म॒सदो॒ न वी॒रा अ॑नव॒द्या पति॑जुष्टेव॒ नारी॑ ॥ ३ ॥
तं त्वा॒ नरो॒ दम॒ आ नित्य॑मि॒द्धमग्ने॒ सच॑न्त क्षि॒तिषु॑ ध्रु॒वासु॑ ।
अधि॑ द्यु॒म्नं नि द॑धु॒र्भूर्य॑स्मि॒न्भवा॑ वि॒श्वायु॑र्ध॒रुणो॑ रयी॒णाम् ॥ ४ ॥
वि पृक्षो॑ अग्ने म॒घवा॑नो अश्यु॒र्वि सू॒रयो॒ दद॑तो॒ विश्व॒मायुः॑ ।
स॒नेम॒ वाजं॑ समि॒थेष्व॒र्यो भा॒गं दे॒वेषु॒ श्रव॑से॒ दधा॑नाः ॥ ५ ॥ १९ ॥

र॒यिः । न । यः । पि॒तृ॒ऽवि॒त्तः । व॒यः॒ऽधाः । सु॒ऽप्रनी॑तिः । चि॒कि॒तुषः॑ । न । शासुः॑ । स्यो॒न॒ऽशीः । अति॑थिः । न । प्री॒णा॒नः । होता॑ऽइव । सद्म॑ । वि॒ध॒तः । वि । ता॒री॒त् ॥ १ ॥ दे॒वः । न । यः । स॒वि॒ता । स॒त्यऽम॑न्मा । क्रत्वा॑ । नि॒ऽपा॒ति । वृ॒जना॑नि । विश्वा॑ । पु॒रु॒ऽप्र॒श॒स्तः । अ॒मतिः॑ । न । स॒त्यः । आ॒त्माऽइ॑व । शेवः॑ । दि॒धि॒षाय्यः॑ । भू॒त् ॥ २ ॥ दे॒वः । न । यः । पृ॒थि॒वीं । वि॒श्वऽधा॑याः । उ॒प॒ऽक्षेति॑ । हि॒तऽमि॑त्रः । न । राजा॑ । पु॒रः॒ऽसदः॑ । श॒र्म॒ऽसदः॑ । न । वी॒राः । अ॒न॒व॒द्या । पति॑ऽजुष्टाऽइव । नारी॑ ॥ ३ ॥ तं । त्वा॒ । नरः॑ । दमे॑ । आ । नित्यं॑ । इ॒द्धं । अग्ने॑ । सचं॑त । क्षि॒तिषु॑ । ध्रु॒वासु॑ । अधि॑ । द्यु॒म्नं । नि । द॒धुः॒ । भूरि॑ । अ॒स्मि॒न् । भव॑ । वि॒श्वऽआ॑युः । ध॒रुणः॑ । र॒यी॒णां ॥ ४ ॥ वि । पृक्षः॑ । अ॒ग्ने॒ । म॒घऽवा॑नः । अ॒श्युः॒ । वि । सू॒रयः॑ । दद॑तः । विश्वं॑ । आयुः॑ । स॒नेम॑ । वाजं॑ । स॒म्ऽइ॒थेषु॑ । अ॒र्यः । भा॒गं । दे॒वेषु॑ । श्रव॑से । दधा॑नाः ॥ ५ ॥ १९ ॥

ऋतस्य हि धेनवो वावशानाः स्मदूध्नीः पीपयन्त द्युभक्ताः ।
परावतः सुमतिं भिक्षमाणा वि सिन्धवः समया सस्रुरद्रिम् ॥ ६ ॥
त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः ।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः ॥ ७ ॥
यान्राये मर्तान्त्सुषूदो अग्ने ते स्याम मघवानो वयं च ।
छायेव विश्वं भुवनं सिसक्ष्यापप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् ॥ ८ ॥
अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥ ९ ॥
एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ॥ १० ॥ २० ॥ १२ ॥

ऋतस्यं । हि । धेनवंः । वावशानाः । स्मत्ऽऊध्नीः । पीपयंत । द्युऽभक्ताः । पराऽवतः । सुऽमतिं । भिक्षमाणाः । वि । सिंधवः । समया । सस्रुः । अद्रिं ॥ ६ ॥ त्वे इतिं । अग्ने । सुऽमतिं । भिक्षमाणाः । दिवि । श्रवः । दधिरे । यज्ञियासः । नक्ता । च । चक्रुः । उषसा । विरूपे इति विऽरूपे । कृष्णं । च । वर्णं । अरुणं । च । सं । धुरितिं धुः ॥ ७ ॥ यान् । राये । मर्तान् । सुसूदः । अग्ने । ते । स्याम । मघऽवानः । वयं । च । छायाऽइव । विश्वं । भुवनं । सिसक्षि । आपप्रिऽवान् । रोदसी इतिं । अंतरिक्षं ॥ ८ ॥ अर्वत्ऽभिः । अग्ने । अर्वतः । नृभिः । नॄन् । वीरैः । वीरान् । वनुयाम । त्वाऽऊताः । ईशानासः । पितृऽवित्तस्य । रायः । वि । सूरयः । शतऽहिमाः । नः । अश्युः ॥ ९ ॥ एता । ते । अग्ने । उचथानि । वेधः । जुष्टानि । संतु । मनसे । हृदे । च । शकेम । रायः । सुऽधुरः । यमं । ते । अधि । श्रवः । देवऽभक्तं । दधानाः ॥ १० ॥ १२ ॥ २० ॥

॥ त्रयोदशोऽनुवाकः ॥

॥ ७४ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

॥ ७४ ॥ उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये ।
आरे अस्मे च शृण्वते ॥ १ ॥

यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु ।
अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥ २ ॥

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि ।
धनंजयो रणेरणे ॥ ३ ॥

यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये ।
दस्मत्कृणोष्यध्वरम् ॥ ४ ॥

तमित्सुहव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो ।
जना आहुः सुबर्हिषम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये ।
हव्या सुश्चन्द्र वीतये ॥ ६ ॥

उपऽप्रयंतः । अध्वरं । मंत्रं । वोचेम । अग्नये । आरे । अस्मे इति । च । शृण्वते ॥ १ ॥ यः । स्नीहितीषु । पूर्व्यः । संऽजग्मानासु । कृष्टिषु । अरक्षत् । दाशुषे । गयं ॥ २ ॥ उत । ब्रुवंतु । जंतवः । उत् । अग्निः । वृत्रऽहा । अजनि । धनंऽजयः । रणेऽरणे ॥ ३ ॥ यस्य । दूतः । असि । क्षये । वेषि । हव्यानि । वीतये । दस्मत् । कृणोषि । अध्वरं ॥ ४ ॥ तं । इत् । सुऽहव्यं । अंगिरः । सुऽदेवं । सहसः । यहो इति । जनाः । आहुः । सुऽबर्हिषं ॥ ५ ॥ २१ ॥

आ । च । वहासि । तान् । इह । देवान् । उप । प्रऽशस्तये । हव्या । सुऽचंद्र । वीतये ॥ ६ ॥

न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन ।

यदग्ने यासि दूत्यम् ॥ ७ ॥

त्वोतो वाज्यह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः ।

प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात् ॥ ८ ॥

उत द्युमत्सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि ।

देवेभ्यो देव दाशुषे ॥ ९ ॥ २२ ॥

॥ ७५ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

॥ ७५ ॥ जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् ।

हव्या जुह्वान आसनि ॥ १ ॥

अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम् ।

वोचेम ब्रह्म सानसि ॥ २ ॥

न । योः । उपब्दिः । अश्व्यः । शृण्वे । रथस्य । कत् । चन । यत् । अग्ने । यासि । दूत्यं ॥ ७ ॥ त्वाऽऊतः । वाजी । अह्रयः । अभि । पूर्वस्मात् । अपरः । प्र । दाश्वान् । अग्ने । अस्थात् ॥ ८ ॥ उत । द्युऽमत् । सुऽवीर्यं । बृहत् । अग्ने । विवाससि । देवेभ्यः । देव । दाशुषे ॥ ९ ॥ २२ ॥

जुषस्व । सप्रथःऽतमं । वचः । देवप्सरःऽतमं । हव्या । जुह्वानः । आसनि ॥ १ ॥ अथ । ते । अंगिरःऽतम । अग्ने । वेधःऽतम । प्रियं । वोचेम । ब्रह्म । सानसि ॥ २ ॥

कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वध्वरः ।
को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥ ३ ॥
त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः ।
सखा सखिभ्य ईड्यः ॥ ४ ॥
यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत् ।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ५ ॥ २३ ॥

॥ ७६ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

॥ ७६ ॥ का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा ।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥ १ ॥
एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः ।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजा महे सौमनसाय देवान् ॥ २ ॥

कः । ते । जामिः । जनानां । अग्ने । कः । दाशुऽअध्वरः । कः । ह । कस्मिन् । असि । श्रितः ॥ ३ ॥ त्वं । जामिः । जनानां अग्ने । मित्रः । असि । प्रियः । सखा । सखिऽभ्यः । ईड्यः ॥ ४ ॥ यज । नः । मित्रावरुणा । यज । देवान् । ऋतं । बृहत् । अग्ने । यक्षि । स्वं । दमं ॥ ५ ॥ २३ ॥

का । ते । उपऽइतिः । मनसः । वराय । भुवत् । अग्ने । शंऽतमा । का । मनीषा । कः । वा । यज्ञैः । परि । दक्षं । ते । आप । केन । वा । ते । मनसा । दाशेम ॥ १ ॥ आ । इहि । अग्ने । इह । होता । नि । सीद । अदब्धः । सु । पुरःऽएता । भव । नः । अवतां । त्वा । रोदसी इति । विश्वमिन्वे इति विश्वंऽइन्वे । यज । महे । सौमनसाय । देवान् ॥ २ ॥

प्र सु विश्वान्रक्षसो धक्ष्यग्ने भवा यज्ञानामभिशस्तिपावा ।
अथा वह सोमपतिं हरिभ्यामातिथ्यमस्मै चकृमा सुदाव्ने ॥ ३ ॥
प्रजावता वचसा वह्निरासा च हुवे नि च सत्सीह देवैः ।
वेषि होत्रमुत पोत्रं यजत्र बोधि प्रयन्तर्जनितर्वसूनाम् ॥ ४ ॥
यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन् ।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥ ५ ॥ २४ ॥

॥ ७७ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥

॥ ७७ ॥ कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ॥ १ ॥
यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।
अग्निर्यद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥ २ ॥

प्र । सु । विश्वान् । रक्षसः । धक्षि । अग्ने । भव । यज्ञानां । अभिशस्तिऽपावा । अथ । आ । वह । सोमऽपतिं । हरिऽभ्यां । आतिथ्यं । अस्मै । चकृम । सुऽदाव्ने ॥ ३ ॥ प्रजाऽवता । वचसा । वह्निः । आसा । आ । च । हुवे । नि । च । सत्सि । इह । देवैः । वेषि । होत्रं । उत । पोत्रं । यजत्र । बोधि । प्रऽयंतः । जनितः । वसूनां ॥ ४ ॥ यथा । विप्रस्य । मनुषः । हविःऽभिः । देवान् । अयजः । कविऽभिः । कविः । सन् । एव । होतरिति । सत्यऽतर । त्वं । अद्य । अग्ने । मंद्रया । जुह्वा । यजस्व ॥ ५ ॥ २४ ॥

कथा । दाशेम । अग्नये । का । अस्मै । देवऽजुष्टा । उच्यते । भामिने । गीः । यः । मर्त्येषु । अमृतः । ऋतऽवा । होता । यजिष्ठः । इत् । कृणोति । देवान् ॥ १ ॥ यः । अध्वरेषु । शंऽतमः । ऋतऽवा । होता । तं । ऊं इति । नमःऽभिः । आ । कृणुध्वं । अग्निः । यत् । वेः । मर्ताय । देवान् । सः । च । बोधाति । मनसा । यजाति ॥ २ ॥

स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥ ३ ॥
स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम् ।
तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥ ४ ॥
एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः ।
स एषु द्युम्नं पीपयत्स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥ ५ ॥ २५ ॥

॥ ७८ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ अग्निर्देवता गायत्री छन्दः ॥

॥ ७८ ॥ अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे ।
द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ १ ॥
तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति ।
द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥ २ ॥

सः । हि । क्रतुः । सः । मर्यः । सः । साधुः । मित्रः । न । भूत् । अद्भुतस्य । रथीः । तं । मेधेषु । प्रथमं । देवऽयंतीः । विशः । उप । ब्रुवते । दस्मं । आरीः ॥३॥ सः । नः । नृणां । नृऽतमः । रिशादाः । अग्निः । गिरः । अवसा । वेतु । धीतिं । तना । च । ये । मघऽवानः । शविष्ठाः । वाजऽप्रसूताः । इषयंत । मन्म ॥ ४ ॥ एव । अग्निः । गोतमेभिः । ऋतऽवा । विप्रेभिः । अस्तोष्ट । जातऽवेदाः । सः । एषु । द्युम्नं । पीपयत् । सः । वाजं । सः । पुष्टिं । याति । जोषं । आ । चिकित्वान् ॥५॥२५॥ अभि । त्वा । गोतमाः । गिरा । जातऽवेदः । विऽचर्षणे । द्युम्नैः । अभि । प्र । नोनुमः ॥ १ ॥ तं । ऊं इति । त्वा । गोतमः । गिरा । रायःऽकामः । दुवस्यति । द्युम्नैः । अभि । प्र । नोनुमः ॥ २ ॥

तमु॑ त्वा वाज॒सात॑मम॒ङ्गिर॒स्वद्ध॑वामहे । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥ ३ ॥
तमु॑ त्वा वृत्र॒हन्त॑मं॒ यो दस्यूँ॑रवधू॒नुषे॑ द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥ ४ ॥
अवो॑चाम॒ रहू॑गणा अ॒ग्नये॒ मधु॑मद्वचः । द्यु॒म्नैर॒भि प्र णो॑नुमः ॥ ५ ॥ २६ ॥

॥ ७९ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ आद्यस्तृचस्त्रैष्टुभः द्वितीय औष्णिहः शिष्टानां गायत्री छन्दः ॥

॥ ७९ ॥ हिर॑ण्यकेशो॒ रज॑सो विसा॒रेऽहि॒र्धुनि॒र्वात॑ इव॒ ध्रजी॑मान् ।
शुचि॑भ्राजा उ॒षसो॒ नवे॑दा॒ यश॑स्वतीरप॒स्युवो॒ न स॒त्याः ॥ १ ॥
आ ते॑ सुप॒र्णा अ॑मिनन्तँ॒ एवैः॑ कृ॒ष्णो नो॑नाव वृष॒भो यदी॒दम् ।
शि॒वाभि॒र्न स्मय॑माना॒भि॒रागा॒त्पत॑न्ति॒ मिहः॑ स्त॒नय॑न्त्य॒भ्रा ॥ २ ॥
यदी॑मृ॒तस्य॒ पय॑सा॒ पिया॑नो॒ नय॑न्नृ॒तस्य॑ प॒थिभी॒ रजि॑ष्ठैः ।
अ॒र्य॒मा मि॒त्रो वरु॑णः॒ परि॑ज्मा॒ त्वचं॑ पृञ्च॒न्त्युप॑रस्य॒ योनौ॑ ॥ ३ ॥

तं । ऊं इति॑ । त्वा॒ । वा॒ज॒ऽसात॑मं । अ॒ङ्गि॒र॒स्वत् । ह॒वा॒म॒हे॒ । द्यु॒म्नैः । अ॒भि । प्र । नो॒नु॒मः॒ ॥ ३ ॥ तं । ऊं इति॑ । त्वा॒ । वृ॒त्र॒हन्ऽत॑मं । यः । दस्यू॑न् । अ॒व॒ऽधू॒नु॒षे । द्यु॒म्नैः । अ॒भि । प्र । नो॒नु॒मः॒ ॥ ४ ॥ अवो॑चाम । रहू॑गणाः । अ॒ग्नये॑ । मधु॑ऽमत् । वचः॑ । द्यु॒म्नैः । अ॒भि । प्र । नो॒नु॒मः॒ ॥ ५ ॥ २६ ॥

हिर॑ण्यऽकेशः । रज॑सः । वि॒ऽसा॒रे । अहिः॑ । धुनिः॑ । वातः॑ऽइव । ध्रजी॑मान् । शुचि॑ऽभ्राजाः । उ॒षसः॑ । नवे॑दाः । यश॑स्वतीः । अ॒प॒स्युवः॑ । न । स॒त्याः ॥ १ ॥ आ । ते॒ । सु॒ऽप॒र्णाः । अ॒मि॒नं॒त॒ । एवैः॑ । कृ॒ष्णः । नो॒नाव॒ । वृ॒ष॒भः । यदि॑ । इ॒दं । शि॒वाभिः॑ । न । स्मय॑मानाभिः । आ । अ॒गा॒त् । पतं॑ति । मिहः॑ । स्त॒नयं॑ति । अ॒भ्रा ॥ २ ॥ यत् । ई॒ । ऋ॒तस्य॑ । पय॑सा । पिया॑नः । नय॑न् । ऋ॒तस्य॑ । प॒थिऽभिः॑ । रजि॑ष्ठैः । अ॒र्य॒मा । मि॒त्रः । वरु॑णः । परि॑ऽज्मा । त्वचं॑ । पृ॒ञ्च॒ति॒ । उप॑रस्य । योनौ॑ ॥ ३ ॥

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो ।

अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ४ ॥

स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा ।

रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ॥ ५ ॥

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः ।

स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६ ॥ २७ ॥

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि ।

विश्वासु धीषु वन्द्य ॥ ७ ॥

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यं ।

विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥ ८ ॥

अग्ने । वाजस्य । गोऽमतः । ईशानः । सहसः । यहो इति । अस्मे इति । धेहि । जातऽवेदः । महि । श्रवः ॥ ४ ॥ सः । इधानः । वसुः । कविः । अग्निः । ईळेन्यः । गिरा । रेवत् । अस्मभ्यं । पुरुऽअनीक । दीदिहि ॥ ५ ॥ क्षपः । राजन् । उत । त्मना । अग्ने । वस्तोः । उत । उषसः । सः । तिग्मऽजंभ । रक्षसः । दह । प्रति ॥ ६ ॥ २७ ॥

अव । नः । अग्ने । ऊतिऽभिः । गायत्रस्य । प्रऽभर्मणि । विश्वासु । धीषु । वंद्य ॥ ७ ॥ आ । नः । अग्ने । रयिं । भर । सत्राऽसहं । वरेण्यं । विश्वासु । पृत्ऽसु । दुस्तरं ॥ ८ ॥

आ नो॑ अग्ने सुचेतुना॑ र॒यिं वि॒श्वायु॑पोषसम् ।
मा॒र्डी॒कं धे॑हि जी॒वसे॑ ॥ ९ ॥

प्र पू॒तास्ति॒ग्मशो॑चिषे॒ वाचो॑ गोतमा॒ग्नये॑ ।
भर॑स्व सुम्न॒युर्गिरः॑ ॥ १० ॥

यो नो॑ अग्नेऽभि॒दास॒त्यन्ति॑ दू॒रे प॑दी॒ष्ट सः ।
अ॒स्माक॒मिद्वृ॒धे भ॑व ॥ ११ ॥

स॒ह॒स्रा॒क्षो विच॑र्षणिर॒ग्नी रक्षां॑सि सेधति ।
होता॑ गृणीत उ॒क्थ्यः॑ ॥ १२ ॥ २८ ॥

॥ ८० ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ पंक्तिश्छन्दः ।

॥ ८० ॥ इ॒त्था हि सोम॒ इन्मदे॑ ब्र॒ह्मा च॒कार॒ वर्ध॑नम् ।
शवि॑ष्ठ वज्रि॒न्नोज॑सा पृथि॒व्या निः श॑शा॒ अहि॒मर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥ १ ॥

आ । नः॒ । अ॒ग्ने॒ । सु॒ऽचे॒तुना॑ । र॒यिम् । वि॒श्वायु॑ऽपोषसम् । मा॒र्डी॒कम् । धे॒हि॒ । जी॒वसे॑ ॥ ९ ॥ प्र । पू॒ताः । ति॒ग्मऽशो॑चिषे । वाचः॑ । गो॒त॒म॒ । अ॒ग्नये॑ । भर॑स्व । सु॒म्न॒ऽयुः । गिरः॑ ॥ १० ॥ यः । नः॒ । अ॒ग्ने॒ । अ॒भि॒ऽदास॑ति । अन्ति॑ । दू॒रे । प॒दी॒ष्ट । सः । अ॒स्माक॑म् । इत् । वृ॒धे । भ॒व॒ ॥ ११ ॥ स॒ह॒स्र॒ऽअ॒क्षः । वि॒ऽच॑र्षणिः । अ॒ग्निः । रक्षां॑सि । से॒ध॒ति॒ । होता॑ । गृ॒णी॒ते॒ । उ॒क्थ्यः॑ ॥ १२ ॥ २८ ॥

इ॒त्था । हि । सोमे॑ । इत् । मदे॑ । ब्र॒ह्मा । च॒कार॑ । वर्ध॑नम् । शवि॑ष्ठ । व॒ज्रि॒न् । ओज॑सा । पृ॒थि॒व्याः । निः । श॒शाः॒ । अहि॑म् । अर्च॑न् । अनु॑ । स्व॒ऽराज्य॑म् ॥ १ ॥

स त्वामदद्वृषा मदः सोमः श्येनाभृतः सुतः ।
येना वृत्रं निरद्भ्यो जघन्थ वज्रिन्नोजसार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ २ ॥
प्रेह्यभीहि धृष्णुहि न ते वज्रो नि यंसते ।
इन्द्र नृम्णं हि ते शवो हनो वृत्रं जया अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ३ ॥
निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः ।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥
इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः ।
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः समीय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ५ ॥ २९ ॥

सः । त्वा । अमदत् । वृषा । मदः । सोमः । श्येनऽआभृतः । सुतः । येन । वृत्रं ।
निः । अत्ऽभ्यः । जघंथ । वज्रिन् । ओजसा । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ २ ॥
प्र । इहि । अभि । इहि । धृष्णुहि । न । ते । वज्रः । नि । यंसते । इंद्र । नृम्णं ।
हि । ते । शवः । हनः । वृत्रं । जयाः । अपः । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥३॥
निः । इंद्र । भूम्याः । अधि । वृत्रं । जघंथ । निः । दिवः । सृज । मरुत्वतीः ।
अव । जीवऽधन्याः । इमाः । अपः । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ ४ ॥ इंद्रः ।
वृत्रस्य । दोधतः । सानुं । वज्रेण । हीळितः । अभिऽक्रम्य । अव । जिघ्नते ।
अपः । समीय । चोदयन् । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ ५ ॥ २९ ॥

अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ६ ॥
इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ७ ॥
वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या३ अनु ।
महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ८ ॥
सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः ।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ९ ॥

अधि । सानौ । नि । जिघ्नते । वज्रेण । शतऽपर्वणा । मंदानः । इंद्रः । अंधसः । सखिऽभ्यः । गातुं । इच्छति । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ ६ ॥
इंद्र । तुभ्यं । इत् । अद्रिऽवः । अनुत्तं । वज्रिन् । वीर्यं । यत् । ह । त्यं । मायिनं । मृगं । तं । ऊं इति । त्वं । मायया । अवधीः । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ ७ ॥
वि । ते । वज्रासः । अस्थिरन् । नवतिं । नाव्याः । अनु । महत् । ते । इंद्र । वीर्यं । बाह्वोः । ते । बलं । हितं । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ ८ ॥ सहस्रं । साकं । अर्चत । परि । स्तोभत । विंशतिः । शता । एनं । अनु । अनोनवुः । इंद्राय । ब्रह्म । उत्ऽयतं । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ ९ ॥

इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः ।
महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १० ॥ १० ॥
इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही ।
यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ११ ॥
न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत् ।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥
यद्वृत्रं तव चाशनिं वज्रेण समयोधयः ।
अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्बधे शवोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १३ ॥

इंद्रः । वृत्रस्य । तविषीं । निः । अहन् । सहसा । सहः । महत् । तत् । अस्य । पौंस्यं । वृत्रं । जघन्वान् । असृजत् । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ १० ॥ १० ॥

इमे इति । चित् । तव । मन्यवे । वेपेते इति । भियसा । मही इति । यत् । इंद्र । वज्रिन् । ओजसा । वृत्रं । मरुत्वान् । अवधीः । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ ११ ॥ न । वेपसा । न । तन्यता । इंद्रं । वृत्रः । वि । बीभयत् । अभि । एनं । वज्रः । आयसः । सहस्रऽभृष्टिः । आयत । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ १२ ॥ यत् । वृत्रं । तव । च । अशनिं । वज्रेण । संऽअयोधयः । अहिं । इंद्र । जिघांसतः । दिवि । ते । बद्बधे । शवः । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ १३ ॥

अभिष्टने ते अद्रिवो यत्स्था जगच्च रेजते ।
त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र वेविज्यते भियार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १४ ॥
नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १५ ॥
यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ।
तस्मिन्ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १६ ॥ ३१ ॥५॥

॥ इति प्रथमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अभिऽस्तने । ते । अद्रिऽवः । यत् । स्थाः । जगत् । च । रेजते । त्वष्टा । चित् । तव । मन्यवे । इंद्र । वेविज्यते । भिया । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ १४ ॥
नहि । नु । यात् । अधिऽइमसि । इंद्र । कः । वीर्या । परः । तस्मिन् । नृम्णं । उत । क्रतुं । देवाः । ओजांसि । सं । दधुः । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ १५ ॥
या । अथर्वा । मनुः । पिता । दध्यङ् । धियं । अत्नत । तस्मिन् । ब्रह्माणि । पूर्वऽथा । इंद्रे । उक्था । सं । अग्मत । अर्चन् । अनु । स्वऽराज्यं ॥ १६ ॥ ३१ ॥ ५ ॥

॥ इति प्रथमाष्टके पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अध्याय ५.

सूक्त. ६२

॥ १२ ॥ ऋषि—गौतम नोधा । देवता—इंद्र ॥

सामर्थ्यवान्[1] और स्तुतिप्रिय इन्द्र के लिए अंगिरस की तरह प्रभावशाली स्तोत्र हम स्मरण कर सकते हैं। स्तुति करनेवाले भक्तों के लिए अत्यन्त स्तवनीय और अतिशय कीर्तिमान् इस वीर के सन्मानार्थ आइये हम लोग, सुन्दर शब्दरचना कर के स्तोत्र पढ़ें। १

पैर[2] पहचान लेने में अतिदक्ष अंगिरस नामक हमारे भक्तिमान प्राचीन पूर्वजों को जिनकी कृपा से धेनुओं की प्राप्ति हो सकी उन श्रेष्ठ इन्द्र को तुम अत्यन्त नम्रता से वन्दन करो और उन्हीं सामर्थ्यवान इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए तुम स्तुति से परिपूर्ण कोई गान करो। २

इन्द्र और अंगिरस की इच्छा से सरमा को अपने पुत्र के लिए उत्तम पेय[3] मिला। बृहस्पति ने पर्वत तोड़ा और गौओं को प्राप्त किया, तथा शूर लोगों ने धेनुओं के सहित आनन्द की गर्जनाएं की। ३

आप तेजस्वी हैं। आपको सात विप्रों ने और अत्यन्त चपल नवग्वों ने और दशग्वों ने स्तुतिस्तोत्र और गीत गा कर (प्रोत्साहित किया, तब) हे पराक्रमी इन्द्र, आपने बड़ी गर्जना कर के शैल, मेघ[4] और वल का ध्वंस किया। ४

हे सौन्दर्यवान इन्द्रदेव, जब अंगिरसों ने आपकी स्तुति की तब उषा, सूर्य और धेनुओं को लेकर आपने अंधकार[5] का उच्छेद किया। हे इन्द्र, आपने भूलोक की मर्यादा विस्तृत की और रजोलोक के ऊपर द्युलोक की संस्थापना की। ५ (१)

१—शवसानाय, गिर्वणसे, (इंद्राय) अंगिरस्वत् शूषम् आंगूषं, प्रमन्महे। सुवृक्तिभिः, स्तुवते ऋग्मियाय विश्रुताय नरे अर्कम् अर्चाम॥

२—पदज्ञाः अर्चन्त नः पूर्वे पितरः अंगिरसः येन गाः अविन्दन्, तस्मै महे शवसानाय (इंद्राय) महि नमः, आंगूष्यं साम प्रभरध्वम्॥

३—इंद्रस्य अंगिरसां च इष्टौ, सरमा तनयाय धासिं विदत्। बृहस्पतिः अद्रिं भिनत् गाः विदत्। नरः उस्रियाभिः (सह) वावशन्त।

४—सरण्युभिः नवग्वैः, दशग्वैः, सप्त, विप्रैः, सुष्टुभा, स्वरेण, स्तुभा, स्वर्यः सः, (त्वं) (हे) शक्र इंद्र, अद्रिं, फलिगं, वलं, रवेण, दरयः॥

५—(हे) दस्म, इंद्र, अंगिरोभिः, गृणानः उषसा सूर्येण गोभिः अंधः विवः; भूम्याः सानु, व्यप्रथयः; दिवः रजः उपरम् अस्तभायः॥

इस सौन्दर्यवान् देवता का यह कर्म अत्यन्त सन्माननीय है–यह उसका अद्भुत कृत्य सचमुच ही अत्यन्त सुन्दर है–कि क्षितिज के पास उसने मधुर जल की चार नदियां, एक के ऊपर एक, उपटापाट भर दीं। ६

स्तुतियों से परिपूर्ण स्तोत्र होते हुए, कदापि श्रान्त न होनेवाले इस देवता ने प्राचीन काल से एकत्र[6] रहनेवाली जोड़ी फोड़कर उनके दो भाग किये। अनेक सुन्दर आश्चर्यकारक पराक्रम करनेवाले इस देवता ने भग की तरह स्वर्गभूमि और पृथिवी, इन दो युवतियों को, इस विशाल आकाश भाग में, स्थापना की। ७

सनातनकाल से रात्र और उषा, ये दो युवतियां, कि जिनके रूप भिन्न हैं, परन्तु जो पुनः पुनः जन्म लेती रहती हैं, अपनी अपनी गमनरीति से द्युलोक और पृथिवी के आसपास, क्रमशः कृष्ण और उज्ज्वल रूप धारण कर के, अकेली अकेली, परिभ्रमण करती रहती हैं। ८

सुन्दर सुन्दर चमत्कार करनेवाले और अत्यन्त उदार इन्द्र ने अपने सामर्थ्य से श्रेष्ठ कार्य कर के (सम्पूर्ण विश्व के विषय में) चिरकालिक प्रेमबुद्धि धारण की है। (हे इन्द्र,) गौओं का रंग लाल हो चाहे काला हो; किंबहुना, चाहे वे बिलकुल नवीन प्रसव की ही क्यों न हों, आप उनमें बलदायक, सफेद और मधुर दुग्ध रखते हैं। ९

जिनकी गति एक ही जगह की ओर है; और जिन्हें प्रत्यवाय अथवा नाश होने का डर नहीं वही ये नदियां पुरातन पुरातन काल से, अपने सामर्थ्य के अनुसार (इस देवता की) आज्ञाओं का परिपालन कर रही हैं। जैसे एक ही पुरुष की हजारों विवाहित स्त्रियां हों उसी प्रकार ये बहिनें बहिनें इस एक ही की सेवा करती रहती हैं। और वह भी दिल खोलकर उस सेवा[11] का स्वीकार करता है। १० (२)

६–दस्मस्य अस्य (इन्द्रस्य) तत् उ कर्म प्रयक्षतमम्, दंसः चारुतमम् यत् उपह्वरे, उपरा मध्वर्णसः चतस्रः नद्यः अपिन्वत् ॥

७–स्तवमानेभिः अर्कैः अयास्यः (इन्द्रः) सनजा सनीळे द्विता विवव्रे। परमे व्योमन्, भगः न, सुदंसाः मेने रोदसी अधारयत् ॥

८–सनात् विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिः एवैः भूम दिवं परि, अक्ता, कृष्णेभिः, उषा, रुशद्भिः, वपुर्भिः अन्यान्या आचरत ॥

९–सुदंसाः, सूनुः, शवसा स्वपस्यमानः सनेमि सख्यं दाधार। आमासु चित्, कृष्णासु रोहिणीषु अंतः पक्वं रुशत् दधिषे ॥

१०–सनात् सनीळाः, अवाताः, अमृताः, अवनीः सहोभिः व्रता रक्षन्ते। स्वसारः अह्रयाणं, जनयः पत्नीः न, दुवस्यन्ति[12] ॥

आप नमस्कृतियों और स्तोत्रों से अर्चन करने योग्य हैं । हे सौन्दर्ययुक्त देव, धन और लाभ की इच्छा रख कर हमारे मन की स्फूर्ति आपकी ओर दौड़ती रहती है । हे बलशाली देव, जैसे अनुरक्त[11] पत्नी अनुरक्त पतिको आलिंगन देती है वैसे ही हमारी स्तुतियां आपसे मिलने आती हैं । ११.

हे लावण्यवान् देव, सनातन कालसे आपके हाथमें सम्पत्ति है । उसका क्षय अथवा ह्रास कदापि नहीं होता । हे इन्द्र, आप कान्तिवान्, बुद्धिमान् और प्रज्ञावान् हैं । हे सामर्थ्यवान् देव, अपनी शक्तिके योगसे, आप हमें सन्मार्गमें लगाइये । १२

(हे इन्द्र, यह गौतम प्राचीन[12] ऋषियोंका अनुकरण करता है । हरिद्वयी अश्वपर आरोहण करनेवाले आपके लिए उसने नवीन स्तोत्र रचा है । हे सामर्थ्यवान् देव, आप हमारे सन्मार्गदर्शक हैं । आपके लिए नोधा ऋषिने स्तुति बनाई है । इस देवता के पास स्तोत्रसम्पत्ति भरपूर है । प्रातःकालमें ही हमारे यहां उसका सत्वर आगमन हो ।) १३ (३,

सूक्त. ६३

॥ ६३ ॥ ऋषि–गौतम नोधाः ॥ देवता–इंद्र ॥

हे इन्द्र, जबकि प्रत्यक्ष सम्पूर्ण पर्वत, और भूमिपर दृढ़ संस्थापित अन्य भारी वस्तुएं भी, आपके डरसे (सूर्यकी) किरणोंकी तरह लच लच हिलने लगीं तब आप अवश्य ही बहुत बड़े हैं—इतने बड़े हैं कि, आप सर्वज्ञ हैं; और द्युलोक तथा भूलोकको भी अपने सामर्थ्य से आपने अपनी धाक[1] में रखा है । १

११–नमसा अर्कः त्व नव्यः । दस्म, सनायुवः वसूयवः मतय. दधुः । शवसावन्, उशन्त पतिं "उशतीः पत्नीः न मर्तापाः त्वा स्पृशन्ति ॥

१२–सनात् एव रायः एव गभस्तौ । दस्म, न क्षीयन्ते न उपदस्यन्ति । इन्द्र, द्युमान् क्रतुमान् धीरः असि । शचीवः, तव शचीभिः नः शिक्ष ॥

१३–इन्द्र, गोतम सनायते" । हरियोजनाय नव्यं ब्रह्म अतक्षत् । शवसान नः सुनीथाय नोधाः । धियावसुः प्रातः मक्षु अगम्यात् ॥

१–यत् ह दृळ्हासः गिरयश्चित् विश्वा (दृळ्हा) अभ्वा ते भिया किरणा न ऐजन्, इन्द्र, त्वं महान्—यः ह जज्ञानः द्यावा पृथिवी शुष्मैः अमे' धाः ॥

हे इन्द्र, जब आपने, अनेक प्रकार से अपनी आज्ञा माननेवाले अपने अश्व जुटाये तब आपका स्तवन करनेवाले भक्त ने आपका वज्र आपकी भुजाओं पर रख दिया। अपनी बुद्धि से चलनेवाले,[१] और अनेक भक्तों के द्वारा स्वसंरक्षणार्थ पाचारण किये हुए, हे इन्द्र, वही वज्र लेकर आप शत्रुओं का और सम्पत्ति से समृद्ध उनके नगरों का उच्छेद करते हैं। २

हे इन्द्र, आप सत्यस्वरूप हैं, आप इन (शत्रुओं के) उच्छेदक हैं, आप ऋभुओं के स्वामी हैं, आप मनुष्यों के कल्याणकर्त्ता हैं, आप अपने साथ युद्ध में प्रवृत्त होनेवाले को पराभूत करनेवाले हैं। आपने तेजस्वी और तरुण कुत्स का पक्ष[३] लेकर संग्राम में, युद्ध[४] में और लड़ाई[५] में शुष्ण का हनन किया। ३

वायुगामी पुरुष की तरह मन की प्रवृत्ति रखनेवाले हे शूर इन्द्र, सचमुच जिस समय दस्युओं पर सहज[६] ही विजय प्राप्तकर के और उन्हें भगाकर[७] आपने स्वयं उन्हीं के निवासस्थल में उन्हें काट डाला, और जिस समय, हे पराक्रमी पुरुष की तरह कार्य करनेवाले वज्रधर इन्द्र, (कुत्स के) स्नेही बनकर आपने वृत्रका वध किया उस समय उस कार्य के विषय में स्वयं आप ही की वैसी बलवत्तर इच्छा थी। ४

मानवों में अत्यन्त बलिष्ठ का ही रोष क्यों न हुआ हो, तथापि हे इन्द्र, आपने कभी उसमें विघ्न नहीं आने दिया। आपने हमारे अश्व के लिए सब दिशाएं खोल दीं। हे वज्रधर इन्द्र, आप इस प्रकार शत्रुओं का नाश कीजिए जैसे कोई घन लेकर करता हो। ५ (४)

समुद्र[८] पर अधिकार प्राप्त करने अथवा स्वर्गप्राप्ति करने की इच्छा से आरम्भ किये हुए युद्ध में सचमुच इसी कारण से योद्धाजन आपको पुकारते हैं। हे अनेक हवियों[९] का उपभोग करनेवाले इन्द्र, समर में अथवा पराक्रम के कार्यों में हमें सुलभ[१०] रीति से आपही की सहायता प्राप्त हुई। ६

२–यत् ह इन्द्र विव्रता हरी आवेः, जरिता बाह्वोः वज्रं आधात्, येन, अविहर्यतक्रतो[१] पुरुहूत (इन्द्र) अमित्रान् पूर्वीः पुरः इष्णासि ॥

३–इन्द्र त्वं सत्यः, एतान् धृष्णुः, त्वं ऋभुक्षाः, त्वं नर्यः, त्वं षाट् । त्वं द्युमते यूने कुत्साय सचा वृजने पृक्षे,[३] आणौ[५] शुष्णं अहन् ॥

४–यत् ह वृषमणः शूर (इन्द्र) वृथाषाट्[६] (त्वं) दस्यून् पराचैः[७] योनौ व्यकृतः, यत् (च) वृषकर्मन् वज्रिन् इन्द्र सखा वृत्रं उभ्नाः त्वं हि त्यत् इन्द्र चोदीः ॥

५–दृळ्हस्य चित् मर्तानां अजुष्टौ इन्द्र त्वं ह त्यत् अरिषण्यन् । अस्मत् अर्वते काष्ठाः व्यवः । वज्रिन् घनेव अमित्रान् श्नथिहि ॥

६–अर्णसातौ[८] स्वर्मीळ्हे आजा त्वां ह त्यत्, इन्द्र, नरः हवन्ते । स्वधावः[९] समर्ये वाजेषु तव इयं ऊतिः अतसाय्या[१०] भूत् ।

हे वज्रधारी इन्द्र, इसी कारण से आपने कुत्स के लिए युद्ध किया और सप्त पुरों का विध्वंस किया। जिस समय आपने सुदास के लिए उसके शत्रुओं को, कुछ भी श्रम न करते हुए, घास की तरह काट डाला उस समय हे राजन्, आपने पुरु को संकटों से रक्षा[11] की। ७

हे सर्वसंचारी[12] इन्द्र देव, आपने हम पर जल की तरह अपनी उस कृपादृष्टि की वृष्टि की कि जिसके भाग से, हे शूर, इस रीति से हमें आप से उत्तम सामर्थ्य[13] का लाभ हुआ जैसे सब जगह जल गिरने जाता हो। ८

हे इन्द्र, गौतमों ने आपका स्तवन किया है और आपके अश्वों को वन्दन करके उनके सन्मानार्थ भी उन्होंने स्तोत्र गाये हैं। हमें उत्तम प्रकार का सामर्थ्य दीजिए। असंख्य स्तुतियों से प्रार्थित किया हुआ यह देवता प्रातःकाल शीघ्रही हमारी ओर गमन करे। ९ (५)

सूक्त ६४

॥ ६४ ॥ ऋषि–गौतम नोधा । देवता–मरुत् ॥

हे नोधा, मरुद्देवों के सन्मानार्थ, उनके सामर्थ्यवान्, अत्यन्त पूज्य और अत्यन्त कर्तृत्ववान् गणोंको सम्बोधित कर के एक सुन्दर स्तोत्र अर्पण करो। ध्यानपूर्वक और [illegible] के साथ मैं यज्ञ के प्रसंग पर पानी की तरह प्रभावशाली स्तोत्र [illegible] रहा हूं। १

७–वज्रिन् इन्द्र, त्यत् ह त्व पुरुकुत्साय युध्यन् सप्त पुरः दर्दः। यत् सुदासे बर्हिः न वृथा [illegible], राजन्, पूरवे वरिवः[11] कः॥

८–[12]परिज्मन् इन्द्र, त्वं नः, आपो न, त्यां चित्रां इषं पीपयः यया, शूर, विश्वध क्षरध्यै अस्मभ्यं प्रति ऊर्जं [13]त्मनं यंसि॥

९–इन्द्र, गोतमेभिः ते ब्रह्माणि अकारि हरिभ्यां नमसा ब्रह्माणि उक्था। सुपेशसं वाजं नः आ भर। धियावसुः प्रातः मक्षु जगम्यात्॥

१ नोधः, मरुद्भ्यः वृष्णे सुमखाय वेधसे शर्धाय सुवृक्तिं प्र भर। मनसा धीरः सुहस्त्यः[1] गिरः अपो न समञ्जे॥

रुद्रों के पुत्र, (शत्रुओं का) नाश करनेवाले सम्पूर्ण अवगुणों[1] से अलिप्त, जगत् को पावन करनेवाले, सूर्य की तरह तेजःपुंज और वृष्टि करनेवाले हैं, तथा सामर्थ्यवान् पुरुषों की तरह भयप्रद ये ऊँचे शरीर के पराक्रमी वृषभ द्युलोक से जन्मे हैं। २

तारुण्ययुक्त, जरारहित, भक्तिहीन, कृपण पुरुषों का विनाश करनेवाले और किसीके प्रतिरोध[3] को न माननेवाले ये रुद्र पर्वत की तरह बलवान् होते गये। ये दिव्य लोकों और पृथ्वीतल के प्रदेशों को फिर वे चाहे जितने अचल क्यों न हों, अपने सामर्थ्य के योग से हिला डालते हैं। ३

मुन्दर देख पड़ने के लिए वे आपनेको चित्रविचित्र आभरणों[4] से आभूषित कर रहे हैं। शोभा के लिए उन्होंने अपने वक्षस्थल पर सुवर्णालंकार धारण किये हैं। उनके कंधों पर चमकते हुए भाले देख पड़ रहे हैं और ये वीर अपना ही मार्ग धारण कर के द्युलोक में उत्पन्न हुए हैं। ४

विश्व पर आधिपत्य सम्पादन करनेवाले, सम्पूर्ण जगत् को हिला डालनेवाले और शत्रुओं का संहार करनेवाले इन मरुतों ने हवा और बिजली उत्पन्न की। वे स्वर्भूमि के स्तन का दोहन करते हैं और सर्वत्र संचार कर के दुग्ध से पृथ्वी को पुष्ट करते हैं। ५ (६)

शरीर में कर्तृत्व[5] रखनेवाले ये दानशूर मरुत जल, और घृतपरिपूर्ण दुग्ध की समृद्धि करते हैं। वे सामर्थ्यवान अश्व[6] को मानो कुछ वृष्टि करने की ही शिक्षा देते हैं और वेग से शब्द करनेवाले अविनाशी झरने का दोहन करते हैं। ६

---

१ रुद्रस्य मर्याः असुराः अरेपसः पावकासः सूर्याः इव शुचयः द्रप्सिनः सत्वानः न घोरवर्पसः (मरुतः) ऋष्वासः उक्षणः ते दिवः जज्ञिरे.

३ युवानः अजराः अभोग्घनः अध्रिगावः रुद्राः पर्वताः इव ववक्षुः । मज्मना दिव्यानि पार्थिवा दृळ्हा चित् विश्वा भुवनानि प्रच्यावयन्ति.

४ वपुषे चित्रैः अंजिभिः व्यंजते । शुभे वक्षःसु रुक्मान् अधियेतिरे । एषां अंसेषु ऋष्टयः निमिमृक्षुः नरः स्वधया साकं दिवः जज्ञिरे.

५ ईशानकृतः धुनयः रिशादसः वातान् विद्युतः तविषीभिः अक्रत । धूतयः दिव्यानि दुहन्ति, परिज्रयः पयसा भूमिं पिन्वन्ति.

६ आभुवः[6] सुदानवः मरुतः अपः घृतवत् पयः पिन्वन्ति । वाजिनं अत्यं मिहे न विनयन्ति, स्तनयन्तं अक्षितं उत्सं दुहन्ति.

जिस समय सामर्थ्यवान् सम्पूर्ण युक्तिप्रयुक्तियों में निष्णात, आश्चर्यकारक तेज से युक्त, पर्वत की तरह स्वसामर्थ्य से परिपूर्ण और शीघ्रसंचारी आप अपनी रक्तवर्ण हरिनियों में से बलिष्ठ हरिनी को अपने रथ में जुटाते हैं उस समय (मानो ऐसा भास होता है कि) आप किसी वनैले हाथी की तरह सब पेड़ पौधे खा ही डालते हैं। ७

अत्यन्त प्रज्ञाशील, रुरु नामक मृग की तरह सुन्दर, सर्वज्ञ अपनी चितकबरी हरिनी जुटाकर और भाले ले कर, रात को भगा देनेवाले, शत्रु को एकदम एक ही समय पीड़ा देनेवाले और बलिष्ठ होने के कारण सर्प की तरह क्रोधित ये मरुत् सिंह की तरह गर्जना करते हैं। ८

समुदाय में शोभित दिखनेवाले, मनुष्यों के सहायक होनेवाले और शरीर में सामर्थ्य होने के कारण सर्प के समान कुपित होनेवाले हे शूर मरुद्देवताओं, आप स्वर्ग और पृथ्वी दोनों लोकों से सम्भाषण कीजिए। आपके रथ के बन्धुरों पर क्या सुन्दर तेज दृग्गोचर नहीं होता? और आपके रथों पर क्या विद्युत् विराजमान नहीं हुई? ९

सर्वज्ञ, स्वैभव धारण कर के एकत्र निवास करनेवाले, एक दूसरे से बिलकुल संलग्न रहनेवाले, स्वसामर्थ्य के योग से श्रेष्ठता पाये हुए, अस्त्रविद्यानिपुण, शरीर में अपार बल रखनेवाले और आयुध धारण करनेवाले इन शूर मरुतों ने हाथ में बाण लिया है। १०

पवित्र चरित्र, स्वमार्ग से गमन करनेवाले, स्थिर पदार्थों को चलानेवाले, शत्रुओं की ओर से अपने में अभिमान लानेवाले, हाथ में भाले चमकानेवाले ये मरुत् दुग्धपान से सामर्थ्यवान बन कर अपने सुवर्णमय पवियों से, मार्ग के किसी क्षुद्र पदार्थ की तरह, पर्वतों को चूर चूर कर डालते हैं। ११

---

७ मीढ्वांसः मायिनः चित्रभानवः गिरयो न स्वतवसः रघुष्यदः आरुणीषु तविषीः यत् अयुग्ध्वं (तदा) मृगाः हस्तिन इव वना खादथ.

८ प्रचेतसः पिशा इव सुपिशः, विश्ववेदसः, पृषतीभिः ऋष्टिभिः क्षपः जिन्वन्तः, सम् इत् सबाध, शवसा अहिमन्यवः सिंहा इव नानदति.

९ गणश्रियः नृषाचः शवसा अहिमन्यवः शूराः मरुतः रोदसी आवदत। वन्धुरेषु दर्शता अमतिः न वः रथेषु विद्युत् न तस्थौ।

१० विश्ववेदसः, रयिभिः समोकसः, संमिश्लासः, तविषीभिर्विरप्शिनः, अस्तारः, अनन्तशुष्माः, "वृषखादयः नरः गभस्त्योः" इषुं दधिरे.

११ मखाः अयासः स्वसृतः ध्रुवच्युतः दुध्रकृतः भ्राजदृष्टयः मरुतः पयोवृधः सन्तः हिरण्ययेभिः पविभिः पर्वतान् आपथ्यः न उज्जिघ्नन्त.

युद्धकर्म में चतुर, पवित्र, वन में संचार करनेवाले, और सर्वत्र परिभ्रमण करनेवाले रुद्र के पुत्रों को पुकार कर हम उनका स्तवन करते हैं। रजोलोक में जानेवाले, बलिष्ठ, सरल गति से दौडनेवाले और अतिशय शक्तिमान् मरुद्गणों का तुम, वैभव प्राप्त होने के लिए, भजन करो। १२

अपना सहायता देकर आप जिस की रक्षा करते हो वह मनुष्य अपने सामर्थ्य से सब लोगों से अधिक बलवान होता है। वह अपने अश्वों के योग से सामर्थ्य सम्पादन करता है, वह अपने यहां शूर मनुष्यों के द्वारा सम्पत्ति कमाता है, उसे, वह शक्ति प्राप्त होती है जिसके विषयमें लोग पूछपाँछ" करते हैं और उसकी उन्नति होती जाती है। १३

धनकी प्राप्ति करानेवाली, प्रशंसनीय, सर्व विश्व में विदित होनेवाली, [illegible] स्तुत्य, युद्ध में हार न जानेवाली और उज्वल शक्ति, हे मरुतो, आप अपने हवि देनेवाले भक्तो में लाइये। हमें शतायु पुत्रपौत्र भी प्राप्त हों। १४

हे मरुद्देवताओं, हमे ऐसा वैभव दीजिए जो स्थिर रहे, जिसके योग से शूर लोग हमारे यहां रहें, जिसके योग से शत्रु पराजित" हों, जिसकी गिनती सैंकड़ो और हजारों से करनी पड़े और जो सदैव बढ़ता रहे। यह मरुद्गण, जिसकी स्तोत्रसम्पत्ति अपार है, प्रातःकाल में हमारे यहां सत्वर गमन करें। १५

---

१२ धृषु पावकं वनिनं विचर्षणि रुद्रस्य सूनु हवसा गृणीमसि । रजस्तुरं, तवसं मारुतं गणं ऋजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये सश्चत.

१३ मरुतः यः ऊती य आवत स मर्तः शवसा जनान् अतितस्थौ । अर्वद्भिः वाजं भरते, नृभि. धना भरते आपृच्छ्यं" क्रतुं आक्षेति पुष्यति.

१४ मरुतः धनस्पृतं, उक्थ्य, विश्वचर्षणिं, चर्कृत्यं, पृत्सु दुष्टरं, द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन । शतं हिमाः तोकं तनयं पुष्येम.

१५ मरुतः, स्थिरं, वीरवन्तं, ऋतीषहं," सहस्रिणं, शतिनं, शूशुवांसं रयिं अस्मासु धत्त । धियं प्रातः मक्षु धियावसुः जगम्यात्.

॥ ६५ ॥ [illegible] । देवता अग्नि ॥

अनुवाक. १२

सूक्त. ६५

जैसे पशुओं को चुरा ले जाकर जब कोई चोर गुहा में छिपकर[1] जा बैठता है तब उसके पैरों से उसका पता लगाते हैं, उसी प्रकार प्रज्ञाशील पुरुषों ने आपस में एकमत कर के, सब के नमस्कार स्वयं स्वीकार कर के, उन देवों के पास पहुँचनेवाले आपका पता आपके पैरों से लगाया और वे सब पुण्यशील पुरुष आपके समीप विराजमान् हुए। १

सत्यनियमों से उत्पन्न होनेवाले अनुशासनों का देवों ने परिपालन किया। स्वर्ग की तरह पृथिवी भी उन सत्यनियमों का आश्रयस्थान हुई। प्रत्यक्ष सत्य ने जहां जन्म लिया ऐसे गर्भ में, अत्यन्त ठाटबाट के साथ, जिसका जनन हुआ वह अग्नि जब वृद्धि[2] पाने लगा तब सम्पूर्ण जलों ने उसका स्तवन कर के उसके वर्धन को उत्तेजना दी। २

उत्कर्ष जैसा रमणीय होता है, पृथ्वी जैसी विस्तीर्ण है, गिरि जैसा (पुष्प फलादिक) भोग्य वस्तुओं से परिपूर्ण होता है उदक[3] जैसा हितकारक होता है, दौड़ते समय भी अधिक चैतन्य किया हुआ घोड़ा जिस प्रकार और भी दौड़ता है, अथवा जैसे कोई नदी ऐसी सामर्थ्यवान हो जो कि अपने तट तोड़[4] डाले, वैसा ही यह अग्नि है। वास्तव में इसे कौन प्रतिबन्ध कर सकता है? ३

यह नदियों का ऐसा प्यारा आप्त है कि मानो वे बहिनें हैं और यह उनका भाई ही है। जैसे कोई नृपति शत्रुओं[5] का संहार करता है उसी प्रकार यह सम्पूर्ण वन का भक्षण करता है। जब वायु से प्रेरित होकर इसका मोर्चा वनों की ओर फिरा होता है उस समय सचमुच यह अग्नि (जैसे कि) पृथिवी के केश ही काट डालता है। ४

हंसकी तरह यह जल में बैठ कर श्वासोच्छ्वास करता है। यह होने बुद्धिमान् के कारण अत्यन्त ज्ञानशील है। यह सब लोगों को प्रभात के समय जागृत करता है। इसके शरीर में सोम की सी नवीनता है। इसका जन्म सत्य से हुआ है। जैसे कोई पशु[6] जानवर दिखाई जान पड़ता है वैसा ही यह देख पड़ता है। यह सर्वव्यापी है। इसकी कान्ति दूर तक फैलती है। ५ (९)

---

१ पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तं। सजोषा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन् विश्वे यजत्राः॥

(Printed: १ नमो युजान नमो वहन्तं त्वा सजोषाः धीराः पश्वा गुहा चतन्त[1] तायुं न पदैः अनुग्मन्; विश्वे यजत्राः त्वा उप सीदन्,)

२ देवाः ऋतस्य व्रता अनु गुः द्यौः न भूम परिष्टिः भुवत्. ऋतस्य योनौ गर्भे सुजातं सुशिश्विं[2] ईं आपः पन्वा वर्धन्ति.

३ रण्वा पुष्टिः न, पृथ्वी क्षितिः न, भुज्म गिरिः न, शंभु क्षोदः[3] न, अज्मन् सर्गप्रतक्तः अत्यः न, क्षोदः[4] सिन्धुः न; ईं कः वराते?

४ जामिः सिन्धूनां भ्राताइव स्वस्राम् राजा इभ्यान्[5] वनानि अत्ति. यत् वातजूतः वना वि अस्थात् अग्निः पृथिव्याः रोम दाति ह.

५ अप्सु सीदन् हंसः न श्वसिति. चेकितः क्रत्वा विशां उषर्भुत्. ऋतप्रजातः सोमः न वेधाः. शिशुः दूरेभाः पशुः[6] न.

॥ ६६ ॥ ऋषिः-शक्तिपुत्र पराशर । देवता-अग्नि ॥

सूक्त. ६६

यह तेजस्वी और प्रभावशील अग्नि आश्चर्यप्रद सम्पत्ति की तरह, सर्वदर्शी सूर्यकी तरह, जीवनप्रद आयु की तरह, नित्य के औरस पुत्र की तरह और चपल अश्व[1] की तरह है और जिस प्रकार धेनु दुग्ध को दृढ रीति से धारण करती है उसी प्रकार यह वन के वृक्षों को दृढ़ता से पकड़ रखता है। १

सम्पूर्ण लोकों पर विजय प्राप्त करनेवाला यह अग्नि पके हुए खेत के अनाज की तरह अथवा किसी सुशोभित मन्दिर की तरह है और इसने ऐसा किया है कि जिससे भक्तों का क्षेम रहे। स्तोत्र गाने[2] में मग्न हुए ऋषि अथवा किसी सर्वप्रिय अश्व की जैसी सम्पूर्ण जनों में प्रशंसा होती है वैसी ही जगत् में इसकी प्रशंसा होती रहती है। और यह सब को उनका जीवन अर्पण करता है। २

शाश्वत टिकनेवाले सामर्थ्य की तरह अथवा अपने घर की पत्नी की तरह यह सब को पूज्य और प्रिय है और इसका तेज दूर[3] तक फैलनेवाला है और सब विश्वों को यह तृप्ति करनेवाला है। जब अपनी चित्र विचित्र कान्ति से यह विराजमान होता है उस समय सुवर्णरथ की तरह अथवा जन। समुदाय में अपने तेज से तड़पनेवाले किसी तेजस्वी पुरुष की तरह यह शोभने लगता है। संग्राम में इसका तेज बहुत तीव्र होता है। ३

शत्रु के विरुद्ध भेजी हुई सेना की तरह अथवा किसी अस्त्रकुशल वीर के द्वारा वेग[4] से फेंके हुए दीप्तिमान् बाण की तरह यह भय उत्पन्न करता है। यह मूर्तिमान यम ही है। फिर चाहे इसने जन्म धारण किया हो अथवा चाहे उसका मन जन्म लेने की तैयारी में हो। यह कुमारिकों का वल्लभ और विवाहित स्त्रियों का नाथ है। ४

जिस प्रकार धेनु अपने गृह की ओर गमन[5] करती है उसी प्रकार हम, अपनी स्थावर और जंगम सम्पत्ति के साथ, उस प्रज्वलित अग्नि की ओर जो तुम्हें प्रिय है, गमन करते हैं। जल के प्रवाहों को, ढालू मार्ग से, किसी महानदी की तरह, इसी ने बहाया। धेनु भी ऊपर, सूर्यकी[5] ओर, देखकर रांभने लगी। ५ (१०)

---

१ चित्रः रयिः न, संदृक् सूरः न, प्राणः आयुः न, नित्यः सूनुः न, भूर्णिः तक्वा न शुचिः विभावा धेनुः पयो न वनाः सिषक्ति.

२ रण्वः ओकः न, पक्वः यवः न, जनानां जेता क्षेमं दाधार. स्तुभ्वा ऋषिः न, प्रीतः वाजी न, विक्षु प्रशस्तः वयः दधाति.

३ नित्यः क्रतुः न योनौ जायेव दुरोकशोचिः विश्वस्मै अरं. समत्सु त्वेषः यत् चित्रः अभ्राट् विक्षु श्वेतः न रुक्मी रथः न.

४ सृष्टा सेनेव, त्वेषप्रतीका अस्तुः दिद्युत् न अमं दधाति. कनीनां जारः, जनीनां पतिः, जनि(त्वं) यमः, जातः यमः ह.

५ गावः अस्तं नक्षन्ते न, वयं चराथा वसत्या. वः (प्रियं) तं (नक्षामः). सिन्धुः न क्षोदः नीचीः प्र ऐनोत्, स्वः दृशीके गावः नवन्त.

॥ ६७ ॥ ऋषि–शक्तिपुत्र पराशर । देवता–अग्नि ॥

सूक्त. ६७

वन (दग्ध करके) विजय सम्पादन करनेवाला यह, मनुष्यजाति के कल्याणकर्ता मित्र राजा की तरह, जो उपासक सेवा से शिथिल[1] नहीं होता उसी सेवक को चाहता है जैसे मनुष्य का क्षेम उसे सुखदायक होता है अथवा जैसे बुद्धि का सामर्थ्य मनुष्य के लिए उपयोगी होता है उसी प्रकार सौख्यकारक होनेवाला यह अत्यन्त प्रज्ञाशील अग्नि हमारा द्रव्य देवों के पास ले जाकर उन्हें अर्पण करे। १

सम्पूर्ण वैभव अपने हाथ में रखनेवाले इस देव ने गुहा में (छिपकर) बैठ कर देवताओं को बड़े गड़बड़[2] में डाला। मन तल्लीन करके रची हुई प्रार्थना जब बुद्धिमान् (भक्त) जन (प्रेमसे) बैठे हुए गाया करते हैं उस समय उन्हें जगत् में इस देवता का ज्ञान होता है। २

जन्मरहित परमेश्वर की तरह इसने इस विस्तीर्ण पृथिवी का पोषण किया है, सत्यस्फुरित प्रार्थनाओं के योग से उसने द्युलोक को सम्हाल रखा है। हे अग्निदेव, आप विश्व के प्राण हैं। आप प्रत्येक गुहा में परिभ्रमण करते रहते हैं, (परन्तु) हमारे पशुओं के जितने प्यारे (चरने के) स्थान हों उनकी आप (अवश्य) रक्षा कीजिए। ३

गुहा में निवास करनेवाले इस अग्निदेव का ज्ञान प्राप्त करने की जिसको इच्छा है, सत्यरूपी अमृतकी धारा पान करनेके लिए जो उसके आसपास ताके बैठा है, और जो अग्नि के सत्यनियमों का परिपालन करके उसको उसके निवासस्थान से बाहर लाते हैं उनको उनको वह सम्पत्ति प्राप्त होने के लिए आशीर्वाद देता है। ४

जो अपने सामर्थ्य से लतासमुदाय में बढ़ता जाता है, जो उनका अपत्य ही है और जो अपनी जननियों में रहता है, जो प्रज्ञाशील है और जो विश्व का मानो प्राण ही है, वह अग्निदेव जनों के गृह में वास करता है। सुज्ञ लोगों ने उस गृह का माप ले कर उसे मानो उसका मन्दिर ही बना दिया है। ५ (११)

---

१ वनेषु जायुः, मर्तेषु मित्रः, राजेव अजुर्यं श्रुष्टिं वृणीते. क्षेमः न साधुः क्रतुः न भद्रः स्वाधीः होता हव्यवाट् भुवत्.

२ विश्वानि नृम्णा हस्ते दधानः गुहा निषीदन् देवान् अमे धात्. यत् हृदा तष्टान् मन्त्रान् अशंसन् (तदा) धियंधाः नरः ईं अत्र विदन्ति.

३ अजः न पृथिवीं क्षमां दाधार. सत्यैः मन्त्रेभिः द्यां तस्तम्भ. पश्वः प्रिया पदानि निपाहि. अग्ने विश्वायुः त्वं गुहा गुहं गाः.

४ गुहा भवन्तं ईं यः चिकेत, सः ऋतस्य धारां आ ससाद, ये ऋता सपन्तः विचृतन्ति अस्मै वसूनि प्रवनाच इत् आह.

५ महिला यः वीरुत्सु विरोधत्, उत प्रजाः, उत प्रसूषु अन्तः, चित्तिः[1] विश्वायुः अपां दमे. धीराः संमाय सद्मेव चक्रुः

॥ ६८ ॥ ऋषि—शक्तिपुत्र पराशर । देवता—अग्नि ॥

सूक्त ६८

सब वस्तुओं को परिपक्व[1] करते हुए यह चपल अग्नि द्युलोकों पर आरूढ़ हुआ है। स्थावर[2] से लेकर जंगम[3] तक सब वस्तुओं को—(किंबहुना रात्रियों को भी) उसने सुप्रकाशित किया है। यह देवता इन सब वस्तुओं को अकेले ही घेर कर अपने श्रेष्ठ गुण के कारण देवों में प्रमुख देव हो बैठा है। १

जिस समय, हे देव, आपने जीव बनकर शुष्क काष्ठ से जन्म लिया उस समय आपके बुद्धिविषयक सामर्थ्य की उन सब ने प्रशंसा की। अपने अपने मार्गों से, आपके अविनाशी सत्यनियमों का जब उन्होंने परिपालन किया उस समय उन सब को 'देव' संज्ञा प्राप्त हुई। २

सत्यनियमों का यह प्रेरक है, सत्यनियमों का यह कल्पक है, सम्पूर्ण विश्व का यह प्राण है। इसी के कारण सब लोग अपने अपने कर्मों में प्रवृत्त होते हैं। आप ज्ञानवान हैं, अतएव, आपको जो हव्य अर्पण करे, अथवा जो आपकी सेवा करे, उसे आप सम्पत्ति दीजिए। ३

मनु की सन्तानों के समुदाय में यह 'हविर्दाता' बनकर बैठा है। वास्तव में सम्पूर्ण सम्पत्ति का स्वामी यही है। जब स्त्री पुरुषोंको परस्पर यह इच्छा हुई कि हमारे शरीर में वीर्य हो तब वे अपनी शक्तियों के योग से सन्तति-लाभ कर सके और उन पर मनोभंग[1] होने का प्रसंग नहीं आया। ४

जिन्होंने तत्काल इसकी आज्ञाएं सुनी हैं उन्हें इसका सामर्थ्य ऐसे ही प्राप्त हुआ है जैसे पुत्र को पिता का अधिकार प्राप्त होता है। सब के पोषण[1] का प्रबन्ध करनेवाले इस अग्नि ने इस प्रकार अपनी सम्पत्ति खोल रक्खी है जैसे कोई अपने घर के द्वार खुले रख दे। सब के गृहस्वास्थ्य[2] में आनन्द माननेवाले इस अग्नि ने नक्षत्रों के योग से स्वर्ग को सुशोभित किया है। ५ (१२)

---

१ भुरण्युः श्रीणन्[1] दिवः उप स्थात्, स्थातुः[2] चरथं[3] अक्तून् वि ऊर्णोत्. विश्वेषां एषां एकः परि भूः महित्वा देवानां देवः भुवत्.

२ देव, यत् जीवः शुष्कात् अनिष्ठाः ते विश्वे क्रतुं जुषन्त इत् आत्. एवैः अमृत ऋतं सपन्त. विश्वे देवत्वं नाम भजन्त.

३ ऋतस्य प्रेषाः ऋतस्य धीतिः. विश्वायुः. विश्वे अपांसि चक्रुः. तुभ्यं यः दाशात्, यः वा ते शिक्षात्, तस्मै चिकित्वान् रयिं दयस्व.

४ मनोः अपत्ये निषत्तः होता सः चित् आसां रयीणां पतिः नु. मिथः तनूषु रेतः इच्छन्त, अमूराः[1] स्वैः दक्षैः संजानत.

५ पुत्रासः ये अस्य शासं श्रोषन्, क्रतुं, पितुः पुत्राः न, जुषन्त. पुरुक्षुः[1] दमूनाः[2] दुरः—राधः—वि और्णोत् स्तृभिः नाकं पिपेश.

॥ ६९ ॥ ऋषि–शक्तिपुत्र पराशर । देवता–अग्नि ॥

सूक्त ६९.

उषा के वल्लभ की तरह यह उज्ज्वल और देदीप्यमान्[1] है। और स्वर्ग की ज्योति की तरह द्युलोक और पृथिवी का आक्रमण करता है । जन्म लेतेही इसने अपने सामर्थ्य से सम्पूर्ण जगत् घेर लिया और पुत्र होते हुए भी वह देवताओं का पिता हुआ । १

उस अग्नि में कर्तृत्वशक्ति बहुत है। यद्यपि इसका ज्ञान विशाल है, पर इसमें गर्व की छूत नहीं। धनुओं के दुग्ध की तरह पेय[2] पदार्थों का यह मूर्तिमन्त माधुर्य[3] ही है । यद्यपि इसका ताप दुर्धर[4] है, तथापि, प्रत्यक्ष सौख्य की तरह, यह लोगों को आनन्द देनेवाला है; जब यह घर[5] के मध्य भाग में स्थित होता है, तब अत्यन्त रमणीय जान पड़ता है। २

पुत्र का जन्म होने पर जैसे वह घर में पिता को रमणीय देख पड़ता है वैसे ही यह भी घर में रमणीय मालूम होता है । प्यारे घोड़े की तरह यह कठिन प्रसंग से, निर्वाह करा लेता है। मनुष्यों से सहवास करने में जिस देव–समुदाय को आनन्द मालूम होता है उन्हें जब जब मैं (अपने यज्ञ में) बुलाता हूं तब तब यही उन सब का देवत्व धारण कर के आता है। ३

जो कि इन सब मानवों की ओर आपने (आज तक) उत्तम ध्यान[6] दिया है, इस लिए आपकी यह आज्ञा भंग करने का साहस कोई नहीं कर सकता । सचमुच यह आपही का पराक्रम है कि अपने समबल देवताओं की सहायता से आपने शत्रुओं का वध किया और वीर पुरुषों को हाथ में लेकर आपने दुर्भापणी निन्दकों[7] का सत्यानाश कर दिया । ४

उषा के वल्लभ के समान देदीप्यमान् और तेजस्वी रहनेवाले इस अग्नि की कान्ति से सभी परिचित हैं । स्वयं अपनी ही प्रेरणा से रथ खींच ले जानेवाले अग्नि के अश्व ने द्वार खोल दिये और सूर्य दर्शन होते ही आनन्द का शब्द किया । ५ (१३)

---

१ उषः जारः न शुक्रः शुशुक्वान्[1] दिवः ज्योतिः न समीची पप्रा. प्रजातः क्रत्वा परिबभूथ. पुत्रः सन् देवानां पिता भुवः

२ वेधाः विजानन् अग्निः अदृप्तः. गोनां ऊधः न पितूनां[2] स्वाद्म[3]. आहूर्य[4]; सन् जने शेवः न. दुरोणे[5] मध्ये निषत्त. रण्वः.

३ पुत्रः जातः न दुरोणे रण्वः प्रीतः वाजी न विशः वितारीत्. यत् नृभिः सनीळाः विशः अह्वे अग्नि विश्वानि देवत्वा अश्याः.

४ यत् एभ्यः नृभ्यः श्रुष्टिं[6] चकर्थ एता ते व्रता नकिः मिनन्ति. तत् तु ते दंसः यत् समानैः (रपांसि) अहन्, यत् नृभिः युक्तः रपांसि[7] विवेः.

५ उषः जारः न विभावा उस्रः संज्ञातरूपः अस्मै चिकेतत्. त्मना वहन्तः दुरः विऋण्वन् स्वर्दृशीके विश्वे नवन्त. ६

॥ ७० ॥ ऋषि–शक्तिपुत्र पराशर । देवता–अग्नि ॥

सूक्त ७०.

अग्नि की उपासना करनेवाले हम हृदय से इसकी स्तुति करके भरपूर वैभव प्राप्त होने के लिए याचना करें; क्योंकि यह अत्यन्त तेजःपुंज अग्नि सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त कर डालनेवाला है। देवलोक के नियमों का इसको पूर्ण ज्ञान है और यह, उत्तम रीति से इस बातको जानता है कि मनुष्यजाति के प्राणी कैसे जन्म पाते हैं। १

उदकों का जो गर्भ है, जो चर और अचर सृष्टि का भी गर्भ है उस अग्नि के सामने–फिर चाहे वह पर्वतों के अन्तर्भाग का हो अथवा गृहों के अन्तर्भाग का हो–मानवजाति का प्रत्येक मनुष्य, तथा अमरों का समुदाय भी प्रसन्नतापूर्वक नम्र होता है। २

जो इस अग्नि को, उत्तम स्तोत्रों सहित, जब तक यह तृप्त नहीं होता तब तक, हवि अर्पण करता है उसके लिए यह रात्रिका स्वामी अग्नि धनका भण्डार देता है। देवताओं के जन्म और मर्त्यजनों का ज्ञान रखनेवाले हे ज्ञानशील अग्निदेव, आप इन सब भूप्रदेशों की रक्षा कीजिए। ३

स्वर्ग में अधिष्ठित होनेवाला यह हविर्दाता अग्नि जब सत्य से [illegible] पराक्रम करता था तब हमारी ओर से इसकी आराधना हुई है। यह सत्य में परिवेष्टित है। भिन्न भिन्न स्वरूप की अनेक रात्रियों ने तथा स्थावर जंगम सम्पूर्ण पदार्थों ने इसका वर्धन किया है। ४

आप हमारी धेनुओं की प्रशंसा कराते हैं। जो वन हमारे अधिकार में हैं उनकी सब प्रशंसा करते हैं। हमारे कुलके सब मनुष्य आपको स्वर्गीय बलि अर्पण करते हैं; और वृद्ध पिता की सम्पत्ति जिस प्रकार उसके पुत्र को प्राप्त होती है उसी प्रकार आपकी ओर से उन्हें सम्पत्ति मिली है। ५

वह कार्यसाधु[6] मनुष्य की तरह अपना स्वार्थ देखनेवाला, अस्त्रकुशल मनुष्य की तरह शूर, बदला लेनेवाले क्रूर मनुष्य की तरह भयप्रद और संग्राम में [illegible] करनेवाला है। ६ (१४)

---

१ मनीषा अर्यः पूर्वीः वनेम दैव्यानि व्रता आ चिकित्वान् मानुषस्य जनस्य जन्म (चिकित्वान्) सुशोकः अग्निः विश्वानि अश्याः

२ यः अपां गर्भः, वनानां गर्भः, स्थातां च गर्भः, चरथां गर्भः अस्मै अद्रौ चित् दुरोणे अन्तः विशां विश्वः न अमृतः स्वाधीः.

३ यः सूक्तैः अस्मै अरं दाशत् स हि क्षपावान् अग्निः रयीणां. चिकित्वः देवानां जन्म मर्तान् च विद्वान् एता भूम नि पाहि.

४ यं विरूपाः पूर्वीः क्षपः स्थातुः रथं च ऋतप्रवीतं च वर्धान् (सः) होता, स्वः निषत्तः, विश्वानि सत्या अपांसि कृण्वन् अराधि.

५ गोषु वनेषु प्रशस्तिं धिषे नः विश्वे स्वः बलिं भरन्त. नरः त्वा पुरुत्रा विसपर्यन्, जिव्रेः पितुः न वेदः विभरन्त.

६ समत्सु त्वेषः, साधुः न गृध्नुः, अस्तेव शूरः, यातेव भीमः

॥ ७१ ॥ ऋषि–शक्तिपुत्र पराशर । देवता–अग्नि ॥

सूक्त ७१.

जिस प्रकार प्रेमी[1] स्त्रियां अपने प्रेमी पति को प्रसन्न करती हैं उसी प्रकार एक ही जगह रहनेवाली इन स्त्रियों ने इसको प्रसन्न किया है। जैसे उषा को देखकर गौओंको आनन्द होता है उसी प्रकार आश्चर्यकारक तेज के योग से प्रकाशमान् होनेवाले शुभ्रवर्ण दिवस और कृष्णवर्ण रात्रि को देख कर इसने आनन्द से उनका स्वागत किया है। १

हमारे पितरों ने सिर्फ स्तोत्र सामर्थ्यों से अत्यन्त दुर्भेद्य दुर्ग भी तोड़ डाले; उसी प्रकार अंगिरसों ने स्तोत्रघोषों से पर्वतोंका भंग किया। उन्होंनें हमारे लिए, विस्तीर्ण द्युलोक की ओर जाने का, मार्ग[2] तैयार किया और दिवस, स्वर्ग, दीप्ति और प्रकाश को प्राप्त कर लिया। २

प्रेमपूर्वक उसकी उपासना करनेवाले उसके किंकरों ने उसके सत्यनियमों का अवलम्बन किया और उसकी प्रार्थनाएं[3] सफल कर लीं। देवसमुदाय को सन्तुष्ट करनेवाले कर्मव्यापृत परन्तु निर्लोभ अग्नि की ओर गमन करते रहते हैं। ३

जब से इसे सर्वव्यापी मातरिश्वा ने मंथन कर के उत्पन्न किया तब से यह देदीप्यमान्[4] अग्नि प्रत्येक घर में प्रादुर्भूत होने लगा। किसी बलवान् राजा का कार्य अपने ऊपर लेनेवाले की तरह, इस भृगु के समान देख पड़नेवाले अग्नि देव ने, प्रत्येक स्थल में उपस्थित रहकर, सब का प्रतिनिधित्व स्वीकार किया है। ४

यह अग्निदेव चित्रविचित्र कान्ति से युक्त और प्रज्ञावान् है। इसने अपने पिता श्रेष्ठ द्युलोक की लालसा पूर्ण की और फिर वह नीचे चला गया। (तुरन्त ही) इस पर अस्त्रवेत्ता पराक्रमी पुरुष ने क्रोध में आकर प्रज्वलित बाण चलाया और उस दिव्य द्युलोक ने अपनी कन्या के लिए प्रकाश उत्पन्न किया। ५ (१५)

---

१ उशतीः[1] उशन्तं नित्यं पतिं न सनीळाः जनयः उप प्र जिन्वन्, गावः उषसं न स्वसारः श्यावीं चित्र उच्छन्तीं अरुषीं अजुषन्.

२ पितरः उक्थैः वीळु चित् दृळ्हा न अंगिरसः रवेण अद्रिं रुजन्, अस्मे बृहतः दिवः अस्मे गातुं[2] चक्रुः, अहः, स्वः, केतुं, उस्राः विविदुः.

३ अर्यः दिधिष्वः विभृत्राः ऋतं दधन् अस्य धीतिं[3] धनयन् इत् आत्, देवान् जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः अतृष्यन्तीः अपसः अच्छ यन्ति.

४ यत् विभृतः मातरिश्वा ईं मथीत् श्येनः[4] गृहेगृहे जेन्यः भूत्, सचा सन् भृगवाणः ईं महीयसे राज्ञे न दूत्यं आ विवाय.

५ यत् महे पित्रे दिवे ईं रसं कः चिकित्वान् पृशन्यः अव त्सरत्, अस्ता धृषता अस्मै दिद्युं सृजत्, देवः स्वायां दुहितरि त्विषिं धात्.

जो अपने घर में आपको प्रसन्न करने के लिए आपकी ज्वाला प्रज्वलित करता है, और भक्तों की उपासना को प्यार[६] से स्वीकार करनेवाले आपको जो प्रतिदिन नमन करता है उसकी, हे द्विगुणित कान्ति से विभूषित रहनेवाले अग्निदेव, आप आयु बढ़ाइये । उसका आप पक्ष करते हैं, उसे वैभव प्राप्त हो और वह रथ में बैठे । ६

जैसे सप्त महानदी[७] समुद्र में जा मिलती हैं वैसे ही संसार के सब हव्य अग्नि ही के पास जाते हैं । हमारे बिलकुल निकट सम्बन्धियों को भी इसका ज्ञान नहीं कि हमारी आयु कितनी है; परन्तु आप इतने प्रज्ञावान् हैं कि देवताओं के मन में जो विचार आते रहते हैं वे भी आपको विदित होते रहते हैं । ७

विश्वमें सम्पत्ति और सुख प्राप्त करने के लिये जब वीर्य सब लोगों का स्वामी जो अग्नि उसके शरीरमें संचार करता है तब सब लोग देखते हैं । वीर्य [illegible] अग्नि [illegible], विचारी और सामर्थ्यवान् प्रजा[८] उत्पन्न करता है और वह उनको काम करने में प्रेरित करता है । ८

मन के वेगसे आगे दौड़नेवाला सूर्य अकेला ही (विश्वके) सब सम्पत्तिपर अपना प्रभाव जमाता है राजाधिराज मित्र और वरुण–जिनके हाथ बड़े सुन्दर हैं–धेनुओंमें जो अमृत भरा हुआ है उसकी रक्षा करते हैं । ६

हे अग्नि देव, तुम बड़े ज्ञानी हो; इस लिये हमारे पुरखोंके साथ तुमारा जो पुराणा सम्बन्ध है उसको मत तोड़ो[९] । काले। मेघके तरह बुढ़ापा सौन्दर्य का नाश[१०] करता है; इस-लिये उसके पहले[११] तुमही हमारे तरफ आ जाव । १० (१६)

---

६ यः तुभ्यं स्वे दमे आ विभाति वा उशतः[१] अनु द्यून् नमः दाशात्, अग्ने, द्विबर्हः [illegible] वय. वर्धः यं जुनासि राया सरथ यासन्,

७ सप्त यह्वीः स्रवतः समुद्रं न विश्वाः पृक्षः अग्निं अभि सचन्ते. नः वयः जामिभिः निचिकिते, चिकित्वान् देवेषु प्रमतिं विदाः.

८ यत् ईं नृपतिं तेजः आ आनट्, शुचि रेतः निषिक्तं. द्यौः अभीके. अग्निः अनवद्यं, युवानं, स्वाध्यं शर्धं जनयत् सूदयत् च

९ मनः न यः अध्वनः सद्यः एति, सूरः एकः सत्रा वस्वः ईशे. राजाना सुपाणी मित्रावरुणा गोषु प्रियं अमृतं रक्षमाणा,

१० अग्ने विदुः कविः सन् अग्ने नः पित्र्याणि सख्या मा प्रमर्षिष्ठाः[९]. अभिमः नभः न रूपं जरिमा मिनाति.[१०] तस्याः अभिशस्तेः[११] अधि इहि.

सूक्त ७२.

॥ ७२ ॥ ऋषि–शक्तिपुत्र पराशर । देवता–अग्नि ॥

अनेक प्रकारसे लाभकरना[1] अग्निके हाथमें होनेके कारण कई कवीयोंने उसकी स्तुति की है; अग्निने शाश्वत् सम्पत्ति उत्पन्न की है; और स्वयं वैभवका स्वामी बन गया है। १

आस–पास बहुत कुछ ढूंढनेपर भी हमारा बालक हमको नहीं मिलता? यह सब ज्ञानी देवोंको मालूम हुआ। उनके पैरके[2] पीछे पीछे जानेपर सब ज्ञानी देव थक गये और उनकी स्तुति की। तब अग्निने उनपर कृपा की और वे (सब ज्ञानी देव) अग्निके उच्च स्थान पर पहुँचे। २

हे अग्निदेव, आप देदिप्यमान हैं। जिस समय उन देदिप्यमान पुरुषोंने आपकी तीन वर्षतक घृतसे पूजा की तब वे यज्ञमें पूजनीय पद धारण करने योग्य बने; और महत्कार्य करने की स्फूर्ति[3] उन में उत्पन्न हुई। ३

जब विशाल द्युलोक और भूलोक में वे यज्ञार्ह पुरुष ढूंढने लगे तब उनको रुद्र के सामर्थ्यका लाभ हुआ। जब मर्त्य मनुष्योंको यह बात विदित हुई तब श्रेष्ठ पद पर चढे हुए अग्निको उच्च[4] स्थान पर बिठलाकर वे अग्नि को जानने लगे। ४

जब वे मर्त्य मनुष्य अग्निको जानने लगे तब वे उसके पास बैठे और अपनी स्त्रियों के साथ उसकी पूजा की। उन्होंने अग्निको नमस्कार किया। जैसे एक मित्र सोते हुए दूसरा, उसका सर्वांगसे रक्षा करनेके लिये जागता रहता है वैसे लगातार बहुत[5] परिश्रम करके और अग्नि की पूजा कर के इन मर्त्य लोगों ने अमरत्व प्राप्त किया। ५ (१७)

---

१ नर्या पुरूणि हस्ते दधानः शश्वतः वेधसः काव्या निकः विश्वा अमृतानि सत्रा चक्राणः अग्निः रयीणां रयिपतिः भुवत्.

२ अमूराः विश्वे अमृताः अस्मे परिषन्तं वत्सं इच्छन्तः, न विन्दन्, पदज्याः श्रमयुवः धियंधाः अग्नेः परमे पदे चारु तस्थुः

३ अग्ने यत् शुचयः तिस्रः शरदः शुचिं त्वां घृतेन सपर्यान् यज्ञियानि नामानि दधिरे सुजाताः तन्वः असूदयन्त.

४ बृहती रोदसी आ वेविदानाः यज्ञियासः रुद्रिया प्रजभ्रिरे, मर्तः विदत्; परमे पदे तस्थिवांसं अग्निं नेमधिता चिकित्वान्,

५ संजानानाः अभिज्ञु उपसीदन्, पत्नीवन्तः; नमस्यं नमस्यन्. सख्युः निमिषि सखा रक्षमाणाः रिरिक्वांसः स्वाः तन्वः कृण्वत.

हे अग्निदेव, जो इक्कीस गुह्य पद (यज्ञ) आपके शरीरमें रखे हुए हैं उन्हीं के द्वारा यज्ञाई पुरुषों को ज्ञान हुआ। उन इक्कीस पदके कारण ही वे एकताके[६] भाव से रहते हैं, और अपने अमरत्वकी रक्षा करते हैं। हे अग्निदेव, हमारे पशु, बालबच्चे स्थिर और अस्थिर धनकी रक्षा कीजिये। ६

हे अग्निदेव, सब मनुष्योंके विचारों[७] को आप जानते हैं। उनके प्राणों की रक्षा करनेका प्रबन्ध आपने हमेशाके लिये किया है। देवोंके जाने आनेके गुप्त मार्ग भी आप जानते हैं। इस लिये आप उनको हवि पहुँचानेवाले दूत बन गये हैं। आप आलसी नहीं हैं। ७

तुम्हारा ध्यान करनेवाले और सत्य-नियम पालनेवाले पुरुषोंको द्युलोकमें जो सात नदीयाँ और संपत्ति है उन सबका ज्ञान हुआ। जिस जगह गोओंको[८] बन्द कर रखा था वह गुप्त स्थान भी सरमाको मालूम हुआ। इसीके कारण मानव जाति आनन्दमें रहती है। ८

अपनी भावी प्रजाको सुख प्राप्त करानेके लिये जो महान् पुरुष नीतिमार्गका अवलम्बन करते हैं उनको पृथ्वी माता उदारतासे सहायता देती है। अपने मातारूपी पशुओंकी[९] (तृषा बुझानेके लिये) वृद्धि (रक्षा) करनेके लिये अदिति माता आकाशमें विस्तृत रूपसे प्रकाशित होने लगी। ९

अमर देवोंने जिस समय गुलोकमें दो आंखें उत्पन्न की उस समय उन्होंने अग्निमें सुन्दर तेज उत्पन्न किया और अग्निसे तेजोरूपी नदियां बहने लगीं; जब तेजोरूपी नदियां बहने लगीं तब सब मानव जातिको उनका ज्ञान हुआ १० (१८)

---

६ यत् त्रिः सप्त गुह्यानि पदा त्वे इत् निहिता यज्ञियासः अविन्दन्, तेभिः सजोषाः[६] अमृतं रक्षन्ते. पशून् च स्थातॄन् चरथं च पाहि.

७ अग्ने, क्षितीनां वयुनानि[७] विद्वान् जीवसे शुरुधः आनुषक् विधाः देवयानान् अध्वनः अन्तर्विद्वान् हविर्वाट् अतन्द्रः दूतः अभवः

८ स्वाध्यः ऋतज्ञाः दिवः सप्त यह्वीः रायः दुरः आभि अजानन्, येन मानुषी विट् के भोजते नु स्वं ऊर्वं गव्यं[८] सरमा विदत्.

९ अमृतत्वाय गातुं इच्छामासः ये विश्वा स्वपत्यानि आ तस्थुः महद्भिः पृथिवी महा वितस्थे, पुत्रैः, वेः[९] धायसे, अदितिः माता.

१० यत् अमृताः दिवः अक्षी अकृण्वन् अस्मिन् चारुं श्रियं अधि नि दधुः, अध सृष्टाः न सिन्धवः क्षरन्ति. अग्ने, प्रजानीः अरुषीः अजानन्,

सूक्त ७३.

॥ ७३ ॥ ऋषि–शक्तिपुत्र पराशर । देवता–अग्नि ॥

पितासे[1] मिली हुई सम्पत्तिकी तरह आयुको बढानेवाले, ज्ञानी मनुष्य के उपदेश की तरह सन्मार्ग को दिखलानेवाले, सन्मान किये हुए अतिथी की तरह संतुष्ट होनेवाले, अग्नि देवने भक्तोंकी हवि देवोंकी ओर पहुँचानेका काम करके उपासकों का घर सम्पत्ति से भर दिया। १

जो सविता देवकी तरह सत्यबुद्धि[2] देनेवाला है, जो अपने सामर्थ्य से सब पापोंका नाश करता है, जिसकी सब लोक स्तुति करते हैं जैसे निज के स्वरूपमें[3] कभी हेर फेर नहीं होता निज के प्राणोंकी तरह जो सबको सुखदायक मालूम होता है, वह अग्निदेव सबको प्यारा हुआ है। २

अग्नि, किसी देवकी तरह विश्वका[4] पालन करता है। मित्रकी तरह अग्नि सब मनुष्यों पर उपकार करता है। युद्धमें पराक्रम करनेवाले शूर पुरुषों की तरह सब लोग अग्निका सन्मान करते हैं, सुख देनेवाले नृपतिकी तरह और साध्वी स्त्री की तरह अग्नि पृथ्वीपर विराजमान होता है। ३

हे अग्निदेव, हरएक घरमें सब लोग आपको प्रज्वलित करते हैं। और इस सनातन विश्वमें सब लोग आपकी सेवा करते हैं। सब मनुष्योंने आपको बहुत धन (घी) अर्पण किया है; इसी कारण [illegible] और सम्पत्ति [illegible] लाइये। आप सब विश्वका प्राण हैं। ४

हे अग्निदेव, [illegible] उपासना करता है उसको पेटभर अन्न मिलनाही चाहिये। जो [illegible] आपको [illegible] अर्पण करता है उस स्तोताकी आयुकी पूर्ती होनी चाहिये [illegible] दान करने के लिये यज्ञ में देवों के लिये जो हविर्भाग [illegible] उनको [illegible] लाभ होता है। ५ (१६)

---

१ यः पितृवित्तं रयिः न वयोधाः, सुप्रकेतुः शासुः न सुप्रणीतिः, स्योनशीः अतिथिः न प्रीणानः होतेव सद्म विधतः।

२ देवः सविता न सत्यमन्मा, क्रत्वा विश्वा वृजनानि निपाति, पुरुप्रशस्तः, अमतिः न सत्यः, आत्मेव शेवः दिधिषाय्यः भूत्.

३ यः देवः न पृथिवीं विश्वधायाः, हितमित्रः राजा न, पुरः सदः शर्मसदः वीराः न, अनवद्या पतिजुष्टेव नारी उपक्षेति.

४ अग्ने, दमे नित्यं इद्धं तं त्वा ध्रुवासु क्षितिषु नरः आ सचन्त. अस्मिन् अधि भूरि द्युम्नं निदधुः. विश्वायुः रयीणां धरुणः भव

५ अग्ने, मघवानः पृक्षः वि अश्युः, ददतः सूरयः विश्वं आयुः अश्नवत्. देवेषु भागं दधानाः अर्यः वाजेषु वाजं सनेम.

सत्य और नीतिका अभिमान[६] रखनेवाले संसारके सब मनुष्यों को स्वर्गके गौओंने उत्सुकता से यथेष्ट दूध पिलाया। आपकी कृपाकी प्रार्थना करनेवाली महा नदियां भी दूरके प्रदेशों से पर्वतके पास आयी हैं। ६

७ हे अग्निदेव, पवित्र देवोंने भी आपकी कृपाकी प्रार्थना की, और स्वर्ग लोकमें कीर्ति प्राप्त की। उन्होंने रात्रि और उषा इन दोनों अलग अलग करके (देवताओं को) उत्पन्न किया और इस तरह उन्होंने काला और लाल रंगोंको एकत्रित किया। ७

हे अग्निदेव, आपने सब मानव जातिके लिये धन-धान्य उत्पन्न करनेका सबन्ध[७] किया है। इस कारण हम भी आपको हवि अर्पण करते हैं। आकाशको व्याप्त करके द्युलोक और पृथ्वीलोकको भी आपने व्याप्त किया है। इस तरह सब विश्वको आप घिरके हुए रहते हैं। ८

हे अग्निदेव, यदि आपकी कृपा हमारे हो और आप हमारे रक्षा करनेवाले हो तो, हमारे और शत्रुओंके अश्वोंका पराभव करेंगे हमारे वीर पुरुष शत्रुओंके वीरोंका पराभव करेंगे। हमारे कुलमें उत्पन्न होनेवाले विद्वान पुरुषों को हमारे पुरखोंका धन प्राप्त होवे और उनको सौ[८] वर्षोंकी आयु प्राप्त होवे। ९

हे वीर्यशाली अग्निदेव, ये हमारे स्तोत्ररूपी गीत आपके हृदयको आनन्द देवे। देवोंकी कृपासे हमें कीर्ति प्राप्त होवे। आप सब वैभवको अपने स्वाधीन रखनेवाले हैं। हम आपके नियमों के अनुसार हमेशा चल सकें। १० (२०)

---

६ ऋतस्य वावशानाः दुधुक्षवः भवन्त स्वसृभीः पीपयन्त. सुमतिं भिक्षमाणाः सिन्धवः परावतः अद्रिं समया सस्रुः

७ अग्ने, यज्ञियासः ते सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवः दधिरे. विरूपे नक्ता उषसा च चक्रुः, कृष्णं च अरुणं च वर्णं संधुः.

८ अग्ने, यान् मर्तान् राये सुषूदः वयं च ते मघवानः स्याम रोदसी अन्तरिक्षं आपप्रिवान् छायेव विश्वं भुवनं सिसक्षि.

९ अग्ने, त्वोता अर्वद्भिः अर्वतः, नृभिः नॄन्, वीरैः वीरान् वनुयाम. पितृवित्तस्य रायः ईशानासः नः सूरयः शतहिमाः विभजन्तु:

१० वेधः अग्ने, एता उक्थानि ते मनसे हृदे च जुष्टानि सन्तु देवभक्तं श्रवः अधिदधानाः रायः सुधुरः ते वयं शकेम.

सूक्त ७४.

अनुवाक १३.

॥ ७४ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-अग्नि ॥

दूर[1] होनेपर भी जो हमारी पुकार सुनता है उस अग्निके लिये हम एक स्तोत्र गाते हैं । १

जब मनुष्य आपसमें लड़ाई करते हैं तब यह पुराणा अग्निदेव अपने भक्तों के धन और घरकी रक्षा करता है । २

अब सचमुच ही यह बात मालूम होती है कि हरएक युद्धमें अग्निदेव धनकी लूट ले आये और वृत्र का वध करने के लिये ही आपने जन्म लिया । ३

हे अग्निदेव, जिसके घरमें आप देवोंका प्रतिनिधी बनकर रहते हैं, जिसके यज्ञमें आपको हवि अर्पण किया जाता है और जिसके यज्ञका प्रबन्ध आपकी ओरसे अच्छी[4] तरहसे किया जाता है; ४

उसी को लोग, हे सामर्थ्यसे उत्पन्न हुए अग्निदेव, अच्छा हवि अर्पण करनेवाला, अच्छा यज्ञ करनेवाला और हे तेजस्वी कहते हैं । ५ (२१)

हे आनन्द[6] देनेवाले अग्निदेव, हवियोंका आहार लेनेके लिये और स्तुतियोंका स्वीकार करनेके लिये आप देवोंको यह स्थानमें ले आते हैं । ६

---

१ आरे च अस्मे शृण्वते अग्नये अध्वरं उपप्रयन्त मन्त्रं वोचेम.

२ स्नीहितीषु कृष्टिषु संजग्मानासु, पूर्व्यः यः दाशुषे गयं अरक्षत्.

३ उत, रणेरणे धनंजयः अग्निः वृत्रहा अजनि इति जन्तवः ब्रुवन्तु.

४ यस्य क्षये दूतः असि, हव्यानि वीतये वेषि, अध्वरं दस्मत् कृणोषि

५ सहसः यहो, अंगिरः, तं इत् जनाः सुहव्यं, सुदेवं, सुबर्हिषं आहुः

६ सुश्चन्द्र, हव्या वीतये प्रशस्तये तान् देवान् च इह उप आ वहासि

हे अग्निदेव, जब आप प्रतिनिधि बनकर कार्य करनेके लिये चले जाते हैं तब आपके रथ और अश्वोंके चलनेका[७] आवाज सुनाई नहीं देता। ७

हे अग्निदेव जब कोई उपासक आपको हवि अर्पण करता है तब आप उसकी रक्षा करते हैं; जब उसकी बुरी[८] हालत नष्ट होती हैं तब वह बलवान् और निडर हो जाता है और उसकी उन्नति होती है। ८

हे अग्निदेव, देवोंको हवि अर्पण करनेवालों को आप तेजस्वी और सामर्थ्यवान् बनाते हैं। ९ (२२)

सूक्त ७५.

॥ ७५ ॥ ऋषि–राहूगणपुत्र गोतम । देवता–अग्नि ॥

हे अग्निदेव, जब आप अपने लिये मुखमें जो आहुतियें[१] डालते हैं तब आप मेरे इस स्तोत्रका स्वीकार कीजिये। १

हे अग्निदेव, हे अंगीरस; हे सामर्थ्यवान् देव, आपको जो स्तोत्र प्रिय है वही हम गाते हैं। २

---

७ अग्ने, यत् दूत्यं यासि, रथस्य अश्व्यः योः[७] उपब्दिः कत् चन न शृण्वे.

८ अग्ने त्वोतः दाश्वान् वाजी अह्रयः[८] पूर्वस्मात् अपरः अभि प्र अस्थात्.

९ उत अग्ने देव, देवेभ्यः दाशुषे द्युमत् बृहत् सुवीर्यं विवाससि.

१ आसनि[१] हव्या जुह्वानः देवप्सरस्तमं सप्रथस्तमं वचः जुषस्व.

२ अथ, अंगिरस्तम वेधस्तम अग्ने ते प्रिय ते प्रियं सानसि[२] ब्रह्म वोचेम.

हे अग्निदेव, आपका कौन सगा है, आपको यज्ञ कौन अर्पण[3] करता है, सचमुच आप कौन है, और आप किसके पास रहना चाहते है? । ३

हे अग्निदेव, आप सबके नातेदार[4] है; आप हमारे मित्र है; और जो आपपर प्रेम करता है उसके आप प्यारे मित्र है । ४

मित्र और वरुणको हमारा यज्ञ आप पहुँचाहिये । हमारे तरफसे अपने सत्य नियमके अनुसार देवोंको हमारी पूजा अर्पण कीजिये । हे अग्निदेव, आप हमारा यज्ञ अपने घर ले जाते हैं । ५ (२३)

सूक्त ७६.

॥ ७६ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-अग्नि ॥

हे अग्निदेव, आपको कौनसा स्तोत्र प्यारा[1] है जिसके गाने से आपको आनन्द होगा? कौनसी स्तुति आप चाहते हैं जिससे आप संतुष्ट होंगे? आपको यज्ञ अर्पण करके किसने यज्ञ प्राप्त किया? और हम आपको किस तरहसे हवि अर्पण करे? १

हे अग्निदेव, आप आईये; हमारा हविर्दाता बनकर आप यहां विराजमान् हूजिये । आप हमारे नेता हैं । आपको कोई भी किसी तरह नहीं सता[2] सकता है । द्युलोक और पृथ्वीलोक-जिनसे सब विश्व[3] व्याप्त है-आपकी रक्षा करे । सब देवोंको हमारा यज्ञ पहुँचाहिये जिससे उनकी बडी[4] कृपा हमारेपर बनी रहे । २

---

३ अग्ने, जनानां कः ते जामिः, कः दाश्वध्वरः,[3] कः ह, कस्मिन् श्रितः असि.

४ अग्ने, त्वं जनानां जामिः[4] प्रियः मित्रः असि, सखिभ्यः ईड्यः सखा.

५ अग्ने, नः मित्रावरुणा यज, देवान् वृहत् ऋतं यज. स्वं दमं यक्षि.

१ अग्ने, ते मनसः वराय का उपेतिः,[1] का मनीषा शन्तमा भुवत्? ः कः वा ते दक्षं परि आप? केन वा मनसा ते दाशेम?

२ अग्ने, आ इहि. होता इह निषीद. अदब्धः[1] नः पुरएता सु भव. विश्वमिन्वे[3] रोदसी त्वा [illegible] मह्[4] सौमनसाय देवान् यज.

हे अग्निदेव, आप सब राक्षसोंका नाश करनेवाले हैं। इस लिये हमारे यज्ञकी कीर्ति हमेशाके लिये बनी रहनेका प्रबन्ध[३] आप कीजिये। सोमरसको चावसे पीनेवाले इन्द्रको भी यहां उनके अश्व जोतकर, ले आईये। उनका सन्मान करनेके लिये हमने सब तैयारी कर रखी है। ३

हे अग्निदेव, हमारे कुटुंबके सब मनुष्य आपकी स्तुति करते हैं; और हम स्वयं आपकी सेवा करते हैं। इस लिये सब देवोंके साथ आप यहां पधारिये। हे यज्ञके देव, आप हवि पहुचानेका और यज्ञ को पवित्र करनेका[४] काम करते हैं। सम्पत्ति [illegible] करके दान करनेवाले हे अग्निदेव, आप जागृत रहिये। ४

जिस तरह आपने अपने स्तोतृजनोंके साथ विद्वान् मनुके हवियोंसे देवोंका यजन किया उसी तरह– हे सत्यस्वरूप अग्नि, आप आज यज्ञ [illegible] कीजिये जिससे उनको आनन्द हो। ५ (२४)

सूक्त ७७.

॥ ७७ ॥ ऋषि–रहूगणपुत्र गोतम। देवता अग्नि॥

उस अग्निको किस तरहसे हम हवि अर्पण करें। जो [illegible] देवोंको [illegible] है कौनसा स्तोत्र उस देदीप्यमान[१] अग्निको पसन्द होगा जिससे वे सन्तुष्ट हों। १

जिसका दर्शन होतेही हृदयको आनन्द होता है और [illegible] है और जो देवोंको हवि पहुँचाता है उसको नमस्कार करके बुलाते [illegible]। जब अग्नि, मनुष्यका प्रतिनिधि बनकर देवो के तरफ जाता है तब वह देवगणको [illegible] है और वे उनका यजन करते हैं। २

---

३ अग्ने, विश्वान् रक्षसः सु प्र धक्षि. यज्ञानां अभिशस्तिपावा भव. अथ [illegible] सोमपतिं आवह अस्मै सुदाव्ने आतिथ्यं चकृम.

४ प्रजावता वचसा आसा च वह्निः आहुवे देवैः च इह निषीद. यजत्र होत्रं उत पोत्रं वेषि. वसूनां जनितः प्रयन्तः बोधि.

५ कविः सन् यथा कविभिः विप्रस्य मनुषः हविर्भिः देवान् अयजः, एव होतः सत्यतर अग्ने, मन्द्रया जुह्वा त्वं अद्य यजस्व.

१ अग्नये कथा दाशेम? यः अमृतः, ऋतावा, होता, यजिष्ठः देवान् मर्त्येषु कृणोति इत् अस्मै भामिने देवजुष्टा का गीः उच्यते?

२ यः अध्वरेषु शन्तमः, ऋतावा, होता, तं ऊम् नमोभिः आ कृणुध्वम्. यत् मर्ताय अग्निः देवान् वेः सः बोधाति मनसा च यजाति.

वही बुद्धि का खजाना है; वही कार्य करनेवाला सच्चा मनुष्य है; मनुष्य के अच्छे गुणों का वही आदर्श है; मित्र की तरह आश्चर्य पैदा करनेवाले रथपर वही आरूढ होता है। देवों के श्रद्धालु[3] भक्त इस सुन्दर देव को यज्ञ में पहले पहल बुलाते हैं। ३

सब मनुष्यों में अग्नि बहुत श्रेष्ठ है। शत्रुओं का नाश करनेवाला अग्नि हमे सहारा देनेवाला होवे और हमारे स्तुतिओं का वह स्वीकार करे। जो मनुष्य अग्नि को हवि अर्पण करता है वही बलवान् और पराक्रमी बनता है। इस प्रकार की[3] हुई स्तुतिओं[4] का भी अग्नि स्वीकार करें। ४

विद्वान् गोतमोंने सत्यधर्म का पालन करनेवाले और सर्वज्ञ अग्निकी स्तुति की है। इ(अ)ग्निने (अग्निने) गोतमोंको वैभव, यश, और धन दे दिया है; आप प्रकाशील हैं। और आपपर सब प्रेम करते हैं। ५ (२५)

सूक्त ७८.

॥ ७८ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-अग्नि ॥

हे अग्नि, आप सर्वज्ञ और सर्वसंचारी हैं। हम गोतम, आपको हवि[1] अर्पण करके आपको बार बार नमस्कार करते हैं। १

धन की इच्छा करनेवाले हम, गोतम आपकी सेवामें[1] हवि अर्पण करके आपको बार बार प्रणाम करते हैं। २

---

३ सः हि क्रतुः, सः मर्यः, सः साधुः, मित्रः न अद्भुतस्य रथीः भूत्, देवयन्तीः आर्याः[1] विशः मेधेषु प्रथमं देवं तं उप ब्रुवते।

४ नृणां नृतमः रिशादाः सः अग्निः अवसा नः गिरः धीतिं वेतु, ये मघवानः शविष्ठाः वाजप्रसूताः इषा च मन्म[3] दधयन्त[4]।

५ ऋतावा जातवेदाः अग्निः विप्रेभिः गोतमेभिः एव अस्तोष्ट. सः एषु द्युम्नं पीपयत्, सः वाजं, सः, पुष्टिं, चिकित्वान् जोषं आयाति।

१ जातवेदः विचर्षणे, त्वा अभि गिरा द्युम्नैः[1] गोतमाः अभि प्र णोनुमः

२ रायस्काम गोतमः तं त्वा गिरा दुवस्यति[1] द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः।

सामर्थ्य देनेवाले अग्नि को आंगिरस की तरह हम बुलाते हैं। सोम अर्पण कर के हम बार बार आपको नमस्कार करते हैं। ३

दस्यु (राक्षस) को निकाल देनेवाले और वृत्र का वध करनेवाले अग्नि को हवि अर्पण करके हम बार बार नमस्कार करते हैं। ४

हमने रहूगणपुत्रोंने-अग्नि के लिये सुन्दर स्तोत्र गाया है। उनको हवि अर्पण कर के हम बार बार नमस्कार करते हैं। ५ (२६)

सूक्त ७९.

॥ ७९ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-अग्नि ॥

अग्नि के केश सुवर्णमय हैं। जब यह रजोलोक के विस्तीर्ण[1] प्रदेश में रहता है तब यह साप की तरह (लोगों को) डराता है और वायु की तरह जोरसे[2] गर्जना करता है। आपकी ज्वाला बडी तेज रहती है। उषा की उत्पत्ति का कारण[3] आपही है। इस लिये वे यशस्वी और सत्यवती उषा आपकी दासी बनकर आपपर प्रेम करती हैं। १

अग्निरूपी पक्षी के बड़े बड़े पंखों से (रश्मि) (सब चीजोंका) नाश होने लगा; । और काले रंगका बैल (मेघ) बड़े जोरसे गर्जना करने लगा। वह मेघरूपी बैल अपने साथ कल्याण करनेवाली और हांसनेवाली विद्युत् को भी ले आया। जिसके कारण मेघ बरसने लगे। (जिसके साथ विद्युत् नहीं है ऐसे) मेघ केवल गर्जनाही करते हैं (बरसते नहीं)। २

सत्य धर्म से वर्ताव करनेवाले और सन्मार्ग को[4] जाननेवाले भक्तों के उदकों का अथवा हवियों का जब अग्नि स्वीकार करता है तब अर्यमा, मित्र और वरुण चारों ओर घुमकर आकाश में ही मेघरूपी चमडे में पानी भर देते हैं। ३

---

३ वाजसातमं तं त्वा अंगिरस्वत् हवामहे. द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः।

४ यः दस्यून् अवधूनुषे तं त्वा वृत्रहन्तमं द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः।

५ रहूगणाः अग्नये मधुमत् वचः अवोचाम द्युम्नैः अभि प्र णोनुमः।

१ रजसः विसारे[1] हिरण्यकेशः ध्रजीमान्[2] वातः इव धुनिः अहिः शुचिभ्राजाः, यशस्वतीः सत्याः अपस्युव न, उषसः नवेदाः[3]।

२ ते सुपर्णाः एवैः आ अमिनन्त. कृष्णः वृषभः नोनाव यदि इदं, स्मयमानाभिः शिवाभिः न आ अगात. मिहः पतन्ति अभ्रा स्तनयन्ति।

३ ऋतस्य रजिष्ठैः[4] पथिभिः नयन् यत् ईं ऋतस्य पयसा पियानः, अर्यमा मित्रः परिज्मा वरुणः उपरस्य योनौ त्वचं पृञ्चन्ति।

हे अग्नि, आप शक्ति के पुत्र हैं; आप गौओं के स्वामी हैं। हे सर्वज्ञ देव, आप हम को वैभव और धन अर्पण कीजिये। ४

(हे अग्नि,) आप देदिप्यमान, दयालु, धनवान् और सर्वज्ञ हैं। आप स्तुति के योग्य हैं। अनेक सेवकों[5] पर अधिकार चलानेवाले, हे अग्निदेव, आप इस तरह प्रकाशित हूजिये जिस से हमें बहुत धन मिले। ५

हे तीक्ष्ण-दंष्ट्र अग्निदेव, रात्रि और प्रातःकाल के समय आप अपने[6] ज्वालाओं से राक्षसोंका नाश कीजिये। ६ (२७)

हे अग्निदेव, आपकी स्तुति सब स्तोत्रों में गायी जाती है। इसलिये आप वन्दनीय हैं। हम गायत्री स्तोत्र आपको अर्पण[7] करते हैं। इस लिये आप हमारी रक्षा कीजिये। ७

हे अग्नि, हमें ऐसा वैभव और धन दीजिये जो हमेशा के लिये हमारे पास रहे और जो, हमारे शत्रु, किसी युद्धमें[8] छिन नहीं सकते। ८

---

४ सहसः यहो अग्ने, गोपतः वाजस्य ईशान. जातवेदः अस्मे महि श्रवः धेहि।

५ सः अग्निः इधानः, वसुः, कविः, गिरा ईळेन्यः पुर्वणीक[5] अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि।

६ उत क्षपः उत उषसः वस्तो. तिग्मजम्भ राजन् अग्ने त्मना[6] रक्षसः प्रति दह।

७ विश्वासु धीषु वन्द्य अग्ने गायत्रस्य प्रभर्मणि[7] ऊतिभिः नः अव।

८ अग्ने, सत्रासहं, वरेण्यं, विश्वासु पृत्सु[8] दुष्टरं रयिं नः आ भर।

हे अग्निदेव, हमारी कुशलताका विचार करके, आप हमें ऐसा धन दीजिये जिससे हमें सुख[1] होवे और जिससे हमारा जन्मतक पोषण होवे। ९

धनकी[10] इच्छा करनेवाले, हे गोतम, प्रखर ज्वाला से युक्त अग्नि को शुद्ध अन्तःकरण से पवित्र स्तुति और स्तोत्र अर्पण कीजिये। १०

हे अग्निदेव, जो कोई हमारा शत्रु—पास हो अथवा दूर हो—हमें सताता है, उसका आप नाश कीजिये। और आप हमारा ही वैभव बढ़ाइये। ११

हे सहस्रनयन अग्नि, सब जगह घूमकर हमारे शत्रु जो राक्षस हैं उनको आप निकाल[11] देते हैं। स्तवन करनेके योग्य और हवि देनेके योग्य जो अग्नि आप हमारे साथ बातचीत कीजिये। १२ (२८)

सूक्त ८०.

॥ ८० ॥ ऋषि–रहूगणपुत्र गौतम । देवता–इन्द्र ॥

(हे इन्द्र,) आपको सन्तुष्ट करनेके लिये उत्तेजित करनेवाला सोमरस तैयार किया गया। हे बलवान् और वज्रधारी देव, अपना साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा से आपने पृथ्वीपर से अही राक्षस को निकाल[1] दिया। १

---

९ अग्ने, नः जीवसे विश्वायुपोषसं मार्डीकं[1] रयिं आ धेहि।

१० गोतम, सुम्नयुः[10] तिग्मशोचिषे अग्नये पूताः वाचः गिरः प्र भरस्व।

११ अग्ने, यः अन्ति दूरे नः अभिदासति सः पदीष्ट अस्माकं इत् वृधे भव।

१२ सहस्राक्षः विचर्षणिः अग्निः रक्षांसि सेधति[11] उक्थ्यः होता गृणीते।

१ इत्था हि मदे सोमे इन्द्रः ब्रह्मा वर्धनं चकार शविष्ठ वज्रिन्, स्वराज्यं अनु अर्चन् ओजसा पृथिव्याः अहिं निः शशाः[1]।

वह श्येनपक्षी[१] सोमरसको ले आया। निचोड़कर वह उत्साह-वर्धक सोमरस तैयार किया गया। उससे आपको स्फूर्ति उत्पन्न हुई और अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिये आपने वृत्रको पानी के बाहर निकाल कर मार डाला। २

हे इन्द्र, आगे चलिये; चढ़ाई करो; पराक्रम दिखलाइये; आपके वज्रको कोई रोकनेवाला नहीं है; आपका सामर्थ्य बहुत बड़ा है; और अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिये आपने वृत्रको मार डाला और जलोंको उसके हाथसे छुड़ा लिया। ३

हे इन्द्र, भूलोक और द्युलोकसे आपने वृत्रको निकाल दिया। अब आप (नीचे पृथ्वीपर) जलोंको छोड़ दीजिये जिसपर सब प्राणियों का जीवन[२] अवलम्बित है और जिन जलोंका मरुद्देव साथ देनेवाले हैं। ४

निजका साम्राज्य स्थापित करनेके हेतु पृथ्वी को हिलानेवाले वृत्रका सिर, गुस्सेमें[१] आकर इन्द्रने वज्र से काट डाला और जलों को[४] मुक्त करके उनमें गति उत्पन्न की और वे बहने लगे। ५ (२९)

---

२ सः श्येनाभृतः[१] सुतः वृषा मदः सोमः त्वा अमदत् येन, वज्रिन्, स्वराज्यं अनु अर्चन् ओजसा वृत्रं अद्भ्यः निः जघन्थ, पृथिव्याः निः शशाः।

३ प्रेहि, अभीहि, धृष्णुहि, ते वज्रः न नियंसते इन्द्र ते शवः नृम्णं हि स्वराज्यं अनु अर्चन् वृत्रं हनः अपः जयाः।

४ इन्द्र, वृत्रं भूम्याः निः दिवः निः अधि जघन्थ. स्वराज्यं अनु अर्चन् इमाः जीवधन्याः[२] मरुत्वतीः अपः अवसृज।

५ स्वराज्यं अनु अर्चन् इन्द्रः सर्माय[४] अपः चोदयन् हीळितः[१] अभिक्रम्य वज्रेण दोधतः वृत्रस्य सानुं अव जिघ्नते।

सौ जगह जुड़ा हुआ वज्र अपने हाथमें लेकर इन्द्र वृत्रका सिर तोड़ डालता है। अपना साम्राज्य स्थापित करनेके लिये इन्द्र अपने भक्तों के हाथों से सन्तुष्ट होकर उनको धन[1] देकर उनकी उन्नति करता है। ६

हे शस्त्र-अस्त्र पास रखनेवाले इन्द्र, हे वज्रधारी इन्द्र, आपके सामर्थ्य का कोई नाश नहीं कर सकता है। अपना साम्राज्य स्थापित करने के हेतु आपने बड़े कुशलता से और युक्तियुक्ति से उन दुष्ट पशु (राक्षस) ओंका नाश कर डाला। ७

आपका वज्र नव्वे महानदियों की रक्षा करने के लिये तैयार था। आपका बाहुबल बड़ा श्रेष्ठ है। इस लिये आप अपना साम्राज्य स्थापित करते हैं। आपके बाहुबलसे लोगों को लाभ होता है। ८

हजारों मनुष्य एकत्रित होकर इन्द्रकी पूजा करनी चाहिये। सैकड़ों मनुष्योंने आपका स्तुतिस्तोत्र गाया है। इन्द्र के लिये अब एक उत्कृष्ट स्तोत्र तैयार है। इन्द्र अब साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा करता है। ९

---

६ शतपर्वणा वज्रेण सानौ अधि नि जिघ्नते अन्धसः मन्दानः, स्वराज्यं अनु अर्चन्, इन्द्रः सखिभ्यः गातुं इच्छति।

७ अद्रिवः वज्रिन् इन्द्र, यत् ह स्वराज्यं अनु अर्चन् त्वं मायया त्यं मायिनं मृगं अवधीः अनुत्तं वीर्यं तुभ्यं इत्।

८ नवतिं नाव्याः अनु ते वज्रासः वि अस्थिरन् इन्द्र, स्वराज्यं अनु अर्चन् ते वीर्यं महत्, ते बाह्वोः बलं हितम्।

९ सहस्रं साकं अर्चत, विंशतिः परि स्तोभत शता एनं अनु नोनवुः, स्वराज्यं अनु अर्चन् इन्द्राय ब्रह्म उद्यतम्।

इन्द्रने वृत्रके सामर्थ्यका नाश किया । इन्द्रके बलके सामने वृत्रके बलका कुछ नहीं चला । यह बड़ी वीरताकी बात है कि इन्द्रने वृत्रको मार डालकर जलोंको उनके प्रतिबन्ध से छुड़ा लिया । जिसका साम्राज्य स्थापित करनेकी आपकी बड़ी इच्छा थी ।   १० (३०)

हे इन्द्र, जब आप गुस्सेमें आते हैं तब दोनों भू और द्युलोक डरके मारे कांपने लगते हैं । अपना साम्राज्य स्थापित करनेके लिये आपने मरुत् गणों के सहायता से वृत्रको मार डाला ।   ११

वृत्रने पृथ्वीको हिलाया और बड़ी गर्जना की; तथापि इन्द्र बिलकुलही नहीं डरा । बल्कि अपना साम्राज्य स्थापित करनेके हेतु इन्द्रका पैनेदार लोहेका वज्र वृत्रके सिरपर गिर पड़ा ।   १२

जब इन्द्रका वज्र वृत्रके सिरपर गिर पड़ा तब इन्द्रकी वीरता द्युलोकमें भी मालूम हुई । इस तरह पराक्रम करके वृत्रको मार डालके इन्द्रने अपना साम्राज्य स्थापित किया । १३

---

१० इन्द्रः वृत्रस्य तविषीं निः अहन्, सहसा सहः तत् अस्य पौंस्यं महत् यत् स्वराज्यं अनु अर्चन् वृत्रं अवधीत्, अपः सृजन् ।

११ यत्, वज्रिन् इन्द्र, स्वराज्यं अनु अर्चन्, मरुत्वान् वृत्रं यत् ओजसा अवधीः, तव मन्यवे इमे मही चित् भियसा वेपेते ।

१२ वृत्रः इन्द्र न वेपसा न तन्यता इन्द्रं बिभीषयन्, स्वराज्यं अनु अर्चन्, सहस्रभृष्टिः आयसः वज्रः एनं अभि आयत ।

१३ यत् वृत्रं तव अशनिं च वज्रेण समयोधयः, इन्द्र, स्वराज्यं अनु अर्चन्, अहिं जिघांसतः ते शव दिवि बद्बधे" ।

हे वज्रधारी इन्द्र, जब आप गर्जना[11] करते हैं तब स्थिर और अस्थिर चीजें भी कांपने लगती हैं। केवल इतना ही नहीं; बल्कि साम्राज्य स्थापित करनेवाले इन्द्रको गुस्सेमें देखकर त्वष्टा देव भी डरके मारे कांपने लगता है। १४

इन्द्र से किसीका भी बल अधिक नहीं है। आपके बलको कोई रोक नहीं सकता। जिनका साम्राज्य स्थापित करने के लिये सब देवों ने अपना बल और स्फूर्ति इन्द्र को अर्पण कर दी। १५

अथर्वा, सब मनुष्योंका पिता मनु और दध्यङ्ने इन्द्र के लिये जो स्तुतिस्तोत्र गाये वे सब[12] साम्राज्य स्थापित करने की इच्छा करनेवाले इन्द्र को जा पहुंचे। १६ (३१) (४)

---

१४ अद्रिवः स्थाः यत् जगत् च ते अभिष्टने[11] रेजते इन्द्र, स्वराज्यं अनु अर्चन् तव मन्यवे त्वष्टा चित् भिया वेविज्यते।

१५ इन्द्रं यात् नहि अधीमसि नु वीर्या परः कः? स्वराज्यं अनु अर्चन् तस्मिन् देवाः नृम्णं उत क्रतुं ओजांसि संदधुः।

१६ अथर्वा, मनुः पिता, दध्यङ् यां धियं अत्नत, उक्था[12] ब्रह्माणि, स्वराज्यं अनु अर्चन् तस्मिन् इन्द्रे पूर्वथा सं अग्मत।

Printed at Vaidya Brothers' Press, Thakurdwar, Bombay No. 2 & published at Shrutibodh Office 47 Kalbadevi Road, Bombay, by Gajanan Bhaskar Vaidya.

हिन्दी, मराठी, गुजराती और अङ्गरेजी चार
भाषाओं में अलग अलग प्रसिद्ध होनेवाला

वेदों का भाषांतर ।

प्रति मास में ६४ पृष्ठ, ३२ पृष्ठ संहिता [स्वर और पदपाठ सहित]
* * ३२ पृष्ठ भाषान्तर । * *

वर्ष १] दिसम्बर १९१२ [संख्या ६

वार्षिक मूल्य डाकव्ययसहित रु. ४

हिन्दी श्रुतिबोध.

सम्पादक,

रामचंद्र विनायक पटवर्धन, बी. ए. एल् एल्. बी.
अच्युत बलवंत कोल्हटकर, बी. ए. एल् एल्. बी.
दुर्गा अप्पाजी तुळजापुरकर, बी. ए. एल् एल्. बी.

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत् ।
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ॥

यास्काचार्य.

'श्रुतिबोध' ऑफिस, ४७, फाकलैंड रोड, बम्बई.

प्रति अंकका मूल्य आठ आने.

॥ अथ प्रथमाष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ ८१. ॥ राहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ पङ्क्तिश्छन्दः ॥

॥ ८१ ॥ इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥
असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि पराददिः ।
असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥ २ ॥
यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥ ३ ॥
क्रत्वा महाँ अनुष्वधं भीम आ वावृधे शवः ।
श्रिय ऋष्व उपाकयोर्नि शिप्री हरिवान्दधे हस्तयोर्वज्रमायसम् ॥ ४ ॥
आ पप्रौ पार्थिवं रजो बद्बधे रोचना दिवि ।
न त्वावाँ इन्द्र कश्चन न जातो न जनिष्यतेऽति विश्वं ववक्षिथ ॥ ५ ॥ १ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इंद्रः । मदाय । ववृधे । शवसे । वृत्रऽहा । नृऽभिः । तं । इत् । महत्ऽसु । आजिषु । उत । ईं । अर्भे । हवामहे । सः । वाजेषु । प्र । नः । अविषत् ॥ १ ॥ असि । हि । वीर । सेन्यः । असि । भूरि । पराऽददिः । असि । दभ्रस्य । चित् । वृधः । यजमानाय । शिक्षसि । सुन्वते । भूरि । ते । वसु ॥ २ ॥ यत् । उत्ऽईरते । आजयः । धृष्णवे । धीयते । धना । युक्ष्व । मदऽच्युता । हरी इति । कं । हनः । कं । वसौ । दधः । अस्मान् । इंद्र । वसौ । दधः ॥ ३ ॥ क्रत्वा । महान् । अनुऽस्वधं । भीमः । आ । ववृधे । शवः । श्रिये । ऋष्वः । उपाकयोः । नि । शिप्री । हरिऽवान् । दधे । हस्तयोः । वज्रं । आयसं ॥ ४ ॥ आ । पप्रौ । पार्थिवं । रजः । बद्बधे । रोचना । दिवि । न । त्वाऽवान् । इंद्र । कः । चन । न । जातः । न । जनिष्यते । अति । विश्वं । ववक्षिथ ॥ ५ ॥ १ ॥

यो अर्यो मर्तभोजनं परादर्दाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भंजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥ ६ ॥
मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शताभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥ ७ ॥
मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥ ८ ॥
एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥ ९ ॥ २ ॥

॥ ८२ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ अन्त्या जगती ॥ शिष्टाः पंक्तयः ॥

॥ ८२ ॥ उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव ।
यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ १ ॥

यः । अर्यः । मर्तऽभोजनं । पराऽददाति । दाशुषे । इंद्रः । अस्मभ्यं । शिक्षतु । वि । भज । भूरि । ते । वसु । भक्षीय । तव । राधसः ॥ ६ ॥ मदेऽमदे । हि । नः । ददिः । यूथा । गवां । ऋजुऽक्रतुः । सं । गृभाय । पुरु । शता । उभयाहस्त्या । वसु । शिशीहि । रायः । आ । भर ॥ ७ ॥ मादयस्व । सुते । सचा । शवसे । शूर । राधसे । विद्म । हि । त्वा । पुरुऽवसुं । उप । कामान् । ससृज्महे । अथ । नः । अविता । भव ॥ ८ ॥ एते । ते । इंद्र । जंतवः । विश्वं । पुष्यंति । वार्यं । अंतः । हि । ख्यः । जनानां । अर्यः । वेदः । अदाशुषां । तेषां । नः । वेदः । आ । भर ॥ ९ ॥ २ ॥

उपो इति । सु । शृणुहि । गिरः । मघऽवन् । मा । अतथाःऽइव । यदा । नः । सूनृताऽवतः । करः । आत् । अर्थयासे । इत् । योज । नु । इंद्र । ते । हरी इति ॥ १ ॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ २ ॥
सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि ।
प्र नूनं पूर्णवन्धुरः स्तुतो याहि वशाँ अनु योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ३ ॥
स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम् ।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ४ ॥
युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥ ५ ॥
युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः ।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः ॥ ६ ॥ ३ ॥

अक्षन् । अमीमदंत । हि । अवं । प्रियाः । अधूषत । अस्तोषत । स्वऽभानवः । विप्राः । नविष्ठया । मती । योजं । नु । इंद्र । ते । हरी इति ॥ २ ॥ सुऽसंदृशं । त्वा । वयं । मघंऽवन् । वंदिषीमहि । प्र । नूनं । पूर्णऽवंधुरः । स्तुतः । याहि । वशान् । अनु । योजं । नु । इंद्र । ते । हरी इति ॥ ३ ॥ सः । घ । तं । वृषणं । रथं । अधि । तिष्ठाति । गोऽविदं । यः । पात्रं । हारिऽयोजनं । पूर्णं । इंद्र । चिकेतति । योजं । नु । इंद्र । ते । हरी इति ॥ ४ ॥ युक्तः । ते । अस्तु । दक्षिणः । उत । सव्यः । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । तेनं । जायां । उपं । प्रियां । मंदानः । याहि । अंधसः । योजं । नु । इंद्र । ते । हरी इति ॥ ५ ॥ युनज्मि । ते । ब्रह्मणा । केशिनां । हरी इति । उपं । प्र । याहि । दधिषे । गभस्त्योः । उत् । त्वा । सुतासः । रभसाः । अमंदिषुः । पूषण्ऽवान् । वज्रिन् । सं । ऊं इति । पत्न्या । अमदः ॥ ६ ॥ ३ ॥

॥ ८३. ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ जगती छन्दः ॥

॥८३॥ अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥ १ ॥
आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।
प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥ २ ॥
अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः ।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥
आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥ ४ ॥
यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे ॥ ५ ॥

अश्वऽवति । प्रथमः । गोषु । गच्छति । सुप्रऽअवीः । इन्द्र । मर्त्यः । तव । ऊतिऽभिः । तं । इत् । पृणक्षि । वसुना । भवीयसा । सिंधुं । आपः । यथा । अभितः । विऽचेतसः ॥ १ ॥ आपः । न । देवीः । उप । यंति । होत्रियं । अवः । पश्यंति । विऽततं । यथा । रजः । प्राचैः । देवासः । प्र । नयंति । देवऽयुं । ब्रह्मऽप्रियं । जोषयंते । वराःऽइव ॥ २ ॥ अधि । द्वयोः । अदधाः । उक्थ्यं । वचः । यतऽस्रुचा । मिथुना । या । सपर्यतः । असंऽयत्तः । व्रते । ते । क्षेति । पुष्यंति । भद्रा । शक्तिः । यजमानाय । सुन्वते ॥ ३ ॥ आत् । अंगिराः । प्रथमं । दधिरे । वयः । इद्धऽअग्नयः । शम्या । ये । सुऽकृत्यया । सर्वं । पणेः । सं । अविंदंत । भोजनं । अश्वऽवंतं । गोमंतं । आ । पशुं । नरः ॥ ४ ॥ यज्ञैः । अथर्वा । प्रथमः । पथः । तते । ततः । सूर्यः । व्रतऽपाः । वेनः । आ । अजनि । आ । गाः । आजत् । उशना । काव्यः । सचा । यमस्य । जातं । अमृतं । यजामहे ॥ ५ ॥

बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि ।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्यस्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति ॥ ६ ॥ ४ ॥

॥ ८४ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ आदितः षट् अनुष्टुभः ॥

॥ ८४ ॥ असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।
आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १ ॥
इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।
ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् ॥ २ ॥
आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी ।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ ३ ॥
इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम् ।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ ४ ॥
इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन ।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ५ ॥ ५ ॥

बर्हिः । वा । यत् । सुऽअपत्याय । वृज्यते । अर्कः । वा । श्लोकं । आऽघोषते । दिवि । ग्रावा । यत्र । वदति । कारुः । उक्थ्यः । तस्य । इत् । इंद्रः । अभिऽपित्वेषु । रण्यति ॥ ६ ॥ ४ ॥

असावि । सोमः । इंद्र । ते । शविष्ठ । धृष्णो इति । आ । गहि । आ । त्वा । पृणक्तु । इंद्रियं । रजः । सूर्यः । न । रश्मिऽभिः ॥ १ ॥ इंद्रं । इत् । हरी इति । वहतः । अप्रतिधृष्टऽशवसं । ऋषीणां । च । स्तुतीः । उप । यज्ञं । च । मानुषाणां ॥ २ ॥ आ । तिष्ठ । वृत्रऽहन् । रथं । युक्ता । ते । ब्रह्मणा । हरी इति । अर्वाचीनं । सु । ते । मनः । ग्रावा । कृणोतु । वग्नुना ॥ ३ ॥ इमं । इंद्र । सुतं । पिब । ज्येष्ठं । अमर्त्यं । मदं । शुक्रस्य । त्वा । अभि । अक्षरन् । धाराः । ऋतस्य । सदने ॥ ४ ॥ इंद्राय । नूनं । अर्चत । उक्थानि । च । ब्रवीतन । सुताः । अमत्सुः । इंदवः । ज्येष्ठं । नमस्यत । सहः ॥ ५ ॥ ५ ॥

नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे ।

नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ ६ ॥

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे ।

ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥ ७ ॥

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत् ।

कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ८ ॥

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति ।

उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।

या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १० ॥ ६ ॥

नकिः । त्वत् । रथिऽतरः । हरी इति । यत् । इंद्र । यच्छसे । नकिः । त्वा । अनु । मज्मना । नकिः । सुऽअश्वः । आनशे ॥ ६ ॥ यः । एकः । इत् । विऽदयते । वसु । मर्ताय । दाशुषे । ईशानः । अप्रतिऽस्कुतः । इंद्रः । अंग ॥ ७ ॥ कदा । मर्तं । अराधसं । पदा । क्षुंपंऽइव । स्फुरत् । कदा । नः । शुश्रवत् । गिरः । इंद्रः । अंग ॥ ८ ॥ यः । चित् । हि । त्वा । बहुऽभ्यः । आ । सुतऽवान् । आऽविवासति । उग्रं । तत् । पत्यते । शवः । इंद्रः । अंग ॥ ९ ॥ स्वादोः । इत्था । विषुऽवतः । मध्वः । पिबंति । गौर्यः । याः । इंद्रेण । सऽयावरीः । वृष्णा । मदंति । शोभसे । वस्वीः । अनु । स्वऽराज्यं ॥ १० ॥ ६ ॥

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ ११ ॥
ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥
इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥ १३ ॥
इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद्विदच्छर्यणावति ॥ १४ ॥
अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ॥ १५ ॥ ७ ॥
को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून् ।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात् ॥ १६ ॥
क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति ।
कस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे३ को जनाय ॥ १७ ॥

ताः । अस्य । पृशनऽयुवः । सोमं । श्रीणंति । पृश्नयः । प्रियाः । इंद्रस्य । धेनवः । वज्रं । हिन्वंति । सायकं । वस्वीः । अनु । स्वऽराज्यं ॥ ११ ॥ ताः । अस्य । नमसा । सहः । सपर्यंति । प्रऽचेतसः । व्रतानि । अस्य । सश्चिरे । पुरूणि । पूर्वऽचित्तये । वस्वीः । अनु । स्वऽराज्यं ॥ १२ ॥ इंद्रः । दधीचः । अस्थऽभिः । वृत्राणि । अप्रतिऽस्कुतः । जघान । नवतीः । नव ॥ १३ ॥ इच्छन् । अश्वस्य । यत् । शिरः । पर्वतेषु । अपऽश्रितं । तत् । विदत् । शर्यणाऽवति ॥ १४ ॥ अत्र । अह । गोः । अमन्वत । नाम । त्वष्टुः । अपीच्यं । इत्था । चंद्रमसः । गृहे ॥ १५ ॥ ७ ॥

कः । अद्य । युंक्ते । धुरि । गाः । ऋतस्य । शिमीऽवतः । भामिनः । दुःऽहृणायून् । आसन्ऽइषून् । हृत्सुऽअसः । मयःऽभून् । यः । एषां । भृत्यां । ऋणधत् । सः । जीवात् ॥ १६ ॥ कः । ईषते । तुज्यते । कः । बिभाय । कः । मंसते । संतं । इंद्रं । कः । अंति । कः । तोकाय । कः । इभाय । उत । राये । अधि । ब्रवत् । तन्वे । कः । जनाय ॥ १७ ॥

को अग्निमीट्टे हविषा घृतेन स्रुचा यजाता ऋतुभिर्ध्रुवेभिः ।
कस्मै देवा आ वहानाशु होम को मंसते वीतिहोत्रः सुदेवः ॥ १८ ॥
त्वमङ्ग प्र शंसिषो देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डितेन्द्र ब्रवीमि ते वचः ॥ १९ ॥
मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन् ।
विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥ २० ॥ ८ ॥ १३ ॥

॥ चतुर्दशोऽनुवाकः ॥

॥ ८५ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः । मरुतो देवता ॥ पञ्चमी, द्वादश्यौ । त्रिष्टुभौ । शिष्टा जगत्यः

॥ ८५ ॥ प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन्रुद्रस्य सूनवः सुदंससः ।
रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥ १ ॥
त उक्षितासो महिमानमाशत दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः ।
अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥ २ ॥

कः । अग्निं । ईट्टे । हविषा । घृतेन । स्रुचा । यजाते । ऋतुऽभिः । ध्रुवेभिः । कस्मै । देवाः । आ । वहान् । आशु । होम । कः । मंसते । वीतिऽहोत्रः । सुऽदेवः ॥ १८ ॥ त्वं । अंग । प्र । शंसिषः । देवः । शविष्ठ । मर्त्यं । न । त्वत् । अन्यः । मघऽवन् । अस्ति । मर्डिता । इंद्र । ब्रवीमि । ते । वचः ॥ १९ ॥ मा । ते । राधांसि । मा । ते । ऊतयः । वसो इति । अस्मान् । कदा । चन । दभन् । विश्वा । च । नः । उपऽमिमीहि । मानुष । वसूनि । चर्षणिऽभ्यः । आ ॥ २० ॥ ८ ॥

प्र । ये । शुंभंते । जनयः । न । सप्तयः । यामन् । रुद्रस्य । सूनवः । सुऽदंससः । रोदसी इति । हि । मरुतः । चक्रिरे । वृधे । मदंति । वीराः । विदथेषु । घृष्वयः ॥ १ ॥ ते । उक्षितासः । महिमानं । आशत । दिवि । रुद्रासः । अधि । चक्रिरे । सदः । अर्चंतः । अर्कं । जनयंतः । इंद्रियं । अधि । श्रियः । दधिरे । पृश्निऽमातरः ॥ २ ॥

गोमातरो यच्छुभयन्ते अञ्जिभिस्तनूषु शुभ्रा दधिरे विरुक्मतः ।
बाधन्ते विश्वमभिमातिनमप वर्त्मान्येषामनु रीयते घृतम् ॥ ३ ॥
वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।
मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा वृषव्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥ ४ ॥
प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥ ५ ॥
आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।
सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥ ६ ॥ ९॥
तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥ ७ ॥

गोऽमातरः । यत् । शुभयन्ते । अञ्जिऽभिः । तनूषु । शुभ्राः । दधिरे । विरुक्मतः । बाधन्ते । विश्वं । अभिऽमातिनं । अप । वर्त्मानि । एषां । अनु । रीयते । घृतं ॥ ३ ॥ वि । ये । भ्राजन्ते । सुऽमखासः । ऋष्टिऽभिः । प्रऽच्यवयन्तः । अच्युता । चित् । ओजसा । मनःऽजुवः । यत् । मरुतः । रथेषु । आ । वृषऽव्रातासः । पृषतीः । अयुग्ध्वं ॥ ४ ॥ प्र । यत् । रथेषु । पृषतीः । अयुग्ध्वं । वाजे । अद्रिं । मरुतः । रंहयन्तः । उत । अरुषस्य । वि । स्यन्ति । धाराः । चर्मऽइव । उदऽभिः । वि । उन्दन्ति । भूम ॥ ५ ॥ आ । वः । वहन्तु । सप्तयः । रघुऽस्यदः । रघुऽपत्वानः । प्र । जिगात । बाहुऽभिः । सीदत । आ । बर्हिः । उरु । वः । सदः । कृतं । मादयध्वं । मरुतः । मध्वः । अन्धसः ॥ ६ ॥ ९ ॥

ते । अवर्धन्त । स्वऽतवसः । महिऽत्वना । आ । नाकं । तस्थुः । उरु । चक्रिरे । सदः । विष्णुः । यत् । ह । आवत् । वृषणं । मदऽच्युतं । वयः । न । सीदन् । अधि । बर्हिषि । प्रिये ॥ ७ ॥

शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥ ८ ॥
त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥ ९ ॥
ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम् ।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥ १० ॥
जिह्मं नुनुद्रेऽवतं तया दिशासिञ्चन्नुत्सं गोतमाय तृष्णजे ।
आ गच्छन्तीमवसा चित्रभानवः कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥ ११ ॥
या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।
अस्मभ्यं तानि मरुतो वि यन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम् ॥ १२ ॥ १० ॥

शूराःऽइव । इत् । युयुधयः । न । जग्मयः । श्रवस्यवः । न । पृतनासु । येतिरे । भयंते । विश्वा । भुवना । मरुत्ऽभ्यः । राजानःऽइव । त्वेषऽसंदृशः । नरः ॥ ८ ॥ त्वष्टा । यत् । वज्रं । सुऽकृतं । हिरण्ययं । सहस्रऽभृष्टिं । सुऽअपाः । अवर्तयत् । धत्ते । इंद्रः । नरि । अपांसि । कर्तवे । अहन् । वृत्रं । निः । अपां । औब्जत् । अर्णवं ॥ ९ ॥ ऊर्ध्वं । नुनुद्रे । अवतं । ते । ओजसा । दादृहाणं । चित् । बिभिदुः । वि । पर्वतं । धमंतः । वाणं । मरुतः । सुऽदानवः । मदे । सोमस्य । रण्यानि । चक्रिरे ॥ १० ॥ जिह्मं । नुनुद्रे । अवतं । तया । दिशा । असिंचन् । उत्सं । गोतमाय । तृष्णऽजे । आ । गच्छंति । ईं । अवसा । चित्रऽभानवः । कामं । विप्रस्य । तर्पयंत । धामऽभिः ॥ ११ ॥ या । वः । शर्म । शशमानाय । संति । त्रिऽधातूनि । दाशुषे । यच्छत । अधि । अस्मभ्यं । तानि । मरुतः । वि । यंत । रयिं । नः । धत्त । वृषणः । सुऽवीरं ॥ १२ ॥ १० ॥

॥ ८६ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

॥ ८६ ॥ मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः ।
स सुगोपातमो जनः ॥ १ ॥
यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम् ।
मरुतः शृणुता हवम् ॥ २ ॥
उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत ।
स गन्ता गोमति व्रजे ॥ ३ ॥
अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु ।
उक्थं मदश्च शस्यते ॥ ४ ॥
अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
सूरं चित्सस्रुषीरिषः ॥ ५ ॥ ११ ॥

मरुतः । यस्य । हि । क्षये । पाथ । दिवः । विऽमहस । सः । सुऽगोपातमः । जनः ॥ १ ॥ यज्ञैः । वा । यज्ञऽवाहसः । विप्रस्य । वा । मतीनां । मरुतः । शृणुत । हवं ॥ २ ॥ उत । वा । यस्य । वाजिनः । अनु । विप्रं । अतक्षत । सः । गंता । गोऽमति । व्रजे ॥ ३ ॥ अस्य । वीरस्य । बर्हिषि । सुतः । सोमः । दिविष्टिषु । उक्थं । मदः । च । शस्यते ॥ ४ ॥ अस्य । श्रोषंतु । आ । भुवः । विश्वाः । यः । चर्षणीः । अभि । सूरं । चित् । सस्रुषीः । इषः ॥ ५ ॥ ११ ॥

पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् ।

अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥ ६ ॥

सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः ।

यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥ ७ ॥

शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः ।

विदा कामस्य वेनतः ॥ ८ ॥

यूयं तत्सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना ।

विध्यता विद्युता रक्षः ॥ ९ ॥

गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम् ।

ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि ॥ १० ॥ १२ ॥

पूर्वीभिः । हि । ददाशिम । शरत्ऽभिः । मरुतः । वयं । अवःऽभिः । चर्षणीनां ॥ ६ ॥ सुऽभगः । सः । प्रऽयज्यवः । मरुतः । अस्तु । मर्त्यः । यस्य । प्रयांसि । पर्षथ ॥ ७ ॥ शशमानस्य । वा । नरः । स्वेदस्य । सत्यऽशवसः । विद । कामस्य । वेनतः ॥ ८ ॥ यूयं । तत् । सत्यऽशवसः । आविः । कर्त । महिऽत्वना । विध्यत । विऽद्युता । रक्षः ॥ ९ ॥ गूहत । गुह्यं । तमः । वि । यात । विश्वं । अत्रिणं । ज्योतिः । कर्त । यत् । उश्मसि ॥ १० ॥ १२ ॥

॥ ८७. ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ जगती छन्दः ॥

॥ ८७ ॥ प्रत्वक्षसः प्रतवसो विरप्शिनोऽनानता अविथुरा ऋजीषिणः ।
जुष्टतमासो नृतमासो अञ्जिभिर्व्यानज्रे के चिदुस्रा इव स्तृभिः ॥ १ ॥
उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित्पथा ।
श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ २ ॥
प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे ।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥ ३ ॥
स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणो३ऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः ।
असि सत्य ऋणयावानेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥ ४ ॥
पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा ।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥ ५ ॥

प्रऽत्वक्षसः । प्रऽतवसः । विऽरप्शिनः । अनानताः । अविथुराः । ऋजीषिणः । जुष्टऽतमासः । नृऽतमासः । अञ्जिऽभिः । वि । आनज्रे । के । चित् । उस्राःऽइव । स्तृऽभिः ॥ १ ॥ उपऽह्वरेषु । यत् । अचिध्वं । ययिं । वयःऽइव । मरुतः । केन । चित् । पथा । श्चोतंति । कोशाः । उप । वः । रथेषु । आ । घृतं । उक्षत । मधुऽवर्णं । अर्चते ॥ २ ॥ प्र । एषां । अज्मेषु । विथुराऽइव । रेजते । भूमिः । यामेषु । यत् । ह । युंजते । शुभे । ते । क्रीळयः । धुनयः । भ्राजत्ऽऋष्टयः । स्वयं । महिऽत्वं । पनयंत । धूतयः ॥ ३ ॥ सः । हि । स्वऽसृत् । पृषत्ऽअश्वः । युवा । गणः । अया । ईशानः । तविषीभिः । आऽवृतः । असि । सत्यः । ऋणऽयावा । अनेद्यः । अस्याः । धियः । प्रऽअविता । अथ । वृषा । गणः ॥ ४ ॥ पितुः । प्रत्नस्य । जन्मना । वदामसि । सोमस्य । जिह्वा । प्र । जिगाति । चक्षसा । यत् । ईं । इंद्रं । शमि । ऋक्वाणः । आशत । आत् । इत् । नामानि । यज्ञियानि । दधिरे ॥ ५ ॥

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः ।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः ॥ ६ ॥ १३ ॥

॥ ८८ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ प्रस्तारपंक्ती । छन्दः ॥

॥ ८८ ॥ आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः ।
आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥ १ ॥
तेऽरुणेभिर्वरमा पिशङ्गैः शुभे कं यान्ति रथतूर्भिरश्वैः ।
रुक्मो न चित्रः स्वधितीवान्पव्या रथस्य जङ्घनन्त भूम ॥ २ ॥
श्रिये कं वो अधि तनूषु वाशीर्मेधा वना न कृणवन्त ऊर्ध्वा ।
युष्मभ्यं कं मरुतः सुजातास्तुविद्युम्नासो धनयन्ते अद्रिम् ॥ ३ ॥
अहानि गृध्राः पर्या व आगुरिमां धियं वार्कार्यां च देवीम् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैरूर्ध्वं नुनुद्र उत्सधिं पिबध्यै ॥ ४ ॥

श्रियसे । कं । भानुऽभिः । सं । मिमिक्षिरे । ते । रश्मिऽभिः । ते । ऋक्वऽभिः । सुऽखादयः । ते । वाशीऽमंतः । इष्मिणः । अभीरवः । विद्रे । प्रियस्य । मारुतस्य धाम्नः ॥ ६ ॥ १३ ॥

आ । विद्युन्मत्ऽभिः । मरुतः । सुऽअर्कैः । रथेभिः । यात । ऋष्टिमत्ऽभिः । अश्वऽपर्णैः । आ । वर्षिष्ठया । नः । इषा । वयः । न । पप्तत । सुऽमायाः ॥ १ ॥
ते । अरुणेभिः । वरं । आ । पिशंगैः । शुभे । कं । यांति । रथतूःऽभिः । अश्वैः । रुक्मः । न । चित्रः । स्वधितिवान् । पव्या । रथस्य । जंघनंत । भूम ॥ २ ॥
श्रिये । कं । वः । अधि । तनूषु । वाशीः । मेधा । वना । न । कृणवंते । ऊर्ध्वा । युष्मभ्यं । कं । मरुतः । सुजाताः । तुविऽद्युम्नासः । धनयंते । अद्रिं ॥ ३ ॥
अहानि । गृध्राः । परि । आ । वः । आ । अगुः । इमां । धियं । वार्कार्यां । च । देवीं । ब्रह्म । कृण्वंतः । गोतमासः । अर्कैः । ऊर्ध्वं । नुनुद्रे । उत्सऽधिं । पिबध्यै ॥ ४ ॥

एतत्त्यन्न योजनमचेति सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।
पश्यन्हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्विधावतो वराहून् ॥ ५ ॥
एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी ।
अस्तोभयद्वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः ॥ ६ ॥ १४ ॥

॥ ८९. ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ विश्वे देवा देवताः ॥ जगती छन्दः ॥

॥८९॥ आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥ १ ॥
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् ।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥ २ ॥
तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् ।
अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ ३ ॥

एतत् । त्यत् । न । योजनं । अचेति । सस्वः । ह । यत् । मरुतः । गोतमः । वः । पश्यन् । हिरण्यऽचक्रान् । अयःऽदंष्ट्रान् । विऽधावतः । वराहून् ॥ ५ ॥ एषा । स्या । वः । मरुतः । अनुऽभर्त्री । प्रति । स्तोभति । वाघतः । न । वाणी । अस्तोभयत् । वृथा । आसां । अनु । स्वधा । गभस्त्योः ॥ ६ ॥ १४ ॥

आ । नः । भद्राः । क्रतवः । यन्तु । विश्वतः । अदब्धासः । अपरिऽइतासः । उत्ऽभिदः । देवाः । नः । यथा । सदं । इत् । वृधे । असन् । अप्रऽआयुवः । रक्षितारः । दिवेऽदिवे ॥ १ ॥ देवानां । भद्रा । सुऽमतिः । ऋजुऽयतां । देवानां । रातिः । अभि । नः । नि । वर्ततां । देवानां । सख्यं । उप । सेदिम । वयं । देवाः । नः । आयुः । प्र । तिरंतु । जीवसे ॥ २ ॥ तान् । पूर्वया । निऽविदा । हूमहे । वयं । भगं । मित्रं । अदितिं । दक्षं । अस्रिधं । अर्यमणं । वरुणं । सोमं । अश्विना । सरस्वती । नः । सुऽभगा । मयः । करत् ॥ ३ ॥

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः ।
तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ ४ ॥
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ ५ ॥ १५ ॥
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६ ॥
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।
अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥ ७ ॥
भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ ८ ॥

तत् । नः । वातः । मयःऽभु । वातु । भेषजं । तत् । माता । पृथिवी । तत् । पिता । द्यौः । तत् । ग्रावाणः । सोमऽसुतः । मयःऽभुवः । तत् । अश्विना । शृणुतं । धिष्ण्या । युवं ॥ ४ ॥ तं । ईशानं । जगतः । तस्थुषः । पतिं । धियंऽजिन्वं । अवसे । हूमहे । वयं । पूषा । नः । यथा । वेदसा । असत् । वृधे । रक्षिता । पायुः । अदब्धः । स्वस्तये ॥ ५ ॥ १५ ॥

स्वस्ति । नः । इंद्रः । वृद्धऽश्रवाः । स्वस्ति । नः । पूषा । विश्वऽवेदाः । स्वस्ति । नः । तार्क्ष्यः । अरिष्टऽनेमिः । स्वस्ति । नः । बृहस्पतिः । दधातु ॥ ६ ॥ पृषत्ऽअश्वाः । मरुतः । पृश्निऽमातरः । शुभंऽयावानः । विदथेषु । जग्मयः । अग्निऽजिह्वाः । मनवः । सूरऽचक्षसः । विश्वे । नः । देवाः । अवसा । आ । गमन् । इह ॥ ७ ॥ भद्रं । कर्णेभिः । शृणुयाम । देवाः । भद्रं । पश्येम । अक्षऽभिः । यजत्राः । स्थिरैः । अंगैः । तुष्टुऽवांसः । तनूभिः । वि । अशेम । देवऽहितं । यत् । आयुः ॥ ८ ॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम् ।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥ ९ ॥
अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १० ॥ १६ ॥

॥ ९० ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ गायत्री अन्त्यानुष्टुप् छन्दः ॥

॥ ९० ॥ ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान् ।
अर्यमा देवैः सजोषाः ॥ १ ॥
ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः ।
व्रता रक्षन्ते विश्वाहा ॥ २ ॥
ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः ।
बाधमाना अप द्विषः ॥ ३ ॥

शतं । इत् । नु । शरदः । अन्ति । देवाः । यत्र । नः । चक्र । जरसं । तनूनां । पुत्रासः । यत्र । पितरः । भवन्ति । मा । नः । मध्या । रिरिषत । आयुः । गन्तोः ॥ ९ ॥ अदितिः । द्यौः । अदितिः । अन्तरिक्षं । अदितिः । माता । सः । पिता । सः । पुत्रः । विश्वे । देवाः । अदितिः । पञ्च । जनाः । अदितिः । जातं । अदितिः । जनिऽत्वं ॥ १० ॥ १६ ॥

ऋजुऽनीती । नः । वरुणः । मित्रः । नयतु । विद्वान् । अर्यमा । देवैः । सऽजोषाः ॥ १ ॥ ते । हि । वस्वः । वसवानाः । ते । अप्रऽमूराः । महःऽभिः । व्रता । रक्षन्ते । विश्वाहा ॥ २ ॥ ते । अस्मभ्यं । शर्म । यंसन् । अमृताः । मर्त्येभ्यः । बाधमानाः । अप । द्विषः ॥ ३ ॥

वि नः॑ प॒थः सु॑वि॒ताय॑ चि॒यन्त्विन्द्रो॑ म॒रुतः॑ ।

पू॒षा भगो॒ वन्द्या॑सः ॥ ४ ॥

उ॒त नो॒ धियो॒ गोअ॑ग्राः॒ पूष॒न्विष्ण॒वेव॑यावः ।

कर्ता॑ नः स्वस्ति॒मतः॑ ॥ ५ ॥ १७ ॥

मधु॒ वाता॑ ऋताय॒ते मधु॑ क्षरन्ति॒ सिन्ध॑वः ।

माध्वी॑र्नः स॒न्त्वोष॑धीः ॥ ६ ॥

मधु॒ नक्त॑मु॒तोषसो॒ मधु॑म॒त्पार्थि॑वं॒ रजः॑ ।

मधु॒ द्यौर॑स्तु नः पि॒ता ॥ ७ ॥

मधु॑मान्नो॒ वन॒स्पति॒र्मधु॑माँ अस्तु॒ सूर्यः॑ ।

माध्वी॒र्गावो॑ भवन्तु नः ॥ ८ ॥

शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शं नो॑ भवत्वर्य॒मा ।

शं न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पतिः॒ शं नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः ॥ ९ ॥ १८ ॥

वि । नः॒ । प॒थः । सु॒वि॒ताय॑ । चि॒यंतु॑ । इंद्रः॑ । म॒रुतः॑ । पू॒षा । भगः॑ । वंद्या॑सः ॥ ४ ॥ उ॒त । नः॒ । धियः॑ । गोऽअ॑ग्राः । पूष॑न् । विष्णो॒ इति॑ । एव॑ऽयावः । कर्त॑ । नः॒ । स्व॒स्तिऽमतः॑ ॥ ५ ॥ १७ ॥ मधु॑ । वाताः॑ । ऋ॒त॒ऽय॒ते । मधु॑ । क्ष॒रं॒ति॒ । सिंध॑वः । माध्वीः॑ । नः॒ । सं॒तु॒ । ओष॑धीः ॥ ६ ॥ मधु॑ । नक्त॑ । उ॒त । उ॒षसः॑ । मधु॑ऽमत् । पार्थि॑वं । रजः॑ । मधु॑ । द्यौः । अ॒स्तु॒ । नः॒ । पि॒ता ॥ ७ ॥ मधु॑ऽमान् । नः॒ । वन॒स्पतिः॑ । मधु॑ऽमान् । अ॒स्तु॒ । सूर्यः॑ । माध्वीः॑ । गावः॑ । भ॒वं॒तु॒ । नः॒ ॥ ८ ॥ शं । नः॒ । मि॒त्रः । शं । वरु॑णः । शं । नः॒ । भ॒व॒तु॒ । अ॒र्य॒मा । शं । नः॒ । इंद्रः॑ । बृह॒स्पतिः॑ । शं । नः॒ । विष्णुः॑ । उ॒रु॒ऽक्र॒मः ॥ ९ ॥ १८ ॥

॥ ९१. ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ गायत्री छन्दः ॥

॥ ९१ ॥ त्वं सोम प्र चिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम् ।
तव प्रणीती पितरो न इन्दो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥ १ ॥
त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः ।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वा द्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवो नृचक्षाः ॥ २ ॥
राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम ।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥ ३ ॥
या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥ ४ ॥
त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा ।
त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥ ५ ॥ १९ ॥

त्वं । सोम । प्र । चिकितः । मनीषा । त्वं । रजिष्ठं । अनु । नेषि । पंथां । तव । प्रऽनीती । पितरः । नः । इंदो इति । देवेषु । रत्नं । अभजंत । धीराः ॥ १ ॥ त्वं । सोम । क्रतुऽभिः । सुऽक्रतुः । भूः । त्वं । दक्षैः । सुऽदक्षः । विश्वऽवेदाः । त्वं । वृषा । वृषऽत्वेभिः । महिऽत्वा । द्युम्नेभिः । द्युम्नी । अभवः । नृऽचक्षाः ॥ २ ॥ राज्ञः । नु । ते । वरुणस्य । व्रतानि । बृहत् । गभीरं । तव । सोम । धाम । शुचिः । त्वं । असि । प्रियः । न । मित्रः । दक्षाय्यः । अर्यमाऽइव । असि । सोम ॥ ३ ॥ या । ते । धामानि । दिवि । या । पृथिव्यां । या । पर्वतेषु । ओषधीषु । अप्ऽसु । तेभिः । नः । विश्वैः । सुऽमनाः । अहेळन् । राजन् । सोम । प्रति । हव्या । गृभाय ॥ ४ ॥ त्वं । सोम । असि । सत्ऽपतिः । त्वं । राजा । उत । वृत्रऽहा । त्वं । भद्रः । असि । क्रतुः ॥ ५ ॥ १९ ॥

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे ।

प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥ ६ ॥

त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते ।

दक्षं दधासि जीवसे ॥ ७ ॥

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः ।

न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥ ८ ॥

सोम यास्ते मयोभुव ऊतयः सन्ति दाशुषे ।

ताभिर्नोऽविता भव ॥ ९ ॥

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।

सोम त्वं नो वृधे भव ॥ १० ॥ ॥ २० ॥

त्वं । च । सोम । नः । वशः । जीवातुं । न । मरामहे । प्रियऽस्तोत्रः । वनस्पतिः ॥ ६ ॥ त्वं । सोम । महे । भगं । त्वं । यूने । ऋतऽयते । दक्षं । दधासि । जीवसे ॥ ७ ॥ त्वं । नः । सोम । विश्वतः । रक्ष । राजन् । अघ-ऽयतः । न । रिष्येत् । त्वाऽवतः । सखा ॥ ८ ॥ सोम । याः । ते । मयःऽभुवः । ऊतयः । संति । दाशुषे । ताभिः । नः । अविता । भव ॥ ९ ॥ इमं । यज्ञं । इदं । वचः । जुजुषाणः । उपऽआगहि । सोम । त्वं । नः । वृधे । भव ॥ १० ॥ २० ॥

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः ।
सुमृळीको न आ विश ॥ ११ ॥

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः ।
सुमित्रः सोम नो भव ॥ १२ ॥

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा ।
मर्य इव स्व ओक्ये ॥ १३ ॥

यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः ।
तं दक्षः सचते कविः ॥ १४ ॥

उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः ।
सखा सुशेव एधि नः ॥ १५ ॥ २१ ॥

सोम । गीःऽभिः । त्वा । वयं । वर्धयामः । वचःऽविदः । सुऽमृळीकः । नः । आ । विश ॥ ११ ॥ गयऽस्फानः । अमीवऽहा । वसुऽवित् । पुष्टिऽवर्धनः । सुऽमित्रः । सोम । नः । भव ॥ १२ ॥ सोम । ररन्धि । नः । हृदि । गावः । न । यवसेषु । आ । मर्यःऽइव । स्वे । ओक्ये ॥ १३ ॥ यः । सोम । सख्ये । तव । ररणत् । देव । मर्त्यः । तं । दक्षः । सचते । कविः ॥ १४ ॥ उरुष्य । नः । अभिऽशस्तेः । सोम । नि । पाहि । अंहसः । सखा । सुऽशेवः । एधि । नः ॥ १५ ॥ २१ ॥

आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य संगथे ॥ १६ ॥
आ प्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ १७ ॥
सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥ १८ ॥
या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम् ।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्र चरा सोम दुर्यान् ॥ १९ ॥
सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।
सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ २० ॥ २२ ॥

आ । प्यायस्व । सं । एतु । ते । विश्वतः । सोम । वृष्ण्यं । भव । वाजस्य । संऽगथे ॥ १६ ॥ आ । प्यायस्व । मदिन्ऽतम । सोम । विश्वेभिः । अंशुऽभिः । भव । नः । सुश्रवःऽतमः । सखा । वृधे ॥ १७ ॥ सं । ते । पयांसि । सं । ऊं इति । यन्तु । वाजाः । सं । वृष्ण्यानि । अभिमातिऽसहः । आऽप्यायमानः । अमृताय । सोम । दिवि । श्रवांसि । उत्ऽतमानि । धिष्व ॥ १८ ॥ या ते । धामानि । हविषा । यजन्ति । ता । ते । विश्वा । परिऽभूः । अस्तु । यज्ञं । गयऽस्फानः । प्रऽतरणः । सुऽवीरः । अवीरऽहा । प्र । चर । सोम । दुर्यान् ॥ १९ ॥ सोमः । धेनुं । सोमः । अर्वन्तं । आशुं । सोमः । वीरं । कर्मण्यं । ददाति । सदन्यं । विदथ्यं । सभेयं । पितृऽश्रवणं । यः । ददाशत् । अस्मै ॥ २० ॥ २२ ॥

अषाळ्हं युत्सु पृतनासु पप्रिं स्वर्षामप्सां वृजनस्य गोपाम् ।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवसं जयन्तं त्वामनु मदेम सोम ॥ २१ ॥
त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्व१ न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ २२ ॥
देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ॥ २३ ॥ २३ ॥

॥ ९२ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ जगती छन्दः ॥

॥ ९२ ॥ एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः ॥ १ ॥

अषाळ्हं । युत्ऽसु । पृतनासु । पप्रिं । स्वःऽसां । अप्सां । वृजनस्य । गोपां ।
भरेषुऽजां । सुऽक्षितिं । सुऽश्रवसं । जयंतं । त्वां । अनु । मदेम । सोम ॥ २१ ॥
त्वं । इमाः । ओषधीः । सोम । विश्वाः । त्वं । अपः । अजनयः । त्वं । गाः ।
त्वं । आ । ततंथ । उरु । अंतरिक्षं । त्वं । ज्योतिषा । वि । तमः । ववर्थ
॥ २२ ॥ देवेन । नः । मनसा । देव । सोम । रायः । भागं । सहसाऽवन् ।
अभि । युध्य । मा । त्वा । आ । तनत् । ईशिषे । वीर्यस्य । उभयेभ्यः । प्र ।
चिकित्स । गोऽइष्टौ ॥ २३ ॥ २३ ॥

एताः । ऊं इति । त्याः । उषसः । केतुं । अक्रत । पूर्वे । अर्धे । रजसः ।
भानुं । अंजते । निःऽकृण्वानाः । आयुधानिऽइव । धृष्णवः । प्रति । गावः ।
अरुषीः । यंति । मातरः ॥ १ ॥

उदपप्तन्नरुणा भानवो वृथा स्वायुजो अरुषीर्गा अयुक्षत ।
अक्रन्नुषासो वयुनानि पूर्वथा रुशन्तं भानुमरुषीरशिश्रयुः ॥ २ ॥
अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः ।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥
अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम् ।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ॥ ४ ॥
प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम् ।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥ ५ ॥ २४ ॥
अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥ ६ ॥

उत् । अपप्तन् । अरुणाः । भानवः । वृथा । सुऽआयुजः । अरुषीः । गाः । अयुक्षत । अक्रन् । उषसः । वयुनानि । पूर्वऽथा । रुशंतं । भानुं । अरुषीः । अशिश्रयुः ॥ २ ॥ अर्चंति । नारीः । अपसः । न । विष्टिऽभिः । समानेन । योजनेन । आ । पराऽवतः । इषं । वहंतीः । सुऽकृते । सुऽदानवे । विश्वा । इत् । अह । यजमानाय । सुन्वते ॥ ३ ॥ अधि । पेशांसि । वपते । नृतूःऽइव । अप । ऊर्णुते । वक्षः । उस्राऽइव । बर्जहं । ज्योतिः । विश्वस्मै । भुवनाय । कृण्वती । गावः । न । व्रजं । वि । उषाः । आवरित्यावः । तमः ॥ ४ ॥ प्रति । अर्चिः । रुशत् । अस्याः । अदर्शि । वि । तिष्ठते । बाधते । कृष्णं । अभ्वं । स्वरुं । न । पेशः । विदथेषु । अंजन् । चित्रं । दिवः । दुहिता । भानुं । अश्रेत् ॥ ५ ॥ २४ ॥ अतारिष्म । तमसः । पारं । अस्य । उषाः । उच्छंती । वयुना । कृणोति । श्रिये । छंदः । न । स्मयते । विऽभाती । सुऽप्रतीका । सौमनसाय । अजीगरिति ॥ ६ ॥

भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥ ७ ॥
उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम् ।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥ ८ ॥
विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति ।
विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥ ९ ॥
पुनःपुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना ।
श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥ १० ॥ २९ ॥
व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥ ११ ॥

भास्वती । नेत्री । सूनृतानां । दिवः । स्तवे । दुहिता । गोतमेभिः । प्रजाऽवतः ।
नृऽवतः । अश्वऽबुध्यान् । उषः । गोऽअग्रान् । उप । मासि । वाजान् ॥ ७ ॥
उषः । तं । अश्यां । यशसं । सुऽवीरं । दासऽप्रवर्गं । रयिं । अश्वऽबुध्यं । सुऽदंससा । श्रवसा । या । विऽभासि । वाजऽप्रसूता । सुऽभगे । बृहंतं ॥ ८ ॥
विश्वानि । देवी । भुवना । अभिऽचक्ष्य । प्रतीची । चक्षुः । उर्विया । वि । भाति ।
विश्वं । जीवं । चरसे । बोधयंती । विश्वस्य । वाचं । अविदत् । मनायोः ॥ ९ ॥
पुनःऽपुनः । जायमाना । पुराणी । समानं । वर्णं । अभि । शुंभमाना । श्वघ्नीऽइव ।
कृत्नुः । विजः । आऽमिनाना । मर्तस्य । देवी । जरयंती । आयुः ॥ १० ॥ २९ ॥
विऽऊर्ण्वती । दिवः । अंतान् । अबोधि । अप । स्वसारं । सनुतः । युयोति ।
प्रऽमिनती । मनुष्या । युगानि । योषा । जारस्य । चक्षसा । वि । भाति ॥ ११ ॥

पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत् ।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥ १२ ॥
उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १३ ॥
उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि ।
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ १४ ॥
युक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ १५ ॥ २६ ॥
अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ १६ ॥

पशून् । न । चित्रा । सुऽभगा । प्रथाना । सिंधुः । न । क्षोदः । उर्विया । वि । अश्वैत् । अमिनती । दैव्यानि । व्रतानि । सूर्यस्य । चेति । रश्मिऽभिः । दृशाना ॥ १२ ॥ उषः । तत् । चित्रं । आ । भर । अस्मभ्यं । वाजिनीऽवति । येन । तोकं । च । तनयं । च । धामहे ॥ १३ ॥ उषः । अद्य । इह । गोऽमति । अश्वऽवति । विभाऽवरि । रेवत् । अस्मे इति । वि । उच्छ । सूनृताऽवति ॥ १४ ॥ युक्ष्व । हि । वाजिनीऽवति । अश्वान् । अद्य । अरुणान् । उषः । अथ । नः । विश्वा । सौभगानि । आ । वह ॥ १५ ॥ २६ ॥ अश्विना । वर्तिः । अस्मत् । आ । गोऽमत् । दस्रा । हिरण्यऽवत् । अर्वाक् । रथं । सऽमनसा । नि । यच्छतं ॥ १६ ॥

यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।

आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ १७ ॥

एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी ।

उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ १८ ॥ २७ ॥

॥ ९३ ॥ रहूगणपुत्रो गोतम ऋषिः ॥ अग्नीषोमौ देवता ॥ आद्यस्तृच आनुष्टुभः ।

॥ ९३ ॥ अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।

प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १ ॥

अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।

तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २ ॥

अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम् ।

स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥ ३ ॥

यौ । इत्था । श्लोकं । आ । दिवः । ज्योतिः । जनाय । चक्रथुः । आ । नः । ऊर्जं । वहतं । अश्विना । युवं ॥ १७ ॥ आ । इह । देवा । मयःऽभुवा । दस्रा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी । उषःऽबुधः । वहंतु । सोमऽपीतये ॥ १८ ॥ २७ ॥

अग्नीषोमौ । इमं । सु । मे । शृणुतं । वृषणा । हवं । प्रति । सुऽउक्तानि । हर्यतं । भवतं । दाशुषे । मयः ॥ १ ॥ अग्नीषोमा । यः । अद्य । वां । इदं । वचः । सपर्यति । तस्मै । धत्तं । सुऽवीर्यं । गवां । पोषं । सुऽअश्व्यं ॥ २ ॥ अग्नीषोमा । यः । आऽहुतिं । यः । वां । दाशात् । हविःऽकृतिं । सः । प्रऽजया । सुऽवीर्यं । विश्वं । आयुः । वि । अश्नवत् ॥ ३ ॥

अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः ।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ ४ ॥
युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥ ५ ॥
आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥ ६ ॥ २८ ॥
अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम् ।
सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥ ७ ॥
यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्देवद्रीचा मनसा यो घृतेन ।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

अग्नीषोमा । चेति । तत् । वीर्यं । वां । यत् । अमुष्णीतं । अवसं । पणिं । गाः । अवं । अतिरतं । बृसयस्य । शेषः । अविन्दतं । ज्योतिः । एकं । बहुऽभ्यः ॥ ४ ॥ युवं । एतानि । दिवि । रोचनानि । अग्निः । च । सोम । सक्रतू इति सऽक्रतू । अधत्तं । युवं । सिन्धून् । अभिऽशस्तेः । अवद्यात् । अग्नीषोमौ । अमुञ्चतं । गृभीतान् ॥ ५ ॥ आ । अन्यं । दिवः । मातरिश्वा । जभार । अमथ्नात् । अन्यं । परि । श्येनः । अद्रेः । अग्नीषोमा । ब्रह्मणा । ववृधाना । उरुं । यज्ञाय । चक्रथुः । ऊं इति । लोकं ॥ ६ ॥ २८ ॥ अग्नीषोमा । हविषः । प्रऽस्थितस्य । वीतं । हर्यतं । वृषणा । जुषेथां । सुऽशर्माणा । सुऽअवसा । हि । भूतं । अथ । धत्तं । यजमानाय । शं । योः ॥ ७ ॥ यः । अग्नीषोमा । हविषा । सपर्यात् । देवद्रीचा । मनसा । यः । घृतेन । तस्य । व्रतं । रक्षतं । पातं । अंहसः । विशे । जनाय । महि । शर्म । यच्छतं ॥ ८ ॥

अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः ।

सं देवत्रा बभूवथुः ॥ ९ ॥

अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति ।

तस्मै दीदयतं बृहत् ॥ १० ॥

अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम् ।

आ यातमुप नः सचा ॥ ११ ॥

अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः ।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् ॥१२॥२९॥१४॥

॥ पञ्चदशोऽनुवाकः ॥

॥ ९४ ॥ ऋषिः-कुत्स आङ्गिरसः ॥ देवता-अग्नि छन्दः-जगति, त्रिष्टुप् ।

॥ ९४ ॥ इमं स्तोममर्हते जातवेदसे रथमिव सं महेमा मनीषया ।
भद्रा हि नः प्रमतिरस्य संसद्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १ ॥

अग्नीषोमा । सऽवेदसा । सहूती इति सऽहूती । वनतं । गिरः । सं । देवऽत्रा । बभूवथुः ॥ ९ ॥ अग्नीषोमौ । अनेन । वां । यः । वां । घृतेन । दाशति । तस्मै । दीदयतं । बृहत् ॥ १० ॥ अग्नीषोमौ । इमानि । नः । युवं । हव्या । जुजोषतं । आ । यातं । उप । नः । सचा ॥ ११ ॥ अग्नीषोमा । पिपृतं । अर्वतः । नः । आ । प्यायंता । उस्रियाः । हव्यऽसूदः । अस्मे इति । बलानि । मघवत्ऽसु । धत्तं । कृणुतं । नः । अध्वरं । श्रुष्टिऽमंतं ॥ १२ ॥ २९ ॥ १४ ॥

इमं । स्तोमं । अर्हते । जातऽवेदसे । रथंऽइव । सं । महेम । मनीषया । भद्रा । हि । नः । प्रऽमतिः । अस्य । संऽसदि । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ १ ॥

यस्मै त्वमायजसे स साधत्यनर्वा क्षेति दधते सुवीर्यम् ।
स तूताव नैनमश्नोत्यंहतिरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ २ ॥
शकेम त्वा समिधं साधया धियस्त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वमादित्याँ आ वह तान्ह्युश्मस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ३ ॥
भरामेध्मं कृणवामा हवींषि ते चितयन्तः पर्वणापर्वणा वयम् ।
जीवातवे प्रतरं साधया धियोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४ ॥
विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ५ ॥ ३० ॥
त्वमध्वर्युरुत होतासि पूर्व्यः प्रशास्ता पोता जनुषा पुरोहितः ।
विश्वा विद्वाँ आर्त्विज्या धीर पुष्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ६ ॥

यस्मै । त्वं । आऽयजसे । सः । साधति । अनर्वा । क्षेति । दधते । सुऽवीर्यं । सः । तूताव । न । एनं । अश्नोति । अंहतिः । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ २ ॥ शकेम । त्वा । संऽइधं । साधय । धियः । त्वे इति । देवाः । हविः । अदंति । आऽहुतं । त्वं । आदित्यान् । आ । वह । तान् । हि । उश्मसि । अग्ने । सख्ये । मा रिषाम । वयं । तव ॥ ३ ॥ भराम । इध्मं । कृणवाम । हवींषि । ते । चितयंतः । पर्वणाऽपर्वणा । वयं । जीवातवे । प्रऽतरं । साधय । धियः । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ४ ॥ विशां । गोपाः । अस्य । चरंति । जंतवः । द्विऽपत् । च । यत् । उत । चतुःऽपत् । अक्तुऽभिः । चित्रः । प्रऽकेतः । उषसः । महान् । असि । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ५ ॥ ३० ॥ त्वं । अध्वर्युः । उत । होता । असि । पूर्व्यः । प्रऽशास्ता । पोता । जनुषा । पुरःऽहितः । विश्वा । विद्वान् । आर्त्विज्या । धीर । पुष्यसि । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ६ ॥

यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित्सन्तळिदिवाति रोचसे ।
राज्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ७ ॥
पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः ।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ८ ॥
वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा के चिदत्रिणः ।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ९ ॥
यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः ।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १० ॥ ३१ ॥
अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन् ।
सुगं तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ११ ॥

यः । विश्वतः । सुऽप्रतीकः । सऽदृङ् । असि । दूरे । चित् । सन् । तळित्ऽइव । अति । रोचसे । राज्याः । चित् । अंधः । अति । देव । पश्यसि । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ७ ॥ पूर्वः । देवाः । भवतु । सुन्वतः । रथः । अस्माकं । शंसः । अभि । अस्तु । दुःऽध्यः । तत् । आ । जानीत । उत । पुष्यत । वचः । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ८ ॥ वधैः । दुःऽशंसान् । अप । दुःऽध्यः । जहि । दूरे । वा । ये । अंति । वा । के । चित् । अत्रिणः । अथ । यज्ञाय । गृणते । सुऽगं । कृधि । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ ९ ॥ यत् । अयुक्थाः । अरुषा । रोहिता । रथे । वातऽजूता । वृषभस्यऽइव । ते । रवः । आत् । इन्वसि । वनिनः । धूमऽकेतुना । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ १० ॥ ३१ ॥ अध । स्वनात् । उत । बिभ्युः । पतत्रिणः । द्रप्साः । यत् । ते । यवसऽअदः । वि । अस्थिरन् । सुऽगं । तत् । ते । तावकेभ्यः । रथेभ्यः । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं तव ॥ ११ ॥

अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १२ ॥
देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १३ ॥
तत्ते भद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः ।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ १४ ॥
यस्मै त्वं सुद्रविणो ददाशोऽनागास्त्वमदिते सर्वताता ।
यं भद्रेण शवसा चोदयासि प्रजावता राधसा ते स्याम ॥ १५ ॥
स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १६ ॥ ३२ ॥ ६ ॥

अयं । मित्रस्य । वरुणस्य । धायसे । अवऽयातां । मरुतां । हेळः । अद्भुतः । मृळ । सु । नः । भूतु । एषां । मनः । पुनः । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ १२ ॥ देवः । देवानां । असि । मित्रः । अद्भुतः । वसुः । वसूनां । असि । चारुः । अध्वरे । शर्मन् । स्याम । तव । सप्रथःऽतमे । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ १३ ॥ तत् । ते । भद्रं । यत् । संऽइद्धः । स्वे । दमे । सोमऽआहुतः । जरसे । मृळयत्ऽतमः । दधासि । रत्नं । द्रविणं । च । दाशुषे । अग्ने । सख्ये । मा । रिषाम । वयं । तव ॥ १४ ॥ यस्मै । त्वं । सुऽद्रविणः । ददाशः । अनागाःऽत्वं । अदिते । सर्वऽताता । यं । भद्रेण । शवसा । चोदयासि । प्रजाऽवता । राधसा । ते । स्याम ॥ १५ ॥ सः । त्वं । अग्ने । सौभगऽत्वस्य । विद्वान् । अस्माकं । आयुः । प्र । तिर । इह । देव । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंतां । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ १६ ॥ ३२ ॥ ॥ ६ ॥

इति प्रथमाष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अध्याय ६.

सूक्त ८१.

॥ ८१ ॥ ऋषि–रहूगणपुत्र गोतम । देवता–इन्द्र ॥

वृत्र का वध करनेवाले इन्द्रको आनन्दित और उत्साहित करनेके लिये मनुष्य उसकी स्तुति करता है। जिस समय लड़ाई उपस्थित होती है उस समय हम इन्द्र को पुकारते हैं और उनका सहारा लेते हैं। छोटी लड़ाई में भी हम उनको बुलाते हैं। वीरता के काम में आपने हमारी रक्षा[1] की है। १

हे शूर पुरुष, सचमुच, आपही सेना के नेता हैं। अनेक तरह से (भक्तों को) (वैभव) अर्पण करनेवाले आपही हैं। संसारमें जो छोटा[2] (दीन) मनुष्य है उसकी भी आप उन्नति करते हैं। जो भक्त आपको सोमरस अर्पण करता है उसको आप बहुत धन–जो आपके पास है–देते हैं और उसको ज्ञानी बनानेवाले आपही हैं। २

जिस समय लड़ाई उपस्थित होती है उस समय साहसी पुरुषों को आप चाहे जितनी सम्पत्ति देते हैं। लड़ाईमें शत्रुओंको हटानेवाले अश्वोंको आप अपने रथको जोतिये। आपने किसका वध कर डाला? आपने वैभवका किसको स्वामी बनाया है? सचमुच हे इन्द्र, आपने वैभव का स्वामी हमे बना दिया है। ३

हे इन्द्र, आप बलवान होनेके कारण बड़े श्रेष्ठ बन गये हैं। आपका लड़ने का ढङ्ग[3] कुछ और ही है। इस कारण शत्रु आपको डरते हैं। आपका बल बहुत बढ़ गया है। आपका सिर बहुत सुन्दर है। आपके पास पीले रंग के अश्व हैं। आप जैसे बड़े[4] देवने अपने दोनों कन्धोंपर लोहेका वज्र रखा है। ४

आपने भूलोक और रजो लोकों को भी व्याप्त किया है। द्युलोक में जो देदीप्यमान प्रदेश है उसको भी आपने व्याप्त[5] किया है। हे इन्द्र, आप सरीखे (इस जगत्में) दूसरा कोई भी नहीं। (इतनाही नहीं) किन्तु भूतकाल मे भी आप सरीखा दूसरा कोई नहीं था। और भविष्यत् काल मे भी आप सरीखा दूसरा कोई नहीं होगा। आप सबसे बलवान हैं। ५ (१)

---

१ वृत्रहा इन्द्रः मदाय शवसे नृभिः वावृधे. महत्सु आजिषु तं इत् उत ईं अर्भे हवामहे. सः वाजेषु नः प्र अविषत्।

२ वीर सेन्यः हि असि. भूरि पराददिः असि. दभ्रस्य चित् वृधः असि सुन्वते यजमानाय ते भूरि वसु शिक्षसि।

३ यत् आजयः उदीरते धृष्णवे धना धीयते. मदच्युता हरी युक्ष्व कं हनः? कं वसौ दधः? इन्द्र, अस्मान् वसौ दधः

४ क्रत्वा महान् अनुष्वधं भीमः शवः आ वावृधे। शिप्री हरिवान् ऋष्वः उपाकयोः हस्तयोः श्रिये आयसं वज्रं निदधे।

५ पार्थिवं रजः आ पप्रौ. दिवि रोचना बद्बधे. इन्द्र, न त्वावान् कश्चन। न जातः, न जनिष्यते. विश्वं अति ववक्षिथ।

जो इन्द्र अपने भक्तोंपर प्रीति करता है और अपने उपासकों के पोषणका प्रबन्ध करता है वह इन्द्र धन प्राप्त करनेकी हमे शिक्षा देवे । आपके पास जो बहुत धन हैं वह हमे दीजिये । हमपर आप कृपा रखिये ।   ६

अपने बलका सर्व[६] अंत:करणसे उपयोग करनेवाला इन्द्र जब प्रसन्न होता है तब सचमुच वह हमें चाहे जितनी गोएँ दे देता है । हे इन्द्र देव, सैंकडों प्रकारके धन के आप स्वामी बन जाइये । हमारी स्फूर्ति बढाइये । और हमें सम्पत्ति दीजिये ।   ७

हे शूर इन्द्र, जब तैयार किया हुआ सोमरस आपको दिया जाता है तब आप सन्तुष्ट होकर हमें बल प्रदान करते हैं और हमपर कृपा रखते हैं । सचमुच हमें यह विदित है कि आपके पास बहुत धन है । हमारी जो इच्छा है वह हम स्पष्ट रीतिसे बोल देते हैं इस कारण आप हमारी रक्षा कीजिये ।   ८

हे इन्द्र, जो मनुष्य आपके सहारेपर अवलम्बित है वे दिनपर दिन अपनी सब प्रकारकी सम्पत्ति[७] बढाते हैं । आप भक्त-वत्सल[८] होनेके कारण भक्तिहीन (पापी) मनुष्योंके पास जो सम्पत्ति है उसको भी आप जानते हैं । उन पापी मनुष्योंका धन छिनकर हमे ला दीजिये ।   ६ (२)

सूक्त ८२.

॥ ८२ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-इन्द्र ॥

हे उदार इन्द्रदेव, आप इधर आइये; और हमारी पुकार सुनिये । हमारे संबन्धमें आप (विरोध) भिन्न[१] भाव नहीं समझिये । मधुर वचनसे प्रार्थना करनेका तरीका आपने हमे सिखलाया है । इस लिये अब हम आपकी प्रार्थना करेंगे । हे इन्द्र, सचमुच आप अपने अश्व (जोतनेके लिये) तैयार कीजिये ।   १

---

६ यः अर्यः दाशुषे मर्ताभोजनं परादादाति, इन्द्र अस्मभ्यं शिक्षतु. ते भूरि वसु. वि भज. तव राधसः भक्षीय ।

७ ऋजुक्रतुः[१] मदेमदे गवां यूथं । नः ददिः हि; पुरु शतानि वसु उभयाहस्त्या सं गृभाय. शिशीहि. रायः आभर ।

८ शूर, सुते शवसे राधसे त्वा मादयन्ते. त्वा पुरुवसुं विद्म हि कामान् उप ससृज्महे. अथ नः अविता भव ।

९ इन्द्र, एते ते जन्तवः विश्वं वार्यं पुष्यन्ति. अदाशुषां जनानां वेदः[२] अर्यः[३] अन्तः ह्यसः हि. तेषां वेदः नः आ भर ।

१ मघवन् उपो. गिरः सु शृणुहि. मा अतथाः[१] इव यदा नः सूनृतावतः करः अर्थयासे इत् आत्. इन्द्र, ते हरी योज नु ।

वे आनन्द में रहे। उन्होंने अपना समय आनन्दमें व्यतीत किया। आपकी उनपर कृपा थी। इस लिये उन्होंने (आनन्द के साथ) अपना मस्तक हिलाया। उन विद्वान् लोगोंमें निजका तेज था; इस लिये उन्होंने नये स्तोत्र बनाये। और आपकी स्तुति की। इस लिये हे इन्द्र, आप अब अपने अश्व जोतिये। २

हे उदार इन्द्रदेव, आपका दर्शन बहुत मनोहर है। इस लिये हम आपकी स्तुति करते हैं। आप अपने रथमें[३] सब प्रकारका वैभव भरकर रख दीजिये। उस वैभव के साथ आप अपने भक्तों के पास आजाइये। हे इन्द्र, आप अपने अश्व अब जोतिये। ३

हे इन्द्रदेव, यह यज्ञपात्र सोमरस से भरा हुआ है जो आपको अश्व जोतनेके लिये तैयार करता है। जो मनुष्य सोमरस की रुचि जानते हैं उनको धेनुएँ[३] प्राप्त होती हैं। वे रथपर बैठनेके लिये तैयार होते हैं। इस लिये आप अपने अश्व (जोतनेके लिये) सिद्ध करके रखिये। ४

हे इन्द्र, आप अपने दहने तरफका घोडा रथ को जोतिये अथवा बाये तरफका घोडा रथको जोतिये। अपने रथ में बैठकर हमारा हवी आप स्वीकार कीजिये और आनन्द मनाकर अपनी पत्नी की ओर जाइये। सचमुच हे इन्द्र, आप अपना अश्व जोतिये। ५

आपकी स्तुति करके हम आपके अश्वों को आपही आप जोतनेकी स्फूर्ति कराते हैं। उनके गर्दन के बाल बहुत लम्बे हैं। आप इधर आइये। आप सब सम्पति अपने स्वाधीन रखते हैं। हृदय को प्रसन्न[४] करनेवाले सोम रस ने आपको आनन्दित किया है। हे वज्रधारी इन्द्र, पुषादेव और उसकी पत्नी के साथ आप प्रसन्न रहते हैं। ६ (३)

---

२ अक्षन्; अमीमदन्त; प्रियाः अव अधूषत. स्वभानवः विप्राः नविष्ठया मती अस्तोषत. इन्द्र, ते हरी योज नु।

३ मघवन्, सुसंदृशं त्वा वयं वन्दिषीमहि. स्तुतः पूर्णवन्धुरः[१] नूनं वशान् अनु प्र याहि. इन्द्र, ते हरी योज नु।

४ इन्द्र, हारियोजनं पूर्णं पात्र यः चिकेतति स घतं गोविदं[१] वृषणं रथं अधि तिष्ठाति. इन्द्र, ते हरी योज नु।

५ ते दक्षिणः युक्तः अस्तु, उत, शतक्रतो, सव्यः. तेन अन्धसः मन्दानः प्रियां जायां उपयाहि. इन्द्र, ते हरी योज नु।

६ ब्रह्मणा ते केशिना हरी युनज्मि. उप प्र याहि. गभस्त्योः दधिषे. रभसाः[१] सुतासः त्वा उत् अमन्दिषुः. वज्रिन् पूषणवान् पत्न्या सं अमदः।

सूक्त ८३.

॥ ८३ ॥ ऋषि–रहूगणपुत्र गोतम । देवता–इन्द्र ॥

हे इन्द्रदेव, जिन मनुष्योंपर आपकी कृपा बनी रहती है और जिनकी आप रक्षा करते हैं उनको सबसे पहले अश्व और धेनु मिलती हैं । जिस तरह शीघ्र बहनेवाला जल समुद्रमें जा मिलता हे उस तरह सचमुच आप उन मनुष्यों को बहुत धन देते हैं । १

जिस तरह समुद्र की चारों ओर पुण्यवती नदीयां फैलती हैं उसी तरह इन्द्र देव के आस पास उनके उपासक जम जाते हैं और भूलोक और रजोलोक की रक्षा करनेका आप का बल वे देखते हैं । भक्तिमान् मनुष्योंको सब देव उच्च पद को पोहचाते हैं । जिस तरह स्त्री की इच्छा करनेवाला पुरुष स्त्री को ढुंढता है उसी तरह देवों की स्तुति करनेवाले भक्तों को सब (देव) ढुंढते हैं । २

यज्ञचमस तैयार करके जो पुरुष अपने स्त्री के साथ इन्द्रकी पुजा करते हैं उन दोनोंपर आप कृपा करते हैं । जो मनुष्य आपकी आज्ञा मानते हैं उनको कोई भी नहीं सताता[3] और उनकी उन्नति होती है । जो उपासक आपको सोमरस अर्पण करता है उसको आप कल्याण करनेवाला बल प्रदान करते हैं । ३

भक्ति से[4] पुण्यकर्म करनेवाले अंगिरसों ने अग्नि को प्रदिप्त किया । वे सबसे पहले दीर्घायु बन गये । उनको पणी (राक्षस) की अनाज, अश्व धेनु और पशु आदि सब सम्पत्ति मिली । ४

पहिले पहल अथर्वणने यज्ञ करके धन कमानेका मार्ग बनाया । उसके बाद नीतिनियमके अनुसार वर्ताव करनेवाले तेजस्वी सूर्यने जन्म लिया । उशनाकाव्य धेनुओं को मार्गदर्शक ले आया । हम अब यम देव की पूजा करते हैं । यम देव को मृत्यु से बाधा नहीं है । ५

---

१ इन्द्र, तव ऊतिभिः सुप्रावीः[1] मर्त्यः प्रथमः अश्ववति गोषु गच्छति. यथा विचेतसः आपः अभितः सिन्धुं, भर्वायसा वसु त इत् पृणक्षि ।

२ देवीः आपः न होत्रिय उपयन्ति, रजः यथा विततं अवः[2] पश्यन्ति. देवयुं देवासः प्राचैः प्र नयन्ति, वरः इव ब्रह्मप्रिय जोषयन्ते ।

३ या यतस्रुचा मिथुना सपर्यतः द्वयोः उक्थ्यं वचः अधि अदधाः ते व्रते क्षेति असंयतः[3] पुष्यति. सुन्वते यजमानाय भद्रा शक्तिः ।

४ सुकृत्यया शम्या[4] ये इद्धाग्नयः, अगिराः प्रथमं वयः दधिरे आत्, नरः पणेः सर्व भोजनं अश्ववन्तं गोमन्त पशु आ स अविन्दन्त ।

५ अथर्वा प्रथमः यज्ञैः पथः तते. ततः व्रतपाः वेनः आ अजनि. उशना काव्यः गाः सचा आ अजत. यमस्य अमृत जात यजामहे ।

अच्छा सन्तान पैदा होनेके लिये उपासक लोक यज्ञकी तैयारी करते हैं । वे पहले दर्भघास को काटते हैं । उसके बाद वे स्तुति करते हैं । और बडे जोरसे गाते हैं जिस गानेका ध्वनि द्युलोक तक पहुँचता है । उसके बाद सोमवल्लीको शील बट्टेसे कूटकर और निचोडकर उसका रस निकाल लेते हैं । इस तरह जो यज्ञ किया जाता है उसको देखकर इन्द्र प्रसन्न होता है । ६ (४)

सूक्त ८४.

॥ ८४ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-मरुत् ॥

हे इन्द्र, आपके लिये यहां सोमरस तैयार[1] करके रखा है । इस लिये आप इधर आइये । आप बलवान् और धैर्यवान हैं । जिस तरह सूर्य अपने किरणों से द्युलोक और भूलोकों को व्याप्त करता है उस तरह मूर्तिमान स्फूर्ति[2] आपके शरीरमें घुस जाती है । १

जिसके बलका कोईभी प्रतिरोध नहीं कर सकता ऐसे इन्द्रके अश्व, ऋषिजनोंकी स्तुति सुननेके लिये और मनुष्यों के यज्ञों का स्वीकार करनेके लिये आपको यहां ले आते हैं । २

हे वृत्रका वध करनेवाले देव, आप अपने रथ पर सवार हो जाइये । स्तोत्र गाकर अपने रथको अपने अश्व जोतनेके लिये हम प्रार्थना करते हैं । यह सोमरस अपने मधुर[3] आस्वादसे हमारे तरफ आपका मन आकर्षित करें । ३

हे इन्द्रदेव, अमरत्व प्राप्त करनेवाले, और मूर्तिमान् आनन्द देनेवाले, उत्कृष्ट सोमरस का आप पान कीजिये । ४

सचमुच इन्द्रको उद्दिश्य पूजा अर्पण कीजिये । आपका सन्मान करनेके लिये हम स्तोत्र गाते हैं । इस सोमवल्ली को निचोडकर निकले हुए सोमरस ने आपको आनन्दित किया है । इस लिये आपके श्रेष्ठ बल को हम नम्रतासे प्रणाम करते हैं । ५ (५)

---

६ स्वपत्याय यत् बर्हिः वा वृज्यते, अर्कः वा श्लोकं दिवि अघोषते, यत्र कारुः[1] उक्थ्यः ग्रावा वदति तस्य इत् अभिपित्वेषु इन्द्रः रण्यति ।

१ इन्द्र, ते सोमः असावि.[1] शविष्ठ धृष्णो आ गहि. सूर्यः रश्मिभिः रजः न त्वा इन्द्रियं[2] आ पृणक्तु ।

२ अप्रतिधृष्टशवसं इन्द्रं इत्, ऋषीणां स्तुतीः च उप मानुषाणां यज्ञं च, हरी वहतः ।

३ वृत्रहन्, रथं आ तिष्ठ. ब्रह्मणा ते हरी युक्ता. ग्रावा वग्नुना[3] ते मनः अर्वाचीनं सु कृणोतु ।

४ इन्द्र, इमं ज्येष्ठं अमर्त्यं मदं सुतं पिब. शुक्रस्य धाराः त्वा अभि ऋतस्य सदने अभि अक्षरन् ।

५ नूनं इन्द्राय अर्चत, उक्थानि ब्रवीतन च सुताः इन्दवः अमत्सुः. ज्येष्ठं सह नमस्यत ।

जिस समय हे इन्द्र, आप रथ को अपने अश्व जोतते हैं उस समय रथ चलानेके लिये आपसे बढ़कर चतुर पुरुष कोई भी नहीं है । और वह बात भी सच है कि रथ के अश्व दौड़ानेमें आपसे बढ़कर दूसरा कोई भी मनुष्य नहीं है । ६

भक्ति से हवि अर्पण करनेवाले मनुष्यों को धन देनेवाले केवल आप ही है । आपका वज्र बहुत बड़ा है आपके बल को कोई रोक नहीं सकता । ७

इन्द्र की पूजा न करनेवाले मनुष्यों को आप पैरके नीचे घास की तरह दबाकर कुचल डालते हैं । सचमुच आप हमारी प्रार्थना कब सुनें गे ? ८

और सब अन्य[१] देवताओंको छोड़कर मनुष्य आपको सोमरस अर्पण करके आपकी पूजा करते हैं । सबको डरानेवाला बल केवल आपहीके पास[१] है । ९

जो उज्ज्वल धेनुएं इन्द्र के साथ रहती हैं वे बड़ी सुन्दर दिखाई देती हैं । वे सुख और शान्ति में रहती हैं । वे भी स्फूर्ति[१] उत्पन्न करनेवाले मधुर सोमरस का पान करती हैं । १० (६)

---

६ इन्द्र, यत् हरी यच्छसे त्वत् रथितरः नकिः. मज्मना त्वा अनु नकिः, स्वश्वः नकिः आनशे ।

७ यः दाशुषे मर्ताय वसु विदयते अप्रतिष्कुतः इन्द्रः ईशानः एकः इत् अंग ।

८ अराधसम् मर्तं क्षुम्पं[१] इव कदा पदा स्फुरत् ? अंग, इन्द्रः कदा नः गिरः शुश्रवत् ?

९ यः चित् हि त्वा सुतवान् बहुभ्यः[१] आ विवासति तत् उग्रं शवः इन्द्रः पत्यते[१] अंग ।

१० याः इन्द्रेण सयावरीः,[१] वृष्णा शोभसे मदन्ति, स्वराज्यं अनु वस्वीः गौर्यः इत्था स्वादोः पिबतः, मधः[१] पिबन्ति ।

वे चमकदार[11] धेनुएं इन्द्र के साथ रहना बहुत पसन्द करती हैं । इन्हींका दूध सोमरसमें मिलाया जाता है जिससे सोमरस अच्छा बनता है । इन्द्र इन धेनुओंपर प्यार करता है। सब विश्वपर इन्द्र का साम्राज्य है । इस कारणसे इन्द्र की धेनूभी बडी तेजस्वी दिखाई देती है। इन्द्र का वज्रभी फूर्तिला[11] और चमकदार दिखाई देता है । ११

वे ज्ञानी धेनुएं इन्द्र को नमस्कार करती हैं । और आपकी पुजा करती हैं । सबसे पहिले ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे वे तेजस्वी धेनुएं इन्द्र की हरएक आज्ञा को मानती हैं । १२

जिसके बल के सामने डरके मारे शत्रु खडे भी नही रह सकते ऐसे इन्द्र ने दधिचि मुनिकी अस्थियों द्वारा नव्वानवे वृत्रोंका वध किया । १३

जो अश्वका शिर पर्वत की गुहामें छिपा हुआ था वह इन्द्रको शरणाहृतके बीचमें मिला । १४

त्वष्टादेव के वृषभ का नामभी मालूम नहीं था । तथापि उसी गुहामें उसका पता मालूम हुआ । चन्द्र के घरमें भी वह मिला । १५ (७)

वे वृषभ सामर्थ्यवान्[13] और तेजस्वी है । वे किसीके काबूमें[14] रह नहीं सकते । उनका मुख[15] और बदन[16] पैनेदार होनेपर भी वे लोगो को सुख देते हैं । वे इन्द्र की आज्ञा और सत्यनियमों को मानते हैं । सचमुच जो कोई उनकी सेवा[17] करते है वे दीर्घआयु बन-जाते हैं । १६

(इन्द्र को पास देखकर) (शत्रुसे) कौन डरेगा ? किसको भीति उत्पन्न होगी ? (किसीको नहीं ।) जब इन्द्र अपनी पूजा करनेवाले भक्तोंके पास होता है तब आप स्वयं उनको सम्पत्ति और सन्तति देते हैं । आप विना प्रार्थना किये उनको सेवकजन[18] देते हैं । उनके शरीर और चीजों की रक्षा आप करते हैं । किसीके लिये प्रार्थना करनेकी किसीको आवश्यकता नहीं होती । १७

---

११ ताः पृश्नय.[1] अस्य पृशनायुव.[11] सोमं श्रीणन्ति इन्द्रस्य प्रियाः स्वराज्यं अनु वस्वीः धेनव. सायक वज्र हिन्वन्ति.[11] ।

१२ ताः प्रचेतसः नमसा अस्य सह सपर्यन्ति. पूर्वचित्तये स्वराज्य अनु वस्वी. अस्य पुरुणि व्रतानि सश्चिरे ।

१३ अप्रतिष्कुतः इन्द्र. दधीच आस्थभि. नव नवतीः वृत्राणि जघान ।

१४ पर्वतेषु अपश्रित यत् अश्वस्य शिरः इच्छन् तत शर्यणावति विदत् ।

१५ त्वष्टुः गो अपीच्य नाम अत्र अह अम वत. चन्द्रमसः गृहे इत्था ।

१६ शिमीवतः[13] भामिन दुर्हृणायून[11] आसन्निषून्[13] हृत्स्वस.[11] मयोभून् गाः ऋतस्य धुरि अद्य कः युक्त ? यः एषां भृत्यां[11] ऋणधत् सः जीवान् ।

१७ कः ईषते ? कः तुज्यते ? कः बिभाय ? इन्द्रं अन्ति सत क मसते ? कः तोकाय कः इभाय[11] उत राये तन्वे अधिब्रवत् ? कः जनाय ?

हवि और घी से अग्नि की पुजा कौन करता है? नियत समयपर यज्ञचमस ने आपको कौन हवि अर्पण करता है? देव यज्ञ का सामान किसके लिये ले जाते हैं? (आपके लिये) कौनसा उपासक यज्ञ अर्पण करके आपका ध्यान नहीं करता है। १८

हे देव, आप बड़े पराक्रमी है आप बड़े श्रेष्ठ है। आपने मनुष्यों का बड़ापन बढाया है। हे उदार इन्द्र, हम निश्चय से कह सकते हैं कि आपके बिना सुख देनेवाला दूसरा कोई भी नही है। १९

हे सुखरूप देव, आपकी कृपा हमारेपर हमेशा के लिये बनी रहे; और आप हमारी रक्षा कीजिये। इस व्रत का भंग कभी नहीं कीजिये। मनुष्य जाति की रक्षा करनेवाले हे देव, सब सम्पति हमारे पल्लेमें फेक दीजिये। २० (८) (१३)

अनुवाक १४.

सूक्त ८५.

॥ ८५ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-मरुत् ॥

जब अद्भुत पराक्रम करनेवाले और शीघ्रसंचारी रुद्र के पुत्र अपने मार्गसे चले जाते हैं तब वे अपनी काया स्त्रियों की तरह सजाते हैं। सचमुच उन मरुत् देवो ने स्वर्ग और पृथ्वी को उग्र (श्रेष्ठ) स्थानपर पहुंचाया है। वे बड़े होशियार[1] और शूर है। वे यज्ञ के समय आनन्दित होते है। १

बढते बढते वे श्रेष्ठ हुए। उन रुद्रों ने द्युलोक में अपना स्थान नियत किया। अर्क देव की उपासना करके और शरीर हृष्टपुष्ट[2] करके उन पृश्नीके पुत्रों ने बहुत बल और तेज सम्पादित किया। २

---

१८ हविषा घृतेन अग्नि कः ईट्टे? ध्रुवेभिः ऋतुभिः स्रुचा यजाते? देवाः होम आशु कस्मै आ वहान्? सुदेवः कः वीतिहोत्रः[18] मंसते?

१९. शविष्ठ, त्वं अंग देव. मर्त्यं प्र शंसिषः[19] मघवन् इन्द्र त्वत् अन्यः मर्डिता न अस्ति ते वचः ब्रवीम।

२० मा ते राधांसि, मा ते ऊतयः अस्मान् कदाचन, वसो, दभन्; मानुष, नः च चर्षणिभ्यः विश्वा वसूनि आ उपमिमीहि।

१ ये सप्तयः सुदंससः रुद्रस्य सूनवः यामन् जनयः न प्र शुम्भन्ते मरुतः हि रोदसी वृधे चक्रिरे, वीराः घृष्वयः[1] विदथेषु मदन्ति।

२ उक्षितासः ते महिमानं आशत. रुद्रासः दिवि सदः अधि चक्रिरे. अर्कं अर्चन्तः इन्द्रियं[2] जनयन्तः पृश्निमातरः श्रियः अधिदधिरे।

जिस समय ये धेनुओं के देदीप्यमान् पुत्र निजको सजाते हैं उस समय वे अपने शरीरपर उज्वल अलंकार पहिनते हैं। वे दुष्टलोगोंका[3] नाश करते हैं; और उनके मार्गोंपरसे घी का प्रवाह बहता हैं। ३

ये परमपूज्य मरुत्-देव निजके बल से अचल[4] वस्तुओं को भी चल करते हैं और अपने आयुधों से शोभायमान दिखाई देते हैं। जिस समय वे बलवान् मरुत्-देव एकत्र हो जाते हैं और अपने रथ को चित्र विचित्र रंग की हरिन जोतते हैं उस समय उनकी गति में मनकासा वेग आ जाता है। ४

जिस समय वे मरुत्-देव अपने रथ को चित्र-विचित्र रंग की हरिनी जोतते हैं और बड़े वेग से अपना आयुध फराते[5] हैं उस समय तेजों की लहरे पृथ्वीपर सब दूर फैलती हैं और भीरनीके भिगो हुए चमडे की तरह वे पृथ्वी को अपने प्रवाहों में डुबाते हैं। ५

हे मरुत्-देव, शीघ्रगामी और वेग से कूदनेवाले[6] आपके अश्व आपको हमारे तरफ ले आवे। जब आप आते हैं तब (सोमरस पीनेके लिये) तैयार होकर आइये। हमारे आसनपर बैठिये। आपके लिये अच्छी जगह तैयार की गयी है। हमारे मधुर हवियों का आस्वाद लीजिये। ६ (९)

निजके बल[7] के कारण मरुत्-देवों की उन्नति हुई। स्वर्गतक वे उपर जा पहुँचे। उन्होंने निज के लिये एक विस्तीर्ण घर बनाया। जिस समय शत्रुओं के गर्वका खण्डन करनेवाले मरुत्-देवोंको विष्णु ने सहायता दी उस समय वे देव पक्षीकी तरह अपने प्रिय कुशासनपर जाकर बैठे। ७

---

३ यत् गोमातरः अञ्जिभिः शुभयन्ते शुभ्राः विरुक्मनः तनूषु दधिरे. विश्वं अभिमातिनं अप बाधन्ते. एषां वर्त्मानि घृत अनु रीयते.

४ ओजसा अच्युता चित् प्रच्यावयन्तः ये सुमखासः ऋष्टिभिः वि भ्राजन्ते मरुतः यत् वृषव्रातासः रथेषु पृषतीः आ अयुग्ध्वं मनोजुवः

५ मरुतः यत् वाजे अद्रिं रंहयन्तः पृषतीः रथेषु प्र अयुग्ध्वं अरुषस्य धाराः विष्यंति उत उद्भिः चर्म इव भूम वि उन्दन्ति।

६ मरुतः, रघुष्यदः रघुपत्वानः सप्तयः वः आ वहन्तु. बाहुभिः प्र जिगात. बर्हिः आ सीदत. व उरु सदः कृतं. मध्वः अन्धसः मादयध्वं।

७ ते स्वतवसः महित्वना अवर्धन्त. नाकं आ तस्थुः. उरु सदः चक्रिरे. यत् विष्णुः मदच्युतं वृषणं आवत् ह प्रिये बर्हिषि वयः न अधि सीदन्।

शत्रुओंपर ओरसे चढ़ाई करनेवाले वीर पुरुषों की तरह और लडाइ में हमला करके कीर्ति कमानेवाले शूर पुरुषों की तरह वे मरुत्–देव बड़े ओरसे लड़कर परम कष्ट[8] उठाते हैं। संसार के सब लोक इन मरुत्–देवों से डरते हैं । राजाओं की तरह उनके शरीर में बड़ा जोर दिखाई देता है। ८

जिस समय कुशल[9] त्वष्टा देव ने सुवर्ण का सुन्दर पैनेदार वज्र बनाया उस समय वीरता[10] का काम[11] करनेके लिये इन्द्र ने उसका स्वीकार किया, उससे वृत्र का वध किया और उदक के प्रवाह का मार्ग खुला कर दिया। ९

वे बलवान मरुत् कुएँको नीचेसे ऊपर ले आये। दृढ पहाड को भी उन्हो ने तोड डाला। सोमरस का पान करके और उसी में मग्न होकर उन उदार मरुतों ने मीठी वेणुध्वनि[13] की; और कई आश्चर्यकारक काम किये। १०

उस वक्त कूपको वे ऊपर ले गये। और प्यासे गोतमों के लिये उन्होंने पानी का झरना[14] बहा दिया। वे सुन्दर मरुत अपने बल से अपने उपासकों की रक्षा करनेके लिये चले गये। और अपने तेज से उन (मरुतोंने) उन विद्वान् ऋषिओं की इच्छा पुरी की। ११

आपकी स्तुति करनेवालो को जो वैभव आप देते हैं उसमें त्रिगुणा[15] वैभव आपको दान अर्पण करनेवालो को दीजिये और हमे भी उसका लाभ मिले। हे शूर मरुत्–देव, सन्तति और वैभव हमे दीजिये। १२ (१०)

---

८ शूराः इव इत्, जग्मयः युयुधयः न, श्रवस्यवः न, पृतनासु येतिरे.[2] मरुद्भ्यः विश्वा भुवना भयन्ते नरः राजानः इव त्वेषसन्दृशः

९ यत् स्वपाः[3] त्वष्टा सहस्रभृष्टिं हिरण्ययं सुकृतं वज्रं अवर्तयत्, नरि[10] अपांसि[11] कर्तवे इन्द्रः धत्ते वृत्रं अहन् अपां अर्णवं निः औब्जत्।

१० ते ओजसा अवतं[12] ऊर्ध्वं नुनुद्रे दादृहाणं पर्वतं चित् विबिभिदुः सुदानवः मरुतः सोमस्य मदे वाणं धमन्तः रण्यानि चक्रिरे।

११ जिह्मं अवतं तया दिशा नुनुद्रे. तृष्णजे गोतमाय उत्सं[14] असिंचन्. चित्रभानवः अवसा आ गच्छन्ति इम्, धामभिः विप्रस्य कामं तर्पयन्त।

१२ या शर्म वः शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि[15] दाशुषे अधि यच्छत. मरुतः तानि अस्मभ्यं वि यन्त. वृषणः सुवीरं रयिं नः धत्त।

सूक्त ८६.

॥ ८६ ॥ ऋषि–रहूगणपुत्र गोतम । देवता–मरुत् ॥

हे तेजवान्[1] मरुत, द्युलोक से आकर जिसके घर[1] में आप सोमरस का पान करते हैं उसके, आप रक्षा करनेवाले बन जाते हैं। १

यज्ञ करनेवाले भक्तों के तरफ दृष्टि देकर और विद्वान् उपासकों की स्तुति[2] का स्वीकार करके, हे मरुत्–देव, आप हमारी पुकार सुनिये। २

आप अपने भक्तों को बलवान् बनाते हैं और उनका सन्मान करते हैं। जहां धेनुएं बहुत है वहां उनको आप रहने के लिये स्थान[3] देते हैं। ३

वे यज्ञमें[4] इन पवित्र दर्भ–घासपर सोमरस निकालके रख देते हैं और वे स्तुति और सुन्दर गायन गाते हैं। ४

सब मनुष्यों[5] में जो भक्त श्रेष्ठ है उसकी पुकार मरुत्–देव सुने। उनका वैभव इतना बड़ा है कि वह सूर्यतक पहुँचता है। ५ (११)

---

१ विमहसः[1] मरुतः दिवः यस्य क्षये[1] पाथ हि सः जनः सुगोपातमः।

२ यज्ञवाहसः यज्ञैः वा विप्रस्य मतीनां[2] वा, मरुतः, हवं श्रृणुत।

३ उत यस्य वाजिनः अनु विप्रं अतक्षत सः गोमति व्रजे[3] गन्ता।

४ दिविष्टिषु[4] अस्य वीरस्य बर्हिषि सोमः सुतः उक्थं मदः च शस्यते।

५ यः विश्वाः चर्षणीः[5] अभि भुवः अस्य श्रोषन्तु, इषः सूरं चित् सश्चुषीः।

ध्यान—पूर्वक आप मनुष्यों की रक्षा करते हैं। इस लिये बहुत दिनोंसे हम आपको हवि अर्पण करते हैं। ६

हे पूजनीय[७] मरुत्—देव, जिन मनुष्यों के हवी का आप स्वीकार करते हैं वे निश्चयसे भाग्यवान् होते हैं। ७

हे बलवान् मरुत्—देव, आपको विदित ही है कि आपके भक्तजन कितने परिश्रम[८] उठाकर आपकी स्तुति करते हैं, आपके उपासकों की आपपर कितनी प्रीति है और वे किस बात[की] इच्छा करते हैं। ८

हे बलवान् मरुत् देव, विद्युत्—प्रहार से राक्षसों का नाश करके आप हमे आप के बल[का] अनुभव[९] दिखलाइये। ९

इस गहिरे अन्धःकारको हटा दीजिये। और सब राक्षसों को भगा दीजिये। जो प्रकाश हम चाहते हैं वही हमे दीजिये। १० (१२)

---

६ मरुत; चर्षणीनां अवोभिः पूर्वीभिः शरद्भिः ददाशिम हि।

७ प्रयज्यवः मरुतः, यस्य प्रयांसि[*] पर्षथ सः मर्त्यः सुभगः अस्तु।

८ सत्यशवसः नरः शशमानस्य स्वेदस्य[*] वा वेनतः कामस्य विद।

९ सत्यशवसः महिमना यूयं तत् आविः[*] कर्त. विद्युता रक्षः विध्यत।

१० गुहा तमः गूहत विश्वं अत्रिणं वियात. यत् उश्मसि ज्योतिः कर्त।

सूक्त ८७.

॥ ८७ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता-मरुत् ॥

जब (द्युलोक में) प्रकाश[1] दिखाई देता है तब (अन्तरिक्ष में) ज्योतिः भी दिखाई देती है। उसी तरह मरुत्-देव भी अपने बलसे दिखाई देते हैं (प्रकट होते हैं)। इनका बल बहुत बड़ा है। इनका तेज बड़ा सुन्दर है। और वे बड़े पराक्रमी हैं। वे किसीके सामने अपना सिर नहीं नमाते। वे अपने स्थानसे हिलनेवाले नहीं हैं। इनका स्वभाव भी बड़ा सीधा है। इस कारण से सब लोक उनपर प्रेम करते हैं। १

हे मरुत्-देव, जब पक्षी की तरह किसी अद्भुत् मार्गसे आकर आप भागनेवाले[3] मेघों को पृथ्वी के पास[2] रोकते हैं तब आप के रथपर जल का सिञ्चन होता है और पृथ्वीपर पानी गिरता है। अपने भक्तों की विनती का स्वीकार करके मधु-सदृश उदकों की वृष्टि कीजिये २

जब वे बाहर चले जाते हैं तब सुन्दर दिखाई देनेके लिये वे अपने अलंकार पहिनते हैं। जब वे गमन करते हैं तब अस्थिर वस्तुकी तरह पृथ्वी हिलने लगती है। खेलने और कूदनेवाले, पृथ्वी को हिलानेवाले, चमकीले शस्त्रों को पास रखनेवाले और सब शत्रुओं को भगानेवाले, हे मरुत्-देव, अपना प्रभाव गाने के लिये लोगों को बाध्य कराते हैं। ३

स्वयं-संचार[4] करनेवाले, रक्तवर्ण के अश्वोंपर आरूढ होनेवाले, और जवान मरुत्गण सब वस्तुओंपर अपनी सत्ता चलाते हैं। वे मरुत्-देव नानाप्रकार के बल के स्वामी हैं। ४

पुराने काल में जन्म पाये हुए पितरों का नाम लेकर हम कह सकते हैं कि सोमरस का दर्शन[5] होते ही उसका पान करनेके लिये मरुत्-देव पीने के लालच से आगे बढ़ते हैं। युद्ध के समय बड़ी पुकार करके इन्द्र की सहायता करने के कारण उन्होंने यज्ञ में बड़ा नाम पाया है। ५

---

१ प्रत्वक्षसः प्रतवसः विरप्शिनः अनानताः अविथुराः ऋजीषिणः जुष्टतमासः नृतमासः के चित् उस्राः इव स्तृभिः[1] अञ्जिभिः वि आनञ्जे।

२ मरुतः यत् वयः इव केन चित् पथा उपह्वरेषु[2] यथि[3] अचिध्वं, कोशाः वः रथेषु उप आ श्चोतन्ति अर्चते मधुवर्णं घृतं उक्षत।

३ यत् यामेषु शुभे युंजते ह एषां अज्मेषु भूमिः विथुरा इव प्र रेजते क्रीळयः, धुनयः भ्राजदृष्टयः धूतयः ते स्वयं महित्वं पनयन्त।

४ स्वसृत्[4] पृषदश्वः युवा अया ईशानः सः गणः तविषीभिः आवृतः हि. सत्यः ऋणयावा अनेद्यः असि. अध वृषा गणः अस्याः धियः प्राविता।

५ प्रत्नस्य पितुः जन्मना वदामसि सोमस्य चक्षसा[5] जिह्वा प्र जिगाति. यत् ईं ऋकाणः शमि इन्द्रं आशत आत् नामानि याज्ञियानि दधिरे।

हमेशा उत्तम हविपानेवाले मरुत्–देव, आप किसकी सुन्दरता और तेजस्वीता बढ़ावेंगे? किस को प्रकाशका लाभ दे देंगे? और किसकी प्रशंसा[६] करेंगे? (अपने भक्तों की)। शीघ्र–गामी[७], निडर और शस्त्र–अस्त्र धारन करनेवाले मरुत्–देव अपने प्रिय स्थानकी ओर चले गये। ६ (११)

सूक्त ८८.

॥ ८८ ॥ ऋषि–रहूगणपुत्र गोतम । देवता–मरुत् ॥

जिस रथ के अश्व पंखों की भांति उड़ते हैं, जिसमें बहुतसे आयुध भरे हुए हैं, जिसकी बहुत स्तुति की गयी है और जिसमें बिजली चमकती है ऐसे रथ में बैठकर, हे मरुत्–देव, आप इधर आइये। हे कुशल और चतुर मरुत्–देव, बहुतसा पोषण[१] का सामान साथ लेकर पक्षीकी तरह वहां से उड़कर यहां आइये। १

रथ को वेग से ले जानेवाले[१] अपने लाल और पीले अश्वोंपर आरूढ होकर ये मरुत्–देव, किस पुरुषका घर शोभायमान करने के लिये चले जाते हैं। जिनके हाथमें आयुध[२] धारण करके यह मरुत्–गण सुवर्णकी तरह सुन्दर दिखाई देता है। इन मरुत् देवों ने रथचक्रों[४] से जमीन चीर डाली है। २

किसको सुशोभित करनेके लिये आपके शरीरपर शस्त्रास्त्र चमकते हैं? जिस तरह लता आदि अपना सिर ऊपर उठाती हैं उसी तरह आपके भक्त आपकी ओर (ऊपर) अपना स्तोत्र[१] भेज देते हैं। जिनका जन्म बड़े वैभव में हुआ है और जिनमें तेज और बल भरा हुआ है ऐसे मरुत्–देव, केवल आपही के लिये आप के उपासक यज्ञपत्थरका[६] (सोमरस निकालनेका) काम शुरू करते हैं। ३

उदक की वर्षा[७] करनेका सामर्थ्य रखनेवाली दिव्य स्तुति की ओर, हे गौतम, प्रकाश देनेवाले दिन आकर्षित होते हैं। स्तुति करनेवाले गोतम भी अपने स्तवनके बल से जल पीनेके लिये वे झरनें को[८] भी ऊपर ले आये। ४

---

६ सुखादयः श्रियसे भानुभिः कं सं मिमिक्षिरे? ते रश्मिभिः (कं सं मिमिक्षिरे)? ते ऋक्वभिः[६] (कं सं मिमिक्षिरे)? हस्मिषः[७] अभीरवः वाशीमन्तः प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः विद्रे।

१ मरुतः विद्युन्मद्भिः स्वर्कैः ऋष्टिमद्भिः अश्वपर्णैः रथेभिः आ यात. सुमायाः वर्षिष्ठया इषा[१] वयः न नः आ पप्तत।

२ अरुणेभिः पिशङ्गैः रथतूर्भिः[१] अश्वैः कं वरं यान्ति? स्वधितीवान्[२] रुक्मः न चित्रः रथस्य पव्या[४] भूम जङ्घनंत।

३ कं श्रिये वः तनूषु अधि वाशीः? वना न मेधा[१] ऊर्ध्वा कृणवन्ते. सुजाताः तुविद्युम्नाः कं अद्रिं[६] धनयन्ते? युष्मभ्यं।

४ गृध्राः वार्कार्यां[७] इमां देवीं धियं वः अहानि परि आ अगुः ब्रह्म कृण्वन्तः गोतमासः पिबध्यै अर्कैः. उत्सधिं[८] ऊर्ध्वं नुनुद्रे।

सुवर्णी चक्र को हाथ में पकडनेवाले और लोहे की तरह मजबूत दांतवाले वराह[9] सब जगह संचार करते हैं और प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। हे मरुत्-देव, गोतमों ने जो स्तोत्र गाया[10] वह बहुतही यश देनेवाला है। और दूसरी कोई भी स्तुति उसकी बराबरी[11] नहीं कर सकती। ५

हे मरुत्-देव, यह हमारी स्तुति आपके मन को संतोष[12] देवे। अन्य भक्तों की तरह हमारी स्तुति आपका स्तोत्र गानें में उद्यत हुई है। सब प्रकार के वैभव के आप स्वामी है। इस कारण यह सर्व साधारण[13] बात है कि सब उपासक लोग आपकी स्तुति करते हैं। ६ (१४)

सूक्त ८९.

॥ ८९ ॥ ऋषि-रहूगणपुत्र गोतम । देवता—विश्वेदेव ॥

जिस सामर्थ्य का प्रतिरोध कोई नहीं कर सकता जिसका पराभव कोई नहीं कर सकता ऐसा कल्याण-करनेवाला और यश-देनेवाला बल हमेशा हमे प्राप्त होवे। हम देवोंकी स्तुति करते हैं। इस लिये वे हमारी कीर्ति बढ़ावे और हमारी हमेशा[1] रक्षा करें। १

सीधे स्वभाव के देवोंकी कृपा और उदारता[2] हमेशा हमारे तरफ दौड़े। देवों की मित्रता का हमे कुछ उपयोग होवे। देव हमारी आयु बढ़ावे जिससे हमारे प्राण बहुत दिनतक जीवित रहे। २

भग, मित्र, अदिति, विजयी दक्ष और अर्यमा, वरुण, सोम, और दोनों अश्विनों को भी एक पुराणा स्तोत्र[3] गाकर हम बुलाते हैं। दयालु सरस्वति हमे सौख्य[4] अर्पण करे। ३

---

५ मरुतः, हिरण्यचक्रान् अयोदंष्ट्रान् विधावतः वराहून्[9] वः पश्यन् यत् गोतमः सस्वः[10] एतत् त्यत् योजनं अचेति[11]

६ मरुतः एषा स्या वः अनुभर्त्री[12] वाघतः वाणी न प्रति स्तोभति. गभस्त्योः स्वधां अनु आसां वृथा[13] अस्तोभयत्।

१ अदब्धासः अपरीतासः उद्भिदः भद्राः क्रतवः नः विश्वतः आ यन्तु, यथा देवासः सदं इत् नः वृधे दिवेदिवे अप्रायुवः[1] रक्षितारः असन्।

२ ऋजूयतां देवानां भद्रा सुमतिः देवानां रातिः[2] नः अभि निवर्तताम्. देवानां सख्यं वयं उप सेदिम. जीवसे देवाः नः आयुः प्र तिरन्तु।

३ वयं तान् भगं, मित्रं, अदितिं, अस्रिधं दक्षं, अर्यमणं, वरुणं, सोमं, अश्विना, पूर्वया निविदा[3] हूमहे. सुभगा सरस्वती नः मयः[4] करत्।

वे इन्द्र, मरुत्, पूषा, और भग्-देव पूजा करने योग्य हैं। वे हमारे कल्याण[४] के लिये अच्छा मार्ग दूंढते हैं। ४

अपने अपने मार्गों से[४] गमन करनेवाले हे पूषा और विष्णु-देव, हमारी प्रार्थना सुनिये और ऐसा काम कीजिये जिससे हमे विशेषकरके[५] धेनुओंका लाभ होवे। और आप हमें सुख प्रदान कीजिये। ५ (१७)

जो नीति-नियमोंका[६] योग्य रीतिसे पालन करते हैं उनके लिये कल्याणकारक वायु बहते हैं; और नदीयोंका पाणी भी मधुर होकर बहता है। हमारी ओषधि हमारे लिये मधुर होवे। ६

रात और प्रातःकाल हमारे लिये मधुर होवे। हमारे लिये भूलोक और रजोलोक मधुरता-से भरे हुए रहे। हमारा पिता द्युलोक हमें सुख प्रदान करे। ७

हमारे लिये वनस्पति मधुर होवे और सूर्य भी अच्छी तरह प्रकाशित होवे। धेनुएं हमें मधुर दुध देवे। ८

मित्र हमे सुख देनेवाला होवे। वरुण भी हमे सुख देनेवाला होवे। अर्यमा भी हमें सुख देनेवाला होवे। इन्द्र और बृहस्पति हमे सुख प्रदान करे। सब प्रदेशोंपर संचार[९] करनेवाला विष्णु हमे सुख देनेवाला होवे। ९ (१८)

---

४ द्य मामः इन्द्र. मरुतः, पूषा, भगः नः सुवितायं पथः वि चियन्तु।

५ उत, एवयावः पूषन् विष्णो, न धियः गोअग्राः, नः स्वस्तिमतः कर्त।

६ ऋतायते वाताः मधु, सिन्धवः मधु क्षरन्ति, नः ओषधीः माध्वीः सन्तु।

७ उत, नक्तं उषसः मधु, पार्थिवं रजः मधुमत्, नः पिता द्यौः नः मधु अस्तु।

८ वनस्पतिः नः मधुमान्, सूर्यः नः मधुमान्, गावः नः माध्वीः भवन्तु।

९ मित्रः नः शं, वरुणः अर्यमा नः शं भवतु. इन्द्रः बृहस्पतिः नः शं, उरुक्रमः विष्णुः नः शं।

सूक्त ९१.

॥ ९१ ॥ ऋषि–रहूगणपुत्र गोतम । देवता– सोम ॥

हे सोम–देव, आप बड़े ज्ञानी और विचारवान् हैं। आप ही (सब जगत् को) सीधे मार्ग की तरफ ले जाते हैं। हे, इन्दो, आप ही सरल मार्ग बतलानेवाले[1] होने के कारण हमारे ज्ञानी पुरखों को देवगण की ओरसे बड़े बड़े पारितोषिक मिले हुए हैं। १

हे सोम–देव, नाना प्रकार के बल आप में एकत्रित होने के कारण आप बड़े बलवान् हुए है। आप सर्वज्ञ हैं। आपमें भिन्न भिन्न शक्तियां[2] एकत्रित होनेके कारण आप बड़े शक्तिमान् बने हुए हैं। आप बड़े होनेके कारण नाना प्रकार के बलों के आप स्वामी बन गये। नाना प्रकारके बल एकत्रित होनेके कारण आप बड़े बलवान् बन गये। नाना प्रकार–की उज्ज्वल सम्पत्ति आपको प्राप्त हुई। इसके कारण आप सम्पत्तिमान् बन गये। आप सब मानवोंपर (कृपा) दृष्टि रखते हैं। २

जो जो नियम[3] पृथ्वीपर जारी है वे सब राजा वरुण के बने हुए है। हे सोम आपका रहनेका ठिकाना बहुत ही बडा है। आप बड़े देदीप्यमान है। हे सोम–देव, आप मित्र–देव की नाई सबको प्रिय है और अर्यमा–देव की नाई सामर्थ्यवान् है। ३

द्युलोक, पृथ्वी, और पहाड़ोंपर औषधि और उदक में जहां जहां आपकी रहनेकी जगह होगी वहां वहां सब जगह, हे सोमराज, गुस्सा[4] छोडकर और प्रसन्न होकर, हमारे हवियों का स्वीकार कीजिये। ४

हे सोम, आप ही (सबके) दयालु स्वामी हैं। आप राजा हैं। आप वृत्र का वध करनेवाले हैं। और आप ही कल्याण करनेवाली श्रेष्ठ शक्ति हैं। ५ (१६)

---

१ सोम, त्वं प्र चिकितः मनीषा, त्वं रजिष्ठं पन्थां अनु नेषि. इन्दो, तव प्रणीती नः धीराः पितरः देवेषु रत्न अभजन्त।

२ सोम, क्रतुभिः त्वं सुक्रतुः भूः, विश्ववेदाः त्वं दक्षैः सुदक्षः, महित्वा वृषत्वेभिः त्वं वृषा. नृचक्षा द्युम्नेभिः द्युम्नी अभवः।

३ व्रतानि ते वरुणस्य राज्ञः नु. सोम तव धाम बृहत् गभीरं. त्वं शुचिः असि, मित्रः न प्रियः. सोम अर्यमा इव दक्षाय्यः असि।

४ राजन् सोम, या ते धामानि दिवि, या पृथिव्यां, या पर्वतेषु, ओषधीषु, अप्सु, तेभिः विश्वैः अहेळन् सुमनाः हव्या गृभाय।

५ सोम, त्वं सत्पतिः असि, त्वं राजा, उत वृत्रहा; त्वं भद्रः क्रतुः असि।

हे सोम, यदि आप के मन[५] में आवे कि हम सौं बरस तक जीते रहे तो हम सौं बरस के अन्दर नहीं मरेंगे। आप बन के वृक्षों के स्वामी हैं। आप स्तुति-प्रिय है। ६

हे सोम, आप के नीति[६]-नियमों को पालन करनेवाले उपासकों को-चाहे वे जवान् हो या बुढ्ढे हो-आप सुख अर्पण करते हैं। उनकी आयु की वृद्धि होनेके लिये आप उनको श्रेष्ठ बल प्रदान करते हैं। ७

हे सोम-राज, पापी[७] मनुष्यों से चारों ओरसे हमारी रक्षा कीजिये। जिन भक्तों के आप रक्षा करनेवाले बन गये हैं उनका नाश कभी होनेवाला नहीं है। ८

हे सोम, आपको हवि अर्पण करनेवाले भक्तों के लिये आपने जो सुख के साधन तैयार करके रखे हुए है उनको साथ लेकर हमारी रक्षा करनेके लिये आइये। ९

इस यज्ञ और स्तुति का स्वीकार[८] करके हमारी ओर इधर आइये। हे सोम, हमारी उन्नति करनेवाले आप ही हूजिये। १० (२०)

---

६ सोम, त्वं च नः जीवातुं वशः[५] न मरामहे प्रियस्तोत्रः, वनस्पतिः।

७ सोम, ऋतायते,[६] युने महे, त्वं भगं, जीवसे दक्ष दधासि।

८ सोम राजन्, अघायतः[७] त्व नः विश्वतः रक्ष. त्वावतः सखा न रिष्येत.

९. सोम, याः ते मयोभुवः ऊतय. दाशुषे सन्ति, ताभिः नः अविता भव।

१० इमं यज्ञं, इदं वचः जुजुषाणः[८] उपागहि. सोम, त्वं नः वृधे भव।

हे सोम, स्तुति[९] करनेका तरीका जानकर हम आपको स्तोत्रों से सन्तुष्ट करते हैं। इस लिये प्रसन्न होकर आप हमारी ओर आइये। ११

हे सोम, आप हमारे वैभवों की वृद्धि[१०] कीजिये। हमारे रोगों का नाश कीजिये। हमे सम्पत्ति दीजिये। हमारे घर मे धन और अनाज की वृद्धि होवे और आप हमारे उत्तम मित्र बन जाइये। १२

हे सोम, जिस तरह मनुष्य निजके घर[११] में आनन्द में रहता है अथवा धेनुएं तृण (घास) को देखकर सन्तुष्ट होती है उसी तरह हमारे हृदय में आनन्द उत्पन्न कीजिये। १३

हे सोम-देव, जो मनुष्य आपका मित्र होने के कारण आनन्द[१२] मनाता है उसी के साथ रहनेकी ज्ञानी और सामर्थ्यवान् लोक इच्छा करते हैं। १४

हे सोम, दुष्ट वचनों से और पापों से हमारी रक्षा[१३] कीजिये आप हमे सौख्य अर्पण कीजिये। और आप हमारे मित्र हूजिये। १५ (२१)

---

११ सोम, वचोविदः[९] गीर्भिः त्वा वर्धयामः, सुमृळीकः न आ विश।

१२ सोम, गयस्फानः,[१०] अमीवहा, वसुवित, पुष्टिवर्धनः, नः सुमित्रः भव।

१३ सोम, स्वे ओक्ये[११] मर्यः इव, गावः यवसेषु न, नः हृदि आ ररन्धि।

१४ सोम देव, यः मर्त्यः तव सख्ये ररणत्,[१२] तं दक्षः कविः सचते।

१५ सोम, अभिशस्तेः नः उरुष्य,[१३] अंहसः नि पाहि नः सुशेवः सखा एधि।

हे सोम, आप बढ़[16] जाइये। आपके बल की (दिनपर दिन) वृद्धि होवे। जहां नानाप्रकार का बल एकत्रित किया जाता है वहां आप का रहनेका स्थान होवे। १६

हे आनन्द[17] देनेवाले सोम, अपने प्रकाश किरणों से आप बढ़ जाइये। आपकी सुन्दर कीर्ति सब जगह विदित है। आप हमारे सच्चे मित्र है; इस लिये आप हमारी उन्नति कीजिये। १७

दुष्ट[18] लोगों का नाश करनेवाले हे सोम, (इस जगत् में) जितना दूध है उतना सब आपके पास आवे। संसार भरका सामर्थ्य आपमें एकत्रित होवे। संसार का सब बल आपकी ओर आवे। हे सोम, आप निजको अमर बनाकर अपनी कीर्ति द्युलोक में फैलाइये। १८

आप की निवास स्थान की ओर जो मनुष्य हवि पहुचाते हैं वे सब हमारे यज्ञों के ऊपर कृपा दृष्टि रखे। हे सोम, आप हमारे वैभव की वृद्धि कीजिये। हमे धन प्रदान कीजिये। अपनी वीरता दिखाकर डरपोक लोगों का नाश कीजिये। और आप हमारे घर[19] की ओर आइये। १९

जो (मनुष्य) सोम–देव को हवि अर्पण करता है उसको सोम–देव धेनुएं दिलाता है। और वेग से दौड़नेवाले अश्व दिलाता है आप हवि अर्पण करनेवाले को विचारवान, कुशल, यज्ञकर्म करनेवाली, अच्छा वर्ताव करनेवाली और अपने पिता की कीर्ति बढ़ानेवाली सभ्य सन्तान दिलाते हैं। २० (२२)

---

१६ सोम, आ प्यायस्व,[16] ते वृष्ण्यं विश्वतः स एतु. वाजस्य सगथे भव।

१७ मन्दितमं[17] सोम, विश्वेभिः अंशुभिः आ प्यायस्व. सुश्रवस्तमः सखा नः वृधे भव।

१८ अभिमातिषाहः[18] सोम, पयांसि ते सं (यन्तु), वाजाः सं यन्तु, वृष्ण्यानि सं (यन्तु). अमृताय आप्यायमानः दिवि उत्तमानि श्रवांसि धिष्व।

१९ या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा यज्ञं परिभूः अस्तु. सोम, गयस्फानः, प्रतरणः, सुवीरः, अवीरहा, दुर्यान्[19] प्र चर।

२० यः अस्मै ददाशत्, सोमः धेनुं, सोमः आशुं अर्वन्तं, सोमः कर्मण्यं, सदन्यं, विदथ्यं, सभेयं पितृश्रवणं, वीरं ददाति।

आपको युद्ध में कोई जीत नहीं सकता। युद्ध में उपासकों को आप सहायता देते हैं। आप द्युलोक से जल को नीचे लाते हैं। कठिन[18] समय में आप सब की रक्षा करते हैं। आप यज्ञ में उपस्थित होते हैं। आप सजे हुए मंदीर में रहते हैं। हे सोम, आप जैसे कीर्तिवान् और विजयी देव को देखकर हम आनन्दित होते हैं। २१

हे सोम, आपने सब वनस्पतियां उत्पन्न की। आपने ही जल को उत्पन्न किया। और आपने ही धेनुएं निर्माण की। इस विशाल आकाश को आपने फैलाया है और प्रकाश उत्पन्न करके अन्धःकारका नाश[19] किया। २२

हे सामर्थ्यवान् सोम-देव, हमारे लिये धन का संचय करनेके हेतु आप युद्ध कीजिये। आपको कोईभी नरोके[20]। सब बल के स्वामी आप ही है। धनुओं का लाभ होने के लिये जब युद्ध शुरू होता है तब दोनों पक्षों को आपका लाभ व विदित[21] होता है। २३ (२३)

सूक्त ९२.

॥ ९२ ॥ ऋषि- रहूगणपुत्र गोतम । देवता—उषा ॥

उषा-देवी अपनी ध्वजा फहरा रही है। अन्तरिक्ष के पूर्वीय आधे भाग में उषा अपने सुन्दर किरण फैलाती है। जिस तरह वीर पुरुष अपना शस्त्र फहराता है उसी तरह उषा अपना चमकीला[1] प्रकाश प्रकट करती है। धेनुएं-माताएं इस तरफ आ रही हैं। १

---

२१ सोम, युत्सु आषाळ्हं, पृतनासु पप्रिं अप्सां स्वर्षां, वृजनस्य[18] गोपां, भरेषुजां, सुक्षितिं, सुश्रवसं जयन्तं त्वा अनु मदेम।

२२ सोम, त्वं इमाः विश्वाः ओषधीः, त्वं अपः, त्वं गाः अजनयः, त्वं उरु अन्तरिक्षं आ ततन्थ. त्वं ज्योतिषा तमः वि ववर्थ[19]।

२३ सहसावन् देव सोम, देवेन मनसा, नः रायः भागं अभि युध्य. त्वा मा आतनत्.[20] वीर्यस्य ईशिषे. गोइष्टौ उभयेभ्यः प्र चिकित्स[21]।

१ एताः त्याः उषसः केतुं अक्रत. रजसः पूर्वे अर्धे भानुं अंजते, धृष्णवः आयुधानि इव निष्कृण्वानाः अरुषीः[1] गावः मातरः प्रति यन्ति।

उषाओं की लाल किरण कूद कूदकर सहज रीतिसे इधर आ रहे हैं। उषाओं ने प्रकाशरूपी गौओं को (अपने रथ को) जोता हैं। सब दिशाओं पर अपना प्रकाश फैलाने का विचार[1] उषाओं ने किया है। उषाओं का तेज बहुत चमकीला है। २

सच्चा वर्ताव करनेवाले, हवि अर्पण करनेवाले और सोमरस तैयार करके रखनेवाले भक्तोंके लिये उषाएं बहुत सम्पत्ति ले आती हैं। सुन्दर और जवान उषाएं एक ही रथ में बैठकर अपना प्रकाश फैलाकर दूर से आती हैं। मानों बड़े वेग[3] से आकर अपने प्रकाश का वे घमण्ड ही करती हैं। ३

जिस तरह नटी[4] हरसमय अपना पोशाक बदलती रहती है उसी तरह यह उषा हर-समय अपना स्वरूप[5] बदलती है। जिस तरह धेनु का स्तन[6] सबको दिखाई देता है उसी तरह उषा का बदन खुला हुआ होनेके कारण सबको दिखाई देता है। जिस तरह धेनुएं सबेरे अपना स्थान छोड़कर चली जाती है उसी तरह उषा सबेरे अन्धःकार को अकेले छोड़कर चली आती है। ४

उषा का उज्ज्वल प्रकाश दिखाई देने लगा। वह प्रकाश चारों ओर फैलता है और गहरा[7] अन्धकार का नाश करता है। यज्ञ में जिस तरह यज्ञस्तम्भ[8] को सजाते है उसी तरह उषा ने अपने शरीर को सुसज्जित किया है। द्युलोक दुहिता उषा अपने साथ प्रकाश को ले आती है। ५ (२४)

इस अन्धःकार से बाहर हम अभी निकले हैं। अपना प्रकाश चारों ओर फैलाकर उषा अपना उद्देश प्रकट कर रही है। दीप्तीमान् उषा ने कविता की नाईं सौन्दर्य धारण किया है। इसीके कारण उसका हास्य-वदन दिखाई देता है। आप बहुत ही सुन्दर[9] है और आप हमारे ऊपर कृपा करनेके लिये आई हैं। ६

---

२ अरुणा: भानव: वृथा उत् अपप्तन्. स्वायुज: अरुषी: गा: अयुक्षत. पूर्वथा उषस: वयुनानि[1] अक्रन्. अरुषी[2]: रुशन्त भानुं अशिश्रयु:

३ सुकृते सुदानवे सुन्वते यजमानाय विश्वा इत् अह इषं वहन्ती: नारी: परावत: समानेन योजनेन विष्टिभि:[3] अपस: न अर्चन्ति।

४ नृतू:[4] इव पेशांसि[5] अधि वपते उस्रा इव बर्जहं[6] वक्ष: अप ऊर्णुते. विश्वस्मै भुवनाय ज्योति: कृण्वती उषा:, गाव: व्रज, न तम: वि आव:।

५ अस्या: रुशत् अर्चि: प्रति अदर्शि वि तिष्ठते अभ्व[7] कृष्णं बाधते. विदथेषु स्वरुं[8] न पेश: अंजन्. दिव: दुहिता चित्रं भानुं अश्रेत्।

६ अस्य तमस: पारं अतारिष्म. उषा: उच्छन्ती वयुना कृणोति विभाती छन्द: न श्रिये स्मयते. सुप्रतीका[9] सौमनसाय अजीग:।

देदीप्यमान उषा सत्य और माधुर्य की प्रेरणा करती है। द्युलोक कन्या–उषा की स्तुति गोतमों ने की है। हे उषा–देवी, आप हमें ऐसा सामर्थ्य दीजिये जिसे हमें शूर और पराक्रमी सन्तति उत्पन्न होवे और जिससे अश्व और धेनुएं हमे मिले। ७

(सूर्य के) सामर्थ्य से उषा उत्पन्न हुई है। अपनी आश्चर्यकारक कीर्ति और पराक्रम दिखाकर उषा अत्यन्त उज्ज्वल तेज से प्रकाशित होती है। हे दयालु उषा–देवी, आपकी कृपा से वीर पुरुष हमारे वंश में उत्पन्न होंगे। बहुतसे अश्व आदि हमारी सेवा में रहेंगे। और इस तरह हमारा वैभव आप की कृपा से बहुत ही बढेगा। ८

उषा–देवी, प्रातःकाल के समय अपनी दृष्टि पृथ्वी की ओर फेंक देती है; और उसके बाद उज्ज्वल प्रकाश देती है। सब प्रजा को उषा जागृत करती है और विद्वान् कवियों की स्तुतियों को अपनी ओर खींचती है। ९

उषा–देवी बारबार जन्म लेती है; फिर भी आप पुराणी कही जाती है। उषा–देवी बार बार एकही रंगका पोशाक पहिनकर निजको सुशोभित करती है। आप हथियार चलाकर[13] श्वानों[14] को मार डालती है और इस तरह आप सबको डराती[15] है। दुष्ट मनुष्यों की तरह आप उनकी आयु को घटाती है। मनुष्यों की आयु का इस तरह (दिनपर दिन) नाश करके फिर आप वहांही उपस्थित है। १० (२५)

द्युलोक की सीमातक उषा–देवी प्रकाश फैलाकर जागृत होती है। आपकी बहिन–रात्रि को उषा–देवी पृथ्वीपरसे दूरतक[16] निकाल देती है। मनुष्यों की आयु को घटाकर अपने वल्लभ (सूर्य) की कान्ति से भरी हुई जवान उषा चारों ओर प्रकाश फैलाती है। ११

---

७ भास्वती सूनृतानां नेत्री दिवः दुहिता गोतमेभिः स्तवे. उषः, प्रजावतः, नृवतः, अश्वबुध्यान्, गोअग्रान् वाजान् उप मासि।

८ वाजप्रसूता या सुदंससा श्रवसा बृहन्त विभासि सुभगे उषः, तं सुवीरं यसवं दासप्रवर्गं अश्वबुध्यं रयिं अश्याम्।

९ विश्वानि भुवना अभिचक्ष्य देवी चक्षुः प्रतीची उर्विया वि भाति. विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य मतायोः" वाच अविदन्।

१० पुनः पुनः जायमाना पुराणी, समान वर्ण अभि शुम्भमाना. कृत्नुः[13] विजः[14] श्वघ्नी[15] इव आ मिनाना मर्तस्य आयुः जरयन्ती।

११ दिवः अन्तान् वि ऊर्ण्वती अबोधि. स्वसारं सनुतः[16] अप युयोति. मनुष्या युगानि प्रमिनती योषा जारस्य योषा वि भाति।

जिस तरह उदधि अपने जल को स्पष्टरूप से सब को दिखाता है उसी तरह उषा प्रातःकाल के समय, सब पशुओं को उनके स्थान से बाहर (खुली जगह में) लाकर और सब दूर प्रकाश[१७] फैलाकर, मानों प्रकटरूप से प्रदर्शिनी ही दिखाती है। उषा, देवों की आज्ञाओं को हमेशा मानती रही। सूर्य के किरणों से प्रकाशित हुई उषा यहां प्रकटरूप से (दृग्गोचर[१८]) होती है। १२

हे सामर्थ्यवान् उषा देवी, हमे ऐसा अपूर्व वैभव दीजिये जिस से हमे सन्ततिका लाभ वंशानुवंश होवे। १३

सत्य और मधुर वचन बोलनेवाली हे उषा देवी, आपके पास बहुत धेनुएं और अश्व हैं। हमे सुख प्रदान करनेके लिये हमारे ऊपर प्रकाश फैलाइये। १४

हे सामर्थ्यवान् उषा–देवी, अपने लाल रंग के अश्व आज रथ को जोतकर सुख प्रदान करनेके लिये हमारी ओर आइये। १५ (२६)

शत्रुओं का नाश करनेवाले, हे अश्विनी देव, हमारा घर धेनुओं और सुवर्ण से भरने के लिये आपस में मिलकर अपना रथ हमारी ओर लाइये। १६

---

१२ सिन्धुः न क्षोदः पशून् न प्रथाना सुभगा चित्रा उर्विया" वि अश्वैत". देवानि व्रतानि अमिनती सूर्यस्य रश्मिभिः दृशाना चेति"।

१३ वाजिनीवति उषः येन तोकं च तनयं च धामहे तत् चित्र अस्मभ्यं आ भर।

१४ सूनृतावति गोमति अश्ववति विभावरि उषः अद्य इह अस्मे रेवत् वि उच्छ।

१५ वाजिनीवति उषः, अद्य अरुणान् अश्वान् युक्ष्व हि, अथ विश्वा सौभगानि नः आ वह।

१६ दस्रा अश्विना, समनसा रथं अस्मत् वर्तिः" गोमत् हिरण्यवत् अर्वाक् नि यच्छत।

हे अश्विनी-देव, बहुतसा सामर्थ्य[२०] इकट्ठा करके हमारी ओर लाइये। (संसार के) सब मनुष्यों के लिये प्रशंसा[२१] योग्य (उज्ज्वल) तेज द्युलोक से आप इस तरह इधर ले आइये। १७

सुख देनेवाले, शत्रुओं का नाश करनेवाले सुवर्ण से बने हुए मार्ग[२२] से आनेवाले ये दोनों अश्विनी-देव, प्रातःकाल के समय जागृत होनेवाले देवों को, सोमपान के लिये इधर ले आवे। १८ (२७)

सूक्त ९३.

॥ ९३ ॥ ऋषि—रहूगणपुत्र गोतम । देवता—अग्नि, सोम ॥

हे सामर्थ्यवान् सोम, और अग्नि, मेरी पुकार सुनिये। मेरे सुन्दर स्तोत्रों का स्वीकार कीजिये। और आपको हवि अर्पण करनेवाले उपासकों को आप सौख्य (अर्पण करनेवाले) हूजिये। १

हे अग्नि और सोम, जो उपासक आज स्तुति करके आपकी प्रार्थना करते हैं उनको शूर और पराक्रमी बनाकर आप ऐसा कीजिये जिससे उनको बहुत सुन्दर अश्वों और धेनुओं का लाभ होवे। २

हे अग्नि और सोम, जो भक्त आपको आहुति अर्पण करते हैं और जो आपके लिये यज्ञ करते हैं उनको सन्तति और वीरता का लाभ होवे और उनकी आयु भी पूर्ण रीतिसे बढ़े। ३

---

१७ अश्विना, यौ जनाय श्लोक[२०] ज्योतिः दिवः इत्था आ चक्रथुः, युवं नः ऊर्जं[२१] आ वहतं।

१८ मयोभुवा, दस्रा, हिरण्यवर्तनी,[२२] देवा उषर्बुधः सोमपीतये इह आ वहन्तु।

१ वृषणा अग्नीषोमौ इमं मे हवं सु शृणुतं, सूक्तानि हर्यतं, दाशुषे मयः भवतं।

२ अग्नीषोमा यः अद्य इदं वचः वां सपर्यति तस्मै गवां पोषं स्वश्व्यं सुवीर्यं धत्तं।

३ अग्नीषोमा यः आहुतिं यः वां हविष्कृतिं दाशात् स प्रजया सुवीर्यं विश्वं आयुः वि अश्नवत्।

हे अग्नि और सोम, जिस समय पर्णी राक्षस ने तुमारे इकट्ठा[१] किये हुये धन (धेनुएं) को छीन लिया उस समय आपने बृसय राक्षस के अनुचरों का पराभव किया । और जिस समय सब मनुष्यों के कल्याण के लिये आप अपने देदीप्यमान तेज के साथ आये उस समय आपका वीर्य सब को विदित हुआ । ४

हे सोम, आप और अग्नि, दोनों सामर्थ्यवान् है । आपने ज्योतियों को (नक्षत्रों को) द्युलोक में (आकाश में) स्थापित किया । हे अग्नि और सोम, रुके हुए नदियों के (जलों को) आपने हानिकारक निन्दा से मुक्त किया । ५

आप (अग्नि और सोम) दोनों में से एक को मातरिश्वा-देव द्युलोक से यहां ले आये । आप दोनोंमें से दूसरे को श्येन पक्षी पर्वत से उत्पन्न करके लेआया । हे अग्नि और सोम, आप स्तुति-स्तोत्रों से आनन्दित हूजिये । आपने यज्ञ-कर्म करनेके लिये इस जगत् को विस्तीर्ण किया है । ६ (२८)

हे अग्नि और सोम, आप के लिये यहां हवि सिद्ध[२] किया गया है । आप उसको चखिये[३] । आप उसका स्वीकार कीजिये । हे पराक्रमी देव, भक्ति से अर्पण किये हुए अग्नि को आप पसन्द कीजिये । आप हमारा कल्याण कीजिये । हमारी रक्षा की जिम्मेदारी केवल आपही पर निर्भर है । स्तुति करनेवाले भक्तों को जो सौख्य आप अर्पण करते हैं वही सौख्य याग-कर्म करनेवाले उपासकों को भी आप प्रदान कीजिये । ७

हे अग्नि और सोम, जो उपासक आपको हवि अर्पण करके आपकी भक्तिपूर्वक[४] पूजा करते है और घी से अर्चन करते हैं उनके कर्मों की आप रक्षा कीजिये और संकटसे उनके (शरीर की) रक्षा कीजिये । सब लोग आपही की प्रजा है; इस लिये आप उन्हे सौख्य अर्पण कीजिये । ८

---

४ अग्नीषोमा, यत् पणिं [illegible] अमुष्णीतं [illegible] बहुभ्यः एकं ज्योतिः अविन्दतं [illegible] वां वीर्यं [illegible] ।

५ [illegible] आम च [illegible] युवं [illegible] अधत्त, अग्नीषोमौ गृभीतान् सिन्धून् अवद्यात् [illegible] ।

६ [illegible] अग्नीषोमा [illegible] यज्ञाय [illegible] ।

७ अग्नीषोमा [illegible] हविषः [illegible] वृषणा, जुषेथां सुशर्माणा स्ववसा भूतं [illegible] यजमानाय [illegible] ।

८ अग्नीषोमा, यः हविषा सपर्यात्, यः देवद्रीचा मनसा घृतेन तस्य व्रतं रक्षतं, अंहसः पातं, [illegible] विशेमहि शर्म यच्छत ।

हे अग्नि और सोम, आप दोनोंको हमारा सब हाल विदितही है। आप दोनोंको हम एकसाथ पुकारते[a] हैं। इस लिये हमारे स्तोत्रों का स्वीकार कीजिये। देवगण में आप एकदम प्रकट हुए। ९

हे अग्नि और सोम, घी से भरा हुआ हवि जो मनुष्य आपको अर्पण करता है उसको आप उत्तम सम्पत्ति दीजिये और उसके लिये प्रकाश भी दीजिये। १०

हे अग्नि और सोम, प्रेम से इन हवियों का आप स्वीकार कीजिये। और दोनों[b] मिलकर आप हमारी ओर आईये। ११

हे अग्नि और सोम, हमारे अश्वों को (धेनुओं को) हृष्ट पुष्ट करनेका प्रबन्ध आप कीजिये। उनके दुध से हवि[c] तैयार किया जाता है। हमारी गौवों की संख्या भी बढ़ाइये। हम आपको हवि[d] अर्पण करते हैं। इसलिये आप हमे सामर्थ्य प्रदान कीजिये। और हमारे यज्ञ की कीर्ति आप सब दूर फैलाइये। १२ (२६) (१४)

अनुवाक १९.

सूक्त ९४.

॥ १४ ॥ ऋषि–रहूगणपुत्र गोतम । देवता–अग्नि ॥

हे योग्य और सर्वज्ञ अग्नि–देव, जिस तरह कोई मनुष्य अपने मित्र को प्रेम से रथ प्रदान करता है उसी तरह हम बड़े प्यार से आपको हवि अर्पण करते हैं। सचमुच हमारे विषय में आपकी इच्छा बहुत अनुकूल है। हे अग्नि–देव, आप हमारे मित्र हैं। इस लिये हमारा नाश न होनेका प्रबन्ध आप कीजिये। १

---

९ अग्नीषोमा, सवेदसा सहूती[a] गिरः वनतं; देवत्रा सं बभूवथुः।

१० अग्नीषोमा, यः वां अनेन घृतेन दाशति तस्मै बृहत् दीदयतं।

११ अग्नीषोमा, इमानि नः हव्या युवं जुजोषतं सचा[b] नः उप यातं।

१२ अग्नीषोमा, नः अर्वतः पिपृतं, हव्यसूदः[c] उस्रियाः आ प्यायंतां. मघवत्सु[d] अस्मे बलानि धत्तं, नः अध्वरं श्रुष्टिमन्तं कृणुतं।

१ अर्हते जातवेदसे इमं स्तोमं रथं इव मनीषया सं महेम. अस्य प्रमतिः हि संसदि नः भद्रा अग्ने, तव सख्ये वयं मा रिषाम।

जो मनुष्य आपके लिये यज्ञ करते हैं उनकी इच्छा पूरी हो जाती है। उनके पास अश्व न होनेपर भी उनका पराभव नहीं होता। वे वीरताका काम करते हैं। उनकी उन्नति[1] होती है। उनको कोई बाधा[2] नही पहुँचा सकता हे अग्निदेव, हम आपके मित्र हैं; इस लिये हमारा नाश न होने का प्रबन्ध आपको करना चाहिये। २

आपको प्रज्वलित करनेका सामर्थ्य हम रखते हैं। आप हमारी पुकार सुनिये। और प्रार्थना की अनुसार हमे सफलता प्राप्त होवे। आपको अर्पण किये हुए हवियों का सब देव स्वीकार करते हैं। आप अदित्य को यहां ले आइये। सब देवोंपर हम प्यार करते हैं। हे अग्निदेव, आप हमारे मित्र है। इस लिये आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये। ३

हम आपको लकडी (इन्धन) अर्पण कर (देते) हैं। समय समयपर हम आपको प्रज्वलित करेंगे; और आपको हवि अर्पण करेंगे। हमारी आयु[3] बढे और हमारी कामना सिद्ध होवे। हे अग्निदेव, आप हमारे मित्र है इस लिये हमारा नाश न होने दीजिये। ४

आप सब लोगों की रक्षा करनेवाले हैं। आपही के प्रभाव से मनुष्य और पशु रात्रिको सञ्चार कर सकते हैं। आपही उषा की श्रेष्ठ कीर्ति–ध्वजा[4] है। हे अग्निदेव, आप हमारे मित्र है; इस लिये हमारा नाश न होने दीजिये। ५ (१०)

आप अध्वर्यु (नेता) हैं। हवि अर्पण करनेवाले पुराणे समय के आप होता हैं। (यज्ञ के समय) सब के ऊपर शासन चलानेवाले आपही हैं। यज्ञ को पवित्र[5] करनेवाले आपही है। जन्मसे आप यज्ञ के नेता हैं। आप ज्ञानी होनेके कारण ऋत्विजों के काम की रक्षा सुगमता से कर सकते हैं। हे अग्निदेव, आप हमारे मित्र होनेके कारण आपको चाहिये कि हमारा नाश न होवे। ६

---

२ यस्मै त्वं आ यजसे स साधति, अनर्वा क्षेति, सुवीर्यं दधते, स तूताव[1]. एनं अंहतिः[2] न अश्नोति अग्ने, तव सख्ये वयं मा रिषाम।

३ त्वा समिधं शकेम, धियः साधय, त्वे आहुतं देवाः अदन्ति. त्वं आदित्यान् आ वह, तान् हि उश्मसि।

४ इध्मं भराम. पर्वणापर्वणा चितयन्तः वयं ते हवींषि कृणवाम. जीवातवे[3] धियः प्रतर साधय।

५ विशां गोपाः, यत् द्विपत् उत च चतुष्पत् अन्तवः अक्तुभिः अस्य चरन्ति. उषसः महान् चित्रः प्रकेतः[4] असि।

६ त्वं अध्वर्युः उत पूर्व्यः होता, प्रशास्ता, जनुषा पोता[5], पुरोहितः असि धीरः विद्वान् विश्वा आर्त्विज्या पुष्यसि।

हे अग्नि-देव, आप सब प्रकारसे बड़े सुन्दर दिखाई देते हैं। दूर[6] होनेपर भी आप अपने तेजसे बड़े प्रज्वलित दिखाई देते हैं। रात्रि के अन्धःकार में[7] भी आप अपने तेज से देख सकते हैं। हे अग्नि-देव, आप हमारे मित्र होने के कारण आपको चाहिये कि हमारा नाश न होवे। ७

हे देव, सोमरस को सिद्ध करनेवाले उपासकों का रथ सबसे आगे बढ़े। और हमारी स्तुति दुष्ट[8] मनुष्यों का तिरस्कार करके आगे चलकर आपको पहुंचे। हमारी प्रार्थना को अच्छीतरह समझ जाइये और उसको सफल कीजिये। हे अग्नि-देव आप हमारा सखा होनेके कारण आप हमारा नाश न होने दीजिये। ८

अपने नाश करनेवाले शस्त्रों से दुष्ट और पापी मनुष्यों को[9]—चाहे वे आपके पास हो या दूर हो— मार डालिये। आपका स्तोत्र गानेवाले भक्तों के लिये यज्ञ का मार्ग सरल और सीधा कीजिये। हे अग्नि-देव, आप हमारे मित्र होनेके कारण हमारा नाश न होने दीजिये ९

जिस समय देदीप्यमान सुन्दर, मानों, वायु की तरह दौड़नेवाले लाल अश्व आप जोतते हैं उस समय वृषभ की तरह आपकी गर्जना होती है। धूम्ररूपी ध्वजा को फहरानेवाले [ज्व]ालाओं से आप वृक्षोंको व्याप्त[10] करते हैं। हे अग्नि-देव, आप हमारे मित्र होने के कारण [हम]ारा नाश न होने दीजिये। १० (३१)

जब आपकी ज्वालाएं घासका नाश करती है और चारों ओर फैलती[11] हैं तब आपकी [गर्ज]ना सुनकर पक्षीभी डरते हैं। आपके रथका मार्ग भी सुगम होता है। हे अग्नि-देव, आप [हमा]रे होनेके कारण हमारा नाश न होने दीजिये। ११

---

७ यः विश्वतः सदृङ् सुप्रतीकः असि दूरे चित् सन् तळित्[*] इव अति रोचसे. देव, राम्याः अन्धः[*] चित् [अ]ति पश्यसि।

८ देवाः, सुन्वतः रथः पूर्वः भवतु अस्माकं शंसः दूढ्यः[8] अभि अस्तु. तत् वचः आ जानीत उत पुष्यत।

९ दुःशंसान्,[*] दूढ्यः, ये केचित् अत्रिणः दूरे वा अन्ति, वधैः अप जहि अथ गृणते यज्ञाय सुगं कृधि।

१० यत् अरुषा वातजूता रोहिता रथे अयुक्थाः ते रवः वृषभस्य इव. धूमकेतुना वनिनः इन्वसि[11] आत्।

११ यत् बवसादः ते द्रप्साः[11] वि अचिरन् अध स्वनात् पतत्रिणः उत बिभ्युः तत् तावकेभ्यः रथेभ्यः ते सुगं।

मित्र और वरुण को सन्तुष्ट[12] करनेवाले, मरुत् देवों के कोपसे[13] सचमुच आश्चर्य ही उत्पन्न होता है। हे अग्निदेव—हमे सौख्य अर्पण कीजिये। उन मरुतों के मनका झुकाव फिर हमारी ओर होवे। हे अग्निदेव, आप हमारे मित्र होनेके कारण हमारा नाश न होने दीजिये। १२

आप सब देवों में श्रेष्ठ देव है; आप सबके अपूर्व मित्र है। आप सब वसुओं में श्रेष्ठ वसु हैं। सब यज्ञों में आप शोभा देनेवाले हैं। आपकी कल्याणकारक सहायता की इच्छा हम करते हैं। हे अग्निदेव, आप हमारे मित्र होनेके कारण हमारा नाश न होने दीजिये। १३

जिस समय आपको अपने घर में सोम का हवि दिया जाता है उस समय आप प्रीत होते हैं और भक्तों को सौख्य अर्पण करते हैं। आप मधुर भाषा बोलते[14] हैं; और उपासकों को उत्तम वस्तु और धन अर्पण करते हैं। यही आपका कल्याणकारी काम है। हे अग्निदेव आप हमारे मित्र होनेके कारण हमारा नाश न होने दीजिये। १४

वैभव और अखण्ड सामर्थ्य देनेवाले हे अग्निदेव,[15] आप जिसको सामर्थ्य और सौख्य देते हैं और सन्तति देकर जिनकी उन्नति करते हैं उनपर आपकी कृपा[15] बनी रहती है और वे (...) आनन्द में रहते हैं। १५

हे अग्नि-देव, कल्याण करनेका सच्चा मार्ग केवल आपही अच्छी तरह जानते हैं। इस(...) जगत् में हमारी आयु आप बढ़ाइये। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी (...) और द्युलोक सबही एक सम्मति[17] से हमारी प्रार्थना सुने और हमारी आ(...) बढ़ावे। १६ (३२) (६)

---

१२ मित्रस्य वरुणस्य धायसे[12] अवयातां मरुतां अयं हेळः[13] अद्भुतः मृळ. एषां मनः नः सु भूतु।

१३ देवानां देवः, अद्भुतः मित्रः असि. वसूनां वसुः, अध्वरे चारुः असि. तव सप्रथस्तमे शर्मन् स्याम।

१४ तत् ते भद्रं, यत् स्वे दमे सोमाहुतः समिद्धः मृळयत्तमः जरसे,[14] दाशुषे रत्नं द्रविणं च दधासि।

१५ सुद्रविणः अदिते[15] यस्मै त्वं सर्वताता[16] अनागास्त्वं ददाशः, यं भद्रेण शवसा चोदयासि, प्रजावता ते राधसा स्याम।

१६ देव अग्ने, सौभगत्वस्य विद्वान् त्वं इह अस्माकं आयुः प्रतिर. मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः तत् ममहन्ताम्[17]।

हिन्दी, मराठी, गुजराती और अङ्गरेजी चार
भाषाओं में अलग अलग प्रसिद्ध होनेवाला

वेदों का भाषांतर।

प्रति मास में ६४ पृष्ठ; ३२ पृष्ठ संहिता [स्वर और पदपाठ सहित]

* * ३२ पृष्ठ भाषान्तर। * *

वर्ष १] मार्गशीर्ष संवत १९६९—जनवरी सन १९१३ [अंक ७

वार्षिक मूल्य डाकव्ययसहित रु. ४

हिन्दी

श्रुतिबोध.

सम्पादक,

रामचंद्र विनायक पटवर्धन, बी. ए. एल् एल्. बी.
अच्युत बलवंत कोल्हटकर, बी. ए. एल् एल्. बी.
दत्तो अप्पाजी तुळजापुरकर, बी. ए. एल् एल्. बी.

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत्।
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्॥

यास्काचार्य.

'श्रुतिबोध' ऑफिस, ४७, कालकादेवी रोड, बम्बई.

प्रति अंकका मूल्य आठ आने.

॥ अथ प्रथमाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ ९५ ॥ ऋषि-आंगिरस कुत्स । देवता-अग्नि । छन्दः-त्रिष्टुप ॥

॥ ९५ ॥ द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥ १ ॥
दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम् ।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥ २ ॥
त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्र दिशं पार्थिवानामृतून्प्रशासद्वि दधावनुष्ठु ॥ ३ ॥
क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातॄर्जनयत स्वधाभिः ।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥ ४ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

द्वे इति । विरूपे इति विऽरूपे । चरतः । स्वर्थे इति सुऽअर्थे । अन्याऽअन्या । वत्सं । उप । धापयेते इति । हरिः । अन्यस्यां । भवति । स्वधाऽवान् । शुक्रः । अन्यस्यां । ददृशे । सुऽवर्चाः ॥ १ ॥ दश । इमं । त्वष्टुः । जनयन्त । गर्भं । अतन्द्रासः । युवतयः । विऽभृत्रं । तिग्मऽअनीकं । स्वऽयशसं । जनेषु । विऽरोचमानं । परि । सीं । नयन्ति ॥ २ ॥ त्रीणि । जाना । परि । भूषन्ति । अस्य । समुद्रे । एकं । दिवि । एकं । अप्ऽसु । पूर्वां । अनु । प्र । दिशं । पार्थिवानां । ऋतून् । प्रऽशासत् । वि । दधौ । अनुष्ठु ॥ ३ ॥ कः । इमं । वः । निण्यं । आ । चिकेत । वत्सः । मातॄः । जनयत । स्वधाभिः । बह्वीनां । गर्भः । अपसां । उपऽस्थात् । महान् । कविः । निः । चरति । स्वधाऽवान् ॥ ४ ॥

आविष्ट्यो वर्धते चारुरासु जिह्मानामूर्ध्वः स्वयशा उपस्थे ।
उभे त्वष्टुर्बिभ्यतुर्जायमानात्प्रतीची सिंहं प्रति जोषयेते ॥ ५ ॥ १ ॥
उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः ।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥ ६ ॥
उद्यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन् ।
उच्छुक्रमत्कमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥ ७ ॥
त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥ ८ ॥
उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥ ९ ॥

आविःऽत्यः । वर्धते । चारुः । आसु । जिह्मानां । ऊर्ध्वः । स्वऽयशाः । उपऽस्थे । उभे इति ।
त्वष्टुः । बिभ्यतुः । जायमानात् । प्रतीची इति । सिंहं । प्रति । जोषयेते इति ॥५॥
उभे इति । भद्रे इति । जोषयेते इति । न । मेने इति । गावः । न । वाश्राः ।
उप । तस्थुः । एवैः । सः । दक्षाणां । दक्षऽपतिः । बभूव । अंजंति । यं ।
दक्षिणतः । हविःऽभिः ॥ ६ ॥ उत् । यंयमीति । सविताऽइव । बाहू इति । उभे
इति । सिचौ । यतते । भीम । ऋंजन् । उत् । शुक्रं । अत्कं । अजते ।
सिमस्मात् । नवा । मातृऽभ्यः । वसना । जहाति ॥ ७ ॥ त्वेषं । रूपं । कृणुते ।
उत्ऽतरं । यत् । संऽपृंचानः । सदने । गोभिः । अत्ऽभिः । कविः । बुध्नं ।
परि । मर्मृज्यते । धीः । सा । देवऽताता । संऽइतिः । बभूव ॥ ८ ॥ उरु ।
ज्रयः । परि । एति । बुध्नं । विऽरोचमानं । महिषस्य । धाम । विश्वेभिः ।
अग्ने । स्वयशःऽभिः । इद्धः । अदब्धेभिः । पायुऽभिः । पाहि । अस्मान् ॥ ९ ॥

धन्वन्त्स्रोतः कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि नक्षति क्षाम् ।
विश्वा सनानि जठरेषु धत्तेऽन्तर्नवासु चरति प्रसूषु ॥ १० ॥
एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥ २ ॥

॥ ९६ ॥ ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्स । देवता शुद्धोग्नि । त्रिष्टुप्—छन्दः ॥

॥ ९६ ॥ स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ १ ॥
स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम् ।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ २ ॥
तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् ।
ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ३ ॥

धन्वन् । स्रोतः । कृणुते । गातुं । ऊर्मिं । शुक्रैः । ऊर्मिऽभिः । अभि । नक्षति । क्षां । विश्वा । सनानि । जठरेषु । धत्ते । अंतः । नवासु । चरति । प्रऽसूषु ॥ १० ॥
एव । नः । अग्ने । संऽइधा । वृधानः । रेवत् । पावक । श्रवसे । वि । भाहि । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंतां । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत द्यौः ॥ ११ ॥ २ ॥

सः । प्रत्नऽथा । सहसा । जायमानः । सद्यः । काव्यानि । बट् । अधत्त । विश्वा । आपः । च । मित्रं । धिषणा । च । साधन् । देवाः । अग्निं । धारयन् । द्रविणःऽदां ॥ १ ॥ सः । पूर्वया । निऽविदा । कव्यता । आयोः । इमाः । प्रऽजाः । अजनयत् । मनूनां । विवस्वता । चक्षसा । द्यां । अपः । च । देवाः । अग्निं । धारयन् । द्रविणःऽदां ॥ २ ॥ तं । ईळत । प्रथमं । यज्ञऽसाधं । विशः । आरीः । आऽहुतं । ऋंजसानं । ऊर्जः । पुत्रं । भरतं । सृप्रऽदानुं । देवाः । अग्निं । धारयन् । द्रविणःऽदां ॥ ३ ॥

स मातरिश्वा पुरुवारपुष्टिर्विदद्गातुं तनयाय स्वर्वित् ।
विशां गोपा जनिता रोदस्योर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४ ॥
नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची ।
द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्वि भाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ५ ॥ ३ ॥
रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः ।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ६ ॥
नू च पुरा च सदनं रयीणां जातस्य च जायमानस्य च क्षाम् ।
सतश्च गोपां भवतश्च भूरेर्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ७ ॥
द्रविणोदा द्रविणसस्तुरस्य द्रविणोदाः सनरस्य प्र यंसत् ।
द्रविणोदा वीरवतीमिषं नो द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः ॥ ८ ॥

सः । मातरिश्वा । पुरुवारऽपुष्टिः । विदत् । गातुं । तनयाय । स्वःऽवित् । विशां । गोपाः । जनिता । रोदस्योः । देवाः । अग्निं । धारयन् । द्रविणःऽदां ॥ ४ ॥ नक्तोषसा । वर्णं । आमेम्याने इत्याऽमेम्याने । धापयेते इति । शिशुं । एकं । समीची इति सम्ऽईची । द्यावाक्षामा । रुक्मः । अंतः । वि । भाति । देवाः । अग्निं । धारयन् । द्रविणःऽदां ॥ ५ ॥ ३ ॥ रायः । बुध्नः । सम्ऽगमनः । वसूनां । यज्ञस्य । केतुः । मन्मऽसाधनः । वेरिति वेः । अमृतऽत्वं । रक्षमाणासः । एनं । देवाः । अग्निं । धारयन् । द्रविणःऽदां ॥ ६ ॥ नु । च । पुरा । च । सदनं । रयीणां । जातस्य । च । जायमानस्य । च । क्षां । सतः । च । गोपां । भवतः । च । भूरेः । देवाः । अग्निं । धारयन् । द्रविणःऽदां ॥ ७ ॥ द्रविणःऽदाः । द्रविणसः । तुरस्य । द्रविणःऽदाः । सनरस्य । प्र । यंसत् । द्रविणःऽदाः । वीरऽवतीं । इषं । नः । द्रविणःऽदाः । रासते । दीर्घं । आयुः ॥ ८ ॥

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥ ४ ॥

॥ ९७ ॥ ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्स । देवता—शुद्धोऽग्नि । छन्दः—गायत्री ।

॥ ९७ ॥ अप नः शोशुचदघमग्ने शुशुग्ध्या रयिम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ १ ॥
सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ २ ॥
प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकासश्च सूरयः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ३ ॥
प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम् ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ४ ॥
प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ५ ॥

एव । नः । अग्ने । संऽइधा । वृधानः । रेवत् । पावक । श्रवसे । वि । भाहि । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंतां । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ९ ॥ ४ ॥

अप । नः । शोशुचत् । अघं । अग्ने । शुशुग्धि । आ । रयिं । अप । नः । शोशुचत् अघं ॥ १ ॥ सुऽक्षेत्रिया । सुगातुऽया । वसुऽया । च । यजामहे । अप । नः । शोशुचत् । अघं ॥ २ ॥ प्र । यत् । भंदिष्ठः । एषां । प्र । अस्माकासः । च । सूरयः । अप । नः । शोशुचत् । अघं ॥ ३ ॥ प्र । यत् । ते । अग्ने । सूरयः । जायेमहि । प्र । ते । वयं । अप । नः । शोशुचत् । अघं ॥ ४ ॥ प्र । यत् । अग्नेः । सहस्वतः । विश्वतः । यंति । भानवः । अप । नः । शोशुचत् । अघं ॥ ५ ॥

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥
द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ७ ॥
स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ८ ॥ ५ ॥

॥ ९८ ॥ ऋषिः–आङ्गिरसः कुत्स । देवता–अग्नि । छन्दः–त्रिष्टुप् ॥

॥ ९८ ॥ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥ २ ॥

त्वं । हि । विश्वतःऽमुख । विश्वतः । परिऽभूः । असि । अप । नः । शोशुचत् । अघं ॥ ६ ॥ द्विषः । नः । विश्वतःऽमुख । अति । नावाऽइव । पारय । अप । नः । शोशुचत् । अघं ॥ ७ ॥ सः । नः । सिंधुंऽइव । नावया । अति । पर्ष । स्वस्तये । अप । नः । शोशुचत् । अघं ॥ ८ ॥ ५ ॥

वैश्वानरस्य । सुऽमतौ । स्याम । राजा । हि । कं । भुवनानां । अभिऽश्रीः । इतः । जातः । विश्वं । इदं । वि । चष्टे । वैश्वानरः । यतते । सूर्येण ॥ १ ॥ पृष्टः । दिवि । पृष्टः । अग्निः । पृथिव्यां । पृष्टः । विश्वाः । ओषधीः । आ । विवेश । वैश्वानरः । सहसा । पृष्टः । अग्निः । सः । नः । दिवा । सः । रिषः । पातु । नक्तं ॥ २ ॥

वैश्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मान्रायो मघवानः सचन्ताम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥ ६ ॥

॥ ९९ ॥ ऋषि-मरीचिपुत्रः, काश्यपऋषिः । देवता-जातवेदा अग्निः छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥ ९९ ॥ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥ १ ॥ ७ ॥

॥ १०० ॥ ऋषयः-वृषागिरः ऋज्राश्वः अंबरीषः सहदेवः भयमानः सुराधसः । देवता इन्द्रः । छन्दः ॥ त्रिष्टुप् ।

॥१००॥ स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥
यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति ।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ २ ॥

वैश्वानर । तव । तत् । सत्यं । अस्तु । अस्मान् । रायः । मघऽवानः । सचंतां ।
तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंतां । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत । द्यौः
॥ ३ ॥ ६ ॥

जातऽवेदसे । सुनवाम । सोमं । अरातिऽयतः । नि । दहाति । वेदः ।
सः । नः । पर्षत् । अति । दुःऽगानि । विश्वा । नावाऽइव । सिंधुं । दुःऽइता ।
अति । अग्निः ॥ १ ॥ ७ ॥

सः । यः । वृषा । वृष्ण्येभिः । संऽओकाः । महः । दिवः । पृथिव्याः ।
च । संऽराट् । सतीनऽसत्वा । हव्यः । भरेषु । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः ॥
ऊती ॥ १ ॥ यस्य । अनाप्तः । सूर्यस्यऽइव । यामः । भरेऽभरे । वृत्रऽहा । शुष्मः ।
अस्ति । वृषन्ऽतमः । सखिऽभिः । स्वेभिः । एवैः । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः ।
ऊती ॥ २ ॥

दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः ।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३ ॥
सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन् ।
ऋग्मिभिरृग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४ ॥
स सूनुभिर्न रुद्रेभिरृभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान् ।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ५ ॥ ८ ॥
स मन्युमीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत् ।
अस्मिन्नहन्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ६ ॥
तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ७ ॥

दिवः । न । यस्य । रेतसः । दुघानाः । पंथासः । यंति । शवसा । अपरिऽइताः ।
तरत्ऽद्वेषाः । ससहिः । पौंस्येभिः । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः । ऊती ॥ ३ ॥
सः । अंगिरःऽभिः । अंगिरःऽतमः । भूत् । वृषा । वृषऽभिः । सखिऽभिः । सखा ।
सन् । ऋग्मिऽभिः । ऋग्मी । गातुऽभिः । ज्येष्ठः । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः ।
ऊती ॥ ४ ॥ सः । सूनुऽभिः । न । रुद्रेभिः । ऋभ्वा । नृऽसह्ये । ससह्वान् ।
अमित्रान् । सऽनीळेभिः । श्रवस्यानि । तूर्वन् । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः । ऊती
॥ ५ ॥ ८ ॥ सः । मन्युऽमीः । सऽमदनस्य । कर्ता । अस्माकेभिः । नृऽभिः ।
सूर्यं । सनत् । अस्मिन् । अहन् । सत्ऽपतिः । पुरुऽहूतः । मरुत्वान् । नः ।
भवतु । इंद्रः । ऊती ॥ ६ ॥ तं । ऊतयः । रणयन् । शूरऽसातौ । तं । क्षेमस्य ।
क्षितयः । कृण्वत । त्रां । सः । विश्वस्य । करुणस्य । ईशे । एकः । मरुत्वान् ।
नः । भवतु । इंद्रः । ऊती ॥ ७ ॥

तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय ।
सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ८ ॥
स सव्येन यमति व्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृभीता कृतानि ।
स कीरिणा चित्सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ९ ॥
स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्वद्य ।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १० ॥ ९ ॥
स जामिभिर्यत्समजाति मीळ्हेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ११ ॥
स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा ।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ॥ १२ ॥

तं । अप्सन्त । शवसः । उत्ऽसवेषु । नरः । नरं । अवसे । तं । धनाय । सः । अन्धे । चित् । तमसि । ज्योतिः । विदत् । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः । ऊती ॥ ८ ॥ सः । सव्येन । यमति । व्राधतः । चित् । सः । दक्षिणे । संऽगृभीता । कृतानि । सः । कीरिणा । चित् । सनिता । धनानि । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः । ऊती ॥ ९ ॥ सः । ग्रामेभिः । सनिता । सः । रथेभिः । विदे । विश्वाभिः । कृष्टिऽभिः । नु । अद्य । सः । पौंस्येभिः । अभिऽभूः । अशस्तीः । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः । ऊती ॥ १० ॥ ९ ॥ सः । जामिऽभिः । यत् । संऽअजाति । मीळ्हे । अजामिऽभिः । वा । पुरुऽहूतः । एवैः । अपां । तोकस्य । तनयस्य । जेषे । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः । ऊती ॥ ११ ॥ सः । वज्रऽभृत् । दस्युऽहा । भीमः । उग्रः । सहस्रऽचेताः । शतऽनीथः । ऋभ्वा । चम्रीषः । न । शवसा । पांचऽजन्यः । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः । ऊती ॥ १२ ॥

तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान् ।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १३ ॥
यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम् ।
स पारिषत्क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १४ ॥
न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः ।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १५ ॥ १० ॥
रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥ १६ ॥
एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥ १७ ॥

तस्य । वज्रः । क्रंदति । स्मत् । स्वःऽसाः । दिवः । न । त्वेषः । रवथः । शिमीऽवान् । तं । सचंते । सनयः । तं । धनानि । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः । ऊती ॥ १३ ॥ यस्य । अजस्रं । शवसा । मानं । उक्थं । परिऽभुजत् । रोदसी इति । विश्वतः । सीं । सः । पारिषत् । क्रतुऽभिः । मंदसानः । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः । ऊती ॥ १४ ॥ न । यस्य । देवाः । देवता । न । मर्ताः । आपः । चन । शवसः । अंतं । आपुः । सः । प्रऽरिक्वा । त्वक्षसा । क्ष्मः । दिवः । च । मरुत्वान् । नः । भवतु । इंद्रः । ऊती ॥ १५ ॥ १० ॥ रोहित् । श्यावा । सुमत्ऽअंशुः । ललामीः । द्युक्षा । राये । ऋज्रऽअश्वस्य । वृषण्ऽवंतं । बिभ्रती । धूःऽसु । रथं । मंद्रा । चिकेत । नाहुषीषु । विक्षु ॥ १६ ॥ एतत् । त्यत् । ते । इंद्र । वृष्णे । उक्थं । वार्षागिराः । अभि । गृणंति । राधः । ऋज्रऽअश्वः । प्रष्टिऽभिः । अंबरीषः । सहऽदेवः । भयमानः । सुऽराधाः ॥ १७ ॥

दस्यूञ्छिम्यूंश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्यां शर्वा नि बर्हीत् ।
सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥ १८ ॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १९ ॥ ११ ॥

॥ १०१ ॥ ऋषि-आङ्गिरसः कुत्स । देवता-इन्द्रः । छन्दः-जगती त्रिष्टुप् ॥

॥१०१॥ प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना ।
अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥
यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम् ।
इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ २ ॥
यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः ।
यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ३ ॥

दस्यून् । शिम्यून् । च । पुरुऽहूतः । एवैः । हत्वा । पृथिव्याम् । शर्वा । नि । बर्हीत् । सनत् । क्षेत्रं । सखिऽभिः । श्वित्न्येभिः । सनत् । सूर्यं । सनत् । अपः । सुऽवज्रः ॥ १८ ॥ विश्वाहा । इन्द्रः । अधिऽवक्ता । नः । अस्तु । अपरिऽह्वृताः । सनुयाम । वाजं । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्ताम् । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ १९ ॥ ११ ॥

प्र । मन्दिने । पितुऽमत् । अर्चत । वचः । यः । कृष्णऽगर्भाः । निःऽअहन् । ऋजिश्वना । अवस्यवः । वृषणम् । वज्रऽदक्षिणम् । मरुत्वन्तम् । सख्याय । हवामहे ॥ १ ॥ यः । विऽअंसम् । जहृषाणेन । मन्युना । यः । शम्बरम् । यः । अहन् । पिप्रुम् । अव्रतम् । इन्द्रः । यः । शुष्णम् । अशुषं । नि । अवृणक् । मरुत्वन्तम् । सख्याय । हवामहे ॥ २ ॥ यस्य । द्यावापृथिवी इति । पौंस्यं । महत् । यस्य । व्रते । वरुणः । यस्य । सूर्यः । यस्य । इन्द्रस्य । सिन्धवः । सश्चति । व्रतम् । मरुत्वन्तम् । सख्याय । हवामहे ॥ ३ ॥

यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४ ॥
यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत् ।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ५ ॥
यः शूरेभिर्हव्यो यश्च भीरुभिर्यो धावद्भिर्हूयते यश्च जिग्युभिः ।
इन्द्रं यं विश्वा भुवनाभि संदधुर्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ६ ॥ १२ ॥
रुद्राणामेति प्रदिशा विचक्षणो रुद्रेभिर्योषा तनुते पृथु ज्रयः ।
इन्द्रं मनीषा अभ्यर्चति श्रुतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ७ ॥
यद्वा मरुत्वः परमे सधस्थे यद्वावमे वृजने मादयासे ।
अत आ याह्यध्वरं नो अच्छा त्वाया हविश्चकृमा सत्यराधः ॥ ८ ॥

यः । अश्वानां । यः । गवां । गोऽपतिः । वशी । यः । आरितः । कर्मणिऽकर्मणि । स्थिरः । वीळोः । चित् । इंद्रः । यः । असुन्वतः । वधः । मरुत्वंतं । सख्याय । हवामहे ॥ ४ ॥ यः । विश्वस्य । जगतः । प्राणतः । पतिः । यः । ब्रह्मणे । प्रथमः । गाः । अविंदत् । इंद्रः । यः । दस्यून् । अधरान् । अवऽअतिरत् । मरुत्वंतं । सख्याय । हवामहे ॥ ५ ॥ यः । शूरेभिः । हव्यः । यः । च । भीरुऽभिः । यः । धावत्ऽभिः । हूयते । यः । च । जिग्युऽभिः । इंद्रं । यं । विश्वा । भुवना । अभि । संऽदधुः । मरुत्वंतं । सख्याय । हवामहे ॥ ६ ॥ १२ ॥ रुद्राणां । एति । प्रऽदिशा । विऽचक्षणः । रुद्रेभिः । योषा । तनुते । पृथु । ज्रयः । इंद्रं । मनीषा । अभि । अर्चति । श्रुतं । मरुत्वंतं । सख्याय । हवामहे ॥ ७ ॥ यत् । वा । मरुत्वः । परमे । सधऽस्थे । यत् । वा । अवमे । वृजने । मादयासे । अतः । आ । याहि । अध्वरं । नः । अच्छ । त्वाऽया । हविः । चकृम । सत्यऽराधः ॥ ८ ॥

त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन्यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥ ९ ॥
मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन्हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥ १० ॥
मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपा वयमिन्द्रेण सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥ १३ ॥

॥ १०२ ॥ ऋषिः-आंगिरसः कुत्स । देवता-इन्द्रः । छन्दः-जगती त्रिष्टुप् ॥

॥ १०२ ॥ इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥ १ ॥
अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥ २ ॥

त्वाऽया । इंद्र । सोमं । सुसुम । सुऽदक्ष । त्वाऽया । हविः । चकृम । ब्रह्मऽवाहः ।
अध । नियुत्वः । सऽगणः । मरुत्ऽभिः । अस्मिन् । यज्ञे । बर्हिषि । मादयस्व ॥ ९ ॥
मादयस्व । हरिऽभिः । ये । ते । इंद्र । वि । स्यस्व । शिप्रे इति । वि ।
सृजस्व । धेने इति । आ । त्वा । सुऽशिप्र । हरयः । वहंतु । उशन् । हव्यानि ।
प्रति । नः । जुषस्व ॥ १० ॥ मरुत्ऽस्तोत्रस्य । वृजनस्य । गोपाः । वयं । इंद्रेण ।
सनुयाम । वाजं । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंता । अदितिः । सिंधुः ।
पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ११ ॥ १३ ॥

इमा । ते । धियं । प्र । भरे । महः । महीं । अस्य । स्तोत्रे । धिषणा ।
यत् । ते । आनजे । तम् । उत्ऽसवे । च । प्रऽसवे । च । ससहिम् । इन्द्रम् ।
देवासः । शवसा । अमदन् । अनु ॥ १ ॥ अस्य । श्रवः । नद्यः । सप्त । बिभ्रति ।
द्यावाक्षामा । पृथिवी । दर्शतम् । वपुः । अस्मे इति । सूर्याचन्द्रमसा । अभि
ऽचक्षे । श्रद्धे । कम् । इन्द्र । चरतः । विऽतर्तुरम् ॥ २ ॥

तं स्मा रथं मघवन्प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे ।
आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥ ३ ॥
वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥ ४ ॥
नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः ।
अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥ ५ ॥ १४ ॥
गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः ।
अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः ॥ ६ ॥
उत्ते शतान्मघवन्नुच्च भूयस उत्सहस्राद्रिरिचे कृष्टिषु श्रवः ।
अमात्रं त्वा धिषणा तित्विषे मह्यधा वृत्राणि जिघ्नसे पुरंदर ॥ ७ ॥

तम् । स्म । रथम् । मघऽवन् । प्र । अव । सातये । जैत्रम् । यम् । ते । अनुऽमदाम । सम्ऽगमे । आजा । नः । इन्द्र । मनसा । पुरुऽस्तुत । त्वायत्ऽभ्यः । मघऽवन् । शर्म । यच्छ । नः ॥ ३ ॥ वयम् । जयेम । त्वया । युजा । वृतम् । अस्माकम् । अंशम् । उत् । अव । भरेऽभरे । अस्मभ्यम् । इन्द्र । वरिवः । सुऽगम् । कृधि । प्र । शत्रूणाम् । मघऽवन् । वृष्ण्या । रुज ॥ ४ ॥ नाना । हि । त्वा । हवमानाः । जनाः । इमे । धनानाम् । धर्तः । अवसा । विपन्यवः । अस्माकम् । स्म । रथम् । आ । तिष्ठ । सातये । जैत्रम् । हि । इन्द्र । निऽभृतम् । मनः । तव ॥ ५ ॥ १४ ॥ गोऽजिता । बाहू इति । अमितऽक्रतुः । सिमः । कर्मन्ऽकर्मन् । शतम्ऽऊतिः । खजम्ऽकरः । अकल्पः । इन्द्रः । प्रतिऽमानम् । ओजसा । अथ । जनाः । वि । ह्वयन्ते । सिसासवः ॥ ६ ॥ उत् । ते । शतात् । मघऽवन् । उत् । च । भूयसः । उत् । सहस्रात् । रिरिचे । कृष्टिषु । श्रवः । अमात्रम् । त्वा । धिषणा । तित्विषे । मही । अध । वृत्राणि । जिघ्नसे । पुरम्ऽदर ॥ ७ ॥

त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ८ ॥
त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ९ ॥
त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च ।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १० ॥
विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥ १५ ॥

॥ १०३ ॥ ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्स । देवता—इन्द्रः । छन्दः—जगती त्रिष्टुप् ॥

॥ १०३ ॥ तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम् ।
क्षमेदमन्यद्दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥

त्रिविष्टिऽधातु । प्रतिऽमानम् । ओजसः । तिस्रः । भूमीः । नृऽपते । त्रीणि । रोचना । अति । इदम् । विश्वम् । भुवनम् । ववक्षिथ । अशत्रुः । इन्द्र । जनुषा । सनात् । असि ॥ ८ ॥ त्वाम् । देवेषु । प्रथमम् । हवामहे । त्वम् । बभूथ । पृतनासु । ससहिः । सः । इमम् । नः । कारुम् । उपऽमन्युम् । उत्ऽभिदम् । इन्द्रः । कृणोतु । प्रऽसवे । रथम् । पुरः ॥ ९ ॥ त्वम् । जिगेथ । न । धना । रुरोधिथ । अर्भेषु । आजा । मघऽवन् । महत्ऽसु । च । त्वाम् । उग्रम् । अवसे । सम् । शिशीमसि । अथ । नः । इन्द्र । हवनेषु । चोदय ॥ १० ॥ विश्वाहा । इन्द्रः । अधिऽवक्ता । नः । अस्तु । अपरिऽह्वृताः । सनुयाम । वाजम् । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्ताम् । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ११ ॥ १५ ॥

तत् । ते । इन्द्रियम् । परमम् । पराचैः । अधारयन्त । कवयः । पुरा । इदम् । क्षमा । इदम् । अन्यत् । दिवि । अन्यत् । अस्य । सम् । ईमिति । पृच्यते । समनाऽइव । केतुः ॥ १ ॥

स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च वज्रेण हत्वा निरपः ससर्ज ।
अहन्नहिमभिनद्रौहिणं व्यहन्व्यंसं मघवा शचीभिः ॥ २ ॥
स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः ।
विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३ ॥
तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।
उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४ ॥
तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय ।
स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्स ओषधीः सो अपः स वनानि ॥ ५॥१६॥
भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६ ॥

सः । धारयत् । पृथिवीम् । पप्रथत् । च । वज्रेण । हत्वा । निः । अपः । ससर्ज । अहन् । अहिम् । अभिनत् । रौहिणम् । वि । अहन् । विऽअंसम् । मघऽवा । शचीभिः ॥ २ ॥ सः । जातूऽभर्मा । श्रत्ऽदधानः । ओजः । पुरः । विऽभिन्दन् । अचरत् । वि । दासीः । विद्वान् । वज्रिन् । दस्यवे । हेतिम् । अस्य । आर्यम् । सहः । वर्धय । द्युम्नम् । इन्द्र ॥ ३ ॥ तत् । ऊचुषे । मानुषा । इमा । युगानि । कीर्तेन्यम् । मघऽवा । नाम । बिभ्रत् । उपऽप्रयन् । दस्युऽहत्याय । वज्री । यत् । ह । सूनुः । श्रवसे । नाम । दधे ॥ ४ ॥ तत् । अस्य । इदम् । पश्यत । भूरि । पुष्टम् । श्रत् । इन्द्रस्य । धत्तन । वीर्याय । सः । गाः । अविन्दत् । सः । अविन्दत् । अश्वान् । सः । ओषधीः । सः । अपः । सः । वनानि ॥ ५ ॥ १६ ॥ भूरिऽकर्मणे । वृषभाय । वृष्णे । सत्यऽशुष्माय । सुनवाम । सोमम् । यः । आऽदृत्य । परिपन्थीऽइव । शूरः । अयज्वनः । विऽभजन् । एति । वेदः ॥ ६ ॥

तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७ ॥
शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शंबरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥ १७ ॥

॥ १०४ ॥ ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्स । देवता—इन्द्रः । छन्दः—जगती त्रिष्टुप् ॥

॥ १०४ ॥ योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥
ओ त्ये नर इन्द्रमूतये गुर्नू चित्तान्त्सद्यो अध्वनो जगम्यात् ।
देवासो मन्युं दासस्य श्चम्नन्ते न आ वक्षन्त्सुविताय वर्णम् ॥ २ ॥
अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन् ।
क्षीरेण स्नातः कुयवस्य योषे हते ते स्यातां प्रवणे शिफायाः ॥ ३ ॥

तत् । इंद्र । प्रऽइव । वीर्यं । चकर्थ । यत् । ससंतं । वज्रेण । अबोधयः । अहिं ।
अनु । त्वा । पत्नीः । हृषितं । वयः । च । विश्वे । देवासः । अमदन् । अनु ।
त्वा ॥ ७ ॥ शुष्णं । पिप्रुं । कुयवं । वृत्रं । इंद्र । यदा । अवधीः । वि । पुरः ।
शंबरस्य । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंतां । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी ।
उत । द्यौः ॥ ८ ॥ १७ ॥

योनिः । ते । इंद्र । निऽसदे । अकारि । तं । आ । नि । सीद । स्वानः ।
न । अर्वा । विऽमुच्य । वयः । अवऽसाय । अश्वान् । दोषा । वस्तोः । वहीयसः ।
प्रऽपित्वे ॥ १ ॥ ओ इति । त्ये । नरः । इंद्रं । ऊतये । गुः । नु । चित् ।
तान् । सद्यः । अध्वनः । जगम्यात् । देवासः । मन्युं । दासस्य । श्चम्नन् । ते ।
नः । आ । वक्षन् । सुविताय । वर्णं ॥ २ ॥ अव । त्मना । भरते । केतऽवेदाः ।
अव । त्मना । भरते । फेनं । उदन् । क्षीरेण । स्नातः । कुयवस्य । योषे इति ।
हते इति । ते इति । स्यातां । प्रवणे । शिफायाः ॥ ३ ॥

युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ।
अंजसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ ४ ॥
प्रति यत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात् ।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ॥ ५ ॥ १८ ॥
स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे ।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥
अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय ।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥ ७ ॥
मा नो वधीरिन्द्र मा परा दा मा नः प्रिया भोजनानि प्र मोषीः ।
आण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मा नः पात्रा भेत्सहजानुषाणि ॥ ८ ॥

युयोप । नाभिः । उपरस्य । आयोः । प्र । पूर्वाभिः । तिरते । राष्टि । शूरः । अंजसी । कुलिशी । वीरऽपत्नी । पयः । हिन्वानाः । उदऽभिः । भरंते ॥ ४ ॥ प्रति । यत् । स्या । नीथा । अदर्शि । दस्योः । ओकः । न । अच्छ । सदनं । जानती । गात् । अध । स्म । नः । मघऽवन् । चर्कृतात् । इत् । मा । नः । मघाऽइव । निष्षपी । परा । दाः ॥ ५ ॥ १८ ॥ सः । त्वं । नः । इंद्र । सूर्ये । सः । अप्ऽसु । अनागाःऽत्वे । आ । भज । जीवऽशंसे । मा । अंतरां । भुजं । आ । रिरिषः । नः । श्रद्धितं । ते । महते । इंद्रियाय ॥ ६ ॥ अध । मन्ये । श्रत् । ते । अस्मै । अधायि । वृषा । चोदस्व । महते । धनाय । मा । नः । अकृते । पुरुऽहूत । योनौ । इंद्र । क्षुध्यंत्ऽभ्यः । वयः । आऽसुतिं । दाः ॥ ७ ॥ मा । नः । वधीः । इंद्र । मा । परा । दाः । मा । नः । प्रिया । भोजनानि । प्र । मोषीः । आंडा । मा । नः । मघऽवन् । शक्र । निः । भेत् । मा । नः । पात्रा । भेत् । सहऽजानुषाणि ॥ ८ ॥

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय ।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥ ९ ॥ १९ ॥

॥ १०५ ॥ ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्स । देवता—विश्वेदेव । छन्दः—जगती त्रिष्टुप् ॥

॥ १०५ ॥ चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावते दिवि ।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १ ॥
अर्थमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ २ ॥
मो षु देवा अदः स्वरव पादि दिवस्परि ।
मा सोम्यस्य शंभुवः शूने भूम कदा चन वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ३ ॥
यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद्दूतो वि वोचति ।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद्बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ४ ॥

अर्वाङ् । आ । इहि । सोमऽकामं । त्वा । आहुः । अयं । सुतः । तस्य । पिब । मदाय । उरुऽव्यचाः । जठरे । आ । वृषस्व । पिताऽइव । नः । शृणुहि । हूयमानः ॥ ९ ॥ १९ ॥

चंद्रमाः । अप्ऽसु । अंतः । आ । सुऽपर्णः । धावते । दिवि । न । वः । हिरण्यऽनेमयः । पदं । विंदंति । विऽद्युतः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥१॥
अर्थं । इत् । वै । ऊं इति । अर्थिनः । आ । जाया । युवते । पतिं । तुंजाते इति । वृष्ण्यं । पयः । परिऽदाय । रसं । दुहे । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥२॥
मो इति । सु । देवाः । अदः । स्वः । अव । पादि । दिवः । परि । मा । सोम्यस्य । शंऽभुवः । शूने । भूम । कदा । चन । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ३ ॥
यज्ञं । पृच्छामि । अवमं । सः । तत् । दूतः । वि । वोचति । क्व । ऋतं । पूर्व्यं । गतं । कः । तत् । बिभर्ति । नूतनः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ४ ॥

अमी ये देवा स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ५ ॥ २० ॥
कद्व ऋतस्य धर्णसि कद्वरुणस्य चक्षणं ।
कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ६ ॥
अहं सो अस्मि यः पुरा सुते वदामि कानि चित् ।
तं मा व्यन्त्याध्यो३ वृको न तृष्णजं मृगं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ७ ॥
सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥८॥
अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता ।
त्रितस्तद्वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ९ ॥

अमी इति । ये । देवाः । स्थन । त्रिषु । आ । रोचने । दिवः । कत् । वः । ऋतं । कत् । अनृतं । क्व । प्रत्ना । वः । आऽहुतिः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ५ ॥ २० ॥ कत् । वः । ऋतस्य । धर्णसि । कत् । वरुणस्य । चक्षणं । कत् । अर्यम्णः । महः । पथा । अति । क्रामेम । दुःऽध्यः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ६ ॥ अहं । सः । अस्मि । यः । पुरा । सुते । वदामि । कानि । चित् । तं । मा । व्यन्ति । आऽध्यः । वृकः । न । तृष्णऽजं । मृगं । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ७ ॥ सं । मा । तपन्ति । अभितः । सपत्नीःऽइव । पर्शवः । मूषः । न । शिश्ना । वि । अदन्ति । मा । आऽध्यः । स्तोतारं । ते । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ८ ॥ अमी इति । ये । सप्त । रश्मयः । तत्र । मे । नाभिः । आऽतता । त्रितः । तत् । वेद । आप्त्यः । सः । जामिऽत्वाय । रेभति । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ९ ॥

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः ।
देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १० ॥ २१ ॥
सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः ।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ ११ ॥
नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम् ।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १२ ॥
अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम् ।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान्यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १३ ॥
सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १४ ॥

अमी इति । ये । पंच । उक्षणः । मध्ये । तस्थुः । महः । दिवः । देवऽत्रा । नु । प्रऽवाच्यं । सध्रीचीनाः । नि । ववृतुः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १० ॥ २१ ॥
सुऽपर्णाः । एते । आसते । मध्ये । आऽरोधने । दिवः । ते । सेधंति । पथः । वृकं । तरंतं । यह्वतीः । अपः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ ११ ॥
नव्यं । तत् । उक्थ्यं । हितं । देवासः । सुऽप्रवाचनं । ऋतं । अर्षंति । सिंधवः । सत्यं । ततान । सूर्यः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १२ ॥ अग्ने । तव । त्यत् । उक्थ्यं । देवेषु । अस्ति । आप्यं । सः । नः । सत्तः । मनुष्वत् । आ । देवान् । यक्षि । विदुःऽतरः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १३ ॥
सत्तः । होता । मनुष्वत् । आ । देवान् । अच्छ । विदुःऽतरः । अग्निः । हव्या । सुसूदति । देवः । देवेषु । मेधिरः । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १४ ॥

ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे ।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १५ ॥ २२ ॥
असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः ।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १६ ॥
त्रितः कूपेऽवहितो देवान्हवत ऊतये ।
तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १७ ॥
अरुणो मा सकृद्वृकः पथा यन्तं ददर्श हि ।
उज्जिहीते निचाय्या तष्टेव पृष्ट्यामयी वित्तं मे अस्य रोदसी ॥ १८ ॥
एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥१९॥२३॥१६॥

ब्रह्म । कृणोति । वरुणः । गातुऽविदं । तं । ईमहे । वि । ऊर्णोति । हृदा । मतिं । नव्यः । जायतां । ऋतं । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १५ ॥ २२ ॥
असौ । यः । पंथाः । आदित्यः । दिवि । प्रऽवाच्यं । कृतः । न । सः । देवाः । अतिऽक्रमे । तं । मर्तासः । न । पश्यथ । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १६ ॥
त्रितः । कूपे । अवऽहितः । देवान् । हवते । ऊतये । तत् । शुश्राव । बृहस्पतिः । कृण्वन् । अंहूरणात् । उरु । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १७ ॥ अरुणः । मा । सकृत् । वृकः । पथा । यंतं । ददर्श । हि । उत् । जिहीते । निऽचाय्य । तष्टाऽइव । पृष्टिऽआमयी । वित्तं । मे । अस्य । रोदसी इति ॥ १८ ॥ एना । आंगूषेण । वयं । इंद्रऽवंतः । अभि । स्याम । वृजने । सर्वऽवीराः । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंतां । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥१९॥२३॥१६॥

॥ षोडशोऽनुवाकः ॥

॥ १०६ ॥ ऋषिः—आंगिरसः कुत्सः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—जगती त्रिष्टुप् ॥

॥१०६॥ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ १ ॥
त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शम्भुवः ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ २ ॥
अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ३ ॥
नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ४ ॥
बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शं योर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ५ ॥

इन्द्रम् । मित्रम् । वरुणम् । अग्निम् । ऊतये । मारुतम् । शर्धः । अदितिम् । हवामहे । रथम् । न । दुःऽगात् । वसवः । सुऽदानवः । विश्वस्मात् । नः । अंहसः । निः । पिपर्तन ॥ १ ॥ ते । आदित्याः । आ । गत । सर्वऽतातये । भूत । देवाः । वृत्रऽतूर्येषु । शम्ऽभुवः । रथम् । न । दुःऽगात् । वसवः । सुऽदानवः । विश्वस्मात् । नः । अंहसः । निः । पिपर्तन ॥ २ ॥ अवन्तु । नः । पितरः । सुऽप्रवाचनाः । उत । देवी इति । देवपुत्रे इति देवऽपुत्रे । ऋतऽवृधा । रथम् । न । दुःऽगात् । वसवः । सुऽदानवः । विश्वस्मात् । नः । अंहसः । निः । पिपर्तन ॥ ३ ॥ नराशंसम् । वाजिनम् । वाजयन् । इह । क्षयत्ऽवीरम् । पूषणम् । सुम्नैः । ईमहे । रथम् । न । दुःऽगात् । वसवः । सुऽदानवः । विश्वस्मात् । नः । अंहसः । निः । पिपर्तन ॥ ४ ॥ बृहस्पते । सदम् । इत् । नः । सुऽगम् । कृधि । शम् । योः । यत् । ते । मनुःऽहितम् । तत् । ईमहे । रथम् । न । दुःऽगात् । वसवः । सुऽदानवः । विश्वस्मात् । नः । अंहसः । निः । पिपर्तन ॥ ५ ॥

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ ६ ॥
देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ७ ॥ २४ ॥

॥ १०७ ॥ ऋषिः-आङ्गिरसः कुत्स । देवता-अग्नि । छन्दः- जगती त्रिष्टुप् ।

॥ १०७ ॥ यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ १ ॥
उप नो देवा अवसा गमन्त्वङ्गिरसां सामभिः स्तूयमानाः ।
इन्द्र इन्द्रियैर्मरुतो मरुद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥ २ ॥
तन्न इन्द्रस्तद्वरुणस्तदग्निस्तदर्यमा तत्सविता चनो धात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ३ ॥ २५ ॥

इंद्रं । कुत्सः । वृत्रऽहनं । शचीऽपतिं । काटे । निऽबाळ्हः । ऋषिः । अह्वत् । ऊतये । रथं । न । दुःऽगात् । वसवः । सुऽदानवः । विश्वस्मात् । नः । अंहसः । निः । पिपर्तन ॥ ६ ॥ देवैः । नः । देवी । अदितिः । नि । पातु । देवः । त्राता । त्रायतां । अप्रऽयुच्छन् । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंतां । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ७ ॥

यज्ञः । देवानां । प्रति । एति । सुम्नं । आदित्यासः । भवत । मृळयंतः । आ । वः । अर्वाची । सुऽमतिः । ववृत्यात् । अंहोः । चित् । या । वरिवोवित्ऽतरा । असत् ॥ १ ॥ उप । नः । देवाः । अवसा । आ । गमंतु । अंगिरसां । सामऽभिः । स्तूयमानाः । इंद्रः । इंद्रियैः । मरुतः । मरुत्ऽभिः । आदित्यैः । नः । अदितिः । शर्म । यंसत् ॥ २ ॥ तत् । नः । इंद्रः । तत् । वरुणः । तत् । अग्निः । तत् । अर्यमा । तत् । सविता । चनः । धात् । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्ताम् । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ३ ॥ २५ ॥

॥ १०८ ॥ ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्स । देवता—इन्द्राग्नी । छन्दः—जगती त्रिष्टुप् ॥

॥१०८॥ य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे ।
तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १ ॥
यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम् ।
तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥ २ ॥
चक्राथे हि सध्र्यङ्नाम भद्रं सध्रीचीना वृत्रहणा उत स्थः ।
ताविन्द्राग्नी सध्र्यञ्चा निषद्या वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ॥ ३ ॥
समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा ।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥ ४ ॥
यानीन्द्राग्नी चक्रथुर्वीर्याणि यानि रूपाण्युत वृष्ण्यानि ।
या वां प्रत्नानि सख्या शिवानि तेभिः सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ५ ॥ २६ ॥

यः । इंद्राग्नी इति । चित्रऽतमः । रथः । वां । अभि । विश्वानि । भुवनानि । चष्टे । तेन । आ । यातं । सऽरथं । तस्थिऽवांसा । अथ । सोमस्य । पिबतं । सुतस्य ॥ १ ॥ यावत् । इदं । भुवनं । विश्वं । अस्ति । उरुऽव्यचा । वरिमता । गभीरं । तावान् । अयं । पातवे । सोमः । अस्तु । अरं । इंद्राग्नी इति । मनसे । युवऽभ्यां ॥ २ ॥ चक्राथे इति । हि । सध्र्यक् । नाम । भद्रं । सध्रीचीना । वृत्रऽहना । उत । स्थः । तौ । इंद्राग्नी इति । सध्र्यंचा । निऽसद्य । वृष्णः । सोमस्य । वृषणा । आ । वृषेथां ॥ ३ ॥ संऽइद्धेषु । अग्निषु । आनजाना । यतऽस्रुचा । बर्हिः । ऊं इति । तिस्तिराणा । तीव्रैः । सोमैः । परिऽसिक्तेभिः । अर्वाक् । आ । इंद्राग्नी इति । सौमनसाय । यातं ॥ ४ ॥ यानि । इंद्राग्नी इति । चक्रथुः । वीर्याणि । यानि । रूपाणि । उत । वृष्ण्यानि । या । वां । प्रत्नानि । सख्या । शिवानि । तेभिः । सोमस्य । पिबतं । सुतस्य ॥ ५ ॥ २६ ॥

यदब्रवं प्रथमं वां वृणानोऽयं सोमो असुरैर्नो विहव्यः ।
तां सत्यां श्रद्धामभ्या हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ६ ॥
यदिन्द्राग्नी मदथः स्वे दुरोणे यद्ब्रह्मणि राजनि वा यजत्रा ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ७ ॥
यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद्द्रुह्युष्वनुषु पूरुषु स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ८ ॥
यदिन्द्राग्नी अवमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यां परमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ९ ॥
यदिन्द्राग्नी परमस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १० ॥

यत् । अब्रवं । प्रथमं । वां । वृणानः । अयं । सोमः । असुरैः । नः । विऽहव्यः । तां । सत्यां । श्रद्धां । अभि । आ । हि । यातं । अथ । सोमस्य । पिबतं । सुतस्य ॥ ६ ॥ यत् । इंद्राग्नी इति । मदथः । स्वे । दुरोणे । यत् । ब्रह्मणि । राजनि । वा । यजत्रा । अतः । परि । वृषणौ । आ । हि । यातं । अथ । सोमस्य । पिबतं । सुतस्य ॥ ७ ॥ यत् । इंद्राग्नी इति । यदुषु । तुर्वशेषु । यत् । द्रुह्युषु । अनुषु । पूरुषु । स्थः । अतः । परि । वृषणौ । आ । हि । यातं । अथ । सोमस्य । पिबतं । सुतस्य ॥ ८ ॥ यत् । इंद्राग्नी इति । अवमस्यां । पृथिव्यां । मध्यमस्यां । परमस्यां । उत । स्थः । अतः । परि । वृषणौ । आ । हि । यातं । अथ । सोमस्य । पिबतं । सुतस्य ॥ ९ ॥ यत् । इंद्राग्नी इति । परमस्यां । पृथिव्यां । मध्यमस्यां । अवमस्यां । उत । स्थः । अतः । परि । वृषणौ । आ । हि । यातं । अथ । सोमस्य । पिबतं । सुतस्य ॥ १० ॥

यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत्पृथिव्यां यत्पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ ११ ॥
यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १२ ॥
एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ १३ ॥ २७ ॥

॥ १०९ ॥ ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्सः । देवता—इन्द्राग्नी । छन्दः—जगती त्रिष्टुप् ॥

॥१०९॥ वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान्।
नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम् ॥ १ ॥
अश्रवं हि भूरिदावत्तरा वां विजामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथा सोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोमं जनयामि नव्यम् ॥ २ ॥

यत् । इंद्राग्नी इति । दिवि । स्थः । यत् । पृथिव्यां । यत् । पर्वतेषु । ओषधीषु । अप्ऽसु । अतः । परि । वृषणौ । आ । हि । यातं । अथ । सोमस्य । पिबतं । सुतस्य ॥ ११ ॥ यत् । इंद्राग्नी इति । उत्ऽइता । सूर्यस्य । मध्ये । दिवः । स्वधया । मादयेथे इति । अतः । परि । वृषणौ । आ । हि । यातं । अथ । सोमस्य । पिबतं । सुतस्य ॥ १२ ॥ एव । इंद्राग्नी इति । पपिऽवांसा । सुतस्य । विश्वा । अस्मभ्यं । सं । जयतं । धनानि । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंतां । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ १३ ॥ २७ ॥

वि । हि । अख्यं । मनसा । वस्यः । इच्छन् । इंद्राग्नी इति । ज्ञासः । उत । वा । सऽजातान् । न । अन्या । युवत् । प्रऽमतिः । अस्ति । मह्यं । सः । वां । धियं । वाजऽयंतीं । अतक्षं ॥ १ ॥ अश्रवं । हि । भूरिदावत्ऽतरा । वां । विऽजामातुः । उत । वा । घ । स्यालात् । अथ । सोमस्य । प्रऽयती । युवऽभ्यां । इंद्राग्नी इति । स्तोमं । जनयामि । नव्यं ॥ २ ॥

मा च्छेद्म रश्मीँरिति नाधमानाः पितॄणां शक्तीरनुयच्छमानाः ।
इन्द्राग्निभ्यां कं वृषणो मदन्ति ता ह्यद्री धिषणाया उपस्थे ॥ ३ ॥
युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति ।
तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥ ४ ॥
युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये ।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन्प्र चर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥ ५ ॥ २८ ॥
प्र चर्षणिभ्यः पृतनाहवेषु प्र पृथिव्या रिरिचाथे दिवश्च ।
प्र सिन्धुभ्यः प्र गिरिभ्यो महित्वा प्रेन्द्राग्नी विश्वा भुवनात्यन्या ॥ ६ ॥
आ भरतं शिक्षतं वज्रबाहू अस्माँ इन्द्राग्नी अवतं शचीभिः ।
इमे नु ते रश्मयः सूर्यस्य येभिः सपित्वं पितरो न आसन् ॥ ७ ॥

मा । छेद्म । रश्मीन् । इति । नाधमानाः । पितॄणां । शक्तीः । अनुऽयच्छमानाः । इंद्राग्निऽभ्यां । कं । वृषणः । मदंति । ता । हि । अद्री इति । धिषणायाः । उपऽस्थे ॥ ३ ॥ युवाभ्यां । देवी । धिषणा । मदाय । इंद्राग्नी इति । सोमं । उशती । सुनोति । तौ । अश्विना । भद्रऽहस्ता । सुपाणी इति सुऽपाणी । आ । धावतं । मधुना । पृंक्तं । अप्ऽसु ॥ ४ ॥ युवां । इंद्राग्नी इति । वसुनः । विऽभागे । तवःऽतमा । शुश्रव । वृत्रऽहत्ये । तौ । आऽसद्य । बर्हिषि । यज्ञे । अस्मिन् । प्र । चर्षणी इति । मादयेथां । सुतस्य ॥ ५ ॥ २८ ॥ प्र । चर्षणिऽभ्यः । पृतनाऽहवेषु । प्र । पृथिव्याः । रिरिचाथे इति । दिवः । च । प्र । सिंधुऽभ्यः । प्र । गिरिऽभ्यः । महिऽत्वा । प्र । इंद्राग्नी इति । विश्वा । भुवना । अति । अन्या ॥ ६ ॥ आ । भरतं । शिक्षतं । वज्रबाहू इति वज्रऽबाहू । अस्मान् । इंद्राग्नी इति । अवतं । शचीभिः । इमे । नु । ते । रश्मयः । सूर्यस्य । येभिः । सऽपित्वं । पितरः । नः । आसन् ॥ ७ ॥

पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्तास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥ २९ ॥

॥ ११० ॥ ऋषिः—आङ्गिरसः कुत्सः । देवता—ऋभवः । छन्दः— जगत्यः, त्रिष्टुभ् ।

॥११०॥ ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते।
अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥ १ ॥
आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः ।
सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥ २ ॥
तत्सविता वोऽमृतत्वमासुवदगोह्यं यच्छ्रवयन्त ऐतन ।
त्यं चिच्चमसमसुरस्य भक्षणमेकं सन्तमकृणुता चतुर्वयम् ॥ ३ ॥
विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।
सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥ ४ ॥

पुरंऽदरा । शिक्षतं । वज्रऽहस्ता । अस्मान् । इंद्राग्नी इति । अवतं । भरेषु । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंता । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ८ ॥ २९ ॥

ततं । मे । अपः । तत् । ऊं इति । तायते । पुनरिति । स्वादिष्ठा । धीतिः । उचथाय । शस्यते । अयं । समुद्रः । इह । विश्वऽदेव्यः । स्वाहाऽकृतस्य । सं । ऊं इति । तृप्णुत । ऋभवः ॥ १ ॥ आऽभोगयं । प्र । यत् । इच्छंतः । ऐतन । अपाकाः । प्रांचः । मम । के । चित् । आपयः । सौधन्वनासः । चरितस्य । भूमना । अगच्छत । सवितुः । दाशुषः । गृहं ॥ २ ॥ तत् । सविता । वः । अमृतऽत्वं । आ । असुवत् । अगोह्यं । यत् । श्रवयंतः । ऐतन । त्यं । चित् । चमसं । असुरस्य । भक्षणं । एकं । संतं । अकृणुत । चतुःऽवयं ॥ ३ ॥ विष्ट्वी । शमी । तरणिऽत्वेन । वाघतः । मर्तासः । संतः । अमृतऽत्वं । आनशुः । सौधन्वनाः । ऋभवः । सूरऽचक्षसः । संवत्सरे । सं । अपृच्यंत । धीतिऽभिः ॥ ४॥

क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेनँ एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।
उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ॥ ५ ॥ १० ॥
आ मनीषामन्तरिक्षस्य नृभ्यः स्रुचेव घृतं जुहवाम विद्मना ।
तरणित्वा ये पितुरस्य सश्चिर ऋभवो वाजमरुहन्दिवो रजः ॥ ६ ॥
ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेऽभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥ ७ ॥
निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥ ८ ॥
वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ९ ॥ ११ ॥

क्षेत्रंऽइव । वि । ममुः । तेजनेन । एकं । पात्रं । ऋभवः । जेहमानं । उपऽस्तुताः । उपऽमं । नाधमानाः । अमर्त्येषु । श्रवः । इच्छमानाः ॥ ५ ॥ १० ॥ आ । मनीषां । अंतरिक्षस्य । नृऽभ्यः । स्रुचाऽइव । घृतं । जुहवाम । विद्मना । तरणिऽत्वा । ये । पितुः । अस्य । सश्चिरे । ऋभवः । वाजं । अरुहन् । दिवः । रजः ॥ ६ ॥ ऋभुः । नः । इंद्रः । शवसा । नवीयान् । ऋभुः । वाजेभिः । वसुऽभिः । वसुः । ददिः । युष्माकं । देवाः । अवसा । अहनि । प्रिये । अभि । तिष्ठेम । पृत्सुतीः । असुन्वतां ॥ ७ ॥ निः । चर्मणः । ऋभवः । गां । अपिंशत । सं । वत्सेन । असृजत । मातरं । पुनरिति । सौधन्वनासः । सुऽअपस्यया । नरः । जिव्री इति । युवाना । पितरा । अकृणोतन ॥ ८ ॥ वाजेभिः । नः । वाजऽसातौ । अविड्ढि । ऋभुऽमान् । इंद्र । चित्रं । आ । दर्षि । राधः । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंतां । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ९ ॥ १० ॥

॥ १११ ॥ ऋषिः—कुत्स । देवता—ऋभवः । छन्दः—जगती त्रिष्टुप् ॥

॥ १११ ॥ तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन्पितृभ्यामृभवो युवद्वयस्तक्षन्वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥ १ ॥
आ नो यज्ञाय तक्षत ऋभुमद्वयः क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीमिषम् ।
यथा क्षयाम सर्ववीरया विशा तन्नः शर्धाय धासथा स्विन्द्रियम् ॥ २ ॥
आ तक्षत सातिमस्मभ्यमृभवः सातिं रथाय सातिमर्वते नरः ।
सातिं नो जैत्रीं सं महेत विश्वहा जामिमजामिं पृतनासु सक्षणिम् ॥ ३ ॥
ऋभुक्षणमिन्द्रमा हुव ऊतय ऋभून्वाजान्मरुतः सोमपीतये ।
उभा मित्रावरुणा नूनमश्विना ते नो हिन्वन्तु सातये धिये जिषे ॥ ४ ॥
ऋभुर्भराय सं शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥ ३२ ॥

तक्षन् । रथं । सुऽवृतं । विद्मनाऽअपसः । तक्षन् । हरी इति । इंद्रऽवाहा । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू । तक्षन् । पितृभ्यां । ऋभवः । युवत् । वयः । तक्षन् । वत्साय । मातरं । सचाऽभुवं ॥ १ ॥ आ । नः । यज्ञाय । तक्षत । ऋभुऽमत् । वयः । क्रत्वे । दक्षाय । सुऽप्रजावतीं । इषं । यथा । क्षयाम । सर्वऽवीरया । विशा । तत् । नः । शर्धाय । धासथ । सु । इंद्रियं ॥ २ ॥ आ । तक्षत । सातिं । अस्मभ्यं । ऋभवः । सातिं । रथाय । सातिं । अर्वते । नरः । सातिं । नः । जैत्रीं । सं । महेत । विश्वहा । जामिं । अजामिं । पृतनासु । सक्षणिं ॥ ३ ॥ ऋभुक्षणं । इंद्रं । आ । हुवे । ऊतये । ऋभून् । वाजान् । मरुतः । सोमऽपीतये । उभा । मित्रावरुणा । नूनं । अश्विना । ते । नः । हिन्वंतु । सातये । धिये । जिषे ॥ ४ ॥ ऋभुः । भराय । सं । शिशातु । सातिं । समर्यऽजित् । वाजः । अस्मान् । अविष्टु । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहंतां । अदितिः । सिंधुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ५ ॥ ३२ ॥

॥ ११२ ॥ ऋषिः- कुत्स । देवता-द्यावा पृथिवी, अग्नि, अश्वी। छन्दः जगती त्रिष्टुप् ॥

॥ ११२ ॥ ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये ।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १ ॥
युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २ ॥
युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ३ ॥
याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।
याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ४ ॥
याभी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद्वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥५॥११॥

ईळे । द्यावापृथिवी इति । पूर्वऽचित्तये । अग्निं । घर्मं । सुऽरुचं । यामन् । इष्टये । याभिः । भरे । कारं । अंशाय । जिन्वथः । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ १ ॥ युवोः । दानाय । सुऽभराः । असश्चतः । रथं । आ । तस्थुः । वचसं । न । मंतवे । याभिः । धियः । अवथः । कर्मन् । इष्टये । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ २ ॥ युवं । तासां । दिव्यस्य । प्रऽशासने । विशां । क्षयथः । अमृतस्य । मज्मना । याभिः । धेनुं । अस्वं । पिन्वथः । नरा । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ ३ ॥ याभिः । परिऽज्मा । तनयस्य । मज्मना । द्विऽमाता । तूर्षु । तरणिः । विऽभूषति । याभिः । त्रिऽमंतुः । अभवत् । विऽचक्षणः । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ ४ ॥ याभिः । रेभं । निऽवृतं । सितं । अत्ऽभ्यः । उत् । वंदनं । ऐरयतं । स्वः । दृशे । याभिः । कण्वं । प्र । सिसासंतं । आवतं । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ ५ ॥ ११ ॥

अध्याय ७.

सूक्त ९५.

॥ ९५ ॥ ऋषि-आङ्गिरस कुत्स । देवता—अग्नि ॥

(उषा और रात्रि) दोनों (युवतियोंका) स्वरूप बिलकुल भिन्न है। वे दोनों सुन्दर मार्गोंसे गमन करती हैं। हर एक परस्परके बालकको स्तन पिलाती हैं। एक (रात्री) के पास पीले रङ्गका बालक हृष्ट पुष्ट[1] होता है और दूसरे (उषा) के पास शुभ्र रङ्गका बालक वृद्धि पाता है। १

त्वष्टा देवके उद्योगी दश युवतियोंने इस खिलाडु[2] (अग्नि) बालकको जनाया। जब इस बालकका तेज दिखाई देने लगा तब उसकी कीर्ति (संसारमें) चारों ओर फैल गयी। वे दोनों (युवती) उस देदीप्यमान बालकको अपने साथ ले गयीं। २

तीन जगह उस बालकका जन्म हुआ—समुद्रमें, द्युलोकमें और अन्तरिक्षमें। ज्ञानी लोक उन तीनों जन्मोंका[3] अच्छा वर्णन करते हैं। पृथिवीके चारों दिशाओंतक पूर्वसे पश्चिम और दक्षिणसे उत्तर विभागोंतक और ऋतुओंपर वह बालक अपना शासन नियमानुसार चलाता है; और योग्य समयपर अपना प्रबन्ध स्थापित करता है। ३

जब यह बालक (अग्नि) गुप्त[4] रहता है तब कौन इसको पहचान सकता है? इस बालकने अपने माताओंको अपने सामर्थ्यसे उत्पन्न किया। सब ऋतुओंको अपने पेटमें रखनेवाला श्रेष्ठ, ज्ञानी, और सामर्थ्यवान् अग्नि अपने (अद्भुत) पराक्रमके स्थानसे बाहर निकलकर सबदूर सञ्चार करता है। ४

---

१ विरूपे द्वे स्वर्थे चरतः । अन्याअन्या वत्सं उप धापयेते । अन्यस्यां हरिः स्वधावान् भवति, अन्यस्यां शुक्रः सुवर्चाः ददृशे ।

२ त्वष्टुः अतन्द्रासः दश युवतयः इमं विभृत्रं गर्भं जनयन्त । तिग्मानीकं जनेषु स्वयशसं विरोचमानं ईं परि नयन्ति ।

३ समुद्रे एकं, दिवि एकं, अप्सु (एकं), अस्य त्रीणि जाना परि भूषन्ति । पूर्वां अनु पार्थिवानां प्रदिशं ऋतून् प्रशासत् अनुपूर्वं वि दधौ ।

४ निण्यं इमं वः कः आ चिकेत ? वत्सः स्वधाभिः मातॄः जनयत । बह्वीनां गर्भः, महान्, कविः, स्वधावान् अपसां उपस्थात् निः चरति ।

यह सुन्दर अग्नि जलमें रहकर सबके सामने[१] वृद्धि पाकर प्रकट होता है। आप निजके कीर्तिसे शोभायमान दिखाई देते हैं। जिन जलोंमें आप रहते हैं वे आड़ मार्गसे चलते हैं। किन्तु उनमें आप खड़े रह सकते हैं। जब आपका जन्म हुआ तब द्युलोक और पृथिवीलोक –जिनको त्वष्टा देवने उत्पन्न किया–दोनों घबड़ा गये। किन्तु (द्युलोक और पृथिवीलोक) दोनों लौट आये और सिंहरूपी बालकको गोदमें लिया। ५ (१)

उपकारी द्यावापृथिवीओंने माताकी नाईं उस बालकका पालन किया। अपने वत्सके लिये रांभनेवाली गौकी नाईं वे दोनों (माताएं) अपने बालकके पास दौड़ती गयीं। (सब उपासक लोग) अग्निको दहने ओरसे हवि अर्पण करते हैं; और सबसे आप सामर्थ्यवान् बन जाते हैं। ६

सविता देवकी नाईं अग्नि अपने हाथ खड़े करता है। और आप दोनों (द्यावापृथिवी)को वस्त्रोंसे सुशोभित करते हैं। सबसे आप उनके पुराणे उज्ज्वल वस्त्र[१०] छीन लेते हैं; और अपने माताओंसे भी नया वस्त्र छीन लेते हैं। ७

जब निजके घर (अन्तरिक्ष)में अग्निका सम्बन्ध उदकरूपी गौकेसाथ होता है तब बिजलीकी तरह उनका उज्ज्वलरूप प्रकट होता है। प्रज्ञावान अग्नि केवल बुद्धिकी मूर्ति है। इसके चमत्कारसे आकाशमें प्रकाश प्रकट होता है। आपही स्वर्गके मूलस्तम्भको पवित्र करते हैं। इसीको कहते हैं कि यज्ञके समय अग्निका मेल देवोंकेसाथ होता है। ८

(अग्नि) सबसे श्रेष्ठ है। आपका निवासस्थान (स्वर्ग लोकके) प्रदेशमें है। उस विस्तीर्ण प्रदेशको आपका देदीप्यमान तेज[११] व्याप्त करता है। हे अग्निदेव, आप अपने सब ज्वालाओंसे प्रदीप्त हो जाइये। अपने सामर्थ्यसे[१२] –जिसको कोई रोक नहीं सकता– भक्तोंकी रक्षा कीजिये। ९

---

५ चारु आविष्ट्य आसु वर्धते। स्वयशाः जिह्मानां उपस्थे ऊर्ध्वः। त्वष्टुः उभे जायमानात् बिभ्यतुः, प्रतीची सिंह प्रति जोषयेते।

६ भद्रे उभे मेने न जोषयेते। वाश्राः गावः न एवैः उप तस्थुः। यं दक्षिणतः हविर्भिः अंजन्ति सः दक्षाणां दक्षपतिः बभूव।

७ सविता इव बाहू उत यंयमीति। सिचौ उभे ऋञ्जन् भीमः यतते। सिसस्मात् शुक्र अत्कं[१०] उत् अजते। मातृभ्यः नवा वसना जहाति।

८ तत सदने गोभिः अद्भिः सपृचानः उत्तरं त्वेषं रूप कृणुते। धीः कविः बुध्न परि मर्मृज्यते। सा देवानां समितिः बभूव।

९ ते उरु विचरन्तं प्रय[११] महिषाय धाम बुध्नं परि एति। अग्ने स्वयशोभिः विश्वेभिः इद्धः अदब्धेभिः पायुभिः[१२] अस्मान् पाहि।

(अग्नि) बञ्जर[११] भूमीमें जलको बहाता है। उदकोंको आप मार्ग दिखाते हैं। आप पानीकी लहरें उछलाते हैं; और आप सब दूर पृथिवपर पानी फैलाते हैं। सब पुराणी वस्तुओंको आप पेटमें रखते हैं; और नये वृक्षोंको उत्पन्न करते हैं। १०

हे अग्निदेव, जो इन्धन (लकड़ी) हम आपको अर्पण करते हैं उससे आप बढ़ जाइये; अपना प्रकाश सब दूर फैलाइये; हमे धन दीजिये और अपनी कीर्ति बढ़ाइये। इस प्रार्थनाको मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथ्वी, द्युलोक सुने और हमारी प्रार्थना सफल करें। ११ (८)

सूक्त ९६.

॥ ९६ ॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–द्रुद्रोग्नि ॥

सामर्थ्यसे उत्पन्न हुए अग्निने सचमुच[१] बुद्धिका सब खजाना एकदम प्राप्त किया। उदक और प्रज्ञाओंने अग्निको दुनियाका मित्र बनाया। और सब देवोंने वैभव देनेवाले अग्निकी शरण ली। १

अग्नि आयुकी स्तोत्रोंसे[२] सन्तुष्ट होकर अपने प्राचीन ज्ञानके अनुसार मनुष्यजातिकी सब प्रजा उत्पन्न की। आपने अपने तेजसे द्युलोक और उदकको उत्पन्न किया। वैभव देनेवाले अग्निकी सब देवोंने शरण ली। २

विश्वका पोषण करनेवाले, दान–कर्मकरनेमें सहायता देनेवाले और यज्ञकी सिद्धि करनेवाले सामर्थ्यके पुत्र–अग्निको–श्रद्धावान्[३] लोगोंने सबसे पहले बुलाया; (श्रद्धावान् लोगोंने) अग्निकी स्तुति करके आपको सन्तुष्ट किया। वैभव देनेवाले अग्निकी सब देवोंने शरण ली। ३

---

१० धन्वन्[११] स्रोतः ऊर्मिं गातुं कृणुते। शुक्रैः ऊर्मिभिः क्षां अभि नक्षति। विश्वा सनानि जठरेषु धत्ते। नवासु प्रसूषु अन्तः चरति।

११ पावक अग्ने, नः समिधा एव वृधानः श्रवसे रेवत् वि भाहि मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः तत् नः ममहन्तां।

१ प्रत्नथा सहसा जायमानः सः विश्वा काव्यानि सद्यः बट्[१] अधत्त। आपः च धिषणा च मित्रं साधन्। देवाः द्रविणोदां अग्निं धारयन्।

२ आयोः निविदा[२] सः पूर्वया कव्यता मनूनां इमाः प्रजाः अजनयत्, विवस्वता चक्षसा द्यां अपः च।

३ ऊर्जः पुत्रं, भरतं, सृप्रदानुं यज्ञसाध प्रथमं आहुत ऋञ्जमानं तं आरीः[३] विशः ईळत।

मानवजातिकी रक्षा करनेवाले, द्युलोक और भूलोकको उत्पन्न करनेवाले स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाले और असंख्य[४] वैभव पास रखनेवाले मातरिश्वा देवने अपनी सन्तानका कल्याण करनेके लिये नये नये और अच्छे मार्ग ढूंढे। और इसी लिये वैभव देनेवाले अग्निकी सब देवोंने शरण ली। ४

अपने स्वरूपको हमेशा बदलनेवाली[५] रात्री और उषा दोनों मिलकर[६] अपने सूर्यरूपी अग्नि बालकको अपना स्तन पिलाती है। सुवर्णके समान शोभा देनेवाले (सूर्यरूपी) अग्नि–देव द्युलोक और भूलोकमें अपना प्रकाश फैलाते हैं। वैभव देनेवाले अग्निकी सब देवोंने शरण ली। ५ (३)

आप सम्पत्तिका मूल खजाना हैं; धन देनेवाले, यज्ञकी ध्वजा फहरानेवाले और प्रार्थना करनेवालोंकी[७] इच्छा[८] पूर्ण करनेवाले आपही हैं। अपना अमरत्व स्थिर करनेका प्रयत्न करनेवाले देवोंने वैभव देनेवाले अग्निकी शरण ली। ६

जैसे प्राचीनकालमें आप वैभवके स्थान थे वैसेही अबभी[९] आप वैभवके स्थान बने हुए हैं। आजतक जितने प्राणियोंका जन्म हुआ है और भविष्यत्कालमें जिनका जन्म होगा उन सबोंके आप आनन्दकारक स्थान[१०] हैं। वर्तमानकालमें जितने प्राणी जीवित है और भविष्यत्कालमें जिनका जन्म होगा उन सबोंकी रक्षा आप करनेवाले हैं। वैभव देनेवाले अग्निकी सब देवोंने शरण ली। ७

वैभव देनेवाले अग्निदेवने शीघ्र[११] बढ़नेवाली सम्पत्ति हमें दी है। पराक्रमी पुरुष भी (अग्निदेवकी कृपासे) हमें मिले हैं। वीर्यशाली सम्पत्तिके साथ पोषण– द्रव्य भी आप (अग्नि)ने हमें अर्पण किया है। वैभव देनेवाले अग्निदेव हमारी आयुकी वृद्धि करते हैं। ८

---

४ विशां गोपाः रोदस्योः जनिता स्वर्वित् पुरुवारपुष्टिः[४] सः मातरिश्वा तनयाय गातुं विदत्।

५ वर्णं आमेम्याने[५] नक्तोषसा समीची[६] एकं शिशुं धापयेते। रुक्मः द्यावाक्षामा अन्तः वि भाति।

६ रायः बुध्नः वसूनां संगमनः यज्ञस्य केतुः वेः[७] मन्मसाधनः[८]। अमृतत्वं रक्षमाणासः देवाः एनं द्रविणोदां अग्निं धारयन्।

७ नु[९] च पुरा च रयीणां सदनं, जातस्य च जायमानस्य च क्षां,[१०] भूरेः सतः च भवतः च गोपां द्रविणोदां अग्निं देवाः धारयन्।

८ द्रविणोदाः तुरस्य[११] सनरस्य द्रविणसः प्र यंसत्। द्रविणोदाः नः वीरवतीं इषं। द्रविणोदाः दीर्घं आयुः रासते।

हे अग्निदेव, हमने अर्पण किये हुए इन्धनसे आपकी वृद्धि होती है। आप सबको पवित्र करते हैं। आप अपना प्रकाश सब दूर फैलाइये। हमें धन दीजिये। और आपकी कीर्ति सब दूर बढ़ जावे। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथ्वी, द्युलोक हमारी प्रार्थना सुनें और सफल करें। ६ (४)

सूक्त ९७.

॥ ९७ ॥ ऋषि–अङ्गिरस-कुत्स । देवता–अग्नि ॥

(अग्नि–देव) प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करें। हे अग्निदेव, हमपर सम्पत्तिका प्रकाश फैलाइये। सचमुच आप (अग्नि) प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करें। १

अच्छी[1] जगह रहनेवाली और सुमार्गसे[2] प्राप्त होनेवाली सम्पत्तिकी इच्छा करके हम आपका अर्चन करते हैं। आप प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करें। २

आपका भक्त (केवल) आपहीका स्तवन[3] करता है। और हमारे कुलमें उत्पन्न हुए सब विद्वान सज्जनभी आपहीकी स्तुतिमें मग्न होते हैं। इस लिये आप (अग्नि) प्रज्वलित-होकर हमारे पापका नाश कीजिये। ३

हे अग्निदेव, हमारे जन्मसेही हम आपके उपासक बन गये हैं। इस लिये हम आपके ही हैं। आप प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश कीजिये। ४

जब बलवान् अग्निके किरण सब दूर फैलते हैं तब आप हमारे पापका नाश कीजिये। ५

---

६. पावक अग्ने, एव नः समिधा वृधानः श्रवसे रेवत् वि भाहि। मित्रः, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः तत् नः ममहंतां।

१ नः अघं अप शोशुचत्। अग्ने, रयिं आ शुशुग्धि। नः अघं अप शोशुचत्।

२ सुक्षेत्रिया[1] सुगातुया[2] च वसुया यजामहे.

३ यत् एषां प्र मंदिष्ठः[3], अस्माकासः सूरयः च, नः अघं अप शोशुचत्।

४ अग्ने, यत् नयं ते सूरयः प्र जायेमहि, नः अघं अप शोशुचत्।

५ यत् सहस्वतः अग्नेः भानवः विश्वतः प्र यंति, नः अघं अप शोशुचत्।

चारों ओर आप (अग्नि)का सुन्दर मुख दिखाई देता है। हे (अग्निदेव) सचमुच आपने सब जगह व्याप्त की है। प्रज्वलित होकर हमारे पापका आप नाश करे। ६

आप (अग्निदेव)का मुख चारों ओर दिखाई देता है। जिस तरह जहाज समुद्रके परे ले जाता है उसी तरह हमे आप शत्रुके बलके पार (जहां शत्रु किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुंचा सकता) ले जाईये। आप प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करे। ७

समुद्रके पार ले जानेवाले जहाजकी तरह आप हमे संकटसे बचाइये[८] और आप (अग्नि) प्रज्वलित होकर हमारे पापका नाश करे। ८ (५)

सूक्त ९८.

॥ ९८ ॥ ऋषि—अङ्गिरस कुत्स । देवता—सोम ॥

सब मानवजातिसे अन्तःकरणमें प्रेम रखनेवाले अग्निदेवकी कृपा-दृष्टि हमपर रहे। आप किसकी रक्षा करते हैं? आप सब भुवनोंके अलंकार[१] है। इसी जगह जन्म लेकर आप सब विश्वका अवलोकन करते हैं। सब मानवजातिके विषयमें अन्तःकरणमें प्रेम रखनेवाले (अग्निदेव) सूर्यसे ईर्ष्या[१] करते है। १

द्युलोकमें जिसको ढूंढते है और पृथ्वीपर भी जिसको ढूंढते है ऐसे अग्निदेवने वनस्पतिमें प्रवेश किया। मानवजातिसे प्रेम रखनेवाले बलवान् अग्निदेवको सब लोग ढूंढते हैं। आप दिनरातमें दुष्ट लोगोंसे हमारी रक्षा कीजिये। २

---

६ विश्वतोमुख, त्वं हि विश्वतः परिभूः असि।

७ विश्वतोमुख, नावाइव नः द्विषः अति पारय।

८ नावया सिंधुं इव स्वस्तये सः नः अति पर्ष।

१ वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम। राजा कं हि? भुवनानां अभिश्रीः[१] इतः जातः इदं विश्वं वि चष्टे। वैश्वानरः सूर्येण यतते[१]।

२ दिवि पृष्टः, पृथिव्यां पृष्टः पृष्टः अग्निः विश्वाः ओषधीः आ विवेश। वैश्वानरः अग्निः सहसा पृष्टः। सः दिवा नक्तं नः रिषः पातु।

सब मानवजातिसे प्रेम रखनेवाले अग्निदेव, यह आपका सत्य (बल) हमेशा आपके पास रहे। हमारे तरफ आकर बहुत[3] सम्पति हमे दीजिये। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिंधु, पृथ्वी और द्युलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान देवें और सफल करें। 　३ (६)

सूक्त ९९.

॥ ९९ ॥ऋषि–मरीचिपुत्र, काश्यपऋषि । देवता–अग्नि ॥

चलिये। सर्वज्ञ अग्नि–देवका सन्मान करनेके लिये सोमरस तैयार करके रखना चाहिये। जो मनुष्य हमसे वैरभावका वर्ताव करते हैं उनके धनका अग्नि–देव नाश करते हैं। जिस तरह जहाज समुद्रके पार लेजाता है उसी तरह अग्नि–देव संकट और पापोंसे हमे बचाते हैं। 　१ (७)

सूक्त १००.

॥ १०० ॥ ऋषी–ऋज्राश्व, अंबरीष, सहदेव, भयमान, सुराधा । देवता–इन्द्र ॥

बलवान् इन्द्र कई वीर्यशाली देवोंकेसाथ रहता है। विस्तीर्ण द्युलोक और पृथिवलोकोंका आप स्वामी हैं। सचमुच अनुभवसे आपके बलके अस्तित्वका[1] प्रभाव विदित होता है। सोमरस तैयार होनेके पश्चात् आपको हवि अर्पण किया जाता है; और आप सन्तुष्ट होते हैं। मरुत्–देवोंकेसाथ आप यहा आवे और हमारी रक्षा करे। 　१

सूर्यकी गतिकी[2] नाई इन्द्रकी गतिको कोई रोक[3] नहीं सकता। जब सोमरस तैयार किया जाता है तब वृत्रको मारनेवाले इन्द्रकी पराक्रम– करनेकी और प्रवृत्ति होती है। मित्रकी सहायता मिलनेके कारण आपका सामर्थ्य बहुत बढ़गया है। आप मरुत् देवोंकेसाथ अपने मार्गसे[4] चलते हुए हमारी रक्षा करनेके लिये यहां आवें। 　२

---

३ वैश्वानर, तव तत् सत्य अस्तु । मघवानः रायः अस्मान् । सचतां मित्रः, वरुणः, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी उत द्यौः नः तत् ममहन्तां ।

१ जातवेदसे सोम सुनवाम । अरातीयतः वेदः नि दहाति । सः अग्निः नावा इव सिन्धुं विश्वा दुर्गाणि दुरिता नः अति पर्षत् ।

१ यः वृषाः वृष्ण्येभिः समोकाः, महः दिवः पृथिव्याः च सम्राट्, सतीनसत्वा[1], भरेषु हव्यः, सः मरुत्वान् इन्द्रः नः ऊती भवतु ।

२ सूर्यस्य इव यस्य यामः[1] अनाप्तः,[2] भरेभरे वृत्रहा शुष्मः अस्ति, सखिभिः वृषंतमः मरुत्वान् इन्द्रः स्वेभिः एवैः[3] नः ऊती भवतु ।

इन्द्रके सामर्थ्यको कोई रोक नहीं सकता; जिस मार्गको आप तैयार करते हैं उसी मार्गसे द्युलोकमें जल बहते हैं। आप अपने शत्रुओंसे आपको सहजही बचा सकते हैं। आप पराक्रमी होनेके कारण सब जगह आप विजयी हुए हैं। मरुत्-देवोंकेसाथ इन्द्र-देव हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। ३

आप (इन्द्रदेव) अपने मित्रोंके साथ मित्रत्वका बर्ताव करते हैं। पराक्रम करनेवाले लोगोंमें आपका नाम मशहूर है। आंगिरस वंशमें आपही सबसे श्रेष्ठ हैं। जो देव स्तुति करने योग्य[5] हैं उनमें, आप अधिक स्तुति-योग्य हैं। स्तुतिके कारण आपका नाम बहुत बढ़ गया है। इन्द्रदेव मरुत् देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। ४

युद्धमें[6] इन्द्रदेव अपने शत्रुओंको जीत[7] लेता है। मानो, पुत्रकी नाई रुद्रोंकी सहायता आपको युद्धमें मिली; इस कारण आप श्रेष्ठ[8] समझे गये आपके साथ रहनेवाले देवोंकी सहायतासे आप बड़े बड़े वीरताका काम करते[9] हैं। इन्द्रदेव मरुत्देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। ५ (८)

शत्रुओंकी घमण्ड[10] हरण करनेवाले और युद्ध[11] करनेवाले इन्द्रने शूर पुरुषोंकी सहायतासे सूर्यको ढूण्ड निकाला। भक्तगण आपको हमेशा प्रार्थना करते हैं। आप सज्जन लोगोंकी रक्षा करनेवाले हैं। इन्द्रदेव मरुत्-देवोंकेसाथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। ६

पराक्रमी लोग धन प्राप्त करनेकी इच्छासे युद्ध करते हैं। युद्धके समयपर आप उनके मनमें प्रेरणा[12] उत्पन्न करके उनको सामर्थ्य देते हैं। सब मनुष्य आपहीको कल्याण करनेवाले[13] समझते हैं। अतः सब सत्कृत्योंके[14] आपही स्वामी हैं। इन्द्र-देव मरुत्देवोंकेसाथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। ७

---

३ शवसा अपरीताः यस्य पथासः दिवः न रेतसः दुधानाः यंति, तरद्द्वेषाः, पौंस्येभिः ससहिः मरुत्वान् इन्द्रः नः ऊती भवतु।

४ सखिभिः सखा सन् वृषभिः वृषा सः अंगिरोभिः अंगिरस्तमः भूत्। ऋग्मिभिः[5] ऋग्मी, गातुभिः ज्येष्ठः मरुत्वान् इन्द्रः नः ऊती भवतु।

५ नृसाह्ये[6] अमित्रान् ससह्वान्[7] सः सूनुभिः न रुद्रेभिः ऋभ्वा[8]। सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्[9] मरुत्वान् इन्द्रः नः ऊती भवतु।

६ मन्युमीः[10] समदनस्य[11] कर्ता सः अस्माकेभिः नृभिः सूर्यं सनत्। पुरुहूतः सत्पतिः मरुत्वान् इन्द्रः अस्मिन् अहन् नः ऊती भवतु।

७ शूरसातौ तं ऊतयः रणयन्[12]। क्षितयः तं क्षेमस्य त्रां[13] कृण्वत। विश्वस्य करुणस्य[14] सः एकः ईशे। मरुत्वान् इन्द्रः नः ऊती भवतु।

आनन्दोत्सव मनाते समय आप (इन्द्र) के मनमें नयी स्फूर्ति उत्पन्न होती है। स्वरक्षा और धनकी इच्छा करनेवाले पुरुष आप (इन्द्र) जैसे पराक्रमी देवोंकी शरण लेते हैं। जब चारों ओर गाढ़ा अन्धःकार फैलता है तब आप तेजोमय प्रकाश उत्पन्न करते हैं। इस लिये इन्द्र-देव मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। ८

आप अपने बांये हाथसे अपने बलवान्[१५] (शत्रुओंको) दबा सकते हैं; और प्राप्त किये हुए धनको दहने हाथमें आप पकड़ लेते हैं। स्तुति करनेवाले उपासकोंको धन अर्पण करनेवाले इन्द्र मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। ९

आप (इन्द्र) बैठकर सेनाकी सहायतासे धन प्राप्त कर सकते हैं। सब मानव जातिको आपकी कीर्ति विदितही है। जो लोग आपकी स्तुति नहीं करते उन दुष्टोंको[१६] आप अपने बलसे पराजित करते हैं। इन्द्र मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। १० (९)

बहुतसे उपासक लोग इन्द्रको पाचारण[१७] करते हैं। अपने सगेवाले हों अथवा दूसरे लोग हों सबको युद्धमें आप सहायता देते हैं। जल, पुत्र, और पौत्रकी प्राप्ती करानेके लिये इन्द्रदेव, आप यहां आवें। आप (इन्द्र) देव मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। ११

आप (इन्द्र) हाथमें वज्र धारण करते हैं। आप शत्रुका नाश करनेवाले हैं। आप सबको डरानेवाले हैं। आपका स्वरूप उग्र है। आप प्रज्ञावान् हैं। आप सेनाके अधिपति हैं और सामर्थ्यवान् हैं। सोमरसकी तरह आप स्फूर्ति[१८] देनेवाले हैं। आप मानव जातिकी रक्षा[१९] करनेवाले हैं। इन्द्र-देव मरुत्-देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे यहां आवें। १२

---

८ उत्सवेषु शवसः तं अप्सन्त। अवसे धनाय नरः तं नरं। अन्धे चित् तमसि नः ज्योतिः विदत्।

९ सः सव्येन माधतः[१५] चित् यमति। सः दक्षिणे कृतानि संगृभीता। कीरिणा चित् सः धनानि सनिता।

१० सः ग्रामेभिः सनिता। सः रथेभिः। विश्वाभिः कृष्टिभिः अद्यविदे नु। स पौंस्येभिः अशस्तीः[१६] अभिभूः।

११ पुरुहूतः सः जामिभिः अजामिभिः वा मीळ्हे[१७] एवैः समजाति, अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान् इन्द्रः नः ऊती भवतु। ११

१२ सः वज्रभृत्, दस्युहा, भीमः, उग्रः, सहस्रचेताः, शतनीथः, ऋभ्वा। शवसा चर्षीषः[१८] न, पांचजन्यः[१९]।

जैसे द्युलोकमें अथवा (अन्तरिक्ष) में (बिजली चमकते समय) बड़ी गर्जना[२०] होती है वैसेही आपका वज्र स्वर्गसे गिरते समय बड़ी गर्जना करता है । अनेक मार्गोंसे लाभ और सम्पत्ति आपकी ओर दौड़ती चली आती है । इन्द्र मरुत् देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे (यहां) आवें । १३

इन्द्रके सामर्थ्यसे द्युलोक और भूलोक भरा हुआ है । आपकी कीर्ति सब दूर फैली हुई है; हमारी पूजासे[२१] आप सन्तुष्ट हूजिये । और हमें संकटसे परे ले जाइये । इन्द्र, मरुत् देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे (यहां) आवें । १४

देव, देवता, मनुष्य, जल, आदि किसीको भी इन्द्रके सामर्थ्यका पता नहीं लगा । आप अपने बलसे[२२] द्युलोक और भूलोकको आक्रमण करते हैं । इन्द्र मरुत् देवोंके साथ हमारी रक्षा करनेकी इच्छासे (यहां) आवें । १५ (१०)

सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव जब अपने रथमें विराजमान होते हैं तब आपके रथका जूआ द्युलोकमें[२३] रहनेवाली लाल और काले रङ्गकी सुन्दर और देदीप्यमान घोड़ी अपने कंधेपर ले चलती है । वह सुन्दर घोड़ी[२४] ऋज्राश्वको सम्पत्ति अर्पण करनेके लिये (यहां) आनन्दसे आती हुई[२५] दिखाई देती है । १६

हे इन्द्र, ऋज्राश्व, अम्बरीष, सहदेव, भयमान और सुराधा वृषागिरके पुत्र अपने मित्रोंके साथ[२६] आनन्दसे आपका सन्मान करके आपका स्तोत्र गाते हैं । १७

---

१३ दिवः शिमीवान् त्वेषः रवथः[२०] न तस्य स्वर्षाः वज्रः क्रन्दति । सनयः धनानि तं सचन्ते ।

१४ यस्य शवसा मानं उक्थ अजस्रं बिभ्रतः सीं रोदसी परिभुजत्, सः क्रतुभिः[२१] मन्दसानः पारिषत् ।

१५ देवाः, देवता, मर्ताः, आपः चन यस्य शवसः अन्तं न आपुः त्वक्षसा[२२] क्ष्मा दिवः प्ररिक्वा सः मरुत्वान् इन्द्रः नः ऊती भवतु ।

१६ वृषण्वन्तं रथं धूर्षु बिभ्रती रोहित् श्यावा द्युक्षा[२३] सुमदंशुः ललामीः[२४] ऋज्राश्वस्य राये नाहुषीषु[२५] विक्षु मन्द्रा चिकेत ।

१७ इन्द्र, वार्षागिराः, ऋज्राश्वः, अम्बरीषः, सहदेवः, भयमानः, सुराधाः, प्रष्टिभिः[२६] वृष्णे ते एतत् त्यत् राधः उक्थं अभि गृणन्ति ।

इन्द्रदेवने— जिसकी अनेक भक्तजन प्रार्थना करते हैं—पृथ्वीपरके सब दुष्ट लोगोंका और सतानेवाले शत्रुओंका[१७] धीरे धीरे[१८] नाश[१९] किया। वज्रधारी देवने अपने तेजस्वी[२०] मित्रोंकी सहायतासे भूमिको प्राप्त किया। १८

इन्द्र हमारा निरन्तर कल्याणकरनेवाला और आशीस देनेवाला होवें; जिससे हमारे मार्गमें कोई बाधा न पड़े और हमें सामर्थ्य प्राप्त होवें। मित्र, वरुण, अदिति, तथा सिन्धु, पृथिवी, द्युलोकादि एक सम्मतिसे हमारी प्रार्थना सफल करें। १९ (११)

सूक्त १०१.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र ॥

इन्द्रदेवने ऋजिश्वाके द्वारा काले रङ्गके (दुष्ट) लोगोंका वध करवाया। आनन्द देनेवाले इन्द्रको हविके[१] साथ एक स्तोत्र हम अर्पण करते हैं। हमारी रक्षा करनेके लिये हम उनके मित्रत्वकी इच्छा करते हैं। दहने हाथमें वज्र धारणकरनेवाले पराक्रमी इन्द्रको मरुत् देवोंके साथ हम यहां बुलाते हैं। १

आप (इन्द्र)ने क्रोधमें आकर व्यंसका वध किया; आपने शम्बरको मार डाला; आपने भक्तिहीन पिप्रूका भी नाश किया; जिस शुष्णका नाश करना असम्भव[२] था उसका भी आपने वध[३] किया। ऐसे इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करनेवाले हम मरुत्देवोंके साथ आपको बुलाते हैं। २

द्युलोक और पृथ्वीलोक उत्पन्न करनेका पराक्रम आपने किया। वरुण, सूर्य, नदियां, आदि देवताएं इन्द्र देवताकी आज्ञा मानते हैं और उसके अनुसार चलते हैं। ऐसे उपर्युक्त इन्द्रकी मित्रत्वकी इच्छा करनेवाले हम मरुत् देवोंके साथ आपको बुलाते हैं। ३

---

१८ पुरुहूतः पृथिव्यां दस्यून् शिम्यून्[१७] च एवैः[१८] हत्वा शर्वा[१९] निबर्हीत्। सुवज्रः श्वित्न्येभिः सखिभिः क्षेत्रं सनत्, सूर्यं सनत्, अपः सनत्।

१९ इन्द्रः विश्वाहा नः अधिवक्ता अस्तु। अपरिह्वृताः वाजं सनुयाम।

१ यः ऋजिश्वना कृष्णगर्भाः निरहन् मन्दिने पितुमत्[१] वचः प्र अर्चत। अवस्यवः वज्रदक्षिणं मरुत्वंतं वृषणं सख्याय हवामहे।

२ यः अहृषाणेन मन्युना व्यंसं, यः शम्बरं, यः अव्रतं पिप्रुं अहन्, यः इन्द्रः अशुषं[२] शुष्णं न्यवृणक् मरुत्वंतं सख्याय हवामहे।

३ द्यावापृथिवी यस्य महत् पौंस्यं, यस्य व्रते वरुणः, यस्य सूर्यः, यस्य इन्द्रस्य व्रते वरुणः, यस्य सूर्यः, यस्य इन्द्रस्य व्रतं सिन्धवः सश्चति, मरुत्वंतं सख्याय हवामहे.

आप अश्वोंके और धेनुओंके भी स्वामी हैं। आप सबको अपने वशमें रखते हैं। आपका सब सन्मान करते हैं। आपका प्रभाव हरएक काममें दिखाई देता है। आपको हवि अर्पण न करनेवाले पाखण्डी (अभक्त) लोगोंका आप वध करते हैं। इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करके हम मरुत् देवोंके साथ आपको बुलाते हैं। ४

आप सब प्राणियोंके स्वामी हैं। भक्तिवान् उपासकोंके लिये आपने पहिले धेनुओंकी प्राप्ति की। आपने दुष्ट लोगोंको दूरतक नीचे फेंक दिया। ऐसे इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करनेवाले हम मरुत्देवोंके साथ आपका पाचारण करते हैं। ५

पराक्रमी लोग आपको हमेशा पुकारते हैं; और कायर लोग भी आपको बुलाते हैं। युद्धमें जीतनेवाले और हारनेवाले दोनों प्रकारके पुरुष आपसे प्रार्थना करते हैं। सब जगतके लोग आपके सङ्गतिकी इच्छा[४] करते हैं। इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करनेवाले हम मरुत्देवोंके साथ आपका पाचारण करते हैं। ६(१२)

ज्ञानी इन्द्र रुद्रकी दिशाकी ओरसे आते हैं। रुद्रदेवके साथ उषादेवी (युवती) अपना विस्तीर्ण प्रकाश फैलाती[५] है। भक्त लोग स्तोत्रोंके द्वारा कीर्तिवान् इन्द्रका अर्चन करते हैं। हम भी इन्द्रकी मित्रताकी इच्छा करके मरुत्देवोंके साथ आपका पाचारण करते हैं। ७

हे इन्द्र, आप हमेशा मरुत् देवोंके साथ रहते हैं। जब आप सब देवोंके साथ किसी जगह आनन्द मनाते हैं अथवा किसी एकान्त जगह[६] बैठते हैं तब भी हमारे यज्ञकी ओर आगमन कीजिये। सत्यसे सन्तोष मनानेवाले देव, आपहीके प्रेमसे[७] हम आपको हवि अर्पण करते हैं। ८

---

४ यः अश्वानां, यः गवां गोपतिः वशी, यः आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः, यः इन्द्रः वीळोः चित् असुन्वतः वधः, मरुत्वंतं सख्याय हवामहे।

५ यः विश्वस्य जगतः प्राणतः पतिः, यः ब्रह्मणे प्रथमः गाः अविन्दत्, यः दस्यून् अधरान् अवातिरत्, मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे।

६ यः शूरेभिः हव्यः, यः च भीरुभिः, यः धावद्भिः हूयते, यः च जिग्युभिः, यं इन्द्र विश्वा भुवना अभि संदधुः, मरुत्वंतं सख्याय हवामहे।

७ विचक्षणः रुद्राणां प्रदिशा एति। रुद्रेभिः योषा पृथु ज्रयः तनुते। मनीषा श्रुतं इन्द्रं अभि अर्चति। मरुत्वंतं सख्याय हवामहे।

८ मरुत्वः, यत् वा परमे सधस्थे, यत् वा अवमे वृजने मादयासे, अतः नः अध्वरं अच्छ आ याहि। सत्यराधः त्वाया हविः चकृम।

हे वीर्यशाली इन्द्र, आपहीके प्रेमसे हमने सोमरस तैयार किया है। हमारे स्तुतियोंका स्वीकार करनेवाले देव, आपहीके प्रेमके कारण हम हवि सिद्ध करते हैं। अश्वपर आरूढ होनेवाले देव, अपने गणोंकेसाथ यहां आकर हमारे कुशासनपर विराजमान् होकर मरुत् देवोंके साथ आनन्द मनाइये। ९

अपने पीले रङ्गके अश्वोंके साथ (इस यज्ञमें आकर) आनन्द मनाइये। अपना मुख खोलकर अपने सुन्दर मुखसे हमारे हवियोंका भक्षण कीजिये। उत्तम मुकुटसे[१] शोभनेवाले इन्द्रको आपके अश्व ले आवें। हमारे हवियोंको पसन्द[१०] करके आप उनका स्वीकार कीजिये। १०

जिस जगह मरुत् देवोंकी स्तुति की जाती[११] है वहां इन्द्रदेव भी आते हैं और हमें सामर्थ्य प्रदान करते हैं। मित्र, वरुण, तथा आदिति, सिन्धु, पृथ्वि, द्युलोक आदि देवतागं हमारी प्रार्थनापर ध्यान देकर उसे सफल करें। ११ (१३)

सूक्त १०२.

॥ ऋषि—अङ्गिरस कुत्स । देवता-अग्नि ॥

(हे इन्द्र) जो स्तोत्र आप बहुत पसन्द[१] करते हैं उसीको मैं आप जैसे श्रेष्ठ देवको अर्पण करता हूं। आनन्द मनाते समय अथवा लाभ[२] प्राप्त करनेके समयपर आपको हमेशा विजयही[३] होता है। आप जैसे सामर्थ्यवान् देवको देखकर और आर दूसरे देवोंको आनन्द होता है। १

आपकी कीर्ति इतनी बड़ी है कि वह सात नदियों द्वारा बहती है। स्वर्ग और भूमि दोनों विस्तीर्ण लोक[४] आपके सुन्दर देहको व्याप्त करते हैं। हे इन्द्र सचमुच हम आपहीपर श्रद्धा रखते हैं; और सूर्य और चन्द्र आपसमें न मिलकर हमको प्रकाश देनेके लिये हमेशा सञ्चार करते रहते हैं। २

---

९ सुदक्ष, इन्द्र, त्वाया सोमं सुषुम। ब्रह्मवाहः, त्वाया हविः चकृम नियुत्वः,[८] अथ सगणः बर्हिषि अस्मिन् यज्ञे मरुद्भिः मादयस्व।

१० इन्द्र, ये ते हरिभिः मादयस्व, शिप्रे विष्यस्व, धेने[९] वि सृजस्व। सुशिप्र, त्वा हरयः आ वहन्तु। उशन्[१०] नः हव्यानि प्रति जुषस्व।

११ मरुत्स्तोत्रस्य वृजनस्य[११] गोपाः वयं इन्द्रेण वाजं सनुयाम।

१ यत् ते धिषणा अस्य स्तोत्रे आनजे[१] महीं इमां धियं महः ते प्र भरे। उत्सवे प्रसवे[२] च सासहिं[३] तं इन्द्रं देवासः शवसा अमदन्।

२ सप्त नद्यः अस्य श्रवः बिभ्रति। पृथिवी[४] द्यावाक्षामा दर्शतं वपुः इन्द्र श्रद्धे सूर्याचन्द्रमसा अस्मे अभिचक्षे वितुर्तुरं[५] कं चरतः।

हे उदार (इन्द्र), जब आपका विजयी रथ आता है तब हमें आनन्द होता है। आपके रथके द्वारा हमें सम्पत्तिका लाभ होता है और हमारी रक्षा होती है। भक्तोंकी स्तुतिका स्वीकार करनेवाले उदार इन्द्र, हम हृदयसे आपपर प्रेम[1] करते हैं। इस लिये युद्धमें हमारी रक्षा कीजिये। ३

यदि आप हमको सहायता देनेवाले होंगे तो हम (निश्चयसे) शत्रुओंको[9] जीत लेंगे। जब[8] हम आपको हवि अर्पण करते हैं तब हमारे पक्षकी[1] रक्षा करनेके लिये तैयार रहिये। हमारी रक्षा करनेके लिये आप एक ऐसा सुलभ (बचानेवाला) अस्त्र[10] बनाइये जिससे हम शत्रुओंको जीत लेंगे। ४

सम्पत्तिको उत्पन्न करनेवाले इन्द्र, हम आपकी कृपाकी इच्छा करते हैं। आपका स्तवन और पूजन करनेवाले बहुत सज्जन हैं। किन्तु केवल हमारा लाभ करानेके लिये आप रथमें आरूढ हूजिये। हे इन्द्र, सचमुच आपके मनकी इच्छा हमेशा विजयकी ओर दौड़ती है। ५(१४)

आप अपने बाहुओंके बलसे गौधनको जीत लेते हैं। आपकी बुद्धिका सामर्थ्य असीम है। आप बड़े श्रेष्ठ[11] हैं। हरएक कृत्यमें आप (भक्त)को सहायता देते हैं। आप युद्ध करनेमें बड़े कुशल[12] हैं। आपके बलकी कोई कल्पना[13] भी नहीं कर सकता है। आप अपने अद्वितीय सामर्थ्यके कारण श्रेष्ठ हुए हैं। आपकी सेवा करनेवाले लोग आपको कई प्रकारसे पुकारते हैं। ६

मानवजातिमें आपका यश सब दूर फैला हुआ है। सैकड़ों नहीं हजारों लोगोंकी अपेक्षा आपका यश अधिक फैला हुआ है। आपका सामर्थ्य कोई नाप[14] नहीं सकता (वह असीम है)। हमारी स्तुति आपका उत्साह[15] बढ़ाती है। शत्रुओंके नगरोंका नाश करनेवाले देव, आप राक्षसोंका नाश कर सकते हैं। ७

---

३ मघवन्, यं ते जैत्रं (रथं) संगमे अनुमदाम, तं रथं सातये प्र अव स्म। पुरुस्तुत मघवन् इन्द्र, मनसा त्वायद्भ्यः[1] नः नः आजा शर्म यच्छ।

४ त्वया युजा वृतं[9] वयं जयेम। भरेभरे[8] अस्माकं अंशं[1] उत् अव। इन्द्र, अस्मभ्यं सुगं वरिवः[10] कृधि। मघवन् शत्रूणां वृष्ण्या प्र रुज।

५ धनानां धर्तः, अवसा त्वा हवमानाः विपन्यवः इमे जनाः नाना हि। अस्माकं सातये स्म रथं आ तिष्ठ। इन्द्र, तव मनः निभृतं जैत्रं हि।

६ बाहू गोजिता; इन्द्रः अमितक्रतुः सिमः[11] कर्मन्कर्मन् शतमूतिः, खजंकरः,[12] अकल्पः,[13] ओजसा प्रतिमानं। अथ सिषासवः जनाः विह्वयन्ते।

७ मघवन्, कृष्टिषु ते श्रवः उत् शतात्, उत् च भूयसः, उत् सहस्राद् रिरिचे। अमात्रं[14] त्वा मही धिषणा तितिषे, अथ, पुरन्दर वृत्राणि जिघ्नसे।

हे मनुष्योंके स्वामी, भूलोक, स्वर्गलोक, और देदीप्यमान प्रदेश (अन्तरिक्ष) तीनों लोगोंको आपने व्याप्त किया है। इन तीनों लोगोंसे आप बड़े हैं। हे इन्द्र, आपके जन्मसेही आपका कोई शत्रु नहीं रहा। ८

सब देवोंसे पहिले हम आपको पुकारते हैं। युद्धमें विजय पानेवाले इन्द्र, हमें स्तवन करनेकी स्फूर्ति[१५] दीजिये; और (सम्पत्ति) का लाभ[१६] करानेके लिये हमारा रथ सबसे आगे बढ़ाइये। ९

हे उदार देव, आप छोटे और बड़े सब युद्धोंमें विजय पाते हैं। किन्तु कभी सम्पत्ति लूट नहीं लेते। आपका स्वरूप बड़ा उग्र है। हमारा रक्षा[१७] करनेके लिये हम आपकी स्तुति करते हैं। हे इन्द्र, जब हम आपकी स्तुति करते हैं तब आप हमारी उन्नति कीजिये। १०

इन्द्र, हमे शुभदायक आशीस देनेवाला होवें। आपकी कृपाके कारण ही हमारे कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं आती। हमें सामर्थ्यका लाभ करा दीजिये। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और द्युलोक, आदि हमारी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये ११(१५)

सूक्त १०३.

॥ ऋषि–अङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र ॥

पुराणे कालसे आपका जो सामर्थ्य[१] इस पृथिवीपर दृग्गोचर होता है उसका विद्वान लोग अभिनन्दनहीं[२] करते हैं। आपकी शक्तिका एक अंश पृथिवीपर दृग्गोचर होता है; और दूसरा अंश स्वर्गलोकमें दिखाई देता है। जैसे युद्धके समय भीड़ होनेके कारण (एक दलकी ध्वजा दूसरे दलकी ध्वजासे मिलती हुई दिखाई देती है) उसी तरह आपके (द्युलोक और पृथिवीलोकके) दोनों अंश एक दूसरेके साथ मिले हुए दिखाई देते हैं। १

---

८ नृपते, तिस्रः भूमीः, त्रीणि रोचना, ओजसः त्रिविष्टिधातु प्रतिमानं। इदं विश्वं भुवनं अति ववक्षिथ। इन्द्र, सनात् जनुषा अशत्रुः असि।

९ देवेषु प्रथमं त्वां हवामहे। पृतनासु त्वं ससहिः बभूथ। सः इन्द्रः नः कारुं उपमन्युं उद्भिदं,[१५] प्रसवे[१६] रथं पुरः कृणोतु।

१० मघवन् अर्भेषु महत्सु च आजा त्वं जिगेथ, धना न रोधिथ। त्वां उग्रं अवसे सं शिशीमसि[१७]। अध इन्द्र, हवनेषु नः चोदय।

११ इन्द्रः विश्वाहा नः अधिवक्ता अस्तु। अपरिह्वृताः वाजं सनुयाम।

१ तत् ते इदं परमं इन्द्रियं[१] कवयः पुरा पराचैः[२] अधारयन्त[३] अस्य इदं अन्यत् क्षमा, अन्यत् दिवि। समना इव केतुः ईं सं पृच्यते।

आपने पृथिवीको धारण करके उसको विस्तीर्ण किया और अपने वज्रसे वृत्रको मार डाला। जलोंके मार्गमें जो (रुकावटें) थीं उनको हटा दिया। आपने अहीका वध किया। और व्यंसको अपने शक्तिसे मार डाला। २

आपने अपने वज्रसे[३] और सामर्थ्यसे शत्रुओंके[४] दश नगरोंका नाश किया। आपने शत्रुकी सेनाको पैरसे कुचल डाला। हे वज्रधारी इन्द्र, आप तो सर्वज्ञही हैं। शत्रुपर आप अपना अस्त्र[५] छोड़िये; और अपने उपासकोंके बल और वैभवको बढ़ाइये। ३

हे वज्रधारण करनेवाले और उदार इन्द्र, जब आपने दस्युओंपर (राक्षस अथवा दुष्ट लोग) चढ़ाई की उस समय आपकी कीर्ति बहुत बढ़ गयी। नाम कमानेके[६] कारणही आप जैसे उदार देवकी सब उपासक प्रशंसा करते हैं। ४

इन्द्र-देवका बहुत बड़ा हुआ सामर्थ्य अवलोकन कीजिये; इन्द्रकी शक्तिपर भरोसा रखिये। इन्द्रदेवने ही धेनु, अश्व, और वनस्पतियोंको प्राप्त किया; और जलका मार्ग मुक्त करके आपही अरण्यका स्वामी बन गये। ५ (१६)

मार्गमें रुकावट डालनेवाले चोरोंका आप पहिले आदर करके उनका धन हरण करते हैं। हमारी तरफ आनेवाले इन्द्र, आप सामर्थ्यवान्, बलशाली, और सत्यशक्तियुक्त हैं। आपके लिये सोमरस तैयार करना चाहिये। ६

---

२ सः पृथिवीं धारयत् पप्रथत् च। वज्रेण हत्वा अपः निः ससर्ज। अहिं अहन् रौहिणं अभिनत्, मघवा शचीभिः व्यंसं अहन्।

३ जातूभर्मा,[१] ओजः श्रद्दधानः पुरः विभिन्दन् दासीः[२] वि अचरत्। वज्रिन्, विद्वान् दस्यवे हेतिं अस्य[३] इन्द्र, आर्यं सहः द्युम्नं वर्धय।

४ वज्री सूनुः दस्युहत्याय उपप्रयन् श्रवसे यत् नाम दधे ह तत् कीर्तेन्यं नाम मघवा इमा मानुषा युगानि ऊचुषे[४] बिभ्रत्।

५ तत् अस्य इदं भूरि पुष्टं पश्यत। इन्द्राय वीर्याय श्रत् धत्तन। सः गाः अविन्दत्, सः अश्वान् अविन्दत्, सः ओषधीः, सः अपः, सः वनानि।

६ यः शूरः परिपन्थी इव अयज्वनः वेदः आदाय विभजन्, एति, भूरिकर्मणे, वृषभाय, वृष्णे, सत्यशुष्माय सोम सुनवाम।

हे इन्द्र, सोए[७] हुए अहि (राक्षसको) अपने वज्रसे जगाया। सचमुच आपने यह बड़े वीरताका[८] काम किया। जब आप आनन्दित होते हैं तब सब देव और पक्षीभी आनन्द मनाते हैं। ७

हे इन्द्र, जब आपने शुष्ण, पिप्रु, कुयव, और वृत्र, आदि (राक्षसोंका) वध किया तब आपने शम्बर (राक्षस) के नगरका नाश किया। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और द्युलोक हमारी प्रार्थना सुनकर सम्मति देवें। ८ (१७)

सूक्त १०४.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र ॥

हे इन्द्र–देव, आप इस आसनपर विराजमान हूजिये। यह आसन[१] आपके लिये सिद्ध किया गया है। जिस प्रकार अश्व आनन्दसे हिनहिनाता है उसी प्रकार (आनन्दसे) आप इसका स्वीकार कीजिये। पक्षीकी तरह वेगवान् घोडोंको (अब) छोड़ दीजिये। चाहे रात हो या दिन हो, सोमरस पीनेके लिये आपके अश्व आपको चाहे जहां ले जाते हैं। अब उनको छोड़ दीजिये। १

वे पुरुष अपनी रक्षाके लिये इन्द्रकी ओर दौड़े; क्या आप (इन्द्र) उनकी ओर नहीं जावेंगे? सब देव मिलकर दुष्ट शत्रुओंका कोप शान्त[२] करें। और हमारी जातिके लोगोंको कल्याणका मार्ग दिखलावें। २

दूसरोंके अन्तःकरणको जाननेवाला (कपटी) कुयव (राक्षस) ने जलमें चारों ओर फेन फैला दिया। कुयवकी स्त्रियां तो केवल दूधसे न्हाती हैं; शिफा नदीके जलमें (भवरमें) वे दोनों स्त्रियां मर जावें। ३

---

७ इन्द्र, यत् ससन्तं[७] वज्रेण अबोधयः तत् प्र[८] इव वीर्यं चकर्थ। हृषितं त्वा अनु पत्नीः, वयः, विश्वे देवासः च त्वा अनु अमदन्।

८ इन्द्र, यदा शुष्णं, पिप्रुं, कुयवं, वृत्रं अवधीः शंबरस्य पुरः वि।

१ इन्द्र ते निषदे योनिः[१] अकारि। वयः विमुच्य, दोषा वस्तोः प्रपित्वे वहीयसः अश्वान् अवसाय, स्वानः[२] अर्वा न त आ नि षीद।

२ त्ये नरः ऊतये इन्द्रं गुः तान् अध्वनः सद्यः चित् जगम्यात् नु? देवासः दासस्य मन्युं श्नथन्;[२] ते नः वर्णं सुविताय आ वक्षन्।

३ केतवदाः उदन् फेनं त्मना अव भरते, त्मना अव भरते। कुयवस्य योषे क्षीरेण स्नातः ते शिफाया प्रवणे[३] हते स्यातां।

आयु (राक्षस) ऊपर आकाशमें था। उसका नाभिस्थल इतना बड़ा था कि जिससे सब आकाश व्याप्त[५] हुआ था। इन्द्रने अपने जोरसे उसको तोड़ डाला और अपना अधिकार उसके ऊपर प्रस्थापित किया। आयु (राक्षस) की स्त्रीयां अञ्जसी, कुलिशी और वीरपत्निओंने उस को (अपने पतिको) जलमें डुबा दिया। ४

आयु राक्षसका मार्ग (इन्द्रको) दिखाई देने लगा। जिस वेगसे स्त्री अपने घरकी ओर जाती है उसी तरह इन्द्र उस राक्षसकी ओर (मारनेके लिये) दौड़ता[६] है। हे उदार इन्द्र देव, हमें किसीसे बाधा न हो जाय। जिस तरह विषयासक्त पुरुष[७] अपनी सम्पत्ति उड़ाता है उसी तरह हमारा त्याग न कीजिये। ५ (१८)

हे इन्द्र, सूर्य, उदक, हमें पवित्र बनाइये और हमें उन्नतिका लाभ होवें। आप इसी लिये हमारे पास रहिये। हमने जो धन[८] इकट्ठा किया है उसका नाश न होवे। आप शक्तिकी प्रत्यक्ष मूर्ति ही हैं। आपहीपर हमारा भरोसा है। ६

हे इन्द्र, मैं पूर्ण रीतिसे यह समझता हूं कि मेरा आपहीपर पूर्ण विश्वास है। आप सामर्थ्यवान् हैं; इस लिये हमें ऐसी स्फूर्ति दीजिये जिससे हमें सम्पत्ति मिले। आपके भक्तगण, आपकी पाचारणा करते हैं। हे (इन्द्र-देव) जब हमें भूक लगती है तब हमें अन्न[९] और जल[१०] दीजिये! हमें रहनेके लिये ऐसा घर दीजिये जिसमें सम्पत्तिकी कमी न होवे। ७

हे इन्द्र, हमारा वध मत कीजिये, हमारा त्याग मत कीजिये। हे सामर्थ्यवान् उदार (इन्द्र), गर्भमें रहनेवाले सन्ततिका[११] नाश न कीजिये। ऐसे अण्डेको मत फोड़ डालिये जिससे एकदम कई बच्चे उत्पन्न[१२] होते हैं। ८

---

४ उपरस्य आयोः नाभिः युयोप; पूर्वाभिः प्र तिरते। शूरः राष्टि। अंजसी कुलिशी, वीरपत्नी, पयः हिन्वानाः भरन्ते।

५ यत् दस्योः स्या नीथा प्रति अदर्शि, सदनं जानती ओकः अच्छ न, गात, अध, मघवन्, नः मा चर्कृतात् इत्, निष्षपी[७] मघा[८] इव, नः मा परा दाः।

६ इन्द्र, सः त्वं नः सूर्ये, सः अप्सु, अनागास्त्वे, जीवशंसे आ भज। नः अन्तरां भुजं मा आ रिरिषः ते महते इन्द्रियाय श्रद्धितं।

७ अधा मन्ये अस्मै श्रत् अधायि; वृषा महते धनाय चोदस्व। पुरुहूत इन्द्र, नः क्षुध्यद्भ्यः, वयः[९] आसुतिं,[१०] अकृते योनौ, मा दाः।

८ इन्द्र नः मा वधीः, मा परा दाः; नः प्रिया भोजनानि मा प्र मोषीः; मघवन् शक्र, नः आण्डा[११] मा निः भेत्। सहजानुषाणि[१२] नः पात्रा मा भेत्।

हे इन्द्र, आप इधर आईये । यह बात सबको विदितही है कि आप सोमरस बहुत चाहते हैं; । और इसी लिये सोमरस तैयार किया हुआ रखा गया है । आप उसको पीजिये और आनन्द मनाईये । आप बहुत जगह व्याप्त कीजिये । इस (सोमरस) का पान कीजिये। आप सामर्थ्यवान् होनेके कारण हम आपकी सहायता चाहते हैं । पिताकी नाई हमारी प्रार्थना सुन लीजिये । ६ (१९)

सूक्त १०५.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–अग्नि ॥

चन्द्रमा जलमें (अन्तरिक्षमें) दौड़ता चला जाता है । यह सुन्दर पङ्खोंका पक्षी आकाशमें दौड़ता है । उसके पङ्ख सुवर्णोंके बने हुए हैं । आकाश में चमकनेवाली बिजलीको भी आपका ध्यान विदित नहीं हैं । हे द्युलोक और भूलोक, हमारी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये । १

अर्थकी इच्छा करनेवालेको धन मिलता है; और स्त्रीको उसके स्वामीकी भेट होती है । जब दोनों मिलते हैं तब जल उत्पन्न होता है । इस प्रकार उत्पन्न हुआ जल एक दूसरेको देता है; और इस तरह दोनोंको आनन्द होता है । हे द्युलोक और पृथिवीलोक, हमारी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये । २

हे (इन्द्र) देव, यह तेज स्वर्गसे भी गिर न जाय । हमारा कल्याण करनेवाला सोमरस जहां नहीं है वहां हमें कभी मत ले जाइये । हे द्युलोक और पृथिवीलोक, मेरी प्रार्थना सुनिये । ३

मैं अन्तिम यज्ञसे एक प्रश्न पूछता हूं । आप देवोंके दूत होनेके कारण आप उसका उत्तर देंगे । प्राचीन कालका सत्य कहां है ? वह किस नये मनुष्यके पास चला गया ? हे द्युलोक और पृथिवीलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये । ४

---

९ अर्वाङ् आ इहि । त्वा सोमकामं आहुः; अयं सुतः; तस्य पिब । उरुव्यचाः जठरे आ वृषस्व । हूयमानः पिता इव नः शृणुहि ।

१ चन्द्रमाः आपु अन्तः सुपर्णः दिवि आ धावते । हिरण्यनेमयः विद्युतः वः पदं न विन्दन्ति । रोदसी मे अस्य वित्तं ।

२ अर्थिनः वै अर्थं इत् ऊम्, जाया पतिं आ युवते । वृष्ण्यं पयः तुंजाते, परिदाय रसं दुहे ।

३ देवाः, अदः स्वः दिवः परि मो सु अव पादि । शम्भुवः सोम्यस्य शूने कदा चन मा भूम ।

४ अवमं यज्ञं पृच्छामि । सः दूतः तत् वि वोचति । पूर्व्यं ऋतं क गतं ? तत् कः नूतनः तत् बिभर्ति ?

द्युलोकके इन तीनों देदीप्यमान् प्रदेशोंमें रहनेवाले देव, आपका सत्य कहां है? आप असत्य किसको कहते हैं? पुराणे कालमें जो आहुति मैंने अर्पण की थी वह कहां चली गई? हे द्युलोक और पृथिवीलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ५ (२०)

आपके सत्यकी रक्षा[१] कौन करता है? वरुणदेवकी (अमृत) दृष्टि कौनसी है? श्रेष्ठ अर्यमाके मार्गसे चलते हुए हमारा नाश करनेकी इच्छा[२] करनेवाले लोगोंको हम किस प्रकार मार डाल सकते हैं। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ६

जो मैं पहिले सोमरस सिद्ध करनेवाला था वही मैं स्तोत्र गानेवाला हूं। जिस तरह भेडिया हरिणको खा[४] जाता है उसी तरह चिन्ता मुझे खा जाती है। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ७

जिस तरह दो स्त्रियां अपने पतिको सताती हैं उसी तरह मेरी पसली हड्डियां मुझे दोनों तरफसे सताती हैं। हे सामर्थ्यवान् देव, मैं तुम्हारा स्तुति गानेवाला हूं। जिस तरह चूहा जुलाहाके सूतको खा जाता है उसी तरह यह चिन्ता[५] मुझे खा[६] जाती है। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ८

सूर्यके सात रश्मिके किरण सब दूर फैले हुए हैं। इनमें मेरी नाभि भी जुडी हुई दिखाई देती है। आप्त्य-त्रिता-को यह बात विदित है। अपने सगोत्रोंमें वह मिलनेके लिये प्रार्थना करता है। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ९

---

५ अमी ये देवाः दिवः त्रिषु रोचने आ स्थन, वः ऋतम् कत्, अनृत कत्? वः प्रत्ना आहुतिः क?

६ वः ऋतस्य धर्णसि[१] कत्? वरुणस्य चक्षणं कत्? महः अर्यम्णः पथा दूढ्यः[२] कत् अति क्रामेम?

७ यः पुरा सुते कानि चित् वदामि सः अहं अस्मि। तं मा, वृकः तृष्यजं मृगं न, आध्यः व्यन्ति[४]।

८ सपत्नीः इव पर्शवः मा अभितः सं तपन्ति। शतक्रतो ते स्तोतारं मा आध्यः[५] शिश्ना[६] न वि अदन्ति।

९ अमी ये सप्त रश्मयः तत्र मे नाभिः आतता। आप्त्यः त्रितः तत् वेद। सः जामित्वाय रेभति[७]।

जो पांच बलवान्[10] देव विस्तीर्ण द्युलोकके बीचमें विराजमान हुए हैं वे मेरी स्तुति सुनकर स्वर्गकी ओर लौट गये। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १०(२१)

द्युलोकके अन्तिम सीमापर[11] सुन्दर पङ्खोंके किरणरूपी पक्षी विराजमान हुए हैं। आकाशरूपी विस्तीर्ण उदकके बीचमें तैरनेवाले भेड़ियोंको वे मार्गसे निकाल देते हैं। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। ११

हे देव, यह स्तोत्र भक्तोंका कल्याण करनेवाला प्रशंसा करनेयोग्य और बिलकुल नया है। ये महानदियां अपने प्रवाहोंके साथ सत्य और सत्ययुक्त नीतिको दूरतक ले जाती हैं; और सूर्य (अपने प्रकाशके साथ) सत्यबलको चारों ओर फैलाता है। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १२

हे अग्नि-देव, आप देवोंके सगेदार भाई हैं। आपकी सब लोक प्रशंसाही करते हैं। जिस तरह आप मनुष्यके यज्ञमें विराजमान[12] होते हैं उसी तरह हमारे घरमें आप विराजमान हूजिये। आप प्रज्ञाशील हैं; इसलिये हमारा यज्ञ देवोंकी ओर पहुंचाइये। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १३

सब देवोंमें अग्नि-देव अत्यन्त बुद्धिवान् और प्रज्ञाशील है। जिस तरह मनुके यज्ञमें आप स्थित होते हैं उसी तरह हमारे घरमें स्थित होकर हमारे हवि देवोंकी ओर पहुंचाइये। क्यों कि, हवि पहुंचानेका[13] काम आपहीका है। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १४

---

१० ये अमी पञ्च उक्षणः[10] महः दिवः मध्ये तस्थुः प्रवाच्यं सध्रीचीनाः देवत्रा नि ववृतुः नु।

११ एते सुपर्णाः दिवः आरोधने[11] मध्ये आसते। ते यह्वतीः अपः तरन्तं वृकं पथः सेधन्ति।

१२ देवाः, तत् उक्थ्यं हितं सुप्रवाचनं नव्यं। सिन्धवः ऋतं अर्षन्ति, सूर्यः सत्यं ततान।

१३ अग्ने, देवेषु तव त्यत् उक्थ्यं आप्यं अस्ति। सः विदुष्टरः मनुष्वत् नः आ सत्तः[12] देवान् यक्षि।

१४ देवेषु विदुष्टरः मेधिरः होता अग्निः देवः मनुष्वत् आ सत्तः देवान् अच्छ हव्या सुषूदति[13]।

स्तुति (स्तोत्र) करनेकी स्फूर्ति वरुण देवही देता है। अच्छा मार्ग[२१] बतानेवाले ज्ञानी वरुणकी हम प्रार्थना करते हैं। भक्तोंके हृदयको आपही प्रकट करते हैं। सचमुच नयी नीति (स्तुति) का उदय होवें। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये १५(२२)

आकाशमें आदित्यका जो नया मार्ग है वह प्रशंसा करनेयोग्य है। हे देव, आप उस मार्गका उल्लंघन नहीं कर सकते। और मनुष्य उसको देख भी नहीं सकता। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १६

जब त्रित कूवेमें गिरा[२३] तब उसने अपनी रक्षाके लिये देवोंको बुलाया। बृहस्पतिने संकटसे[२४] उसको बचा लिया; और उसकी प्रार्थना सुनी। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १७

जब मैं मार्गसे चलता था तब एक लाल रंगके भेड़ियाने मुझे देखा और जिसके पीठमें[२५] दर्द है ऐसे बढ़ईकी तरह धीरे धीरे[२६] उठा और मेरे पीछे चलने लगा। हे द्युलोक और भूलोक, मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिये। १८

इस स्तोत्रके द्वारा इन्द्रकी कृपा हमें प्राप्त होवें। उसके कारण हम अपने वीरोंकेसाथ निजको संकटसे बचा लेंगे। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और द्युलोक आदि सब देवताएं हमारी प्रार्थनापर सम्मति देवें। १९ (२३) (१५)

---

१५ वरुणः ब्रह्म कृणोति। तं गातुविद[२१] ईमहे। हृदा मतिं ऊर्णोति। ऋतं नव्यः आयती।

१६ देवाः, असौ यः आदित्यः दिवि पन्थाः प्रवाच्यं कृतः सः न अतिक्रमे। मर्तासः, तं न पश्यथ।

१७ कूपे अवहितः[२३] त्रितः ऊतये देवान् हवते। बृहस्पतिः अंहूरणात्[२४] उरु कृण्वन् तत् शुश्राव।

१८ पथा यन्तं मा अरुणः वृकः सकृत् ददर्श हि। पृष्ट्यामयी[२५] तष्टा इव निचाय्य[२६] उत् जिहीते।

१९ एना आंगूषेण इन्द्रवन्तः सर्ववीराः वयं वृजने अभि स्याम।

अनुवाक १६.

सूक्त १०६.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र ॥

हम अपनी रक्षाके लिये इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, मरुद्गण और अदितिको बुलाते हैं। हे उदार देव, आप जिस तरह रथको (गाड़ीको) बुरे[1] मार्गसे बचा लेते हैं उसी तरह हमें संकटसे बचाइये। १

हे देव, आपहीके लिये हम यज्ञ करते हैं; इस लिये आप इधर आईये। हे देव, दुष्ट लोगोंका नाश करके हमारा कल्याण कीजिये। हे उदार देव, आप प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति हैं। हे उदार देव, आप जिस तरह रथको (गाड़ीको) बुरे मार्गसे बचा लेते हैं उसी तरह हमें संकटसे बचाइये[2]। २

स्तुति करने योग्य हमारे पितर हमारी रक्षा करें। नीतिनियमनसे चलनेवाली और देवोंको जन्मदेनेवाली दोनों देवीएं हमारी रक्षा करें। हे उदार देव, आप प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति है। आप जिस तरह रथको (गाड़ीको) बुरे मार्गसे बचा लेते हैं उसी तरह हमें संकटसे बचाइये। ३

सामर्थ्यवान् पूषा–देव प्रशंसा–योग्य हैं। आपहीके पास वीर पुरुष रहते हैं। इसलिये हम आपकी स्तुति करते हैं। हे उदार देव,–प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति–आप जिस तरह रथको (गाड़ीको) बुरे मार्गसे बचा लेते हैं उसी तरह हमें संकटसे बचाइये। ४

हे बृहस्पति–देव, मनुष्यका कल्याणकारी सौख्य आपहीकेपास है। इसलिये हम आपसे प्रार्थना करते हैं। हे उदार देव,–प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति–आप जिस तरह रथको (गाड़ीको) बुरे मार्गसे बचा लेते हैं उसी तरह हमें संकटसे बचाइये। ५

---

१ इन्द्रं, मित्रं, वरुणं, अग्निं, मारुत शर्धः, अदितिं, ऊतये हवामहे। सुदानवः वसवः, दुर्गात्[1] रथं न रथश्चस्मात् अंहसः नः नि पिपर्तन।

२ आदित्याः, सर्वतातये ते आ गत। देवाः वृत्रतूर्येषु शंभुवः भूत[2]।

३ सुप्रवाचनाः पितरः नः अवन्तु, उत ऋतावृधा देवपुत्रे देवी।

४ वाजिनं नराशंसं इह वाजयन् क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैः ईमहे।

५ बृहस्पते, सदं इत् नः सुगं कृधि। यत् ते योः मनुर्हितं शं तत् ईमहे।

कूपेमें गिरे हुए कुत्स ऋषिने अपनी रक्षाके लिये वृत्रका वध करनेवाले सामर्थ्यवान् इन्द्रकी प्रार्थना की । हे उदार देव,—प्रत्यक्ष वैभवकी मूर्ति—आप जिस तरह रथको (गाड़ीको) बुरे मार्गसे बचा लेते हैं उसी तरह हमें संकटसे बचाइये । ६

अदिति—देव सब देवोंके साथ हमारी रक्षा करें; और हमारी रक्षा करनेवाला देव हमारी उपेक्षा न करके हमारी रक्षा करें । मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और द्युलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान देवें । ७ (२४)

सूक्त १०७.

॥ ऋषि—आङ्गिरस कुत्स । देवता—इन्द्र ॥

यज्ञ देवोंकी कृपा[1] सम्पादन करनेके लिये हमें सिद्धि देनेवाला होवें । हे अदितिदेव, हमें सौख्य अर्पण कीजिये । आपकी कृपासे हमारी रक्षा[2] होती है । इस लिये आप भक्तगणोंपर (हमपर) कृपा कीजिये । १

अंगिरसने अपने स्तोत्रोंके द्वारा देवोंकी स्तुति की है । इसलिये वे देव हमपर कृपा करें । इन्द्र—देव, अपने सामर्थ्यकेसाथ मरुत्—देव अपने मरुद्गणोंकेसाथ, और अदिति—देव अपने आदित्य गणोंकेसाथ हमें सौख्य अर्पण करें । २

इन्द्र—देव हमारी स्तुतिका प्रेमसे स्वीकार करें । वरुण, अर्यमा, सविता, देवभी हमारी स्तुतिका स्वीकार[3] करें । मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी, और द्युलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान देवें । ३ (२५)

---

६ कूटे निबाह्ळः[1] कुत्सः वृत्रहन शचीपति इन्द्रं ऊतये अह्वन् ।

७ देवी अदितिः देवैः नः नि पातु । त्राता देवः अप्रयुच्छन् त्रायताम् ।

१ यज्ञः देवानां सुम्नं[1] प्रति एति । आदित्यासः, मृळयन्तः भवत । वः अंहोः चित् वरिवोवित्तरा[2] असत् वः सुमतिः अर्वाची आ ववृत्यात् ।

२ अंगिरसां सामभिः स्तूयमाना देवाः अवसा नः उप आ गमन्तु । इन्द्रियैः इन्द्रः, मरुद्भिः मरुतः, आदित्यैः अदितिः नः शर्म यमन् ।

३ तत् नः इन्द्रः, तत् वरुणः, तत् अग्निः, तत् अर्यमा, तत् सविता चनः[3] धात् ।

सूक्त १०८.

॥ ऋषि–अङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्राग्नि ॥

हे इन्द्र और अग्नि–देव, जिस आश्चर्यकारक रथमें[1] बैठकर आप सब विश्वका अवलोकन करते हैं उस रथमें आप दोनों साथ ही साथ आरूढ होकर यहां आइये और तैयार किये हुए सोमरसका प्राशन कीजिये । १

हे इन्द्र और अग्नि–देव, जिस तरह यह सब जगत विस्तीर्ण रूपसे नीचे[2] तक फैला हुआ है उसी तरह इस सोमरसका आप यथेष्ठ प्राशन कीजिये और उससे आपका आनन्द होवें । २

सचमुच आपने अच्छी तरह नाम पाया है । वृत्रका नाश करनेवाले आप (सचमुच) अच्छा काम करनेवाले हैं । इसलिये (इस यज्ञमें) अच्छी तरहसे आप विराजमान् हूजिये । हे सामर्थ्यवान् इन्द्र और अग्नि, आप सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिये सोमरसका पान कीजिये । ३

हे इन्द्र और अग्नि–देव, अग्निको प्रदीप्त करनेके बाद आप अलंकारोंसे विभूषित[3] होते हैं । आपके लिये यज्ञ चमस (हवि अर्पण करनेके लिये) ऊपर उठाया जाता है; और आप दर्भासनपर विराजमान् होते हैं । यह सोमरस तैयार होते ही हम पर कृपा करके इधर आइये । ४

हे इन्द्र और अग्नि–देव, (आजतक) आपने जितना वीरताका काम किया और जिस तरहसे अपना स्वरूप प्रकट किया और प्राचीन कालमें जितना मित्रताका काम किया उन सब (बातों) पर ध्यान देकर सिद्ध किये हुए सोमरसका पान कीजिये । ५ (२६)

---

१ इन्द्राग्नी, यः वां चित्रतमः रथः विश्वानि भुवनानि अभिचष्टे तेन रथेन[1] तस्थिवांसा आ यातं अथ सुतस्य सोमस्य पिबतं ।

२ इन्द्राग्नी, यावत् इदं विश्वं भुवनं उरुव्यचा[2] वरिमता गभीरं अस्ति तावान् अयं सोमः पातवे अस्तु युवभ्यां मनसे अरं अस्तु ।

३ सध्र्यक् भद्रं नाम चक्राथे हि, उत वृत्रहनौ सध्रीचीना रथः वृषणा इन्द्राग्नी, सध्र्यंचा निषद्य वृष्णः सोमस्य आ वृषधां ।

४ इन्द्राग्नी, अग्निषु समिद्धेषु आनजाना,[3] यतस्रुचा, बर्हिः तिस्तिराणा, तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिः, सौमनसाय अर्वाक् आ यातं ।

५ इन्द्राग्नी, यानि वीर्याणि, यानि रूपाणि उत वृष्ण्यानि चक्रथुः या वां प्रत्नानि शिवानि सख्या, तेभिः सुतस्य सोमस्य पिबतं ।

पहिले पहल जब हम आपके दर्शनकी इच्छा करते हैं और हमारे उपासकोंके द्वारा आपको सोमरस अर्पण किया जाता है तब हमारी सच्ची भक्तिकी ओर ध्यान देकर आपको हमारी ओर आना चाहिये। आप तैयार किये हुए सोमरसका पान कीजिये। ६

हे यज्ञ करने-योग्य इन्द्र और अग्निदेव, जब आप अपने मन्दिरमें अथवा विद्वान् भक्तके घरमें अथवा राजाके यज्ञमें आनन्द मनाते हुए बैठते हैं तब हे सामर्थ्यवान् देव, हमारी ओर यहां आइये और सोमरसका पान कीजिये। ७

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु अथवा पूरुओंके घरमें बैठते हैं तब भी हे सामर्थ्यवान् देव, हमारी ओर आइये और सोमरसका पान कीजिये। ८

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप पृथिवीके नीचेके प्रदेशमें रहते हैं अथवा बीचके प्रदेशमें रहते हैं तब भी हे सामर्थ्यवान् देव हमारी ओर आइये और सिद्ध किये हुए सोमरसका पान कीजिये। ९

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप स्वर्गमें, पृथिवी और पर्वतपर अथवा वनस्पति वा उदकमें रहते हैं तब भी हमारी ओर आइये और सिद्ध किये हुए सोमरसका पान कीजिये। १०

---

६ यत् प्रथमं वां वृणानः अब्रवं "अयं सोमः नः असुरैः विहव्यः," तां सत्यां श्रद्धां अभि आ यात हि।

७ यजत्रा इन्द्राग्नी, यत् स्वे दुरोणे, यत् ब्रह्माणि राजनि वा मदथः, अतः, वृषणौ, परि आ यातं हि।

८ इन्द्राग्नी, यत् यदुषु तुर्वशेषु, यत् द्रुह्युषु, अनुषु, पूरुषु स्थः, अतः, वृषणौ, परि आ यात हि।

९ इन्द्राग्नी, यत् अवमस्यां पृथिव्यां, मध्यमस्यां उत परमस्यां स्थः, अतः, वृषणौ, परि आ यातं हि।

१० इन्द्राग्नी, यत् परमस्यां पृथिव्यां, मध्यमस्यां उत अवमस्यां स्थः, अतः, वृषणौ परि आ यातं हि।

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप पृथिवीके ऊपरके, बीचके और नीचेके, प्रदेशमें रहते तब भी वहांसे हे सामर्थ्यवान देव, हमारी ओर आइये और सिद्ध किये हुए सोमरसका पान कीजिये। ११

हे इन्द्र और अग्निदेव, जब आप सूर्योदयके समय स्वर्गलोकके बीचमें बैठकर आनन्दसे हविका स्वीकार करते हैं तब हे सामर्थ्यवान् देव, इधर आईये और तैयार किये हुए सोमरसका पान कीजिये। १२

हे इन्द्र और अग्निदेव, इस तरह सोमरसका प्राशन करके हमारे लिये सब वैभव जीत ले आइये। हमारी प्रार्थनापर मित्र, वरुण, तथा आदिति, सिन्धु, पृथ्वि, और द्युलोक, ध्यान और सम्मति देवें। १३

सूक्त १०९.

॥ ऋषि—अङ्गिरस कुत्स । देवता—अग्नि ॥

मनमें धनकी इच्छा करके मैं भाई और सगेढारोंको सहायताके लिये ढूंढने[1] लगा। किन्तु हे इन्द्र और अग्निदेव, आपकी इच्छा मुझे अनुकूलही है। इस लिये भक्तिपूर्वक यह स्तोत्र मैं आपके सन्मानार्थ गाता हूं। १

मैंने सुना है कि आप सचमुच साला[2] और गुणहीन जमाईकी अपेक्षा उदारतासे अधिक धन बांटते हैं। इस लिये हे इन्द्र और अग्नि–देव, आपको सोमरस अर्पण करके मैं यह नया स्तोत्र बनाता हूं। २

---

११ इन्द्राग्नी, यत् दिवि स्थः, यत् पृथिव्यां, यत् पर्वतेषु, ओषधीषु, अप्सु, अतः, वृषणौ परि आ यातं हि

१२ इन्द्राग्नी, सूर्यस्य उदिता यत् दिवः मध्ये स्वधया मादयेथे, अतः, वृषणौ, परि आ यातं हि।

१३ इन्द्राग्नी, एव सुतस्य पपिवांसा अस्मभ्यं धनानि संजयतं।

१ इन्द्राग्नी, मनसा वस्वः इच्छन् ज्ञासः[1] उत वा सजातान् वि अख्यं हि। युवत् प्रमतिः मह्यं अन्या न अस्ति। सः वाजयन्तीं धियं वां अतक्षम्।

२ स्यालात उत वा विजामातुः च वां भूरिदावत्तरा अश्रवं हि। अथ, इन्द्राग्नी, युवभ्यां सोमस्य प्रयती नव्यं स्तोमं जनयामि।

इन्द्र और अग्निकी कृपाके कारणही सामर्थ्यवान् पुरुष अपने वंशका[3] नाश न होनेकी प्रार्थना करते हैं; और अपने वंशकी, सन्ततिकी वृद्धिकी इच्छा करते हैं। (इसका उदाहरण देखिये) सोमरस तैयार करनेके लिये लाये हुए पाषाण (पत्थर) पासही रखे हुए (दिखाई) देते हैं। ३

हे इन्द्र और अग्नि-देव, यह दिव्य सोमरसपात्र आपको सन्तुष्ट करनेके लिये बड़े आनन्दसे सोमरस निकालकर स्वयं धारण करता है। हे अश्विनी-देव, आपके मङ्गलदायक और सुन्दर हाथ आगे करके बड़े जोरके साथ हमारी ओर दौड़िये। जलमें सोमरस रखकर उसके ऊपर मधुकी वर्षा कीजिये। ४

हे इन्द्र और अग्नि-देव, मैंने यह सुना है कि दुष्ट लोगोंका नाश करनेके काममें और धन अर्पण करनेके अवसरपर आप (सबसे) अधिक अधिकार[5] चलाते हैं। हे बहुत जगह सञ्चार करनेवाले देव, इस यज्ञमें कुशासनपर बैठकर सोमरससे सन्तुष्ट हूजिये। ५ (२८)

हे इन्द्र और अग्नि-देव, युद्धके लिये बुलानेवाले[6] पुरुषोंकी अपेक्षा, पृथ्वी, द्युलोक, महानदी, पहाड़ोंकी अपेक्षा और बचे हुए सब दूसरे लोगोंकी अपेक्षा आप श्रेष्ठ हैं। ६

हे इन्द्र और अग्नि-देव, आपके बाहु वज्रकी तरह मज़बूत हैं। हमारी उन्नति कीजिये; हमें सिखलाइये; और अपने सामर्थ्यसे हमारी रक्षा कीजिये। सचमुच वे, येही सूर्यके किरण हैं जिनके स्वरूपमें[7] हमारे बाप दादा जा मिले (मग्न हुए)। ७

---

३ रश्मीन्[3] मा छेद्य इति नाधमानाः पितॄणां शक्तीः अनुयच्छमानाः वृषणः इन्द्राग्निभ्यां कं मदन्ति। ता हि अद्री धिषणायाः उपस्थे।

४ इन्द्राग्नी, देवी धिषणा युवाभ्यां मदाय उशती सोमं सुनोति। अश्विना, तौ भद्रहस्ता सुपाणी आ धावत, अप्सु मधुना पृङ्क्तं।

५ इन्द्राग्नी, वृत्रहत्ये, वसुनः विभागे, युवां तवस्तमा[5] शुश्रव। प्र चर्षणी, तौ अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि आसद्य सुतस्य मादयेथां।

६ इन्द्राग्नी, पृतनाहवेषु[6] चर्षणिभ्यः, पृथिव्याः, दिवः च प्र रिरिचाथे। महित्वा सिन्धुभ्यः प्र, गिरिभ्यः प्र, अन्या विश्वा भुवना अति।

७ वज्रबाहू इन्द्राग्नी, अस्मान् आ भरतं, शिक्षतं, शचीभिः अवतं। इमे नु ते सूर्यस्य रश्मयः, येभिः नः पितरः सपित्वं[7] आसन्।

शत्रुओंके नगरोंका नाश करनेवाले और (हाथोंमें) वज्र धारण करनेवाले इन्द्र—देव, हमें अच्छा मार्ग बताइये; हमारे हविर्योंका स्वीकार कीजिये और हमारी रक्षा कीजिये। हमारी प्रार्थनापर मित्र, वरुण तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक सम्मति देवें। ८ (२९)

सूक्त ११०.

॥ ऋषि—आङ्गिरस कुत्स । देवता—ऋभु ॥

मेरा (नियुक्त) हुआ काम[1] समाप्त हुआ। वह काम मैं फिर करता हूं। (देखिये) ऋभुओंका सन्मान करनेके लिये मैं मधुर स्तुति गाता हूं। सब देवोंके उद्देश्य (सोमरसका) समुद्र भरा हुआ रखा है। हे ऋभुओं, "स्वाहा" शब्दका उच्चारण करके अर्पण किये हुए सोमरसका पान करके सन्तुष्ट हूजिये। १

जब अज्ञानसे मुक्त[2] हुए मेरे पुराणे सगेदार भाईयोंने हवियोंकी इच्छा[3] की तब वे उसको (प्राप्त करनेका) उद्योग करने लगे। उस समय सुधन्वाके पुत्र अपने पराक्रम और श्रेष्ठताके कारण सविता देवके रथमें आ सके। २

जिस सविता देवका यश गुप्त नहीं रह सकता उस (देवता) का वर्णन करनेका परिश्रम जब आप करते हैं तब सवितादेव आपको अमरत्व अर्पण करते हैं। उदार (त्वष्टा) देवका पीनेका जो रस था उसके आपने चार विभाग (चमस) बनाये। ३

सत्कर्मोंका उत्साहसे आचरण करनेवाले और देवोंकी[4] उपासना करनेवाले (ऋभु) मनुष्य होनेपर भी अमरत्वको जा पहुंचे। सुधन्वाके पुत्र ऋभु, सूर्यका दर्शन मिलने योग्य हुए। उनकी योग्यता एक वर्षमें इतनी बढ़ गयी कि सब लोग उनकी स्तुति गाने लगे। ४

---

८ पुरंदरा इन्द्राग्नी, अस्मान् शिक्षतं, भरेषु अवतं।

१ मे अपः[1] ततं तत् ऊं पुनः तायते। स्वादिष्टा धीतिः उचथाय शस्यते। अयं इह विश्वदेव्यः समुद्रः, ऋभवः स्वाहाकृतस्य सं तृप्णुत ऊं।

२ यत् अपाकाः,[2] मम के चित् आपयः, प्रांचः आभोगयं[3] इच्छंतः प्र ऐतन, सौधन्वनासः, चरितस्य भूमना, दाशुषः सवितुः गृहं अगच्छत।

३ यत् अगोह्यं अवयन्तः ऐतन तत् सविता वः अमृतत्वं आ असुवत्। त्यं चित् असुरस्य भक्षणं चमसं एकं सन्तं चतुर्वयं अकृणुत।

४ शमी तरणित्वेन विष्टी[4] वाघतः मर्तासः सन्तः अमृतत्वं अनशुः सौधन्वनः सूरचक्षसः ऋभवः संवत्सरे धीतिभिः सं अपृच्यन्त।

देव समुदायमें अपनी कीर्ति बढ़ानेकी इच्छा करनेवाले और उत्कृष्ट यश[5] प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले ऋभुओंकी मनुष्यजातिने स्तुति की। जिस तरह खेतका क्षेत्र नापा जाता है उसी तरह ऋभुओंनें अपने तेज़ हथियारसे[6] खुला हुआ यज्ञपात्रका मुख[7] नाप लिया। ५(३०)

ऋभुओंकी श्रेष्ठतापर ध्यान देकर अन्तरिक्षमें रहनेवाले वीरोंको हम जिसतरह चमसोंसे घी अर्पण करते हैं उसी तरह स्तोत्र[8] अर्पण करेंगे। अपने प्राचीन श्रेष्ठ पितरोंके साथ अपने उत्साहकारी कार्योंके कारण वे जा मिले। उन्हें सामर्थ्य प्राप्त हुआ और वे दिव्य रजोलोकमें विराजमान् हुए। ६

ऋभुही अपने सामर्थ्यके कारण स्फूर्ति पाया हुआ हमारा इन्द्र है। ऋभुही अपनी शक्ति और सम्पत्तिके कारण हमारा उदार दाता हुआ है। हे देव, आपकी कृपाके कारणही एकआध अनुकूल दिनपर भक्तिहीन लोगोंकी सेनापर[9] हम विजय पावेंगे। ७

हे ऋभु, केवल चर्मसेही आपने सचमुच एक नयी गौ उत्पन्न की; और उसकी उसके बछड़ेके साथ भेंट करवाई। हे सुधन्वाके पुत्र, आपने आश्चर्यकारक कामके कारण अपने बुड्ढे मातापितरोंको जवान बनाया। ८

इन्द्र, पराक्रमसे लाभ होनेकी जहां सम्भावना हो ऐसे युद्धमें अपने सामर्थ्यसे हमारी रक्षा[10] कीजिये। (हे इन्द्र,) आप ऋभुओंके साथ आकर हमें आश्चर्यकारक सौख्य प्रदान कीजिये। हमारी इस प्रार्थनापर मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक ध्यान और सम्मति देवें। ९ (३१)

---

५ अमर्त्येषु श्रवः इच्छमानाः उपमं नाधमानाः, उपस्तुताः ऋभवः तेजनेन[6] एकं जेहमानं[7] पात्रं क्षेत्रं इव वि ममुः।

६ ये ऋभवः अस्य पितुः सश्चिरे, वाजं, दिवः रजः अरुहन्, अन्तरिक्षस्य नृभ्यः, स्रुचा इव घृतं मनीषां, विद्मना[8] आ जुहवाम।

७ ऋभुः नः शवसा नवीयान् इन्द्रः, ऋभुः वाजेभिः वसुभिः वसुः ददिः देवाः, अवसा प्रिये अहनि असुन्वतां पृत्सुतीः[9] अभि तिष्ठेम।

८ ऋभवः, चर्मणः गां निः अपिंशत, वत्सेन मातरं पुनः सं असृजत। सौधन्वनासः नरः, स्वपस्यया जिव्री पितरा युवाना अकृणोतन।

९ इन्द्र, वाजसातौ वाजेभिः नः अविड्ढि,[10] ऋभुमान् चित्रं राधः आ दर्षि।

सूक्त १११.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–इन्द्र ॥

ऋभुओं, आप ज्ञानी[1] होनेके कारण चतुर बन गये हैं। इन्द्रके लिये आपने सुन्दर रथ और वेगवान् अश्व उत्पन्न किये। आपने अपने (बुड्ढे) मातापितरोंको नयी आयु प्रदान करके जवान बनाया और बछड़ेके लिये हमेशा पास रहनेवाली माता उत्पन्न की। १

हे ऋभुओं, आप सामर्थ्यवान् हैं; इसलिये यज्ञ याग करनेके लिये हमें आयु[2] प्रदान कीजिये। हमें बलवान् तथा पराक्रमी बनानेके लिये उत्कृष्ट सन्तति और यथेष्ट अन्न प्रदान कीजिये। अपने वीर पुरुषोंके साथ इस जगत्में आनन्दसे रहनेके लिये हमारी सेनामें स्फूर्ति (बल) उत्पन्न कीजिये। २

हे ऋभुओं, हमारी उन्नति कीजिये। हमारे रथोंकी और अश्वोंकी संख्या बढ़ाइये। युद्धमें हमें ऐसा यश प्राप्त होवें जिससे हमारे साथ हमारे शत्रु और हमारे अप्रिय सगेदार युद्धमें यदि सामने खड़े हो तो उनका भी पराजय[3] होवें। ३

ऋभुओंका स्वामी इन्द्र, ऋभु, तथा वाज, मरुत् दोनों मित्र और वरुण और दोनों अश्विनी देवोंको सोमपान कराके हमारी रक्षा करनेके लिये हम बुलाते हैं। ४

ऋभु हमारा ऐसा लाभ[4] करा दें जिससे हमें हवि अर्पण करनेका सामर्थ्य प्राप्त होवे। युद्धमें विजय पानेवाले वाज भी हमारी रक्षा करें। मित्र, वरुण, तथा अदिति, सिन्धु, पृथ्वि और द्युलोक हमारी प्रार्थनापर (ध्यान देकर) सम्मति देवें। ५ (३२)

---

१ विध्मनापसः,[1] सुवृतं रथं तक्षन्; इन्द्रवाहा, वृषण्वसू हरी तक्षन्। ऋभवः, पितृभ्यां युवत् वयः तक्षन वत्साय सचाभुवं मातरं तक्षन्।

२ यज्ञाय नः ऋभुमत्[2] वयः आ तक्षत, क्रत्वे दक्षाय सुप्रजावतीं इषं। यथा सर्ववीरया विशा क्षयाम तत् शर्धाय इन्द्रियं सु धासथ।

३ नरः ऋभवः, अस्मभ्यं सातिं, रथाय सातिं, अर्वते सातिं आ तक्षत। पृतनासु जामिं अजामिं सक्षणिं जैत्रीं सातिं नः सं महेत[3]।

४ ऊतये ऋभुक्षणं इन्द्रं, ऋभून्, वाजान्, मरुतः, उभा मित्रावरुणा, अश्विना सोमपीतये नूनं आ हुवे। ते नः सातये, धिये, जिषे नः हिन्वन्तु।

५ ऋभुः भराय सातिं सं शिशातु[4]। समर्यजित् वाजः अस्मान् अविष्टु।

सूक्त ११२.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–द्यावापृथिवी अग्नि अश्विन ॥

द्युलोक और भूलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान[1] देवें; इस लिये हम उनकी स्तुति करते हैं। वह सुन्दर और देदीप्यमान अग्नि हमारी इच्छा पूरी करे; इस लिये हम उनकी स्तुति करते हैं। हे अश्विन, जब आपकी स्तुति करनेवाले लोग आपको **सोमरस** अर्पण करते हैं तब आप अपने सामर्थ्यसे उनकी रक्षा करते हैं। उस सामर्थ्यके साथ आप हमारी ओर आइये। १

भक्तजन आपका स्मरण करके आपको **सोमरस** अर्पण करते हैं; इस लिये आप उनको अपनी उदारता दिखाकर धन दीजिये; मानो, वे आपकी गाड़ी[2] जो रहे हैं और इसी लिये वे आपके रथके पास इकट्ठे हुए हैं। हे **अश्विनीदेव**, अपने (भक्तोंकी) इच्छा पूर्ण करनेके लिये आप उनको ऐसे सामर्थ्य प्रदान कीजिये जिससे वे अपनी रक्षा कर सकें और अपने काममें लगें। उसी सामर्थ्यके साथ आप हमारी ओर आइये। २

आपका तेज दिव्य और अमर होनेके कारणही आप नये उत्साहके साथ सब लोगोंपर अधिकार चला सकते हैं। हे वीर **अश्विन**, आपने जिस सामर्थ्यसे (भक्तजनों)की रक्षा की उसी सामर्थ्यसे बञ्जर[3] गौके स्तनमें दूध उत्पन्न करते हैं। उन सामर्थ्योंके साथ आप हमारी ओर आइये। ३

जिस सामर्थ्यसे[4] आपने चारों ओर सञ्चार करनेवाले और दो माताओंसे जन्म पाये हुए दोनों पक्षोंको (**वायु और अग्निको**) शीघ्रगामी और सामर्थ्यवान बनाया और जिस सामर्थ्यसे त्रिमन्तुको ज्ञानी और बलवान बनाया ऐसे सामर्थ्यके साथ हे **अश्विन**, आप हमारी ओर आइये। ४

जिन सामर्थ्योंसे आपने बन्धनमें[5] फँसे हुए रेभको मुक्त किया, पानीमें गिरे हुए **वन्दनको** पानीके बाहर निकाल कर उसको प्रकाश दिखलाया और आपके चिन्तनमें मग्न हुए कण्वकी रक्षा की, ऐसे सामर्थ्योंके साथ हे **अश्विनीदेव**, आप हमारी ओर आइये। ५ (३३)

---

१ पूर्वचित्तये द्यावापृथिवी, घर्मं सुरुचं अग्निं यामन् इष्टये, ईळे। अश्विना, याभिः भरे कारं अंशाय जिन्वथः ताभिः ऊतिभिः सु आ गत। २ युवोः दानाय सुभराः असश्चतः वचसं न रथं मन्तवे आ तस्थुः अश्विना, याभिः इष्टये कर्मन् धियः अवथः ताभिः ऊतिभिः सु आ गत। ३ दिव्यस्य अमृतस्य मज्मना तस्मै विशां प्रशासने युवं क्षयथः नरा अश्विना, याभिः अस्वं धेनुं पिन्वथः ताभिः ऊतिभिः सु आ गत।
४ याभिः परिज्मा द्विमाता तनयस्य मज्मना तूर्षु तरणिः विभूषति, याभिः त्रिमन्तुः **विचक्षणः अभवत्** ताभिः ऊतिभिः अश्विना, सु आ गत। ५ अश्विना, याभिः निवृतं सितं रेभं वन्दनं **अद्भ्यः दृशे उत्** ऐरयत, याभिः प्र सिषासन्तं कण्वं आवत ताभिः ऊतिभिः सु आ गत।

Printed at Vaidya Brothers' Press, Thakurdwar, Bombay No. 2 & published at Sharirbodh Office 47 Kalbadevi Road, Bombay, by Gajanan Bhaskar Vaidya.

हिन्दी, मराठी, गुजराती और अङ्गरेजी चार भाषाओं में अलग अलग प्रसिद्ध होनेवाला

वेदों का भाषांतर।

प्रति मास में ६४ पृष्ठ; ३२ पृष्ठ संहिता [स्वर और पदपाठ सहित]

* * ३२ पृष्ठ भाषान्तर। * *

वर्ष १] पौष संवत १९६९—फरवरी सन १९१३ [अंक ८

वार्षिक मूल्य डाकव्ययसहित रु. ४

हिन्दी

श्रुतिबोध.

सम्पादक,

रामचंद्र विनायक पटवर्धन, बी. ए. एल्. एल्. बी.
अच्युत बलवंत कोल्हटकर, बी. ए. एल्. एल्. बी.
दत्तो अप्पाजी तुलजापुरकर, बी. ए. एल्. एल्. बी.

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत्।
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्॥

यास्काचार्य.

'श्रुतिबोध' ऑफिस, ४७, कालकादेवी रोड, बम्बई.

प्रति अंकका मूल्य आठ आने.

याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः ।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ६ ॥
याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ७ ॥
याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ८ ॥
याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ९ ॥
याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १० ॥ ३४ ॥

याभिः । अन्तकम् । जसमानम् । आऽअरणे । भुज्युम् । याभिः । अव्यथिऽभिः । जिजिन्वथुः । याभिः । कर्कन्धुम् । वय्यम् । च । जिन्वथः । ताभिः । ऊम् इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥ ६ ॥ याभिः । शुचन्तिम् । धनऽसाम् । सुऽसंसदम् । तप्तम् । घर्मम् । ओम्याऽवन्तम् । अत्रये । याभिः । पृश्निऽगुम् । पुरुऽकुत्सम् । आवतम् । ताभिः । ऊम् इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥ ७ ॥ याभिः । शचीभिः । वृषणा । पराऽवृजम् । प्र । अन्धम् । श्रोणम् । चक्षसे । एतवे । कृथः । याभिः । वर्तिकाम् । ग्रसिताम् । अमुञ्चतम् । ताभिः । ऊम् इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥ ८ ॥ याभिः । सिन्धुम् । मधुऽमन्तम् । असश्चतम् । वसिष्ठम् । याभिः । अजरौ । अजिन्वतम् । याभिः । कुत्सम् । श्रुतर्यम् । नर्यम् । आवतम् । ताभिः । ऊम् इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥ ९ ॥ याभिः । विश्पलाम् । धनऽसाम् । अथर्व्यम् । सहस्रऽमीळ्हे । आजौ । अजिन्वतम् । याभिः । वशम् । अश्व्यम् । प्रेणिम् । आवतम् । ताभिः । ऊम् इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥ १० ॥ ३४ ॥

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ११ ॥
याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे ।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १२ ॥
याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १३ ॥
याभिर्महामतिथिग्वं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहत्य आवतम् ।
याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १४ ॥
याभिर्वम्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।
याभिर्व्यश्वमुत पृथिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १५ ॥ ३५ ॥

याभिः । सुदानू इति सुऽदानू । औशिजाय । वणिजे । दीर्घऽश्रवसे । मधु । कोशः । अक्षरत् । कक्षीवन्तम् । स्तोतारम् । याभिः । आवतम् । ताभिः । ऊम् इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ गतम् ॥ ११ ॥ याभिः । रसाम् । क्षोदसा । उद्नः । पिपिन्वथुः । अनश्वम् । याभिः । रथम् । आवतम् । जिषे । याभिः । त्रिऽशोकः । उस्रियाः । उत्ऽआजत । ताभिः । ऊम् इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥ १२ ॥ याभिः । सूर्यम् । परिऽयाथः । पराऽवति । मन्धातारम् । क्षैत्रऽपत्येषु । आवतम् । याभिः । विप्रम् । प्र । भरत्ऽवाजम् । आवतम् । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥ १३ ॥ याभिः । महाम् । अतिथिऽग्वम् । कशःऽजुवम् । दिवःऽदासम् । शम्बरऽहत्ये । आवतम् । याभिः । पूःऽभिद्ये । त्रसदस्युम् । आवतं । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥१४॥ याभिः । वम्रम् । विऽपिपानं । उपऽस्तुतं । कलिं । याभिः । वित्तऽजानिं । दुवस्यथः । याभिः । विऽअश्वं । उत । पृथिं । आवतं । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ १५ ॥ ३५ ॥

याभिर्नरा शयवे याभिरत्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीषथुः ।
याभिः शारीराजतं स्यूमरश्मये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १६ ॥
याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।
याभिः शर्यातमवथो महाधने ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १७ ॥
याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिर[illegible]ना गतम् ॥ १८ ॥
याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं१ ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १९ ॥
याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २० ॥ ३६

याभिः । नरा । शयवे । याभिः । अत्रये । याभिः । । पुरा । मनवे । गातुं ईषथुः । याभिः । शारीः । आजतं । स्यूमऽरश्मये । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ १६ ॥ याभिः । पठर्वा । जठरस्य । मज्मना । अग्निः । न । अदीदेत् । चितः । इद्धः । अज्मन् । आ । याभिः । शर्यातं । अवथः । महाऽधने । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ १७ ॥ याभिः । अङ्गिरः । मनसा । निऽरण्यथः । अग्रं । गच्छथः । विऽवरे । गोऽअर्णसः । याभिः । मनुं । शूरं । इषा । संऽआवतं । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ १८ ॥ याभिः । पत्नीः । विऽमदाय । निऽऊहथुः । आ । घ । वा । याभिः । अरुणीः । अशिक्षतं । याभिः । सुऽदासे । ऊहथुः । सुऽदेव्यं । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ १९ ॥ याभिः । शन्ताती इति । शंऽताती । भवथः । ददाशुषे । भुज्युं । याभिः । अवथः । याभिः । अध्रिऽगुं । ओम्याऽवतीं । सुऽभरां । ऋतऽस्तुभं । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ २० ॥ ३६ ॥

याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत्सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २१ ॥
याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २२ ॥
याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ २३ ॥
अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २४ ॥
द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२५॥३७॥७॥

याभिः । कृशानुं । असने । दुवस्यथः । जवे । याभिः । यूनः । अर्वन्तं । आवतं । मधु । प्रियं । भरथः । यत् । सरट्ऽभ्यः । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ २१ ॥ याभिः । नरं । गोसुऽयुधं । नृऽसह्ये । क्षेत्रस्य । साता । तनयस्य । जिन्वथः । याभिः । रथान् । अवथः । याभिः । अर्वतः । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ २२ ॥ याभिः । कुत्सं । आर्जुनेयं । शतक्रतू इति शतऽक्रतू । प्र । तुर्वीतिं । प्र । च । दभीतिं । आवतं । याभिः । ध्वसन्तिं । पुरुऽसन्तिं । आवतं । ताभिः । ऊं इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतं ॥ २३ ॥ अप्नस्वतीं । अश्विना । वाचं । अस्मे इति । कृतं । नः । दस्रा । वृषणा । मनीषां । अद्यूत्ये । अवसे । नि । ह्वये । वां । वृधे । च । नः । भवतं । वाजऽसातौ ॥ २४ ॥ द्युऽभिः । अक्तुऽभिः । परि । पातं । अस्मान् । अरिष्टेभिः । अश्विना । सौभगेभिः । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्तां । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ २५ ॥ ३७ ॥

इति प्रथमाष्टके सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ ११३ ॥ ऋषि-आङ्गिरस कुत्स । देवता-उषा । छन्दः त्रिष्टुप ॥

॥११३॥ इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागाच्चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा ।
यथा प्रसूता सवितुः सवायँ एवा रात्र्युषसे योनिमारैक् ॥ १ ॥
रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥ २ ॥
समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे ।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥ ३ ॥
भास्वती नेत्री सूनृतानामचेति चित्रा वि दुरो न आवः ।
प्रार्प्या जगद्व्यु नो रायो अख्यदुषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

॥ अथ प्रथमाष्टके अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इदं । श्रेष्ठं । ज्योतिषां । ज्योतिः । आ । अगात् । चित्रः । प्रऽकेतः । अजनिष्ट । विऽभ्वा । यथा । प्रऽसूता । सवितुः । सवाय । एव । रात्री । उषसे । योनिं । अरैक् ॥ १ ॥ रुशत्ऽवत्सा । रुशती । श्वेत्या । आ । अगात् । अरैक् । ऊं इति । कृष्णा । सदनानि । अस्याः । समानबंधू इति समानऽबंधू । अमृते इति । अनूची इति । द्यावा । वर्णं । चरतः । आमिनाने इत्याऽमिनाने ॥ २ ॥ समानः । अध्वा । स्वस्रोः । अनंतः । तं । अन्याऽअन्या । चरतः । देवशिष्टे इति देवऽशिष्टे । न । मेथेते इति । न । तस्थतुः । सुमेके इति सुऽमेके । नक्तोषसा । सऽमनसा । विरूपे इति विऽरूपे ॥ ३ ॥ भास्वती । नेत्री । सूनृतानां । अचेति । चित्रा । वि । दुरः । नः । आवरित्यावः । प्रऽअर्प्य । जगत् । वि । ऊं इति । नः । रायः । अख्यत् । उषाः । अजीगः । भुवनानि । विश्वा ॥ ४ ॥

जिह्मश्ये॒३॒ चरि॑तवे म॒घोन्या॑भो॒गय॑ इ॒ष्टये॑ रा॒य उ॑ त्वम् ।
द॒भ्रं पश्य॑द्भ्य उर्वि॒या वि॒चक्ष॑ उ॒षा अ॑जीग॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ ५ ॥ १ ॥

क्ष॒त्राय॑ त्वं॒ श्रव॑से त्वं म॒हीया॑ इ॒ष्टये॑ त्व॒मर्थ॑मिव त्वमि॒त्यै ।
विस॑दृशा जीवि॒ताभि॑प्र॒चक्ष॑ उ॒षा अ॑जीग॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ ६ ॥

ए॒षा दि॒वो दु॑हि॒ता प्रत्य॑दर्शि व्यु॒च्छन्ती॑ युव॒तिः शु॒क्रवा॑साः ।
विश्व॒स्येशा॑ना॒ पार्थि॑वस्य॒ वस्व॒ उषो॑ अ॒द्येह सु॑भगे॒ व्यु॑च्छ ॥ ७ ॥

प॒रा॒य॒ती॒नामन्वे॑ति॒ पाथ॑ आयती॒नां प्र॑थ॒मा शश्व॑तीनाम् ।
व्यु॒च्छन्ती॑ जी॒वमु॑दी॒रय॑न्त्यु॒षा मृ॒तं कं च॒न बो॒धय॑न्ती ॥ ८ ॥

उषो॒ यद॒ग्निं स॒मिधे॑ च॒कर्थ॒ वि यदाव॒श्चक्ष॑सा॒ सूर्य॑स्य ।
यन्मानु॑षान्य॒क्ष्यमा॑णाँ॒ अजी॑ग॒स्तद्दे॒वेषु॑ चकृषे भ॒द्रमप्नः॑ ॥ ९ ॥

जि॒ह्म॒ऽश्ये॑ । चरि॑तवे । म॒घोनी॑ । आ॒ऽभो॒गये॑ । इ॒ष्टये॑ । रा॒ये । ऊं॒ इ॒ति॒ । त्व॒म् । द॒भ्रम् । पश्य॑त्ऽभ्यः । उ॒र्वि॒या । वि॒ऽचक्षे॑ । उ॒षाः । अ॒जी॒ग॒रिति॑ । भुव॑नानि । विश्वा॑ ॥ ५ ॥ १ ॥

क्ष॒त्राय॑ । त्व॒म् । श्रव॑से । त्व॒म् । म॒ही॒यै । इ॒ष्टये॑ । त्व॒म् । अर्थ॑म्ऽइव । त्व॒म् । इ॒त्यै । विऽस॑दृशा । जी॒वि॒ता । अ॒भि॒ऽप्र॒चक्षे॑ । उ॒षाः । अ॒जी॒गः । भुव॑नानि । विश्वा॑ ॥ ६ ॥

ए॒षा । दि॒वः । दु॒हि॒ता । प्रति॑ । अ॒द॒र्शि॒ । वि॒ऽउ॒च्छन्ती॑ । यु॒व॒तिः । शु॒क्रऽवा॑साः । विश्व॑स्य । ईशा॑ना । पार्थि॑वस्य । वस्वः॑ । उषः॑ । अ॒द्य । इ॒ह । सु॒ऽभ॒गे॒ । वि । उ॒च्छ॒ ॥ ७ ॥

प॒रा॒ऽय॒ती॒नाम् । अनु॑ । ए॒ति॒ । पाथः॑ । आ॒ऽय॒ती॒नाम् । प्र॒थ॒मा । शश्व॑तीनाम् । वि॒ऽउ॒च्छन्ती॑ । जी॒वम् । उ॒त्ऽई॒रय॑न्ती । उ॒षाः । मृ॒तम् । कम् । च॒न । बो॒धय॑न्ती ॥ ८ ॥ उषः॑ । यत् । अ॒ग्निम् । स॒म्ऽइधे॑ । च॒कर्थ॑ । वि । यत् । आवः॑ । चक्ष॑सा । सूर्य॑स्य । यत् । मानु॑षान् । य॒क्ष्यमा॑णान् । अजी॑ग॒रिति॑ । तत् । दे॒वेषु॑ । च॒कृ॒षे॒ । भ॒द्रम् । अप्नः॑ ॥ ९ ॥

कियात्या यत्समया भवाति या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान् ।
अनु पूर्वाः कृपते वावशाना प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति ॥ १० ॥ २ ॥
ईयुष्टे ये पूर्वतरामपश्यन्व्युच्छन्तीमुषसं मर्त्यासः ।
अस्माभिरू नु प्रतिचक्ष्याभूदो ते यन्ति ये अपरीषु पश्यान् ॥ ११ ॥
यावयद्द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती ।
सुमङ्गलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ ॥ १२ ॥
शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी ।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः ॥ १३ ॥
व्यञ्जिभिर्दिव आतास्वद्योदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः ।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥ १४ ॥

कियति । आ । यत् । समया । भवाति । याः । विऽऊषुः । याः । च । नूनं । विऽउच्छान् । अनु । पूर्वाः । कृपते । वावशाना । प्रऽदीध्याना । जोषं । अन्याभिः । एति ॥ १० ॥ २
ईयुः । ते । ये । पूर्वऽतरां । अपश्यन् । विऽउच्छंतीं । उषसं । मर्त्यासः । अस्माभिः । ऊं इति । नु । प्रतिऽचक्ष्या । अभूत् । ओ इति । ते । यंति । ये । अपरीषु । पश्यान् ॥ ११ ॥
यावयत्ऽद्वेषाः । ऋतऽपाः । ऋतेऽजाः । सुम्नऽवरी । सूनृताः । ईरयंती । सुऽमंगलीः । बिभ्रती । देवऽवीतिं । इह । अद्य । उषः । श्रेष्ठऽतमा । वि । उच्छ ॥ १२ ॥
शश्वत् । पुरा । उषाः । वि । उवास । देवी । अथो इति । अद्य । इदं । वि । आवः । मघोनी । अथो इति । वि । उच्छात् । उत्ऽतरान् । अनु । द्यून् । अजरा । अमृता । चरति । स्वधाभिः ॥ १३ ॥ वि । अंजिऽभिः । दिवः । आतासु । अद्यौत् । अप । कृष्णा । निःऽनिजं । देवी । आवः । प्रऽबोधयंती । अरुणेभिः । अश्वैः । आ । उषाः । याति । सुऽयुजा । रथेन ॥ १४ ॥

आवहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥ १५ ॥ ३ ॥
उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रागात्तम आ ज्योतिरेति ।
आरैक्पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ १६ ॥
स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥ १७ ॥
या गोमतीरुषसः सर्ववीरा व्युच्छन्ति दाशुषे मर्त्याय ।
वायोरिव सूनृतानामुदर्के ता अश्वदा अश्नवत्सोमसुत्वा ॥ १८ ॥
माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि ।
प्रशस्तिकृद्ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे ॥ १९ ॥

आऽवहन्ती । पोष्या । वार्याणि । चित्रं । केतुं । कृणुते । चेकिताना । ईयुषीणां । उपऽमा । शश्वतीनां । विऽभातीनां । प्रथमा । उषाः । वि । अश्वैत् ॥ १५ ॥ ३ ॥ उत् । ईर्ध्वं । जीवः । असुः । नः । आ । अगात् । अप । प्र । अगात् । तमः । आ । ज्योतिः । एति । अरैक् । पंथां । यातवे । सूर्याय । अगन्म । यत्र । प्रऽतिरंते । आयुः ॥ १६ ॥ स्यूमना । वाचः । उत् । इयर्ति । वह्निः । स्तवानः । रेभः । उषसः । विऽभातीः । अद्य । तत् । उच्छ । गृणते । मघोनि । अस्मे इति । आयुः । नि । दिदीहि । प्रजाऽवत् ॥ १७ ॥ याः । गोऽमतीः । उषसः । सर्वऽवीराः । विऽउच्छंति । दाशुषे । मर्त्याय । वायोःऽइव । सूनृतानां । उत्ऽअर्के । ताः । अश्वऽदाः । अश्नवत् । सोमऽसुत्वा ॥ १८ ॥ माता । देवानां । अदितेः । अनीकं । यज्ञस्य । केतुः । बृहती । वि । भाहि । प्रशस्तिऽकृत् । ब्रह्मणे । नः । वि । उच्छ । आ । नः । जने । जनय । विश्वऽवारे ॥ १९ ॥

यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ २० ॥ ४ ॥

॥ ११४ ॥ ऋषिः-आङ्गिरस कुत्स । देवता-रुद्रः । छन्दः-जगती ॥

॥११४॥ इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद्द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ १ ॥
मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते ।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ २ ॥
अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः ।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥ ३ ॥
त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वङ्कुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥

यत् । चित्रं । अप्नः । उषसः । वहन्ति । ईजानाय । शशमानाय । भद्रं । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्तां । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ २० ॥४॥

इमाः । रुद्राय । तवसे । कपर्दिने । क्षयत्ऽवीराय । प्र । भरामहे । मतीः । यथा । शं । असत् । द्विऽपदे । चतुःऽपदे । विश्वं । पुष्टं । ग्रामे । अस्मिन् । अनातुरं ॥१॥ मृळ । नः । रुद्र । उत । नः । मयः । कृधि । क्षयत्ऽवीराय । नमसा । विधेम । ते । यत् । शं । च । योः । च । मनुः । आऽयेजे । पिता । तत् । अश्याम । तव । रुद्र । प्रऽनीतिषु ॥ २ ॥ अश्याम । ते । सुऽमतिं । देवऽयज्यया । क्षयत्ऽवीरस्य । तव । रुद्र । मीढ्वः । सुम्नऽयन् । इत् । विशः । अस्माकं । आ । चर । अरिष्टऽवीराः । जुहवाम । ते । हविः ॥ ३ ॥ त्वेषं । वयं । रुद्रं । यज्ञऽसाधं । वङ्कुं । कविं । अवसे । नि । ह्वयामहे । आरे । अस्मत् । दैव्यं । हेळः । अस्यतु । सुऽमतिं । इत् । वयं । अस्य । आ । वृणीमहे ॥ ४ ॥

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥ ५ ॥ ५ ॥
इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥ ६ ॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ ७ ॥
मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ ८ ॥
उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे ॥ ९ ॥

दिवः । वराहं । अरुषं । कपर्दिनं । त्वेषं । रूपं । नमसा । नि । ह्वयामहे । हस्ते । बिभ्रत् । भेषजा । वार्याणि । शर्म । वर्म । छर्दिः । अस्मभ्यं । यंसत् ॥ ५ ॥ ५ ॥

इदं । पित्रे । मरुतां । उच्यते । वचः । स्वादोः । स्वादीयः । रुद्राय । वर्धनं । रास्व । च । नः । अमृत । मर्तऽभोजनं । त्मने । तोकाय । तनयाय । मृळ ॥ ६ ॥ मा । नः । महांतं । उत । मा । नः । अर्भकं । मा । नः । उक्षंतं । उत । मा । नः । उक्षितं । मा । नः । वधीः । पितरं । मा । उत । मातरं । मा । नः । प्रियाः । तन्वः । रुद्र । रिरिषः ॥ ७ ॥ मा । नः । तोके । तनये । मा । नः । आयौ । मा । नः । गोषु । मा । नः । अश्वेषु । रिरिषः । वीरान् । मा । नः । रुद्र । भामितः । वधीः । हविष्मंतः । सदं । इत् । त्वा । हवामहे ॥ ८ ॥ उप । ते । स्तोमान् । पशुपाःऽइव । आ । अकरं । रास्व । पितः । मरुतां । सुम्नं । अस्मे इति । भद्रा । हि । ते । सुऽमतिः । मृळयत्ऽतमा । अथ । वयं । अवः । इत् । ते । वृणीमहे ॥ ९ ॥

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु ।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः ॥ १० ॥
अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतु नो हवं रुद्रो मरुत्वान् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिंधुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ११ ॥ ६ ॥

॥ ११५ ॥ ऋषिः-आङ्गिरसः कुत्स । देवता-सूर्यः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥ ११५ ॥ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥ १ ॥
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ २ ॥
भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः ॥ ३ ॥

आरे । ते । गोऽघ्नं । उत । पुरुषऽघ्नं । क्षयत्ऽवीर । सुम्नं । अस्मे इति । ते । अस्तु । मृळ । च । नः । अधि । च । ब्रूहि । देव । अध । च । नः । शर्म । यच्छ । द्विऽबर्हाः ॥१०॥ अवोचाम । नमः । अस्मै । अवस्यवः । शृणोतु । नः । हवं । रुद्रः । मरुत्वान् । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । मामहन्ताम् । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ११ ॥ ६ ॥

चित्रं । देवानां । उत् । अगात् । अनीकं । चक्षुः । मित्रस्य । वरुणस्य । अग्नेः । आ । अप्राः । द्यावापृथिवी इति । अंतरिक्षं । सूर्यः । आत्मा । जगतः । तस्थुषः । च ॥ १ ॥ सूर्यः । देवीं । उषसं । रोचमानां । मर्यः । न । योषां । अभि । एति । पश्चात् । यत्र । नरः । देवऽयंतः । युगानि । विऽतन्वते । प्रति । भद्राय । भद्रं ॥ २ ॥ भद्राः । अश्वाः । हरितः । सूर्यस्य । चित्राः । एतऽग्वाः । अनुऽमाद्यासः । नमस्यंतः । दिवः । आ । पृष्ठं । अस्थुः । परि । द्यावापृथिवी इति । यंति । सद्यः ॥ ३ ॥

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ४ ॥
तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ५ ॥
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात् ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥७॥१६॥

॥ सप्तदशोऽनुवाकः ॥

॥ ११६ ॥ ऋषिः कक्षीवान । देवता अश्विनौ । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥ ११६ ॥ नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥ १ ॥
वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥ २ ॥

तत् । सूर्यस्य । देवऽत्वं । तत् । महिऽत्वं । मध्या । कर्तोः । विऽततं । सं । जभार ।
यदा । इत् । अयुक्त । हरितः । सधऽस्थात् । आत् । रात्री । वासः । तनुते ।
सिमस्मै ॥ ४ ॥ तत् । मित्रस्य । वरुणस्य । अभिऽचक्षे । सूर्यः । रूपं । कृणुते ।
द्योः । उपऽस्थे । अनंतं । अन्यत् । रुशत् । अस्य । पाजः । कृष्णं । अन्यत् । हरितः ।
सं । भरंति ॥ ५ ॥ अद्य । देवाः । उत्ऽइता । सूर्यस्य । निः । अंहसः । पिपृत ।
निः । अवद्यात् । तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्तां । अदितिः । सिन्धुः ।
पृथिवी । उत । द्यौः ॥ ६ ॥ ७ ॥ १६ ॥

नासत्याभ्या । बर्हिःऽइव । प्र । वृंजे । स्तोमान् । इयर्मि । अभ्रियाऽइव ।
वातः । यौ । अर्भगाय । विऽमदाय । जायां । सेनाऽजुवा । निऽऊहतुः । रथेन ॥ १ ॥
वीळुपत्मऽभिः । आशुहेमऽभिः । वा । देवानां । वा । जूतिऽभिः । शाशदाना । तत् ।
रासभः । नासत्या । सहस्रं । आजा । यमस्य । प्रऽधने । जिगाय ॥ २ ॥

तुग्रो ह भुज्युमश्विनोदमेघे रयिं न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः ।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥ ३ ॥

तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥ ४ ॥

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥ ५ ॥ ८ ॥

यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति ।
तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥ ६ ॥

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरंधिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥ ७ ॥

तुग्रः । ह । भुज्युं । अश्विना । उदऽमेघे । रयिं । न । कः । चित् । ममृऽवान् । अवं । अहाः । तं । ऊहथुः । नौभिः । आत्मनऽवतीभिः । अंतरिक्षप्रुत्ऽभिः । अपऽउदकाभिः ॥ ३ ॥ तिस्रः । क्षपः । त्रिः । अहा । अतिव्रजत्ऽभिः । नासत्या । भुज्युं । ऊहथुः । पतंगैः । समुद्रस्य । धन्वन् । आर्द्रस्य । पारे । त्रिऽभिः । रथैः । शतपत्ऽभिः । षट्ऽअश्वैः ॥ ४ ॥ अनारंभणे । तत् । अवीरयेथां । अनास्थाने । अग्रभणे । समुद्रे । यत् । अश्विनौ । ऊहथुः । भुज्युं । अस्तं । शतऽअरित्रां । नावं । आ । तस्थिऽवांसं ॥ ५ ॥ ८ ॥ यं । अश्विना । ददथुः । श्वेतं । अश्वं । अघऽअश्वाय । शश्वत् । इत् । स्वस्ति । तत् । वां । दात्रं । महि । कीर्तेन्यं । भूत् । पैद्वः । वाजी । सदं । इत् । हव्यः । अर्यः ॥ ६ ॥ युवं । नरा । स्तुवते । पज्रियाय । कक्षीवते । अरदतं । पुरंऽधिं । कारोतरात् । शफात् । अश्वस्य । वृष्णः । शतं । कुंभान् । असिंचतं । सुरायाः ॥ ७ ॥

हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तं ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥ ८ ॥
परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥ ९ ॥
जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥ १० ॥ ९ ॥
तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।
यद्विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥ ११ ॥
तद्वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥ १२ ॥

हिमेन । अग्निं । घ्रंसं । अवारयेथां । पितुऽमतीं । ऊर्जं । अस्मै । अधत्तं । ऋबीसं । अत्रिं । अश्विना । अवऽनीतं । उत् । निन्यथुः । सर्वऽगणं । स्वस्ति ॥ ८ ॥ परा । अवतं । नासत्या । अनुदेथां । उच्चाऽबुध्नं । चक्रथुः । जिह्मऽबारं । क्षरन् । आपः । न । पायनाय । राये । सहस्राय । तृष्यते । गोतमस्य ॥ ९ ॥ जुजुरुषः । नासत्या । उत । वव्रिं । प्र । अमुंचतं । द्रापिंऽइव । च्यवानात् । प्र । अतिरतं । जहितस्य । आयुः । दस्रा । आत् । इत् । पतिं । अकृणुतं । कनीनां ॥ १० ॥ ९ ॥ तत् । वां । नरा । शंस्यं । राध्यं । च । अभिष्टिऽमत् । नासत्या । वरूथं । यत् । विद्वांसा । निधिंऽइव । अपऽगूळ्हं । उत् । दर्शतात् । ऊपथुः । वंदनाय ॥ ११ ॥ तत् । वां । नरा । सनये । दंसः । उग्रं । आविः । कृणोमि । तन्यतुः । न । वृष्टिं । दध्यङ् । ह । यत् । मधु । आथर्वणः । वां । अश्वस्य । शीर्ष्णा । प्र । यत् । ईं । उवाच ॥ १२ ॥

अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरंधिः ।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥ १३ ॥
आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम् ।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥ १४ ॥
चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ १५ ॥ १० ॥
शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥ १६ ॥
आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥ १७ ॥

अजोहवीत् । नासत्या । करा । वां । महे । यामन् । पुरुऽभुजा । पुरंऽधिः । श्रुतं । तत् । शासुःऽइव । वध्रिऽमत्याः । हिरण्यऽहस्तं । अश्विनौ । अदत्तं ॥ १३ ॥ आस्नः । वृकस्य । वर्तिकां । अभीके । युवं । नरा । नासत्या । अमुमुक्तं । उतो इति । कविं । पुरुऽभुजा । युवं । ह । कृपमाणं । अकृणुतं । विऽचक्षे ॥ १४ ॥ चरित्रं । हि । वेःऽइव । अच्छेदि । पर्णं । आजा । खेलस्य । परिऽतक्म्यायां । सद्यः । जंघां । आयसीं । विश्पलायै । धने । हिते । सर्तवे । प्रति । अधत्तं ॥ १५ ॥ १० ॥ शतं । मेषान् । वृक्ये । चक्षदानं । ऋज्रऽअश्वं । तं । पिता । अंधं । चकार । तस्मै । अक्षी इति । नासत्या । विऽचक्षे । आ । अधत्तं । दस्रा । भिषजौ । अनर्वन् ॥ १६ ॥ आ । वां । रथं । दुहिता । सूर्यस्य । कार्ष्मऽइव । अतिष्ठत् । अर्वता । जयंती । विश्वे । देवाः । अनु । अमन्यंत । हृत्ऽभिः । सं । ऊं इति । श्रिया । नासत्या । सचेथे । इति ॥ १७॥

यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥ १८ ॥

रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।
आ जह्नावीं समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥ १९ ॥

परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥ २० ॥ ११ ॥

एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥ २१ ॥

शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।
शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥ २२ ॥

यत् । अयातं । दिवःऽदासाय । वर्तिः । भरत्ऽवाजाय । अश्विना । हयन्ता । रेवत् । उवाह । सचनः । रथः । वां । वृषभः । च । शिंशुमारः । च । युक्ता ॥ १८ ॥

रयिं । सुऽक्षत्रं । सुऽअपत्यम् । आयुः । सुऽवीर्यं । नासत्या । वहन्ता । आ । जह्नावीं । सऽमनसा । उप । वाजैः । त्रिः । अह्नः । भागं । दधतीं । अयातं ॥ १९ ॥

परिऽविष्टं । जाहुषं । विश्वतः । सीं । सुऽगेभिः । नक्तं । ऊहथुः । रजःऽभिः । विऽभिन्दुना । नासत्या । रथेन । वि । पर्वतान् । अजरयू इति । अयातं ॥ २० ॥ ११ ॥

एकस्याः । वस्तोः । आवतं । रणाय । वशं । अश्विना । सनये । सहस्रा । निः । अहतं । दुच्छुनाः । इन्द्रऽवन्ता । पृथुऽश्रवसः । वृषणौ । अरातीः ॥ २१ ॥ शरस्य । चित् । आर्चत्ऽकस्य । अवतात् । आ । नीचात् । उच्चा । चक्रथुः । पातवे । वाः इति । वाः । शयवे । चित् । नासत्या । शचीभिः । जसुरये । स्तर्यं । पिप्यथुः । गां ॥ २२ ॥

अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥ २३ ॥
दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्नथितमप्स्वन्तः ।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥ २४ ॥
प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥ २५ ॥ १२ ॥

॥ ११७ ॥ ऋषिः—कक्षीवान् । देवता—अश्विनौ । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥ ११७ ॥ मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः ॥ १ ॥
यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति ।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥ २ ॥

अवस्यते । स्तुवते । कृष्णियाय । ऋजुऽयते । नासत्या । शचीभिः । पशुम् । न । नष्टम्ऽइव । दर्शनाय । विष्णाप्वम् । ददथुः । विश्वकाय ॥ २३ ॥ दश । रात्रीः । अशिवेन । नव । द्यून् । अवऽनद्धम् । श्नथितम् । अप्ऽसु । अंतरिति । विऽप्रुतम् । रेभम् । उदनि । प्रऽवृक्तम् । उत् । निन्यथुः । सोमम्ऽइव । स्रुवेण ॥ २४ ॥ प्र । वाम् । दंसांसि । अश्विनौ । अवोचम् । अस्य । पतिः । स्याम् । सुऽगवः । सुऽवीरः । उत । पश्यन् । अश्नुवन् । दीर्घम् । आयुः । अस्तम्ऽइव । इत् । जरिमाणम् । जगम्याम् ॥ २५ ॥ १२ ॥

मध्वः । सोमस्य । अश्विना । मदाय । प्रत्नः । होता । आ । विवासते । वाम् । बर्हिष्मती । रातिः । विऽश्रिता । गीः । इषा । यातम् । नासत्या । उप । वाजैः ॥ १ ॥ यः । वाम् । अश्विना । मनसः । जवीयान् । रथः । सुऽअश्वः । विशः । आऽजिगाति । येन । गच्छथः । सुऽकृतः । दुरोणम् । तेन । नरा । वर्तिः । अस्मभ्यम् । यातम् ॥ २ ॥

ऋषिं नरावंहंसः पाञ्चंजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेनं ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥ ३ ॥

अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥ ४ ॥

सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥ १३ ॥

तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥ ६ ॥

युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥ ७ ॥

ऋषिं । नरौ । अंहसः । पांचऽजन्यं । ऋबीसात् । अत्रिं । मुंचथः । गणेनं । मिनंता । दस्योः । अशिवस्य । मायाः । अनुऽपूर्वं । वृषणा । चोदयंता ॥ ३ ॥ अश्वं । न । गूळ्हं । अश्विना । दुःऽएवैः । ऋषिं । नरा । वृषणा । रेभं । अपऽसु । सं । तं । रिणीथः । विऽप्रुतं । दंसःऽभिः । न । वां । जूर्यंति । पूर्व्या । कृतानि ॥ ४ ॥ सुसुप्वांसं । न । निःऽऋतेः । उपऽस्थे । सूर्यं । न । दस्रा । तमसि । क्षियंतं । शुभे । रुक्मं । न । दर्शतं । निऽखातं । उत् । ऊपथुः । अश्विना । वंदनाय ॥५॥१३॥ तत् । वां । नरा । शंस्यं । पज्रियेण । कक्षीवता । नासत्या । परिऽज्मन् । शफात् । अश्वस्य । वाजिनः । जनाय । शतं । कुंभान् । असिंचतं । मधूनां ॥ ६ ॥ युवं । नरा । स्तुवते । कृष्णियाय । विष्णाप्वं । ददथुः । विश्वकाय । घोषायै । चित् । पितृऽसदे । दुरोणे । पतिं । जूर्यंत्यै । अश्विना । अदत्तं ॥ ७ ॥

युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥ ८ ॥

पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥ ९ ॥

एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद्वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजं ॥ १० ॥ १४ ॥

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥ ११ ॥

कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥ १२ ॥

युवं । श्यावाय । रुशतीं । अदत्तं । महः । क्षोणस्यं । अश्विना । कण्वाय । प्रऽवाच्यं । तत् । वृषणा । कृतं । वां । यत् । नार्षदाय । श्रवः । अधिऽअधत्तं ॥ ८ ॥ पुरु । वपूंसि । अश्विना । दधाना । नि । पेदवे । ऊहथुः । आशुं । अश्वं । सहस्रऽसां । वाजिनं । अप्रतिऽइतं । अहिऽहनं । श्रवस्यं । तरुत्रं ॥ ९ ॥ एतानि । वां । श्रवस्या । सुदानू इति सुऽदानू । ब्रह्म । आंगूषं । सदनं । रोदस्योः । यत् । वां । पज्रासः । अश्विना । हवंते । यातं । इषा । च । विदुषे । च । वाजं ॥ १० ॥ १४ ॥ सूनोः । मानेन । अश्विना । गृणाना । वाजं । विप्राय । भुरणा । रदंता । अगस्त्ये । ब्रह्मणा । ववृधाना । सं । विश्पलां । नासत्या । अरिणीतं ॥ ११ ॥ कुह । यांता । सुऽस्तुतिं । काव्यस्य । दिवः । नपाता । वृषणा । शयुऽत्रा । हिरण्यस्यऽइव । कलशं । निऽखातं । उत् । ऊपथुः । दशमे । अश्विना । अहन् ॥ १२ ॥

युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ।
युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥ १३ ॥
युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना ।
युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद्विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥ १४ ॥
अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान् ।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥ १५ ॥ १५ ॥
अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥ १६ ॥
शतं मेषान्वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥ १७ ॥

युवं । च्यवानं । अश्विना । जरन्तं । पुनः । युवानं । चक्रथुः । शचीभिः । युवोः । रथं । दुहिता । सूर्यस्य । सह । श्रिया । नासत्या । अवृणीत ॥ १३ ॥ युवं । तुग्राय । पूर्व्येभिः । एवैः । पुनःऽमन्यौ । अभवतं । युवाना । युवं । भुज्युं । अर्णसः । निः । समुद्रात् । विऽभिः । ऊहथुः । ऋज्रेभिः । अश्वैः ॥ १४ ॥ अजोहवीत् । अश्विना । तौग्र्यः । वां । प्रऽऊळ्हः । समुद्रं । अव्यथिः । जगन्वान् । निः । तं । ऊहथुः । सुऽयुजा । रथेन । मनःऽजवसा । वृषणा । स्वस्ति ॥ १५ ॥ १५ ॥ अजोहवीत् । अश्विना । वर्तिका । वां । आस्नः । यत् । सीं । अमुंचतं । वृकस्य । वि । जयुषा । ययथुः । सानुं । अद्रेः । जातं । विष्वाचः । अहतं । विषेण ॥ १६ ॥ शतं । मेषान् । वृक्ये । ममहानं । तमः । प्रऽनीतं । अशिवेन । पित्रा । आ । अक्षी इति । ऋज्रऽअश्वे । अश्विनौ । अधत्तं । ज्योतिः । अंधाय । चक्रथुः । विऽचक्षे ॥ १७ ॥

शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।
जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥ १८ ॥

मही वामूतिरश्विना मयोभूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत्पुरंधिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥ १९ ॥

अधेनुं दस्रा स्तर्यं विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥ २० ॥ १६ ॥

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा ।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ २१ ॥

आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥ २२ ॥

शुनं । अंधाय । भरं । अह्वयत् । सा । वृकीः । अश्विना । वृषणा । नरा । इति ।
जारः । कनीनःऽइव । चक्षदानः । ऋज्रऽअश्वः । शतं । एकं । च । मेषान् ॥ १८ ॥
मही । वां । ऊतिः । अश्विना । मयःऽभूः । उत । स्रामं । धिष्ण्या । सं । रिणीथः ।
अथ । युवां । इत् । अह्वयत् । पुरंऽधिः । आ । अगच्छतं । सीं । वृषणौ । अवःऽभिः ॥ १९ ॥
अधेनुं । दस्रा । स्तर्यं । विऽसक्तां । अपिन्वतं । शयवे । अश्विना । गां । युवं ।
शचीभिः । विऽमदाय । जायां । नि । ऊहथुः । पुरुऽमित्रस्य । योषां ॥ २० ॥ १६ ॥
यवं । वृकेण । अश्विना । वपंता । इषं । दुहंता । मनुषाय । दस्रा । अभि । दस्युं ।
बकुरेण । धमंता । उरु । ज्योतिः । चक्रथुः । आर्याय ॥ २१ ॥ आथर्वणाय ।
अश्विना । दधीचे । अश्व्यं । शिरः । प्रति । ऐरयतं । सः । वां । मधु । प्र । वोचत् ।
ऋतऽयन् । त्वाष्ट्रं । यत् । दस्रौ । अपिऽकक्ष्यं । वां ॥ २२ ॥

सद्यो कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे ।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ॥ २३ ॥
हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् ।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवसं ऐरयतं सुदानू ॥ २४ ॥
एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन् ।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ २५ ॥ १७ ॥

॥ ११८ ॥ ऋषिः–कक्षीवान् । देवता–अश्विनौ । छन्दः–त्रिष्टुप् ॥

॥११८॥ आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥ १ ॥
त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ २ ॥

सद्यः । कवी इति । सुऽमतिं । आ । चके । वां । विश्वाः । धियः । अश्विना । प्र । अवतं । मे । अस्मे इति । रयिं । नासत्या । बृहंतं । अपत्यऽसाचं । श्रुत्यं । रराथां ॥ २३ ॥ हिरण्यऽहस्तं । अश्विना । रराणा । पुत्रं । नरा । वध्रिऽमत्याः । अदत्तं । त्रिधा । ह । श्यावं । अश्विना । विऽकस्तं । उत् । जीवसे । ऐरयतं । सुदानू इति सुऽदानू ॥ २४ ॥ एतानि । वां । अश्विना । वीर्याणि । प्र । पूर्व्याणि । आयवः । अवोचन् । ब्रह्म । कृण्वंतः । वृषणा । युवऽभ्यां । सुऽवीरासः । विदथं । आ । वदेम ॥ २५ ॥ १७ ॥

आ । वां । रथः । अश्विना । श्येनऽपत्वा । सुऽमृळीकः । स्वऽवान् । यातु । अर्वाङ् । यः । मर्त्यस्य । मनसः । जवीयान् । त्रिऽवंधुरः । वृषणा । वातऽरंहाः ॥ १ ॥ त्रिऽवंधुरेण । त्रिऽवृता । रथेन । त्रिऽचक्रेण । सुऽवृता । आ । यातं । अर्वाक् । पिन्वतं । गाः । जिन्वतं । अर्वतः । नः । वर्धयतं । अश्विना । वीरं । अस्मे इति ॥ २ ॥

प्रवत्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥
आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः ।
ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥ ४ ॥
आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्टी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥ ५ ॥ १८ ॥
उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६ ॥
युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ७ ॥

प्रवत्ऽयामना । सुऽवृता । रथेन । दस्रौ । इमं । शृणुतं । श्लोकं । अद्रेः । किं । अंग । वां । प्रति । अवर्तिं । गमिष्ठा । आहुः । विप्रासः । अश्विना । पुराऽजाः ॥ ३ ॥
आ । वां । श्येनासः । अश्विना । वहंतु । रथे । युक्तासः । आशवः । पतंगाः । ये । अप्ऽतुरः । दिव्यासः । न । गृध्राः । अभि । प्रयः । नासत्या । वहंति ॥ ४ ॥
आ । वां । रथं । युवतिः । तिष्ठत् । अत्र । जुष्टी । नरा । दुहिता । सूर्यस्य । परि । वां । अश्वाः । वपुषः । पतंगाः । वयः । वहंतु । अरुषाः । अभीके ॥ ५ ॥ १८ ॥ उत् । वंदनं । ऐरतं । दंसनाभिः । उत् । रेभं । दस्रा । वृषणा । शचीभिः । निः । तौग्र्यं । पारयथः । समुद्रात् । पुनरिति । च्यवानं । चक्रथुः । युवानं ॥ ६ ॥ युवं । अत्रये । अवऽनीताय । तप्तं । ऊर्जं । ओमानं । अश्विनौ । अधत्तं । युवं । कण्वाय । अपिऽरिप्ताय । चक्षुः । प्रति । अधत्तं । सुऽस्तुतिं । जुजुषाणा ॥ ७ ॥

युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।

अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥ ८ ॥

युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।

जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥ ९ ॥

ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।

आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥ १० ॥

आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।

हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ॥ ११ ॥ १९ ॥

युवं । धेनुं । शयवे । नाधिताय । अपिन्वतं । अश्विना । पूर्व्याय । अमुंचतं । वर्तिका । अंहसः । निः । प्रति । जंघां । विश्पलायाः । अधत्तं ॥ ८ ॥ युवं । श्वेतं । पेदवे । इंद्रऽजूतं । अहिऽहनं । अश्विना । अदत्तं । अश्वं । जोहूत्रं । अर्यः । अभिऽभूतिं । उग्रं । सहस्रऽसां । वृषणं । वीळुऽअंगं ॥ ९ ॥ ता । वां । नरा । सु । अवसे । सुऽजाता । हवामहे । अश्विना । नाधमानाः । आ । नः । उप । वसुऽमता । रथेन । गिरः । जुषाणा । सुविताय । यातं ॥ १० ॥ आ । श्येनस्य । जवसा । नूतनेन । अस्मे इति । यातं । नासत्या । सऽजोषाः । हवे । हि । वां । अश्विना । रातऽहव्यः । शश्वत्ऽतमायाः । उषसः । विऽउष्टौ ॥ ११ ॥ १९ ॥

॥ ११९ ॥ ऋषिः—कक्षीवान् । देवता—अश्विनौ । छन्दः—जगती ॥

॥११९॥ आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥ १ ॥
ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥ २ ॥
सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥ ३ ॥
युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं१ दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥ ४ ॥

आ । वां । रथं । पुरुऽमायं । मनःऽजुवं । जीरऽअश्वं । यज्ञियं । जीवसे । हुवे । सहस्रऽकेतुं । वनिनं । शतत्ऽवसुं । श्रुष्टीऽवानं । वरिवःऽधां । अभि । प्रयः ॥ १ ॥ ऊर्ध्वा । धीतिः । प्रति । अस्य । प्रऽयामनि । अधायि । शस्मन् । सं । अयंते । आ । दिशः । स्वदामि । घर्मं । प्रति । यंति । ऊतयः । आ । वां । ऊर्जानी । रथं । अश्विना । अरुहत् ॥ २ ॥ सं । यत् । मिथः । पस्पृधानासः । अग्मत । शुभे । मखाः । अमिताः । जायवः । रणे । युवोः । अह । प्रवणे । चेकिते । रथः । यत् । अश्विना । वहथः । सूरिं । आ । वरं ॥ ३ ॥ युवं । भुज्युं । भुरमाणं । विऽभिः । गतं । स्वयुक्तिऽभिः । निऽवहंता । पितृऽभ्यः । आ । यासिष्टं । वर्तिः । वृषणा । विऽजेन्यं । दिवःऽदासाय । महि । चेति । वां । अवः ॥ ४ ॥

युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम् ।
आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषावृणीत जेन्या युवां पती ॥५॥२०॥
युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६ ॥
युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः ।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥ ७ ॥
अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।
स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥ ८ ॥
उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति ।
युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥ ९ ॥

युवोः । अश्विना । वपुषे । युवाऽयुजं । रथं । वाणी इति । येमतुः । अस्य । शर्ध्यं ।
आ । वां । पतिऽत्वं । सख्याय । जग्मुषी । योषा । अवृणीत । जेन्या । युवां । पती
इति ॥ ५ ॥ २० ॥ युवं । रेभं । परिऽसूतेः । उरुष्यथः । हिमेन । घर्मं । परिऽतप्तं ।
अत्रये । युवं । शयोः । अवसं । पिप्यथुः । गवि । प्र । दीर्घेण । वंदनः । तारि ।
आयुषा ॥ ६ ॥ युवं । वंदनं । निःऽऋतं । जरण्यया । रथं । न । दस्रा । करणा ।
सं । इन्वथः । क्षेत्रात् । आ । विप्रं । जनथः । विपन्यया । प्र । वां । अत्र । विधते ।
दंसना । भुवत् ॥ ७ ॥ अगच्छतं । कृपमाणं । पराऽवति । पितुः । स्वस्य । त्यजसा ।
निऽबाधितं । स्वःऽवतीः । इतः । ऊतीः । युवोः । अह । चित्राः । अभीके । अभवन् ।
अभिष्टयः ॥ ८ ॥ उत । स्या । वां । मधुऽमत् । मक्षिका । अरपत् । मदे । सोमस्य ।
औशिजः । हुवन्यति । युवं । दधीचः । मनः । आ । विवासथः । अथ । शिरः ।
प्रति । वां । अश्व्यं । वदत् ॥ ९ ॥

युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥ १० ॥ २१ ॥

॥ १२० ॥ ऋषिः– कक्षीवान् । देवता–अश्विनौ । छन्दः–गायत्री ॥

॥ १२० ॥ का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः ।
कथा विधात्यप्रचेताः ॥ १ ॥
विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः ।
नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥ २ ॥
ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य ।
प्रार्चद्दयमानो युवाकुः ॥ ३ ॥
वि पृच्छामि पाक्या३न देवान्वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा ।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥ ४ ॥

युवं । पेदवे । पुरुऽवारं । अश्विना । स्पृधां । श्वेतं । तरुतारं । दुवस्यथः । शर्यैः । अभिऽद्युं । पृतनासु । दुस्तरं । चर्कृत्यं । इंद्रंऽइव । चर्षणिऽसहं ॥ १० ॥ २१ ॥

का । राधत् । होत्रा । अश्विना । वां । कः । वां । जोषे । उभयोः । कथा । विधाति । अप्रऽचेताः ॥ १ ॥ विद्वांसौ । इत् । दुरः । पृच्छेत् । अविद्वान् । इत्था । अपरः । अचेताः । नु । चित् । नु । मर्ते । अक्रौ ॥ २ ॥ ता । विद्वांसा । हवामहे । वां । ता । नः । विद्वांसा । मन्म । वोचेतं । अद्य । प्र । आर्चत् । दयमानः । युवाकुः ॥ ३ ॥ वि । पृच्छामि । पाक्या । न । देवान् । वषट्ऽकृतस्य । अद्भुतस्य । दस्रा । पातं । च । सह्यसः । युवं । च । रभ्यसः । नः ॥ ४ ॥

प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम् ।

प्रैषयुर्न विद्वान् ॥ ५ ॥ २२ ॥

श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् ।

आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६ ॥

युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरततंसतम् ।

ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥ ७ ॥

मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः ।

स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥ ८ ॥

दुहीयन्मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।

इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ९ ॥

प्र । या । घोषे । भृगवाणे । न । शोभे । यया । वाचा । यजति । पज्रियः । वा । प्र । इषऽयुः । न । विद्वान् ॥ ५ ॥ २२ ॥ श्रुतं । गायत्रं । तकवानस्य । अहं । चित् । हि । रिरेभ । अश्विना । वां । आ । अक्षी इति । शुभः । पती इति । दन् ॥ ६ ॥ युवं । हि । आस्तं । महः । रन् । युवं । वा । यत् । निःऽअततंसतं । ता । नः । वसू इति । सुऽगोपा । स्यातं । पातं । नः । वृकात् । अघऽयोः ॥ ७ ॥ मा । कस्मै । धातं । अभि । अमित्रिणे । नः । मा । अकुत्र । नः । गृहेभ्यः । धेनवः । गुः । स्तनऽभुजः । अशिश्वीः ॥ ८ ॥ दुहीयन् । मित्रऽधितये । युवाकु । राये । च । नः । मिमीतं । वाजऽवत्यै । इषे । च । नः । मिमीतं । धेनुऽमत्यै ॥ ९ ॥

अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः ।

तेनाहं भूरि चाकन ॥ १० ॥

अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु ।

सोमपेयं सुखो रथः ॥ ११ ॥

अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः ।

उभा ता बस्रि नश्यतः ॥ १२ ॥ २३ ॥ १७ ॥

॥ अष्टादशोऽनुवाकः ॥

॥ १२१ ॥ ऋषिः-कक्षीवान् । देवता-विश्वेदेवाः,-इन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥१२१॥ कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां श्रवद्गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।
प्र यदानड्विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः ॥ १ ॥
स्तंभीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥ २ ॥

अश्विनोः । असनं । रथं । अनश्वं । वाजिनीऽवतोः । तेन । अहं । भूरि । चाकन ॥ १० ॥ अयं । समह । मा । तनु । ऊह्याते । जनान् । अनु । सोमऽपेयं । सुऽखः । रथः ॥ ११ ॥ अध । स्वप्नस्य । निः । विदे । अभुंजतः । च रेवतः । उभा । ता । बस्रि । नश्यतः ॥ १२ ॥ २३ ॥ १७ ॥

कत् । इत्था । नॄन् । पात्रं । देवऽयता । श्रवत् । गिरः । अंगिरसा । तुरण्यन् । प्र । यत् । आनट् । विशः । आ । हर्म्यस्य । उरु । क्रंसते । अध्वरे । यजत्रः ॥ १ ॥ स्तंभीत् । ह । द्यां । सः । धरुणं । प्रुषायत् । ऋभुः । वाजाय । द्रविणं । नरः । गोः । अनु । स्वऽजां । महिषः । चक्षत । व्रां । मेनां । अश्वस्य । परि । मातरं । गोः ॥ २ ॥

नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून् ।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद्द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥ ३ ॥
अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम् ।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥ ४ ॥
तुभ्यं पयो यत्पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥ ५ ॥ २४ ॥
अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः ।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥ ६ ॥
स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात्सूरो अध्वरे परि रोधना गोः ।
यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूननर्विशे पश्विषे तुराय ॥ ७ ॥

नक्षत् । हवं । अरुणीः । पूर्व्यं । राट् । तुरः । विशां । अंगिरसां । अनु । द्यून् । तक्षत् । वज्रं । निऽयुतं । तस्तंभत् । द्यां । चतुःऽपदे । नर्याय । द्विऽपादे ॥ ३ ॥ अस्य । मदे । स्वर्यं । दाः । ऋताय । अपिऽवृतं । उस्रियाणां । अनीकं । यत् । ह । प्रऽसर्गे । त्रिऽककुप् । निऽवर्तत् । अप । द्रुहः । मानुषस्य । दुरः । वरिति वः ॥ ४ ॥ तुभ्यं । पयः । यत् । पितरौ । अनीतां । राधः । सुऽरेतः । तुरणे । भुरण्यू इति । शुचि । यत् । ते । रेक्णः । आ । अयजंत । सबःऽदुघायाः । पयः । उस्रियायाः ॥ ५ ॥ २४ ॥ अध । प्र । जज्ञे । तरणिः । ममत्तु । प्र । रोचि । अस्याः । उषसः । न । सूरः । इंदुः । येभिः । आष्ट । स्वऽइदुहव्यैः । स्रुवेण । सिंचन् । जरणा । अभि । धाम ॥ ६ ॥ सुऽइध्मा । यत् । वनऽधितिः । अपस्यात् । सूरः । अध्वरे । परि । रोधना । गोः । यत् । ह । प्रऽभासि । कृत्व्यान् । अनु । द्यून् । अनर्विशे । पशुऽइषे । तुराय ॥ ७ ॥

अष्टा महो दिव आदो हरी इह द्युम्नासाहमभि योधान उत्सं ।
हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन्वृधे गोरभसमद्रिभिर्वाताप्यम् ॥ ८ ॥
त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा ।
कुत्साय यत्र पुरुहूत वन्वञ्छुष्णमनन्तैः परियासि वधैः ॥ ९ ॥
पुरा यत्सूरस्तमसो अपीतेस्तमद्रिवः फलिगं हेतिमस्य ।
शुष्णस्य चित्परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रथितं तदादः ॥ १० ॥ २५ ॥
अनु त्वा मही पाजसी अचक्रे द्यावाक्षामा मदतामिन्द्र कर्मन् ।
त्वं वृत्रमाशयानं सिरासु महो वज्रेण सिष्वपो वराहुम् ॥ ११ ॥
त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन्तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान् ।
यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद्वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् ॥ १२ ॥

अष्टा । महः । दिवः । आदः । हरी इति । इह । द्युम्नऽसहं । अभि । योधानः । उत्सं । हरिं । यत् । ते । मंदिनं । धुक्षन् । वृधे । गोऽरभसं । अद्रिऽभिः । वाताप्यं ॥ ८ ॥ त्वं । आयसं । प्रति । वर्तयः । गोः । दिवः । अश्मानं । उपऽनीतं । ऋभ्वा । कुत्साय । यत्र । पुरुऽहूत । वन्वन् । शुष्णं । अनंतैः । परिऽयासि । वधैः ॥ ९ ॥ पुरा । यत् । सूरः । तमसः । अपिऽइतेः । तं । अद्रिऽवः । फलिऽगं । हेतिं । अस्य । शुष्णस्य । चित् । परिऽहितं । यत् । ओजः । दिवः । परि । सुऽग्रथितं । तत् । आ । अदः इत्यदः ॥ १० ॥ २५ ॥ अनु । त्वा । मही इति । पाजसी इति । अचक्रेऽइति । द्यावाक्षामा । मदतां । इंद्र । कर्मन् । त्वं । वृत्रं । आऽशयानं । सिरासु । महः । वज्रेण । सिस्वपः । वराहुं ॥ ११ ॥ त्वं । इंद्र । नर्यः । यान् । अवः । नॄन् । तिष्ठ । वातस्य । सुऽयुजः । वहिष्ठान् । यं । ते । काव्यः । उशना । मंदिनं । दात् । वृत्रऽहनं । पार्यं । ततक्ष । वज्रं ॥ १२ ॥

त्वं सूरो॑ हरितो॑ रामयो नॄन्भर॑च्चक्रमेत॑शो नायमि॑न्द्र ।
प्रास्यं॑ पारं॑ नंवतिं॑ नाव्या॑नामपि॑ कर्तमंवर्तयोऽयंज्यून् ॥ १३ ॥
त्वं नो॑ अस्या इ॑न्द्र दुर्हणा॑याः पाहि वं॑ज्रिवो दुरितादभीके॑ ।
प्र नो वाजा॑न्रथ्यो३॑अश्वं॑बुध्यानिषे यं॑न्धि श्रवं॑से सूनृता॑यै ॥ १४ ॥
मा सा ते॑ अस्मत्सुमतिर्वि दं॑सद्वाजंप्रमहः समिषो॑ वरन्त ।
आ नो॑ भज मघवन्गोष्वर्यो मंहिं॑ष्ठास्ते सधमादः॑ स्याम ॥१५॥२६॥८॥१॥

त्वं । सूरः॑ । हरितः॑ । रमयः । नॄन् । भरंत् । चक्रं । एतंशः । न । अयं । इंद्र ।
प्रऽअस्यं । पारं । नवतिं । नाव्यां॑नां । अपि । कर्तं । अवर्तयः । अयंज्यून् ॥ १३ ॥
त्वं । नः । अस्याः । इंद्र । दुःऽहनां॑याः । पाहि । वज्रिऽवः । दुःऽइतात् । अभीके॑ । प्र ।
नः । वाजा॑न् । रथ्यः॑ । अश्वंऽबुध्यान् । इषे । यंधि । श्रवं॑से । सूनृता॑यै ॥ १४ ॥
मा । सा । ते । अस्मत् । सुऽमतिः । वि । दसत् । वाजंऽप्रमहः । सं । इषः॑ । वरंत ।
आ । नः । भज । मघऽवन् । गोषुं । अर्यः॑ । मंहिंष्ठाः । ते । सधऽमादः॑ । स्याम ।
॥ १५ ॥ २६ ॥ ८ ॥ १ ॥

इति प्रथमाष्टके अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ प्रथमाष्टकः समाप्तः ॥ १ ॥

जिन सामर्थ्योंसे चलते चलते[1] थके[2] हुए अन्तकको आप उत्साहित करते हैं, दुःखसे मुक्त करके भुज्युको उत्साह दिलाते हैं, और कर्कन्धु और वय्यको आनन्द दिलाते हैं, ऐसे सामर्थ्योंके साथ हे अश्विनीदेव, हमारे यहां आइये। ६

जिन भक्तगणोंकी रक्षा करनेवाले सामर्थ्योंसे आपने शुचन्तिको धनसे भरा हुआ गृह[3] अर्पण किया, जिन सामर्थ्योंके कारण आपने अत्रिका दाह (गर्मी) शान्त किया, और जिन सामर्थ्योंसे आपने पृश्निगु और पुरुकुत्सकी रक्षा की, उन सामर्थ्योंके साथ हे अश्विनीदेव, आप यहां आइये। ७

जिन भक्तगणोंकी रक्षा करनेवाले सामर्थ्योंसे आपने अन्धे और लङ्गडे[4] परावृजको देखनेकी और चलनेकी शक्ति प्रदान की और जिन सामर्थ्योंके कारण आपने अन्तरिक्षमें उडनेवाले (चिड़िया) पक्षीको नाश करनेवाले प्राणियोंसे बचा लिया उन सामर्थ्योंके साथ हे अश्विनीदेव, आप यहां आइये। ८

जिन भक्तगणोंकी रक्षा करनेवाले सामर्थ्योंसे आपने नदीयोंमें पूरा पूरा मधुर जल भर[5] दिया, जिनसे आपने वसिष्ठकी उन्नति की, और जिनसे आपने कुत्स्य, श्रुतर्य और नर्यकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ हे अश्विनीदेव, आप यहां आइये। ९

जिन भक्तगणोंकी रक्षा करनेवाले सामर्थ्योंसे आपने अथर्वकुलमें उत्पन्न हुए धनवान् विश्पलाकी भयङ्कर युद्धमें (जिसमें सैकड़ों मनुष्य मरते हैं) रक्षा की, और जिन सामर्थ्योंसे, आपसे प्रेम[6] करनेवाले अश्वकुलमें उत्पन्न हुए पुरुषोंकी आपने रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये। १० (३४)

---

६ याभिः आअरणे[1] जसमानं[2] अन्तकं, याभिः अव्यथिभिः भुज्युं जिजिन्वथुः, याभिः कर्कंधुं वय्यं च जिन्वथः ताभिः ऊतिभिः, अश्विना सु आ गतं।

७ याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं,[3] तप्तं घर्मं अत्रये ओम्यावन्तं, याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्सं आवतं ताभिः ऊतिभिः, अश्विना, सु आ गतं।

८ वृषणा अश्विना, याभिः शचीभिः अन्धं श्रोणं[4] परावृजं चक्षसे एतवे कृथः, याभिः प्रसितां वर्तिकां अमुंचतं ताभिः ऊतिभिः सु आ गतं।

९ याभिः मधुमंत सिन्धुं असश्चत,[5] अजरौ, याभिः वसिष्ठं अजि वतं, याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यं आवतं, ताभिः ऊतिभिः, अश्विना, सु आ गतं।

१० अथर्व्यं धनसां विश्पलां याभिः सहस्रमीळ्हे आजौ अजिन्वतं, प्रेषिं[6] अश्व्यं वशं याभिः आवतं ताभिः ऊतिभिः, अश्विना, सु आ गतं।

हे उदार अश्विनीदेव, जिन भक्तरक्षक सामर्थ्योंसे आपने उशीजकुलमें उत्पन्न हुए दीर्घश्रवाका व्यापार बढ़ानेके लिये मेघोंसे मधुर (जलोंकी) वृष्टि कराई, और जिन सामर्थ्योंसे आपकी स्तुति करनेवाले कक्षीवानोंकी रक्षा की, उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आगमन कीजिये ।　११

हे अश्विनीदेव, जिन भक्त रक्षक सामर्थ्योंसे आपने रसा नामके नदीको जलप्रवाहसे बढ़ा दिया, जिन सामर्थ्योंसे बिना अश्वके जोते हुए रथकी विजय कराके आपने रक्षा की, और जिन सामर्थ्योंके कारण त्रिशोक अपने गौको अपने घर ले जा सका उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये ।　१२

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तगण) रक्षक सामर्थ्योंके कारण आप दूरके प्रदेशमें भी सूर्यकी चारों ओर घुम सकते हैं, जिन सामर्थ्योंके कारण जमीन का स्वामी बननेका यत्न करनेवाले मन्धाताकी रक्षा आप कर सकते हैं, और जिन (सामर्थ्यों) के कारण विद्वान भारद्वाजकी आप रक्षा करते हैं उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये ।　१३

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तगण रक्षक) सामर्थ्योंके कारण आपने शम्बरका वध करनेके समय श्रेष्ठ अतिथिग्वी, कशोजु और दिवोदासकी रक्षा की, और जिन सामर्थ्योंके कारण (शत्रुओं) के नगरोंका नाश करनेवाले त्रिदस्युकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये ।　१४

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तगण रक्षक) सामर्थ्योंके कारण आपने सोमरसका पान करनेवाले बभ्रु, उपस्तुत और स्त्रीका लाभ करनेवाले कालिका सन्मान किया, और जिन सामर्थ्योंके कारण आपने व्यश्व और पृथिकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये ।　१५ (३५)

---

११ सुदानू अश्विना, याभिः औशजाय दीर्घश्रवसे वणिजे कोशः मधु अक्षरत्, याभिः स्तोतारं कक्षीवन्तं आवत ताभिः, ऊतिभिः, अश्विना, सु आ गतं ।

१२ अश्विना, याभिः उद्रः क्षोदसा रसां पिपिन्वथुः, याभिः अनश्वं रथं जिषे आवतं, याभिः त्रिशोकः उस्रियाः उदाजत, ताभिः ऊतिभिः सु आ गतं ।

१३ अश्विना, याभिः परावति सूर्यं परियाथः, क्षेत्रपत्येषु मंधातारं आवतं, याभिः विप्रं भरद्वाजं प्र आवतं ताभिः ऊतिभिः सु आ गत ।

१४ अश्विना, याभिः शम्बरहत्ये महां अतिथिग्वं, कशोजुवं, दिवोदासं आवतं, याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युं आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आ गतं ।

१५ अश्विना याभिः विपिपानं वम्रं, उपस्तुतं, विसजानिं कलिं दुवस्यथः, याभिः व्यश्वं उत पृथिं आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आ गतं ।

हे पराक्रमी अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण आपने पुराने समयमें भृगु, अत्रि और मनुकी उन्नति करनेकी इच्छा की, और जिन सामर्थ्योंसे आपने स्यूम-रश्मीके लिये बाण[8] चलाये उन सामर्थ्योंके साथ आप हमारे यहां आइये। १६

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण प्रज्वलित अग्निकी नाई पठर्वा मार्गसे[9] चलता हुआ अपने बड़े शरीरके कारण देदीप्यमान दिखने लगा, और जिन सामर्थ्योंके कारण आपने बड़े बड़े युद्धमेंभी शर्यातकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप हमारे यहां आइये। १७

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण अङ्गिरसोंकी स्तुतियोंसे सन्तुष्ट[10] हुए आपने गुहामें बन्धे हुए गौओंको सबसे आगे होकर मुक्त किया, और जिन सामर्थ्योंके कारण पराक्रमी मनुको अन्न देकर आपने उसकी रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये। १८

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण आपने विमदाको भार्या दिला दी, जिन सामर्थ्योंके कारण आपने लाल रङ्गकी धेनुओंको अपनी आज्ञा माननेको सिखलाया, और जिन सामर्थ्योंके कारण सुदेव्यको सुदासकी ओर आप ले गये उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये। १९

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंके कारण हवि अर्पण करनेवाले भक्तोंका आप कल्याण[11] करते हैं, जिन सामर्थ्योंसे भुज्यु और अध्रिगुकी आप रक्षा करते हैं, और जिन सामर्थ्योंके कारण आप हवि अर्पण करनेवाले ऋतस्तुभको आनन्द दिलाते हैं उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये। २० (३६)

---

१६ नरा अश्विना, याभिः पुरा भृगवे, याभिः अत्रये, याभिः मनवे गातुं ईषथुः, याभिः स्यूमरश्मये शारीः[8] आजतं, ताभिः ऊतिभिः सु आ गतं।

१७ अश्विना, याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मना अज्मन्[9] चितः इद्धः अग्निः न अदीदेत्, याभिः महाधने शर्यातं अवथः ताभिः ऊतिभिः सु आ गतं।

१८ अश्विना, याभिः अंगिरः मनसा निरण्यथः,[10] गोअर्णसः विवरे अग्रं गच्छथः, याभिः शूरं मनुं इषा समावतं ताभिः ऊतिभिः सु आ गतं।

१९ अश्विना, याभिः विमदाय पत्नीः नि ऊहथुः, याभिः वा घ अरुणीः अशिक्षतं, याभिः सुदेव्यं सुदासे ऊहथुः ताभिः ऊतिभिः सु आ गतं।

२० अश्विना, याभिः दाशुषे शंताती[11] भवथः, याभिः भुज्युं, याभिः अध्रिगुं अवथः, याभिः सुभरां ऋतस्तुभं ओम्यावतीं, ताभिः ऊतिभिः सु आ गतं।

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तगण रक्षक) सामर्थ्योंके कारण आपने बाण चलाते समय[11] कृशानुकी प्रशंसा करवाई, जिन सामर्थ्योंके कारण अश्वपर बैठकर दौड़नेवाले युवाकी आपने रक्षा की और जिन सामर्थ्योंके कारण आप भ्रमरको मधुर रस पिलाते हैं उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये। २१

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तगणरक्षक) सामर्थ्योंके कारण युद्धमें धेनु, भूमि और सन्ततिके लाभ इच्छा करनेवाले वीरोंकी आपने उन्नति की, और जिन सामर्थ्योंके कारण आप रथ और अश्वकी रक्षा करते हैं उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये। २२

हे अश्विनीदेव, जिन (भक्तरक्षक) सामर्थ्योंसे अर्जुनीका पुत्र कुत्स, तुर्वीति और दभीतिकी आपने रक्षा की, और जिनके कारण ध्वसन्ति और पुरुषन्तिकी भी आपने रक्षा की उन सामर्थ्योंके साथ आप यहां आइये। २३

हे शत्रुओंका नाश करनेवाले पराक्रमी अश्विनीदेव, हमपर कृपा करके हमारी स्तुति और प्रार्थना सफल[13] कीजिये। सूर्यप्रकाश[14] चारों ओर फैलनेके पहले हम अपनी रक्षाके लिये आपकी प्रार्थना करते हैं। इसलिये आप हमें सामर्थ्य अर्पण करके हमारी उन्नति कीजिये। २४

हे अश्विनीदेव, हमारे आनन्दमें बाधा[15] न डालिये और रातदिन हमारी रक्षा कीजिये। इस प्रार्थनापर मित्र, वरुण, अदिति, तथा सिन्धु, पृथ्वि और द्युलोक सम्मति देवें। २५ (१७)

---

२१ अश्विना, याभिः असने[11] कृशानुं दुवस्यथः, याभिः यूनः अर्वतं अवे आवतं, यत् सरड्भ्यः प्रियं मधु भरथः ताभिः ऊतिभिः सु आ गतं।

२२ अश्विना, याभिः गोषुयुधं नरं नृषाह्ये क्षेत्रस्य तनयस्य साता जिन्वथः, याभिः रथान्, याभिः अर्वतः अवथः ताभिः ऊतिभिः सु आ गतं।

२३ शतक्रतू अश्विना, याभिः आर्जुनेयं कुत्सं, तुर्वीतिं, दभीतिं प्र आवतं, याभिः ध्वसंतिं पुरुषंतिं आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आ गतं।

२४ दस्रा वृषणा अश्विना, अस्मे नः वाचं मनीषां अप्नस्वतीं[13] कृतं; अक्तवे[14] अवसे वां नि ह्वये वाजसातौ नः वृधे च भवतं।

२५ अश्विना, अरिष्टेभिः[15] सौभगेभिः द्युभिः अक्तुभिः अस्मान् परिपातं।

अध्याय ८.

सूक्त ११३.

॥ ऋषि–आङ्गिरस; कुत्स । देवता–उषा ॥

सब तेजोंमें जो श्रेष्ठ तेज है वह तेज प्रकट हुआ है । आश्चर्यकारक और सर्वव्यापी प्रकाशका[1] उदय हुआ है । सविता देवको उत्पन्न[2] करनेके लिये (उषा) देवी प्रकट हुई है और इसी लिये रात्रीने अपनी जगह खाली छोड़ दी है । १

अपने सफ़ेद (शुभ्र) रङ्गके बछेको लेकर शुभ्र और देदीप्यमान् (उषा) प्रकट हुई है । काले रङ्गकी रात्रीने अपनी सब जगह छोड़ (उषा) के लिये सब जगह खाली की है । एक दूसरीका अनुकरण[3] करनेवाली (उषा और रात्री)–दोनोंका अधिकार एकसा होनेपर भी–जगतका रङ्ग उलट पुलट कर देती हैं । आप दोनों आकाश मार्गसे सञ्चार करती हैं । २

दोनों बहिनोंके कई मार्ग हैं । देवोंकी आज्ञाको मानकर बताये हुए मार्गसे वे बारी बारीसे सञ्चार करती हैं । स्वरूपमें भिन्न किन्तु एकमतसे चलनेवाली सुन्दर[4] उषा और रात्री किसी जगह ठहरकर आराम नहीं करती । ३

देदीप्यमान्, सुन्दर, सत्यकी ओर ले जानेवाली और आश्चर्यकारक उषा प्रकट होकर दिखाई देने लगी । आपने ही हमारे घरका दरवाज़ा खोल दिया । आपने ही सब लोगोंको उद्योगके लिये प्रवृत्त[5] किया । आपने ही हमारे लिये वैभव प्राप्त करनेका दरवाज़ा खोल दिया और आपने ही सब प्राणियोंको जगाया । ४

---

१ इदं ज्योतिषां श्रेष्ठं ज्योतिः आ अगात् । चित्रः विभ्वा प्रकेतः[1] अजनिष्ट । यथा सवितुः सवाय[2] एव प्रसूता रात्री उषसे योनिं अरैक् ।

२ रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्या आ अगात् । कृष्णा अस्याः सदनानि अरैक् ऊं । समानबंधू अनूची[3] अमृते वर्णं आ मिनाने द्यावा चरतः ।

३ स्वस्रोः अध्वा समानः अनन्तः । देवशिष्टे तं अन्यान्या चरतः समनसा विरूपे सुमेके[4] नक्तोषसा न मेथेते, न तस्थतुः ।

४ भास्वती, सूनृतानां नेत्री चित्रा अचेति । नः दुरः वि आवः । जगत् प्रार्ध्य[5] नः रायः वि अख्यत् । उषाः विश्वा भुवनानि अजीगः ।

उदार उषाने सब प्राणियोंको जगाया है । इधर उधर सोये हुए प्रवासी लोगोंको मार्ग बतानेके लिये, अच्छी अच्छी वस्तुओंका लाभ करानेके लिये, इष्ट वस्तुएं और धन प्राप्त होनेका प्रयत्न करानेके लिये और अन्धेको दृष्टि दिलानेके लिये उषादेवी प्रकट हुई है। ५ (१)

उषा सब प्राणियोंको इसलिये जागृत करती है कि वे सामर्थ्य प्राप्त करनेका प्रयत्न करें, कोई कीर्ति कमानेका प्रयत्न करें, कोई अपना उद्देश सिद्ध करनेका प्रयत्न करें, कोई अपनी इच्छा पूरी करनेका प्रयत्न करें, और इस तरह सब लोगोंको अपने अपने उदरपोषणका मार्ग दिखा देवें। ६

सफेद वस्त्र पहनी हुई और पृथ्विपरके सब वैभवपर अधिपत्य चलानेवाली देदीप्यमान् द्युलोककन्या (उषा) प्रकट (दृग्गोचर) हुई है । हे कल्याणकारी उषादेवी, आज यहां आकर अपना उज्वल प्रकाश फैलाइये । ७

अपना उज्वल प्रकाश सब दूर फैलाती हुई, सब प्राणियोंको अपने अपने काममें लगाती हुई, (बिछानेपर) मृतवत् पड़े हुए (मनुष्य) को जागृत करती हुई वह उषा धीरे धीरे आगे चलकर पिछली उषाओंका अनुकरण करती है । ८

हे उषादेवी, आपहीने अग्निको प्रदिप्त करनेके लिये उसको सिद्ध किया; आपहीने सूर्यके नेत्रोंके द्वारा सब जगतको प्रकाशित किया; आपहीने यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको जागृत किया; इस तरह आपने देवोंकी ओर बड़े उपकारका काम किया । ९

---

५ जिह्मश्ये चरितवे, त्वं आभोगये इष्टये राये, दभ्रं पश्यद्भ्यः उर्विया विचक्षे उषाः विश्वा भुवनानि अजीगः ।

६ त्वं क्षत्राय, त्वं श्रवसे, त्वं महीयै इष्टये, त्वं अर्थं इव इत्यै, विसदृशा जीविता अभिप्रचक्षे, उषाः विश्वा भुवनानि अजीगः ।

७ शुक्रवासाः, विश्वस्य पार्थिवस्य वस्वः ईशाना, व्युच्छन्ती युवतिः एषा दिवः दुहिता प्रति अदर्शि । सुभगे उषः, अद्य इह व्युच्छ ।

८ व्युच्छन्ती, जीवं उदीरयन्ती, मृतं कंचन बोधयन्ती, शश्वतीनां आयतीनां प्रथमा उषाः परायतीनां पाथः अनु एति ।

९ उषः, यत् अग्निं समिधे चकर्थ, यत् सूर्यस्य चक्षसा वि आवः, यत् यक्ष्यमाणान् मानुषान् अजीगः, तत् देवेषु भद्रं अप्नः चकृषे ।

हरएक उषा–जो उषाएं पहिले प्रकाश फैलाकर चली गयी और जो उषाएं आगे प्रकाश फैलानेके लिये आनेवाली हैं–उपर्युक्त उषाओंका अनुकरण करती है। उनमेंसे हरएक उषा पहिले गयी हुई उषाके सम्बन्धमें दुःख मनाती है और अपना प्रकाश फैलाकर आगे आनेवाली उषाके साथ चली (मिल) जाती है। १० (२)

प्राचीन कालमें जिन लोगोंने प्रकाशित होती हुई उषाको देखा था वे (मानव) चले गये। यह उषा अब हमें दिखाई देती है। आगे आनेवाले लोग भी प्रकाशित होनेवाली उषाको देखकर चले जायेंगे। ११

दुष्ट लोगोंका नाश करनेवाली, सत्यकी रक्षा करनेवाली, सत्यको उत्पन्न करनेवाली, मधुर गतिसे सत्य बोलनेवाली, कल्याण करनेवाली, और देवोंको हवि पहुंचानेवाली, हे सबसे श्रेष्ठ उषादेवी, आप अपना प्रकाश यहां फैलाइये। १२

हे उषादेवी, प्राचीन कालसे आप प्रकाशित होती चली आई है। उस उदार देवीने अब भी अपना प्रकाश सब दूर फैलाया है। और इसके अनन्तर भी वह देवी अपना प्रकाश फैलावेगी। उषादेवी कभी बुड्ढी नहीं होती और उसको कभी मृत्यु नहीं आती। वह देवी अपने मार्गसे गमन करती है। १३

अपने अलंकारोंसे भूषित हुई उषादेवी द्युलोकके विस्तीर्ण प्रदेशमें प्रकाश फैलाती है। इस देवीने (जगत्का) काला देह सफेद किया है। अपने लाल रङ्गके अश्वोंके द्वारा वह सबको जगाती है और अपने सजे हुए रथमें बैठकर चली आती है। १४

---

१० याः व्यूषुः, याः च नूनं विउच्छान् कियति बत् समया आ भवाति? वावशाना पूर्वाः अनु कृपते, प्रदीध्याना अन्याभिः ओषं एति।

११ ये मर्त्यासः पूर्वतरां उषसं व्युच्छन्तीं अपश्यन् ते ईयुः। अस्माभिः कं प्रतिचक्ष्या अभूत् नु। ये अपरीषु पश्यान् ते यन्ति।

१२ उषः, यवयद्द्वेषाः, ऋतपाः, ऋतेजाः, सुम्नवरी, सूनृताः ईरयन्ती, सुमंगलीः, देववीतिं बिभ्रती श्रेष्ठतमा अद्य इह व्युच्छ।

१३ देवी उषाः पुरा शश्वत् वि उवास, अथो मघोनी अद्य इदं व्यावः, अथो उत्तरान् नून् अनु व्युच्छात्, अजरा अमृता स्वधाभिः चरति।

१४ अंजिभिः दिवः आतासु वि अद्यौत्। देवी कृष्णां निर्णिजं अप आवः। अरुणेभिः अश्वैः प्रबोधयन्ती उषाः सुयुजा रथेन आयाति।

आप (उषादेवी) अपने साथ शक्तिवर्धक वस्तुएं ले आती है। प्रज्ञावती उषादेवी अपना आश्चर्यकारक तेज प्रकट करती है। अबतक जितनी उषाएं चली गयी उनमें यह अन्तिम[15] उषा है; और आगे आनेवाली उषाओंमें यह पहिली उषा अपना प्रकाश फैलाती है। १५ (३)

चलो, उठो;[16] अपना चैतन्य देनेवाला प्राण आया है। अन्धःकार भाग गया। प्रकाश आ रहा है। उषाने सूर्यके लिये अपना मार्ग छोड़कर खुला कर दिया। जिस जगह सब लोगोंकी आयु बढ़ती है ऐसी जगह हम आकर पहुंचे हैं। १६

यह स्तोता—उपासक—उषाके लिये मधुर स्तुति बनाकर[17] देदीप्यमान् उषाकी प्रशंसा करता है। इसलिये हे उदार देवी, उपासकके लिये आज प्रकाशित हूजिये; हमें सन्तति दीजिये और हमारी आयु बढ़ाइये। १७

गोधन और अश्वोंका लाभ करानेवाली उषादेवी—जिसको सब पराक्रमी पुरुष पूज्य मानते हैं—हवि अर्पण करनेवाले मानवोंके लिये अच्छी तरह प्रकाशित होती है। सोमयाग करनेवाले उपासकोंकी जोरसे गाई हुई स्तुति वायुकी तरह उषाके पास शीघ्र जा पहुंचे। १८

हे उषा, देवोंकी माता, अदितिका बल, यज्ञकी ध्वजा और सबसे श्रेष्ठ देवता आप ही है। इसलिये आप प्रकाशित हूजिये। हमारे यज्ञकी प्रशंसा करके हमारी स्तुति सुनिये; और उज्वल कान्तिसे युक्त हूजिये। आपसे सब लोग प्रेम रखते हैं। जब तक हम इस जगत्में रहते हैं तबतक हमें नया जीवित अर्पण कीजिये। १९

---

१५ वार्याणि पोष्या आवहन्ती चेकिताना चित्रं केतुं कृणुते. ईयुषीणां शश्वतीनां उपमा[15] विभातीनां प्रथमा उषाः वि अश्वैत्।

१६ उत् ईर्ध्वं,[16]। नः असुः आ अगात्, तमः अप प्र अगात्, ज्योतिः आ एति। सूर्याय यातवे पथां अरैक्। यत्र आयुः प्रतिरन्ते अगन्म।

१७ विभातीः उषसः स्तवानः रेभः वह्निः वाचः स्यूमना[17] उत् इयर्ति। तत् मघोनि गृणते अद्य उच्छ, अस्मे प्रजावत् आयुः नि दिदीहि।

१८ गोमतः अश्वदाः सर्ववीराः याः उषसः दाशुषे मर्त्याय व्युच्छन्ति सोमसुत्वा सूनृतानां वायोः इव उदर्के ताः अश्नवत्।

१९ देवानां माता, अदितेः अनीकं, यज्ञस्य केतुः, बृहती वि भाहि। प्रशस्तिकृत् नः ब्रह्मणे वि उच्छ; विश्ववारे जने नः आ जनय।

पूजन और स्तवन करनेवाले उपासकोंके लिये कल्याणकारी उषादेवी आश्चर्यकारक बल ले आती है। मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान देकर उषाका अनुकरण करें। २० (४)

सूक्त ११४.

॥ ऋषि–आङ्गिरस कुत्स । देवता–रुद्र ॥

जो रुद्र केवल पराक्रमकी मूर्ति है, जिनका सिर जटा[1] भारसे मण्डित रहता है और सब पराक्रमी वीर जिनकी शरण लेते हैं ऐसे रुद्रदेवको हम स्तुति अर्पण करते हैं। जिस ग्राममें रुद्रको हवि अर्पण किया जाता है उसमें किसी मनुष्य (द्विपाद) और पशुओं (चतुष्पादों) को दुःख नहीं होता है; किन्तु उनकी उन्नति ही होती है। १

हे रुद्र, हमें सौख्य अर्पण कीजिये और हमें आनन्द दीजिये। सब शूर पुरुष आपकी शरण लेते हैं और आपहीको वन्दन करके आपहीकी सेवा करते हैं। जो आपके भक्त हैं केवल उन्हींका आप कल्याण करते हैं। हमारे पिता मनुजीने भी आपसे जिस कल्याणकी इच्छा की वह (कल्याण) उन्हें आपहीकी कृपासे[1] प्राप्त होगा। २

हे उदार[3] रुद्र, सब शूर पुरुष आपहीका आश्रय करते हैं। आपकी सेवा करनेसेही हमें आपकी कृपाका लाभ होगा। हमारे लिये और इधर[4] हमारे बालबच्चोंके लिये भी उत्तम वैभव ले आइये। हमारी सेवामें जितने लोग हैं वे सब आनन्दित रहें। हम आपको हवि अर्पण करते हैं। ३

बड़े जोशवाले, यज्ञकी ओर पहुंचानेवाले, कुटिलनीतिमें बड़े होशियार, ऐसे रुद्रको हम अपनी रक्षाके लिये बुलाते हैं। दूसरे देवोंका क्रोध जो हमारेपर है उसे, हे रुद्र, हटा दीजिये। आपहीकी कृपाकी हम इच्छा करते हैं। ४

---

२० ई जानाय शशमानाय यत् भद्रं चित्रं अप्नः[13] उषसः वहन्ति तत् नः मित्रः वरुणः ममहंतां।

१ तवसे कपर्दिने[1] क्षयद्वीराय रुद्राय इमाः मतीः प्र भरामहे, यथा द्विपदे चतुष्पदे शं असत्, अस्मिन् ग्रामे विश्वं पुष्टं अनातुरं।

२ रुद्र, नः मृळ उत नः मयः कृधि। क्षयद्वीराय ते नमसा विधेम। यत् च योः च शं पिता मनुः आयेजे तत्, रुद्र, तव प्रणीतिषु[1] अश्याम।

३ मीढ्वः[3] रुद्र, क्षयद्वीरस्य तव सुमतिं ते अश्याम। अस्माकं विशः इत् सुक्षयन् आचर[4]। अरिष्टवीराः ते हविः जुहुवाम।

४ त्वेषं वयं यज्ञसाधं वंकुं कविं रुद्रं अवसे नि ह्वयामहे। दैव्यं हेळः अस्मत् आरे अस्यतु। अस्य सुमतिं इत् वयं आ वृणीमहे।

देदीप्यमान, जटा धारण करनेवाले, ओजवाले और सुन्दर स्वरूप धारण करनेवाले स्वर्गके वराह (इन्द्र) को वन्दन करके हम बुलाते हैं। जिन औषधियोंको सबलोग चाहते हैं उन्हींको आप अपने वशमें रखते हैं और हमें निडर बनाकर तथा सौख्य अर्पण करके हमारी रक्षा कीजिये। ५ (५)

सबसे मधुर और सन्तोष देनेवाला स्तोत्र, मरुतोंका पिता जो रुद्र उनके लिये हम गाते हैं। इसलिये हे अमर देव, हमें अच्छे अच्छे और खाने योग्य पदार्थ अर्पण[१] कीजिये; और हमारे बच्चोंको सौख्य अर्पण कीजिये। ६

हे रुद्र, हम लोगोंमें जो बड़े[६] अथवा छोटे लोग हैं और जो बड़े हुए हैं और जो बड़े होनेवाले हैं उनमेंसे किसीको भी मत सताइये। हमारे पिता और माताओंका नाश मत कीजिये। हमारे शरीरको किसी प्रकारकी बाधा मत पहुंचाइये। ७

(आपकी कृपासे) हमारे बालबच्चोंको, सेवकोंको,[७] धेनुओंको और घोड़ोंको किसी प्रकारकी बाधा न पहुंचे। हे रुद्र, हमपर क्रोध मत कीजिये और हमारे पराक्रमी पुरुषोंका नाश मत कीजिये। हम आपको हवि अर्पण करते हैं और सदैव आपकी पूजा करते हैं। ८

जिस तरह गड़रिया अपने पशुओंको इकट्ठे करता है उस तरह मैं आपके सन्मानार्थ सब स्तोत्र एकत्रित करता हूं। हे मरुतोंके पिताजी, आप हमे उत्कृष्ट वैभव दीजिये। आपकी कृपासे हमें कल्याण और आनन्द प्राप्त होता है। इसलिये मैं आपसे कृपा करने की प्रार्थना करता हूं। ९

---

५ अरुषं कपर्दिनं त्वेष रूपं दिवः वराह नमसा नि ह्वयामहे। वार्याणि भेषजा हस्ते बिभ्रत् शर्म वर्म छर्दिः अस्मभ्यं यंसत्।

६ स्वादोः स्वादीयः वर्धनं इदं वचः मरुतां पित्रे रुद्राय उच्यते। अमृत नः मर्तभोजनं च रास्व[१], त्मने तोकाय तनयाय मृळ।

७ रुद्र, नः महान्तं उत नः अर्भकं, नः उक्षन्तं[१] उत नः उक्षितं, नः पितरं उत मातरं, नः प्रियाः तन्वः मा रिरिषः।

८ नः तोके तनये, नः आयौ,[१] नः गोषु, नः अश्वेषु मा रिरिषः। रुद्र, भामितः नः वीरान् मा वधीः हविष्मन्तः त्वा सदं इत् हवामहे।

९ पशुपाः इव ते स्तोमान् आ अकरं। मरुतां पितः अस्मे सुम्नं रास्व। ते सुमतिः भद्रा मृळयत्तमा हि, अध वयं ते अवः इत् वृणीमहे।

हे देव, धेनुओं और पुरुषोंका वध करनेवाला आपका शस्त्र दूरतक फेंक दीजिये। हे रुद्रदेव, आप सब वीर पुरुषोंको आश्रय देनेवाले हैं। आपके पास जो उत्कृष्ट वैभव है वह हमारे लिये रख छोड़िये। हे देव, हमें सौख्य अर्पण कीजिये और हमारी तरफदारी कीजिये। आप द्विबर्हा (बलवान) हैं; इसलिये हमारी रक्षा कीजिये। १०

रुद्रदेवके लिये हम नम्रताके साथ उनका स्तोत्र गाते हैं। वे हमारी रक्षा करें। इसलिये आप (रुद्र) मरुत्देवोंके साथ हमारी पुकार सुनिये। हमारी प्रार्थनापर मित्र, वरुण तथा अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक ध्यान देवें। ११ (६)

सूक्त ११५.

॥ ऋषि—अङ्गिरस कुत्स । देवता—सूर्य ॥

देवोंका आश्चर्यकारक मुख—मित्र, वरुण, अग्नियोंके, मानों नेत्रही जो सूर्य, उसका उदय होता है। सूर्यने—मानों जो स्थिर और अस्थिर वस्तुओंका केवल प्राणही है—द्युलोक, भूलोक और अन्तरिक्षको व्याप्त किया है। १

जिस तरह कोई युवा पुरुष युवा स्त्रीके पीछे पीछे दौड़ता है उसी तरह देदीप्यमान् सूर्य भी उषाके पीछे पीछे चलता है। जिस भूलोकमें उसके उपासक अपनी आयु व्यतीत करते हैं उसी कल्याणकारी जगह आप उनका कल्याण करनेके लिये आते हैं। २

सूर्यके अश्व कल्याणकारी, आश्चर्यकारक भिन्न भिन्न रंगके और आनन्ददायक होते हैं। सब लोग सूर्यको नमन करते हैं। आपने सब द्युलोकको व्याप्त किया है। आप द्युलोक और भूलोकको चारों ओर एक क्षणमें जा सकते हैं। ३

---

१० ते गोघ्नं उत पुरुषघ्नं आरे। क्षयद्वीर, ते सुम्नं अस्मे। अस्तु देव नः मृळ च अधि ब्रूहि च, अध द्विबर्हाः नः शर्म च यच्छ।

११ अवस्यवः अस्मै नमः अवोचाम। मरुत्वान् रुद्रः नः हवं शृणोतु।

१ मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः देवानां चित्रं अनीकं उत् अगात्। जगतः तस्थुषः च आत्मा सूर्यः द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं आ अप्राः।

२ यत्र देवयन्तः युगानि वितन्वते भद्रं प्रति भद्राय, मर्यः योषां न, सूर्यः रोचमानां देवीं उषसं पश्चात् अभि एति।

३ सूर्यस्य हरितः अश्वाः भद्राः, चित्राः, एतग्वाः, अनुमाद्यासः। नमस्यन्तः दिवः पृष्ठं आ अस्थुः। द्यावापृथिवी सद्यः परियन्ति।

जब मनुष्य काम[*] करता है तब सूर्य अपने किरण एक निमिषमें अपनी ओर खींच लेता है। इसीसे आपकी दिव्य शक्ति और बड़ापन लोगोंको विदित होता है। रात्रि और सूर्य दोनोंकी रहनेकी जगह केवल यही जगत् है। जब इस जगत्से दूर चले आनेके लिये सूर्य अपने अश्व जोतता है तब रात्रि अपना अन्धःकार सब (जगत्पर) फैलाती है। ४

मित्र और वरुणको अपना देदीप्यमान् स्वरूप दिखलानेके लिये सूर्य स्वर्गलोकके अन्तिम प्रदेशपर प्रकाशित होता है। एक समय उसके अश्व उसका देदीप्यमान् तेज प्रकट करते हैं और दूसरे समय काले रंगका तेज (पृथिवीपर) दिखाई देता है। ५

हे देव, आज सूर्यका उदय होते ही हमें पाप और निन्दासे मुक्त कीजिये। अग्नि, वरुण तथा आदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्युलोक हमारी प्रार्थनापर ध्यान देवें। ६ (७)(१६)

अनुवाक १७.

सूक्त ११६.

॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–अश्विन ॥

सत्यस्वरूप देव, छोटे आयुके विमद्की और उसकी स्त्रीको सैन्यकी नाई वेगवान् रथमें बिठलाकर ले आये। उन देवोंका सम्मान करनेके लिये मानों, मैं यह कुशासन तैयार कर रहा हूं। (क्यों कि) जिस तरह वायु मेघादिकको गिराता है उसी तरह मैं उन देवोंको कई स्तोत्र अर्पण कर रहा हूं। १

जो बड़े जोरसे उड़ते हैं और जो बड़े वेगवान् है ऐसे (आपके अश्व) अथवा देवोंके उत्साह देनेवाले शब्दही केवल आपको इस यज्ञमें ले आते हैं। (किन्तु) हे सत्यस्वरूप देव, आपका गधा भी (इतना सामर्थ्यवान् है कि)–जिस युद्धमें यम स्वयं लड़ता है उसमें। उन्होंने (आपके गधाने) कई शत्रुओंको जीत लिया। २

---

४ सूर्यस्य तत् देवत्वं तत् महित्वं कर्तोः[*] मध्या विततं स जभार यदा सधस्थात् हरितः अयुक्त इत् रात्री सिमस्मै वासः तनुते आत्।

५ मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे द्योः उपस्थे तत् रूपं सूर्यः कृणुते । अन्यत् हरितः अस्य अनन्तं रुशत् पाजः,[*] अन्यत् कृष्णं सं भरंति।

६ देवाः, अद्य सूर्यस्य उदिता अंहसः अवद्यात् निः पिपृत।

१ यौ अर्भगाय विमदाय सेनाजुवा रथेन जायां निऊहथुः, नासत्याभ्यां बर्हिः इव प्र वृंजे। वातः अभ्रिया इव स्तोमान् इयर्मि।

२ वीळुपत्मभिः आशुहेमभिः वा देवानां जूतिभिः शाशदाना। तत्, नासत्या, यमस्य प्रधने आजा रासभः सहस्रं जिगाय।

हे अश्विनीदेव, 'जिस तरह मृत मनुष्य अपने संसारिक वैभवको छोड़कर चला जाता है उसी तरह सचमुच तुग्रने भुज्यूको अथाह जलमें छोड़ दिया। किन्तु आप उसको प्राण अर्पण करनेवाली, आकाशमें उड़नेवाली और जलसे अलग रहनेवाली नौकामें बिठलाकर ले आये। ३

हे सत्यस्वरूप देव, तीन दिन और तीन रातसे अधिक समयतक दौड़नेवाले पक्षीकी तरह वेगवान् अश्वोंकी सहायतासे आपने भुज्यूको तीन रथोंमें बिठलाया। उन रथोंको छः घोड़े जोते हुए थे और उन्हें सौ पैये थे। उदकसे भरे हुए समुद्रके परे सूखे जमीनपर आप उसको ले गये। ४

हे अश्विनीदेव, आपने भुज्यूको नौकामें—जिसे चलानेके लिये सौ डाण्ड लगते हैं—बिठलाकर उसके घर पहुंचाया। यह आपका बड़ा पराक्रम है। इस बातको कोई नहीं जानता कि समुद्र उत्पन्न हुआ कहांसे, उसे किसका आधार है और उसको किस तरह वशमें रखना चाहिये। ५(८)

हे अश्विनीदेव, हमेशा शान्ति देनेवाला सफ़ेद रङ्गका अश्व आपने अघाश्वको दिया। इससे विदित होता है कि आप बड़े दानी हैं। आपका यह गुण स्तुति करने योग्य है। पेदूका उत्कृष्ट अश्व सन्मान करने योग्य है। ६

पज्रके कुलमें उत्पन्न हुए कक्षीवानने आपकी स्तुति की। स्तुति करते ही आपने उसको तीव्र बुद्धि अर्पण की। बरतनके[1] समान लम्बे आकारवाले सामर्थ्यवान् अश्वके खुरसे आपने सुराके सौ घड़े उत्पन्न किये। ७

---

३ अश्विना, कः चित् ममृवान् रयिं न तुग्रः ह भुज्युं उदमेघे अव अहाः। अन्तरिक्षप्रुद्भिः अपोदकाभिः नौभिः तं ऊहथुः।

४ नासत्या, तिस्रः क्षपः त्रिः अहा अतिव्रजद्भिः पतंगैः, त्रिभिः शतपद्भिः षडश्वैः रथैः, आर्द्रस्य समुद्रस्य पारे धन्वन् ऊहथुः।

५ अश्विनौ, शतारित्रां नावं आतस्थिवांसं भुज्युं यत् अस्तं ऊहथुः तत् अनारंभणे अनास्थाने अग्रभणे समुद्रे अवीरयेथां।

६ अश्विना, शश्वत् इत् स्वस्ति यं श्वेतं अश्वं अघाश्वाय ददथुः तत् वां महि दात्रं कीर्तेन्यं भूत्। पैद्वः अर्यः वाजी सदं इत् हव्यः।

७ नरा, पज्रियाय स्तुवते कक्षीवते युवं पुरंधिं अरदतं। वृष्णः अश्वस्य कारोतरात् शफात् सुरायाः शतं कुम्भान् असिंचतं।

ठण्डि हवा उत्पन्न करके आपने तापदायक अग्निको शान्त किया। [illegible] उत्तम सुरा पिलायी। इसी कारणसे उसमें (अत्रिमें) उत्साह देनेवाला नया बल उत्पन्न हुआ। [illegible] था तब आपने, हे अश्विन्, उसके बालबच्चोंकी रक्षा की और उसको गड्ढेसे बाहर निकाला। ८

हे सत्यस्वरूप अश्विनीदेव, आप उस कूएको ऊपर ले आये। उसका मूंह टेढ़ा रहनेके कारण आपने उसके तलको उलटा दिया। उसके अनन्तर आपने [illegible] प्यासे अनुचरोंके लिये पानीका प्रवाह बहा दिया; मानों, गोतमको हजारो प्रकारकी सम्पत्ति अर्पण की। ९

हे सत्यस्वरूप अश्विनीदेव, जिस तरह मनुष्य अपना कवच निकालता है उसी तरह आपने वृद्ध च्यवनको बुढ़ापनसे मुक्त किया। जब सब (लोगोंने) उसको त्याग दिया तब आपने उसकी आयु बढ़ायी और उसको कुमारियोंका पति बनाया। १० (६)

हे सत्यस्वरूप और शूर अश्विनीदेव, सचमुच आपकी कृपा बड़ी प्रशंसा योग्य सौख्य देनेवाली और हित करनेवाली है। उस कृपाके कारणही आप जैसे ज्ञानवान् देवोंने मानों, दृष्टिके परे हुए धन सञ्चयको वन्दनके लिये ढूंढकर बाहर निकाला। ११

हे शूर अश्विनीदेव, जिस तरह मेघगर्जनासे पर्जन्य वृष्टि होनेका लक्षण दिखाई देता है उसी तरह धनका लाभ होनेके लिये मैं आपके पराक्रमकी स्तुति करता हूं। आपकी कृपाके कारण ही [illegible] अश्वका शिर धारण करके आपके साथ मधुर सम्भाषण किया। १२

---

८ हिमेन घ्रसं अग्निं अवारयेथां। पितुमतीं ऊर्जं अस्मै अधत्तं। अश्विना, ऋबीसे अवनीतं अत्रिं सर्वगण स्वस्ति उत् निन्यथुः।

९ नासत्या, अवतं परा अनुदेयां, जिह्मबारं उच्चाबुध्नं चक्रथुः। गोतमस्य तृष्यते पायनाय, आपः, सहस्राय राये, क्षरन्।

१० उत नासत्या, जुजुरुषः च्यवानात् द्रापिं इव वर्मि प्र अमुंचतं। दस्रा, जहितस्य आयुः प्र अतिरतं कनीनां पतिं इत् अकृणुतं।

११ नासत्या नरा, तत् वां वरूथ्यं शंस्यं राध्यं अभिष्टिमत् च यत् विद्वांसा दर्शतात् अपगूळ्हं निधिं इव वन्दनाय उत् ऊपथुः।

१२ नरा, तन्यतुः वृष्टिं नसनये वां तत् उग्रं दंसः आविः कृणोमि, यत् आथर्वणः दध्यङ् ह अश्वस्य शीर्ष्णा वां ईं मधु उवाच।

हे सत्यस्वरूप अश्विनीदेव जब आप लम्बे लम्बे मार्गोंपर चलते थे तब वध्रिमतिने आपकी स्तुति की और आपको हवि अर्पण किया । आप बड़े बलवान् और सबकी रक्षा करनेवाले हैं । वध्रिमतिकी स्तुतिको आज्ञाही समझकर आपने उस स्तुतिको सुना और उसको हिरण्यहस्त नामका पुत्र प्रदान किया । १३

हे सत्यस्वरूप देव, जब बाज पक्षी बिलकुल भेडियाके मुहके पास था तब आपने उसको छुड़ा लिया । हे भक्तोंकी रक्षा करनेवाले अश्विनीदेव, जब विद्वान् लोक आपकी कृपाकी इच्छा करते हैं तब आप उनको देखनेका सामर्थ्य देते हैं । १४

जिस तरह पक्षीका पंख टूट जाता है उसी तरह खेलके युद्धमें रातके[१] समय (विश्पलाका) पैर टूट गया । किन्तु लड़ाई शुरू होतेही (युद्ध क्षेत्रमें चलनेके लिये) आपने उसको शिघ्रही लोहेका पैर जुडा दिया । १५ (१०)

जब ऋज्राश्वने भेडियोंको (खिलानेके) लिये सौ बकरियां काट डाली तब उसके पिताने उसको अन्धा बनाया । (किन्तु) शत्रुओंका नाश करनेवाले, हे सत्यस्वरूप वैद्यराज, आपने देखनेके लिये कृपा करके फिर उसको जैसेके तैसे नेत्र प्रदान किये । १६

आपने वेगवान् अश्वोंके द्वारा (शर्यत) जीतनेवाली सूर्यकी लडकी (पुत्री) आपके रथको शर्यतका[३] ठिकाना समझकर आपके रथपर चढ गयी । हे सत्यस्वरूप देव, इस तरह उस वैभवसे आपकी शोभा बढ गयी । और सब देवोंने इस बातपर हार्दिक सहानुभूति दिखलायी । १७

---

१३ नासत्या, वां महे यामन् पुरंधिः करा पुरुभुजा अजोहवीत् वध्रिमत्याः तत् शासुः इव श्रुतं हिरण्यहस्तं, अश्विना, अदत्तं ।

१४ नरा नासत्या, वृकस्य आस्नः अभीके वर्तिकां युवं अमुमुक्तं । उतो, पुरुभुजा, युवं ह कृपमाणं कविं विचक्षे अकृणुतं ।

१५ वेः इव पर्णं, खेलस्य आजा, परितक्म्यायां[१] चरित्रं अच्छेदि । सद्यः हिते धनं आयसीं जंघां विश्पलायै प्रति अधत्तं ।

१६ शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानं तं ऋज्राश्वं पिता अंधं चकार । नासत्या दस्रा भिषजौ, विचक्षे अनर्वन् तस्मै अक्षी आ अधत्तं ।

१७ अर्वता जयन्ती सूर्यस्य दुहिता वां रथं कार्ष्मं[३] इव अतिष्ठत् । विश्वे देवाः हृद्भिः अनु अमन्यन्त । नासत्या, श्रिया सं सचेथे ।

हे अश्विनीदेव, जब आप दिवोदास और भरद्वाजके लिये उनके घरकी ओर शीघ्रतासे[४] चले गये तब जिस रथमें आप बैठे थे उसमें बहुत धन भरा हुआ था। उस रथको एक बैल और एक नक्र (मगर) जोते हुए थे। १८

दिनमें तीन समय आपको हवि अर्पण करनेवाले, जन्हुके वंशमें उत्पन्न होनेवाले पुरुषोंकी ओर, हे सत्यस्वरूप देव, आप दोनों अपने बालबचों, वीरता वैभव और सामर्थ्यवान् आयुके साथ एक सम्मतिसे चले गये थे। १९

हे बुड्ढे न होनेवाले सत्यस्वरूप देव, जब जाहुष चारों ओरसे शत्रुओंसे घिरा हुआ था तब आप रजोलोकमेंसे सरल मार्गसे उसको ले गये। पत्थरको तोडनेवाले रथमें बैठकर आपने पहाड़मेंसे मार्ग निकाला। २० (११)

हे अश्विनीदेव, हजारों प्रकारकी सम्पत्तिका लाभ करानेके लिये आपने वशको एक दिनमें युद्ध करनेका सामर्थ्य प्रदान किया। हे सामर्थ्यवान् देव, आपने इन्द्रकी सहायता लेकर पृथुश्रवके दुष्ट शत्रुओंका नाश किया। २१

ऋचत्कका पुत्र-शरकी प्यास बुझानेके लिये आपने गहिरे कूएसे पानी ऊपर निकाला। थके हुए शयूके लिये ऊसर गौमें भी आपने भरपूर दूध उत्पन्न किया। २२

---

१८ अश्विना, यत् दिवोदासाय भरद्वाजाय द्रवन्ता' वर्तिः अयातं, सचनः रथः रेवत् उवाह। वृषभः च शिंशुमारः च युक्ता।

१९ अन्हः त्रिः भागं दधतीं जन्हावीं सुक्षत्रं स्वपत्यं रयिं सुवीर्यं आयुः आ वहन्ता वाजैः समनसा उप अयातं।

२० अजरयू नासत्या, विश्वतः परिविष्टं जाहुषं सुगेभिः रजोभिः नक्तं ऊहथुः। वि भिन्दुना रथेन पर्वतान् वि अयातं।

२१ अश्विना, सहस्रा सनये एकस्याः वस्तोः वशं रणाय आवतं। वृषणौ, इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसः दुच्छुनाः अरातीः निः अहतं।

२२ आर्चत्कस्य शरस्य चित् पातवे नीचात् अवतात् वाः ऊर्ध्वा चक्रथुः। शयवे' शयवे चित् शचीभिः स्तर्यं गां पिप्यथुः।

हे सत्यस्वरूप देव, कृष्णके कुलमें उत्पन्न हुए और सीधे मार्गसे चलनेवाले विश्वकने आपकी स्तुति की और आपकी सहायताकी इच्छा की। इसलिये जिस तरह खोया हुआ पशु स्वामीको मिल जाता है उसी तरह, आपने उसके पुत्र (विष्णापू)को ढूंढ़कर निकाला, उसे उसका पिता विश्वकको मिलाया और उसे उसके सुपुर्द किया। २३

जिस तरह चमसोंसे सोमरस बाहर निकालते हैं उसी तरह आपने दस रात और नौ दिनतक पानीके अन्दर बन्धे हुए, थके हुए, सर्दीसे कांपते हुए, और जलमें दुःख पाते हुए रेभको पानीके बाहर निकाल दिया। २४

हे अश्विनीदेव, मैंने आपके बड़े बड़े कामोंका यहां वर्णन किया है। इसलिये आपकी कृपासे मुझे धेनु और पराक्रमी पुरुष प्राप्त होवें। मुझे इस घर और वैभवका स्वामी बनाइये। आपकी कृपासे मेरी दृष्टि अच्छी रहे और मेरी आयु बढ़े। जिस तरह कोई मनुष्य आनन्दसे मन्दिरमें घुसता है उसी तरह बुढ़ापेमें आनन्दसे मेरे दिन व्यतीत हों। २५ (१२)

सूक्त ११७.

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-अश्विन ॥

हे अश्विनीदेव, मधुर सोमरसका पान करके आपको आनन्द होनेके लिये मैं आपका पुराना सेवक आपसे प्रार्थना करता हूं। आपके लिये हवि हमने पवित्र दर्भोंपर रखा है। हमारी स्तुति भी आपकी ओर पहुंच गयी है। इसलिये अनाजका संग्रह करके नाना प्रकारके सामर्थ्योंके साथ आप इधर आइये। १

हे अश्विनीदेव, आपका चपल रथ मनसे भी वेगवान् है। उसको सुन्दर अश्व जोते हुए हैं। वह सब लोगोंकी ओर आता है। जिस रथमें बैठकर आप सदाचारी पुरुषोंके घर च जाते हैं उसी रथमें विराजमान् होकर, हे वीर पुरुष, आप हमारी ओर आइये। २

---

२३ नासत्या, ऋजूयते अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय विश्वकाय शचीभिः, नष्टं पशु न, विष्णाप्वं दर्शनाय ददथुः।

२४ दश रात्रीः नव द्यून् अशिवेन अप्सु अन्तः अवनद्धं श्नथितं विप्रुतं उदनि प्रवृक्तं रेभं स्रुवेण सोमं इव उत् निन्यथुः।

२५ अश्विना, वां दंसांसि प्र अवोचं। सुगवः सुवीरः अस्य पतिः स्यां। उत पश्यन् दीर्घं आयुः अश्नुवन् जरिमाणं अस्तं इव जगन्यां।

१ अश्विना, मध्वः सोमस्य मदाय प्रत्नः होता वां विवासते। रातिः बर्हिष्मती, गीः विश्रिता; नासत्या इषा वाजैः उप यातं।

२ अश्विना, यः वां मनसः जवीयान् स्वश्वः रथः विशः आजिगाति, येन सुकृतः दुरोणं गच्छथः, तेन, नरा, अस्मभ्यं वर्तिः यातं।

हे सामर्थ्यवान् वीर पुरुष, हमारे मनका झुकाव (आपकी कृपासे) हमारी उन्नतिकी ओर होवे और दुष्ट राक्षसोंका कपटजाल निष्फल होवे। पांच प्रकारके लोगोंको प्रिय होनेवाले अत्रिऋषिको उनके मनुष्योंके साथ भयंकर गुहामेंसे आपने बाहर निकाला। ३

रेभऋषि जलमें डूब गया था। दुष्ट (लोगोंके) नीच कर्मोंके कारण अश्वकी तरह रेभ ऋषि जलमें अदृश्य हुआ था। हे सामर्थ्यवान् वीर, आपने आश्चर्यकारक काम करके उसकी रक्षा की। आपका काम पुराना होनेपर भी कभी पुराना नहीं समझा जाता। ४

(शत्रुओंका) नाश करनेवाले हे अश्विनीदेव, हीन अवस्थाको पहुंचे हुए वन्दनको कल्याण करनेके लिये अन्धःकारमें छुपे हुए सूर्यके समान और सुन्दर द्रव्यसञ्चयको अमीनसे खोदे हुए सुवर्णके समान, संकटसे आपने बाहर निकाला। ५ (१३)

हे शूर सत्यस्वरूप देव, आपका काम ऐसा था कि जिसके कारण पज्रकुलमें जन्म पाये हुए कक्षीवानकी ओरसे आपकी स्तुति हुई। जब आप सञ्चार करते थे तब आपने एक सामर्थ्यवान् अश्वके खुरसे लोगोंके कल्याणके लिये मधुर रसके सौ घड़े उत्पन्न किये। ६

कृष्णवंशमें उत्पन्न हुए विश्वकने आपकी स्तुति की। इसलिये आपने (उसके पुत्रको) विष्णापुको ढूंढ़ निकाला। हे अश्विनीदेव, पिताके घरमें रहकर बुढ़ी हुई घोषाको आपने पतिका लाभ करा दिया। ७

---

३ वृषणा नरा, अनुपूर्वं चोदयन्ता, अशिवस्य दस्योः मायाः मिनन्ता पांचजन्यं अत्रिं ऋषिं गणेन अंहसः ऋबीसात् मुचथः।

४ वृषणा नरा अश्विना, दुरेवैः अश्वं न अप्सु गूह्ळं विसृतं तं रेभं ऋषिं दसोभिः रिणीथः वां पूर्व्या कृतानि न जूर्यन्ति।

५ दस्रा अश्विना, निर्ऋतेः उपस्थे न सुषुप्वांसं, सूर्यं न तमसि क्षियन्तं दर्शतं रुक्मं न वन्दनाय शुभे उत् ऊपथुः।

६ नरा नासत्या, पज्रियेण कक्षीवता शंस्यं तत् वां, परिज्मन्, वाजिनः अश्वस्य शफात् जनाय मधूनां शतं कुम्भान् असिंचतं।

७ नरा, स्तुवते कृष्णियाय विश्वकाय विष्णाप्वं ददथुः पितृषदे दुरोणे जूर्यन्त्यै घोषायै चित् पतिं अदत्तं।

हे अश्विनीदेव, आपने श्यावको रुशति नामकी भार्या दिलाई और कण्वको गृह-सौख्य अर्पण किया। हे सामर्थ्यवान्देव, आपने वृषद्के पुत्रको कान दिये। वह आपका कृत्य प्रशंसा करनेयोग्य है। ८

नाना प्रकारके स्वरूप धारण करनेवाले हे अश्विनीदेव, आपने जो अश्व पेदुको अर्पण किया था वह सैकड़ों प्रकारका वैभव ला सकता था। वह बड़ा बलवान् था; उसकी बराबरी करनेवाला कोई न था; वह सर्पोंको मार डालनेवाला था; उसकी कीर्ति सबदूर फैली हुई थी; और वह संकटमें सबोंकी रक्षा करनेयोग्य था। ९

हे अत्यन्त उदार देव, यही आपका कीर्तिमान् पराक्रम है जिसके कारण द्युलोक और भूलोकमें आपकी स्तुति गायी जाती है; यही आपका निवास-स्थान है। हे अश्विनीदेव, पज्र आपकी प्रार्थना करके आपको बुलाते हैं। इसलिये बड़ा अन्नसंग्रह आप इधर ले आइये और विद्वान् स्तुति-करनेवालोंको सामर्थ्य अर्पण कीजिये। १० (१४)

सब विश्वका पोषण करनेवाले हे सत्यस्वरूप अश्विनीदेव, जब मानने पुत्रका लाभ होनेके लिये आपकी स्तुति की उस समय आपने उस विद्वान् उपासकको सामर्थ्य अर्पण किया अगस्त्यके गाये हुए स्तोत्रोंसे आप सन्तुष्ट हुए; और आपने विश्पलाको संकटसे बचा लिया। ११

हे अश्विनीदेव, हे सामर्थ्यवान् द्युलोकपुत्र, शयूकी रक्षा करनेवाले आप काव्यकी सुन्दर स्तुतिका स्वीकार करनेके लिये बाहर चले गये थे। जिस तरह सुवर्णका घड़ा जमीनसे खोदकर बाहर ले आते हैं उसी तरह छुपा हुआ धन दसवें दिन आप बाहर ले आये। १२

---

८ अश्विना, युवं श्यावाय रुशतीं अदत्तं। कण्वाय क्षोमस्य मह:। वृषणा तत् वा कृतं प्रवाच्यं यत् नार्षदाय श्रव: अध्यधत्तं।

९ पुरु वर्पांसि दधाना अश्विना, पेदवे आशुं सहस्रसां वाजिनं अप्रतीतं अहिहनं श्रवस्यं तरुत्रं अश्वं नि ऊहथु:।

१० सुदानू, एतानि वां श्रवस्या रोदस्यो: ब्रह्म आंगूषं सदनं अश्विना यत् वां पज्रास: हवंते इषा च यात विदुषे च वाज।

११ भुरणा नासत्या अश्विना, मानेन सूनो: गृणाना विप्राय वाजं रदन्ता, अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना, विश्पलां सं अरिणीत।

१२ अश्विना, दिव: वृषणा नपाता, शयुत्रा, काव्यस्य सुष्टुतिं कुह यान्ता; हिरण्यस्य इव कलशं दशमे अहन् निखातं उत् ऊपथु:।

हे अश्विनीदेव, बुड्ढे हुए च्यवनको अपने अपने सामर्थ्यसे फिर जवान बनाया। हे सत्यस्वरूपदेव, सूर्यकी कन्याने अपने वैभवके साथ बैठनेके लिये आपहीके रथको पसन्द किया। १३

हे तरुण देव, अपने प्राचीन रीतिके अनुसार आपने तुग्रके विषयमें बडी दया (सहानुभूति) दिखलाई। पक्षीकी तरह चंचल अश्वकी सहायतासे आपने भुज्यूको समुद्रके—जिसमें बडी बडी लहरें उछलती थीं—बाहर निकाला। १४

हे अश्विनीदेव, तुग्रके पुत्रने आपकी पूजा की। समुद्रपर कामके लिये जब वह भेजा गया था तब वह निडर होकर चला गया। हे सामर्थ्यवान् देव, अच्छी तरह सजे हुए और मनकी नाई वेगवान रथमें बिठलाकर उसको अच्छी तरह आप बाहर ले आये। १५(१५)

हे अश्विनीदेव, जब आपने भेड़ियाके मुखसे लवा पक्षीकी रक्षा की तब उसने आपकी पूजा की। अपने विजयी (रथमें) बैठकर आपने पहाड़की चोटीको तोड़ डाला, और जहर पिला कर विष्वापूके पुत्रका नाश कर डाला। १६

ऋजाश्वने भेड़ियाको खिलानेके लिये सौ बकरियां ला दी। उस कारणसे उसके दुष्ट पिताने उसको अन्धा बनाया। उसपर कृपा करके आपने उसको नेत्र अर्पण किये; और देखनेके लिये नेत्रमें प्रकाश उत्पन्न किया। १७

---

१३ अश्विना, जरन्तं च्यवानं युवं शचीभिः पुनः युवानं चक्रथुः। नासत्या, सूर्यस्य दुहिता श्रिया सह युवोः रथं अवृणीत।

१४ युवाना, पूर्व्येभिः एवैः युवं तुग्राय पुनर्मन्यौ अभवतं। विभिः ऋज्रेभिः अश्वैः अर्णसः समुद्रात् भुज्युं नि ऊहथुः।

१५ अश्विना, तौग्र्यः वां अजोहवीत् समुद्रं प्रऊहळः अव्यथिः जगन्वान्। वृषणा, सुयुजा मनोजवसा रथेन तं स्वस्ति निः ऊहथुः।

१६ अश्विना, यत् वृकस्य आस्नः सीं अमुंचतं वर्तिका वां अजोहवीत्। जयुषा अद्रेः सानु वि ययथुः। विश्वाचः जातं विषेण अहत।

१७ अश्विनौ, वृक्ये शतं मेषान् ममहानं अशिवेन पित्रा तमः प्रणीतं ऋज्राश्वे अक्षी आ अधत्तं। अन्धाय विचक्षे ज्योतिः चक्रथुः।

हे अश्विनीदेव, उस भेड़ियाने अन्धे हुए ऋज्राश्वके लिये आप जैसे सामर्थ्यवान् और पराक्रमी देवसे बड़ी नम्रतासे[1] प्रार्थना की। मुझे खानेके लिये एकसौ एक बकरियाँ देकर युवा पतिकी नाईं आपने मुझपर बड़ी कृपा की। १८

हे अश्विनीदेव, भक्तोंकी रक्षा करनेवाला आपकासामर्थ्य बड़ा सुख देनेवाला है। हे धैर्यवान् देव, लङ्गड़े[3] मनुष्यको भी आप अच्छा करते हैं। इसीलिये पुरन्धीने आपको फिर बुलाया। हे पराक्रमी देव, आप अपने सामर्थ्यके साथ उसकी रक्षा के लिये चले गये। १९

शत्रुओंका नाश करनेवाले हे अश्विनीदेव, शयुके लिये दूध[4] न देनेवाली और दुबली गौमें यथेष्ट दूध आपने उत्पन्न किया। आपने अपने सामर्थ्यसे पुरुमित्रकी कन्याको विमदकी पत्नि करा दी। २० (१६)

शत्रुका संहार करनेवाले हे अश्विनीदेव, जमीनमें हलसे अनाजका बीज बोकर मानव-जातिके लिये अन्नका संग्रह आप उत्पन्न करते हैं। अपने वज्रसे आप दुष्ट लोगोंका नाश करते हैं। भक्तिवान् लोगोंके लिये आपने बहुत प्रकाश प्रकट किया। २१

हे अश्विनीदेव, अथर्वके पुत्र दध्यङ्को आपने अश्वका सिर लगाया। अनन्तर, सदाचारी पुरुषने आपको एक ऐसी मीठी और गूढ़ बात बतलाई, जो केवल त्वष्टा देवको मालुम थी और जिससे आप बड़े प्रसन्न हुए। २२

---

१८ सा वृकीः अन्धाय शुनं भरं अह्वयत्—"अश्विना, वृषणा, नरा, कनीनः इव जारः ऋजाश्वः शतं एक च मेषान् चक्षदानः"।

१९ अश्विना, वां ऊतिः मही मयोभूः, उत, धिष्ण्या, स्रामं सं रिणीथः अथ युवां इत् पुरंधिः युवां इत अह्वयत वृषणौ अवोभिः सीं अगच्छतं।

२० दस्रा अश्विना, शयवे अधेनुं, स्तर्यं, विषक्तां गां अपिन्वतं। युवं शचीभिः पुरुमित्रस्य योषां विमदाय जायां नि ऊहथुः।

२१ दस्रा अश्विना, युवं वृकेण वपन्ता, मनुषाय इषं दुहन्ता, बकुरेण दस्यु अभि धमन्ता आर्याय उरु ज्योतिः चक्रथुः।

२२ दस्रा अश्विना, आथर्वणाय दधीचे अश्व्यं शिरः प्रति ऐरयत। यत् वां अपिकक्ष्यं यत् त्वाष्ट्रं, ऋतयन् सः वां मधु प्र वोचत्।

हे ज्ञानवान् देव, आपकी कृपाकी मैं इच्छा करता हूं । हे अश्विनीदेव, मेरी सब स्तुतियोंका आप स्वीकार कीजिये । हे सत्यस्वरूप देव, हमें कीर्तिवान् सन्तान और वैभव अर्पण कीजिये । २३

हे उदार और पराक्रमी अश्विनीदेव, आपने वध्रिमतिको हिरण्यहस्त नामका एक पुत्र, अर्पण किया । हे दान करनेवाले अश्विनीदेव, जब श्यावका शरीर तीन जगह टूटा हुआ था तब आपने उसमें चैतन्य उत्पन्न किया । २४

हे अश्विनीदेव, कई मनुष्योंने आपके पुराने बड़े बड़े कामोंका वर्णन किया है । हे सामर्थ्यवान् देव, हम अपने कुटुम्बके मनुष्योंके साथ आपकी स्तुति गाते हैं और अपने यज्ञकी कीर्ति बढ़ाते हैं । २५ (१७)

सूक्त ११८.

॥ ऋषि—कक्षीवान् । देवता-अश्विन ॥

हे बलवान् अश्विनीदेव, आपके रथकी गति मनसेभी अधिक है । उसके तीन पैये होते हैं । उसका वेग वायुसे भी शीघ्र है । आपहीके तेजसे आपका रथ शोभायमान दिखाई देता है । उसको बाज पक्षी जोता हुआ है । इसीके कारण वह आकाशमें उड़ता हुआ दिखाई देता है । वह कल्याण करनेवाला रथ हमारी ओर आवें । १

हे अश्विनीदेव, आपके रथके तीन पैये होते हैं । उसका आकार त्रिकोण है । ऐसे सुन्दर रथमें बैठकर आप हमारी ओर आइये । आपकी कृपासे, हमारी गौ यथेष्ट दूध देवें । हमारे अश्व शीघ्र चलनेवाले होवें; हमारे (कुलमें) वीर पुरुष उत्पन्न होवे; और उनकी उन्नति होवे । २

---

२३ कवी, सदा वां सुमतिं आ चके अश्विना, मे विश्वाः धियः प्र अवतं । नासत्या, बृहन्त अपत्यसाचं श्रुत्यं रयिं अस्मे रराथां ।

२४ सुदानू नरा अश्विना, रराणा वध्रिमत्याः हिरण्यहस्तं पुत्रं अदत्तं । अश्विना, त्रिधा ह विकस्तं श्यावं जीवसे उत् ऐरयतं ।

२५ अश्विना, एतानि वां पूर्व्याणि वीर्याणि आयवः अवोचन् । वृषणा, युवभ्यां ब्रह्म कृण्वन्तः सुवीरासः विदथं आ वदेम ।

१ वृषणा अश्विना, यः वां रथः मनसः जवीयान्, त्रिबन्धुरः, वातरंहाः, स्ववान्, सुमृळीकः, श्येनपत्वा अर्वाक् यातु ।

२ अश्विना, त्रिवन्धुरेण, त्रिवृता, त्रिचक्रेण सुवृता रथेन अर्वाक् आ यातं । नः गाः पिन्वतं, अर्वतः जिन्वतं, अस्मे वीरं वर्धयत ।

(शत्रुओंका) नाश करनेवाले हे अश्विनीदेव, सीधे[1] मार्गसे चलनेवाले सुन्दर रथमें बैठकर, आप सोमपत्थरका सुन्दर आवाज़ सुनिये। हे अश्विनीदेव, प्राचीन कालमें विद्वान् लोक, आपको 'दुःख मिटानेके लिये शीघ्र भागनेवाले देव' ऐसे क्यों कहते थे ? ३

हे अश्विनीदेव, आपके रथको जोते हुए, और आकाशमें शीघ्रतासे उड़नेवाले चञ्चल श्येन पक्षी आपको हमारी ओर ले आवें। हे सत्यस्वरूप देव, आकाशके गीधकी नाईं वे हमारी रक्षा करते हैं। (हमें) खानेके लिये वे अनाज ले आते हैं। ४

हे शूर पुरुष, वह प्यारी[2] स्त्री, सूर्यकी कन्या, आपके रथपर चढ़ती है। वे सुन्दर अश्व, (आकाशमें) उड़नेवाले वे सुन्दर[3] और देदीप्यमान् पक्षी, आपको हमारी ओर ले आवें।५(१८)

हे शत्रुओंका नाश करनेवाले सामर्थ्यवान् देव, आप अपने अद्भुत कृत्योंसे वन्दनको ऊपर ले आये और अपने बलसे रेभको ऊपर उठाया। तुग्रके पुत्रको आप समुद्रके परे ले गये और च्यवनको फिर युवा बनाया। ६

हे अश्विनीदेव, सत्य स्थलमें चले गये अत्रिको आपने सामर्थ्य और सहायता अर्पण की। अन्धे[4] बने हुए अत्रिकी सुन्दर स्तुतिका स्वीकार करके आपने उसको नेत्र अर्पण किये। ७

---

३ दस्रौ अश्विना, प्रवद्यामना[1] सुवृता रथेन अद्रेः इमं श्लोकं शृणुतं। पुराजाः विप्रासः वां अवतिं प्रति गमिष्ठाः किं अग आहुः ?

४ नासत्या अश्विना, दिव्यासः गृध्राः न ये अप्तुरः प्रयः अभि वहन्ति, रथे युक्तासः पतत्राः आशवः श्येनासः वां आवहन्तु।

५ नरा, जुष्टी[2] युवतिः सूर्यस्य दुहिता अत्र वां रथं आ तिष्ठत्। वां वपुषः[3] अश्वाः, अरुषाः पतंगाः वयः, वां अभीके परि वहन्तु।

६ दस्रा वृषणा, दंसनाभिः वन्दनं उत् ऐरयतं, शचीभिः रेभं उत् (ऐरयतं)। तौग्र्यं समुद्रात् निः पारयथः, च्यवानं पुनः युवानं चक्रथुः।

७ अश्विनौ, नर्म अवनीताय अत्रये ऊर्जं ओमानं युवं अधत्तं। सुष्टुतिं जुजुषाणा अपिरिप्ताय[4] कण्वाय युवं चक्षुः प्रति अधत्तं।

हे अश्विनौदेव, जब पुराने शयूने आपकी स्तुति[७] की तब आपने (उसकी) धेनुमें पूरा पूरा दूध भरा दिया। ८

हे अश्विनौदेव, आपने पेदूको एक ऐसा अश्व अर्पण किया जिसका रंग सफेद था। इन्द्र उसको हांकता था। वह अश्व सांपोंका नाश कर सकता था। अच्छे वर्तावके लोगोंको देख कर वह (अश्व) हिनहिनाने लगता था। वह अश्व हमारे शत्रुओंका[६] नाश करनेवाला था। वह (अश्व) उग्र दिखता था। वह (अश्व) सैकडों प्रकारकी सम्पत्ति जीतकर ले आता था। वह सामर्थ्यवान् था और उसका शरीर हृष्ट पुष्ट था। ९

हे अश्विनौदेव, आपका जन्म उच्च कुलमें हुआ है। आपकी प्रार्थना करके हम आपको हमारी रक्षा करनेके लिये बुलाते हैं। हमारी स्तुतियोंका स्वीकार कीजिये और धनसे भरे हुए रथमें बैठकर हमारे कल्याणके लिये आप हमारी ओर आइये। १०

हे सत्यस्वरूप देव, हमारे श्येन पक्षीको नया वेग दिखाकर आप दोनों सम्मत होकर हमारी ओर आइये। हे अश्विनौदेव, जब यह पुरानी उषा अपना प्रकाश प्रकट करती है तब मैं आपकी पूजा करके आपको हवि अर्पण करता हूं। ११ (१६)

---

८ अश्विना, नाधिताय[७] पूर्व्याय शयवे युवं धेनुं अपिन्वतं। वर्तिकां अंहसः निः अमुचत, विश्पलायाः जंघां प्रति अधत्तं।

९ अश्विना, युवं पेदवे श्वेतं, इन्द्रजूतं, अहिहनं, अर्यः ओहत्रं,[६] अभिभूतिं, उग्रं, सहस्रसां, वृषणं, वीड्वंगं अश्वं अदत्तं।

१० सुजाता नरा अश्विना, नाधमानाः ता वां अवसे सु हवामहे। नः गिरः जुजुषाणा वसुमता रथेन सुविताय उप आ यातं।

११ नासत्या अश्विना, श्येनस्य नूतनेन जवसा सजोषाः अस्मे आ यातं। शश्वत्तमायाः उषसः व्युष्टौ रातहव्यः वां हवे हि।

सूक्त ११९.

ऋषि–कक्षीवान् । देवता–अश्विन ॥

हमारी आयु बढ़ानेके लिये मैं आपके रथको इस हविकी ओर बुलाता हूं। इस रथमें कई[1] अच्छी अच्छी वस्तुएं भरी हुई हैं । इस रथका वेग मनके समान है। उसके अश्व बड़े चञ्चल हैं। वह यजन करनेयोग्य है। उसपर हजारों झण्डे लगे हुए हैं। वह रथ अच्छी अच्छी लकड़ीयोंका[2] बना हुआ है। उसमें सैकड़ों प्रकारका धन भरा हुआ है। उसने बड़ी नामवारी पैदा की है। उससे भक्त लोगोंकी रक्षा होती है। १

जब आपका रथ चलता है तब मेरी बुद्धि चौक उठती है। इतनाही नहीं, किन्तु आपकी स्तुति[3] करनेके लिये मानों, दश दिशाएं इकट्ठी हो जाती हैं। गरम[4] हविको (जहांतक हो वहांतक) मैं मधुर बनाता हूं। भक्तगणोंकी रक्षा करनेवाला आपका सामर्थ्य मेरी ओर आवें। हे अश्विन, ऊर्जानी आपके रथपर आरूढ हुई है। २

जिस समय बड़े बड़े वीर युद्धमें जयकी इच्छासे[5] जोरसे[6] लड़ते हैं तब आपका रथ आकाशसे नीचे उतरता[7] हुआ दिखाई पड़ता है। हे अश्विन्, उस समय आप अपने चतुर भक्तोंको वैभव अर्पण करते हैं। ३

पक्षीयोंके समान चञ्चल अश्वोंपर आरूढ होकर आप डूबनेवाले[8] भुज्यूकी ओर दौड़े। उन्हीं अश्वोंके द्वारा आपने उस (भुज्यू) को उसकी मातापितरोंके पास पहुंचाया। आपके अश्व रथको स्वयम् जोत लेते हैं। हे सामर्थ्यवान् देव, भुज्यूका स्थान दूर[9] होनेपर भी आप वहांपर पहुंचे। यह बात सबको विदित ही है कि आपने दिवोदासकी रक्षा अच्छी तरहसे की। ४

---

१ जीवसे वां पुरुमायं[1], मनोजुवं, जीराश्वं, यज्ञियं, सहस्रकेतुं, वनिनं[2], शतद्वसुं, श्रुष्टीवानं, वरिवोधां रथं प्रयः अभि आ हुवे ।

२ अस्य प्रयामनि धीतिः ऊर्ध्वा प्रति अधायि; शस्मन्[3] दिशः सं आ अयन्ते । घर्मं[4] स्वदामि ऊतयः प्रति यन्ति । अश्विना, ऊर्जानी वां रथ आ अरुहत् ।

३ यत् जायवः[5] अमिताः मखाः[6] शुभे मिथः पस्पृधानासः रणे सं अग्मत, अह युवोः रथः प्रवणे[7] चेकिते, यत, अश्विना, सूरिं वरं आ वहथः ।

४ विभिः तुवं भुरमाणं[8] भुज्युं गतं, स्वयुक्तिभिः पितृभ्यः आ निवहन्ता । वृषणा, विजेन्यं[9] वर्तिः आ यासिष्ट; दिवोदासाय वां महि अवः चेति ।

हे अश्विन्, आपका जो रथ आपने आनन्दसे[10] जोता था वह केवल आपकी आज्ञासे ही चलता था। जो सुन्दर युवा स्त्री आपकी ओर आई थी उसने आपको पसन्द किया और (अन्तमें) आपही उसके पति बन गये। ५(२०)

आपने रेभकी संकटसे[11] रक्षा की; और अत्रिके तप्त हृदयकी गरमी शान्त की। शयूकी धेनुमें आपने अच्छा दूध उत्पन्न किया और (आपहीकी कृपासे) वन्दनकी आयु बढ़ गयी। ६

(शत्रुओंका) नाश करनेवाले हे सामर्थ्यवान्[12] देव, जिस तरह पुरानी गाड़ीकी मरम्मत करके वह नईसी बनजाती है उसी तरह बुड्ढे[13] वन्दनको आपने फिर जवान बनाया। स्तुतियोंसे सन्तुष्ट होकर विद्वान् उपासकको आपने पृथिवीमेंसे फिर उत्पन्न किया। आपकी स्तुति करनेवाले भक्तोंके लिये आपका आश्चर्यकारक कर्म, कल्याणकारी होवे। ७

(भुज्यूके) पिताने उसको त्याग दिया था; इस कारण वह बड़े दूरके प्रदेशमें बड़ा कष्ट उठाता था। उसका दुःख मिटानेके लिये आप उसकी ओर (दौड़ते) चले गये। जब आप उसके पास थे तब आपका भक्तकी रक्षा करनेवाला, आश्चर्यकारक और उज्ज्वल सामर्थ्य प्रकट हुआ। ८

उस मधुमक्षिकाने आपकी बहुत स्तुति की और उशीजका पुत्र सोमपान करके सन्तुष्ट होनेके लिये आपको बुलाता है। आप दध्युको भी सन्तुष्ट करते हैं। अश्वके सिरने आपसे सम्भाषण किया था। ९

---

५ अश्विना, वपुषे युवायुजं युवोः रथं वाणी अस्य शर्ध्य येमतुः। वां पतित्वं सख्याय आ जग्मुषी जेन्या योषा युवां पती अवृणीत।

६ युवं रेभं परिषूतेः उरुष्यथः, अत्रये हिमेन परितप्तं घर्मं। युवं शयोः गाव अवसं पिप्यथुः, वन्दनः दीर्घेण आयुषा प्र तारे।

७ दस्रा करणा, रथं न जरण्यया निर्‌ऋतं वन्दनं युव सं इन्वथ। विप यदा विप्रं क्षेत्रात् आ जनथः। वां अत्र विधते दंसना प्र भुवत्।

८ स्वस्य पितुः त्यजसा निबाधितं परावति कृपमाणं अगच्छतं। अर्भाके युवोः ऊतीः इतः स्ववंतीः अद्भुताः चित्राः अभवन्।

९ उत स्या मक्षिका वां मधुमत् अरपत, सोमस्य मदे औशिजः हुवयति। युव दधीचः मनः आ विवासथः अथ अश्व्यं शिरः वां प्रति वदन्।

हे अश्विन, आपने पेदुको जो सफेद अश्व दिया था उससे सब लोग प्रेम करते हैं। वह शत्रुओंको[14] जीतनेयोग्य है; वह बड़ा तेजस्वी है; युद्धमें उसको कोई जीत नहीं सकता; सब जगह उसकी प्रशंसा[15] होती है और इन्द्रके समान वह सब मनुष्योंसे श्रेष्ठ है। १०(२१)

सूक्त १२०.

॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–अश्विन ॥

हे अश्विननीदेव, कौनसा यज्ञ आपको सन्तोष देता है? आप दोनोंको किस यज्ञसे आनन्द होता है? अज्ञानी मनुष्य (विना आपकी कृपाके) किस तरह रह सकता है?। १

चाहे अविद्वान् हो अथवा अज्ञानी हो; किसी प्रकारका मनुष्य हो! हरएक मनुष्यको विद्वान (अश्विनी देवोंकी) सम्मति पूछना चाहिये। क्या सचमुच मर्त्य मनुष्यके विषयमें वे (अश्विनीदेव) कुछ कर नहीं सकते? (वे सब कुछ कर सकते हैं)। २

आप दोनों अश्विनीदेव विद्वान् हैं। आपकी हम स्तुति करते हैं और आपको पुकारते हैं। आप दोनों विद्वान् देव हमें एक सुन्दर स्तोत्र सूचित करेंगे। मैं आपका प्रिय भक्त हूं। मैं आपको हवि अर्पण करता हूं। और आपकी पूजा करता हूं। ३

शत्रुओंका नाश करनेवाले हे अश्विनीदेव, "वषट्" शब्दका उच्चारण करके मैं आपको अद्भुत हवि अर्पण करता हूं। प्रेमसे[1] यह बात मैं देवोंको पूछता हूं। बलवान् और चढ़ाई करनेवाले शत्रुओंसे आप हमारी रक्षा कीजिये। ४

---

१० अश्विना, युवं पेदवे पुरुवारं, स्पृधां[14] तरुतारं, अभिद्युं, शर्यैः पृतनासु दुस्तरं, चर्कृत्यं[15], इन्द्रं इव चर्षणीसहं श्वेत दुवस्यथः।

१ अश्विना, वां का होत्रा राधत? वां उभयोः जोषे कः? अप्रचेताः कथा विधाति?।

२ अविद्वान् अचेताः इत्था अपरः विद्वांसौ इत् दुरः पृच्छेत्। मर्तं अक्रौ नु चित नु?।

३ ता वां विद्वांसा हवामहे। ता विद्वांसा नः मन्म वोचेतं। युवाकुः दयमानः प्र आर्चत्।

४ दस्रा, वषट्कृतस्य अद्भुतस्य पाक्या[1] न देवान् वि पृच्छामि। युवं सह्यसः च रभ्यसः च नः पातं।

भृगुकी नाई आपका प्यारा भक्त घोष अपने मूंहसे आपकी प्रशंसा जोरसे करता है। उससे उसकी शोभा बढ़ती है। पज्रका पुत्र विद्वान् इषयू स्तुतियोंके द्वारा आपकी पूजा करता है। (आप उसे पसन्द कीजिये)। ५ (२२)

(आपकी स्तुति करनेके लिये) शीघ्रता[1] करनेवाले भक्तोंकी स्तुति सुनिये। हे अश्विन्, जिसने आपकी स्तुति की वह मैं हूं। हे कल्याण करनेवाले देव, हमारी ओर देखिये। ६

सम्पत्ति देनेवाले आप ही हैं और उसको ले जानेवाले भी आप ही हैं। हे वैभव स्वरूपदेव, आप ही हमारी रक्षा करनेवाले हूजिये। और दुष्ट भेड़ियोंसे हमारी रक्षा कीजिये। ७

जो मनुष्य हमारा मित्र नहीं उससे हमारी पहचान न होवें। हमारी दूध देनेवाली गौओंको उनके बछड़ांसे[2] दूर मत ले जाइये। ८

आपसे प्रीति होनेके कारण आपके भक्तजन गौओंको दोहते हैं और आपको दूध अर्पण करते हैं। हम आपके मित्र होनेके कारण आप हमारा वैभव बढ़ाइये; हमारी धेनुओंकी वृद्धि होवें और भरपूर धान्य हमें अर्पण कीजिये। ९

---

५ भृगवाणे घोषे या प्र शोभे न, यया पज्रियः विद्वान् इषयुः न वां यजति।

६ तकवानस्य[1] गायत्रं श्रुतं। अश्विना, अहं चित् वां रिरेभ हि शुभस्पती, अक्षी व्यु दृ[illegible]।

७ यत् महः रत्न युवं हि आस्तं युवं वा निरततंसतं, वसू, ता नः सुगोपा स्यातं, नः अघयोः वृकात् पा[illegible]

८ कस्मै अमित्रिणे नः मा अभि धातं, नः स्तनभुजः धेनवः अशिश्वीः[2] गृहेभ्यः अकुत्र मा गुः।

९ युवाकु मित्रधितये दुहीयन्। वाजवत्यै राये च नः मिमीतं, धेनुमत्यै इषे च नः मिमीतं।

अश्विनौदेव बड़े सामर्थ्यवान् है। उनका रथ बिना अश्वोंके चलता है। वह मुझे मिला[४] है और इस कारणसे मैं बड़ा आनन्दित[५] हूं। १०

यह सुख देनेवाला रथ हमेशा[६] मुझे ऐसी जगह धीरे धीरे ले जावें जहां सोमरस तैयार करके रखा हुआ है। ११

वह रथ सोनेवाले और धनका उपभोग न लेनेवाले (मनुष्यको) तुच्छतासे देखता है। दोनों प्रकारके लोगोंका शीघ्रही नाश होता है। १२ (२३) (१७)

अनुवाक १८.

सूक्त १२१.

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-विश्वेदेव,-इन्द्र ॥

मनुष्योंका पालन[१] करनेवाले इन्द्र, यहां शीघ्र आकर भक्तिवान् अंगिरसकी स्तुति कब सुनेंगे? जब आप घरमें रहनेवाले मनुष्योंकी ओर चले जाते हैं तब आप यज्ञकी ओर बड़े गौरवके साथ पैर रखके चले जाते हैं। १

इन्द्रने ही द्युलोक स्थापित किया। आप जैसे चतुर[२] पराक्रमी पुरुषने मनुष्यको सामर्थ्यका लाभ होनेके लिये धेनुके थनमें पुष्टि देनेवाला दूध उत्पन्न किया। महान् इन्द्रने स्वयम् उत्पन्न किये हुए समुदायको[३] घोडीयों और गौओंको अपने दृष्टिसे देखा। २

---

१० वाजिनीवतोः अश्विनोः अनश्वं रथं असनं[४]। तेन अहं भूरि चाकन[५]।

११ अयं सुखः रथः जनान् अनु सोमपेयं मा समह[६] तनु ऊह्याते।

१२ अध, स्वप्नस्य अभुंजतः रेवतः च निः विदे। उभा ता बस्रि[७] नश्यतः।

१ नृन् पात्रं[१] इत्था तुरण्यन् देवयतां अंगिरसां गिरः कत् श्रवत्? यत् हर्म्यस्य विशः प्र आ यत्, यजत्रः अध्वरे उरु क्रंसते।

२ सः द्यां स्तंभीत् हि। ऋभुः[२] नरः वाजाय गोः भरणं द्रविणं पृणायत्। महिषः स्वजां आं[३], अश्वस्य मेनां गोः मातरं, अनु परि चक्षत।

आज रात्रीकी उषाके पहिले शीघ्र प्रकाशित[४] होकर अंगिरसके कुलमें उत्पन्न हुए मनुष्योंकी पूजाका आपने स्वीकार किया। जो वज्र आप अपने हाथमें धारण करते हैं उसको आपहीने उत्पन्न किया; और मानवजातिको उपयोगी होनेके लिये आपने पशू (चतुष्पाद) और पक्षी (द्विपाद) उत्पन्न किये। उन्हींके लिये आपहीने द्युलोकको स्थापित किया। ३

सोमरसका पान करके आनन्दित होकर (सत्य) यज्ञकर्म अच्छी तरह चलानेके लिये देदीप्यमान् गौओंके झुण्डको आपने बन्धनसे मुक्त किया और उनको फिर ला दिया। त्रिगुण[५] स्वरूप धारण करके जब इन्द्र युद्धकी[६] ओर चले गये तब मानव जातिके शत्रुओंके (घरके) दरवाजे आपने तोड़ डाले। ४

जब गौका दूध मातापिताने आपको अर्पण किया, तब मानों, आपको अमृतरूपी पेय[७] ही मिला। इस तरह आपके पोषणका प्रबन्ध किया गया। जो सामर्थ्य[८] और आनन्द देनेवाला दूध आपको मिला वह केवल आपहीके लिये (उत्पन्न किया गया) था। ५ (२४)

(देखिये), उषाके अनन्तर सूर्यकी नाई इन्द्रदेव प्रकाशित होता है और सबको आनन्दित करता है। यज्ञगृहमें यज्ञचमसोंसे जितने सोमरसके बिन्दु नीचे गिरते हैं उतने गरम[९] हवि और स्तोत्र,[१०] वे (इन्द्र, सूर्य, उषा,) तीनों मिलकर अपनी ओर खीचलेते हैं। ६

सूर्यके यज्ञमें लकड़ीके राशिमें (एक) वृषभ बद्ध किया जाता है। उसमें अच्छी अच्छी लकड़ी डाल दी जाती है। जब वह काठका[११] ढेर जलने लगता है तब आप अपना प्रकाश फैलाते हैं। इस तरह दिनका काम सरल रीतिसे चलता है। प्रकाशित होनेके लिये जब आप रथमें आरूढ़[१२] होते हैं तब हरएक मनुष्य अपने पशूको ढूण्ढते ढूण्ढते अपना काम करनेके लिये शीघ्रतासे चला जाता है। ७

---

३ अरुणी: पूर्व्यं तुर: रात्रे[४] अनु द्यून अङ्गिरसां विशां हवं नक्षन। नियुतं वज्रं तक्षन्, नर्याय द्विपदे चतुष्पदे द्यां तस्तभत्।

४ अस्य मदे अपिव्रतं उस्रियाणां स्वर्यं अनीक ऋताय दाः यत् ह त्रिककुप्[५] प्रसर्गे[६] निवर्तत् मानुषस्य दृहः दुरः अप वः।

५ यत् सबर्दुघायाः उस्रियायाः पयः (पितरौ) ते शुचि रेक्णः[७] अयजन्त, तुरणे भुरण्यू पितरौ यत् राधः[८] मुरा: पयः अनीतां, तुभ्य।

६ अध प्र जज्ञे। तरणिः ममत्तु। अस्याः उषसः सूरः न प्र रोचि, येभिः जरणा[९] स्वेदहव्यैः[१०] धाम आन स्रुवेण सिञ्चन इन्दुः आष्ट।

७ सूरः अध्वरे गोः रोधना स्विध्मा वनधितः[११] यत् अध्वरे अपन्यात्, यत् ह कुत्र्यान् अनु द्यून् प्रभासि, आ विशे, पाश्वंपे, तुराय।

देदीप्यमान् झरना उत्पन्न करके युद्ध करनेके लिये द्युलोकसे आप आठ घोड़े ले आये। उस समय आपके भक्तोंने, आपको आनन्दित करनेके लिये अपने यज्ञपाषाणसे सोमरस तैयार किया। वह सोमरस उबलाया[13] गया था। उसमें दूध मिलानेके कारण वह तीव्र बना हुआ था और पीला दिखाई देता था। ८

हे इन्द्र, आपको आपके भक्तगण पुकारते हैं। जब आपने कुत्सपर प्रसन्न[14] होकर असंख्य शस्त्रोंसे शुष्णको घेर लिया तब द्युलोकसे लाया हुआ लोहेका पत्थर आपने कुशलतासे[15] गोकनके[16] द्वारा (शुष्णपर) फेंक दिया। ९

हे वज्रधारी इन्द्र, जब अन्धःकारने सूर्यको घेर[17] लिया तब आपने अपना शस्त्र मेघपर फेंक दिया। शुष्णका जो बल सब द्युलोकको व्याप्त करता था उसका आपने नाश किया। १०(२५)

हे इन्द्र, द्युलोक और भूलोक बिना पैयेके चलते हैं। वे श्रेष्ठ हैं। वे आपका पराक्रम देखकर आनन्दित होते हैं। आप सबसे श्रेष्ठ हैं। जलमें[18] छुपे हुए वृत्र (वराहको) आपने अपने वज्रसे मार डाला। ११

हे इन्द्र, जिन मनुष्योंकी आप रक्षा करते हैं उनका आप कल्याण करते हैं। वायुके बलवान् और अच्छे अश्वोंपर आप आरूढ़ हूजिये। उशनाकाव्यने जो आनन्द देनेवाला वज्र आपको अर्पण किया है उसका उपयोग[19] वृत्रको मार डालनेके लिये आप कीजिये। १२

---

८ युवमहं उत्सं योधान: मह: दिव: अष्टा हरी इह आद:, यत् वानाप्य[13] गोरभसं ते मन्दिनं दुहिं अद्रिभि: धुक्षन्।

९ पुरुहूत, कुत्साय वन्वन्[14] यत्र अनन्तै: वधै: शुष्ण परियासि, दिव: आनीतं आयसं अश्मानं ऋभ्वा[15] गो:[16] प्रति वर्तय:।

१० अद्रिव:, तमस: सुर: अपीते:[17] पुरा यत् हेतिं नं फलिग अस्य, शुष्णस्य चित् यत् दिव: परि परिहतं सुग्रथितं ओज:, तत् आ अद:।

११ इन्द्र, अचक्रे मही पाजसी द्यावाक्षामा त्वा अनु कर्मन् मदतां। मह: त्व सिरासु[18] आशयानं वराहुं वृत्रं वज्रेण सिस्वप:।

१२ इन्द्र, यान् नृन् अव: नर्यै: वातस्य सुयुज: वहिष्ठान् त्वं तिष्ठ। उशना काव्य: य मन्दिनं ते दात्, पार्यं[19] वृत्रहन् वज्रं ततक्ष।

हे इन्द्र, आपने सूर्यके पीले रंगके अश्वको[20] रोका[21]। एतशाने उसके पैये नहीं खींचे। जो लोग आपकी पूजा नहीं करते उनको आप नव्वे नदीयोंके परे ले जाकर गढ्ढेमें फेंक देते हैं। १३

हे वज्रधारी इन्द्र, पाप और संकटसे हमारी रक्षा कीजिये। हमें ऐसा सामर्थ्य दीजिये जिससे हम अपना पेट भर सकें, हमारी कीर्ति बढे, हमे सैंकडों रथ प्राप्त होवें, सची और मीठी बात सुने, और हमें सैकडों अश्व मिले। १४

हे सामर्थ्यवान् इन्द्र, हमपर आपकी कृपा बनी रहे, हमें बहुत धनधान्य प्राप्त होवें। हे उदार इन्द्र, आप सबसे श्रेष्ठ हैं। इसलिये आपकी कृपासे हमें धेनुओंका लाभ होवें। आप यहां बैठिये, और हम आपको हवि[22] अर्पण करते हैं। हम सब आनन्दमें रहें। १५(२६)(८)(१)

---

१३ इन्द्रा, त्वं सूरः हरितः नृन्[20] रमयः[21] अयं एतशः चक्रं न भरत् अयज्यून् नाव्यानां नवतिं पार प्रास्य कर्त अपि अवर्तयः।

१४ वज्रिवः इन्द्र; अमीकं दुरितात् अस्याः दुर्हणायाः त्वं नः पाहि। इषे, श्रवसे, सूनृतायै, रथ्यः अश्वबुध्यान् वाजान् नः प्र यन्धि।

१५ सा ते सुमतिः असत् मा वि दसत्। वाजप्रमहः इषः सं चरन्त। मघवन्, अर्यः गोषु नः भज; ते मंहिष्ठाः[22] सधमादः स्याम।

॥ अष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥

॥ प्रथमोऽष्टकः समाप्तः ॥ १ ॥

Printed at Vaidya Brothers Press, Thakurdwar, Bombay No. 2 & published at Marathi Office, 37 Kalbadevi Road, Bombay, by Gajanan Bhaskar Vaidya.

हिन्दी, मराठी, गुजराती और अङ्ग्रेजी चार
भाषाओं में अलग अलग प्रसिद्ध होनेवाला

वेदों का भाषांतर ।

प्रति मास में ६४ पृष्ठ; ३२ पृष्ठ संहिता [स्वर और पदपाठ सहित]
* * ३२ पृष्ठ भाषान्तर । * *

वर्ष १] माघ संवत् १९६९—मार्च सन १९१३ [अंक ६

वार्षिक मूल्य डाकव्ययसहित रु. ४

हिन्दी

सम्पादक,

रामचंद्र विनायक पटवर्धन, बी. ए. एल् एल्. बी.
अच्युत बलवंत कोल्हटकर, बी. ए. एल् एल्. बी.
दत्तो अप्पाजी तुळजापुरकर बी. ए. एल् एल्. बी.

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत् ।
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ॥

यास्काचार्य.

'श्रुतिबोध' ऑफिस, ४७, कालकादेवी रोड. बम्बई.

प्रति अंकका मूल्य आठ आने.

द्वितीयोऽष्टकः — प्रथमं मण्डलम्

॥ ऋग्वेदः ॥

[प्रथमोऽध्यायः] — [अष्टादशोऽनुवाकः]

॥ १२२ ॥ ऋषिः – कक्षीवान् । देवता – विश्वेदेवाः । छन्दः – त्रिष्टुप् ॥

॥ हरिः ॐ ॥

॥१२२॥ प्र वः पान्तं रघुमन्यवोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ।
दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥ १ ॥
पत्नीव पूर्वहूतिं वावृधध्या उषासानक्ता पुरुधा विदाने ।
स्तरीर्नात्कं व्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥ २ ॥
ममत्तु नः परिज्मा वसर्हा ममत्तु वातो अपां वृषण्वान् ।
शिशीतमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥ ३ ॥
उत त्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।
प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा रास्पिनस्यायोः ॥ ४ ॥

प्र । वः । पान्तं । रघुऽमन्यवः । अन्धः । यज्ञं । रुद्राय । मीळ्हुषे । भरध्वं ।
दिवः । अस्तोषि । असुरस्य । वीरैः । इषुध्याऽइव । मरुतः । रोदस्योः ॥ १ ॥
पत्नीऽइव । पूर्वऽहूतिं । ववृधध्यै । उषसानक्ता । पुरुधा । विदाने इति । स्तरीः । न ।
अत्कं । विऽउतं । वसाना । सूर्यस्य । श्रिया । सुऽदृशी । हिरण्यैः ॥ २ ॥
ममत्तु । नः । परिऽज्मा । वसर्हा । ममत्तु । वातः । अपां । वृषण्ऽवान् । शिशीतं ।
इन्द्रापर्वता । युवं । नः । तत् । नः । विश्वे । वरिवस्यन्तु । देवाः ॥ ३ ॥
उत । त्या । मे । यशसा । श्वेतनायै । व्यन्ता । पान्ता । औशिजः । हुवध्यै । प्र । वः ।
नपातं । अपां । कृणुध्वं । प्र । मातरा । रास्पिनस्य । आयोः ॥ ४ ॥

आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नंशे ।
प्र वः पूष्णे दावन आँ अच्छा वोचेय वसुतातिमग्नेः ॥ ५ ॥ १ ॥
श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमोत श्रुतं सदने विश्वतः सीम् ।
श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥ ६ ॥
स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे ।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥ ७ ॥
अस्य स्तुषे महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः ।
जनो यः पज्रेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥ ८ ॥
जनो यो मित्रावरुणावभिध्रुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाध्रुक् ।
स्वयं स यक्ष्मं हृदये नि धत्त आप यदीं होत्राभिर्ऋतावा ॥ ९ ॥

आ । वः । रुवण्युं । औशिजः । हुवध्यै । घोषाऽइव । शंसं । अर्जुनस्य । नंशे । प्र । वः । पूष्णे । दावने । आ । अच्छ । वोचेय । वसुऽतातिं । अग्नेः ॥ ५ ॥ १ ॥
श्रुतं । मे । मित्रावरुणा । हवा । इमा । उत । श्रुतं । सदने । विश्वतः । सीं । श्रोतु । नः । श्रोतुऽरातिः । सुऽश्रोतुः । सुऽक्षेत्रा । सिन्धुः । अद्ऽभिः ॥ ६ ॥
स्तुषे । सा । वां । वरुण । मित्र । रातिः । गवां । शता । पृक्षऽयामेषु । पज्रे । श्रुतऽरथे । प्रियऽरथे । दधानाः । सद्यः । पुष्टिं । निऽरुन्धानासः । अग्मन् ॥ ७ ॥
अस्य । स्तुषे । महिऽमघस्य । राधः । सचा । सनेम । नहुषः । सुऽवीराः । जनः । यः । पज्रेभ्यः । वाजिनीऽवान् । अश्वऽवतः । रथिनः । मह्यं । सूरिः ॥ ८ ॥
जनः । यः । मित्रावरुणौ । अभिऽध्रुक् । अपः । न । वां । सुनोति । अक्ष्णयाऽध्रुक् । स्वयं । सः । यक्ष्मं । हृदये । नि । धत्ते । आप । यत् । ईं । होत्राभिः । ऋतऽवा ॥ ९ ॥

स आर्धतो नहुषो दंसुजूतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।
विसृष्टरातिर्याति बाळ्हसृत्वा विश्वासु पृत्सु सदमिच्छूरः ॥ १० ॥ २ ॥
अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।
नभोजुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥ ११ ॥
एतं शर्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन्दशतयस्य नंशे ।
द्युम्नानि येषु वसुताती रारन्विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजं ॥ १२ ॥
मन्दामहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत्पञ्च बिभ्रतो यन्त्यन्ना ।
किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासस्तरुष ऋञ्जते नॄन् ॥ १३ ॥
हिरण्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ।
अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्राश्चाकन्तूभयेष्वस्मे ॥ १४ ॥

सः । आर्धतः । नहुषः । दंसुऽजूतः । शर्धःऽतरः । नरां । गूर्तऽश्रवाः । विसृष्टऽरातिः । याति । बाळ्हऽसृत्वा । विश्वासु । पृत्ऽसु । सदं । इत् । शूरः ॥ १० ॥ २ ॥ अधं । ग्मन्तं । नहुषः । हवं । सूरेः । श्रोतं । राजानः । अमृतस्य । मंद्राः । नभःऽजुवः । यत् । निरवस्य । राधः । प्रऽशस्तये । महिना । रथऽवते ॥ ११ ॥ एतं । शर्धं । धाम । यस्य । सूरेः । इति । अवोचन् । दशऽतयस्य । नंशे । द्युम्नानि । येषु । वसुऽताती । रारन् । विश्वे । सन्वंतु । प्रऽभृथेषु । वाजं ॥ १२ ॥ मंदामहे । दशऽतयस्य । धासेः । द्विः । यत् । पंच । बिभ्रतः । यंति । अन्ना । किं । इष्टऽअश्वः । इष्टऽरश्मिः । एते । ईशानासः । तरुषः । ऋंजते । नॄन् ॥ १३ ॥ हिरण्यऽकर्णं । मणिऽग्रीवं । अर्णः । तत् । नः । विश्वे । वरिवस्यंतु । देवाः । अर्यः । गिरः । सद्यः । आ । जग्मुषीः । आ । उस्राः । चाकंतु । उभयेषु । अस्मे इति ॥ १४ ॥

चत्वारो मा मशर्शारस्य शिश्वस्त्रयो राज्ञ आयवसस्य जिष्णोः ।
रथो वां मित्रावरुणा दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः सूरो नाद्यौत् ॥ १५ ॥ ३ ॥

॥ १२३ ॥ ऋषिः—कक्षीवान् । देवता—उषाः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥१२३॥ पृथू रथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः ।
कृष्णादुदस्थादर्या३विहाया श्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥ १ ॥
पूर्वा विश्वस्माद्भुवनादबोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।
उच्चा व्यख्यद्युवतिः पुनर्भूरोषा अगन्प्रथमा पूर्वहूतौ ॥ २ ॥
यदद्य भागं विभजासि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।
देवो नो अत्र सविता दमूना अनागसो वोचति सूर्याय ॥ ३ ॥
गृहंगृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधि नामा दधाना ।
सिषासन्ती द्योतना शश्वदागादग्रमग्रमिद्भजते वसूनाम् ॥ ४ ॥

चत्वारः । मा । मशर्शारस्य । शिश्वः । त्रयः । राज्ञः । आयवसस्य । जिष्णोः । रथः । वाम् । मित्रावरुणा । दीर्घऽअप्साः । स्यूमऽगभस्तिः । सूरः । न । अद्यौत् ॥ ३ ॥

पृथुः । रथः । दक्षिणायाः । अयोजि । आ । एनम् । देवासः । अमृतासः । अस्थुः । कृष्णात् । उत् । अस्थात् । अर्या । विऽहायाः । चिकित्सन्ती । मानुषाय । क्षयाय ॥ १ ॥ पूर्वा । विश्वस्मात् । भुवनात् । अबोधि । जयन्ती । वाजम् । बृहती । सनुत्री । उच्चा । वि । अख्यत् । युवतिः । पुनःऽभूः । आ । उषाः । अगन् । प्रथमा । पूर्वऽहूतौ ॥ २ ॥ यत् । अद्य । भागम् । विऽभजासि । नृऽभ्यः । उषः । देवि । मर्त्यऽत्रा । सुऽजाते । देवः । नः । अत्र । सविता । दमूनाः । अनागसः । वोचति । सूर्याय ॥ ३ ॥ गृहम्ऽगृहम् । अहना । याति । अच्छ । दिवेऽदिवे । अधि । नाम । दधाना । सिसासन्ती । द्योतना । शश्वत् । आ । अगात् । अग्रम्ऽअग्रम् । इत् । भजते । वसूनाम् ॥ ४ ॥

भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिरुषः सूनृते प्रथमा जरस्व ।
पश्चा स दघ्या यो अघस्य धाता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥ ५ ॥ ४ ॥
उदीरतां सूनृता उत्पुरंधीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः ।
स्पार्हा वसूनि तमसापगूळ्हाविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥ ६ ॥
अपान्यदेत्यभ्यन्यदेति विषुरूपे अहनी सं चरेते ।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥ ७ ॥
सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम ।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥ ८ ॥
जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥ ९ ॥

भगस्य । स्वसा । वरुणस्य । जामिः । उषः । सूनृते । प्रथमा । जरस्व । पश्चा । सः । दघ्याः । यः । अघस्य । धाता । जयेम । तं । दक्षिणया । रथेन ॥ ५ ॥ ४ ॥ उत् । ईरतां । सूनृताः । उत् । पुरंऽधीः । उत् । अग्नयः । शुशुचानासः । अस्थुः । स्पार्हा । वसूनि । तमसा । अपऽगूळ्हा । आविः । कृण्वंति । उषसः । विऽभातीः ॥ ६ ॥ अप । अन्यत् । एति । अभि । अन्यत् । एति । विषुरूपे इति विषुऽरूपे । अहनी इति । सं । चरेते इति । परिऽक्षितोः । तमः । अन्या । गुहा । अकः । अद्यौत् । उषाः । शोशुचता । रथेन ॥ ७ ॥ सऽदृशीः । अद्य । सऽदृशीः । इत् । ऊं इति । श्वः । दीर्घं । सचंते । वरुणस्य । धाम । अनवद्याः । त्रिंशतं । योजनानि । एकाऽएका । क्रतुं । परि । यंति । सद्यः ॥ ८ ॥ जानती । अह्नः । प्रथमस्य । नाम । शुक्रा । कृष्णात् । अजनिष्ट । श्वितीची । ऋतस्य । योषा । न । मिनाति । धाम । अहःऽअहः । निःऽकृतं । आऽचरंती ॥ ९ ॥

कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥ १० ॥ ५ ॥
सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥ ११ ॥
अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥ १२ ॥
ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रम्भद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥ १३ ॥ ६ ॥

॥ १२४ ॥ ऋषिः—कक्षीवान । देवताः—उषाः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥१२४॥ उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद्द्विपत्प्र चतुष्पदित्यै ॥ १ ॥

कन्याऽइव । तन्वा । शाशदाना । एषि । देवि । देवं । इयक्षमाणं । संऽस्मयमाना । युवतिः । पुरस्तात् । आविः । वक्षांसि । कृणुषे । विऽभाती ॥ १० ॥ ५ ॥ सुसंऽकाशा । मातृमृष्टाऽइव । योषा । आविः । तन्वं । कृणुषे । दृशे । कं । भद्रा । त्वं । उषः । विऽतरं । वि । उच्छ । न । तत् । ते । अन्याः । उषसः । नशंत ॥ ११ ॥ अश्वऽवतीः । गोऽमतीः । विश्वऽवाराः । यतमानाः । रश्मिऽभिः । सूर्यस्य । परा । च । यंति । पुनः । आ । च । यंति । भद्रा । नाम । वहमानाः । उषसः ॥ १२ ॥ ऋतस्य । रश्मिं । अनुऽयच्छमाना । भद्रंऽभद्रं । क्रतुं । अस्मासु । धेहि । उषः । नः । अद्य । सुऽहवा । वि । उच्छ । अस्मासु । रायः । मघवत्ऽसु । च । स्युरिति स्युः ॥ १३ ॥ ६ ॥

उषाः । उच्छंती । संऽइधाने । अग्नौ । उत्ऽयन् । सूर्यः । उर्विया । ज्योतिः । अश्रेत् । देवः । नः । अत्र । सविता । नु । अर्थं । प्र । असावीत् । द्विऽपत् । प्र । चतुःऽपत् । इत्यै ॥ १ ॥

अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥ २ ॥
एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ३ ॥
उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम् ॥ ४ ॥
पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥ ५ ॥ ७ ॥
एवेदेषा पुरुतमा दृशे कं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा३शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥ ६ ॥

अमिनती । दैव्यानि । व्रतानि । प्रऽमिनती । मनुष्या । युगानि । ईयुषीणां । उपमा । शश्वतीनां । आऽयतीनां । प्रथमा । उषाः । वि । अद्यौत् ॥ २ ॥ एषा । दिवः । दुहिता । प्रति । अदर्शि । ज्योतिः । वसाना । समना । पुरस्तात् । ऋतस्य । पंथां । अनु । एति । साधु । प्रजानतीऽइव । न । दिशः । मिनाति ॥ ३ ॥ उपो इति । अदर्शि । शुन्ध्युवः । न । वक्षः । नोधाःऽइव । आविः । अकृत । प्रियाणि । अद्मऽसत् । न । ससतः । बोधयंती । शश्वत्ऽतमा । आ । अगात् । पुनः । आऽईयुषीणा ॥ ४ ॥ पूर्वे । अर्धे । रजसः । अप्त्यस्य । गवां । जनित्री । अकृत । प्र । केतुं । वि । ऊं इति । प्रथते । विऽतरं । वरीयः । आ । उभा । पृणंती । पित्रोः । उपऽस्था ॥ ५ ॥ ७ ॥ एव । इत् । एषा । पुरुऽतमा । दृशे । कं । न । अजामिं । न । परि । वृणक्ति । जामिं । अरेपसा । तन्वा । शाशदाना । न । अर्भात् । ईषते । न । महः । विऽभाती ॥ ६ ॥

अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥ ७ ॥
स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥ ८ ॥
आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥ ९ ॥
प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत्स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥ १० ॥ ८ ॥
अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥ ११ ॥

अभ्राताऽइव । पुंसः । एति । प्रतीची । गर्तऽआरुगिव । सनये । धनानां । जायाऽइव
पत्ये । उशती । सुऽवासाः । उषाः । हस्राऽइव । नि । रिणीते । अप्सः ॥ ७ ॥
स्वसा । स्वस्रे । ज्यायस्यै । योनिं । अरैक् । अप । एति । अस्याः । प्रतिचक्ष्यांऽइव ।
विऽउच्छंती । रश्मिऽभिः । सूर्यस्य । अंजि । अंक्ते । समनगाःऽइव । व्राः ॥ ८ ॥
आसां । पूर्वासां । अहऽसु । स्वसॄणां । अपरा । पूर्वां । अभि । एति । पश्चात् । ताः ।
प्रत्नऽवत् । नव्यसीः । नूनं । अस्मे इति । रेवत् । उच्छंतु । सुऽदिनाः । उषसः ॥ ९ ॥
प्र । बोधय । उषः । पृणतः । मघोनि । अबुध्यमानाः । पणयः । ससंतु । रेवत् ।
उच्छ । मघवत्ऽभ्यः । मघोनि । रेवत् । स्तोत्रे । सूनृते । जरयंती ॥ १० ॥ ८ ॥
अव । इयं । अश्वैत् । युवतिः । पुरस्तात् । युंक्ते । गवां । अरुणानां । अनीकं । वि ।
नूनं । उच्छात् । असति । प्र । केतुः । गृहंऽगृहं । उप । तिष्ठाते । अग्निः ॥ ११ ॥

उत्ते वर्यश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२ ॥
अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥ १३ ॥ ९ ॥

॥ १२५ ॥ ऋषिः-कक्षीवान् । देवते-दम्पती । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥१२५॥ प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान्प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥
सुगुरसत्सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै वय इन्द्रो दधाति ।
यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ २ ॥
आयमद्य सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टेः पुत्रं वसुमता रथेन ।
अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य क्षयद्वीरं वर्धय सूनृताभिः ॥ ३ ॥

उत् । ते । वयः । चित् । वसतेः । अपप्तन् । नरः । च । ये । पितुऽभाजः । विऽउष्टौ । अमा । सते । वहसि । भूरि । वामं । उषः । देवि । दाशुषे । मर्त्याय ॥ १२ ॥ अस्तोढ्वं । स्तोम्याः । ब्रह्मणा । मे । अवीवृधध्वं । उशतीः । उषसः । युष्माकं । देवीः । अवसा । सनेम । सहस्रिणं । च । शतिनं । च । वाजं ॥ १३ ॥ ९ ॥

प्रातरिति । रत्नं । प्रातःऽइत्वा । दधाति । तं । चिकित्वान् । प्रतिऽगृह्य । नि । धत्ते । तेन । प्रऽजां । वर्धयमानः । आयुः । रायः । पोषेण । सचते । सुऽवीरः ॥ १ ॥ सुऽगुः । असत् । सुऽहिरण्यः । सुऽअश्वः । बृहत् । अस्मै । वयः । इंद्रः । दधाति । यः । त्वा । आऽयंतं । वसुना । प्रातःऽइत्वः । मुक्षीजयाऽइव । पदिं । उत्ऽसिनाति ॥ २ ॥ आयं । अद्य । सुऽकृतं । प्रातः । इच्छन् । इष्टेः । पुत्रं । वसुऽमता । रथेन । अंशोः । सुतं । पायय । मत्सरस्य । क्षयत्ऽवीरं । वर्धय । सूनृताभिः ॥ ३ ॥

उप क्षरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं च यक्ष्यमाणं च धेनवः ।
पृणन्तं च पपुरिं च श्रवस्यवो घृतस्य धारा उप यन्ति विश्वतः ॥ ४ ॥
नाकस्य पृष्ठे अधि तिष्ठति श्रितो यः पृणाति स ह देवेषु गच्छति ।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा ॥ ५ ॥
दक्षिणावतामिदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः ।
दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्र तिरन्त आयुः ॥ ६ ॥
मा पृणन्तो दुरितमेन आरन्मा जारिषुः सूरयः सुव्रतासः ।
अन्यस्तेषां परिधिरस्तु कश्चिदपृणन्तमभि सं यन्तु शोकाः ॥ ७ ॥ १० ॥

॥ १२६ ॥ ऋषिः-कक्षीवान् । देवता-विद्वांसः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥१२६॥ अमन्दान्स्तोमान्प्र भरे मनीषा सिन्धावधि क्षियतो भाव्यस्य ।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥ १ ॥

उप । क्षरंति । सिंधवः । मयःऽभुवः । ईजानं । च । यक्ष्यमाणं । च । धेनवः । पृणंतं । च । पपुरिं । च । श्रवस्यवः । घृतस्य । धाराः । उप । यंति । विश्वतः ॥ ४ ॥ नाकस्य । पृष्ठे । अधि । तिष्ठति । श्रितः । यः । पृणाति । सः । ह । देवेषु । गच्छति । तस्मै । आपः । घृतं । अर्षंति । सिंधवः । तस्मै । इयं । दक्षिणा । पिन्वते । सदा ॥ ५ ॥ दक्षिणाऽवतां । इत् । इमानि । चित्रा । दक्षिणाऽवतां । दिवि । सूर्यासः । दक्षिणाऽवंतः । अमृतं । भजंते । दक्षिणाऽवंतः । प्र । तिरंते । आयुः ॥६॥ मा । पृणंतः । दुःऽइतं । एनः । आ । अरन् । मा । जारिषुः । सूरयः । सुऽव्रतासः । अन्यः । तेषां । परिऽधिः । अस्तु । कः । चित् । अपृणंतं । अभि । सं । यंतु । शोकाः ॥ ७ ॥ १० ॥

अमंदान् । स्तोमान् । प्र । भरे । मनीषा । सिंधौ । अधि । क्षियतः । भाव्यस्य । यः । मे । सहस्रं । अमिमीत । सवान् । अतूर्तः । राजा । श्रवः । इच्छमानः ॥ १ ॥

शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्कान्छतमश्वान्प्रयतान्त्सद्य आदम् ।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान ॥ २ ॥
उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः ।
षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात्सनत्कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ॥ ३ ॥
चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति ।
मदच्युतः कृशनावतो अत्यान्कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्राः ॥ ४ ॥
पूर्वामनु प्रयतिमा ददे वस्त्रीन्युक्ताँ अष्टावरिधायसो गाः ।
सुबन्धवो ये विश्या इव व्रा अनस्वन्तः श्रव ऐषन्त पज्राः ॥ ५ ॥
आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे ।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता ॥ ६ ॥

शतं । राज्ञः । नाधमानस्य । निष्कान् । शतं । अश्वान् । प्रऽयतान् । सद्यः । आदं ।
शतं । कक्षीवान् । असुरस्य । गोनां । दिवि । श्रवः । अजरं । आ । ततान ॥ २ ॥
उप । मा । श्यावाः । स्वनयेन । दत्ताः । वधूऽमंतः । दश । रथासः । अस्थुः । षष्टिः ।
सहस्रं । अनु । गव्यं । आ । अगात् । सनत् । कक्षीवान् । अभिऽपित्वे । अह्नां ॥ ३ ॥
चत्वारिंशत् । दशऽरथस्य । शोणाः । सहस्रस्य । अग्रे । श्रेणिं । नयंति । मदऽच्युतः ।
कृशनऽवतः । अत्यान् । कक्षीवंतः । उत् । अमृक्षंत । पज्राः ॥ ४ ॥ पूर्वां । अनु ।
प्रऽयतिं । आ । ददे । वः । त्रीन् । युक्तान् । अष्टौ । अरिऽधायसः । गाः । सुऽबंधवः ।
ये । विश्याःऽइव । व्राः । अनस्वंतः । श्रवः । ऐषंत । पज्राः ॥ ५ ॥ आऽगधिता ।
परिऽगधिता । या । कशीकाऽइव । जंगहे । ददाति । मह्यं । यादुरी । याशूनां ।
भोज्या । शता ॥ ६ ॥

उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः ।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥ ७ ॥ ११ ॥ १८ ॥

॥ एकोनविंशोऽनुवाकः ॥

॥ १२७ ॥ ऋषिः—परुच्छेपः । देवता—अग्निः । छन्दः—अत्यष्टिः ॥

॥१२७॥ अग्निं होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुं सूनुं सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।
घृतस्य विभ्राष्टिमनु वष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिर्विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः । परिज्मानमिव द्यां होतारं चर्षणीनाम् ।
शोचिष्केशं वृषणं यमिमा विशः प्रावन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥
स हि पुरू चिदोजसा विरुक्मता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।
वीळु चिद्यस्य समृतौ श्रुवद्वनेव यत्स्थिरम् ।
निःषहमाणो यमते नायते धन्वासहा नायते ॥ ३ ॥

उपऽउप । मे । परा । मृश । मा । मे । दभ्राणि । मन्यथाः । सर्वा । अहं । अस्मि । रोमशा । गंधारीणांऽइव । अविका ॥ ७ ॥ ११ ॥ १८ ॥

अग्निं । होतारं । मन्ये । दास्वंतं । वसुं । सूनुं । सहसः । जातऽवेदसं । विप्रं । न । जातऽवेदसं ॥ यः । ऊर्ध्वया । सुऽअध्वरः । देवः । देवाच्या । कृपा । घृतस्य । विऽभ्राष्टिं । अनु । वष्टि । शोचिषा । आऽजुह्वानस्य । सर्पिषः ॥ १ ॥ यजिष्ठं । त्वा । यजमानाः । हुवेम । ज्येष्ठं । अंगिरसां । विप्र । मन्मऽभिः । विप्रेभिः । शुक्र । मन्मऽभिः । परिज्मानंऽइव । द्यां । होतारं । चर्षणीनां । शोचिःऽकेशं । वृषणं । यं । इमाः । विशः । प्र । अवंतु । जूतये । विशः ॥ २ ॥ सः । हि । पुरु । चित् । ओजसा । विरुक्मता । दीद्यानः । भवति । द्रुहंऽतरः । परशुः । न । द्रुहंऽतरः । वीळु । चित् । यस्य । संऽऋतौ । श्रुवत् । वनाऽइव । यत् । स्थिरं । निःऽसहमानः । यमते । न । अयते । धन्वऽसहा । न । अयते ॥ ३ ॥

दृळ्हा चिदस्मा अनु दुर्यथा विदे तेजिष्ठाभिररणिभिर्दाष्ट्यवसेऽग्नये दाष्ट्यवसे । प्र यः पुरूणि गाहते तक्षद्वनेव शोचिषा ।
स्थिरा चिदन्ना नि रिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥ ४ ॥
तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात् । आदस्यायुर्ग्रभणवद्वीळु शर्म न सूनवे ।
भक्तमभक्तमवो व्यन्तो अजरा अग्नयो व्यन्तो अजराः ॥ ५ ॥ १२ ॥
स हि शर्धो न मारुतं तुविष्वणिरप्नस्वतीषूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः ।
आदद्धव्यान्याददिर्यज्ञस्य केतुरर्हणा ।
अध स्मास्य हर्षतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां नरः शुभे न पन्थाम् ॥ ६ ॥

दृळ्हा । चित् । अस्मै । अनु । दुः । यथा । विदे । तेजिष्ठाभिः । अरणिऽभिः । दाष्टि । अवसे । अग्नये । दाष्टि । अवसे ॥ प्र । यः । पुरूणि । गाहते । तक्षत् वनाऽइव । शोचिषा । स्थिरा । चित् । अन्ना । नि । रिणाति । ओजसा । नि । स्थिराणि । चित् । ओजसा ॥ ४ ॥ तं । अस्य । पृक्षं । उपरासु । धीमहि । नक्तं । यः । सुदर्शऽतरः । दिवाऽतरात् । अप्रऽआयुषे । दिवाऽतरात् ॥ आत् । अस्य । आयुः । ग्रभणऽवत् । वीळु । शर्म । न । सूनवे । भक्तं । अभक्तं । अवः । व्यंतः । अजराः । अग्नयः । व्यंतः । अजराः ॥ ५ ॥ १२ ॥ सः । हि । शर्धः । न । मारुतं । तुविऽस्वनिः । अप्नस्वतीषु । उर्वरासु । इष्टनिः । आर्तनासु । इष्टनिः ॥ आदत् । हव्यानि । आऽददिः । यज्ञस्य । केतुः । अर्हणा । अध । स्म । अस्य । हर्षतः । हृषीवतः । विश्वे । जुषंत । पंथां । नरः । शुभे । न । पंथां ॥ ६ ॥

द्विता यदीं कीस्तासो अभिद्यवो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो मथ्नन्तो दाशा भृगवः । अग्निरीशे वसूनां शुचिर्यो धर्णिरेषाम् ।
प्रियाँ अपिधीँर्वनिषीष्ट मेधिर आ वनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥

विश्वासां त्वा विशां पतिं हवामहे सर्वासां समानं दम्पतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे । अतिथिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।
अमी च विश्वे अमृतास आ वयो हव्या देवेष्वा वयः ॥ ८ ॥

त्वमग्ने सहसा सहन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये ।
शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।
अध स्मा ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानो नाजर ॥ ९ ॥

द्विता । यत् । ईं । कीस्तासः । अभिऽद्यवः । नमस्यन्तः । उपऽवोचन्त । भृगवः । मथ्नन्तः । दाशा । भृगवः ॥ अग्निः । ईशे । वसूनां । शुचिः । यः । धर्णिः । एषां । प्रियान् । अपिऽधीन । वनिषीष्ट । मेधिरः । आ । वनिषीष्ट । मेधिरः ॥ ७ ॥

विश्वासां । त्वा । विशां । पतिं । हवामहे । सर्वासां । समानं । दम्ऽपतिं । भुजे । सत्यऽगिर्वाहसं । भुजे ॥ अतिथिं । मानुषाणां । पितुः । न । यस्य । आसया । अमी इति । च । विश्वे । अमृतासः । आ । वयः । हव्या । देवेषु । आ । वयः ॥ ८ ॥

त्वं । अग्ने । सहसा । सहन्ऽतमः । शुष्मिन्ऽतमः । जायसे । देवऽतातये । रयिः । न । देवऽतातये ॥ शुष्मिन्ऽतमः । हि । ते । मदः । द्युम्निन्ऽतमः । उत । क्रतुः । अध । स्म । ते । परि । चरंति । अजर । श्रुष्टीऽवानः । न । अजर ॥ ९ ॥

प्र वो॑ म॒हे सह॑सा॒ सह॑स्वत उष॒र्बुधे॑ पशु॒षे नाग्नये॒ स्तोमो॑ बभूत्व॒ग्नये॑ ।
प्रति॒ यदीं॑ ह॒विष्मा॒न्विश्वा॑सु॒ क्षासु॒ जोगु॑वे ।
अग्रे॑ रे॒भो न ज॑रत ऋषू॒णां जू॒र्णिर्होत॑ ऋषू॒णाम् ॥ १० ॥
स नो॒ नेदि॑ष्ठं॒ ददृ॑शान॒ आ भ॒राग्ने॑ दे॒वेभिः॒ सच॑नाः सुचे॒तुना॑ म॒हो रा॒यः सु॑चे॒तुना॑ । महि॑ शविष्ठ नस्कृधि सं॒चक्षे॑ भु॒जे अ॒स्यै ।
महि॑ स्तो॒तृभ्यो॑ मघवन्त्सु॒वीर्यं॒ मथी॑रु॒ग्रो न शव॑सा ॥ ११ ॥ १३ ॥

॥ १२८ ॥ ऋषिः परुच्छेपः । देवता अग्निः । छन्दः—अत्यष्टिः ॥

॥१२८॥ अ॒यं जा॑यत॒ मनु॑षो॒ धरी॑मणि॒ होता॒ यजि॑ष्ठ उ॒शिजा॒मनु॑ व्र॒तम॒ग्निः स्वमनु॑ व्र॒तम् । वि॒श्वश्रु॑ष्टिः सखीय॒ते र॒यिरि॑व श्रवस्य॒ते ।
अद॑ब्धो॒ होता॒ नि ष॑ददि॒ळस्प॒दे परि॑वीत इ॒ळस्प॒दे ॥ १ ॥

प्र । वः॒ । म॒हे । सह॑सा । सह॑स्वते । उ॒षः॒ऽबुधे॑ । प॒शु॒ऽसे । न । अ॒ग्नये॑ । स्तोमः॑ । ब॒भू॒तु॒ । अ॒ग्नये॑ ॥ प्रति॑ । यत् । ई॒म् । ह॒विष्मा॑न् । विश्वा॑सु । क्षासु॑ । जोगु॑वे । अग्रे॑ । रे॒भः । न । ज॒र॒ते॒ । ऋ॒षू॒णाम् । जू॒र्णिः । होता॑ । ऋ॒षू॒णाम् ॥ १० ॥ सः । नः॒ । नेदि॑ष्ठम् । ददृ॑शानः । आ । भ॒र॒ । अग्ने॑ । दे॒वेभिः॑ । स॒ऽच॑नाः । सु॒ऽचे॒तुना॑ । म॒हः । रा॒यः । सु॒ऽचे॒तुना॑ ॥ महि॑ । श॒वि॒ष्ठ॒ । नः॒ । कृ॒धि॒ । स॒म्ऽचक्षे॑ । भु॒जे । अ॒स्यै । महि॑ । स्तो॒तृऽभ्यः॑ । म॒घ॒ऽव॒न् । सु॒ऽवीर्य॑म् । मथीः॑ । उ॒ग्रः । न । शव॑सा ॥ ११ ॥ १३ ॥

अ॒यम् । जा॒य॒त॒ । मनु॑षः । धरी॑मणि । होता॑ । यजि॑ष्ठः । उ॒शिजा॑म् । अनु॑ । व्र॒तम् । अ॒ग्निः । स्वम् । अनु॑ । व्र॒तम् ॥ वि॒श्वऽश्रु॑ष्टिः । स॒खि॒ऽय॒ते । र॒यिःऽइ॑व । श्र॒व॒स्य॒ते ॥ अद॑ब्धः । होता॑ । नि । स॒द॒त् । इ॒ळः । प॒दे । परि॑ऽवीतः । इ॒ळः । प॒दे ॥ १ ॥

तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।
स न ऊर्जामुपाभृत्यया कृपा न जूर्यति ।
यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥ २ ॥

एवेन सद्यः पर्यैति पार्थिवं मुहुर्गी रेतो वृषभः कनिक्रदद्दधद्रेतः कनिक्रदत् ।
शतं चक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वणिः ।
सदो दधान उपरेषु सानुष्वग्निः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥

स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति ।
क्रत्वा वेधा इषूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।
यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वेधा अजायत ॥ ४ ॥

तं । यज्ञऽसाधं । अपि । वातयामसि । ऋतस्य । पथा । नमसा । हविष्मता । देवऽताता । हविष्मता ॥ सः । नः । ऊर्जा । उपऽआभृति । अया । कृपा । न । जूर्यति । यं । मातरिश्वा । मनवे । पराऽवतः । देवं । भारिति भाः । पराऽवतः ॥ २ ॥
एवेन । सद्यः । परि । एति । पार्थिवं । मुहुःऽगीः । रेतः । वृषभः । कनिक्रदत् । दधत् । रेतः । कनिक्रदत् ॥ शतं । चक्षाणः । अक्षऽभिः । देवः । वनेषु । तुर्वणिः ॥ सदः । दधानः । उपरेषु । सानुषु । अग्निः । परेषु । सानुषु ॥ ३ ॥ सः । सुऽक्रतुः । पुरःऽहितः । दमेऽदमे । अग्निः । यज्ञस्य । अध्वरस्य । चेतति । क्रत्वा । यज्ञस्य । चेतति ॥ क्रत्वा । वेधाः । इषुऽयते । विश्वा । जातानि । पस्पशे । यतः । घृतऽश्रीः । अतिथिः । अजायत । वह्निः । वेधाः । अजायत ॥ ४ ॥

क्रत्वा यदस्य तविषीषु पृञ्चतेऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्येषिराय न भोज्या।
स हि ष्मा दानमिन्वति वसूनां च मज्मना।
स नस्त्रासते दुरितादभिहुतः शंसादघादभिहुतः ॥ ५ ॥ १४ ॥
विश्वो विहाया अरतिर्वसुर्दधे हस्ते दक्षिणे तरणिर्न शिश्रथच्छ्रवस्यया न शिश्रथत्। विश्वस्मा इदिषुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे।
विश्वस्मा इत्सुकृते वारमृण्वत्यग्निर्द्वारा व्यृण्वति ॥ ६ ॥
स मानुषे वृजने शन्तमो हितो३ऽग्निर्यज्ञेषु जेन्यो न विश्पतिः प्रियो यज्ञेषु विश्पतिः। स हव्या मानुषाणामिळा कृतानि पत्यते।
स नस्त्रासते वरुणस्य धूर्तेर्महो देवस्य धूर्तेः ॥ ७ ॥

क्रत्वा। यत्। अस्य। तविषीषु। पृञ्चते। अग्नेः। अवेन। मरुताम्। न। भोज्या। इषिराय। न। भोज्या ॥ सः। हि। स्म। दानम्। इन्वति। वसूनाम्। च। मज्मना। सः। नः। त्रासते। दुःऽइतात्। अभिऽहुतः। शंसात्। अघात्। अभिऽहुतः ॥ ५ ॥ १४ ॥
विश्वः। विऽहायाः। अरतिः। वसुः। दधे। हस्ते। दक्षिणे। तरणिः। न। शिश्रथत्। श्रवस्यया। न। शिश्रथत् ॥ विश्वस्मै। इत्। इषुध्यते। देवऽत्रा। हव्यम्। आ। ऊहिषे। विश्वस्मै। इत्। सुऽकृते। वारम्। ऋण्वति। अग्निः। द्वारा। वि। ऋण्वति ॥ ६ ॥ सः। मानुषे। वृजने। शम्ऽतमः। हितः। अग्निः। यज्ञेषु। जेन्यः। न। विश्पतिः। प्रियः। यज्ञेषु। विश्पतिः ॥ सः। हव्या। मानुषाणाम्। इळा। कृतानि। पत्यते। सः। नः। त्रासते। वरुणस्य। धूर्तेः। महः। देवस्य। धूर्तेः ॥ ७ ॥

अग्निं होतारमीळते वसुंधितिं प्रियं चेतिष्ठमरतिं न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे ।
विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् ।
देवासो रण्वमवसे वसूयवो गीर्भी रण्वं वसूयवः ॥ ८ ॥ १५ ॥

॥ १२९ ॥ ऋषिः–परुच्छेपः । देवता–इन्द्रः । छन्दः–अत्यष्टिः ॥

॥ १२९ ॥ यं त्वं रथमिन्द्र मेधसातयेऽपाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि । सद्यश्चित्तमभिष्टये करो वशश्च वाजिनम् ।
सास्माकमनवद्य तूतुजान वेधसामिमां वाचं न वेधसाम् ॥ १ ॥
स श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासु चिद्दक्षाय्य इन्द्र भरहूतये नृभिरसि प्रतूर्तये नृभिः । यः शूरैः स्वः सनिता यो विप्रैर्वाजं तरुता ।
तमीशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥ २ ॥

अग्निं । होतारं । ईळते । वसुंऽधितिं । प्रियं । चेतिष्ठं । अरतिं । नि । एरिरे । हव्यऽवाहं । नि । एरिरे ॥ विश्वऽआयुं । विश्वऽवेदसं । होतारं । यजतं । कविं । देवासः । रण्वं । अवसे । वसुऽयवः । गीःऽभिः । रण्वं । वसुऽयवः ॥ ८ ॥ १५ ॥

यं । त्वं । रथं । इंद्र । मेधऽसातये । अपाका । संतं । इषिर । प्रऽनयसि । प्र । अनवद्य । नयसि ॥ सद्यः । चित् । तं । अभिष्टये । करः । वशः । च । वाजिनं । सः । अस्माकं । अनवद्य । तूतुजान । वेधसां । इमां । वाचं । न । वेधसां ॥ १ ॥
सः । श्रुधि । यः । स्म । पृतनासु । कासु । चित् । दक्षाय्यः । इंद्र । भरऽहूतये । नृऽभिः । असि । प्रऽतूर्तये । नृऽभिः ॥ यः । शूरैः । स्वरिति स्वः । सनिता । यः । विप्रैः । वाजं । तरुता । तं । ईशानासः । इरधंत । वाजिनं । पृक्षं । अत्यं । न । वाजिनं ॥ २ ॥

दस्मो हि ष्मा वृषणं पिन्वसि त्वचं कं चिद्यावीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् । इन्द्रोत तुभ्यं तद्दिवे तद्रुद्राय स्वयशसे ।
मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृळीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥
अस्माकं व इन्द्रमुश्मसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् । अस्माकं ब्रह्मोतयेऽवा पृत्सुषु कासु चित् ।
नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोषि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥ ४ ॥
नि षू नमातिमतिं कयस्य चित्तेजिष्ठाभिररणिभिर्नोतिभिरुग्राभिरुग्रोतिभिः ।
नेषि णो यथा पुरानेनाः शूर मन्यसे ।
विश्वानि पूरोरप पर्षि वह्निरासा वह्निर्नो अच्छ ॥ ५ ॥ १६ ॥

दस्मः । हि । स्म । वृषणं । पिन्वसि । त्वचं । कं । चित् । यावीः । अररुं । शूर । मर्त्यं । परिऽवृणक्षि । मर्त्यं ॥ इंद्र । उत । तुभ्यं । तत् । दिवे । तत् । रुद्राय । स्वऽयशसे । मित्राय । वोचं । वरुणाय । सऽप्रथः । सुऽमृळीकाय । सऽप्रथः ॥ ३ ॥
अस्माकं । वः । इंद्रं । उश्मसि । इष्टये । सखायं । विश्वऽआयुं । प्रऽसहं । युजं । वाजेषु । प्रऽसहं । युजं ॥ अस्माकं । ब्रह्म । ऊतये । अव । पृत्सुषु । कासु । चित् । नहि । त्वा । शत्रुः । स्तरते । स्तृणोषि । यं । विश्वं । शत्रुं । स्तृणोषि । यं ॥ ४ ॥ नि । सु । नम । अतिऽमतिं । कयस्य । चित् । तेजिष्ठाभिः । अरणिऽभिः । न । ऊतिऽभिः । उग्राभिः । उग्र । ऊतिऽभिः ॥ नेषि । नः । यथा । पुरा । अनेनाः । शूर । मन्यसे । विश्वानि । पुरोः । अप । पर्षि । वह्निः । आसा । वह्निः । नः । अच्छ ॥ ५ ॥ १६ ॥

प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान्मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति ।
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।
अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥ ६ ॥
वनेम तद्धोत्रया चितन्त्या वनेम रयिं रयिवः सुवीर्यं रण्वं सन्तं सुवीर्यम् ।
दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृचीमहि ।
आ सत्याभिरिन्द्रं द्युम्नहूतिभिर्यजत्रं द्युम्नहूतिभिः ॥ ७ ॥
प्रप्रा वो अस्मे स्वयशोभिरूती परिवर्ग इन्द्रो दुर्मतीनां दरीमन्दुर्मतीनाम् ।
स्वयं सा रिषयध्यै या न उपेषे अत्रैः ।
हतेमसन्न वक्षति क्षिप्ता जूर्णिर्न वक्षति ॥ ८ ॥

प्र । तत् । वोचेयं । भव्याय । इन्दवे । हव्यः । न । यः । इषऽवान । मन्म । रेजति । रक्षःऽहा । मन्म । रेजति ॥ स्वयं । सः । अस्मत् । आ । निदः । वधैः । अजेत । दुःऽमतिं । अव । स्रवेत् । अघऽशंसः । अवऽतरं । अव । क्षुद्रंऽइव । स्रवेत् ॥ ६ ॥ वनेम । तत् । होत्रया । चितन्त्या । वनेम । रयिं । रयिऽवः । सुऽवीर्यं । रण्वं । सन्तं । सुऽवीर्यं ॥ दुःऽमन्मानं । सुमन्तुऽभिः । आ । ईं । इषा । पृचीमहि । आ । सत्याभिः । इन्द्रं । द्युम्नहूतिऽभिः । यजत्रं । द्युम्नहूतिऽभिः ॥ ७ ॥ प्रऽप्र । वः । अस्मे इति । स्वयशःऽभिः । ऊती । परिऽवर्गे । इन्द्रः । दुःऽमतीनां । दरीमन् । दुःऽमतीनां ॥ स्वयं । सा । रिषयध्यै । या । नः । उपऽईषे । अत्रैः । हता । ईं । असत् । न । वक्षति । क्षिप्ता । जूर्णिः । न । वक्षति ॥ ८ ॥

त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथाँ अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा ।
सचस्व नः पराक आ सचस्वास्तमीक आ ।
पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः सदा पाह्यभिष्टिभिः ॥ ९ ॥
त्वं न इन्द्र राया तरूषसोग्रं चित्त्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे ।
ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कं चिदमर्त्य ।
अन्यमस्मद्रिरिषेः कं चिदद्रिवो रिरिक्षन्तं चिदद्रिवः ॥ १० ॥
पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्रिधोऽवयाता सदमिद्दुर्मतीनां देवः सन्दुर्मतीनाम् ।
हन्ता पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः ।
अधा हि त्वा जनिता जीजनद्वसो रक्षोहणं त्वा जीजनद्वसो ॥ ११ ॥१७॥

त्वं । नः । इंद्र । राया । परीणसा । याहि । पथा । अनेहसा । पुरः । याहि । अर-क्षसा ॥ सचस्व । नः । पराके । आ । सचस्व । अस्तंऽईके । आ । पाहि । नः । दूरात् । आरात् । अभिष्टिंऽभिः । सदा । पाहि । अभिष्टिंऽभिः ॥ ९ ॥ त्वं । नः । इंद्र । राया । तरूषसा । उग्रं । चित् । त्वा । महिमा । सक्षत् । अवसे । महे । मित्रं । न । अवसे ॥ ओजिष्ठ । त्रातः । अवितरिति । रथं । कं । चित् । अमर्त्य । अन्यं । अस्मत् । रिरिषेः । कं । चित् । अद्रिऽवः । रिरिक्षंतं । चित् । अद्रिऽवः ॥ १० ॥ पाहि । नः । इंद्र । सुऽस्तुत । स्रिधः । अवऽयाता । सदं । इत् । दुःऽमतीनां । देवः । सन् । दुःऽमतीनां ॥ हंता । पापस्य । रक्षसः । त्राता । विप्रस्य । माऽवतः । अध । हि । त्वा । जनिता । जीजनत् । वसो इति । रक्षःऽहनं । त्वा । जीजनत् । वसो इति ॥ ११ ॥ १७ ॥

॥ १३० ॥ ऋषिः–परुच्छेपः । देवता–इन्द्रः । छन्दः–अत्यष्टिः ॥

॥१३०॥ एन्द्र याह्युप नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पति-
रस्तं राजेव सत्पतिः । हवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सचा ।
पुत्रासो न पितरं वाजसातये मंहिष्ठं वाजसातये ॥ १ ॥
पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिक्तमवतं न वंसगस्तातृषाणो
न वंसगः । मदाय हर्यताय ते तुविष्टमाय धायसे ।
आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहा विश्वेव सूर्यम् ॥ २ ॥
अविन्दद्दिवो निहितं गुहा निधिं वेर्न गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि ।
व्रजं वज्री गवामिव सिषासन्नङ्गिरस्तमः ।
अपावृणोदिष इन्द्रः परीवृता द्वार इषः परीवृताः ॥ ३ ॥

आ । इंद्र । याहि । उप । नः । पराऽवतः । न । अयं । अच्छ । विदथानिऽइव । सत्ऽपतिः । अस्तं । राजाऽइव । सत्ऽपतिः ॥ हवामहे । त्वा । वयं । प्रयस्वंतः । सुते । सचा । पुत्रासः । न । पितरं । वाजऽसातये । मंहिष्ठं । वाजऽसातये ॥ १ ॥
पिब । सोमं । इंद्र । सुवानं । अद्रिऽभिः । कोशेन । सिक्तं । अवतं । न । वंसगः । ततृषाणः । न । वंसगः ॥ मदाय । हर्यताय । ते । तुविःऽतमाय । धायसे । आ । त्वा । यच्छंतु । हरितः । न । सूर्यं । अहा । विश्वाऽइव । सूर्यं ॥ २ ॥ अविंदत् । दिवः । निऽहितं । गुहा । निऽधिं । वेः । न । गर्भं । परिऽवीतं । अश्मनि । अनंते । अंतः । अश्मनि ॥ व्रजं । वज्री । गवांऽइव । सिसासन् । अंगिरःऽतमः । अप । अवृणोत् । इषः । इंद्रः । परिऽवृताः । द्वारः । इषः । परिऽवृताः ॥ ३ ॥

दाद्दहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षद्मेव तिग्ममसनाय सं श्यदहिहत्याय सं श्यत्। संविव्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्मना।
तष्टेव वृक्षं वनिनो नि वृश्चसि परश्वेव नि वृश्चसि ॥ ४ ॥

त्वं वृथा नद्य इन्द्र सर्तवेऽच्छा समुद्रमसृजो रथाँ इव वाजयतो रथाँ इव।
इत ऊतीरयुञ्जत समानमर्थमक्षितम्।
धेनूरिव मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥ ५ ॥ १८ ॥

इमां ते वाचं वसूयन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुम्नाय त्वामतक्षिषुः। शुम्भन्तो जेन्यं यथा वाजेषु विप्र वाजिनम्।
अत्यमिव शवसे सातये धना विश्वा धनानि सातये ॥ ६ ॥

दद्दहाणः। वज्रं। इंद्रः। गभस्त्योः। क्षद्मऽइव। तिग्मं। असनाय। सं। श्यत्। अहिऽहत्याय। सं। श्यत्॥ संऽविव्यानः। ओजसा। शवःऽभिः। इंद्र। मज्मना। तष्टाऽइव। वृक्षं। वनिनः। नि। वृश्चसि। परश्वाऽइव। नि। वृश्चसि ॥ ४ ॥
त्वं। वृथा। नद्यः। इंद्र। सर्तवे। अच्छ। समुद्रं। असृजः। रथान्ऽइव। वाजऽयतः। रथान्ऽइव॥ इतः। ऊतीः। अयुंजत। समानं। अर्थं। अक्षितं। धेनूःऽइव। मनवे। विश्वऽदोहसः। जनाय। विश्वऽदोहसः ॥ ५ ॥ १८ ॥ इमां। ते। वाचं। वसुऽयंतः। आयवः। रथं। न। धीरः। सुऽअपाः। अतक्षिषुः। सुम्नाय। त्वां। अतक्षिषुः॥ शुंभंतः। जेन्यं। यथा। वाजेषु। विप्र। वाजिनं। अत्यंऽइव। शवसे। सातये। धना। विश्वा। धनानि। सातये ॥ ६ ॥

भिनत्पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो वज्रेण दाशुषे नृतो । अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥ ७ ॥
इन्द्रः समत्सु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु ।
मनवे शासदव्रतान्त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्न विश्वं ततृषाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥ ८ ॥
सूरश्चक्रं प्र बृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायतीशान आ मुषायति । उशना यत्परावतोऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥ ९ ॥
स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां दर्तः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
दिवोदासेभिरिन्द्र स्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥ १० ॥ १९ ॥

भिनत् । पुरः । नवतिं । इंद्र । पूरवे । दिवःऽदासाय । महि । दाशुषे । नृतो इति । वज्रेण । दाशुषे । नृतो इति ॥ अतिथिऽग्वाय । शंबरं । गिरेः । उग्रः । अव । अभरत् । महः । धनानि । दयमानः । ओजसा । विश्वा । धनानि । ओजसा ॥ ७ ॥
इंद्रः । समत्ऽसु । यजमानं । आर्यं । प्र । आवत् । विश्वेषु । शतम्ऽऊतिः । आजिषु । स्वःऽमीळ्हेषु । आजिषु ॥ मनवे । शासत् । अव्रतान् । त्वचं । कृष्णां । अरंधयत् । धक्षत् । न । विश्वं । ततृषाणं । ओषति । नि । अर्शसानं । ओषति ॥ ८ ॥
सूरः । चक्रं । प्र । बृहत् । जातः । ओजसा । प्रऽपित्वे । वाचं । अरुणः । मुषायति । ईशानः । आ । मुषायति ॥ उशना । यत् । पराऽवतः । अजगन् । ऊतये । कवे । सुम्नानि । विश्वा । मनुषाऽइव । तुर्वणिः । अहा । विश्वाऽइव । तुर्वणिः ॥ ९ ॥
सः । नः । नव्येभिः । वृषऽकर्मन् । उक्थैः । पुरां । दर्तरिति दर्तः । पायुऽभिः । पाहि । शग्मैः । दिवःऽदासेभिः । इंद्र । स्तवानः । ववृधीथाः । अहोभिःऽइव । द्यौः ॥ १० ॥ १९ ॥

॥ १३१ ॥ ऋषिः-परुच्छेपः । देवता-इन्द्रः । छन्दः-अत्यष्टिः ॥

॥ १३१ ॥ इन्द्राय हि द्यौरसुरो अनम्नतेन्द्राय मही पृथिवी वरीमभिर्द्युम्नसाता वरीमभिः । इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥ १ ॥
विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जते समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सनिष्यवः पृथक् । तं त्वा नावं न पर्षणिं शूषस्य धुरि धीमहि ।
इन्द्रं न यज्ञैश्चितयन्त आयवः स्तोमेभिरिन्द्रमायवः ॥ २ ॥
वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो व्रजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः । यद्गव्यन्ता द्वा जना स्वर्यन्ता समूहसि ।
आविष्करिक्रद्वृषणं सचाभुवं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥ ३ ॥

इंद्राय । हि । द्यौः । असुरः । अनम्नत । इंद्राय । मही । पृथिवी । वरीमऽभिः । द्युम्नऽसाता । वरीमऽभिः ॥ इंद्रं । विश्वे । सऽजोषसः । देवासः । दधिरे । पुरः । इंद्राय । विश्वा । सवनानि । मानुषा । रातानि । संतु । मानुषा ॥ १ ॥
विश्वेषु । हि । त्वा । सवनेषु । तुंजते । समानं । एकं । वृषऽमन्यवः । पृथक् । स्वरितिं स्वः । सनिष्यवः । पृथक् ॥ तं । त्वा । नावं । न । पर्षणिं । शूषस्य । धुरि । धीमहि । इंद्रं । न । यज्ञैः । चितयंतः । आयवः । स्तोमेभिः । इंद्रं । आयवः ॥ २ ॥
वि । त्वा । ततस्रे । मिथुनाः । अवस्यवः । व्रजस्य । साता । गव्यस्य । निःऽसृजः । सक्षंतः । इंद्र । निःऽसृजः ॥ यत् । गव्यंता । द्वा । जना । स्वः । यंता । संऽऊहसि । आविः । करिक्रत् । वृषणं । सचाऽभुवं । वज्रं । इंद्र । सचाऽभुवं ॥ ३ ॥

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः ।
शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते ।
महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥ ४ ॥
आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।
चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे ।
ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥
उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्षाता
हवीमभिः । यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि ।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६ ॥
त्वं तमिन्द्र वावृधानो अस्मयुरमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूर मर्त्यम् ।
जहि यो नो अघायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।
रिष्टं न यामन्नप भूतु दुर्मतिर्विश्वाप भूतु दुर्मतिः ॥ ७ ॥ २० ॥

विदुः । ते । अस्य । वीर्यस्य । पूरवः । पुरः । यत् । इंद्र । शारदीः । अवऽअतिरः ।
ससहानः । अवऽअतिरः ॥ शासः । तं । इंद्र । मर्त्यं । अयज्युं । शवसः । पते । महीं ।
अमुष्णाः । पृथिवीं । इमाः । अपः । मंदसानः । इमाः । अपः ॥ ४ ॥ आत् । इत् ।
ते । अस्य । वीर्यस्य । चर्किरन् । मदेषु । वृषन् । उशिजः । यत् । आविथ ।
सखिऽयतः । यत् । आविथ ॥ चकर्थ । कारं । एभ्यः । पृतनासु । प्रऽवंतवे । ते ।
अन्याऽअन्यां । नद्यं । सनिष्णत । श्रवस्यंतः । सनिष्णत ॥ ५ ॥ उतो इति । नः ।
अस्याः । उषसः । जुषेत । हि । अर्कस्य । बोधि । हविषः । हवीमऽभिः । स्वःऽसाता ।
हवीमऽभिः ॥ यत् । इंद्र । हंतवे । मृधः । वृषा । वज्रिन् । चिकेतसि । आ । मे ।
अस्य । वेधसः । नवीयसः । मन्म । श्रुधि । नवीयसः ॥ ६ ॥ त्वं । तं । इंद्र ।
ववृधानः । अस्मऽयुः । अमित्रऽयंतं । तुविऽजात । मर्त्यं । वज्रेण । शूर । मर्त्यं ॥
जहि । यः । नः । अघऽयति । शृणुष्व । सुश्रवःऽतमः । रिष्टं । न । यामन् । अप ।
भूतु । दुःऽमतिः । विश्वा । अप । भूतु । दुःऽमतिः ॥ ७ ॥ २० ॥

॥ १३२ ॥ ऋषिः—परुच्छेपः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—अत्यष्टिः ॥

॥ १३२ ॥ त्वया॑ व॒यं म॑घवन्पू॒र्व्ये धन॒ इन्द्र॑त्वोताः सासह्याम पृतन्य॒तो
व॑नु॒याम॑ वनुष्य॒तः । नेदि॑ष्ठे अ॒स्मिन्नह॒न्यधि॑ वोचा॒ नु सु॑न्व॒ते ।
अ॒स्मिन्य॒ज्ञे वि च॑येमा॒ भरे॑ कृ॒तं वा॑ज॒यन्तो॒ भरे॑ कृ॒तम् ॥ १ ॥
स्व॒र्जेषे॒ भर॑ आ॒प्रस्य॒ वक्म॑न्युष॒र्बुधः॒ स्वस्मि॒न्नञ्ज॑सि क्रा॒णस्य॒ स्वस्मि॒न्नञ्ज॑सि ।
अह॒न्निन्द्रो॒ यथा॑ वि॒दे शी॒र्ष्णाशी॑र्ष्णोपवा॒च्यः॑ ।
अ॒स्म॒त्रा ते॑ स॒ध्र्य॑क्सन्तु रा॒तयो॑ भ॒द्रा भ॒द्रस्य॑ रा॒तयः॑ ॥ २ ॥
नत्तु प्रयः॑ प्र॒त्नथा॑ ते शुशु॒कनं॑ यस्मि॑न्य॒ज्ञे वार॒मकृ॑ण्वत॒ क्षय॑मृ॒तस्य॒ वार॑सि॒
क्षय॑म् । वि तद्वो॑चे॒रध॑ द्वि॒तान्तः प॑श्यन्ति र॒श्मिभिः॑ ।
स घा॑ वि॒दे अन्विन्द्रो॑ ग॒वेष॑णो बन्धु॒क्षिद्भ्यो॑ ग॒वेष॑णः ॥ ३ ॥

त्वया॑ । व॒यं । म॒घ॒ऽव॒न् । पू॒र्व्ये । धने॑ । इन्द्र॑त्वाऽऊताः । स॒स॒ह्या॒म॒ । पृ॒त॒न्य॒तः ।
व॒नु॒याम॑ । व॒नु॒ष्य॒तः ॥ नेदि॑ष्ठे । अ॒स्मिन् । अह॑नि । अधि॑ । वो॒च॒ । नु । सु॒न्व॒ते ।
अ॒स्मिन् । य॒ज्ञे । वि । च॒ये॒म॒ । भरे॑ । कृ॒तं । वा॒ज॒ऽयन्तः॑ । भरे॑ । कृ॒तं ॥ १ ॥
स्वः॒ऽजेषे॑ । भरे॑ । आ॒प्रस्य॑ । वक्म॑नि । उ॒षः॒ऽबुधः॑ । स्वस्मि॑न् । अञ्ज॑सि । क्रा॒णस्य॑ ।
स्वस्मि॑न् । अञ्ज॑सि ॥ अह॑न् । इन्द्रः॑ । यथा॑ । वि॒दे । शी॒र्ष्णाऽशी॑र्ष्णा । उ॒प॒ऽवा॒च्यः॑ ।
अ॒स्म॒ऽत्रा । ते॒ । स॒ध्र्य॑क् । स॒न्तु॒ । रा॒तयः॑ । भ॒द्राः । भ॒द्रस्य॑ । रा॒तयः॑ ॥ २ ॥
नत् । तु । प्रयः॑ । प्र॒त्नऽथा॑ । ते॒ । शु॒शु॒कनं॑ । यस्मि॑न् । य॒ज्ञे । वार॑म् । अकृ॑ण्वत ।
क्षय॑म् । ऋ॒तस्य॑ । वाः । अ॒सि॒ । क्षय॑म् ॥ वि । तत् । वो॒चेः॒ । अध॑ । द्वि॒ता । अ॒न्तः । इति॑ ।
प॒श्य॒न्ति॒ । र॒श्मिऽभिः॑ । सः । घ॒ । वि॒दे॒ । अनु॑ । इन्द्रः॑ । गो॒ऽएष॑णः । ब॒न्धु॒क्षित्ऽभ्यः॑ ।
गो॒ऽएष॑णः ॥ ३ ॥

नू इत्था ते पूर्वथा च प्रवाच्यं यदङ्गिरोभ्योऽवृणोरप व्रजमिन्द्र शिक्षन्नप व्रजम् । ऐभ्यः समान्या दिशास्मभ्यं जेषि योत्सि च ।
सुन्वद्भ्यो रन्धया कं चिदव्रतं हृणायन्तं चिदव्रतम् ॥ ४ ॥
सं यज्जनान् क्रतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते तरुषन्त श्रवस्यवः प्र यक्षन्त श्रवस्यवः । तस्मा आयुः प्रजावदिद्बाधे अर्चन्त्योजसा ।
इन्द्र ओक्यं दिधिषन्त धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ ५ ॥
युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तन्तमिद्धतं वज्रेण तन्तमिद्धतम् । दूरे चत्ताय छन्त्सद्गहनं यदिनक्षत् ।
अस्माकं शत्रून्परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः ॥ ६ ॥ २१ ॥

नु । इत्था । ते । पूर्वऽथा । च । प्रऽवाच्यं । यत् । अंगिरःऽभ्यः । अवृणोः । अप । व्रजं । इंद्र । शिक्षन् । अप । व्रजं ॥ आ । एभ्यः । समान्या । दिशा । अस्मभ्यं । जेषि । योत्सि । च । सुन्वत्ऽभ्यः । रंधय । कं । चित् । अव्रतं । हृणायंतं । चित् । अव्रतं ॥ ४ ॥ सं । यत् । जनान् । क्रतुऽभिः । शूरः । ईक्षयत् । धने । हिते । तरुषंत । श्रवस्यवः । प्र । यक्षंत । श्रवस्यवः ॥ तस्मै । आयुः । प्रजाऽवत् । इत् । बाधे । अर्चंति । ओजसा । इंद्रे । ओक्यं । दिधिषंत । धीतयः । देवान् । अच्छ । न । धीतयः ॥ ५ ॥ युवं । तं । इंद्रापर्वता । पुरःऽयुधा । यः । नः । पृतन्यात् । अप । तंऽतं । इत् । हतं । वज्रेण । तंऽतं । इत् । हतं ॥ दूरे । चत्ताय । छंत्सत् । गहनं । यत् । इनक्षत् । अस्माकं । शत्रून् । परि । शूर । विश्वतः । दर्मा । दर्षीष्ट । विश्वतः ॥ ६ ॥

॥ १३३ ॥ ऋषिः—परुच्छेप । देवता—इन्द्रः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥ १३३ ॥ उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो दहामि सं महीरनिन्द्राः ।
अभिव्लग्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परि तृळ्हा अशेरन् ॥ १ ॥

अभिव्लग्या चिदद्रिवः शीर्षा यातुमतीनाम् ।
छिन्धि वटूरिणा पदा महावटूरिणा पदा ॥ २ ॥

अवासां मघवन् जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ ३ ॥

यासां तिस्रः पञ्चाशतोऽभिव्लङ्गैरपावपः ।
तत्सु ते मनायति तकत्सु ते मनायति ॥ ४ ॥

पिशङ्गभृष्टिमम्भृणं पिशाचिमिन्द्र सं मृण ।
सर्वं रक्षो नि बर्हय ॥ ५ ॥

उभे इति । पुनामि । रोदसी इति । ऋतेन । द्रुहः । दहामि । सं । महीः । अनिन्द्राः । अभिऽव्लग्य । यत्र । हताः । अमित्राः । वैलऽस्थानं । परि । तृळ्हाः । अशेरन् ॥ १ ॥ अभिऽव्लग्य । चित् । अद्रिऽवः । शीर्षा । यातुऽमतीनां । छिन्धि । वटूरिणा । पदा । महाऽवटूरिणा । पदा ॥ २ ॥ अव । आसां । मघऽवन् । जहि । शर्धः । यातुऽमतीनां । वैलऽस्थानके । अर्मके । महाऽवैलस्थे । अर्मके ॥ ३ ॥ यासां । तिस्रः । पञ्चाशतः । अभिऽव्लङ्गैः । अपाऽअवपः । तत् । सु । ते । मनायति । तकत् । सु । ते । मनायति ॥४॥ पिशङ्गऽभृष्टिं । अम्भृणं । पिशाचिं । इन्द्र । सं । मृण । सर्वं । रक्षः । नि । बर्हय ॥ ५ ॥

अवर्मह इन्द्र दादृहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षा न भीषाँ अद्रिवो घृणान्न भीषाँ अद्रिवः ॥ शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिर्वधैरुग्रेभिरीयसे । अपूरुषघ्नो अप्रतीत शूर सत्वभिस्त्रिसप्तैः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥

वनोति हि सुन्वन्क्षयं परीणसः सुन्वानो हि ष्मा यजत्यव द्विषो देवानामव द्विषः । सुन्वान इत्सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः । सुन्वानायेन्द्रो ददात्याभुवं रयिं ददात्याभुवम् ॥ ७ ॥ २२ ॥ १९ ॥

अवः । महः । इंद्र । ददृहि । श्रुधि । नः । शुशोचं । हि । द्यौः । क्षाः । न । भीषा । अद्रिऽवः । घृणात् । न । भीषा । अद्रिऽवः ॥ शुष्मिनऽतंमः । हि । शुष्मिऽभिः । वधैः । उग्रेभिः । ईयसे । अपुरुषऽघ्नः । अप्रतिऽइत । शूर । सत्वंऽभिः । त्रिऽसप्तैः । शूर । सत्वंऽभिः ॥ ६ ॥ वनोति । हि । सुन्वन् । क्षयं । परीणसः । सुन्वानः । हि । स्म । यजति । अवं । द्विषः । देवानां । अवं । द्विषः ॥ सुन्वानः । इत् । सिसासति । सहस्रा । वाजी । अवृतः । सुन्वानायं । इंद्रः । ददाति । आऽभुवं । रयिं । ददाति । आऽभुवं ॥ ७ ॥ २२ ॥ १९ ॥

॥ विंशोऽनुवाकः ॥

॥ ११४ ॥ ऋषिः-परुच्छेपः । देवता-वायुः । छन्दः-अत्यष्टिः ॥

॥ ११४ ॥ आ त्वा जुवों रारहाणा अभि प्रयो वायो वहन्त्विह पूर्वपीतये सोमस्य पूर्वपीतये । ऊर्ध्वा ते अनु सूनृता मनस्तिष्ठतु जानती । नियुत्वता रथेना याहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥

मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वायविन्दवोऽस्मत्क्राणासः सुकृता अभिद्यवो गोभिः क्राणा अभिद्यवः ॥ यद्ध क्राणा इरध्यै दक्षं सचन्त ऊतयः । सध्रीचीना नियुतो दावने धिय उप ब्रुवत ईं धियः ॥ २ ॥

वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥ प्र बोधया पुरंधिं जार आ ससतीमिव । प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥ ३ ॥

आ । त्वा । जुवः । ररहाणाः । अभि । प्रयः । वायो इति । वहन्तु । इह । पूर्वऽपीतये । सोमस्य । पूर्वऽपीतये ॥ ऊर्ध्वा । ते । अनु । सूनृता । मनः । तिष्ठतु । जानती । नियुत्वता । रथेन । आ । याहि । दावने । वायो इति । मखस्य । दावने ॥१॥ मंदंतु । त्वा । मंदिनः । वायो इति । इंदवः । अस्मत् । क्राणासः । सुऽकृताः । अभिऽद्यवः । गोभिः । क्राणाः । अभिऽद्यवः ॥ यत् । ह । क्राणाः । इरध्यै । दक्षं । सचंते । ऊतयः । सध्रीचीनाः । निऽयुतः । दावने । धियः । उप । ब्रुवते । ईं । धियः ॥ २ ॥ वायुः । युंक्ते । रोहिता । वायुः । अरुणा । वायुः । रथे । अजिरा । धुरि । वोळ्हवे । वहिष्ठा । धुरि । वोळ्हवे ॥ प्र । बोधय । पुरंऽधिं । जारः । आ । ससतींऽइव । प्र । चक्षय । रोदसी इति । वासय । उषसः । श्रवसे । वासय । उषसः ॥ ३ ॥

तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु चित्रा नव्येषु रश्मिषु । तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते ।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥
तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेषूग्रा इषणन्त भुर्वण्यपामिषन्त भुर्वणि ।
त्वां त्सारी दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये ।
त्वं विश्वस्माद्भुवनात्पासि धर्मणासुर्यात्पासि धर्मणा ॥ ५ ॥
त्वं नो वायवेषामपूर्व्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।
उतो विहुत्मतीनां विशां ववर्जुषीणाम् ।
विश्वा इत्ते धेनवो दुह्र आशिरं घृतं दुह्रत आशिरम् ॥ ६ ॥ २३ ॥

तुभ्यं । उषसः । शुचयः । पराऽवति । भद्रा । वस्त्रा । तन्वते । दंऽसु । रश्मिषु । चित्रा । नव्येषु । रश्मिषु ॥ तुभ्यं । धेनुः । सबःऽदुघा । विश्वा । वसूनि । दोहते । अजनयः । मरुतः । वक्षणाभ्यः । दिवः । आ । वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥ तुभ्यं । शुक्रासः । शुचयः । तुरण्यवः । मदेषु । उग्राः । इषणंत । भुर्वणि । अपां । इषंत । भुर्वणि ॥ त्वां । त्सारी । दसमानः । भगं । ईट्टे । तक्वऽवीये । त्वं । विश्वस्मात् । भुवनात् । पासि । धर्मणा । असुर्यात् । पासि । धर्मणा ॥ ५ ॥ त्वं । नः । वायो इति । एषां । अपूर्व्यः । सोमानां । प्रथमः । पीतिं । अर्हसि । सुतानां । पीतिं । अर्हसि ॥ उतो इति । विहुत्मतीनां । विशां । ववर्जुषीणां । विश्वाः । इत् । ते । धेनवः । दुह्रे । आऽशिरं । घृतं । दुह्रते । आऽशिरं ॥ ६ ॥ २३ ॥

द्वितीय अष्टक । प्रथम मण्डल ।

॥ ऋग्वेद ॥

[प्रथम अध्याय] [अष्टादश अनुवाक]

सूक्त १२२.

॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–विश्वेदेव ॥

हे ऋत्विज, आप बड़े उत्साही और चञ्चल हैं। अब अपना पेय, हवि और यज्ञ रुद्रको अर्पण कीजिये। आप (रुद्र) सिद्धि देनेवाले हैं। आकाशमें रहनेवाले परमेश्वरकी कृपासे वे पराक्रमी मरुत् अन्तरिक्षमें अपने बलसे रहते हैं। १

प्रथम आहुति पूर्ण उत्साहके साथ अर्पण करनेके लिये उषा और रात्रिकी कृपा प्राप्त करनी चाहिये। उषा और रात्रि नूतन वधूकी नाईं अपने शरीरको शोभायमान करती हैं। उनमेंसे एक (रात्रि) बिजलीरूपी वस्त्र पहिनकर चमकती है, और दूसरी (उषा) प्रातःकालमें सूर्यके किरणोंसे शोभायमान दिखाई देती है। २

अन्धकारका नाश करनेवाला और आकाशमें सञ्चार करनेवाला सूर्य हमें आनन्दित करें। जलकी वर्षा करनेवाला वायु हमें आनन्दित करें। हे इन्द्र और पर्वत, हमारी बुद्धि कुशाग्र होवें; और सब देव मिलकर हमें सब वस्तुओंका लाभ करा दें। ३

मैं उशिजाका पुत्र हूं। आप संसारका पालन करनेवाले हैं। आपका कभी नाश नहीं होता है। आप दोनों यश देनेवाले हैं और इसलिये प्रातःकालके समय में आपको (दोनों अश्विनको) बुलाता हूं। आप अपने अग्निकी क्रमसे स्तुति कीजिये। अग्निको प्रकट करनेवाली दोनों लकड़ियोंको अपने सामने रखिये। यह अग्नि आकाशमें रहनेवाले जलमें भी प्रकट होता है। बडे जोरसे चिल्लाकर यह अग्नि अपने भक्तोंको आशीस देता है। ४

---

१ हे रत्नुमन्यवः (यूयं) वः पान्तं अंधः यज्ञं (च) मीळ्हुषे रुद्राय प्र भरध्वम्, (अहच) असुरस्य दिवः वीरैः इषुध्येव रोदस्योः (स्थितान्) मरुतः अस्तोषि।

२ पूर्वहूतिं वव्रधध्यै उषसानक्ता पुरुधा विदाने (स्तवनीये)। (तयोः एका) स्तरीः न व्युतं अत्क वसाना, (अपरा) सूर्यस्य श्रिया हिरण्यैः (इव) सुदृशी।

३ परिज्मा वसर्हा नः ममत्तु, अपां वृषण्वान् वातः ममत्तु, हे इन्द्रापर्वता युवः नः शिशीतम्, तत् विश्वेदेवाः नः वरिवस्यन्तु।

४ उत औशिजः श्वेतनार्य, त्या मे यशसा व्यता पांता हुवध्यै (प्रवृत्तः), (यूयं) वः अपां नपातं प्र कृणुध्वम्, रस्पिनस्य आयोः मातरा प्र (कृणुध्वम्)।

मैं उशिजाका पुत्र हूं। आपके लिये जोरसे चिल्लानेवाले अग्निकी मैं स्तुति करता हूं। कोढ रोगका नाश होनेके लिये घोषाने भी इस प्रकार आपकी स्तुति की थी। आपहीके लिये दानी पूषाकी कृपा मैं प्राप्त कर लेता हूं और धनका लाभ होनेके लिये मैं अग्निसे प्रार्थना करता हूं। ५(१)

हे मित्र और वरुण, मेरी पुकारकी ओर ध्यान दीजिये। जब आप अपने घरमें रहते हैं तब भी मेरी प्रार्थनाकी ओर ध्यान दीजिये। चारों तरफसे मैं आपकी प्रार्थना करता हूं। हमारी पुकार शीघ्रतासे सुननेवाला सिन्धु भी हमारी स्तुति सुने। आपका दान सबको विदित ही है। यह सिन्धु उपजाऊ प्रदेशको अपने जलसे भर देता है। ६

हे मित्र और वरुण, पज्र कुलमें उत्पन्न हुए मुझको अनेक यज्ञके समय आपने सैंकडों गौधनका दान प्रदान किया हैं। उसका स्मरण करके मैं आपके दानी स्वभावकी बडी स्तुति करता हूं। जिनके रथका दर्शन होते ही प्रेम उत्पन्न होता है वे मित्र और वरुण रथमें बैठकर वैभवके साथ आते हैं। ७

जिनका वैभव बहुत बडा है उन (परमेश्वरके) दानी स्वभावकी मैं बहुत प्रशंसा करता हूं। आप बडे पराक्रमी है। हम सब मिलकर आपके गुणोंकी प्रशंसा करते हैं। पज्र कुलमें उत्पन्न हुए मुझको आपहीने पवित्र सामर्थ्य अर्पण किया। घोडोंपर सवार होकर मुझे सहायता देनेके लिये वीर पुरुषोंके मनमें (बुद्धिवान्) आपही प्रेरणा उत्पन्न करते हैं। ८

हे मित्र और वरुण, खुले तौरपर लोगोंका द्वेष करनेवाले, सोमरसका पान करके आपकी सेवा न करनेवाले, और कपटसे दूसरे लोगोंका नाश करनेवाले दुष्ट लोगोंको जब विदित होता है कि सदाचारी भक्तोंकी सेवा अच्छी तरह सफल हुई है, तब उनके हृदयमें एक प्रकारका रोग (चिन्ता) उत्पन्न होता है। ९

---

५ औशिजः वः (अर्थे) स्वण्युं आ हुवध्यै शंसं (कर्तुं प्रवृत्तः), अर्जुनस्य नशे घोषा इव; वः (अर्थे) दानवे पूष्णे आ प्र (वोचेय), अग्नेः वसुतातिं अच्छ वोचेय।

६ हे मित्रावरुणा मे इमा हवा श्रुतम्, उत सदने (अपि) विश्वतः सीम् श्रुतम्; सुश्रोतुः सिन्धुः नः श्रोतु, (अद्य) श्रोनुरातिः सुक्षेत्रा अद्भिः (पिपर्ति)।

७ हे वरुण मित्र वां वृक्षयामेषु पज्रे (मयि) सा गवां शता रातिः स्तुषे; प्रियरथे श्रुतरथः सद्यः पुष्टिं दधानाः (तांश्च) निरुधानासः अग्मन्।

८ (अहम्) अस्य महिमघस्य राधः स्तुषे, (वयं) सुवीराः नहुषः (अतः) सचा सनेम; (अपिच) यो जनः पज्रेभ्यः वाजिनीवान् (अस्ति), अश्वावतः रथिनः मह्यं सूरिः हि (चास्ति)।

९ मित्रावरुणौ यः जनः अभिध्रुक् वः अपां न सुनोति; अक्ष्णयाध्रुक् च, सः बत् ऋतावा होत्राभिः ईम् आप (इति पश्यति तदा); स्वयं हृदये यक्ष्म नि धत्ते।

दूसरी ओर उपर्युक्त भक्तगणोंकी इतना शीघ्र उत्कर्ष होता है कि सब लोग आश्चर्य करते हैं। पराक्रमी पुरुषोंमें भी वे भक्तगण दिनपर दिन बलवान होते हैं। सब लोगोंमें उनकी कीर्ति बढती हुई सब दूर फैलती है, चाहे जैसा संकट होवे, दानी और पराक्रमी भक्तगण, ऐसे बडे संकटसे भी अपनी रक्षा करते हैं। १०(२)

हे देव, जब भक्तगण आपको बुलाते हैं तब आप शीघ्रतासे आईये। हे देव, भक्तगणको सहज रीतिसे आप अमरत्वका पद दे सकते हैं। आकाशतक आप सहज रीतिसे जा सकते हैं। पराक्रमी पुरुषोंको सहायता देनेवाला कोई नहीं है। आप उनकी प्रार्थना सुनिये। आप उनको ऐसा सामर्थ्य दीजिये जिससे उनकी सब जगह प्रशंसा होवे। ११

प्रत्यक्ष रीतिसे देव कहते हैं कि 'जिन भक्तोंके यज्ञमें दस प्रकारके हवियोंका स्वीकार करनेके लिये हम जाते हैं उन भक्तोंका सामर्थ्य बहुत बढ जाता है'। जो पराक्रम और सामर्थ्यका केवल स्थान है ऐसे सब देव यज्ञमें हमे पवित्र सामर्थ्य प्राप्त करा दे। १२

कभी कभी देव अपने वचनसे कहते हैं कि 'चलिये, ये ऋत्विज दस प्रकारका हविरूपी अन्न लेकर हमारी ओर आये हैं; इसलिये हम उसका स्वीकार करते हैं'। इष्टाश्व अथवा इष्टरश्मि हमारे भक्तोंसे अधिक क्या कर सकते हैं? लोगोंपर अधिकार चलानेवाले और यश सम्पादन करनेवाले हमारे भक्त सचमुच शोभायमान दिखाई देते हैं। १३

कानमें सुवर्णके कुण्डल और गलेमें जेवरका हार पहिने हुए शरीरका लाभ सामर्थ्यवान देवकी कृपासे हमे प्राप्त होवे। स्वयंस्फूर्तिसे हमारे मुखसे निकलनेवाली स्तुति और स्तोत्र देदीप्यमान देव बडे प्रेमसे सुने। १४

---

१० सः (ऋतावा) दंसुजूतः, व्राधतः नहुषः शर्धस्तरः, नरां गूर्तश्रवाः, विश्वासु पृत्सु (सः) विसृष्टरातिः शूरः सदमित् बाळ्हमृत्वा याति।

११ अध मूरः नहुषः हवम् ग्मन्त, हे अमृतस्य मंद्रा राजानः (यूयं) नभोजुवः (तत्) रथवते महिना प्रशस्तये (यथा भवेत् तथा) निरवस्य राधः श्रोत।

१२ यस्य सूरेः दशतयस्य (धासेः) नंशे (वयं आगताः तस्य) एतं शर्ध धाम इति (देवाः) अवोचन्, येषु द्युम्नानि वसुतातिश्च ररन् ते विश्वेदेवाः प्रभृथेषु वाजम् सन्वन्तु।

१३ "यत् द्विः पञ्च अन्ना बिभ्रतः यन्ति (तस्मात्) दशतयस्य धासेः मन्दामहे" (इत्यपि ब्रुवन्ति)। किम् इष्टाश्वो वा इष्टरश्मिर्वा (करिष्यति)। एते ईशा नासः तरुषश्च (भक्ताः) नृन् ऋजते।

१४ (यत्) हिरण्यकर्णं मणिग्रीवम् अर्णः तत् विश्वेदेवाः नः वरिवस्यन्तु। अस्मे उभयेषु (विषये) सद्यः आ जग्मुषीः गिरः उस्राः अर्यः आचकन्तु।

मशर्शारके चार पुत्र और बड़ा बलवान् राजा आयवसके तीन पुत्र मुझे अब सता नहीं सकते। इसका कारण यह है कि, हे मित्र और वरुण, आपका बड़ा रथ अब दिखाई देने लगा है। उसके किरण भी बड़े सुन्दर दिखाई देते हैं। स्वयं वह रथ बड़ा तेजस्वी दिखाई देता है। १५ (३)

सूक्त १२३.

॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–उषा ॥

यह उषा बड़ी सुन्दर दिखाई देती है। देखिये। उषाका बड़ा रथ जोता हुआ बिलकुल तैयार दिखाई देता है। उस रथकी चारों ओर तेजोमय प्रकाशका गोला चमकता हुआ दिखाई देता है। काले अन्धेरेसे बाहर निकलकर प्रकाशमान उषा लोगोंपर उपकार करनेके लिये अपना प्रकाश फैलाती हुई दिखाई देती है। १

जब सब लोग सोते हैं तब उषाही सबसे पहिले जागृत होती है। उषा मनसे भी अधिक पवित्र और सामर्थ्यवान है। आप सबसे श्रेष्ठ हैं। आप सबसे अधिक उदार हैं। हमेशा युवा अवस्थामें रहनेवाली सुन्दर उषा बारबार आकाशमें जन्म लेती है और वहांसे उच्च स्थानसे जगत्की चारों ओर दृष्टि फैंकती है। प्रथम हवि अर्पण करनेके समय सबमें पहिले उषा आ पहुंचती है। २

हे उषादेवी, आप सबसे उच्च स्थानमें जन्म लेती हैं और सब मनुष्योंकी रक्षा करती हैं। प्रत्येक दिनका सुख और दुःखका भाग हरएक मनुष्यको आप बाट देती हैं। हे उषादेवी, आप हमारी ओरसे स्वयं प्रकाशमान सूर्यको ऐसा कहिये कि हम बिलकुल निष्पाप हैं। वह सूर्य अब प्रकाशमान होनेवाला है। वह सबको चैतन्य दिलाता है। ३

प्रत्येक दिन उषादेवी भिन्नभिन्न प्रकारका पोषाक पहिनकर प्रकाशमान होती है। आप सब मनुष्योंको मिलती है। सज्जनलोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये तेजोमय उषादेवी बड़े उत्साहके साथ आ रही है। जगत्में जितनी जितनी सुन्दर वस्तुएं हैं उन सबोंका रस (उपभोग) उषादेवी अपने प्रकाशके द्वारा चख लेती है। ४

---

१५ मशर्शारस्य चत्वारः जिष्णोः आयवसस्य राज्ञः त्रयः शिश्वः मा (अधुना न पीडयन्ति, यतः) हे मित्रावरुणा वां दीर्घाप्साः स्यूमगभस्तिः रथः सूरो न अद्यौत्।

१ दक्षिणायाः (उषसः) पृथु रथः अयोजि, एनम् अमृतासः देवासः आ अस्थुः। अर्या विहाय मानुषाय क्षयाय चिकित्सन्ती कृष्णात् उदस्थात्।

२ विश्वस्मात् भुवनात् पूर्वा अबोधि, (सा) वाजं जयती बृहती सनुत्री, युवतिः पुनर्भूः व्यख्यत्, उषाः पूर्वहूतौ प्रथमा आ अगन्।

३ हे देवी सुजाते उषाः यत् (त्वं) मर्त्यत्रा, अद्य नृभ्यः भागं विभजासि, अत्र देवः दमूना. सविता नः सूर्याय अनागसः इति वोचति।

४ दिवेदिवे नामा अधि दधाना अहना गृहं गृहं अच्छ याति, सिषासन्ती द्योतना च (उषाः) शश्वत् आ अगात्, वसूनाम् (च) अग्रमग्रम् इत् भजते।

हे उषादेवी, यह बात विदित हुई है कि आप भगवान् सूर्यदेवकी बहिन हैं। वरुणदेवकी भी आप नातेदार हैं। हे उषादेवी, सत्य और मनोहर स्तोत्र गानेकी प्रेरणा करनेवाली आपही हैं। सबसे पहले हम आपहीकी स्तुति करते हैं। पापकर्म करनेवाला जो मनुष्य है वह ठोकर खाकर नीचे गिर जाय। आप सदाचारी हैं; इस लिये आपकी सहायतासे हम पापी मनुष्यका एक क्षणमें नाश कर सकेंगे। ५(४)

अब हम सत्य और मनोहर स्तोत्र गाना शुरू करता हूं। कविकी प्रभा काव्यके द्वारा प्रकट होवे। प्रातःकालके समय अग्निकुण्डमें जो अग्नि है वह प्रदिप्त हो रहा है। जगत्में जितना धन आजतक अन्धेरेमें छुपा हुआ था वह सब धन उषाके प्रकाशके कारण अब प्रकट हुआ है। वह धन अब दिखाई देता है। ६

जब उषा दिखाई देती है तब रात अन्धेरेमें चली जाती है। इस तरह वर्षरूप पुरुषके ये दोन भाग है। रात और उषा अनुक्रमसे छोटी बड़ी होती है और एकके पीछे दूसरी चली जाती है। उषा और रात जब पृथ्वीपर सञ्चार करती है तब दोनों भिन्न स्वरूप धारण करती है। जब रात सब दूर अन्धकारको फैलाकर चली जाती है तब उसके पीछे उषा अपने प्रकाशके साथ रथमें बैठकर चली आती है। ७

जिस तरह उषा वरुणका रहनेका स्थानमें आज प्रकाशमान दिखाई देती है उसी तरह वह कल भी दिखाई देगी। इस तरह रात्रि और उषा लम्बे चौड़े आकाशमें सञ्चार करती है। उनको कोई दोष नहीं लगा सकता। वे दोनों निष्पाप है। वे निष्कलंक है। वे दोनों तीस दिन तक आकाशकी परिक्रमा करती है। इस तरह वे दोनों नियत समयपर अपना अपना काम पुरा करती हैं। ८

नये वर्षका नया दिन बतानवाली उषा अपने श्वेत रंग और तेजोमय प्रकाशके साथ गहिरे और काले अन्धकारसे बाहर निकलती हुई दिखाई देती है। उषा हमेशा अपना काम करनेमें मग्न हुई दिखाई देती है। तथापि सूर्यका नियत मार्ग छोड़कर उषा अपनी मर्यादाको नहीं उल्लंघन करती है। ९

---

५ (त्व) भगस्य स्वसा वरुणस्य जामिः, हे सूनृते उषः प्रथमा जरस्व। यः अघस्य धाता स पश्चाद्‌ध्याः त दक्षिणया रथेन जयेम।

६ सूनृताः उदीरतां, पुरन्धीः उदीरतां, अग्नयः च शुशुचानासः उदस्थुः। स्पार्हा वसूनि तमसा अप गूळ्हा (आसन् तानि) विभातीः उषसः आविः कृण्वन्ति।

७ अन्यत् अभि एति, अन्यत् अप एति, (एतावता संवत्सरस्य) विषुरूपे अहनी सं चरेते। (तयोः) परिक्षितोः अन्या तमः गुहा अकः, (अन्या) उषाः च शोशुचता रथेन अद्यौत्।

८ सदृशीः अद्य, उ श्वः इत् सदृशीः (एव) (एतादृशः) वरुणस्य दीर्घं धाम सचन्ते। अनवद्याः (ताः) एकैका त्रिंशतं योजनानि (एवं) क्रतुं सद्यः परि यन्ति।

९ (संवत्सरस्य) प्रथमस्य अह्नः नाम जानती (सा) शुक्रा श्वितीची कृष्णात् अजनिष्ट। (एषा) योषा अद्रुहः निष्कृतम् आचरन्ती ऋतस्य धाम न मिनाति।

उषाके अवयव कैसे हृष्ट पुष्ट दिखाई देते हैं! नयी वधूकी नाई तेजोमय उषा अपने देदीप्यमान पतिकी ओर चली जाती है। उषाका पति सूर्य भी उसके लिये मोहित हुआ है। तूं भी मुस्कराती और चमकती हुई अपना बदन और छाती खुली रखकर उसके सामने चली जाती है। तुम अपने युवा अवस्थामें हो; इस लिये तुमारे लिये यह बात ठीक ही है। १०

जिस तरह माता अपनी पुत्रीका शरीर पानीसे स्वच्छ करके सजाती है उस तरह, हे उषा, आप अपने सुन्दर अवयवोंको शोभायमान करके प्रकट करती हैं। आप प्रकाशमान हूजिये और हमें प्रकाश अर्पण करके हमारा ऐसा कल्याण कीजिये जिसकी बराबरी दूसरी उषा न कर सके। ११

ये उषाएं बड़ी चञ्चल है। (ज्ञान देनेवाला) प्रकाश भी आपके पास भरा हुआ है। सुन्दर सुन्दर वस्तुएं आपके पास है। आप सूर्यकिरणोंके साथ स्पर्धा करते करते गुप्त हो जाती हैं। फिर आप प्रकट होती हैं। इस तरह कल्याण करनेवाले रूपोंको धारण करती हुई आप (उषाएं) चली जाती हैं और फिर आ जाती हैं। १२

हे उषा, सत्यस्वरूप सूर्यकिरणोंके साथ आपका स्वरूप मिल जाता है। आपकी कृपासे कल्याण करनेवाला सामर्थ्य हमें प्राप्त होवे। हे उषा, आज हम आपसे हार्दिक प्रार्थना करते हैं। हमारे लिये आप अच्छा प्रकाश दीजिये। हम और हमारे स्वामी दोनोंके लिये बहुत धनका लाभ आप करा दीजिये। १३(६)

सूक्त १२४.

ऋषि–कक्षीवान्। देवता–उषा॥

अब अग्नि प्रज्वलित हुआ है। उषादेवी अन्धकारका नाश करके अपना प्रकाश फैलाती है। सूर्यका उदय भी अब होनेवाला है। उषा और सूर्यके प्रकाशसे सब दिशाएं शोभायमान हुई हैं! सब दूर चैतन्य उत्पन्न करनेवाला प्रकाशमय भगवान् सूर्य हमारे लिये पृथ्वीके सब वस्तुओंको जगाता है। और इसी कारण हम जैसे प्राणि, चाहे मनुष्य हो अथवा पशु हो, अपना अपना काम अच्छी तरह कर सकते हैं। १

---

१० तन्वा शाशदाना कन्या इव हे देवि त्वं इयक्षमाणं देवं एषि। युवतिः (त्वं) संस्मयमाना विभाती च (अस्य) पुरस्तात् वक्षांसि आविः कृणुषे।

११ मातृमृष्टा सुसंकाशा योषा इव (त्वं) तन्वं दृशे कं आविः कृणुषे। हे उषः त्वं भद्रा वितरं व्युच्छ, तत् ते (तेजः) अन्याः उषसः न नशन्त।

१२ (इमाः) अश्वावतीः गोमतीः विश्ववाराः च, सूर्यस्य रश्मिभिः यतमानाः परा यन्ति च पुनश्च आ-यन्ति, (एव) उषसः भद्रा नाम वहमानाः (वर्तन्ते)।

१३ ऋतस्य रश्मिम् अनु यच्छमाना (त्वं) भद्रं भद्रं क्रतुं अस्मासु धेहि। हे उषः त्वं अद्य सुहवा वि उच्छ, मघवत्सु (यजमानेषु) अस्मासु च रायः स्युः।

१ समिधाने अग्नौ उषाः उच्छन्ती सूर्यः च उद्यन् ज्योतिः उर्विया अश्रेत्। देवः सविता च अत्र नः अर्थं नु द्विपत् चतुष्पत् इत्थं प्रासावीत्।

ईश्वरके नियमकों न तोड़ती हुई उषादेवी मनुष्योंकी आयुके कालको केवल कम करती है। आजतक जितनी उषाएं चली गयी उनमें यह उषा प्रसिद्ध है; और आगे आनेवाली जितनी उषाएं हैं उनमें भी आज उगनेवाली उषा उत्तम है। २

देखिये। आकाशकी कन्या उषा पूर्व दिशाकी ओर दिखाई देने लगी। पराक्रमी स्त्रीकी नाई यह उषा प्रकाशरूपी वस्त्रको पहिनती है। और जो मार्ग सूर्यने नियत किया है उस मार्गसे चतुर स्त्रीकी नाई यह उषा चली आती है। वह अपने मार्गको कभी भूलती नहीं। ३

देखिये। मानों, उषा अपना शुभ्र और उज्ज्वल वक्षस्थल सबको दिखलाती है। जिस तरह कवि हृदयके भावोंका वर्णन करके मनको प्रकट करता है उस तरह उषा अपना प्रकाश फैलाकर पृथ्वीकी सुन्दर वस्तुओंको दिखलाती है। जिस तरह घरका स्वामी अपने बालबच्चोंको उठाता है उस तरह उषा सब विश्वको जगाती है। उषा हमको नहीं छोडती; किन्तु बारबार हमारी ओर आती है और हमें आनन्दित करती है। ४

भाफसे भरी हुई पूर्व दिशाकी ओर प्रकाश देनेवाली उषाने आकाशमें अपना झण्डा लगाया है। उसका प्रकाश दूर तक फैला हुआ है। अन्तरिक्षरूपी मातापीताकी गोदमें बैठकर उषा अन्तरिक्षकी चारो ओर अपना प्रकाश फैलाती है और अपने प्रकाशसे आकाश भर देती है। ५ (७)

उषादेवि बड़ी उदार है। इस लिये आप सबको अपने प्रकाशके द्वारा अपना दर्शन देती है। पृथ्वीमें कोईभी प्राणी ऐसा नहीं है जिसको उषाका दर्शन नहीं होता है। तेजस्वी उषा अपने स्वच्छ प्रकाशके कारण बिलकुल साफ साफ दिखाई देती है। उषादेवी किसीको चाहे बड़ा हो अथवा छोटा हो—तुच्छ नहीं समजती। ६

---

२ दैव्यानि व्रतानि अमिनती, मनुष्या युगानि प्रमिनती (एतादृशी) उषा शश्वतीनां ईयुषीणां उपमा आयतीनां च प्रथमा वि अद्यौत्।

३ एषा दिवः दुहिता समना ज्योतिः वसा ना पुरस्तात् प्रति अदर्शि। ऋतस्य पन्थाम् प्रजानतीव साधु अनु एति, दिशः न मिनाति।

४ (पश्य अस्याः) शुंध्युवः न वक्षः उपो अदर्शि, नोधा इव प्रियाणि आविरकृत। अद्मसत् न ससतः बोधयन्ती (सती) शाश्वत्तमा एयुषीणाम् पुनः (नः) आ अगात्।

५ अप्स्यस्य रजसः पूर्वे अर्धे गवां जनित्री केतुं अकृत। (यस्मिन्) पित्रोः उपस्था (सा आसीना ते) उभा (तेजसा) आ पृणन्ती, विउ वितरं वरीयः प्रथते।

६ इशो कं एव इत् एषा पुरुतमा (विभाति), न अजामिं न च जामिं परिवृणक्ति। (किंतु) अरेपसा तन्वा शाशदाना विभाती न अर्भात् न महः (च) ईषते।

उषादेवि जब हमारे जैसे वीरोंके सामने आती है तब वह अकेली राजकन्याकी नाईं न्यायासन पर बैठकर न्यायनीतिके अनुसार सबको धन बांटती है। जिस तरह युवा स्त्री वस्त्र और अलंकारोंसे निजको सजाकर अपने पतिकी ओर चली जाती है, उसी तरह उषा बड़े ठाठ़से सुन्दर स्त्रीकी तरह चलती हुई और अपना सौन्दर्य और तेज कुशलतासे प्रकट करती हुई चली आती है। ७

छोटी बहिन (रात्रि) बड़ी (उषा) के लिये अपने स्थानको खाली करती है। मानों, उसकी ओर देखते देखते वह चली गयी। जब बड़ी बहिन उषा अपने प्रकाशके साथ प्रकट होती है तब मानों, मालूम होता है कि बिजली स्वयं चमक रही है। (अथवा अलंकारसे सजी हुई युवा स्त्रियां ठांठ़से मेलेमें (व्याहमें) निकली हुई है। ८

प्रत्येक दिन यह विदित होता है कि, इन बहिनोंमें जब पहली उषा चली जाती है तब उसके स्थानमें दूसरी नई उषा आ जाती है। इससे यह साफ साफ विदित होता है कि भविष्यतमें आनेवाली सब नई उषाएं पुरानी उषाओंकी नाईं हमारा कल्याण करें और दिन-पर दिन हमारा आनन्द बढ़ावे। ९

हे उदार उषादेवि, उदार शूर पुरुषोंको जागृत कीजिये। कंजूस दुष्ट लोग सोते रहें। वे हमेशा आलसी रहें। हे उदार उषादेवि, भक्तगणोंको धन देकर उनका वैभव बढ़ाईये। हे उषादेवि, सत्य और मधुर वचन कहनेके लिये आपही प्रेरणा करती हैं। कवियोंको बुद्धि देनेवाली आपही है। इस लिये आप भगवान् सूर्यकी स्तुति करनेवाले भक्तगणोंको धन देकर शोभायमान कीजिये। १०

देखिये। उषादेवि अपने सौन्दर्यके साथ सबके सामने आती हुई दिखाई देती है। उषाने अपने रथको जो घोड़े जोते है वे सब लाल रंगके ही है। उसकी प्रकाशरूपी तेजोमय ध्वजा आकाशमें सब दूर चमकती हुई निश्चयसे शीघ्रही दिखाई देगी। उसके अनन्तर हरएक घरमें अग्निकी स्तुति सुनाई देगी। ११

---

७ अभ्रातर पुंस प्रतीची एति, गर्तारुक इव धनानां सनये (एति)। (अपि च) पत्ये उशती सुवासा जायेव उषाः हस्रा इव अप्सः नि रिणीते।

८ (कनीयसी) स्वसा ज्यायस्यै स्वस्रे योनिम् अरैक्, (अपि च) अस्याः प्रतिचक्ष्येव अप एति। सूर्यस्य रश्मिभिः व्युच्छन्ती (उषाः) समनागाः (विद्युतः) व्राः इव अञ्जि अङ्क्ते।

९ आसां पूर्वासां स्वसॄणां (एतद् दृश्यते यत्) अहसु अपरा पूर्वाम् पश्चात् अभि एति। (तस्मात्) नूनम् ताः सुदिनाः नव्यसीः उषसः प्रत्नवत् अस्मे रेवत् उच्छन्तु।

१० हे मघोनि उषः, पृणतः प्र बोधय, अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु। हे मघोनि, सूनृते, जारयन्ती मघवद्भ्यः रेवत् उच्छ, स्तोत्रे च रेवत् उच्छ।

११ इयं युवतिः पुरस्तात् अव अश्वैत्, (रथे) अरुणानां गवां अनीकं युङ्क्ते। नूनम् असति (आकाशे) केतुः वि प्र उच्छात्, गृहं गृहं अग्निः उपतिष्ठाते।

हे उषा देवि, आपका प्रकाश दिखाई देते ही सब पक्षी अपने घोसलोंसे बाहर निकलकर उडने लगते हैं। अन्नकी चिन्तामें लगे हुए लोग अपना अपना उद्योग करने लगते हैं। किन्तु दानशील और सद्धर्म करनेवाले लोग (अग्निको) हवि अर्पण करते हुए घरमें ही बैठते हैं। तथापि घर बैठे बैठे हवि अर्पण करनेवाले लोगोंको भी आप उनके घर जाकर बहुत धन प्रदान करते हैं। १२

हे महाभाग उषाओ, मेरी बुद्धिके अनुसार मैंने आपकी स्तुति की है। उससे आप सन्तुष्ट भी हुए हैं। हे प्रेम करनेवाली देवि, अब हमें ऐसा सामर्थ्य दीजिये जिसकी बराबरी कोई न कर सके। १३ (९)

सूक्त १२५.

॥ ऋषि–कक्षीवान्। देवता–दम्पती ॥

अतिथिने प्रातःकालमें आकर, अपने पासके सब रत्न (अपने पिताको) अर्पण किया। उसने (पिताने) उन रत्नोंको देखकर उनका स्वीकार किया। जिस पराक्रमी राजाने योग्य पुरुषको धन अर्पण किया था उसको बहुत धनका लाभ हुआ और उसको दीर्घकालतक आयु प्राप्त हुई। दिनपर दिन उसका धन भी बढ़ने लगा। १

उस राजाको ज्ञान, गोधन, अचिर सम्पत्ति, और अच्छे अच्छे घोडे प्राप्त होवे। इन्द्र हमेशा उस राजाको युवा अवस्थामें रखता है। जिस तरह शिकारी पक्षीको अपने जालमें फसाता है उस तरह, देखो, हे अतिथि, उस (राजाने) तुमको सम्पत्ति देकर तुम्हे अपने धनसे बांधकर रखा है। २

यज्ञकर्मनिष्ठ पुरुषके योग्य पुत्रको मिलनेके लिये मैं आज सबेरे रथमें भरपूर धन भरकर यहां आया हूं। इस लिये उस बडे पुरुषको सोमलतासे निचोडा हुआ और आनन्द देनेवाला रस अर्पण कीजिये। पराक्रमी पुरुषोंको सहायता देनेवाले रुद्रकी सत्य और मधुर स्तोत्रोंसे स्तुति कीजिये। ३

---

१२ तव्युष्टौ वयश्चिन वसतेः उत् अपप्तन्, येच नरः दितुभाजः (तेऽपि अपप्तन्)। (परं) अमा सते दाशुषे मर्त्याय हे देवि उषः त्वम् वामम् भुरि वहसि।

१३ हे स्तोम्याः उषसः मे ब्रह्मणा (यूयं) अस्तोढ्वम्, (अपि च) उशतीः यूयं अवीवृधध्वम्। हे देवी युष्माकम् अवसा सहस्त्रिणं च शतिन च वाजं संनम।

१ प्रातरित्वा प्रातः रत्नं दधाति, (पितापि) तं (रत्नं) चिकित्वान् प्रतिगृह्य निधत्ते। तेन (दानेन) प्रजां आयुश्च वर्धयमानः सुवीरः रायस्पोषेण सचते।

२ सुगुः सहिरण्यः सु अश्वः (सः) असत् अस्मै बृहत् वयः इंद्रः दधाति (यतः) हे प्रातरित्वः यः आ आयान्तम् सुक्षीजया पदिम् इव वसुना उत् सिनाति।

३ इष्टेः सुकृतम् पुत्रं इच्छन् वसुमता रथेन अद्य प्रातः आयम्। (तत्) मत्सरस्य अंशोः सुतं (देवं) पायय, क्षयद्वीरं सूनृताभिः वर्धय।

जो पुण्यवान् पुरुष यज्ञ करता है अथवा केवल यज्ञ करनेकी इच्छा करता है उसके लिये भी धेनु देनेवाली और भरपूर सुखकी महानदियां बहती हैं। उसी तरह ईश्वरको सन्तुष्ट करनेवाले सत्पुरुषोंकी ओर कीर्तिरूप घी का प्रवाह चारों ओरसे बहता है। ४

जो दानधर्मसे ईश्वरको सन्तुष्ट करता है वह स्वर्गकी पीठपर चढ़ता है और वहां ही रहता है। सचमुच वह देवताओंमें मिल जाता है। उसके लिये स्वर्ग और पृथ्वीकी नदियां घीको बहाती हैं। और उसीके लिये उपजाऊ जमीन धनकी भरमार कर देती है। ५

ये नाना प्रकारका अमूल्य धन दान देनेवाले पुरुषोंके लिये हैं। दक्षिणा देनेवाले पुरुषोंके लिये ही सूर्य और तारा आकाशमें प्रकाशित होते हैं। दान देनेवाले पुरुषही केवल नाश न होनेवाले उच्च स्थितिको प्राप्त होते हैं। दक्षिणा देनेवाले पुरुषही केवल अपनी और दूसरोंकी आयुको बढ़ा सकते हैं। ६

दान और धर्मसे (ईश्वरको) सन्तुष्ट करनेवाले पुरुषोंको दुःख और पाप प्राप्त न होवे। सदाचारी और ज्ञानी पुरुष क्षीणताको प्राप्त न होवे। कोई भी मनुष्य ऐसे भजनशील पुरुषोंको सहायता देनेके लिये तैयार होता है। सब दुःख पाप और शोक कञ्जूस मनुष्यों ही पर गिर पड़ें (केवल उन्हें प्राप्त होवें)। ७ (१०)

सूक्त १२६.

॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–विद्वांसः ॥

मैं भाव्य राजाकी हृदयसे प्रशंसा करता हूं। मैं आपकी स्तुति केवल मामुली तौरपर नहीं करता हूं। सिन्धु देशके रहनेवाले भाव्य राजाने मेरे लिये सहस्र यज्ञ किये। इसको कोई जीत नहीं सकता। यह राजा सत्कर्म करनेकी इच्छा करनेवाला है। १

---

४ इजानं (पुरुष) यक्षमाण चापि धेनवः मयो भुवश्च सिन्धवः उपक्षरन्ति । (ईश्वर) पृण त च पयुरिच श्रवस्यवः घृतस्य धाराः विश्वतः उपयन्ति ।

५ यः पृणाति सः नाकस्य पृष्ठे श्रितः अधितिष्ठति, सहि देवेषु गच्छति । तस्मै आपः सिन्धवश्च घृत अर्षन्ति तस्मै इयं दक्षिणा (भूमिः) सदा पिन्वते ।

६ दक्षिणावताम् इत इमानि चित्रा (वसूनि), दक्षिणा वताम् दिवि सूर्यासः । दक्षिणावन्तः अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः आयुः प्र तिरन्त ।

७ (ईश्वर) पृणन्तः दुरितं एनः च मा आ अरन्, सुव्रतासः सूरयः मा जारिषुः । अन्यः कः चित् तेषां परिधिः अस्तु (सर्वे) शोकाः अपृणन्तम् अभि सं यन्तु ।

१ सिन्धौ अधि क्षियतः भाव्यस्य अमन्दान् स्तोमान् मनीषा प्रभरे । यः राजा मे सहस्रं सवान् अमिमीत, (यश्च) अतूर्तः श्रवः इच्छमानः ।

उस राजाने मेरी बहुत प्रार्थना की । इसके कारण उसने दिये हुए सौ सुवर्ण मुद्राओं और सौ अच्छे अच्छे घोडोंका शीघ्रही मैंने स्वीकार किया । मुझे (कक्षीवान्‌का) उस पराक्रमी राजासे सौ गोएँ प्राप्त हुई । इस लिये मैंने स्वर्गतक उसकी अखण्ड कीर्ति फैलाई ।   २

स्वनय राजाने दिये हुए दस रथ उस समय मेरे पास थे । उस रथको काले रंगके घोडे जोते हुए थे । उस रथमें मेरी नई विवाहित स्त्री बैठी हुई थी । उस रथके पीछे साठ सहस्र गौओंकी झुण्ड चली आती थी । यह दान मुझे (कक्षीवान्‌को) पिछले दिनके सायंकालमें मिला था ।   ३

उन दस रथोंके साथ एक सहस्र (सिपाही) चल रहे थे । चालीस लाल रंगके घोडोंकी कतार आगे चलती थी । वे घोडे बडे मस्त थे और बडे ठाठसे चलते थे । वे घोडे सुनहरी सिंगारसे युक्त और उज्ज्वल भी थे । उनके बदनपर सुवर्ण और मोतीके साज लदे हुए थे । कक्षीवान और उनके भाईबंदके नौकरोंने उन घोडोंको मालिश करके, तैयार रखा था ।   ४

जब पहिले दानका मैंने स्वीकार किया उसके अनन्तर आठ और तीन मिलके ग्यारा बैलोंसे जोती हुई एक (गाडी) का दान मुझे मिला । उस गाडीको जोते हुए बैल बडे हृष्ट पुष्ट थे । वे राजाके बाडेमें रहने योग्य थे । भाईओ ! आप सब एक कुटुम्बके मनुष्योंके तौरपर प्रेमसे रहते हैं । पज्रके कुलमें उत्पन्न हुए हम सब भ्रातृभावसे रहते हैं । और हम सब सत्कर्म करनेकी इच्छा करते हैं ।   ५

जब मैं अपनी पत्नीको आलिङ्गन देता हूं तब वह बडे प्रेमसे मुझे नकुलीकी तरह चिपकती है । आलिङ्गनके समय वह मुझे सैकडों सुखोंको देती है ।   ६

---

२ (अह) नाधमानस्य राज्ञः शतं निष्कान्, शतं प्रयतान् अश्वान् सद्यः आदम् । (अहं) कक्षीवान् असुरस्य (राज्ञः) गोनां शतं (आदम्), अजरं श्रवः दिवि च आ ततान ।

३ (इदानीं) स्वनयेन दत्ताः श्यावाः (युक्ताः) वधूमन्तः दश रथासः मा उप अस्थुः (तेषां पश्चात्) षष्टि सहस्रं गव्यं अनु आ अगात्, कक्षीवान् (एतद्) अह्नाम् अभिपित्वे सनत् ।

४ दशरथस्य सहस्रस्य (सैनिकानां) अग्रे चत्वारिंशत् शोणाः (अश्वाः) श्रेणिं नयन्ति । (तान् च) मदच्युतः कृशनावतः अत्यान् कक्षीवंतः पज्राः च उत् अमृक्षन्त ।

५ पूर्वाम् प्रयतिम् अनु त्रीन् अष्टौ च युक्तान् अरिधायसः गाः वः आ ददे । हे सुबंधवः ये (यूयं) विश्याः व्राः इव, (वयं) पज्राः (अपि) अनस्वनाः श्रवः ऐषन्त ।

६ आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे । (सा) मह्युरी मह्यम् याशूनां शता भोज्या ददाति ।

हे पति, मुझको अत्यन्त समीपसे स्पर्श करो । मुझे छोटी मत समझिये । गन्धार भेड़ोंकी भेड़की तरह मेरा शरीर बालोंसे भरा हुआ है । ७ (२१)

अनुवाक १९.

सूक्त १२७.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–अग्नि ॥

मेरा ध्यान सब अग्निकी ओर लगा हुआ है । आपही यज्ञके होता हैं । आप बहुत उदार हैं । धनका खजाना आपही हैं । निर्बल मनुष्यको बल देनेवाले आपही हैं । जिस तरह विद्वान् ब्राह्मण अपने शास्त्रमें निपुण रहता है उसी तरह अग्नि सृष्टिके हरएक पदार्थको जानता है । अग्निकी कृपासे हमारा यज्ञ पूरा किया जाता है । आपकी कृपा बहुत बड़ी है । आप जैसे देवका यह बात उचित ही है । आपकी बढ़ती हुई ज्वालाओंसे विदित होता है कि स्वच्छ और ताजा घी और मक्खन आप बहुत चाहते हैं । १

हे अग्निदेव, आप अत्यन्त पूजनीय हैं । आंगिरस कुलमें उत्पन्न हुए लोगोंसे आप श्रेष्ठ हैं । हे सर्वज्ञ अग्निदेव, आपहीके लिये हम, जो आपके सेवक हैं–एक मनसे हवि अर्पण करते रहते हैं । हे तेजोमय अग्नि, सब विद्वान् ब्राह्मणोंके साथ हम सुन्दर स्तोत्रोंके द्वारा आपकी प्रार्थना करते हैं । बिजलीका रूप धारण करके मानों, आपने आकाशको घेर (व्याप्त कर) लिया है । आप सब मानवजातिके आचार्य हैं । आप बड़े पराक्रमी हैं । ज्वालारूपी केशवाले हे अग्नि, अच्छे अच्छे विचारोंको प्राप्त करनेके लिये, सब लोग आपकी शरण लेते हैं । २

सचमुच आपके चमकनेवाले शस्त्रके कारण आपका तेज बहुत उज्ज्वल दिखाई देता है । उस दिव्य तेजके कारण दुष्ट लोगोंका नाश ही होता है; मानों, वह तेज शत्रुओंका नाश करनेवाली कुल्हाड़ी ही है । जब अग्निके दिव्य तेजके साथ किसी कठिन पदार्थका स्पर्श होता है तब–चाहे जैसा कठिन पदार्थ हो–वह पिघल जाता है । वृक्षकी तरह छिन्न भिन्न हो जाता है । आपको कोई रोक नहीं सकता । जब आप किसी जगहपर खड़े हो जाते हैं तब आप कभी पीछे नहीं हटते । जब आप बड़े बड़े धनुर्धारी योधाओंके सामने डटे रहते हैं तब पीठ नहीं दिखाते । ३

---

७ मे (अगं) उपोप परामृश, मे (अङ्गानि) दभ्राणि (इति) मा मन्यथाः, अहं सर्वा, गान्धारीणाम् आविका इव रोमशा अस्मि ।

१ अग्निं होतारं, दास्वन्तं वसुं, सहसः सूनुं, जातवेदसं विप्रं न जातवेदसं । यः स्वध्वरः देवः ऊर्ध्वया देवाच्या कृपा, आजुह्वानस्य घृतस्य सर्पिषश्च विभ्राष्टिम् शोचिषा अनु वष्टि ।

२ हे विप्र (वयं) यजमानाः त्वा यजिष्ठं अंगिरसां ज्येष्ठं मन्मभिः हुवेम, हे शुक्र विप्रेभिः मन्मभिः (हुवेम) । (त्वां) परिज्मानमिव द्यां, चर्षणीनाम् होतारं, शोचिष्केशं, वृषणम् (हुवेम) य त्वां इमाः विशः विशश्च जूतये प्र अवन्तु ।

३ सः हि विश्वमता पुरुचित् दीद्यानः ओजसा द्रुहंतरः द्रुहंतर परशुः न भवति । अस्य समृतौ वीळुचित् (अपि) यत् च स्थिरं (तदपि) वना इव श्रुवत् । निःषहमानः अयमत, न अयते धन्वसहा (अपि) न अयते ।

यह बात सबको विदित ही है कि कठिन कठिन पदार्थोंकी आहुति अग्निको दी जाती है। अग्निकी कृपा करनेके लिये यजमान प्रज्वलित की हुई अरणी (लकडी) योंके द्वारा हवन करता है। अग्नि अपनी ज्वालाओंसे जंगलकी लकडीयोंका बडे जोरसे नाश कर देता है। अग्नि अपनी ज्वालाओंसे बहुत पदार्थोंमें घुसकर वृक्षोंकी तरह उनका नाश कर देता हैं। अग्नि अपने सामर्थ्यसे कठिन और कोमल धान्यको पक्का बनाता है और अपने गर्मीसे कठिन पदार्थोंको भी गलाता है। ४

दिनकी अपेक्षा रात्रिमें अग्नि बहुत सुन्दर दिखाई देता है। दिनपर दिन बुड्ढे होने परभी हमारे बलका नाश न होनेके लिये वेदीके पास बैठकर हम अग्निके सामर्थ्यकी प्रशंसा करते हैं। जिस तरह पुत्रको पिताकी कीर्तिका आधार मिलता है उसी तरह अग्निके सामर्थ्यपर यजमान पूर्ण रीतिसे अवलम्बित रहता है। वेदीमें जो अग्निका स्थिर रूप–जो कभी नष्ट नहीं होता और कभी क्षीण नहीं होता–दिखाई देता है वही हमारा अब और भविष्यत् कालमें भी सब प्रकारसे आधार है। ५ (१२)

जब अग्नि, उपजाऊ जमीन परसे जोरसे चलता है अथवा शत्रुके सैन्यमें बडे जोरसे घुसता है तब वायुकी तरह वह भयंकर गर्जना करता है। हवियोंको ग्रहण करके खानेवाला अग्नि यज्ञकी उज्ज्वल ध्वजा है। अग्निने आनन्दसे हमारे हवियोंका स्वीकार किया है। आप स्वयं आनन्दकी मूर्ति है और आप दूसरोंको आनन्दित करते हैं। अग्निकी पूजा करनाही कल्याणकारक है। इस हेतुसे सब लोग अग्निकी सेवा करते हैं। ६

---

४ अस्मै दृळ्हाचित् यथाविदे अनु द्युः, (अतः यजमानः) तेजिष्ठाभिः अरणिभिः अवसे दाष्टि, अवसे दाष्टि। यः वनेव तक्षत पुरूणि (वस्तूनि) शोचिषा प्र गाहते, (अपि च) ओजसा स्थिरा चित् अन्ना निरिणाति स्थिराणि चित् ओजसा निरिणाति।

५ यः दिवातरात् नक्तं सुदर्शतरः अस्य दिवातरात् अप्रायुषे तं पृक्षं उपरासु धीमहि। आत् अस्य आयुः वीळु शर्म सूनवे न ग्रभणवत्। अभयः व्यंतः अजरा. व्यंताः अजराः च (ते एव नः) भक्त अभक्तं अवः (भवन्ति)।

६ अप्नस्वतीषु उर्वरासु इष्टनिः सः हि आर्तनासु इष्टनिः (वा) मारुतं शर्धः न तुविष्वणिः। सः आदद्भिः यज्ञस्य केतुः अर्हणा हव्यानि आदत्। अध स्म अस्य हर्षतः हृषीवतः पन्थां, शुभे पन्थां, न धिष्वे नरः जुषन्त।

महा कवि भृगु आकाशमें अग्निकी ओर स्थिर दृष्टि लगाकर उसकी बड़ी नम्रतासे दो प्रकारकी स्तुति करता है। भृगुने बड़ी नम्रतासे अरणीयोंका मन्थन करके अग्नि उत्पन्न किया; (दो लकडीयोंको रगडकर अग्नि उत्पन्न किया)। इस तरह उत्पन्न किया हुआ अग्नि सब प्रकारके स्वामी है। आप बडे पवित्र होनेके कारण सब प्रकारके धनको स्वाधीन रखते हैं। हमारे हवियोंको आप बहुत चाहते हैं। इस लिये प्रज्ञावान् आप हमारे हवियोंका प्रेमसे स्वीकार करते हैं। उपर्युक्त अग्नि-केवल परमेश्वरकी मूर्ति-हमारे हवियोंके दानसे प्रसन्न होवे। ७

आप सब लोगोंके स्वामी हैं। सब लोग केवल आपहीको मानते है। हम अपने कल्याणके लिये, हम अपने लाभके लिये, आपको बुलाते हैं। हमारी प्रार्थना परमेश्वरकी ओर पहुंचानेवाले आपही हैं। सब मनुष्य जातिके आप बड़े अतिथि हैं। पिताकी तरह आप सब अमर देवोंपर कृपादृष्टि रखते हैं। इसीके कारण सब अमर देव हमेशा युवा अवस्थामें रहते हैं। ऋत्विज अग्निके द्वाराही देवोंकी ओर अपना हवि पहुंचाते हैं।　८

हे अग्निदेव, आप बड़े पराक्रमी हैं। आपका प्रभाव बड़ा है। इस लिये आपके सामर्थ्यको कोई रोक नहीं सकता। जब तक आप प्रकट नहीं होते तब तक हम ईश्वरकी प्रार्थना नहीं कर सकते। जिस तरह संसार चलानेके लिये धनकी आवश्यकता है उसी तरह देवोंकी सेवा करनेके लिये आपकी (अग्निकी) आवश्यकता है। आप नित्य आनन्दी हैं। आपके तेजके कारण आप बड़े पराक्रमी है। हे अग्निदेव, आप कभी बुड्ढे नहीं होते। इसलिये सब लोक आपकी सेवा करते हैं। हे स्थिर अग्नि, सेवककी तरह सब लोक आपहीकी आज्ञा मानते हैं।　९

---

७ यत् कीस्तासः अभिद्यवः नमस्यंतः भृगवः दाशाः मथ्नंतः भृगवः ईं द्विता उपवोचन्त (तस्मात्) यः एषां (वसूनां) धर्णिः सः अग्निः वसूनां ईशे। मेधिरः (अग्निः) प्रियान् अपि धीन् वनिषीष्ट, मेधिरः आ वनिषीष्ट।

८ विश्वासां विशां पतिं त्वा हवामहे. सर्वासा समानं दंपतिं भुजे (अस्माक) भुजे सत्यगिर्वाहसं (हवामहे)। (अपि च) मानुषाणां अतिथिं, पितुः न यस्य आसया, अमी विश्वे अमृतासः वयः आ (भजन्ते), वयः च (तव आसया) देवेषु आ हव्या (निदधति)।

९ अग्ने त्व शुष्मिन्तमः सहसा सहन्तमः, देवतातये, रयिः न देवतातये आयसे। शुष्मिन्तमः हि ते मदः उत शुष्मिन्तमः क्रतुः। अध स्म ह अजर ते त्वां परिचरन्ति हे अजर श्रुष्टीवानः न (परिचरन्ति)।

अग्नि सबसे श्रेष्ठ है। अग्नि स्वयं सामर्थ्यवान् होनेके कारण तेजस्वी दिखता है। गर्हिणीके पुत्र (गोपालक) की तरह अग्नि उषाके पहिले जागृत होता है। हमारी स्तुतियोंसे अग्नि प्रसन्न होवें। सब पृथ्वीपर हाथमें हवि लिए हुए, और अग्निके गुणोंकी स्तुति करते हुए यजमान दिखाई देते हैं। जिस तरह भाट (कवि) स्तुति करते हुए, राजाके सामने चले जाते हैं उसी तरह बुद्धिमान् होता सब देवोंके सामने अग्निके गुणोंका वर्णन करता है। १०

हे अग्निदेव जब आप बिलकुल हमारे पास प्रकट होते हैं तब आप और और देवोंकी तरह बड़ी कृपासे प्रसन्न होते हैं। हमपर कृपा करके आप हमें पवित्र धन अर्पण करते हैं। हे सामर्थ्यवान् अग्नि, हमें वह तत्व समझाइये जिससे हम पृथ्वीके सब पदार्थोंका उपभोग ले सकें। आपका तेज बड़ा तीव्र होनेके कारण मानों, यह विदित होता है कि आप शत्रुओंका नाश करनेवाले उग्र और क्रूर दिखाई देते हैं। किन्तु, हे दानशील अग्नि, आपकी स्तुति करनेवालोंको आप बड़े वीर बनाते हैं। ११ (१४)

सूक्त १२८.

॥ ऋषि-कक्षीवान् । देवता-उषा ॥

उशिजाके पुत्रोंने जो तप किया उसके कारण मनुकी पुराणी वेदीमें माननीय अग्नि अपने वचनके अनुसार प्रकट हुआ है। अग्निका साथ रखनेकी इच्छा करनेवाले भक्त गणोंकी आप सब प्रकारसे सहायता करते हैं। पुण्यकर्म करनेवालोंके लिये, मानों, आप धनका अमोल कोष हैं। आपका कभी पराभव नहीं हो सकता। आप आचार्य बनकर वेदीपर अधिष्ठित हुए हैं। आप अपने परिवारके साथ पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं। १

---

१० महे, सहसः सहस्वते, पशुषे न उषर्बुधे, अग्नये, अग्नये (देवाय) वः स्तोमः प्र बभूतु। यत् ईं प्रति हविष्मान् विश्वासु क्षासु जोगुवे, (किंच) ऋभूणां अग्रे रेभः न (अयं) जूर्णिः होता ऋभूणाम् (अग्रे अग्निं) जरात।

११ हे अग्ने सनः नेदिष्ठं ददृशानः (अन्यैः) देवेभिः सुचेतुना महः रायः आ भर। हे शविष्ठ नः महि संचक्षे कृधि, भुजे च अस्मै (कृधि)। त्वं मघीः उग्रः न (असि परं च) मघवन् स्तोतृभ्यः महि सुवीर्यं (कृधि)।

१ उशिजा व्रतं अनु मनुषः धरीमणि अयं यजिष्ठः होता अग्नि, स्व व्रतं अनु जायत। सखीयते विश्व-श्रुष्टिः, श्रवस्यते रायः इव (अयं)। (अयं) अदब्धः होता इळः पदे निषदत्, (परिवारैः) परिवृतः इळः पदे (अवतीर्णः)।

यज्ञको अच्छी तरह पूरा करनेवाला अग्निही है। इस लिये हम अग्निकी बडी भक्तिसे स्तुति करते हैं। सत्य धर्मके मार्गपर चलकर और नमस्कार करके हम अग्निको हवि अर्पण करते हैं। जब हम ईश्वरका ध्यान करते हैं तब हम पहिले अग्निको हवि अर्पण करते हैं। अग्नि बहुत दयाशील है। दैवी तेज सुलभ रीतिसे प्राप्त करनेमें आप हमें साहायता देते हैं और कभी भी हिचकते नहीं। प्राचीन कालमें मातरिश्वा नामका एक ऋषि था। वह मनुके लिये स्वर्गसे पृथ्वीपर देदीप्यमान अग्निको ले आया। २

जिसका हम बारबार स्मरण करते हैं और जो बडी गर्जना करके पृथ्वीपर जलकी वर्षा कराता है वह अग्नि वर्षा करनेवाले मेघको एक क्षणमें घेर लेता है। वह फिर गर्जना करके जलवृष्टि कराता है। अपने सैंकडों आखोंसे सब जगत्पर देखकर मेघरूपी अरण्यमें इधर उधर सञ्चार करके वह अग्नि सब जगह हल्ला मचाता है। वह अग्नि पासके और कभी कभी दूरके पहाडपर उतरकर आराम लेता है। ३

अग्निदेव सब बडे बडे कामोंमें निपुण है। यज्ञमें आप सबसे श्रेष्ठ आचार्य हैं। जिस घरमें हवियोंका दान होता है उस आप हमेशा तैयार सिद्ध रहते हैं। जब यज्ञ शुरू होता है तब वह बात आपको दैवी सामर्थ्यसे विदित हो जाती है। अग्निदेव अपने परम भक्तोंके लिये अपने सामर्थ्यसे अनुकूल अवस्था उत्पन्न कराता है। आप सब सृष्टिपर अपनी दृष्टि रखते हैं। घीकी आहुतिके कारण अग्निदेव देदीप्यमान दिखाई देते है। आप अतिथि बन गये हैं। हवि पहुंचानेवाला और जगत्की रक्षा करनेवाला अग्नि अब प्रकट हुआ है। ४

---

२ तं यज्ञसाधं (अग्निं) अपिवातयामसि, ऋतस्य पथा, नमसा हविष्मता, देवताता हविष्मता। सः अया १.५. नः ऊर्जा उपाभृति न जुर्यति, यं (अग्निं) देवं परावतः मातरिश्वा मनवे परावतः भाः।

३ मुहुर्गीः कनिक्रदत् वृषभः (अग्निः) पार्थिवं रेतः एवेन सद्यः पर्येति रेतः (च) दधत् कनिक्रदत् (एति)। शतं अक्षभिः (सर्वं) चक्षाणः वनेषु तुर्वणिः देवः अग्निः उपरेषु सानुषु (तथा) परेषु सानुषु सदः दधानः (विश्राम्यति)।

४ स अग्निः सुक्रतुः पुरोहितः, दमे दमे अध्वरस्य यज्ञस्य चेतति, (यतः) क्रत्वा यज्ञस्य चेतति। क्रत्वा (?) वेधाः, विश्वा जातानि पस्पशे, यतः घृतश्रीः (अग्निः) अतिथिः अजायत, वह्निः वेधाः अजायत।

जैसे हम अतिथिको अच्छे अच्छे भोज खिलाते हैं वैसे जब अग्निकी ज्वालाओंमें ६ बड़े आदरसे नित्यविधिके अनुसार मरुतोंकी तरह हवि अर्पण करते हैं तब अग्नि बड़े उत्साह साथ सुन्दर धन अपने प्रभावसे हमे प्रदान करता है। हमारा नाश करनेवाले सङ्कटोंसे, दूसरोंके शापोंसे और भ्रष्ट करनेवाले पापोंसे अग्नि हमारी रक्षा करता है।   ५ (१०,

सुन्दर धन विश्वव्यापक और सामर्थ्यवान् अग्नि की दाहिनी ओर है। जिस तरह र प्रकाश देता है उसी तरह अग्नि अपने भक्तोंको बहु धन बांट देता है। किन्तु कीर्ति प्रा. करनेके हेतु आप धन नहीं बांटते। जो लोग केवल हार्दिक भक्तिसे ईश्वरकी सेवा करते हैं उनके हवि, हे श्रेष्ठ अग्नि, आप देवोंकी ओर पहुंचाते हैं। सज्जन और साधु पुरुषोंको उत्तम धन देनेके लिये आप आते हैं। भक्तोंके लिये कृपा करनेको आप हमेशा तयार रहते हैं। ६

जिस तरह विजयी राजा अथवा लोकप्रिय अध्यक्ष धर्मसभामें जाकर बैठता है उसी तरह मनुष्यजातिका पाप हरण करनेके लिये अग्नि यज्ञमें अधिष्ठित होता है। क्यों कि पवित्र सुख केवल आपही अर्पण कर सकते हैं। वेदीमें जो हवि अर्पण किये जाते है उनके स्वामी आपही हैं। पाप करनेके कारण जो दण्ड दिया जाता है उसकी बड़े वरुणदेवके द्वारा आपही हमें क्षमा कराते हैं।   ७

---

५ यत् मरुतां न क्रत्वा अस्य अग्नेः तविषीषु अवेन इषिराय न भोज्या, भोज्या पृच्यते। सहिस्र अज्मना ~ वसूनां दान इन्वति, सः अभिन्हुतात् दुरितात् शंसात् अभिन्हुतः (वा) अघात् नः त्रासते।

६ (अयं) विश्वः विहायाः अरतिः वसुः दक्षिणं हस्ते दधे, (तं च) तरणिः न शिश्रथत् (परंच) श्रवस्यया न शिश्रथत्। विश्वस्मै इषुध्यते इत् देवत्रा हव्य आ ऊहिषे। विश्वस्मै सुकृते इत् अग्निः वारं ऋण्वति, द्वारा च वि ऋण्वति।

७ सः अग्निः मानुषे वृजने, जेन्यः विश्पतिः न प्रियः विश्पतिः (न) यज्ञेषु, (तथा) यज्ञेषु शंतमः हितः स मानुषाणाम् हव्या इळा कृतानि पत्यते, स वरुणस्य धूर्तेः महः देवस्य धूर्तेः नः त्रासते।

अग्निही यज्ञके आचार्य हैं। आपहीकी ऋत्विज स्तुति करते हैं। आप भक्तोंको प्रिय हैं। आपही धनका कोष हैं। आपही ज्ञानवान् ईश्वर हैं। देवोंकी ओर हवि पहुंचानेके लिये ऋत्विजोंने बड़ी नम्रतासे अग्निकी प्रार्थना की। अग्नि सब विश्वका प्राण है। विश्वका ज्ञान अग्निकोही है। अग्नि यज्ञका आचार्य है। अग्नि पूज्य और बुद्धिमान् हैं। सब देवताएं अपनी कामना पूरी करनेके लिये बड़े उत्साहके साथ सुन्दर अग्निकी स्तुति करते हैं। सुवर्णकी इच्छा करनेवाले देव भी मधुर सूक्तोंके द्वारा गर्जना करनेवाले अग्निकी स्तुति करते हैं। ८ (१५)

सूक्त १२९.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–इन्द्र ॥

हे सबको प्रेरणा करनेवाले इन्द्र, यज्ञकी पूर्ति करानेके लिये जिन महात्माओंके पास आप अपना रथ ले जाते हैं उनकी इच्छा आप पूरी करते हैं और उनको बलवान् बनाते हैं। हे निष्कलंक इन्द्र, वे महात्मा चाहे जितने दूर हो उनके पास आप अपना रथ ले जाते हैं। दोष रहित इन्द्र, सज्जन पुरुषोंको सहायता देनेके लिये आप दौड़ते हैं। हमारी ओर भी आप ध्यान दीजिये। जिस तरह प्रेमी कवियोंकी पुकार आप सुनते हैं उसी तरह हमारी भी पुकार आप सुनिये। १

हे इन्द्र, जब युद्ध शुरू होता है तब पराक्रमी पुरुष भक्तिसे आपकी स्तुति करते हैं पापका नाश करनेके लिये भी लोग आपहीका स्तवन करते हैं। आप ऐसे सामर्थ्यवान् हैं इसलिये हमारी प्रार्थना की ओर ध्यान दीजिये। आप जैसे वीरोंके साथ यदि हम रहें तो हमें स्वर्ग प्राप्त होता है और हम सामर्थ्यवान बन जाते हैं। बड़े बड़े राजा भी शूर इन्द्रकी शरण लेते हैं। आपको सामर्थ्यकी केवल मूर्ति समझकर सब लोग आपकी शरण लेते हैं। २

---

८ अग्निं होतारं ईळते, प्रियं वसुधितिं चेतिष्ठं अरतिं (ऋत्विजः) नि एरिरे. हव्यवाहं नि एरिरे। (इमं च) विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविं रण्वं (अग्निं) वसूयवः देवासः अवसे, वसूयवः रण्वं गीर्भिः (ईळते)।

१ हे हरिवर, इंद्र, त्वं यं संतं अपाकं (अपि) मेधसातये (स्वकीयं) रथं प्रणयसि, हे अनवद्य (रथं) प्रणयसि. तं सद्यश्चित् अभीष्टये वक्षः वाजिनं च करः हे अनवद्य, तूतुजानः नः (त्वं) अस्माकं वेधसां येधसां अस्माकं इमां वाचं (शृणु)।

२ हे इंद्र कस्मिंचित् पृतनासु भरहूतये यः त्वा नृभिः दक्षाय्यः आभि प्रनूनं (ति) नृभिः (दक्षाय्यः असि) सः त्वं (नः) श्रुधि, । यः शूरैः (नः) स्वः सनिता यथ विप्रैः वाजं तरुता, तं वाजिनं ईशानासः इरंधत, अत्यं पृक्षं न वाजिनं (इरंधत)।

सचमुच आप बडे अद्भुत चमत्कार करनेवाले हैं। क्यों कि वर्षा करनेवाले मेघोंमें आपही छेद करते हैं। आपही दुष्ट मनुष्यको निकाल देते हैं। हे वीर, आपही अमर आत्माका नाश होनेवाले शरीरसे अलग रखते हैं। हे इन्द्र, आपके अद्भुत पराक्रमोंका वर्णन मित्र और रुद्रके सामने मैं करता हूं। वह स्वयं आकाशमें रहता है और अपने पराक्रमसे बडा मशहूर है। सुख देनेवाले वरुणके सामने भी मैं आपके प्रसिद्ध यशका वर्णन पूर्ण रीतिसे करता हूं। ३

हम बडी इच्छा करते हैं कि, तुम्हारा और हमारा दोनोंका कल्याण करनेके लिये इन्द्र यहां आवे। इन्द्रपर हम बडा प्रेम करते हैं। आप विश्वव्यापी हैं। आपके सामने कोई भी लडनेके लिये खडा नहीं रह सकता। युद्धमें आप हमेशा हमारे साथ रहते हैं। शत्रुओंका पराभव करनेवाले आप हमेशा हमें सहायता देते हैं। युद्धके समय हम हमेशा आपकी स्तुति करते है। उससे आप आनन्दित होवे। क्यों कि उसीसे हमारी रक्षा होती है। युद्धमें आपके सामने कोइ भी शत्रु क्षणभर भी खडा रह नहीं सकता। कोई भी शत्रु आपके सामने आजाय; आप उसका नाश करते हैं। यदि मनुष्य जातिका शत्रु आपके सामन आजाय तो उसको आप मार डालते हैं। ४

हे इन्द्र, हमे सहायता देकर मस्त लोगोंका गर्व हरण कीजिये। हे उग्र इन्द्र, जलती हुए मशालकी नाई तीव्र शस्त्रोंसे शत्रुओंकी घमण्ड उतार दीजिये। जैसे प्राचीन कालमें आप हमारे नेता थे उसी तरह अब भी आप हमारे नेता हैं। क्यों कि, हे वीर, आपको सब लोग निष्कलंक समझते हैं। आप इच्छित फल देनेवाले हैं। इसलिये सद्गुरुकी तरह आप हमारी ओर आइये और हमारे शरीरके और मनके पापोंका नाश कीजिये। ५ (१६)

---

३ दस्मः (असि) हि स्म, (यतः) वृषणं त्वचं पिन्वसि, कंचित् अररुं मर्त्यं यावीः, हे शूर (अमर्त्यात्) मर्त्यं च परिवृणक्षि। हे इंद्र उत तत् (तं यशः) तुभ्यं, तत् दिवे स्वयशसे रुद्राय, मित्राय वोचम्, वरुणाय सुमृळीकाय (ते) सप्रथः (यशः) सप्रथः (वोचम्)

४ अस्माकं वः (च) इष्टये इंद्रं उश्मसि-(इंद्रं) सखायं, विश्वायुं प्रासहम्, युजं, वाजेषु प्रासहं, युजम्। कासुचित् पृत्सुषु अस्माकं ब्रह्म ऊतये अव। शत्रुः त्वा न हि स्तरते यं (पश्यसि तं) स्तृणोषि, विश्वं शत्रुं स्तृणोषि।

५ अतिभिः कयस्य चित् अतिमतिं नि सु नम, हे उग्र तेजिष्ठाभिः अरणिभिः न उग्राभिः ऊतिभिः (अतिमतिं नमय)। यथा पुरा नः नेषि, हे शूर त्वं हि अनेनाः मन्यसे। वह्निः (त्वम्) वह्निः न नः अच्छ पूरोः विश्वानि (एनांसि) अपपर्षि।

हे इन्द्र, बड़े लोगोंके सामने ही आपके पराक्रमका वर्णन करना मुझे उचित है। मनको प्रसन्न करनेकी शक्ति आपमें है। इसलिये आप भी पूज्य हैं। आप राक्षसोंका नाश करनेवाले हैं। तथापि आपहीके कारण मनमें पवित्र विचार उत्पन्न होते हैं। स्तुति करनेकी प्रेरणा करनेवाले आपही हैं। आप अपने नाश करनेवाले शस्त्रोंसे दुष्ट और निन्दा करनेवाले शत्रुओंको यहांसे निकाल दीजिये। हमारे सामने आनेवाले पापी यहांसे आप भगा दीजिये। भाफकी तरह उनका नाश होवे। ६

हे भगवन् इन्द्र, जो दिव्य तेज पराक्रमसे प्राप्त होता है, जो बहुत रमणीय है और जो बहुत उदार है और जिसके कारण पराक्रमके बड़े बड़े सत्कर्म होते हैं ऐसे दिव्य तेजका लाभ हमें आपहीका एकान्त ध्यान करनेसे और आपहीकी प्रार्थना करनेसे प्राप्त होता है। आपका महिमा अचिन्त्य है। हमारी हार्दिक प्रार्थनासे और हमारे दिये हुए हवियोंसे आप प्रसन्न रहें। हे पूजनीय इन्द्र, हमारे गाये हुए सत्य सूक्त और हमारा हार्दिक प्रेम आपके पास जाकर मिलें। आपको पहुंचे। ७

देखिये। दुष्ट इच्छा और दुष्ट लोगोंका नाश करनेके लिये इन्द्र, तुमको और हमको सहायता देनेमें हमेशा तैयार रहता है। हमारे ऊपर चढ़ाई करनेवाले और हमारा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले राक्षसोंकी सेनाका नाश होवे। यहां तक आनेके पहिले ही उस सेनाका नाश होवें। यह बड़ी आश्चर्यकी बात है कि हमारे ऊपर छोड़े हुए बाण यहांतक आ नहीं सकते। ८

---

६ तत् (ते यशः) भव्याय इन्दवे (अपि) वोचेयम् यः हवमान् (अतः) हव्यः न, (सः) मन्म रेजति रक्षो हा (सन्नपि) मन्म रेजति । सः स्वयं अस्मत् वधैः निदः च दुर्मतिम् आ अजेत । (अस्य पुरः) अघशंसः अवतर अव अजेत, क्षुद्रमिव अव जेत् ।

७ हे रयिवः इन्द्र, यत् सुवीर्यं रण्व सन्तम् सुवीर्यं रयिं (अस्ति) तत् होत्रया चित्त्या च वनेम । तत् दुर्मन्मानं ई (इन्द्रं) सुमन्तुभिः इषा च आ पृचीमहि, सुम्नहूतिभिः सत्याभिः सुम्नहूतिभिः च यजत्रम् इन्द्र आ (पृचीमहि) ।

८ अस्मे वः (अर्थे) स्वयशोभिः दुर्मतीनां परिवर्गे, दुर्मतीनां दरिमन् ऊती इन्द्रः प्र प्र (भवति) । या नः रिषयध्यै ऊर्जं च अत्रेः (क्षिप्ता) सा स्वयं हता ईम् असत् । न वक्षति, क्षिप्ता जूर्णिः न वक्षति ।

हे इन्द्र, जिन मार्गोंसे जानेसे हमे धन मिले और जो मार्ग अच्छे हैं उन्ही मार्गोंसे हमें ले चलो। जिन मार्गपर (दुर्वासना रूप) राक्षस नहीं हैं उन मार्गोंसे हमें आप ले चलो। जब हम घरमें रहते हैं और परदेशमें जाते हैं तब भी आप हमारे साथ रहिये। जब हम पास रहते हैं अथवा दूर रहते है तब हमारे ऊपर कृपा करके और हमें सहायता देकर आप हमारी रक्षा कीजिये। ९

हे इन्द्र, आप और आपका धन केवल हमारे लिये है। (लज्जाके मारे) आपकी ओर कोई नहीं देख सकता। मानों, स्वयं यश निजकी रक्षाके लिये और निजके सुखके लिये मित्रकी तरह हमेशा आपके पास रहता है (आपका साथ कभी नहीं छोड़ता।) हे इन्द्र, आपका तेज बड़ा तीव्र है। हे लोगोंका पालन करनेवाले इन्द्र, रथमें बैठकर आप भक्तोंकी रक्षा करते हैं। हे वज्रधारिन् इन्द्र, जो दुष्ट लोग हैं उनका अपने वज्रसे नाश कीजिये। हमारा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले लोगोंको भी आप मार डालिये। १०

हे इन्द्र, भक्तिसे हम आपकी स्तुति करते हैं। पापसे हमें दूर रखिये। दुष्ट लोगोंका हमेशा नाश करनेवाले केवल आपही हैं। प्रत्यक्ष (साक्षात्) आप ईश्वरही हैं। इसलिये दुष्ट इच्छाओंका भी आप नाश कर सकते हैं। दुष्ट कर्म करनेवाले राक्षसोंका भी आप नाश करते हैं। हमें जैसे गरीब ब्राह्मणकी रक्षा करनेवाले भी आप है। हे आनन्द देनेवाले इन्द्र, इसी लिये जगत्पिता परमेश्वरने आपको (उत्पन्न करके) प्रकट किया। हे सुख देनेवाले इन्द्र, राक्षसोंका नाश करनेके लिये ही ईश्वरने आपको प्रकट किया। ११ (१७)

---

९ हे इंद्र परिणसा राया अनेहसा पथा याहि, अरक्षसा (च पथा) पुरः नः याहि नः पराके आ सचस्व अस्तमीके (अपि) आ सचस्व। नः दूरात् अभिष्टिभिः पाहि, आरात् च (अपि) अभिष्टिभिः सदा पाहि।

१० हे इंद्र त्वं तरस्वता राया नः (असि) उग्रं त्वा चित् महिमा अवसे, अवसे च महे मित्रं न त्वा सक्षत्। हे ओजिष्ठ (इंद्र) हे त्रातः अमर्त्य, रथं कं चित् अविता (त्वमसि)। हे अद्रिवः अस्मत् अन्यं कं चित् रिरिषेः, अद्रिवः रिरिक्षन्तं चित् (रिरिषेः)।

११ हे सुक्रतु इंद्र स्रिधः नः पाहि, त्वं दुर्मतीनां सदमित् अवयाता, देवः सन् दुर्मतीनां (चापि अवयाता) पापस्य रक्षसः हंता, विप्रस्य मावतः त्राता; अध हि हे वसो त्वा जनिता जीजनत्, वसो रक्षोहणं त्वा जीजनत्।

सूक्त १३०.

॥ ऋषि–कक्षीवान् । देवता–इन्द्र ॥

जिस तरह सत्यवान् महात्मा सभामें आकर बैठता है अथवा प्रजाका पालन करनेवाला सज्जन राजा अपने राज मंदीरमें आकर बैठता है उसी तरह, हे इन्द्र, दूर लोकसे हमारी ओर आइये । सोमरस तैयार होते ही हम आपकी प्रार्थना करके आपको बुलाते हैं । क्यों कि हमें परम सुख प्राप्त करनेकी इच्छा है । जिस तरह पुत्र पिताको बुलाता है उस तरह सामर्थ्य प्राप्त करनके लिये और जय पानेके लिये हम आपकी–जो बड़े दाजशील हैं–प्रार्थना करते हैं । १

हे इन्द्र, जिस तरह प्यासा बैल जलसे भरा हुआ हौज़का सब पानी पी डालता है अथवा जिस तरह तप्त हुआ सूर्य मेघोदकसे पूरे पूरे भरे हुए सरोवरें (तालावों) को सुखाता ह उसी तरह पत्थरसे चूर चूर किया हुआ और अच्छी तरह निचोड़ा हुआ सोमरसका, हे इन्द्र, आप स्वीकार कीजिये । आपको सोमरस पिलाकर आपको पूर्ण रीतिसे आनन्दित करानेके लिये आपके दिव्य अश्व आपको यहां ले आवे । आपका तेज सूर्यकी नाई बड़ा तीव्र है । सबको उत्साह देनेवाले सूर्यको जिस तरह अश्व ले आते हैं उसी तरह वे अश्व आपको भी ले आवे । २

जिस तरह पर्वतके दरारमें पड़े हुए पत्थरके अन्दर छिपा हुआ पक्षीका गर्भ बाहर लाया जाता है उसी तरह इन्द्र आकाशके अन्दरमें छिपा हुआ प्रकाशके निधिको दूधदका जगतके सामने ले आय । वज्र धारण करनेवाले अंगिरसोंके स्वामी इन्द्र, बड़े ठाठसे प्रकाश-रूपी धेनुओंको साथ ले आये । भक्तगण उससे आनन्दित हुए और अपने अपने अबतक रुके हुए पराक्रमके काम करने लगे । भक्तोंके लिये अन्न प्राप्त करनेका मार्ग इन्द्रने खोल दिया । ३

---

१ हे इंद्र अयं सत्पतिः न अच्छ विदथानि इव (उतथा) सत्पतिः राजा अस्तम् इव, त्वं परावतः उप नः आ याहि । प्रयस्वन्तः वयं सुते सचा त्वा हवामहे । पुत्रासः पितरं न वाजसातये मंहिष्ठं (त्वां) वाजसातये (हवामहे) ।

२ हे इंद्र कोशेन सिक्तं अवतं वंसगः न ततृषाणः वंसगः न त्वं अद्रिभिः सुवानं सोमं पिब । ते हर्यताय मदाय तुविष्टमाय धायसे त्वा सूर्यम् हरितः विश्वा अहा सूर्यं इव आ यच्छन्तु ।

३ अनन्ते अश्मनि अंतः अश्मनि परिवीतम् वेः गर्भं न, दिवः गुहा निहितम् निधिं (इंद्रः) अविन्दत् । अंगिरस्तमः वज्री व्रजम् सिषासन् इव गवां (अयं) इंद्रः इषः परिवृताः (द्वारः) इषः परिवृताः द्वारः अप अवृणोत् ।

इन्द्रने अपना वज्र अपने दोनों हाथोंसे पकड़ लिया। इन्द्रने तलवार की तरह अपना वज्र प्रकट किया। वृत्रको मारनेके लिये इन्द्रने अपने वज्रको धार लगाया। हे इन्द्र, अपने दिव्य तेजसे आप चमकते हैं। आप अपने प्रभावसे और सामर्थ्यसे बड़े मस्त हैं। जिस तरह वृक्षको तोड़नेवाला अपनी कुल्हाड़ीसे वृक्षको बिलकुल तोड़ डालता है उसी तरह आप अपने शस्त्रसे दुष्ट शत्रुओंको मार डालते हैं। ४

हे इन्द्र, आपने रथकी तरह दौड़ते हुए बहते बहते समुद्रमें जाकर मिलनेके लिये उन नदियोंको उत्पन्न किया। उन नदियोंने सबके लिये एक कल्याणका काम किया है। जिस तरह काम धेनु मनुराजाकी इच्छा पूर्ण करती है उसी तरह वे नदियां सब जगतको इच्छित फल देती हैं। ५ (१८)

हम दीन जन, धनकी इच्छा पूरी करनेके लिये आपकी प्रार्थना करते हैं। उसके लिये हमने एक प्रार्थना सूक्त तैयार किया है। जिस तरह चतुर और कुशल कारीगर रथको अच्छी तरह तैयार करता है उसी तरह हम अपने मनमें आपकी मूर्तिका ध्यान करते हैं। हे परम बुद्धिवान् इन्द्र, आप विजयी हैं। हम आपका आदर करते हैं। जिस तरह युद्धमें पराक्रमी और साहसी वीरोंको अलंकार प्रदान किये जाते हैं उसी तरह बल यश और वैभव प्राप्त होनेके लिये हम आपको सन्मान अर्पण करते हैं। ६

---

४ वज्रं गभस्त्योः ददानः तिग्मं क्षदेव इंद्रः असनाय सं श्यत् अहि हत्याय संश्यत्। इंद्रः त्वा ओजसा संविव्यानः मज्मना शवोभिः च (संविव्यानः) तष्टेव वृक्षं वनिनः नि वृश्चसि परश्वा इव वि वृश्चसि।

५ हे इंद्र त्वं नद्यः रथान् इव वाजयतः रथान् इव समुद्रं अच्छ सर्तवे वृथा असृजः। इत ऊतीः ताः समानं अक्षितं अर्थं अयुंजत, (यत्) (इमाः) मनवे विश्वदोहसः धेनूः इव जनाय विश्वदोहसः (अभवन्)।

६ वसूयन्तः (वयं) आयवः इमां ते वाचम् अतक्षिषुः, स्वपाः धीरः रथं न सुम्नाय त्वां अतक्षिषुः। विप्र त्वां जेन्यं शुंभंतो (यथा) वाजेषु वाजिनं अश्वं इव, शवसे धना सातये विश्वा धनानि सातये।

हे पराक्रमी इन्द्र, अपने दानशील भक्त, दिवोदासके लिये आपने अपने वज्रसे शत्रुके नब्बे किलोंका नाशकर डाला। भयंकर इन्द्रने अतिथिग्वाके लिये शम्बर राक्षसको पर्वतसे नीचे खींचकर मार डाला। इन्द्र अपने दिव्य सामर्थ्यसे सब प्रकारकी श्रेष्ठ सम्पत्ति अपने भक्तोंको देता है। ७

इन्द्रने अपने सामर्थ्यसे युद्धमें अपने भक्तोंकी रक्षा की। ऐसे युद्धमें वीर पुरुषको स्वर्गका लाभ होता है। अधर्मी लोगोंको आप दण्ड देते हैं और उनको सीधे मार्गपर ले आते हैं। काले रंगके राक्षसको जीतकर मनुराजाके सुपुर्द किया। सब जगतको मानों, अपने तेजसे जलानेवाला इन्द्र, लालची राक्षसोंका नाश करता है और सज्जन पुरुषोंको सतानेवाले दुष्ट लोगोंको मार डालता हैं। ८

इन्द्र अपने तेजसे प्रकट हुआ और आपने सूर्यके रथका एक चाक निकालकर राक्षसोंकी ओर फेंक दिया। प्रातःकालमें क्रोधसे तप्त होकर सूर्यके रथके दूसरे चाककाभी आवाज आपने बन्द किया। इस तरह इन्द्रने अपने प्रभावसे सूर्यके रथका आवाज बिलकुल बन्द किया। हे प्रज्ञावान् इन्द्र, प्राचीन कालमें जब उशनाकवि आपकी ओर आया तब आपने उसकी रक्षा की। मनुष्य जातिको जितना सुख मिल सकता है उतना सुख आपने उशना-कविको अर्पण किया। मानों, उसको अनन्त सुख प्राप्त हुआ। ९

हे दुश्मनके किले तोड़ डालनेवाले इन्द्र, आप भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करते हैं और हमारी अपूर्व स्तुतियोंसे आप प्रसन्न होते हैं। कृपा करके हमारी रक्षा आप कीजिये। हे इन्द्र, दिवोदास ऋषिने आपकी स्तुति की है। जिस तरह दिनके प्रकाशसे आकाशकी शोभा बढ़ती है उस तरह हे इन्द्र, आप अपने प्रकाशसे प्रकट हूजिये। १० (१९)

---

७ पूरवे महि दाशुषे दिवोदासाय, हे नृतो, हे नर्तो इंद्र त्वं वज्रेण नवति पुरः भिनत्। उग्रः अतिथिग्वाय शंबरं गिरेः अव अभरत्। (अयं इंद्रः) महः धनानि ओजसा विश्वा धनानि ओजसा दयमानः (भवति)।

८ इंद्रः शतमूतिः विश्वेषु आजिषु, स्वर्मीळ्हेषु आजिषु आर्यम् यजमानं प्र अवत्। मनवे अव्रतान् शासत्, कृष्णां त्वचम् (अस्मै) अरन्धयत्। विश्वम् धक्ष न (सः) ततृषाणम् ओषति, अर्शसानम् नि ओषति।

९ (स्वयं) जातः ओजसा सूरः चक्रं (राक्षस-निवर्हणाय) प्र वृहत्, प्रपित्वे (च अपरस्य चक्रस्य) अरुणः वाचं मुषायति ईशानः आ मुषायति। हे कवे यत् उशनाः परावतः (त्वां) ऊतये अजगन् (तदा त्वं) विश्वा मनुषा सुम्नानि तुर्वणिः इव, अहा विश्वा तुर्वणिः इव (अभवत्)।

१० हे वृषकर्मन्, हे पुरां दर्तः (इंद्र) सः (त्व) नव्येभिः उक्थैः (तुष्टः सन्) शग्मैः पायुभिः नः पाहि। हे इंद्र दिवोदासेभिः स्तवानः त्वं अहोभिः (प्रकाशैः) द्यौः इव वर्धीथाः।

सूक्त १३१.

॥ ऋषि—परुच्छेप । देवता—इन्द्र ॥

बेहद और प्रकाशसे भरा हुआ आकाश केवल इन्द्रको ही नमस्कार करता है। लम्बी-चौड़ी पृथ्वी भी अपने सौभाग्यके साथ, अपनी उत्कृष्ट सम्पत्तिके साथ और अपने फल-पुष्पोंके साथ इन्द्रको नमस्कार करती है। प्रेमसे एकत्रित हुए सब देवोंने इन्द्रकाही नेता बनाया है। हमारे सब सोमरस और हम जैसे भक्तजनोंके हवि भी इन्द्रको ही जा पहुंचे।१

सोम अर्पण करनेके समय, आपको सबसे श्रेष्ठ देव समझकर यजमान लोक, बड़े उत्साहसे, आपकी प्रार्थना करते हैं। हरएक मनुष्य नित्य आनन्द प्राप्त करनेके लिये स्वतन्त्र रीतिसे आपकी प्रार्थना करता है। प्राणकी रक्षा करनेवाली तरह बड़े कार्यके समय आपकी सहायता मांगना हमारे लिये उचित है। हम जैसे मनुष्यगण और भक्तगण यज्ञके कारणही इन्द्र देवके लिये सूक्त गाते हैं। केवल इन्द्रकी ओर ही हम अपना ध्यान लगाते हैं। २

हे इन्द्र, अनेक यजमान और उनकी स्त्रियां आपकी कृपासे गोधन प्राप्त करनेके लिये आपको हवि अर्पण करती हैं। दुष्ट इच्छाओंका नाश करके वे यजमान आपको आहुति अर्पण करते हैं और आपका यजन बड़े उत्साहसे करते हैं। जब आप, हे इन्द्र, यजमान लोगोंको दिव्य प्रकाश और स्वर्गसुख प्राप्त करानेके लिये स्वर्गको ले जाते हैं तब आपका विजयी वज्र हमें सहज रीतिसे दिखाई देता है। प्राणके समान आप अपने वज्रपर प्रेम करते हैं। आप उससे कभी अलग नहीं होते। ३

---

१ असुर: द्यौ: इंद्राय हि अनम्रत, (इयं) मही पृथिवी द्युम्न साता, वरीमभि: इंद्राय (एव) वरीमभि: (अनम्रत)। सजोषस: विश्वे देवास: इंद्रं (एव) पुर: दधिरे, (तस्मात्) विश्वा मानुषा सवनानि, मानुषा (हव्यानि) इंद्राय (एव) रातानि सन्तु।

२ विश्वेषु हि सवनेषु वृषमन्यव: (यजमाना:) समानं एकं (देवं) त्वां पृथक् तुञ्जते, स्व: सनिष्यव: पृथक् (तुञ्जते)। तं त्वां पर्षणिं नावं न भूषस्य धुरि धीमहि, (वयं) आयव: आयव: यज्ञै: न इंद्रं स्तोमेभि: इंद्रं (एव) चितयंत: (वर्तेमहि)।

३ अवस्यव: मिथुना: गव्यस्य व्रजस्य साता इंद्र त्वा विततस्रे। (हव्यं) वि:सृज: सक्षन्त: नि:सृज: (विततस्रे)। यत् गव्यंता स्वर्यन्ता द्वा जना समूहसि, (तदा) इंद्र वृषणं सचाभुवं हे इंद्र सचाभुवं वज्रम् आवि करिक्रत् (एषि)।

हे इन्द्र, आपका पराक्रम अब सब जगत्को विदित हुआ है । शरद् (आडेके) ऋतुमें अकालरूपी राक्षसके कीले आप तोड डालते हैं । आपने बड़ी कठोरतासे उन कीलोंका नाश कर डाला । हे सामर्थ्यवान् प्रभो, अधर्मी लोगोंको आप दण्ड देते हैं। विजय प्राप्त करके हर्ष पाये हुए आपने पृथ्वी, नदीयां, और नदीके पासके प्रदेशको जीत लिया और आपने स्वाधीन कर लिया । ४

हे उदार इन्द्र, आपके भक्तोंने बडे हर्षसे आपकी स्तुति की है । क्यों कि आपका लाभ प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले भक्तोंकी आपने रक्षा की । आपका सख्य प्राप्त करनेके लिये उत्सुक हुए भक्तोंको आप सहायता देते हैं । जय प्राप्त करनेकी इच्छासे जब आप युद्धमें बड़ी हर्षसे भयंकर आवाज (सिंहनाद) करते हैं तब नदीयोंके अन्तर्गत प्रदेशोंको आप जीत लेते हैं । अच्छा काम करनेकी इच्छासे आपने उन प्रदेशोंको जीता । ५

क्या इन्द्र आज प्रातःकालमें हमपर कृपा करेंगे ? हे इन्द्र, हमारे सामगानको कृपा करके सुनिये । हम बड़ी नम्रतासे आपको हवि अर्पण करते हैं । दिव्य प्रकाशका लाभ होनेके लिये हम आपकी प्रार्थना करते है । हमारी प्रार्थनाओं का स्वीकार कीजिये । हे वज्र धारण करनेवाले पराक्रमी इन्द्र, जब आप दुष्ट लोगोंका नाश करनेकी इच्छा करते हैं तब हम आपकी स्तुति करते हैं । बड़े उत्साहसे और फूर्तीसे गाए हुए स्तुतियोंका आप स्वीकार कीजिये । ६

हे इन्द्र, आप बड़े बलवान् हैं । आप हमसे प्रेम करते हैं । आप सामर्थ्यवान् हैं । हे पराक्रमी इन्द्र, आपही आप हमारा द्वेष करनेवाले दुष्ट लोगोंका आप नाश कीजिये । हम पर अन्याय करनेवाले लोगोंकोभी आप अपने शस्त्रसे मार डालिये । कृपा करके हमारी प्रार्थना सुनिये । आपकी कीर्ति सब दूर फैली हुई । जब दुष्ट लोग हमारी ओर आते हैं तब मार्गमेंही उनका नाश होवे । टुट हुवे गाडीकी तरह हमारे शत्रु मार्गमेंही गिर जाय । ७(२०)

---

४ पूर्व: ते अस्य वीर्यस्य विदु: यत् हे इन्द्र शारदी: पुर: अव अतिर: ससहान: अव अतिर: । शवस: पते इन्द्र (त्वं) तं अयज्युं मर्त्यं शास: । महीं पृथिवीं अमुष्णा: इमा: अप: मंदसान: इमा: अप: (अमुष्णा:)

५ आत् इत् ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन् यत् हे वृषन् उशिज: अविथ, सखीयत: यत् आविथ । पृतनासु प्रवन्तवे (यत्) एभ्य: आर चकर्थ (तत्) ते अन्यां अन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्त: सनिष्णत ।

६ उत आस्या: उषस: न: बुधंत हि, (न:) अर्कस्य बोधि, हवीमभि: हविष: च स्वर्षाता हवीमभि: (हवस्य च बोधि) । यत् इन्द्र वज्रिन् त्वं वृषा मृध: हन्तवे चिकेतसि मे अस्य नवीयस: वेधस: नवीयस: (प्रतिभावतस्य) मन्म श्रुधि ।

७ तं इंद्र त्वं वावृधान: (अपि) अस्मयु:, हे तुविजात हे शूर अभिमर्यन्तं मर्त्यं वधेन मर्त्यं जहि, य: न: अघायति (तं अपि जहि), सुश्रवस्तम: शृणुष्व (एतत्), दुर्मति: अपभूतु विश्वा दुर्मति: रिष्टं (रथ: न यामन् अपभुतु ।

सूक्त १३२.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–इन्द्र ॥

हे उदार इन्द्र, पहले युद्धकी तरह इस युद्धमेंभी हमारे ऊपर चढ़ाई करनेवाले शत्रुओंका हम आपकी कृपासे पराभव करेंगे । क्यों कि हमारी रक्षा करनेवाले आपही हैं । उसी कारण हम अपने शत्रुओंका नाश भी करेंगे । अब पराक्रम दिखलानेका समय तो आगया । आपको सोमरस पिलानेवाले आपके भक्तोंको आप आशीर्वाद दीजिये । हम केवल शूरता दिखलाने की इच्छा करते हैं । युद्धमें हमें जो लूटका माल मिलेगा वह सब हम आपकोही अर्पण करेंगे । १

इन्द्रही स्वर्गको प्राप्त करानेवाला है । इन्द्रही सबे वीरोंको वैभव दिखलानेवाला है । युद्धके समय प्रातःकालमें भक्तोंके गाये हुए स्तुतियोंका और प्रार्थनाओंका आप स्वीकार करते है । आप सन्तुष्ट होकर शत्रुओंका नाश करते हैं । यह बात सबको विदितही है कि आप बड़े पराक्रमी हैं । इन्द्रको नमस्कार करके उसका सन्मान करना चाहिये । हे इन्द्र, आप केवल सौभाग्यकी मूर्ति ही है । आप हमपर कृपा कीजिये और हमारा कल्याण कीजिये । २

जिस यज्ञमें आपके लिये सुन्दर वेदी– मनोहर निवासस्थान– तैयार की जाती हैं उस यज्ञमें उज्ज्वल हवि भी पहिले की नाई आपको अर्पण किया जाता है । अपने भक्तोंको सनातन सत्य लोकको ले जानवाले आपही हैं । सूर्य प्रकाशके कारण अन्तरिक्षमें आपके भक्त लोग केवल आपका पराक्रमही देख सकते हैं । यह बात सबको विदितही है कि प्रकाशरूपी दिव्य धेनुओंको ढूंढकर निकालनेवाले केवल आपही हैं । जब आप अपने भक्तोंको अपनाते हैं तब आपही केवल उनके लिये धनूओंको भी ले आते हैं । बिना आपके दूसरा कोई भक्तोंको सहायता देनेवाला नहीं है । ३

---

१ हे मघवन् इंद्र (यथा) पूर्व्ये धने (तथा इदानीं अपि) त्वया ऊताः च वयं पृतन्यतः ससह्याम, वनुष्यतः च वनुयाम । नेदिष्ठे अस्मिन् अहनि सुन्वते नु अधि वोच । (यतः) अस्मित् यज्ञे भरे कृतं (वय) वाजयंतः भरेकृत वि भयेम ।

२ स्वर्जेषे, आप्रस्य वक्मनि (एतादृसे) भरे, उषर्बुधः स्वस्मिन अंजसि, काणस्य स्वस्मिन् अंजसि इंद्रः (वृत्रं) अहन् यथा विदे, सः हि शीर्ष्णाशीर्ष्णा उपवाच्यः, अस्मत्रा ते भद्रस्य रातयः भद्राः रातयः सध्र्यक् सन्तु ।

३ यस्मिन् यज्ञे (तुभ्यं) वारं क्षयं अकृण्वत (तस्मिन् यज्ञे) तत् शुशुक्तं प्रयः प्रत्नथा ते (एव) तु ऋतस्य क्षयं वाः असि । अध तत् निवोचेः यत् (भक्ताः) दिता अन्तः रश्मिभिः पश्यन्ति । स इंद्रः च अनु विदे नो एषणः बंधुक्षित्भ्यः गोएषणः ।

हे इन्द्र, आपकी कीर्ति ऐसी है कि सब लोग उसका बारबार वर्णनही करते रहते हैं। अंगिरसोंके लिये प्रकाशरूपी धेनुओंको रोकनेवाले कीलोंको आपने तोड़ डाला। ज्ञान दिलानेवाले प्रकाशरूपी धेनुओंको स्वाधीन करके आपने अंगिरसोंके अर्पण कीया। हम भी आपके भक्तही हैं। हमारे लिये भी आप युद्ध कीजिये। और आपकी कृपासे हमे जय प्राप्त होवे। जो लोग आपको सोमरस पिलाकर आपकी सेवा करते हैं वे सज्जन लोगोंको सतानेवाले अधर्मी और दुराचारी लोगोंके पूर्ण रीतिसे स्वामी बन जाय। ४

हे शूर इन्द्र, आपने अपने भक्तोंको भावी दशाका ज्ञान ईश्वरी कृपासे अर्पण किया है। जय और कीर्ति प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले भक्तगण युद्धमें बड़े पराक्रमसे लड़ते हैं और सहज रीतीसे विजय पाते हैं। आपके लिये वे यज्ञ करते हैं। निजको और पुत्रका दीर्घायु प्राप्त करनेके लिये आपके भक्त आपकी स्तुति करते हैं। वे संकट समयमें आपहीकी स्तुति करते हैं। जब वे अन्य देवोंकी स्तुति करते हैं तब भी उनका ध्यान आपहीकी ओर रहता है। ५

हे इन्द्र और पर्वत आपही हमारे नेता हैं। जब कोई अपनी सेनाके साथ हमारे ऊपर चढ़ाई करता है तब आप अपने वज्रसे उसका नाश कीजिये। आपका शस्त्र ऐसा है जो शत्रुको मार डाल सकता है। वह शत्रु चाहे जिस जगह छिपा हुआ हो ? आप उसको मार सकते हैं। हे शूर इन्द्र, शत्रुओंका नाश करनेवाला आपका शस्त्र चारों ओरके हमारे शत्रुओंका सब प्रकारसे नाश करे। ६

---

४ हे इन्द्र ते (वीर्य) पूर्वथा च नु इन्द्र प्रवाच्य यत् अंगिरोभ्यः (गवां) व्रज अप अवृणोः, (त च) ... (तान्) अप दिक्षन्। (एव) एभ्यः गमान्या [illegible] अस्मभ्य च आयोतिम जाप च। (पर च) ... अवत सुन्वद्भ्यः रध्य दुणायन्ताम चित् अनतम् (अपि रधय)।

५ यत् हे शूर त्वं कर्तु... (भक्त। जनान् स ईक्षयत्। ते हि ... तदयन्त, श्रवस्यवः च प्रयक्ष ... नर्म इत प्रजावत (दीर्घ) आयुः (लब्धु) वाचं च ओजसा अर्चन्ति। (तेषां) धीतयः देवान् अच्छ ... धीतयः इद्रे ओक्य दिधिद ...।

६ इन्द्रापर्वता, पुरोयुधा यः नः पृतन्या त्, तं, त इत, अप इतं; तं तं इत वज्रेण इत। गहनं यत् इनक्षन् दूरं वसाय छसत; शूर, दर्मा अस्माक शत्रून् विधतः परि दर्षीष्ट।

सूक्त १३३.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–इन्द्र ॥

सनातन और सच्चा धर्म यज्ञ ही है। यज्ञके कारण ही हम पृथ्वी और आकाशको स्वच्छ कर सकते हैं। इन्द्र और ईश्वरको न माननेवाले बलवान् और दुष्ट भूतोंका हम यज्ञके कारण ही जला सकते हैं। यहां देखिये। हमारे शत्रुओंका नाश हुआ है और उनके मृत शरीरके टुकडे यहां स्मशानमें गाड़नेकी जगह पडे हुए हैं। १

हे वज्र धारण करनेवाले इन्द्र, हमारे ऊपर हमला करनेवाले बाजीगरोंका सिर काट डालिये। उनको अपने प्रचण्ड पैरके नीचे कुचल डालिये। उनको जगद्व्यापी पैरके नीचे कुचल डालो। २

हे उदार इन्द्रदेव, जादूगरोंकी वह बलवान् टोली स्मशानमें गन्दी जगह पडी छिपी हुई रहती है। उस टोलीको दूषडो और उसका नाश करो। ३

पचास पचासकी तीन टोलीयोंका आप पहिले ही नाशकर चुके हैं। ऐसे कामको आप कुछ नहीं समजते। तथापि हम उसको बडे महत्वका काम समजते हैं। ४

हे इन्द्र, पीले रंगके, भयंकर स्वरूपके और बडे जोरसे चिल्लानेवाले पिशाचको आप मार डालिये। उस पिशाचके साथ अन्य राक्षसोंका भी नाश कीजिये। ५

---

१ ऋतेन (यज्ञेन) उभे रोदसी पुनामि, याः महीः अनिंद्राः द्रुहः ताः सं दहामि। (पश्य) यत्र अमित्राः अभिव्लग्य हताः, परितृळ्हाः च वलस्थान अशेरन्।

२ हे अद्रिवः अभिव्लग्य चित् यातुमतीनां शीर्षा छिंद्धि, वटूरिणा पदा महा वटूरिणा पदा (छिंद्धि)।

३ हे मघवन् आसां यातुमतीनां शर्धः अव जहि, वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके।

४ यासां तिस्रः पंचाशतः अभिव्लगैः अपावपः, तत् (यद्यपि) ते तकत् सु मनायति, (भक्तः) ते (वीर्य) सु मनायति।

५ हे इंद्र पिशंगभृष्टिम् अम्भृणम् पिशाचिम् सं मृण, सर्वं रक्षः नि बर्हय।

हे इन्द्र, (शरीरको चिपके हुए) भयंकर अन्धकारका नाश कीजिये। क्या आप हमारी प्रार्थनाकी ओर ध्यान देते हैं। आकाशसे बिजलीकी वर्षा करनेवाले और हे वज्र धारण करनेवाले इन्द्र, आपके तीव्र तेज और प्रकाशरूपी (अग्नि) के कारण पृथ्वी और आकाश भी डरके मारे बिलकुल दुःखी और उदास दिखाई देते हैं। आप बड़े सामर्थ्यवान् हैं। नाश करनेवाले आप अपने शस्त्र और अस्त्र बिलकुल तयार करके रखते हैं। उन शस्त्रोंके साथ आप सब जगह सञ्चार करते हैं। परन्तु, हे वीर, सात्विक और सज्जन लोगोंको आप बिलकुल नहीं सताते हैं। एकांत सेवकोंके साथ आप सञ्चार करते हैं। ६

सोमरस अर्पण करनेवाले यजमानको ही केवल आप धन देते हैं। सोमरस अर्पण करनेवाले भक्तही केवल शत्रुओंको जीत सकते हैं और उनको अपने अधिकारमें रख सकते हैं। सोमरस अर्पण करनेवाले पराक्रमी भक्त सैकडों जय प्राप्त करते हैं। ऐसे भक्तको इन्द्र यथेष्ट धन और सुख अर्पण करता है। परमेश्वर भी उसीको धन देता है। ७(२२)

---

६ हे अद्रिवः इन्द्र, महः अवः दार्दृहि, श्रुधि नः, हे अद्रिवः घृणात् भीषा न, क्षाः न द्यौः (अपि) भीषा शुशोच हि। त्वं शुष्मितमः हि वधैः उग्रेभिः ईयसे, (पर च) हे सत्वभिः अप्रतीत शूर, त्वं हे शूर अपूरुषघ्नः त्रिसप्तैः सत्वभिः (ईयसे)।

७ सुन्वन् हि परीणसः क्षयं वनोति, सुन्वानः हि द्विषः अव यजति, देवानां द्विषः अव यजति स्म। सुन्वानः। इत् वाजी अस्तृतः सहस्रा सिषासति। सुन्वानाय इन्द्रः (सुखं) आभुवं ददात, रयिं आभुवं ददाति।

अनुवाक २०.

सूक्त १३४.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–वायु ॥

हे वायो, आपके चञ्चल और वेगवान् अश्व, सोमरसका आस्वाद लेनेके लिये स्वादिष्ट हवियोंकी ओर आपको ले आवे। इन सत्य, मधुर, ज्ञानमय और उदात्त स्तोत्रोंसे आपका मन सन्तुष्ट होवे। नियुत नामके वेगवान् घोडोंको रथको जोतकर हमने अर्पण किये हुए हवियोंका स्वीकार करनेके लिये आप इधर आइये। १

हे वायु, हमारे सोमरस आनन्द देनेवाले हैं। कुशलतासे वे तैयार किये गये हैं। उनके तेजसे विदित होता है कि वे मानों, स्वर्गमें बने हुए हैं। सोमरसमें दुध मिलाकर वे और भी स्वादिष्ट बने हुए हैं। ऐसे सोमरसको पीकर, हे वायु, आप आनन्दित हूजिये। आपकी सहायता करनेवाले घोड़े आपकी सेवा करनेके लिये आपहीके साथ हमेशा रहते हैं। रथको जाते हुए घोडे (प्रशंसनीकरण) जब भक्तोंके मनमें पवित्र विचार उत्पन्न कराते हैं तब हमारे बुद्धिमान ऋत्विज् वायुके लिये स्तोत्र गाते रहते हैं। २

यह वायु कभी कभी अपने रथको लाल रंगके और कभी कभी अबलक रंगके घोडे जोतता है। यज्ञके रास्तेसे सफर करनेके लिये और चाहे जहां जानेके लिये यही वायु, अपने वेगवान् और बलवान घोडोंको रथके जूएको जोतता है। जिस तरह पती अपनी सोये हुए स्त्रीको जगाता है उसी तरह आप भी हमारे मनमें उच्च विचारोंको जागृत कीजिये। पृथ्वी और आकाशके ऊपर जो पर्दा है उसको हटा दीजिये जिससे हम उनको देख सके। आप उषाको प्रकाशित कीजिये। उषाको इस लिये आप प्रकाशित कीजिये कि हम अपना संरक्षण करें। ३

---

१ हे वायो (ते) जुवः रारहाणाः अभि प्रयः त्वा वहन्तु, इह पूर्वपीतये, सोमस्य पूर्वपीतये आवहन्तु। (अथ) जानती ऊर्ध्वा च सूनृता ते मनः अनु तिष्ठतु, हे वायो नियुत्वता रथेन दावने मखस्य दावने आ याहि।

२ हे वायो! अस्मत् इन्दवः मन्दिनः क्राणासः, सुकृताः अभिद्यवः, गोभिः क्राणाः अभिद्यवः त्वा मन्दन्तु। यत् ह क्राणाः ऊतयः (अश्वाः) दक्षं त्वां इरध्यै सचन्ते, यदा ते नियुतः धियः दावने सध्रीचीनाः (भवन्ति) (ऋत्विजः) ईं धियः उपब्रुवते।

३ वायुः (कदाचित्) रोहिताः वायु (कदाचित्) अरुणाः (अश्वाः) युङ्क्ते। (अथ) वायुः रथे धुरि वोळ्हवे, (रथे) वोळ्हवे अजिराः वहिष्ठाः (अश्वाः) धुरि (युङ्क्ते)। जारः आ ससतीं इव पुरंधिं प्रबोधय। रोदसी प्रचक्षय, उषसः वासय, अवसे उषसः वासय।

हे वायु, देदीप्यमान उषा आपके लिये अपना सुन्दर और महीन मंगल-वस्त्र अपने अपूर्व किरणोंमें—अपने अलौकिक किरणोंमें सब दूर फैलाती है। अमृतकी वर्षा करनेवाली किरणरूपी दिव्य धेनुएँ आपहीके लिये सुन्दर वस्तुओंको देती (दिलाती) हैं। आकाशके उदरमें (अन्तरिक्षमें) आपही तूफान उत्पन्न करते हैं। नदीयोंको बहानेके लिये ही आप (समुद्रमें) आन्धी उत्पन्न करते हैं। ४

ये स्वच्छ सोमरस स्फूर्ती देनेवाले हैं। वे सोमरस आपको (वायूको) आरामसे बैठने नहीं देते। वे आपको (वायूको) अन्तरिक्षमें घुमाते हैं। वे आपके द्वारा पृथ्वीपर वर्षा कराते हैं। जब कोई यात्री प्रवास करते हुए थक जाता है और जब कोई चोर उसके ऊपर हमला करता है तब वह आपकी प्रार्थना करता है और आप उसकी रक्षा करते हैं। जब सब लोग आपके भक्तके विरुद्ध हैं तब आप उस भक्तकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उसकी रक्षा करते हैं। गहरे अन्धःकारमें भी आप दिव्य शक्तिसे अपने भक्तकी रक्षा करते हैं। ५

हे वायु, (यज्ञमें) आप सबसे पहिले हैं। इस लिये हमारे सोमरसका पान सबसे पहिले आपहीको करना चाहिये। पहिले पहल सोमरसका पान करनेके लिये आपही योग्य हैं। आपको नानाप्रकारके हवि अर्पण करनेवाले और बैठनेके लिये दर्भासन देनेवाले भक्तोंने दिया हुआ सोमरसका पान आपको करना चाहिये। आपके लिये धेनुएं अच्छा दूध देती हैं। ६ (२१)

---

४ तुभ्यं शुचयः उषसः (स्वेषु) दंसु रश्मिषु नव्येषु रश्मिषु चित्रा भद्रा वस्त्रा परावति तन्वते। तुभ्यं सबर्दुघा धेनुः विश्वा वसूनि दोहते। त्वं मरुतः दिवः वक्षणाभ्यः, वक्षणाभ्यः आ अजनयः।

५ (इमे) शुक्रासः शुचयः (सोमासः) तुरण्यन्तः (परं च) मदेषु उग्राः त्वां इषणंत, भुर्वणि, अपां भुर्वणि इषणंत। त्सारी दसमानः (भक्तः) तक्ववीये त्वां भगं ईट्टे। (तदा) त्वम् (तं भक्तं) विश्वस्मात् भुवनात् धर्मणा पासि, असुर्यात् (अपि) धर्मणा पासि।

६ हे वायो, त्वं अपूर्व्यः प्रथमः, नः एषाम् सोमानां पीतिम् अर्हसि, सुतानां पीतिं अर्हसि। उत विहु-त्मतीनां, ववर्जुषीणां विशाम् (एष अयं सोमः)। ते इत् विश्वाः धेनवः आशिरं दुह्रे, घृतं आशिरं दुह्रे।

100,000

तिजोरियां

हरिचंद मन्छाराम एण्ड कंपनी की इ. स. १८७० से आज कत एक लाख तिजोरी बेची गई है। हरिचंदकी कंपनी सबसे पुरानी है। युरोपियन-अमेरिकन कंपनीके साथ टकर देनेवाली तथा सस्ती कीमतवाली सिर्फ हरिचंदही की कंपनी है। प्रायां स्वदेशी मालकी कीमत परदेशी मालसे अधिक रहती है किन्तु हरिचंद के तिजोरोका मूल्य इतना कम है कि परदेशी मालसे वह, बहुतसे बहुत, आधा होगा। यह असल तिजोरी देख कर डाकेखोरभी चकित हो गये हैं और इसके उपर

आगीकी मात्रा

भी नहीं चलती। इस बाबत इन तिजोरिओंको "आगीमें बिनधोक" ऐसा

बंबई प्रदर्शन

में सर्टिफिकीटभी मिल चुका है। जितने सर्टिफिकीट हमारे मालको मिले हैं उतने

उन्नचास सर्टिफिकीटों

दुसरे कोईभी कंपनीको अभीतक नहीं मिले. हमारा कंपनीका नूतन क्यॉटलाग तथा प्राइस लिस्ट जरूर मांग लीजिए.

हरिचंद मन्छाराम आणि कं०

हेड ऑफिस १२१, गुलालवाडी मुंबई.

Printed at Vaidya Brothers' Press, Thakurdwar, Bombay No. 2 & published at Shrutibodh Office 47 Kalbadevi Road, Bombay, by Gajanan Bhaskar Vaidya.

हिन्दी, मराठी, गुजराती और अङ्ग्रेजी चार
भाषाओं में अलग अलग प्रसिद्ध होनेवाला

वेदों का भाषांतर।

प्रति मास में ६४ पृष्ठ; ३२ पृष्ठ संहिता [स्वर और पदपाठ सहित]
* * ३२ पृष्ठ भाषान्तर। * *

वर्ष १] फाल्गुन संवत १९६९-एप्रिल सन १९१३ [अंक १०

वार्षिक मूल्य डाकव्ययसहित रु. ४

हिन्दी

सम्पादक,

रामचंद्र विनायक पटवर्धन, बी. ए. एल् एल्. बी.
अच्युत बलवंत कोल्हटकर, बी. ए. एल्. एल्. बी.
दत्तो आप्पाजी तुळजापुरकर बी. ए. एल्. एल्. बी.

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत्।
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्॥

यास्काचार्य.

'श्रुतिबोध' ऑफिस, ४७, [illegible] रोड, बम्बई.

प्रति अंकका मूल्य आठ आना.

॥ १३५ ॥ ऋषिः-परुच्छेपः । देवता-वायुः । छन्दः-अत्यष्टिः ॥

॥ १३५ ॥ स्तीर्णं बर्हिरुप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुत्वते । तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।
प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय क्रत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥
तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः स्पार्हा वसानः परि कोशमर्षति शुक्रा वसानो अर्षति ॥ तवायं भाग आयुषु सोमो देवेषु हूयते ।
वह वायो नियुतो याह्यस्मयुर्जुषाणो याह्यस्मयुः ॥ २ ॥
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि वीतये वायो हव्यानि वीतये ॥ तवायं भाग ऋत्वियः सरश्मिः सूर्ये सचा ।
अध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत ॥ ३ ॥

स्तीर्णं । बर्हिः । उप । नः । याहि । वीतये । सहस्रेण । निऽयुता । नियुत्वते । शतिनीभिः । नियुत्वते ॥ तुभ्यं । हि । पूर्वऽपीतये । देवाः । देवाय । येमिरे । प्र । ते । सुतासः । मधुऽमन्तः । अस्थिरन् । मदाय । क्रत्वे । अस्थिरन् ॥ १ ॥ तुभ्यं । अयं । सोमः । परिऽपूतः । अद्रिऽभिः । स्पार्हा । वसानः । परि । कोशं । अर्षति । शुक्रा । वसानः । अर्षति ॥ तव । अयं । भागः । आयुषु । सोमः । देवेषु । हूयते । वह । वायो इति । निऽयुतः । याहि । अस्मऽयुः । जुषाणः । याहि । अस्मऽयुः ॥ २ ॥ आ । नः । नियुत्ऽभिः । शतिनीभिः । अध्वरं । सहस्रिणीभिः । उप । याहि । वीतये । वायो इति । हव्यानि । वीतये ॥ तव । अयं । भागः । ऋत्वियः । सऽरश्मिः । सूर्ये । सचा । अध्वर्युऽभिः । भरमाणाः । अयंसत । वायो इति । शुक्राः । अयंसत ॥ ३ ॥

आ वां रथो नियुत्वान्वक्षदवसेऽभि प्रयांसि सुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ॥ पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि वां हितम् ।
वायवा चन्द्रेण राधसा गतमिन्द्रश्च राधसा गतम् ॥ ४ ॥
आ वां धियो ववृत्युरध्वराँ उपेममिन्दुं मर्मृजन्त वाजिनमाशुमत्यं न वाजिनम् । तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।
इन्द्रवायू सुतानामद्रिभिर्युवं मदाय वाजदा युवम् ॥ ५ ॥ २४ ॥
इमे वां सोमा अप्स्वा सुता इहाध्वर्युभिर्भरमाणा अयंसत वायो शुक्रा अयंसत । एते वामभ्यसृक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।
युवायवोऽति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

आ । वा । रथः । नियुत्वान् । वक्षत् । अवसे । अभि । प्रयांसि । सुऽधितानि । वीतये । वायो इति । हव्यानि । वीतये ॥ पिबतं । मध्वः । अंधसः । पूर्वऽपेयं । हि । वां । हितं । वायो इति । आ । चंद्रेण । राधसा । आ । गतं । इंद्रः । च । राधसा । आ । गतं ॥ ४ ॥ आ । वां । धियः । ववृत्युः । अध्वरान् । उप । इमं । इंदुं । मर्मृजंत । वाजिनं । आशुं । अत्यं । न । वाजिनं ॥ तेषां । पिबतं । अस्मयू इत्यस्मऽयू । आ । नः । गंतं । इह । ऊत्या । इंद्रवायू इति । सुतानां । अद्रिऽभिः । युवं । मदाय । वाजऽदा । युवं ॥ ५ ॥ २४ ॥ इमे । वां । सोमाः । अप्ऽसु । आ । सुताः । इह । अध्वर्युऽभिः । भरमाणाः । अयंसत । वायो इति । शुक्राः । अयंसत ॥ एते । वां । अभि । असृक्षत । तिरः । पवित्रं । आशवः । युवाऽयवः । अति । रोमाणि । अव्यया । सोमासः । अति । अव्यया ॥ ६ ॥

अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति तत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम्। वि सूनृता ददृशे रीयते घृतमा पूर्णया नियुता याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥

अत्राह तद्वहेथे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायवोऽस्मे ते सन्तु जायवः। साकं गावः सुवते पच्यते यवो न ते वाय उप दस्यन्ति धेनवो नाप दस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥

इमे ये ते सु वायो बाह्वोजसोऽन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्षणो महि व्राधन्त उक्षणः।
धन्वन् चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः।
सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥ २५ ॥

अति। वायो इति। ससतः। याहि। शश्वतः। यत्र। ग्रावा। वदति। तत्र। गच्छतं। गृहं। इंद्रः। च। गच्छतं॥ वि। सूनृता। ददृशे। रीयते। घृतं। आ। पूर्णया। निऽयुता। याथः। अध्वरं। इंद्रः। च। याथः। अध्वरं॥ ७॥ अत्र। अह। तत्। वहेथे इति। मध्वः। आऽहुतिं। यं। अश्वत्थं। उपऽतिष्ठंत। जायवः। अस्मे इति। ते। संतु। जायवः। साकं। गावः। सुवते। पच्यते। यवः। न। ते। वायो इति। उप। दस्यंति। धेनवः। न। अप। दस्यंति। धेनवः॥ ८॥ इमे। ये। ते। सु। वायो इति। बाहुऽओजसः। अंतः। नदी इति। ते। पतयंति। उक्षणः। महि। व्राधंतः। उक्षणः॥ धन्वन्। चित्। ये। अनाशवः। जीराः। चित्। अगिराऽओकसः। सूर्यस्यऽइव। रश्मयः। दुःऽनियंतवः। हस्तयोः। दुःऽनियंतवः॥ ९॥ २५॥

॥ १३६ ॥ ऋषिः-परुच्छेपः । देवता-मित्रावरुणौ । छन्दः-अत्यष्टिः ॥

॥ १३६ ॥ प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळ-
यद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम् । ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ १ ॥
अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य
रश्मिभिः । द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च ।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद्वयः ॥ २ ॥
ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवे-
दिवे । ज्योतिष्मत्क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती ।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

प्र । सु । ज्येष्ठं । निऽचिराभ्यां । बृहत् । नमः । हव्यं । मतिं । भरत ।
मृळयत्ऽभ्यां । स्वादिष्ठं । मृळयत्ऽभ्यां । ता । संऽराजा । घृतासुती इति घृतऽआ-
सुती । यज्ञेऽयज्ञे । उपऽस्तुता । अथ । एनोः । क्षत्रं । न । कुतः । चन । आऽधृषे ।
देवऽत्वं । नु । चित् । आऽधृषे ॥ १ ॥ अदर्शि । गातुः । उरवे । वरीयसी । पंथाः ।
ऋतस्य । सं । अयंस्त । रश्मिऽभिः । चक्षुः । भगस्य । रश्मिऽभिः ॥ द्युक्षं । मित्रस्य ।
सदनं । अर्यम्णः । वरुणस्य । च । अथ । दधाते इति । बृहत् । उक्थ्यं । वयः ।
उपऽस्तुत्यं । बृहत् । वयः ॥ २ ॥ ज्योतिष्मतीं । अदितिं । धारयत्ऽक्षितिं ।
स्वःऽवतीं । आ । सचेते इति । दिवेऽदिवे । जागृऽवांसा । दिवेऽदिवे । ज्योतिष्मत् ।
क्षत्रं । आशाते इति । आदित्या । दानुनः । पती इति । मित्रः । तयोः । वरुणः ।
यातयत्ऽजनः । अर्यमा । यातयत्ऽजनः ॥ ३ ॥

अयं मित्राय वरुणाय शंतमः सोमो भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः ।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः ।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥
यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्तमंहसः । तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम् ।
उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम् ॥ ५ ॥
नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मीळ्हुषे सुमृळीकाय मीळ्हुषे ॥ इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥ ६ ॥
ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः ।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च ॥ ७ ॥ २६ ॥ १ ॥

अयं । मित्राय । वरुणाय । शंऽतमः । सोमः । भूतु । अवऽपानेषु । आऽभगः । देवः । देवेषु । आऽभगः ॥ तं । देवासः । जुषेरत । विश्वे । अद्य । सऽजोषसः । तथा । राजाना । करथः । यत् । ईमहे । ऋतऽवाना । यत् । ईमहे ॥ ४ ॥
यः । मित्राय । वरुणाय । अविधत् । जनः । अनर्वाणं । तं । परि । पातः । अंहसः । दाश्वांसं । मर्तं । अंहसः ॥ तं । अर्यमा । अभि । रक्षति । ऋजुऽयन्तं । अनु । व्रतं । उक्थैः । यः । एनोः । परिऽभूषति । व्रतं । स्तोमैः । आऽभूषति । व्रतं ॥ ५ ॥
नमः । दिवे । बृहते । रोदसीभ्यां । मित्राय । वोचं । वरुणाय । मीळ्हुषे । सुऽमृळीकाय । मीळ्हुषे ॥ इंद्रं । अग्निं । उप । स्तुहि । द्युक्षं । अर्यमणं । भगं । ज्योक् । जीवंतः । प्रऽजया । सचेमहि । सोमस्य । ऊती । सचेमहि ॥ ६ ॥
ऊती । देवानां । वयं । इंद्रऽवंतः । मंसीमहि । स्वऽयशसः । मरुत्ऽभिः । अग्निः । मित्रः । वरुणः । शर्म । यंसन् । तत् । अश्याम । मघऽवानः । वयं । च ॥ ७ ॥ २६ ॥ १ ॥

इति द्वितीयाष्टके प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीयाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ १३७ ॥ ऋषिः—परुच्छेपः । देवता—मित्रावरुणौ । छन्दः—निचृच्छक्करी ॥

॥१३७॥ सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे ।
आ राजाना दिविस्पृशास्मत्रा गन्तमुप नः ।
इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥
इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ २ ॥
तां वां धेनुं न वासरीमंशुं दुहन्त्यद्रिभिः सोमं दुहन्त्यद्रिभिः ।
अस्मत्रा गन्तमुप नोऽर्वाञ्चा सोमपीतये ।
अयं वां मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आ पीतये सुतः ॥ ३ ॥ १ ॥

सुसुम । आ । यातं । अद्रिऽभिः । गोऽश्रीताः । मत्सराः । इमे । सोमासः । मत्सराः । इमे ॥ आ । राजाना । दिविऽस्पृशा । अस्मऽत्रा । गंतं । उप । नः । इमे । वां । मित्रावरुणा । गोऽआशिरः । सोमाः । शुक्राः । गोऽआशिरः ॥ १ ॥ इमे । आ । यातं । इंदवः । सोमासः । दधिऽआशिरः । सुतासः । दधिऽआशिरः । उत । वां । उषसः । बुधि । साकं । सूर्यस्य । रश्मिऽभिः । सुतः । मित्राय । वरुणाय । पीतये । चारुः । ऋताय । पीतये ॥ २ ॥ तां । वां । धेनुं । न । वासरीं । अंशुं । दुहंति । अद्रिऽभिः । सोमं । दुहंति । अद्रिऽभिः ॥ अस्मऽत्रा । गंतं । उप । नः । अर्वांचा । सोमऽपीतये । अयं । वां । मित्रावरुणा । नृऽभिः । सुतः । सोमः । आ । पीतये । सुतः ॥ ३ ॥ १ ॥

॥ १३८ ॥ ऋषिः-परुच्छेपः । देवता-पूषा । छन्दः-अत्यष्टिः ॥

॥१३८॥ प्रप्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते । अर्चामि सुम्नयन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम् ।
विश्वस्य यो मन आयुयुवे मखो देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥
प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृण्व ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः ॥ हुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।
अस्माकमाङ्गूषान्द्युम्निनस्कृधि वाजेषु द्युम्निनस्कृधि ॥ २ ॥
यस्य ते पूषन्त्सख्ये विपन्यवः क्रत्वा चित्सन्तोऽवसा बुभुज्रिर इति क्रत्वा बुभुज्रिरे । तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राय ईमहे ।
अहेळमान उरुशंस सरी भव वाजेवाजे सरी भव ॥ ३ ॥

प्रऽप्र । पूष्णः । तुविऽजातस्य । शस्यते । महिऽत्वं । अस्य । तवसः । न । तंदते । स्तोत्रं । अस्य । न । तंदते ॥ अर्चामि । सुम्नऽयन् । अहं । अंतिऽऊतिं । मयःऽभुवं । विश्वस्य । यः । मनः । आऽयुयुवे । मखः । देवः । आऽयुयुवे । मखः ॥१॥
प्र । हि । त्वा । पूषन् । अजिरं । न । यामनि । स्तोमेभिः । कृण्वे । ऋणवः । यथा । मृधः । उष्ट्रः । न । पीपरः । मृधः ॥ हुवे । यत् । त्वा । मयःऽभुवं । देवं । सख्याय । मर्त्यः । अस्माकं । आंगूषान् । द्युम्निनः । कृधि । वाजेषु । द्युम्निनः । कृधि ॥ २ ॥
यस्य । ते । पूषन् । सख्ये । विपन्यवः । क्रत्वा । चित् । संतः । अवसा । बुभुज्रिरे । इति । क्रत्वा । बुभुज्रिरे ॥ तां । अनु । त्वा । नवीयसीं । निऽयुतं । रायः । ईमहे । अहेळमानः । उरुऽशंस । सरी । भव । वाजेऽवाजे । सरी । भव ॥ ३ ॥

अस्या ऊ षु ण उप सातये भुवोऽहेळमानो ररिवाँ अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।
ओ षू त्वा ववृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।
नहि त्वा पूषन्नतिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह्नुवे ॥ ४ ॥ २ ॥

॥ १३९ ॥ ऋषिः—परुच्छेपः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्दः—अत्यष्टिः ॥

॥ १३९ ॥ अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आ नु तच्छर्धो दिव्यं वृणीमह इन्द्रवायू वृणीमहे । यद्ध क्राणा विवस्वति नाभा सन्दायि नव्यसी ।
अध प्र सू न उप यन्तु धीतयो देवाँ अच्छा न धीतयः ॥ १ ॥
यद्ध त्यन्मित्रावरुणावृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।
युवोरित्थाधि सद्मस्वपश्याम हिरण्ययम् ।
धीभिश्चन मनसा स्वेभिरक्षभिः सोमस्य स्वेभिरक्षभिः ॥ २ ॥

अस्याः । ऊं इति । सु । नः । उप । सातये । भुवः । अहेळमानः । ररिऽवान् । अजऽअश्व । श्रवस्यता । अजऽअश्व ॥ ओ इति । सु । त्वा । ववृतीमहि । स्तोमेभिः । दस्म । साधुऽभिः । नहि । त्वा । पूषन् । अतिऽमन्ये । आघृणे । न । ते । सख्यं । अपऽह्नुवे ॥ ४ ॥ २ ॥

अस्तु । श्रौषट् । पुरः । अग्निं । धिया । दधे । आ । नु । तत् । शर्धः । दिव्यं । वृणीमहे । इन्द्रवायू इति । वृणीमहे ॥ यत् । ह । क्राणा । विवस्वति । नाभा । संऽदायि । नव्यसी । अध । प्र । सु । नः । उप । यन्तु । धीतयः । देवान् । अच्छ । न । धीतयः ॥ १ ॥ यत् । ह । त्यत् । मित्रावरुणा । ऋतात् । अधि । आददाथे इत्याऽददाथे । अनृतं । स्वेन । मन्युना । दक्षस्य । स्वेन । मन्युना ॥ युवोः । इत्था । अधि । सद्मऽसु । अपश्याम । हिरण्ययं । धीभिः । चन । मनसा । स्वेभिः । अक्षऽभिः । सोमस्य । स्वेभिः । अक्षऽभिः ॥ २ ॥

युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विनाश्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां
हव्याभ्या३यवः । युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा ।
प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥ ३ ॥
अचेति दस्रा व्यु१नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो
दिविष्टिषु । अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये ।
पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥
शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुप दसत्कदा चनास्मद्रातिः कदा चन ॥ ५ ॥ ३ ॥

युवां । स्तोमेभिः । देवऽयन्तः । अश्विना । आश्रवयन्तःऽइव । श्लोकं । आयवः ।
युवां । हव्या । अभि । आयवः ॥ युवोः । विश्वाः । अधि । श्रियः । पृक्षः । च ।
विश्वऽवेदसा । प्रुषायन्ते । वां । पवयः । हिरण्यये । रथे । दस्रा । हिरण्यये ॥ ३ ॥
अचेति । दस्रा । वि । ऊं इति । नाकं । ऋण्वथः । युंजते । वां । रथऽयुजः ।
दिविष्टिषु । अध्वस्मानः । दिविष्टिषु ॥ अधि । वां । स्थाम । वंधुरे । रथे । दस्रा ।
हिरण्यये । पथाऽइव । यंता । अनुऽशासता । रजः । अंजसा । शासता । रजः ॥ ४॥
शचीभिः । नः । शचीवसू इति शचीऽवसू । दिवा । नक्तं । दशस्यतं । मा । वां ।
रातिः । उप । दसत् । कदा । चन । अस्मत् । रातिः । कदा । चन ॥ ५ ॥ ३ ॥

वृषन्निन्द्र वृषपाणास इन्दव इमे सुता अद्रिषुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः । ते त्वा मन्दन्तु दावने महे चित्राय राधसे । गीर्भिर्गिर्वाह स्तवमान आ गहि सुमृळीको न आ गहि ॥ ६ ॥

ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः । यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन । वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥ ७ ॥

मो षु वो अस्मदभि तानि पौंस्या सना भूवन्द्युम्नानि मोत जारिषुरस्मत्पुरोत जारिषुः । यद्वश्चित्रं युगेयुगे नव्यं घोषादमर्त्यम् । अस्मासु तन्मरुतो यच्च दुष्टरं दिधृता यच्च दुष्टरम् ॥ ८ ॥

वृषन् । इन्द्र । वृषऽपानासः । इन्दवः । इमे । सुताः । अद्रिऽसुतासः । उत्ऽभिदः । तुभ्यं सुतासः । उत्ऽभिदः ॥ ते । त्वा । मन्दन्तु । दावने । महे । चित्राय । राधसे गीःऽभिः । गिर्वाहः । स्तवमानः । आ । गहि । सुऽमृळीकः । नः । आ । गहि ॥ ६ ॥

ओ इति । सु । नः । अग्ने । शृणुहि । त्वं । ईळितः । देवेभ्यः । ब्रवसि यज्ञियेभ्यः । राजऽभ्यः । यज्ञियेभ्यः ॥ यत् । ह । त्याम् । अङ्गिरःऽभ्यः । धेनुं । देवाः । अदत्तन । वि । ताम् । दुह्रे । अर्यमा । कर्तरी । सचा । एषः । ताम् । वेद । मे । सचा ॥ ७ ॥

मो इति । सु । वः । अस्मत् । अभि । तानि । पौंस्या सना । भूवन् । द्युम्नानि । मा । उत । जारिषुः । अस्मत् । पुरा । उत । जारिषुः ॥ यत् । वः । चित्रं । युगेऽयुगे । नव्यं । घोषात् । अमर्त्यं । अस्मासु । तत् । मरुतः यत् । च । दुस्तरं । दिधृत । यत् । च । दुस्तरं ॥ ८ ॥

दध्यङ् ह मे जनुषं पूर्वो अङ्गिराः प्रियमेधः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वे मनुर्विदुः । तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नाभयः ।
तेषां पदेन मह्या नमे गिरेन्द्राग्नी आ नमे गिरा ॥ ९ ॥
होता यक्षद्वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षभिः पुरुवारेभिरुक्षभिः ।
जगृभ्मा दूरआदिशं श्लोकमद्रेरध त्मना ।
अधारयदररिन्दानि सुक्रतुः पुरू सद्मानि सुक्रतुः ॥ १० ॥
ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ ।
अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥११॥४॥२०॥

॥ एकविंशोऽनुवाकः ॥

॥ १४० ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-अग्निः । छन्दः-जगती ॥

॥१४०॥ वेदिषदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्र भरा योनिमग्नये ।
वस्त्रेणेव वासया मन्मना शुचिं ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥ १ ॥

दध्यङ् । ह । मे । जनुषं । पूर्वः । अंगिराः । प्रियऽमेधः । कण्वः । अत्रिः । मनुः । विदुः । ते । मे । पूर्वे । मनुः । विदुः ॥ तेषां । देवेषु । आऽयतिः । अस्माकं । तेषु । नाभयः । तेषां । पदेन । महि । आ । नमे । गिरा । इंद्राग्नी इति । आ । नमे । गिरा ॥ ९ ॥ होता । यक्षत् । वनिनः । वंत । वार्यं । बृहस्पतिः । यजति । वेनः । उक्षऽभिः । पुरुऽवारेभिः । उक्षऽभिः ॥ जगृभ्म । दूरेऽआदिशं । श्लोकं । अद्रेः । अध । त्मना । अधारयत् । अररिंदानि । सुऽक्रतुः । पुरु । सद्मानि । सुऽक्रतुः ॥ १० ॥ ये । देवासः । दिवि । एकादश । स्थ । पृथिव्यां । अधि । एकादश । स्थ । अप्सुऽक्षितः । महिना । एकादश । स्थ । ते । देवासः । यज्ञं । इमं । जुषध्वं ॥ ११ ॥ ४ ॥ वेदिऽसदे । प्रियऽधामाय । सुऽद्युते । धासिंऽइव । प्र । भर । योनिं । अग्नये । वस्त्रेणऽइव । वासय । मन्मना । शुचिं । ज्योतिःऽरथं । शुक्रऽवर्णं । तमःऽहनं ॥ १ ॥

अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमी पुनः ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृषा न्यन्येन वनिनो मृष्ट वारणः ॥ २ ॥
कृष्णप्रुतौ वेविजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभि मातरा शिशुम् ।
प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतमा साच्यं कुपयं वर्धनं पितुः ॥ ३ ॥
मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते रघुद्रुवः कृष्णसीतास ऊ जुवः ।
असमना अजिरासो रघुष्यदो वातजूता उप युज्यन्त आशवः ॥ ४ ॥
आदस्य ते ध्वसयन्तो वृथेरते कृष्णमभ्वं महि वर्पः करिक्रतः ।
यत्सीं महीमवनिं प्राभि मर्मृशदभिश्वसन्स्तनयन्नेति नानदत् ॥ ५ ॥ ५ ॥

अभि । द्विऽजन्मा । त्रिऽवृत् । अन्नं । ऋज्यते । संवत्सरे । वदृधे । जग्धं । ईमिति । पुनरिति । अन्यस्य । आसा । जिह्वया । जेन्यः । वृषा । नि । अन्येन । वनिनः । मृष्ट । वारणः ॥ २ ॥ कृष्णऽप्रुतौ । वेविजे इति । अस्य । सऽक्षितौ । उभा । तरेते इति । अभि । मातरा । शिशुं । प्राचाऽजिह्वं । ध्वसयंतं । तृषुऽच्युतं । आ । साच्यं । कुपयं । वर्धनं । पितुः ॥ ३ ॥ मुमुक्ष्वः । मनवे । मानवस्यते । रघुऽद्रुवः । कृष्णऽसीतासः । ऊं इति । जुवः । असमनाः । अजिरासः । रघुऽस्यदः । वातऽजूताः । उप । युज्यंते । आशवः ॥ ४ ॥ आत् । अस्य । ते । ध्वसयंतः । वृथा । ईरते । कृष्णं । अभ्वं । महि । वर्पः । करिक्रतः । यत् । सीं । महीं । अवनिं । प्र । अभि । मर्मृशत् । अभिऽश्वसन् । स्तनयन् । एति । नानदत् ॥ ५ ॥ ५ ॥

भृषन्न योऽधि बभ्रूषु नम्नते वृषेव पत्नीरभ्येति रोरुवत् ।
ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव दुर्गृभिः ॥ ६ ॥
स संस्तिरो विष्टिरः सं गृभायति जानन्नेव जानतीर्नित्य आ शये ।
पुनर्वर्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वर्पः पित्रोः कृण्वते सचा ॥ ७ ॥
तमग्रुवः केशिनीः सं हि रेभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मम्रुषीः प्रायवे पुनः ।
तासां जरां प्रमुञ्चन्नेति नानददसुं परं जनयञ्जीवमस्तृतम् ॥ ८ ॥
अधीवासं परि मातू रिहन्नह तुविग्रेभिः सत्वभिर्याति वि ज्रयः ।
वयो दधत्पद्वते रेरिहत्सदानु श्येनी सचते वर्तनीरह ॥ ९ ॥
अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिह्यध श्वसीवान्वृषभो दमूनाः ।
अवास्या शिशुमतीरदीदेर्वर्मेव युत्सु परिजर्भुराणः ॥ १० ॥ ६ ॥

भृषन् । न । यः । अधि । बभ्रूषु । नम्नते । वृषाऽइव । पत्नीः । अभि । एति । रोरुवत् । ओजायमानः । तन्वः । च । शुम्भते । भीमः । न । शृङ्गा । दविधाव । दुःऽगृभिः ॥ ६ ॥ सः । सम्ऽस्तिरः । विऽस्तिरः । सम् । गृभायति । जानन् । एव । जानतीः । नित्यः । आ । शये । पुनः । वर्धन्ते । अपि । यन्ति । देव्यम् । अन्यत् । वर्पः । पित्रोः । कृण्वते । सचा ॥ ७ ॥ तम् । अग्रुवः । केशिनीः । सम् । हि । रेभिरे । ऊर्ध्वाः । तस्थुः । मम्रुषीः । प्र । आयवे । पुनः । तासाम् । जराम् । प्रऽमुञ्चन् । एति । नानदत् । असुम् । परम् । जनयन् । जीवम् । अस्तृतम् ॥ ८ ॥ अधीवासम् । परि । मातुः । रिहन् । अह । तुविऽग्रेभिः । सत्वऽभिः । याति । वि । ज्रयः । वयः । दधत् । पत्ऽवते । रेरिहत् । सदा । अनु । श्येनी । सचते । वर्तनिः । अह ॥ ९ ॥ अस्माकम् । अग्ने । मघवत्ऽसु । दीदिहि । अध । श्वसीवान् । वृषभः । दमूनाः । अवऽअस्य । शिशुऽमतीः । अदीदेः । वर्मऽइव । युत्ऽसु । परिऽजर्भुराणः ॥ १० ॥ ६ ॥

इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादु चिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।
यत्ते शुक्रं तन्वो३ रोचते शुचि तेनास्मभ्यं वनसे रत्नमा त्वम् ॥ ११ ॥
रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।
अस्माकं वीराँ उत नो मघोनो जनाँश्च या पारयाच्छर्म या च ॥ १२ ॥
अभी नो अग्न उक्थमिज्जुगुर्या द्यावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूर्ताः ।
गव्यं यव्यं यन्तो दीर्घाहेषं वरमरुण्यो वरन्त ॥ १३ ॥ ७ ॥

॥ १४१ ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-अग्निः । छन्दः-जगती ॥

॥१४१॥ बळित्था तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहसो यतो जनि ।
यदीमुप ह्वरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रुतः ॥ १ ॥
पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आ शये द्वितीयमा सप्तशिवासु मातृषु ।
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहसे दशप्रमतिं जनयन्त योषणः ॥ २ ॥

इदं । अग्ने । सुऽधितं । दुःऽधितात् । अधि । प्रियात् । ऊं इति । चित् । मन्मनः । प्रेयः । अस्तु । ते । यत् । ते । शुक्रं । तन्वः । रोचते । शुचि । तेन । अस्मभ्यं । वनसे । रत्नं । आ । त्वं ॥ ११ ॥ रथाय । नावं । उत । नः । गृहाय । नित्यऽअरित्रां । पत्ऽवतीं । रासि । अग्ने । अस्माकं । वीरान् । उत । नः । मघोनः । जनान् । च । या । पारयात् । शर्म । या । च ॥ १२ ॥ अभि । नः । अग्ने । उक्थं । इत् । जुगुर्याः । द्यावाक्षामा । सिन्धवः । च । स्वऽगूर्ताः । गव्यं । यव्यं । यंतः । दीर्घा । अहा । इषं । वरं । अरुण्यः । वरंत ॥ १३ ॥ ७ ॥

बट् । इत्था । तत् । वपुषे । धायि । दर्शतं । देवस्य । भर्गः । सहसः । यतः । जनि । यत् । ईं । उप । ह्वरते । साधते । मतिः । ऋतस्य । धेनाः । अनयंत । सऽस्रुतः ॥ १ ॥ पृक्षः । वपुः । पितुऽमान । नित्यः । आ । शये । द्वितीयं । आ । सप्तऽशिवासु । मातृषु । तृतीयं । अस्य । वृषभस्य । दोहसे । दशऽप्रमतिं । जनयंत । योषणः ॥ २ ॥

निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः ।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥ ३ ॥
प्र यत्पितुः परमान्नीयते पर्या पृक्षुधो वीरुधो दंसु रोहति ।
उभा यदस्य जनुषं यदिन्वत आदिद्यविष्ठो अभवद्घृणा शुचिः ॥ ४ ॥
आदिन्मातॄराविशद्यास्वा शुचिरहिंस्यमान उर्विया वि वावृधे ।
अनु यत्पूर्वा अरुहत्सनाजुवो नि नव्यसीष्ववरासु धावते ॥ ५ ॥ ८ ॥
आदिद्धोतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव पपृचानास ऋञ्जते ।
देवान्यत्क्रत्वा मज्मना पुरुष्टुतो मर्तं शंसं विश्वधा वेति धायसे ॥ ६ ॥
वि यदस्थाद्यजतो वातचोदितो ह्वारो न वक्वा जरणा अनाकृतः ।
तस्य पत्मन्दक्षुषः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आ व्यध्वनः ॥ ७ ॥

निः । यत् । ईम् । बुध्नात् । महिषस्य । वर्पसः । ईशानासः । शवसा । क्रन्त । सूरयः । यत् । ईम् । अनु । प्रऽदिवः । मध्वः । आऽधवे । गुहा । सन्तम् । मातरिश्वा । मथायति ॥ ३ ॥ प्र । यत् । पितुः । परमात् । नीयते । परि । आ । पृक्षुधः । वीरुधः । दम्ऽसु । रोहति । उभा । यत् । अस्य । जनुषम् । यत् । इन्वतः । आत् । इत् । यविष्ठः । अभवत् । घृणा । शुचिः ॥ ४ ॥ आत् । इत् । मातॄः । आ । अविशत् । यासु । आ । शुचिः । अहिंस्यमानः । उर्विया । वि । ववृधे । अनु । यत् । पूर्वाः । अरुहत् । सनाऽजुवः । नि । नव्यसीषु । अवरासु । धावते ॥ ५ ॥ ८ ॥ आत् । इत् । होतारम् । वृणते । दिविष्टिषु । भगम्ऽइव । पपृचानासः । ऋञ्जते । देवान् । यत् । क्रत्वा । मज्मना । पुरुऽस्तुतः । मर्तम् । शंसम् । विश्वधा । वेति । धायसे ॥ ६ ॥ वि । यत् । अस्थात् । यजतः । वातऽचोदितः । ह्वारः । न । वक्वा । जरणाः । अनाऽकृतः । तस्य । पत्मन् । धक्षुषः । कृष्णऽजंहसः । शुचिऽजन्मनः । रजः । आ । विऽअध्वनः ॥ ७ ॥

रथो न यातः शिक्वभिः कृतो द्यामंगेभिररुषेभिरीयते ।
आदस्य ते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वेषथादीषते वयः ॥ ८ ॥
त्वया ह्यग्ने वरुणो धृतव्रतो मित्रः शाशद्रे अर्यमा सुदानवः ।
यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विभुररान्न नेमिः परिभूरजायथाः ॥ ९ ॥
त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।
तं त्वा नु नव्यं सहसो युवन्वयं भगं न कारे महिरत्न धीमहि ॥ १० ॥
अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भगं दक्षं न पपृचासि धर्णसिम् ।
रश्मीँरिव यो यमति जन्मनी उभे देवानां शंसमृत आ च सुक्रतुः ॥ ११ ॥
उत नः सुद्योत्मा जीराश्वो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्ररथः ।
स नो नेषन्नेषतमैरमूरोऽग्निर्वामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥ १२ ॥

रथः । न । यातः । शिक्वऽभिः । कृतः । द्यां । अंगेभिः । अरुषेभिः । ईयते । आत् । अस्य । ते । कृष्णासः । धक्षि । सूरयः । शूरस्यऽइव । त्वेषथात् । ईषते । वयः ॥८॥ त्वया । हि । अग्ने । वरुणः । धृतऽव्रतः । मित्रः । शाशद्रे । अर्यमा । सुऽदानवः । यत् । सीं । अनु । क्रतुना । विश्वऽथा । विऽभुः । अरान् । न । नेमिः । परिऽभूः । अजायथाः ॥ ९ ॥ त्वं । अग्ने । शशमानाय । सुन्वते । रत्नं । यविष्ठ । देवऽतातिं । इन्वसि । तं । त्वा । नु । नव्यं । सहसः । युवन् । वयं । भगं । न । कारे । महिऽरत्न । धीमहि ॥ १० ॥ अस्मे इति । रयिं । न । सुऽअर्थं । दमूनसं । भगं । दक्षं । न । पपृचासि । धर्णसिं । रश्मीन्ऽइव । यः । यमति । जन्मनी इति । उभे इति । देवानां । शंसं । ऋते । आ । च । सुऽक्रतुः ॥ ११ ॥ उत । नः । सुऽद्योत्मा । जीरऽअश्वः । होता । मंद्रः । शृणवत् । चंद्रऽरथः । सः । नः । नेषत् । नेषऽतमैः । अमूरः । अग्निः । वामं । सुवितं । वस्यः । अच्छ ॥ १२ ॥

अस्ताव्यग्निः शिमीवद्भिरर्कैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।
अमी च ये मघवानो वयं च मिहं न सूरो अति निष्टतन्युः ॥ १३ ॥ ९ ॥

॥ १४२ ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-अग्निः । छन्दः-अनुष्टुप् ॥

॥ १४२ ॥ समिद्धो अग्न आ वह देवाँ अद्य यतस्रुचे ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं सुतसोमाय दाशुषे ॥ १ ॥

घृतवन्तमुप मासि मधुमन्तं तनूनपात् ।
यज्ञं विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुषः ॥ २ ॥

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥ ३ ॥

ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।
इयं हि त्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व वच्यते ॥ ४ ॥

अस्तावि । अग्निः । शिमीवत्ऽभिः । अर्कैः । साम्ऽराज्याय । प्रऽतरं । दधानः । अमी इति । च । ये । मघऽवानः । वयं । च । मिहं । न । सूरः । अति । निः । ततन्युः ॥ १३ ॥ ९ ॥

सम्ऽइद्धः । अग्ने । आ । वह । देवान् । अद्य । यतऽस्रुचे । तंतुं । तनुष्व । पूर्व्यं । सुतऽसोमाय । दाशुषे ॥ १ ॥ घृतऽवंतं । उप । मासि । मधुऽमंतं । तनूऽनपात् । यज्ञं । विप्रस्य । माऽवतः । शशमानस्य । दाशुषः ॥ २ ॥ शुचिः । पावकः । अद्भुतः । मध्वा । यज्ञं । मिमिक्षति । नराशंसः । त्रिः । आ । दिवः । देवः । देवेषु । यज्ञियः ॥ ३ ॥ ईळितः । अग्ने । आ । वह । इंद्रं । चित्रं । इह । प्रियं । इयं । हि । त्वा । मतिः । मम । अच्छ । सुऽजिह्व । वच्यते ॥ ४ ॥

स्तृणानासो यतस्रुचो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे ।
वृञ्जे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥ ५ ॥
वि श्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः ।
पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः ॥ ६ ॥१०॥
आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा ।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरा सुमत् ॥ ७ ॥
मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ॥ ८ ॥
शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।
इळा सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः ॥ ९ ॥
तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरु वारं पुरु त्मना ।
त्वष्टा पोषाय वि ष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥ १० ॥

स्तृणानासः । यतऽस्रुचः । बर्हिः । यज्ञे । सुऽअध्वरे । वृंजे । देवव्यचःऽतमं । इंद्राय । शर्म । सऽप्रथः ॥ ५ ॥ वि । श्रयंतां । ऋतऽवृधः । प्रऽयै । देवेभ्यः । महीः । पावकासः । पुरुऽस्पृहः । द्वारः । देवीः । असश्चतः ॥ ६ ॥ १० ॥ आ । भंदमाने इति । उपाके इति । नक्तोषसा । सुऽपेशसा । यह्वी इति । ऋतस्य । मातरा । सीदतां । बर्हिः । आ । सुऽमत् ॥ ७ ॥ मंद्रऽजिह्वा । जुगुर्वणी इति । होतारा । दैव्या । कवी इति । यज्ञं । नः । यक्षतां । इमं । सिध्रं । अद्य । दिविऽस्पृशं ॥ ८ ॥ शुचिः । देवेषु । अर्पिता । होत्रा । मरुत्ऽसु । भारती । इळा । सरस्वती । मही । बर्हिः । सीदंतु । यज्ञियाः ॥ ९ ॥ तत् । नः । तुरीपं । अद्भुतं । पुरु । वा । अरं । पुरु । त्मना । त्वष्टा । पोषाय । वि । स्यतु । राये । नाभा । नः । अस्मऽयुः ॥१०॥

अवसृजन्नुप त्मना देवान्यक्षि वनस्पते ।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥
पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे ।
स्वाहा गायत्रवेपसे हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥ १२ ॥
स्वाहाकृतान्या गह्युप हव्यानि वीतये ।
इन्द्रा गहि श्रुधी हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥ ११ ॥

॥ १४३ ॥ ऋषिः—दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्दः—अनुष्टुप् ॥

॥१४३॥ प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।
अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो होता पृथिव्यां न्यसीददृत्वियः ॥ १ ॥
स जायमानः परमे व्योमन्याविरग्निरभवन्मातरिश्वने ।
अस्य क्रत्वा समिधानस्य मज्मना प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥ २ ॥

अवऽसृजन् । उप । त्मना । देवान् । यक्षि । वनस्पते । अग्निः । हव्या । सुसूदति । देवः । देवेषु । मेधिरः ॥ ११ ॥ पूषण्ऽवते । मरुत्वते । विश्वऽदेवाय । वायवे । स्वाहा । गायत्रऽवेपसे । हव्यं । इंद्राय । कर्तन ॥ १२ ॥ स्वाहाऽकृतानि । आ । गहि । उप । हव्यानि । वीतये । इंद्र । आ । गहि । श्रुधि । हवं । त्वां । हवंते । अध्वरे ॥ १३ ॥ ११ ॥

प्र । तव्यसीं । नव्यसीं । धीतिं । अग्नये । वाचः । मतिं । सहसः । सूनवे । भरे । अपां । नपात् । यः । वसुऽभिः । सह । प्रियः । होता । पृथिव्यां । नि । असीदत् । ऋत्वियः ॥ १ ॥ सः । जायमानः । परमे । विऽओमनि । आविः । अग्निः । अभवत् । मातरिश्वने । अस्य । क्रत्वा । संऽइधानस्य । मज्मना । प्र । द्यावा । शोचिः । पृथिवी इति । अरोचयत् ॥ २ ॥

अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।
भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने रेजन्ते असंसन्तो अजराः ॥ ३ ॥
यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नाभा पृथिव्या भुवनस्य मज्मना ।
अग्निं तं गीर्भिर्हिनुहि स्व आ दमे य एको वस्वो वरुणो न राजति ॥ ४ ॥
न यो वराय मरुतामिव स्वनः सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति योधो न शत्रून्त्स वना न्यृञ्जते ॥ ५ ॥
कुविन्नो अग्निरुचथस्य वीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममावरत् ।
चोदः कुवित्तुतुज्यात्सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥ ६ ॥
घृतप्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदमग्निं मित्रं न समिधान ऋञ्जते ।
इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥ ७ ॥

अस्य । त्वेषाः । अजराः । अस्य । भानवः । सुऽसंदृशः । सुऽप्रतीकस्य । सुऽद्युतः । भात्वऽक्षसः । अति । अक्तुः । न । सिन्धवः । अग्ने । रेजंते । असंसंतः । अजराः ॥३॥ यं । आऽईरिरे । भृगवः । विश्वऽवेदसं । नाभा । पृथिव्याः । भुवनस्य । मज्मना । अग्निं । तं । गीःऽभिः । हिनुहि । स्वे । आ । दमे । यः । एकः । वस्वः । वरुणः । न । राजति ॥ ४ ॥ न । यः । वराय । मरुतांऽइव । स्वनः । सेनाऽइव । सृष्टा । दिव्या । यथा । अशनिः । अग्निः । जंभैः । तिगितैः । अत्ति । भर्वति । योधः । न । शत्रून् । सः । वना । नि । ऋंजते ॥ ५ ॥ कुविन् । नः । अग्निः । उचथस्य । वीः । असत् । वसुः । कुविन् । वसुऽभिः । कामं । आऽवरत् । चोदः । कुविन् । तुतुज्यात् । सातये । धियः । शुचिऽप्रतीकं । तं । अया । धिया । गृणे ॥ ६ ॥ घृतऽप्रतीकं । वः । ऋतस्य । धूःऽसदं । अग्निं । मित्रं । न । संऽइधानः । ऋंजते । इंधानः । अक्रः । विदथेषु । दीद्यत् । शुक्रऽवर्णां । उत् । ऊं इति । नः । यंसते । धियं ॥ ७ ॥

अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टेऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥ ८ ॥ १२ ॥

॥ १४४ ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-अग्निः । छन्दः-जगती ॥

॥१४४॥ एति प्र होता व्रतमस्य माययोर्ध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।
अभि स्रुचः क्रमते दक्षिणावृतो या अस्य धाम प्रथमं ह निंसते ॥ १ ॥
अभीमृतस्य दोहना अनूषत योनौ देवस्य सदने परीवृताः ।
अपामुपस्थे विभृतो यदावसदध स्वधा अधयद्याभिरीयते ॥ २ ॥
युयूषतः सवयसा तदिद्वपुः समानमर्थं वितरित्रता मिथः ।
आदीं भगो न हव्यः समस्मदा वोळ्हुर्न रश्मीन्त्समयंस्त सारथिः ॥ ३ ॥
यमीं द्वा सवयसा सपर्यतः समाने योना मिथुना समोकसा ।
दिवा न नक्तं पलितो युवाजनि पुरू चरन्नजरो मानुषा युगा ॥ ४ ॥

अप्रऽयुच्छन् । अप्रयुच्छत्ऽभिः । अग्ने । शिवेभिः । नः । पायुऽभिः । पाहि । शग्मैः । अदब्धेभिः । अदृपितेभिः । इष्टे । अनिमिषत्ऽभिः । परि । पाहि । नः । जाः ॥ ८ ॥ १२ ॥

एति । प्र । होता । व्रतं । अस्य । मायया । ऊर्ध्वां । दधानः । शुचिऽपेशसं । धियं । अभि । स्रुचः । क्रमते । दक्षिणाऽआवृतः । याः । अस्य । धाम । प्रथमं । ह । निंसते ॥ १ ॥ अभि । ईं । ऋतस्य । दोहनाः । अनूषत । योनौ । देवस्य । सदने । परिऽवृताः । अपां । उपऽस्थे । विऽभृतः । यत् । आ । अवसत् । अध । स्वधाः । अधयत् । याभिः । ईयते ॥ २ ॥ युयूषतः । सऽवयसा । तत् । इत् । वपुः । समानं । अर्थं । विऽतरित्रता । मिथः । आत् । ईं । भगः । न । हव्यः । सं । अस्मत् । आ । वोळ्हुः । न । रश्मीन् । सं । अयंस्त । सारथिः ॥ ३ ॥ यं । ईं । द्वा । सऽवयसा । सपर्यतः । समाने । योना । मिथुना । संऽओकसा । दिवा । न । नक्तं । पलितः । युवा । अजनि । पुरु । चरन् । अजरः । मानुषा । युगा ॥ ४ ॥

तमीं हिन्वंति धीतयो दश व्रिशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।
धनोरधि प्रवत आ स ऋण्वत्यभिव्रजद्भिर्वयुना नवाधित ॥ ५ ॥
त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव त्मना ।
एनी त एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वक्वरी बर्हिराशाते ॥ ६ ॥
अग्ने जुषस्व प्रति हर्य तद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।
यो विश्वतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रण्वः सन्दृष्टौ पितुमाँ इव क्षयः ॥ ७ ॥ १३ ॥

॥ १४५ ॥ ऋषिः—दीर्घतमः । देवता-अग्निः । छन्दः—जगती ॥

॥१४५॥ तं पृच्छता स जगामा स वेद स चिकित्वाँ ईयते सा न्वीयते ।
तस्मिन्त्सन्ति प्रशिषस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥ १ ॥
तमित्पृच्छन्ति न सिमो वि पृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।
न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोऽस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः ॥ २ ॥

तं । ईं । हिन्वंति । धीतयः । दश । व्रिशः । देवं । मर्तासः । ऊतये । हवामहे । धनोः । अधि । प्रऽवतः । आ । सः । ऋण्वति । अभिव्रजत्ऽभिः । वयुना । नवा । अधित ॥ ५ ॥ त्वं । हि । अग्ने । दिव्यस्य । राजसि । त्वं । पार्थिवस्य । पशुपाःऽइव । त्मना । एनी इति । ते । एते इति । बृहती इति । अभिऽश्रिया । हिरण्ययी इति । वक्वरी इति । बर्हिः । आशाते इति ॥ ६ ॥ अग्ने । जुषस्व । प्रति । हर्य । तत् । वचः । मंद्र । स्वधाऽवः । ऋतऽजात । सुक्रतो इति सुऽक्रतो । यः । विश्वतः । प्रत्यङ् । असि । दर्शतः । रण्वः । संऽदृष्टौ । पितुमान्ऽइव । क्षयः ॥ ७ ॥ १३ ॥

तं । पृच्छत । सः । जगाम । सः । वेद । सः । चिकित्वान् । ईयते । सः । नु । ईयते । तस्मिन् । संति । प्रऽशिषः । तस्मिन् । इष्टयः । सः । वाजस्य । शवसः । शुष्मिणः । पतिः ॥ १ ॥ तं । इत् । पृच्छंति । न । सिमः । वि । पृच्छति । स्वेनऽइव । धीरः । मनसा । यत् । अग्रभीत् । न । मृष्यते । प्रथमं । न । अपरं । वचः । अस्य । क्रत्वा । सचते । अप्रऽदृपितः ॥ २ ॥

तमिद्गच्छन्ति जुह्व१स्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे ।
पुरुप्रैषस्ततुरिर्यज्ञसाधनोऽच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त सं रभः ॥ ३ ॥
उपस्थायं चरति यत्समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।
अभि श्वान्तं मृशते नान्द्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥ ४ ॥
स ईं मृगो अप्यो वनर्गुरुप त्वच्युपमस्यां नि धायि ।
व्यब्रवीद्वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्वाँ ऋतचिद्धि सत्यः ॥ ५ ॥ १४ ॥

॥ १४६ ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-अग्निः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥ १४६ ॥ त्रिमूर्धानं सप्तरश्मिं गृणीषेऽनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।
निषत्तमस्य चरतो ध्रुवस्य विश्वा दिवो रोचनापप्रिवांसम् ॥ १ ॥
उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावितऊतिर्ऋष्वः ।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ॥ २ ॥

तं । इत् । गच्छंति । जुह्वः । तं । अर्वतीः । विश्वानि । एकः । शृणवत् । वचांसि । मे । पुरुऽप्रैषः । ततुरिः । यज्ञऽसाधनः । अच्छिद्रऽऊतिः । शिशुः । आ । अदत्त । सं । रभः ॥ ३ ॥ उपऽस्थायं । चरति । यत् । संऽआरत । सद्यः । जातः । तत्सार । युज्येभिः । अभि । श्वातं । मृशते । नान्द्ये । मुदे । यत् । ईं । गच्छंति । उशतीः । अपिऽस्थितं ॥ ४ ॥ सः । ईं । मृगः । अप्यः । वनर्गुः । उप । त्वचि । उपऽमस्यां । नि । धायि । वि । अब्रवीत् । वयुना । मर्त्येभ्यः । अग्निः । विद्वान् । ऋतऽचित् । हि । सत्यः ॥ ५ ॥ १४ ॥

त्रिऽमूर्धानं । सप्तऽरश्मिं । गृणीषे । अनूनं । अग्निं । पित्रोः । उपऽस्थे । निऽसत्तं । अस्य । चरतः । ध्रुवस्य । विश्वा । दिवः । रोचना । आपप्रिऽवांसं ॥ १ ॥ उक्षा । महान् । अभि । ववक्षे । एने इति । अजरः । तस्थौ । इतःऽऊतिः । ऋष्वः । उर्व्याः । पदः । नि । दधाति । सानौ । रिहंति । ऊधः । अरुषासः । अस्य ॥ २ ॥

समानं वत्समभि सञ्चरन्ती विष्वग्धेनू वि चरतः सुमेके ।
अनपवृज्याँ अध्वनो मिमाने विश्वान्केताँ अधि महो दधाने ॥ ३ ॥
धीरासः पदं कवयो नयन्ति नाना हृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।
सिषासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुमाविरेभ्यो अभवत्सूर्यो नॄन् ॥ ४ ॥
दिदृक्षेण्यः परि काष्ठासु जेन्य ईळेन्यो महो अर्भाय जीवसे ।
पुरुत्रा यदभवत्सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥ ५ ॥ १५ ॥

॥ १४७ ॥ ऋषिः—दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥ १४७ ॥ कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।
उभे यत्तोके तनये दधाना ऋतस्य सामन्रणयन्त देवाः ॥ १ ॥
बोधा मे अस्य वचसो यविष्ठ मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।
पीयति त्वो अनु त्वो गृणाति वन्दारुस्ते तन्वं वन्दे अग्ने ॥ २ ॥

समानं । वत्सं । अभि । संचरन्ती इति संऽचरन्ती । विष्वक् । धेनू इति । वि । चरतः । सुमेके इति सुऽमेके । अनपऽवृज्यान् । अध्वनः । मिमाने इति । विश्वान् । केतान् । अधि । महः । दधाने इति ॥ ३ ॥ धीरासः । पदं । कवयः । नयंति । नाना । हृदा । रक्षमाणाः । अजुर्यं । सिसासंतः । परि । अपश्यंत । सिंधुं । आविः । एभ्यः । अभवत् । सूर्यः । नॄन् ॥ ४ ॥ दिदृक्षेण्यः । परि । काष्ठासु । जेन्यः । ईळेन्यः । महः । अर्भाय । जीवसे । पुरुऽत्रा । यत् । अभवत् । सूः । अह । एभ्यः । गर्भेभ्यः । मघऽवा । विश्वऽदर्शतः ॥ ५ ॥ १५ ॥

कथा । ते । अग्ने । शुचयंतः । आयोः । ददाशुः । वाजेभिः । आशुषाणाः । उभे इति । यत् । तोके इति । तनये । दधानाः । ऋतस्य । सामन् । रणयंत । देवाः । ॥ १ ॥ बोध । मे । अस्य । वचसः । यविष्ठ । मंहिष्ठस्य । प्रऽभृतस्य । स्वधाऽवः । पीयति । त्वः । अनु । त्वः । गृणाति । वंदारुः । ते । तन्वं । वंदे । अग्ने ॥ २ ॥

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥ ३ ॥
यो नो अग्ने अररिवाँ अघायुररातीवा मर्चयति द्वयेन ।
मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनु मृक्षीष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥ ४ ॥
उत वा यः सहस्य प्रविद्वान्मर्तो मर्तं मर्चयति द्वयेन ।
अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायीः ॥ ५ ॥ १६ ॥

॥ १४८ ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-अग्निः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥१४८॥ मथीद्यदीं विष्टो मातरिश्वा होतारं विश्वाप्सुं विश्वदेव्यम् ।
नि यं दधुर्मनुष्यासु विक्षु स्वर्ण चित्रं वपुषे विभावम् ॥ १ ॥
ददानमिन्न ददभन्त मन्माग्निर्वरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥

ये । पायवः । मामतेयं । ते । अग्ने । पश्यंतः । अंधं । दुःऽइतात् । अरक्षन् । ररक्ष । तान् । सुऽकृतः । विश्वऽवेदाः । दिप्संतः । इत् । रिपवः । न । अह । देभुः ॥ ३ ॥ यः । नः । अग्ने । अररिऽवान् । अघऽयुः । अरातिऽवा । मर्चयति । द्वयेन । मंत्रः । गुरुः । पुनः । अस्तु । सः । अस्मै । अनु । मृक्षीष्ट । तन्वं । दुःऽउक्तैः ॥ ४ ॥ उत । वा । यः । सहस्य । प्रऽविद्वान् । मर्तः । मर्तं । मर्चयति । द्वयेन । अतः । पाहि । स्तवमान । स्तुवंतं । अग्ने । माकिः । नः । दुःऽइताय । धायीः ॥ ५ ॥ १६ ॥

॥ १४८ ॥ मथीत् । यत् । ईं । विष्टः । मातरिश्वा । होतारं । विश्वऽअप्सुं । विश्वऽदेव्यं । नि । यं । दधुः । मनुष्यासु । विक्षु । स्वः । न । चित्रं । वपुषे । विभाऽवं ॥ १ ॥ ददानं । इत् । न । ददभंत । मन्म । अग्निः । वरूथं । मम । तस्य । चाकन् । जुषंत । विश्वानि । अस्य । कर्म । उपऽस्तुतिं । भरमाणस्य । कारोः ॥ २ ॥

नित्यें चित्रु यं सद॑ने जगृभ्रे प्रश॑स्तिभिर्दधिरे यज्ञियासः ।
प्र सू नयन्त गृभयन्त इष्टावश्वासो न रथ्यो रारहाणाः ॥ ३ ॥
पुरूणि दस्मो नि रिणाति जम्भैराद्रोचते वन आ विभावा ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनु द्यून् ॥ ४ ॥
न यं रिपवो न रिषण्यवो गर्भे सन्तं रेषणा रेषयन्ति ।
अन्धा अपश्या न दभन्नभिख्या नित्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥ ५ ॥ १७ ॥

॥ १४९ ॥ ऋषिः—दीर्घतमाः । देवता-अग्निः । छन्दः—विराट् ॥

॥ १४९ ॥ महः स राय एषते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ ।
उप ध्रजन्तमद्रयो विधन्नित् ॥ १ ॥
स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः ।
प्र यः सस्राणः शिश्रीत योनौ ॥ २ ॥

नित्ये । चित् । नु । यं । सदने । जगृभ्रे । प्रशस्तिऽभिः । दधिरे । यज्ञियासः । प्र । सु । नयंत । गृभयंतः । इष्टौ । अश्वासः । न । रथ्यः । ररहाणाः ॥ ३ ॥ पुरूणि । दस्मः । नि । रिणाति । जंभैः । आत् । रोचते । वने । आ । विभाऽवा । आत् । अस्य । वातः । अनु । वाति । शोचिः । अस्तुः । न । शर्यां । असनां । अनु । द्यून् ॥ ४ ॥ न । यं । रिपवः । न । रिषण्यवः । गर्भे । संतं । रेषणाः । रेषयंति । अंधाः । अपश्याः । न । दभन् । अभिऽख्या । नित्यासः । ईं । प्रेतारः । अरक्षन् ॥ ५ ॥ १७ ॥

महः । सः । रायः । आ । ईषते । पतिः । दन् । इनः । इनस्य । वसुनः । पदे । आ । उप । ध्रजंतं । अद्रयः । विधन् । इत् ॥ १ ॥ सः । यः । वृषा । नरां । न । रोदस्योः । श्रवःऽभिः । अस्ति । जीवपीतऽसर्गः । प्र । यः । सस्राणः । शिश्रीत । योनौ ॥ २ ॥

आ यः पुरं नार्मिणीमदीदेदत्यः कविर्नभन्यो३नार्वा ।

सूरो न रुरुक्वाञ्छतात्मा ॥ ३ ॥

अभि द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् ।

होता यजिष्ठो अपां सधस्थे ॥ ४ ॥

अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वा दधे वार्याणि श्रवस्या ।

मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥ १८ ॥

॥ १५० ॥ ऋषिः—दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्दः—उष्णिक् ॥

॥ १५० ॥ पुरु त्वा दाश्वान्वोचेऽरिरग्ने तव स्विदा ।

तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥

व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिदररुषः ।

कदा चन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥

स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो व्राधन्तमो दिवि ।

प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥ १९ ॥

आ । यः । पुरं । नार्मिणीं । अदीदेत् । अत्यः । कविः । नभन्यः । न । अर्वा । सूरः । न । रुरुक्वान् । शतऽआत्मा ॥ ३ ॥ अभि । द्विऽजन्मा । त्री । रोचनानि । विश्वा । रजांसि । शुशुचानः । अस्थात् । होता । यजिष्ठः । अपां । सधऽस्थे ॥ ४ ॥ अयं । सः । होता । यः । द्विऽजन्मा । विश्वा । दधे । वार्याणि । श्रवस्या । मर्तः । यः । अस्मै । सुऽतुकः । ददाश ॥ ५ ॥ १८ ॥

पुरु । त्वा । दाश्वान् । वोचे । अरिः । अग्ने । तव । स्वित् । आ । तोदस्यऽइव । शरणे । आ । महस्य ॥ १ ॥ वि । अनिनस्य । धनिनः । प्रऽहोषे । चित् । अररुषः । कदा । चन । प्रऽजिगतः । अदेवऽयोः ॥ २ ॥ सः । चंद्रः । विप्र । मर्त्यः । महः । व्राधन्ऽतमः । दिवि । प्रऽप्र । इत् । ते । अग्ने । वनुषः । स्याम ॥ ३ ॥ १९ ॥

॥ १५१ ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-मित्रावरुणौ । छन्दः-जगती ॥

॥ १५१ ॥ मित्रं न यं शिम्या गोषु गव्यवः स्वाध्यो विदथे अप्सु जीजनन् ।
अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रति प्रियं यजतं जनुषामवः ॥ १ ॥
यद्ध त्यद्वां पुरुमीळ्हस्य सोमिनः प्र मित्रासो न दधिरे स्वाभुवः ।
अध क्रतुं विदतं गातुमर्चत उत श्रुतं वृषणा पस्त्यावतः ॥ २ ॥
आ वां भूषन्क्षितयो जन्म रोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।
यदीमृताय भरथो यदर्वते प्र होत्रया शिम्या वीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥
प्र सा क्षितिरसुर या महि प्रिय ऋतावानावृतमा घोषथो बृहत् ।
युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युप युञ्जाथे अपः ॥ ४ ॥
मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन्धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥ ५ ॥ २० ॥

मित्रं । न । यं । शिम्या । गोषु । गव्यवः । सुऽआध्यः । विदथे । अप्ऽसु । जीजनन् । अरेजेतां । रोदसी इति । पाजसा । गिरा । प्रति । प्रियं । यजतं । जनुषां । अवः ॥ १ ॥ यत् । ह । त्यत् । वां । पुरुऽमीळ्हस्य । सोमिनः । प्र । मित्रासः । न । दधिरे । सुऽआभुवः । अध । क्रतुं । विदतं । गातुं । अर्चते । उत । श्रुतं । वृषणा । पस्त्यऽवतः ॥ २ ॥ आ । वां । भूषन् । क्षितयः । जन्म । रोदस्योः । प्रऽवाच्यं । वृषणा । दक्षसे । महे । यत् । ईं । ऋताय । भरथः । यत् । अर्वते । प्र । होत्रया । शिम्या । वीथः । अध्वरं ॥ ३ ॥ प्र । सा । क्षितिः । असुर । या । महि । प्रिया । ऋतऽवानौ । ऋतं । आ । घोषथः । बृहत् । युवं । दिवः । बृहतः । दक्षं । आऽभुवं । गां । न । धुरि । उप । युंजाथे इति । अपः ॥ ४ ॥ मही इति । अत्र । महिना । वारं । ऋण्वथः । अरेणवः । तुजः । आ । सद्मन् । धेनवः । स्वरन्ति । ताः । उपरऽताति । सूर्यं । आ । निऽम्रुचः । उषसः । तक्ववीःऽइव ॥ ५ ॥ २० ॥

आ वामृताय केशिनीरनूषत मित्र यत्र वरुण गातुमर्चथः ।
अव त्मना सृजतं पिन्वतं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥ ६ ॥

यो वां यज्ञैः शशमानो ह दाशति कविर्होता यजति मन्मसाधनः ।
उपाह तं गच्छथो वीथो अध्वरमच्छा गिरः सुमतिं गन्तमस्मयू ॥ ७ ॥

युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥ ८ ॥

रेवद्वयो दधाथे रेवदाशाथे नरा मायाभिरितऊति माहिनम् ।
न वां द्यावोऽहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वं पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ ॥ २१ ॥

आ । वा । ऋताय । केशिनीः । अनूषत । मित्र । यत्र । वरुण । गातुं । अर्चथः । अव । त्मना । सृजतं । पिन्वतं । धियः । युवं । विप्रस्य । मन्मनां । इरज्यथः ॥ ६ ॥ यः । वा । यज्ञैः । शशमानः । ह । दाशति । कविः । होता । यजति । मन्मऽसाधनः । उप । अह । तं । गच्छथः । वीथः । अध्वरं । अच्छ । गिरः । सुऽमतिं । गंतं । अस्मयू इत्यस्मऽयू ॥ ७ ॥ युवां । यज्ञैः । प्रथमा । गोभिः । अंजते । ऋतऽवाना । मनसः । न । प्रऽयुक्तिषु । भरंति । वां । मन्मना । संऽयता । गिरः । अदृप्यता । मनसा । रेवत् । आशाथे इति ॥ ८ ॥ रेवत् । वयः । दधाथे इति । रेवत् । आशाथे इति । नरा । मायाभिः । इतःऽऊति । माहिनं । न । वा । द्यावः । अहऽभिः । न । उत । सिंधवः । न । देवऽत्वं । पणयः । न । आनशुः । मघं ॥ ९ ॥ २१ ॥

॥ १५२ ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-मित्रावरुणौ । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥१५२॥ युवं वस्त्राणि पीवसा वसाथे युवोरच्छिद्रा मन्तवो ह सर्गाः ।
अवातिरतमनृतानि विश्व ऋतेन मित्रावरुणा सचेथे ॥ १ ॥
एतच्चन त्वो वि चिकेतदेषां सत्यो मन्त्रः कविशस्त ऋघावान् ।
त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदो ह प्रथमा अजूर्यन् ॥ २ ॥
अपादेति प्रथमा पद्वतीनां कस्तद्वां मित्रावरुणा चिकेत ।
गर्भो भारं भरत्या चिदस्य ऋतं पिपर्त्यनृतं नि तारीत् ॥ ३ ॥
प्रयन्तमित्परि जारं कनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।
अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥
अनश्वो जातो अनभीशुरर्वा कनिक्रदत्पतयदूर्ध्वसानुः ।
अचित्तं ब्रह्म जुजुषुर्युवानः प्र मित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥ ५ ॥

युवं । वस्त्राणि । पीवसा । वसाथे इति । युवोः । अच्छिद्राः । मंतवः । ह । सर्गाः । अव । अतिरतं । अनृतानि । विश्वा । ऋतेन । मित्रावरुणा । सचेथे इति ॥ १ ॥ एतत् । चन । त्वः । वि । चिकेतत् । एषां । सत्यः । मंत्रः । कविऽशस्तः । ऋघावान् । त्रिःऽअश्रिं । हंति । चतुःऽअश्रिः । उग्रः । देवऽनिदः । ह । प्रथमाः । अजूर्यन् ॥ २ ॥ अपात् । एति । प्रथमा । पत्ऽवतीनां । कः । तत् । वां । मित्रावरुणा । आ । चिकेत । गर्भः । भारं । भरति । आ । चित् । अस्य । ऋतं । पिपर्ति । अनृतं । नि । तारीत् ॥ ३ ॥ प्रऽयंतं । इत् । परि । जारं । कनीनां । पश्यामसि । न । उपऽनिपद्यमानं । अनवऽपृग्णा । विऽतता । वसानं । प्रियं । मित्रस्य । वरुणस्य । धाम ॥ ४ ॥ अनश्वः । जातः । अनभीशुः । अर्वा । कनिक्रदत् । पतयत् । ऊर्ध्वऽसानुः । अचित्तं । ब्रह्म । जुजुषुः । युवानः । प्र । मित्रे । धाम । वरुणे । गृणंतः ॥ ५ ॥

आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूधन् ।
पित्वो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुरुष्येत् ॥ ६ ॥
आ वां मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्याम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥ ७ ॥ २२ ॥

॥ १५३ ॥ ऋषिः–दीर्घतमाः । देवता–मित्रावरुणौ । छन्दः–त्रिष्टुप् ॥

॥ १५३ ॥ यजामहे वां महः सजोषा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।
घृतैर्घृतस्नू अध यद्वामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्भरन्ति ॥ १ ॥
प्रस्तुतिर्वां धाम न प्रयुक्तिरयामि मित्रावरुणा सुवृक्तिः ।
अनक्ति यद्वां विदथेषु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणावियक्षन् ॥ २ ॥
पीपाय धेनुरदितिर्ऋताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।
हिनोति यद्वां विदथे सपर्यन्त्स रातहव्यो मानुषो न होता ॥ ३ ॥

आ । धेनवः । मामतेयं । अवन्तीः । ब्रह्मऽप्रियं । पीपयन् । सस्मिन् । ऊधन् । पित्वः । भिक्षेत । वयुनानि । विद्वान् । आसा । आऽविवासन् । अदितिं । उरुष्येत् ॥ ६ ॥ आ । वां । मित्रावरुणा । हव्यऽजुष्टिं । नमसा । देवौ । अवसा । ववृत्यां । अस्माकं । ब्रह्म । पृतनासु । सह्याः । अस्माकं । वृष्टिः । दिव्या । सुऽपारा ॥ ७ ॥ २२ ॥

यजामहे । वां । महः । सऽजोषाः । हव्येभिः । मित्रावरुणा । नमःऽभिः । घृतैः । घृतस्नू इति घृतऽस्नू । अध । यत् । वां । अस्मे इति । अध्वर्यवः । न । धीतिऽभिः । भरन्ति ॥ १ ॥ प्रऽस्तुतिः । वां । धाम । न । प्रऽयुक्तिः । अयामि । मित्रावरुणा । सुऽवृक्तिः । अनक्ति । यत् । वां । विदथेषु । होता । सुम्नं । वां । सूरिः । वृषणौ । इयक्षन् ॥ २ ॥ पीपाय । धेनुः । अदितिः । ऋताय । जनाय । मित्रावरुणा । हविःऽदे । हिनोति । यत् । वां । विदथे । सपर्यन् । सः । रातऽहव्यः । मानुषः । न । होता ॥ ३ ॥

उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥ ४ ॥ २३ ॥

॥ १५४ ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-विष्णुः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥१५४॥ विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥ १ ॥
प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २ ॥
प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥ ३ ॥
यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥ ४ ॥

उत । वां । विक्षु । मद्यासु । अन्धः । गावः । आपः । च । पीपयन्त । देवीः । उतो इति । नः । अस्य । पूर्व्यः । पतिः । दन् । वीतं । पातं । पयसः । उस्रियायाः ॥२३॥

विष्णोः । नु । कं । वीर्याणि । प्र । वोचं । यः । पार्थिवानि । विऽममे । रजांसि । यः । अस्कभायत् । उत्ऽतरं । सधऽस्थं । विऽचक्रमाणः । त्रेधा । उरुऽगायः ॥ १ ॥ प्र । तत् । विष्णुः । स्तवते । वीर्येण । मृगः । न । भीमः । कुचरः । गिरिऽस्थाः । यस्य । उरुषु । त्रिषु । विऽक्रमणेषु । अधिऽक्षियन्ति । भुवनानि । विश्वा ॥ २ ॥ प्र । विष्णवे । शूषं । एतु । मन्म । गिरिऽक्षिते । उरुऽगायाय । वृष्णे । यः । इदं । दीर्घं । प्रऽयतं । सधऽस्थं । एकः । विऽममे । त्रिऽभिः । इत् । पदेभिः ॥३॥ यस्य । त्री । पूर्णा । मधुना । पदानि । अक्षीयमाणा । स्वधया । मदन्ति । यः । ऊं इति । त्रिऽधातु । पृथिवीं । उत । द्यां । एकः । दाधार । भुवनानि । विश्वा ॥४॥

सूक्त १३५.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–वायु ॥

हमारे यहां दर्भासन बिछा हुआ है। इस लिये, हे वायु, हवियोंका स्वीकार करनेके लिये आप हमारे यहां आइये। प्रशंसायुक्त मन्त्र कहनेके कारण सोमरस तीव्र बन गया है। अपने रथको हजारों घोडे जोतकर सोमरसका आस्वाद लेनेके लिये यहां आइये। हे भगवन् वायुदेव, अन्य देवताएँ सोमपान करनेके लिये आपको यहां पहिले आनेके लिये आग्रह करती हैं। आपको आनन्दित करनेके लिये मधुर सोमबिंदु हम आपको अर्पण करते हैं। हम आपको सोमबिंदु इस लिये अर्पण करते हैं कि आप सत्कार्य करनेके लिये प्रेरणा उत्पन्न करें। १

पत्थरोंसे पिसे हुए सोमरसको केवल आपहीके लिये हमने तैयार किया है। यह स्वच्छ और तेजस्वी सोमरस थालीमें डाला हुआ है। (मोतीकी नाई) यह तेजस्वी सोमरस छाना हुआ है। सोमरसका एक भाग आपको अर्पण किया जाता है और दूसरा भाग अन्य देवताओंको और दिव्यजनोंको अर्पण किया जाता है। हे वायुदेव, आपके घोडोंको हमारी ओर खींचो। हमपर आप बडी कृपा करते हैं। हमपर आप बहुत प्रेम रखते हैं। आप सन्तुष्ट होकर हमारी ओर आइये। २

हे वायुदेव, आपके सैकडों नहीं हजारों घोडोंको जोतकर हमारे यज्ञके समय हवियोंका स्वीकार करनेके और आस्वाद लेनेके लिये आप आइये। एक भाग केवल आपहीके लिये अलग रखा हुआ है। रविकिरणोंके प्रकाशके कारण वह भाग बहुतही तेजोमय दिखाई देता है। हे वायुदेव, अध्वर्युने आपके लिये थालीमें सोमरस तैयार रखा है। उसको हम आपके सामने रखते हैं। मोतीकी नाई शुभ्र सोमरसको हम बडे प्रेमसे आपको अर्पण करते हैं। ३

---

१ स्तीर्णं बर्हिः उप नः याहि वीतये, सहस्रेण नियुता नियुत्वते (सोमाय) शतिनीभिः (स्तुतिभिः) नियुत्वते (आयाहि)। तुभ्यं देवाय देवाः पूर्वपीतये येमिरे हि। (इमे) मधुमंतः सुतासः ते मदाय प्र अस्थिरन्, (तव) क्रत्वे अस्थिरन्।

२ अयं अद्रिभिः परिपूतः स्पार्हा वसानः तुभ्यं कोशं परि अर्षति, शुक्रा वसानः अर्षति। तव अयं भागः, अयं सोमः देवेषु आयुषु हूयते, (तत्) हे वायो नियुतः वह, अस्मयुः याहि, अस्मयुः जुषाणः याहि।

३ शतिनीभिः सहस्रिणीभिः नियुद्भिः नः अध्वर आ याहि, हे वायो वीतये, हव्यानि वीतये उपयाहि,। तव अयं ऋत्वियः भागः (स अधुना) सूर्ये सचा सरश्मिः। (तस्मात्) अध्वर्युभिः भरमाणाः (इमे सोमाः) अयसत, हे वायो शुक्राः (सोमाः) अयसत।

आपका रथ, आप दोनों (इन्द्र और वायु) को हमारी रक्षा करनेके लिये, तैयार किये हुए पकान्न-भोजनको पानेके लिये, और हवियोंका आस्वाद लेनेके लिये, ले आया है। आपके रथको नियुत नामके अश्व जोते हुए थे। इस मधुर सोमरसका प्राशन कीजिये। आपही के लिये वह रस तैयार किया हुआ रखा है। हे वायु, आपकी कृपा हमपर हमेशा बनी रहे। अर्पण किये हुए विभागको आप ले जाइये। हे वायु और इन्द्र, आप अपना भाग ले आइये। आनन्द देनेवाला भोजनका भाग आप ले जाइये। ४

हमारी हार्दिक प्रार्थनाएं आप (इन्द्र और वायु) दोनोंको हमारे यज्ञकी ओर आकर्षित करें। तेजस्वी और चञ्चल अश्वकी तरह हमारे ऋत्विजोंने सोमरसको बड़ी चिन्तासे स्वच्छ तैयार किया है। आप हमपर प्रेम करते हैं इस लिये हमारे सोमरसका आप प्राशन कीजिये और हमारी सहायताके लिये आइये। हे इन्द्र, हे वायु, पत्थरोंसे पीसकर बने हुए सोमरसका आप दोनों स्वीकार कीजिये। हे दिव्य सामर्थ्य देनेवाले देव, सोमरस पीकर आप प्रसन्न हूजिये। ५ (२४)

ऋत्विजोंने पानी डालकर निचाड़े हुए सोमरसको यज्ञपात्रमें रखा है। वे स्वच्छ सोमरसको आप (वायु) को ही अर्पण करते हैं। आप दोनोंके लिये यह सोमरस पवित्र दर्भोंपर छाना हुआ है। आनन्दित करनेवाले और उत्साह दिलानेवाले सोमरस स्वगत्र न होनेवाले ऊनके वस्त्रोंमेंसे छाने हुए हैं। ६

---

४ वायो, (अयं) नियुत्वान् रथः (अस्माकं) अवसे सुभितानि प्रयांसि अभि वीतये, हव्यानि च वीतये वीतये वां आ वक्षत। मध्वः अन्धसः पिबतम्, इद वां पूर्वपेयम् हि हितम्, (तस्मात) वायो आ (गहि), त्व इन्द्रः च राधसा आगतम्, चन्द्रेण राधसा आ गतम्।

५ (नः) धियः वा अध्वरान् उप आ ववृत्युः (ऋत्विजः) इमं वाजिनं इन्दुं, आशुं अत्य वाजिन न मर्मृजन्त। तत हे अस्मयू तेषां पिबतम्, ऊत्याच इहनः आगतम्। हे इंद्रवायू युवं अद्रिभिः सुतानां (पिबतम्) हे वाजदा युवम् मदाय (पिबतम्)।

६ इमे अप्सु सुताः सोमाः इह अध्वर्युभिः भरमाणाः वां अय त हे वायो (इमे) शुक्राः (सोमाः त्वां) अयसत। एते आशवः तिरः पवित्रम वां अभि असृक्षत। अति अव्यया रोमाणि अति अव्यया (एते) युवायवः सोमासः (असृक्षत)।

हे वायु, इस समय बहुत लोक सोते होंगे; इस लिये उनको छोड़कर जहा सोमरसको पीसनेवाले पत्थरोंका अवाज होता है वहां आप चले जाइये। हे वायु, आप और इन्द्र, दोनों उस घर चले जाइये जहां आपके लिये मधुर स्तोत्रोंका गायन होता है। जिस घरमें अग्निमें घीकी धारा बहती है उसी घर आप चले जाइये। अपने रथको बलवान् घोडे जोतकर उस पवित्र यज्ञकी ओर आप (वायु और इन्द्र) चले जाइये। ७

सोमरसके मधुर हविर्भागको आप इधर ही ले आइये। वीर पुरुष इस मधुर सोमलताको अश्वत्थ वृक्षकी नाई पवित्र मानते हैं। वे उसका बड़ा वर्णन करते हैं। जय पानेवाले वीर पुरुष हमेशा हमारी ओर होवे। हमारी धेनुएं आपकी कृपासे अच्छे अच्छे बचे जनती है। आपकी कृपासे हमारे खेतमें बहुत धान्य उत्पन्न होता है। हे वायु, आपकी कृपासे हमारी दूध देनेवाली गौओंको बीमारी पैदा नहीं होती और वे दुबली नहीं होती। ८

हे वायु, आपके बलवान् हृष्ट पुष्ट और तेजस्वी घोडे आकाशके अन्तरिक्षमें दौड़ते हुए चलते हैं। चलते समय वे अश्व बड़े मजबूत दिखाई देते हैं। निर्जल प्रदेशमें भी वे थक नही जाते। जब वे दौडते हैं तब बड़ा आवाज होनेपर भी वे हिचकते नहीं। जिस तरह सूर्यके किरणोंको कोई रोक नहीं सकता उसी तरह आपके अश्वोंको भी कोई खींच नहीं सकता अथवा दबा नहीं सकता। ९ (२५)

---

७ हे वायो, ससतः शश्वतः अति याहि, यत्र ग्रावा वदति तत्र त्वं च इंद्रः च गच्छतं (तत्र) गृहं गच्छतम्। (यत्र) सूनृता पिदद्दशे; घृतम् च रीयते, (तत्र) अध्वरम् पूर्णया नियुता आयाथ, (त्वंच हं इंद्रः च अध्वरम् आयाथ।

८ तत् मध्वः आहुतिं अत्र अह वहेथे, यम् (सोम) अश्वत्थं (इव बहुमन्यमानाः) जायवः उप तिष्ठन्त ते जायवः अस्मे सन्तु। अस्माक गावः साकं सुवते यवः पच्यते, हे वायो ते धेनव न उपदस्यंति न च ते धेनवः अपदस्यन्ति।

९ हे वायो इमे ते उक्षणः ते ये सु वाह्वोजसः नदी अन्तः पतयन्ति। (पतयन्तः च) महि व्राधन्तः उक्षणः (दृश्यन्ते) ये धन्वन् चित् अनाशवः, जीराः चित् अगिरौकसः। (पुनः च) सूर्यस्य रश्मयः इव दुःनियन्तवः, हस्तयोः दुर्नियन्तवः (सन्ति)।

सूक्त १३६.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–मित्रावरुण ॥

सबसे श्रेष्ठ, आनन्दरूप, और आनन्द देनेवाले मित्र और वरुणको बड़ी नम्रतासे नमस्कार कीजिये। एकान्त चित्तसे उनका ध्यान कीजिये। और मधुर हवि उनको अर्पण कीजिये। वे विश्वके अधिपति हैं। घीकी नाई वे तेजस्वी वर्षा करते हैं। यज्ञमें उनका यजन होता है। उनके सर्वव्यापी अधिकारको कोई रोक नहीं सकता। उनके श्रेष्ठतामें कोई सन्देह नहीं करता। १

देखिये। हमारे महायज्ञके लिये उषाका उदय हुआ है। स्थिर और सत्य आकाशमें उषाका मार्ग किरणोंसे प्रकाशित हुआ है। दयालु भगवानका आंख भी अपने हमेशाके उज्वल किरणोंसे दिखाई देने लगा है। इसी तरह मित्र, अर्यमा और वरुणका भी स्थान प्रकाशित हुआ है। वहांसे वे सन्तुष्ट होकर प्रशंसायोग्य उत्साहके साथ उत्तम युवा अवस्थाको अर्पण करते हैं। २

विशाल, तेजोमय और पोला आकाश अदिति पृथ्वी और नक्षत्रोंको धारण करता है। उस आकाशरूपी अदितिके साथही कभी न सोनेवाले मित्र और वरुण हमेशा रहते हैं। विश्वके वैभवयुक्त साम्राज्यका दानशील आदित्यही उपभोग लेते हैं। मित्र और वरुण सब लोगोंको अपना अपना काम करनेकी प्रेरणा करते हैं। अर्यमा भी इसी तरह काम करनेकी प्रेरणा करता है। ३

---

१ निचिराभ्यां, मळयद्भ्यां मळयद्भ्यां (मित्रावरुणाभ्यां) बृहत् ज्येष्ठ नमः, मतिम्, स्वादिष्ठ हविः च प्र भरत। तौ च सम्राजा, घृतासुती, यज्ञे यज्ञे उपस्तुता। अथ एनोः क्षत्रम् न कुतः चित् आधृषे, (एनोः) देवत्वम् (अपि) नु चित् आधृषे।

२ वरीयसी गातुः उदर्शि, ऋतस्य पन्थाः रश्मिभिः सम् अयमन् भगस्य चक्षुः अपि रश्मिभिः (सम् अयमन्) मित्रस्य, वरुणस्य अर्यम्णः च धुक्ष सदनम् (भास्वरम्)। अथ (एतौ) बृहत् उक्थ्यम् वयः, बृहत् उपस्तुत्यं च वयः दधाते।

३ ज्योतिष्मतीं, धारयत् क्षितिम् स्वर्वतीम् अदितिम् दिवे दिवे जागृवांसः दिवेदिवे आ सचेते। आदित्या दानुनः पती ज्योतिष्मत् क्षत्रम् आशाते। तयोः मित्रः वरुणः यातयज्जनः अर्यमा (अपि) यातयज्जनः।

यह सोमरस मित्र और वरुणको सुख देनेवाला होवे। जब यज्ञके समय सब देव यज्ञ-पात्रमें रखे हुए तेजस्वी और मधुर सोमरसका प्राशन करते हैं तब वह बड़ा स्वादिष्ट लगता है। प्रेमसे एकत्रित हुए सब देव सोमरसका यथेष्ट प्राशन करें। हे विश्वाधिपति (मित्र और वरुण), हम आपसे प्रार्थना करते हैं वह सफल होवे। हे सत्यधर्मका प्रचार करनेवाले (मित्र और वरुण), कृपा करके हम जो आपसे मांगते हैं वह दीजिये। ४

जो मित्र और वरुणकी सेवा करते हैं उन पराक्रमी और उदार भक्तोंकी पाप और दुःखसे सब प्रकारसे रक्षा कीजिये। जो सच्चे और सत्यधर्मसे चलते हैं, जो यज्ञका स्तोत्र गाते हैं, और जो सेवारूपी स्तवन करते हैं, उन भक्तोंकी अर्यमा सब प्रकारसे रक्षा करता है। ५

पृथ्वी और आकाशके बीचमें प्रकाशित होनेवाले बड़े मित्रका मैं स्तवन करता हूं। दान-शील, दयालु, और उदार वरुणकी भी मैं स्तुति करता हूं। हे ऋत्विज, इन्द्र, अग्नि, भग, और स्वर्गमें रहनेवाले अर्यमा आदि देवताओंके गुणोंका भी वर्णन कीजिये। हमें अच्छे पुत्रका और दीर्घ आयुका लाभ होवे। क्यों कि हम आपको सोमरस अर्पण करते हैं। ६

दयालु मरुत्‌देव और इन्द्र देव भी हम पर कृपा रखें। बडे कष्टसे हमें कीर्तिका लाभ हुआ है। इसी लिये सब लोक हमें जानते हैं और मानते हैं। अग्नि, मित्र और वरुण हमें सबको शान्ति और सुख देवें। हम और हमारे यजमान सबके लिये सुख और शान्तिका उपभोग लेवें। ७ (२६) (१)

---

४ अयं सोमः मित्राय वरुणाय शंतमः भूतु, देवः देवेषु आभगः अवपानेषु आभगः (भवतु) य (सोमं) सजोषसः विश्वे देवासः अद्य जुषेरत। हे राजाना यत् ईमहे, हे ऋतावाना यत् ईमहे तथा करथः।

५ यः जनः मित्राय वरुणाय अविधत् त अनर्वाणं दाश्वांसं मर्तं अंहसः परिपातः, अंहसः (परि पातः)। तं ऋजूयन्तं अनु व्रतम् (चरन्तं) अर्यमा अभि रक्षति, यः एनोः व्रतम् उक्थैः परि भूषति, व्रतम् स्तोमैः आभूषति।

६ रोदसीभ्यां, बृहते दिवे मित्राय नमः वोचम्। वरुणाय मीळ्हुषे सुमळीकाय मीळ्हुषे च (नमः वोचम्) ऋत्विजः। इंद्रम् अग्निं, द्युक्ष अर्यमण भगं च उपस्तुहि. (यथा स्तुता) ज्योक् जीवन्तः प्रजया सचेमहि. (सर्व इदम्) सोमस्य ऊती सचेमहि।

७ मरुद्भिः, देवानां च ऊती वयं इंद्रवन्तः स्वयशसा च मंसीमहि। अग्निः मित्रः वरुणः शर्म यंसन्) तत् च मघवानः वयं च अश्याम।

अध्याय २.

सूक्त १३७.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–मित्रावरुण ॥

मित्रावरुणो आइये । हमने ये सोमरस ग्रावोंके योगसे निचोड़ कर निकाले हैं । उनमें दूध डाला है और वे उत्साहकर और हर्षप्रद हैं । हे जगन्नायको, आप आकाशतकको व्याप्त कर डालनेवाले हैं, आप ही हमारे रक्षक हैं, इस लिए हमारे पास आइये । मित्रा-वरुणो, ये शुभ्र सोमरस आपहीके लिए बनाये गये हैं और उनमें मीठा तथा गाढ़ा दूध और थोड़ासा पानी मिलाया गया है । १

इधर आइये । (हमारे) यहां भी इन सोमरसोंमें दहीके समान गाढ़ा दूध डाला गया है । यह रस निचोड़ कर उसमें मीठा दहीभी डाला गया है । प्रभात होनेके बाद सूर्य के कोमल किरण पड़ते ही आप दोनोंके लिए, अर्थात् मित्र और वरुण के लिए, यह रस निचोड़ कर तैयार किया गया है । उनके पान करनेके लिए—उन सत्यस्वरूप मित्रावरुणोंके ग्रहण करने के लिए—यह सुन्दर रस तैयार किया गया है । २

(हे देवताओ), दूधके प्रवाहके प्रवाह छोड़नेवाली आपकी उस प्रकाशरूपी धेनुका जैसे दूध दुहा जाय वैसे ही (हमारे ऋत्विज) इस सोमवल्लीका मानो दूध ही दुह रहे हैं । ग्रावोंके योगसे—उन पाषाणोंके योगसे—मानो उस वनस्पतिका दोहनही कर रहे हैं; अतएव हे भक्तरक्षको, हमारे यहां सोमपान करनेके लिए आइये । हे मित्रावरुणो, ऋत्विजोंने आपके लिए यहां यह सोमरस तैयार कर रखा है, यह आपके ग्रहण करनेके लिए यहां पर उन्होंने पात्रों में भरकर (आपके सामने) रख दिया है । ३ (१)

---

१ (हे मित्रावरुणौ) आयातं, इमे सोमासः मत्सराः अद्रिभिः सुषुम, इमे, गोश्रीताः मत्सराः च (सन्ति) । हे राजाना युवां दिवि स्पृशौ अस्मत्रा च उप नः आगतम् । हे मित्रा वरुणा इमे गवाशिरः सोमाः शुक्राः यवाशिरश्च (सन्ति) ।

२ (मित्रावरुणौ) आयातम्, इमे सोमासः इन्दवः दध्या शिरः (इमे) सुतासः दध्याशिरः; उत उषसः बुधि सूर्यस्य रश्मिभिः साकं वाम् (अयं) मित्राय वरुणाय च (अयं) सुतः, (अयं) चारुः ऋताय पीतये सुतः ।

३ (हे देवौ) तां वां वासरीं धेनुं न अंशुं अद्रिभिः दुहन्ति सोमं अद्रिभिः दुहन्ति; अस्मत्रा अर्वाञ्चा (संतौ) उपनः सोम पीतये आगन्तम् । हे (मित्रावरुणा) अयं सोमः वां नृभिः सुतः, (अयं) पीतये आ सुतः ।

सूक्त ११८.

३ ऋषि-भरद्वाज । देवता-पूषा ।

अब मैं समर्थ पूषा की महिमा यथामति वर्णन करता हूं। यह स्वाभाविकही प्रतापी है। इसके पराक्रम की कीर्ति कदापि कम नहीं होती, अथवा यह भी नहीं होता कि इसकी स्तुति कभी समाप्त हो जाय। शान्तिसुखकी मनीषा रखकर मैं जिस पूषा की उपासना करता हूं वह (भक्तों की) रक्षा करनेके लिए बिलकुल तैयार रहता है और वह सर्वोत्कृष्ट आनन्द का लाभ कर देनेवाला है। यह परमपूज्य प्रभु सम्पूर्ण विश्व का चित्त अपनी ओर आकर्षित कर लेता है और इसकी प्रसन्नता के लिए जो यज्ञ किया जाता है वह भी सब का मन हरण कर लेता है। १

हे पूषा, चपलता में वायुकी तरह अत्यन्त चंचल आपका भजन हम स्तोत्रोंसे करते रहते हैं। अतएव, जिस प्रकार आप युद्धके अवसर पर (हमारी) रक्षा करते हैं उसी प्रकार शत्रुके इस अंधेरे प्रदेशसेभी हमें, ऊंटकी पीठ पर बैठा कर लजाने की तरह, पार कीजिए। आप परमानन्ददायक परमेश्वर हैं और मैं दीन मर्त्य हूं। आपका सहवास होनेके लिए आपकी विनती करता हूं। भजनमें हमारी स्तुतियों को सफल कीजिए और समरांगण में हमारे वाणोंको यशस्वी कीजिए। २

हे पूषा, आपके सहवाससे विद्वान् साधुजन अपने सुकृतके कारण और आपकी कृपासे संसारके लिए उपयोगी हुए; और सचमुच इस सत्कर्मके कारण ही वे (आनन्दपदका) उपभोग कर रहे हैं। अतएव, हम आपसे करोड़ों ऐसे दिव्य प्रसाद, जोकि आपके पूज्य नामके योग्य हैं, अंचल फैला कर मांगते हैं, इस लिए हमें न दवकाते हुए, हे सर्वजनस्तुत पूषा, आपही हमारे रक्षक हों, प्रत्येक युद्धमे आपही हमारे नेता हों। ३

---

१ पूष्णः महित्वं प्र प्रशस्यते, अस्य तुविजातस्य तवसः (महित्वं) न तंदते। अस्य स्तोत्रमपि न तंदते। सुम्नयन् (अहं) अंतिऊतिं मयोभुवं अर्चामि, यः मखः देवः विश्वस्य मनः आ युयुवे, (यस्य) मखश्चापि आ युयुवे।

२ हे पूषन् यामनि अजिरं न, त्वां स्तोमेभिः प्रकृण्मः (तत्) यथा मृधः ऋणवः (तथा) उष्ट्रः न मृधः पीपरः। यत् मर्त्यः (अहं) त्वा देवं मयोभुवं सख्याय हुवे। अस्माकं आंगूषान् वाजयुम्निनः।

३ हे पूषन् यस्य ते सख्ये विपन्यवः संतः क्रत्वा चित् अवसा च बुभुजिरे इति क्रत्वा बुभुजिरे। (तत्) तां (तव) नवीयसीं (कीर्तिं) अनु नियुतं रायः ईमहे। हे अहस्तंस (त्वं च) अहेळमानः उरी भव वाजवाजे उरी भव।

हे पूषा, आपके अश्व भी जन्मरहित हैं, अतएव, ऐसी दिव्य सम्पत्ति प्राप्त कर देनेके लिए सदा सर्वदा आप हमारे बिलकुल समीप रहिये; हे परमोदार पूषा, आप रोष न रखते हुए हमारे बिलकुल समीप रहिए; क्यों कि हम सत्कर्मप्रवृत्त हैं। हे अद्भुत पराक्रम करनेवाले पूषा, हम अपने मनोहर स्तोत्रोंके योगसे आपका अन्तकरण अपनी ओर आकर्षित कर सकें। हे प्रखर दीप्तिमान पूषा, आपको हम क्षणभर भी न भूलें और हमारी ओरसे आपके सहवासकी उपेक्षा यत्किंचित् भी कभी न हो। ४ (२)

सूक्त १३९.

॥ ऋषि–परुच्छेप । देवता–विश्वेदेव ॥

सुनिये सुनिये, मैं आपके सामने भक्तिपुरस्सर अग्निकी स्थापना करता हूं और दिव्य सामर्थ्य प्राप्त होनेके लिए (हम सब मिलकर) उससे प्रार्थना करते हैं; हे इन्द्र, वायुदेव, उस (सामर्थ्य) के लिए हम अंचल फैलाते हैं। अपूर्व और बिनचूक कार्य सिद्ध कर देनेवाली जो जो प्रार्थना होती है वह वह इस प्रकाश–निधि के नई संलग्न हो जाती है, अतएव हमारा भी ध्यान पूर्णतया उसीकी ओर लगे और देवताओंकी दृष्टिमें रहने की तरह हमारी काव्यप्रतिभा का ओर बेरोक फैले। १

हे मित्रावरुणो, जब आपने अपनी इच्छासे और अपने चातुर्यपूर्ण नियमके अनुसार सत्यस्वरूप (आत्मा) से यह असत्य (शरीर) अलग कर दिया तभी आपके निवासस्थानमें आपका हिरण्यमय स्वरूप हमे देख पड़ा। वह पहले हमारी सूक्ष्म बुद्धि को गोचर हुआ। इसके बाद मन को हुआ, इसके बाद इन्द्रियोंको और अन्तमें सोमकी ओर लगे हुए हमारे स्वयं नेत्रोंको (गोचर हुआ)। २

---

४ हे अजाश्व पूषन् अस्याः (रायः) सातये नः उप भुवः, हे रथिवान अजाश्व पूषन् त्वं अहेळमानः श्रवस्यतां (अस्माकं उपभुवः)। हे दस्म त्वा साधुभिः स्तोमेभिः ओ षु वर्तीमहि। हे आघृणे पूषन् त्वा नहि अतिमन्ये, ते सख्यमदि नापन्हुवे।

१ अस्तु श्रौषट् (अहं) धिया अग्निं पुरः दधे तत् नु तत् दिव्यं शर्धः आवृणीमहे, हे इन्द्रवायू आवृणीमहे। यत् ह नव्यसी क्षणा (स्तुतिः सा) विवस्वति नाभा सदायि। अध नः धीतयः प्रसूपयन्तु देवान् अच्छ न (नः) धीतयः (प्रसूपयन्तु)।

२ हे मित्रावरुणौ यत् ह युवां स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ऋतात् अधि त्यत् अनृतं आददाथे। (तत् हि) युवोः हिरण्ययम् (रूपं) सदःसु अधि इत्था अपश्याम। (तत् प्रथमं) धीभिः चन (अपश्याम पश्चात्) मनसा (ततः परं) स्वेभिः अक्षभिः सोमस्य स्वेभिः अक्षभिः (अपश्याम)।

हे अश्वीदेवताओ, यहां बन्दिजनों की तरह आपकी कीर्ति फैलानेवाले कितनेही ऋत्विज आपका स्तवन कर के आपकी प्रार्थना किया करते हैं, और इधर दुसरे कुछ ऋत्विज आपको हविर्भाग देकर भजते रहते हैं। हे ज्ञानसागरो, सब प्रकारकी सम्पत्ति, सब (प्रकारका) सामर्थ्य आपमें रहता है। हे अद्भुत पराक्रमी अश्वियो, आपके सुवर्णरथके, आपके अविनाशी रथके, पहिले (मानो इच्छित मनोरथों की) वर्षाही किया करते हैं। ३

हे पराक्रमी अश्वियो, यह सभी को मालुम है कि आप आप आकाश के कपाट खोलते हैं। (भक्तजनों की) प्रातःकालकी इष्टियों में जानेके लिए आप अपने रथके घोड़े जुटाते रहते हैं; आप वे अपने कभी न नाश होनेवाले घोड़े, देवलोकमे रहने की इच्छा करनेवाले भक्तोंके यहां जानेके लिए, जुटाते रहते हैं। हे अश्विदेवताओ, आपके कर्म अद्भुत हैं। आप अपने अविनाशी रथमें सारथीके समीप हमें बैठने दीजिए; क्यों कि (पृथ्वीपरकी) किसी पक्की सड़क परसे चलने की तरह आप आकाशमें अच्छी तरह घोड़े दौड़ाते रहते हैं, और दिव्य लोकके मार्गसे वेगपूर्वक रथ ध्याड़ते रहते हैं। ४

हे अश्विदेवताओ, विलक्षण सामर्थ्य तो आपकी सम्पत्ति ही है, अतएव उन सामर्थ्योंके योगसे रातदिन आप हमारी सहायता कीजिए। आपकी उदारतामें कभी प्रतिरोध न हो। हमारे उपर जो आपकी कृपा है वहभी कभी समाप्त न हो। ५ (३)

---

३ हे अश्विनौ आश्रावयन्तः इव, आयवः (युवयोः) श्लोकम् (आश्रावयन्तः) आयवः युवान् स्तोमेभिः देवयन्तः (अपरे च) आयवः युवां हव्या अभि (आव्हयन्ति) हे विश्ववेदसा विश्वाः श्रियः पृक्षः च युवोः अधि (वसन्ति) हे दस्रा वां हिरण्यये हिरण्यये रथे पवयः (अभीप्सितानि) प्रुषायन्ते।

४ हे दस्रा (इदं) अचेति (यद् युवां) नाकम् वि ऋण्वथः वां रथयुजः दिविष्टिषु युञ्जते, अध्वस्मानः (अश्वाः) दिविष्टिषु (युञ्जते)। हे दस्रा, वा हिरण्यये रथे बन्धुरे अधि स्याम। यतः (सु) पथा इव रजः अञ्जुशासता यंतौ, रजः अजसा शासता (यन्तौ)।

५ हे शचीवसू शचीभिः दिवा नक्तं च नः दशस्यतम्। वाम् रातिः कदा चन मा उप दसत्। (वां) रातिः कदाचन अस्मत् (सा उप दसत्)।

हे औदार्यसागर इन्द्र, ये सोमरस आपके समान शूरके ही पीने योग्य हैं। ये ग्रावोंसे निचोड़ कर टपकाये हुए तीव्र सोमरस–ये शरीरमें भिननेवाले रस–आपके लिए (तैयार किये गये) हैं। ये (रस) आपको हर्ष उत्पन्न करें, जिससे आप प्रसन्न हो कर हमें बहुत बड़ी और अद्भुत देनगी देवें। स्तुतिसे प्रसन्न होनेवाले हे इन्द्र, हम सुन्दर स्तोत्रोंसे आपके गुणानुवाद गाते हैं। हमारे यहां आइये। आप हमारे लिए अत्यन्त सुखदायक हैं, अतएव हमारे पास आइये। ६

हे अग्निदेव, हमारी सुनिये, हम आपका गुणसंकीर्तन करते रहते हैं, (यह बात) उन माननीय देवों से–उन यजनीय और देदीप्यमान देवों से–आप कहें ही गे। देवो, जब आपने आंगिरसोंको (काम–) धेनु दी तब यज्ञ करनेवाले यजमानके लिए अर्यमाने उसका दोहन किया, और वह गाय कौनसी है–सो सिर्फ उसे अथवा एक मुझेही मालुम है। ७

(हे मरुतो,) हमारे लिए आपने पराक्रम किये, ऐसा कभी न हो कि वे अब पुरानी बातें हो गई। हमारा उज्वल यश कभी मलीन न हो, अर्थात् हमारे आंखों–देखत सो कभी न हो। अद्भुत, और पीढ़ी दर पीढ़ी हो जाय तथापि नवीनही, (रहे) और हे मरुतो, आपका जो वरदान लोकोत्तर तथा सर्वप्रसिद्ध हो वही हमें दीजिए। जितना कुछ दुस्साध्य हो, जितना कुछ दुर्लभ हो, वहभी आप हमें दिये बिना न रहिए। ८

---

६ हे वृषन् इन्द्र इमे इन्दवः वृषपाणासः, इमे अद्रिसुतासः उद्भिदः उत् भिदश्च तुभ्यं सुतासः। ते मंहिष्ठाय राधसे दावने त्वा मदन्तु। हे गिर्वाहः गीर्भिः स्तवमानः आगहि, सुमृळीकः नः आगहि।

७ हे अग्ने नः ओ षु शृणु (अस्माभिः) ईळितः त्वं यज्ञियेभ्यः राजभ्यः यज्ञियेभ्यः देवेभ्यः (अस्मान् स्तुतिम् अधिकृत्य) ब्रवसि। हे देवा यत् अंगिरोभ्यः त्वां धेनुं अदत्तन तां कर्तारसचा अर्यमा दुदुहे एष मे सचा तां वेद।

८ (हे मरुतः) वः तानि पौंस्या अस्मत् मोषु मना अभि भूवन्, (अस्माकं) द्युम्नानि मोत जारिषुः, अस्मत् पुरा मोत जारिषुः। यत् वः राधः चित्रम् युगेयुगे नव्यं अमर्त्यं च घोषात्। तत् हे मरुतः अस्मासु दिधृत यच्च दुस्तरम् यत् च दुस्तरम् तदपि (दिधृत)।

पुरातन ऋषि दध्यङ्, तथा अंगिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि और मनु को मेरा कुल मालूम है। जितने कोई मेरे पूर्व हो गये उन (ऋषि और राजा मनु) सबको मेरा हाल मालूम है, क्योंकि उनका सम्बन्ध देवों तक पहुंचता है और हमारे मुख्य पूर्वज भी उन्हींमें से थे; अतएव उन्हीं की पद्धतिके अनुसार में इन्द्राग्निका स्तवन करके उनके सम्मुख नम्र होता हूं। उनका यशोवर्णन करके उन्हींको प्रणिपात करता हूं। ९

याज पठन करके आचार्य को देवोंका यजन करने दीजिए, और प्रेमी देवता भी उत्कृष्ट हविरन्नका स्वीकार करने में प्रवृत्त हों; क्योंकि अब ज्ञानवान् बृहस्पति, बलवर्धक सोमरस अर्पण करके देवयजन करनेके लिए उत्साहित हुआ है, और सर्वगुणसम्पन्न तथा तीव्र सोमरससे यजन कर रहा है। अतएव सोमवल्ली निचोड़ने के पाषाणों की दूर तक सुन पड़ने वाली ध्वनि सहज ही हमारे कानों में पड़ी। महत्कार्य करनेवाले इस सोमरसके हाथ में वर्षा करनेका सामर्थ्य है, (इसी लिए) पुण्यकर्मका आचरण करनेवाले के लिए रहने को विस्तृत और उत्कृष्ट स्थान मिले हैं। १०

हे दिव्य विभूतियो, आप ग्यारह जन आकाश में रहते हैं ग्यारह लोग पृथ्वीपर और उदकोंमें भी ग्यारहही जन बड़े वैभव से रहते हैं; अतएव आप हमारा यह यज्ञ मान्य कर लीजिए। ११ (४) (२०)

अनुवाक २१.

सूक्त १४०.

॥ ऋषि—दीर्घतमा । देवता—अग्नि ॥

जो यह अग्नि वेदीपर आरूढ़ होता रहता है और जिसे अपना निजका (तेजोमय) स्थान अधिक प्रिय होता है उस परम देदीप्यमान अग्निके लिए घृतपात्र ले आओ। घृत ही उसके लिए हविरन्न की तरह है; और जैसे वस्त्रसे मंडित किया हो वैसे ही अग्निको मननीय स्तोत्रोंसे आच्छादित करो। यह परम पवित्र, शुभ्र—तेजोमय है, प्रकाशही उसका रथ है और उसके योगसे वह अंधकार का नाश करता रहता है। १

---

९ पूर्वः दध्यङ् ह अंगिराः च, प्रियमेधः कण्वः, अत्रिः मनुः च (एते) मे जनुष विदुः, (ये च) मे पूर्वे मनुः च ते सर्वेऽपि विदुः। (यतः) तेषां देवेषु आयतिः अस्माकं च तेषु नाभयः, (ततः) तेषाम् पदेन इन्द्राग्नी गिरा महि आनमे, गिरा आनमे।

१० होता यक्षत् वनिनः (देवाः) वार्यं वन्त, वेनः बृहस्पतिः पुरुवारेभिः पुरुवारेभिः उक्षभिः यजति। अध अद्रेः दूर आदिशम् श्लोकम् त्मना जगृम्भ, सुक्रतुः (सोमः) अररिदानि अधारयत् (अतः) सुक्रतुः (भक्तः) पुरु सद्मानि (अधारयत्)।

११ हे देवासः ये (यूय) एकादश दिवि स्थन, पृथिव्यां एकदशस्थ, एकादश एव महिना अप्सु क्षितः स्थ ते (यूय) यज्ञम् इमं जुषध्वम्।

१ वेदिषदे, प्रियधामाय सुद्युते अमेय धासिं इव यानि प्रभर। वस्त्रेणेव मन्मना तं शुचिं ज्योतीरथं शुक्र-वर्णं तमोहनम् वासय।

दोनों से, अर्थात् पृथ्वी और आकाशसे, यह प्रकट होता है, और तीन प्रकारका अन्न ग्रहण करके एक वर्ष के बाद फिर उसी भक्षण किये हुए अन्न की (धान्यरूपसे) अनेक-गुणा वृद्धि करता है। बलशाली अग्नि अत्यन्त उदार चरित देख पड़ता है, उस समयका उसका मुख और जिह्वा दूसरी, और जब अनिवार होकर अरण्यके अरण्य चट कर डालता है तबका दूसरा। २

पहले दोनों अंधकारमें छिपे रहते हैं और एक दूसरेसे चिपटे रह कर जोरसे हिलने लगते हैं और इसके बाद (प्रकट होनेवाले) अग्निरूप बालकके पास वे दोनों दौड़ते आते हैं (यह बालक साधारण नहीं है)। इसकी लम्बी जिह्वा बाहर आकर पूर्वाभिमुख होती है। यह एकदम प्रकट होकर चमकता है और सब अनिष्टों का नाश करता है। इसकी सेवा सबको करनी चाहिए। यह भक्तों की अन्तःकरणवृत्तियों को उत्साहित कर देता है और (जगतके) पिताको हर्षित करता है। ३

(अग्निदेव,) ये आपके छूटनेके लिए आतुर होनेवाले, सर्वव्यापक, वेगसे दौड़नेवाले अश्व जब जोरसे उड़ते हुए जाते हैं तब उनका मार्ग काला होता जाता है। इन अश्वोंके मुख भिन्न भिन्न दिशाओं की ओर झुके हुए हैं और ये वायुरूप शीघ्रगति और वायुप्रेरित अश्व उस राजाके लिए जोते गये हैं। ४

आते जाते मार्गके अन्धकारका समूल उच्छेद करके अपना विशाल रूप प्रकट करनेवाले वे (अग्निके अश्व) स्वाभाविकही परन्तु बड़े जोरसे उड़ते जाते हैं; क्योंकि उस समय यह अग्नि भी पृथ्वीके विस्तीर्ण भागप्रदेश का चुम्बन लेकर मेघगर्जनारूप प्रचण्ड घोष करते हुए सपाटेसे जाता है। ५ (५)

---

२ द्विजन्मा, त्रिवृत् अन्नम् अभि ऋज्यते, संवत्सरे ईम् जग्धं पुनः ववृधे। (अस्य) वृषा अन्यस्य (रूपस्य) आसा जिह्वया जेन्यः वारणः (असौ) वनिनः अन्येन नि मृष्ट।

३ ते कृष्णप्रुतौ सक्षितौ अस्य मातरा वेविजे, उभा च शिशुम् अभि तरेते। प्राचाजिह्वं ध्वसयन्तं तृषुच्युतं आ साच्यं कुपयं पितुः वर्धनं (अभितरेते)।

४ (हे अग्ने) (इमे ते) मुमुक्ष्वः आशवः जुवः (अश्वाः) रघुद्रुवः कृष्णसीतासः, उ (अपि) असमनाः अजिरासः रघुष्यदः वातजूताः मनवे मानवस्यते उप युज्यन्ते।

५ आत् अस्य ते (अश्वाः) कृष्णम् ध्वसयन्तः महिवर्पः करिक्रतः वृथा अभ्वं ईरते। यत् सीम् महीम् अवनिं अभि मर्मृशत् अभिश्वसन् स्तनयन् नानदत् प्र एति।

चित्रविचित्र ओषधियोंको मानो (अपनी) प्रभासे अलंकृत करनेके लिए ही यह अग्नि (उनकी ओर) झुककर देखता है और जैसे कोई शूर योद्धा अपनी प्रिय पत्नीसे भेटने जाता है वैसे ही गर्जना करते हुए यह उन (ओषधियों) के पास जाता है। उसका दिव्य प्रताप प्रकट होनेमेंही उसके शरीरमें विशेष शोभा आती है; परन्तु उस समय किसी भयंकर श्वापदकी तरह दुर्निवार होकर वह अपने ज्वालारूप अयाल एकदम हिलाता है। ६

वे ज्वाला चाहे संकलित हों चाहे भिन्न भिन्न दिख पड़नेवाली हों, उन सबको जाननेवाला यह सनातन अग्नि उन सभीको समेटता है और वे भी अग्निको अपनेके तौर पर पहचानती हैं। और इसी लिए उनके समुद्रमें आकर वह शयन करता है। उस समय फिर वे ज्वाला बढ़ती हैं और दिव्यरूप पाकर मावापसहित एक निराला ही रूप धारण करती हैं। ७

सुन्दर केशकलाप धारण करनेवाली उन लावण्यवतियोंने अग्नि को आलिंगन किया। (इसके पहले) वे मृतप्राय ही थीं; परन्तु इस विश्वजीवन के लिए ही वे उठ खड़ी हुई, तब उनका वार्धक्य दूर करके उनमें उत्साहपूर्ण और नष्ट अथवा क्षीण न होनेवाली अपूर्व जीवनीशक्ति उत्पन्न करके, जयघोष करते हुए वह उनके पास आया। ८

पृथ्वीमाताके वस्त्रके अंचलका चुम्बन करते हुए यह तीव्र अग्नि (दावाग्निके रूपसे) वेग के साथ आगे जाता रहता है और (उसके पास आते ही) घोर वन्यश्वापद भी चिल्ला कर इधर उधर भागने लगते हैं। पृथ्वीका पृष्ठभाग चाटते चाटते जाते समय (यह अग्नि) पादचारी प्राणियोंके शरीरमें (उन्हें अन्न देकर) सदा नवीन जोश उत्पन्न करता है; परन्तु इसके आगे जानेपर पीछे अवश्यही इसका मार्ग काला होता जाता है। ९

हे अग्निदेव, हमारे उदार यजमानों पर अपनी दयाका प्रकाश डालिये। आप वीर्यवान् और आत्मसंयमी हैं, आपका श्वासोच्छ्वास भी (ओजस्वी) होता है। आप अपना बालरूप छोड़कर, जैसे समरांगणमें तेजस्वी कवच पहन कर घूमता हो वैसेही, अपने प्रकाशसे सबको दीप्त कर डालते हैं। १० (६)

---

६ यः वभ्रुषु ताः भूषन् न अधि नम्नते वृषेव पत्नीः, ताःश्च रोरुवत् अभ्येति। ओजायमानः (स्व) तन्वः च शुम्भते भीमः (सिंहः) न शृंगाभिः सन् शृंगा दविधाव।

७ सः संस्तिरः विष्टिरः (सतीः अपि ताः सर्वाः) जानन् एव संगृभाति जानतीः च ताः नित्यः आशये। ताः पुनः वर्धन्ते देव्यम् अपि यन्ति, अन्यत् वर्पः पित्रोः सचा कृण्वन्।

८ केशिनीः अग्रुवः तं हि संरेभिरे, ममुषीः (च ताः) प्रागवं तस्मै पुनः ऊर्ध्वः तस्थुः। सोपि तासां जरां प्रमुञ्चन्, तासु च असुं परं अस्तृतं जीवम् जनयन् नानदन् च एति।

९ मातुः अधीवास परिरिहन् अयं जयः (अग्निः) तुविग्रभिः सत्वभिः याति अह। वयः पद्वते ददत् सदा रेरिहत् (याति,) श्यनी वर्तनीः अनु सचते अह।

१० हे अग्ने अस्माकं मघवत्सु (यजमानेषु) दीदिहि, अथ त्वं दमूनाः वृषभः श्वसीवान् (असि) अवास्य शिशुमतीः, युत्सु वर्मेव परिजर्भुराणः अदीदेः।

हे अग्निदेव, किसी न किसी तरह रची हुई किसी कवितासे, अथवा आपको प्रिय लगनेवाले किसी सुरस पद्यसे भी, यह मेरा सुव्यवस्थित स्तोत्र आपको विशेष प्रिय हो, और आपके शरीरका जो शुभ्र और पवित्र प्रकाश पड़ता रहता है उसके योगसे (ऐसा हो कि) आप हमें (आपकी जो कृपा है वही) रत्नही देते हैं। ११

हे अग्ने, हमें रहनेके लिए और जल्द चलनेके लिए, एक ऐसी नौका आप देनेही वाले हैं कि जिसमें अभंग हाथे और बल्ली हैं, परन्तु वह ऐसी चाहिए कि जिसमें हमारे सब योद्धा, यजमान और लड़के तथा अन्य लोग, सब बैठकर पार हो सकें और जो हमारे लिए सुख का आश्रय हो। १२

हे अग्ने, यह हमारा प्रशंसास्तोत्र उत्तम मान लीजिए, इससे पृथ्वी, आकाश और स्वयशोमंडित महा नदियां हमें दिव्य गोधन, धान्यसमृद्धि और दीर्घ आयु प्राप्त कर देंगी और अरुणवर्णा उषादेवी हमारे लिए मनःसामर्थ्यही का वरदान मांग लेंगी। १३ (७)

सूक्त १४१.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–अग्नि ॥

सचमुचही देव का अवर्णनीय तेज सामर्थ्यके प्रभावसे प्रकट हुआ, इसी लिए वह (यह अग्निरूप तेज) एक दर्शनीय वस्तु हो रहा है, अतएव मेरी चित्तवृत्ति उसकी ओर लगती है और वह तत्काल फलद्रूप भी होती है। इस कारण सत्यधर्मप्रवर्तक (हमारी) स्तुतियोंका प्रवाह भी उसी ओर बहता रहता है। १

सामर्थ्यवान, नाशरहित, और सर्वांग सम्पन्न यह अग्नि (प्राणियोंके) शरीरमें वास करता रहता है। सातों भुवनोंको जो माताके समान कल्याणप्रद होते हैं उन (उदकों) में उसका दूसरा स्वरूप रहता है। इस वीर्यवान अग्निसे मनोरथरूप दूध दुहनेके लिए उसके तीसरे स्वरूपकी योजना की गई है। और उत्तनेहोंके लिए सुन्दर युवतियोंने इस लोकत्रयमें पूज्य (अग्नि) को प्रकट किया है। २

---

११ हे अग्ने इदं सुधितं (अस्तु) दुर्धितात्, प्रियात् उ चित् मन्मनः ते प्रेयः अस्तु यत् तन्वः शुचि ते। शुक्रं रोचते तेन त्वं अस्मभ्यं (तव कृपारूपं) रत्नं आवनसे।

१२ हे अग्ने, गृहाय उतत्. रथाय निर्याण्या पद्वती नावं ददासि, या नः अस्माकं वीरान् उत नः मघोनः जनांश्च पारयात्, या च शर्म (भवेत्)।

१३ हे अग्ने नः इत् उक्थं अभि गृणीः अपि च द्यावाक्षामाः स्वगूर्ताः सिन्धवश्च गव्यं नव्यं दीर्घः अहाय यन्तः (भवेयुः,) अरुण्य (उषसः च) इषं वरं वरन्त।

१ बळित्था, देवस्य दर्शत भगः तत् यतः सहसः अजनि, (अतः एव अत्र तत्) वपुषे भाति। यत् मे मतिः ई उप हरते साधते च, अतः ऋतस्य धेनाः मङ्गलः अनयन्त।

२ पृक्षः सः नित्यः पितुमांश्च (अयं अग्निः प्राणिनां) वपुः आशये. (अस्य) द्वितीयं रूपं सप्तशिवासु मातृषु आ अस्य वृषभस्य तृतीयं (अभीष्टानां) दोहसे, (अतः) योषणः दशप्रमतिं अमुं जनयन्त।

जब अति विशाल (इस आकाशरूप) शरीरके मूलप्रदेशसे महात्माओंने अथवा ज्ञानसम्पन्न ऋषियोंने अपने सामर्थ्यसे इसे बाहर प्रकट किया और मधुर रसकी आहुति देनेके लिए पुरातनकालमें उसके गुप्त रूपसे रहते हुए भी मातरिश्वाने मंथन करके (जब) उसे बाहर निकाला, ३

जब उसे परात्पर पिताके पाससे नीचे लाकर आस पास फिराते हैं तब सामर्थ्यवर्धक आहुतियोंसे और समिधोंकी ज्वालाओंसे वह विलक्षण तेजके साथ (एकदम) प्रज्वलित होता है। दो लोग उसे प्रकट करनेका योग करते हैं। तब वह अति पवित्र अग्नि अपने प्रखर तेजसे अत्यन्त तरुण रूपमें प्रादुर्भूत होता है। ४

इसके बाद वह पवित्र (अग्नि) मातृ समूहमें झटपट प्रवेश करके निष्प्रतिबन्धताके साथ अतिशय वृद्धिको प्राप्त होता है और उनमेंसे जो उसके विस्तारवृद्धिके लिए पहले कारणी भूत हुए होते हैं उनमें पहले प्रज्वलित होकर बादको फिर नवीन और कनिष्ठ समूहमें वेगसे संचार करता है। ५ (८)

अर्थात् प्रातर्यज्ञके समय (ऋत्विज) उसीको अपना आचार्य बनाते हैं और यह श्रद्धा रखकर, कि यही हमारा भाग्यदाता है, उसके प्रीत्यर्थ आहुतियोंसे पूर्णतया हवन करके उसे प्रसन्न कर लेते हैं। फिर, अपने प्रज्ञाप्रभावसे और अद्भुत सामर्थ्यसे सबकी स्तुतिका पात्र होनेवाला और सारे विश्वको जिसका आधार है वह अग्नि, सुप्रसन्न होकर, भक्तजनोंके स्तवन सुननेके लिए और उनके सोमरसका आस्वाद लेनेके लिए देवताओंको ले आता है। ६

यह अत्यन्त पूज्य अग्नि, वायुके कारण क्षुब्ध होते समय, स्तुतिको न माननेवाले किसी चतुर–वाग्दाक्ष पंडितकी तरह, (अपने मार्गमें) अनिवार होकर, जब अच्छी तरह जाता है और सब (पातकोंको) भस्म कर डालता है; जिसके दोनो पंख कृष्णवर्णही होते हैं, तथापि जो शुद्ध स्थानहीमें प्रकट होता है और जिसकी (कृपाके) मार्ग नाना प्रकारके हैं वही यह अग्नि जाते समय मार्गमें अन्तरिक्षसे ऊपर चढ़ता जाता है। ७

---

३ यत् महिषस्य वपंसः बुध्नात् ईशानासः सूरयः ईं शवसा कृन्त । यत् मध्वः आधवे प्रदिवः गुहा सन्तम् मातरिश्वा ईम् अनु मथायति ।

४ यत् परमात् पितुः प्रपरिणीयते (तदा) पृक्षुधः वीरुधः दंसु आरोहति । यत् यत् अस्य जनुषः उभाः इन्वतः आदित् शुचिः असौ घृणा यविष्ठः (प्रादुः) अभवत् ।

५ आदित् सः मातॄः आ विशत्, यासु आ, असौ शुचिः अहिंस्यमानः सन् उर्विया वि वावृधे । यत् पूर्वा-ननाजुवः अनु अरुहत्, (ततः) नव्यसीषु अवरासु धावते ।

६ आदित् च तं दिविक्षितु होतारं वृणते, भगमिव (हव्यैः) तं पपृचानासः ऋंजते । यत् क्रत्वा मज्मना च पुरुष्टुतः विश्वधा असौ शंसं (श्रोतुं) धायसेच देवान् मर्तं वेति ।

७ यत् (अथ) यजतः वातचोदितः सन् अरणा अनाकृतः ह्वारः वक्वा न व्यस्थात् तदा (एनांसि) धक्षुषः, कृष्णजंहसः, श्वध्वनः तस्य पत्मन् रजः आ (गच्छति) ।

यंत्रसामर्थ्यसे चलाये हुए और सजा कर तैयार किये हुए किसी वाहनमें (बैठने) की भांति वह अपने आरक्त परिवारसहित तैयार होकर आकाशलोकमें संचार करता है। हे (अग्ने), आपका दहनकर्म जब वेगोंसे होता रहता है तब कृष्णवर्ण धूम्रके टोलके टोल ऊपर जाते रहते हैं और जैसे प्रतापी शूरको कोई (डरे) वैसेही पक्षिगण आपके प्रखर कोपसे डरकर दशो दिशाओंको भग जाते हैं। ८

हे अग्निदेव, आपहीके द्वारा वरुण (अपने) धर्मनीति-नियमोंका पालन कराता है और मित्र तथा अर्यमा नामक उदारबुद्धिवाले देव (पापियोंको) शासन करते हैं। आप अब सर्व व्यापक रूपसे प्रकट हुए हैं; और जैसे पहियेका घेरा आरोंको अपनी अपनी जगहमें दाब रखता है उसी प्रकार अपने प्रज्ञाबलसे आप सबको सब प्रकारसे सम्हालते हैं। ९

हे अग्निदेव, आप सदासर्वदा ठीक तरुणाईके जोशमें रहते हैं और स्तवनपूर्वक सोमरस अर्पण करनेवाले भक्तोंको इच्छित रत्नसम्पत्ति और देव भजनबुद्धि दोनोंका जोड़ मिला देते हैं। आप स्वयं सामर्थ्यकी ही तारुण्यदशाकी मूर्ति हैं, अतएव, हे महा वैभव सम्पन्न अग्निदेव, आप जो स्तुतिपात्र हैं उन्हें अपना भाग्यदाता मान कर हम अपने सब उद्योगोंके आरम्भमें आपहीकी याद करते रहते हैं। १०

हे अग्निदेव, जिस प्रकार इतना ऐश्वर्य और बलवत्तर भाग्य, कि जो स्वयंपूर्ण और सत्कार्यमें व्यय किया जा सके, (आपने हमें दिया) उसी प्रकार सब सहन करनेका अपूर्व सामर्थ्य भी हमें दीजिए। जिस प्रकार (घोड़ेकी) लगाम पकड़कर उसे वशमें रखते हैं उसी प्रकार यह अग्नि स्वाभाविक लीलासे (दैवी और मानवी) जन्मोंपर अपना प्रभुत्व चलाता रहता है और सद्धर्मविहित यज्ञके प्रसंगमें देवोंके प्रीत्यर्थ स्तवन करनेकी स्फूर्ति भी वही सत्कृत्यशील (देव) देता रहता है। ११

अत्यन्त देदीप्यमान, सर्व (वस्तु) तत्काल व्यापकर डालनेवाला और आनन्दरूप यह यज्ञसम्पादक अग्नि, तेजोमय रथमें जाता रहता है, वह हमारी पुकार सुने। अविचाररहित अग्नि, अचूक प्रेरणाओंसे हमें अभीष्ट सुखकी ओर-स्पृहणीय आनन्दकी ओर-ले जाय। १२

---

८ शिक्वभिः यातः कृतः च रथः न अरुषेभिः अंगेभिः द्यां ईयते । आत् अस्य दक्षि, ते कृष्णासः सूरयः (उदगच्छन्ति), शूरस्य त्वेषथात् इव वयः ईषते ।

९ हे अग्ने त्वया हि वरुणः धृतव्रतः, मित्रः, अर्यमा च सुदानवः (देवाश्च) शाशद्रे । यत् सीम् अनु विश्वथा विभुः अजायथाः नेमिः अरान् न परिभूः (असि)।

१० हे अग्ने यविष्ठ त्वं शशमानाय सुन्वते रत्नं देवतातिं च इन्वसि । हे सहसः युवन् हे महिरत्न नव्यं तं त्वा वयं भगं न कारे धीमहि ।

११ हे अग्ने, दमूनसम् स्वर्थं रयिम् न दक्षं च भगं न त्वं अस्मे धर्णसिं पपृचासि । (अश्वस्य) रश्मीन् इव यः उभे जन्मनी यमति यः सुक्रतुः ऋते आ देवानाम् च शंसम् (प्रयच्छति)।

१२ उत सुद्योत्मा जीराश्वः मन्द्रः चन्द्ररथः होता (अयं अग्निः) नः शृणवत् । सः अग्निः अमूरः नेषतमैः वामं सुवितं वस्यः अच्छ नः नेषत् ।

ऐसे स्तोत्रगानोंसे, कि जिनका प्रभाव विलक्षण है, अग्निका स्तवन किया है। विश्वका साम्राज्य भोगनेके लिए वह बिलकुल योग्य है, इसी लिए यह सबमें अग्रसर ठहरा है। अतएव, हमारे दातृत्वशाली यजमान और हम, सब इस प्रकार (अधर्मका उन्मूलन करके) अत्यन्त वृद्धिको प्राप्त हों जैसे सूर्य हिमजालका (उच्छेद करके वृद्धिको प्राप्त होता है।) १३ (६)

सूक्त १४२.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

हे अग्ने, आप प्रदीप्त हुए हैं, अतएव आहुतियां देनेके लिए उत्साहित होनेवाले यजमानोंके पास आज आप अपने देवताओंको ले आइये; और पुरातन (यज्ञकर्मकी) यह हमारी परम्परा सोमरस निकाल कर अर्पण करनेवाले भक्त जनोंके लिए यथासांग कीजिए। १

हे स्वयंभु अग्निदेव, आपका स्तवन करके हवि अर्पण करनेवाले मेरे समान भक्तजनोंका (जो) यज्ञ आप समीप रहकर यथासांग पूर्ण करते हैं उसमें अवश्यही घृतकी और मधुर मधुकी कदापि न्यूनता नहीं रहती। २

यह नराशंस, अर्थात् सर्वजनस्तुति योग्य अग्नि स्वयं पवित्र है, दूसरोंको पावन करनेवाला और आश्चर्यचकित करनेवाला है। वह द्युलोकसे आकर तीन बार (हमारा) यज्ञ मधुरससे पूर्ण करता है। वह सब देवताओंमें अत्यन्त पूज्य है। ३

हे अग्निदेव, हमारे स्तवनोंसे आप प्रसन्न हुए हैं, अतएव उस अत्यन्त उज्ज्वल यशवाले इन्द्रको यहां ले आइये। आप मधुरभाषी हैं और यह अपना स्तोत्र मैं आपके प्रीत्यर्थही गाता हूं। ४

---

१३ (अयं) अग्निः साम्राज्याय प्रतरं दधानः अग्निः शिमीवद्भिः अर्कैः अस्तावि । अमी ये च मघवानः (यजमानाः) वयं च ते मिहं न सूरः अति निष्टतन्युः ।

१ हे अग्ने समिद्धः अद्य यतस्रुचे (यजमानाय) देवान् आ वह, उत सोमाय दाशुषे पूर्व्यं तंतुं तनुष्व ।

२ हे तनूनपात्, त्वं आवतः विप्रस्य, शशमानस्य दाशुषः घृतवन्तं मधुमन्तं यज्ञं उप मासि ।

३ शुचिः पावकः अद्भुतः देवेषु यज्ञियः देवः नराशंसः त्रिरा दिवः (नः) यज्ञं मध्वा मिमिक्षति ।

४ हे अग्ने ईळितः त्वं हि चित्रं प्रियं इंद्रं इह आ वह, हे सुजिह्व इयं मम मतिः त्वां अच्छ वच्यते ।

इस अध्वर यज्ञमें ऋत्विज कुशासन बिछा कर हाथमें स्रुवा लेकर आहुतियां देनेके लिए तैयार हैं; और मैं भी इन्द्रके लिए ऐसा विस्तृत आसन सुशोभित करता हूं जो कि उस विश्वव्यापक देवके लिए योग्य होगा। ५

देवताओंके भीतर प्रवेश करनेके लिए यज्ञशालाके पवित्र महाद्वार खुलें. ये दुष्टोंके स्पर्शसे कलंकित नहीं हुए हैं; किन्तु सनातन धर्मको बढानेवाले, पवित्र करनेवाले और सबको अत्यन्त प्रिय हैं। ६ (१०)

सबको आनन्दसे जिसका सत्कार करना चाहिए, जो एक दूसरेसे बिलकुल संलग्न हुई हैं और अपनी सुन्दरताके कारण बहुत मोहक देख पड़ती हैं वे रात्रि और उषारूप देवता, जो कि (मानो) सत्यधर्मकी श्रेष्ठ माताही हैं, प्रसन्न अन्तःकरणसे कुशासनपर आकर बैठें। ७

मधुरभाषी, (भगवानका) अत्यन्त प्रेमसे स्तवन करनेवाले कवि, दोनों दिव्य ऋत्विज, यह हमारा यज्ञ-सर्वार्थप्रद और स्वर्ग (के देवताओं) तक भी पहुंचनेवाला यज्ञ-सांगोपांग पूर्ण करें। ८

शुद्धचारित्र्य और देवताओंमें तथा मरुद्गणोंमें भी पूज्य होनेवाली होत्रा, भारती, इला और परम श्रेष्ठ सरस्वती, सब वंदनीय देवता आपही आप आसनपर आ बैठें। ९

हमारे ऊपर कृपा करनेवाला त्वष्टदेव (यज्ञमंडपमें) नाभिपर, अर्थात् उत्तर वेदीपर, आरूढ होकर, हममें जो ओजस्वी और स्वाभाविकही अत्यन्त विपुल तथा अतिशय आश्चर्यकारक वीर्य है उसकी ऐसी योजना करे कि जिससे हम समर्थ हों और हमारा उत्कर्ष हो। १०

---

५ स्वध्वरे यज्ञे यतस्रुचः बर्हिः स्तृणानासः (ऋत्विजः) इन्द्राय देवव्यचस्तमम् सप्रथः शर्म वृणे।

६ ऋतावृधः महीः पावकाः पुरुस्पृहः द्वारः देवीः असश्चतः देवेभ्यः प्रयै विश्रयन्ताम्।

७ नन्दमाने उपाके सुपेशसा ऋतस्य यह्वी मातरा नक्तोषसा बर्हिः सुमत् आसीदताम्।

८ मन्द्रजिह्वा जुगुर्वणी कवी दैव्या होतारा, अद्य नः इमं दिविस्पृशं सिध्रं यज्ञं यक्षताम्।

९ शुचिः देवेषु मरुत्सु च अर्पिता होत्रा (तथा च) भारती इळा मही सरस्वती (एताः) यज्ञियाः देव्यः बर्हिः सीदन्तु।

१० अस्मयुः त्वष्टा (पृथिव्याः) नाभा (स्थितः सन्) पोषाय राये च तत् अद्भुतं तुरीपं नः पुरु वा अरं पुरुत्मना वि ष्यतु।

हे राजा वृक्ष, यहां आइये और स्वयं हवि अर्पण करके देवोंका यजन कीजिए। परम बुद्धिमान् अग्नि भी देवताओंमें जिनका हविर्भाग होता है उन्हींको देता रहता है। ११

पूषा तथा मरुत् भी जिसके सेवक हैं, जो विश्वाधीश है और सर्वत्रगति वायु (का भी जो आत्मा) है, जो गायत्र गायनके विषयमें स्फूर्ति देता है उस इन्द्रको, (हे ऋत्विजो), स्वाहा उच्चार करके हवि अर्पण करो। १२

[illegible] उच्चारण करके ये हव्य अर्पण किये हैं, इस लिए इनका स्वीकार करनेके लिए आइये; हे इन्द्र यही ठीक है। इस अध्वर यज्ञके लिए ही (ये ऋत्विज) आपको पुकार रहे हैं। १३ (११)

सूक्त १४३.

॥ ऋषि—दीर्घतमा । देवता—अग्नि ॥

मैं अब अपना वह ध्यान, जो कि सदा फलद्रूपही होता है, अग्निके नई लगाता हूं; और अपने मनोहर तथा शब्दोंसे व्यक्त किये हुए विचार भी हम बैर्यबल देनेवाले उस अग्निकी ही सेवामें अर्पण करते हैं। (स्वर्लोकके) उदकोंसे जो प्रादुर्भूत हुआ है वह लोकप्रिय अग्नि यज्ञका होता होकर अपने दिव्य निधियोंके सहित यज्ञसमयमें आकर पृथ्वी (पर की इस वेदी) पर अधिष्ठित हुआ है। १

अत्युच्च आकाशमें प्रकट होते ही यह अग्नि पहले मातरिश्वाको दृष्टि पड़ा। और वह अपनेही प्रज्ञाबलसे तथा पराक्रमसे जब प्रज्वलित हुआ तब उसकी दीप्तिसे पृथ्वी और आकाश दोनों ओतप्रोत भर गये। २

---

११ हे वनस्पते त्मना (हव्यानि) अवसृजन् देवान् उप यक्षि। देवेषु मेधिरः देवः अग्निः (अपि स्वयं) हव्या सुषूदति।

१२ पूषण्वते मरुत्वते विश्वदेवाय वायवे, गायत्रवेपसे इन्द्राय स्वाहा हव्यं कर्तन।

१३ हे इन्द्र स्वाहाकृतानि (इमानि) हव्यानि वीतये उपागहि हे इंद्र आगहि, इदं च श्रुधि, (ऋत्विजः) त्वा अध्वरे हवन्ते।

१ तव्यसीं धीतिं नव्यसीं वाचः मतिं च सहसः सूनवे अग्नये प्रभरे। यः अपां नपात् प्रियः च होता (अग्निः) ऋत्वियः वसुभिः सह पृथिव्यां न्यसीदत्।

२ सः परमे व्योमन् जायमानः अग्निः (प्रथमं) मातरिश्वने आविरभवत्। अस्य क्रत्वा, मज्मना च समिधानस्य शोचिः द्यावा पृथिवी च अरोचयत्।

इसकी ज्वाला कभी बुझती नहीं; किन्तु सदा बढ़ती रहती हैं और इस भव्य स्वरूप अग्निके कारण भी बड़े दर्शनीय और दैदीप्यमान होते हैं। चंडकिरण सूर्यकी तरह इसके भी तेजकी लहरें न थकते हुए अथवा निद्रावश न होते हुए रात्रिके निबिड़ अंधकारको भेद कर चारों ओर फैल जाती हैं। ३

जिस सकल ऐश्वर्यके स्वामी अग्निको भृगुऋषिने त्रिभुवनका बल खर्च करके (स्वर्गसे) लाकर पृथ्वीके मध्यभागमें (वेदीपर) उसकी स्थापना की उसके स्वस्थानमें विराजमान होनेपर उस अग्निको अपनी स्तुतियोंसे अपना बनाओ; क्यों कि वरुणकी तरह (भगवद्रूप रहनेवाला) यह भी (दैवी) सम्पत्तिका अकेलाही प्रभु है। ४

मेघगर्जना अथवा (धनुषसे छूटा हुआ) बाण अथवा आकाशके उल्कापात जैसे किसी पकड़े हुए नहीं रह सकते उसी प्रकार इस अग्निको यदि कोई रोकना चाहे तो यह असम्भव है। अपनी तीक्ष्ण दंष्ट्राओंसे (जो कुछ इसके पंजेमें आता है वह सब) यह खाकर भस्म कर डालता है और जैसे कोई किसी लड़नेवाले शत्रुपर टूट पड़े वैसेही यह जंगलके जंगल चट कर डालता है। ५

हमारा स्तोत्रगायन अग्नि बड़े कौतुकसे बारम्बार पसन्द कर लेवे। यह (दैवी सम्पत्तिका) भांडार, हमें वह सम्पत्ति बारम्बार देकर हमारा मनोरथ पूर्ण करे। यह प्रेरक ऐसा करे कि अंगीकृत कार्यमें हमारे सुविचार उत्तम रीतिसे काम दें। उस अग्निका, जो पवित्रताकी मूर्तिही है, मैं स्तवन करता हूं। वह ऐसे स्फूर्तिजन्य स्तोत्रके द्वाराही करता हूं। ६

इसकी उज्वल कांति घृतसे द्विगुणितही दिखती है। इसको सत्यधर्मका मार्गदर्शक मानकर तुम्हारे लिए प्रेमी मित्रकी तरह उद्बोधन करके (जब) इसको भक्तजन सुप्रसन्न करते हैं तब [illegible] भर जोरसे प्रदीप्त होकर सारे यज्ञमंडपमें दिव्य कांतिसे चमकनेवाला यह अग्नि हमारे निष्कलंक प्रेमका अतिशय कौतुक करता है। ७

---

३ अस्य (ज्वालाः) अजराः त्वेषाः च, अस्य सुप्रतीकस्य भानवः सुदृशः सुद्युतः, (अस्य) अग्नेः (तेजसः) सिन्धवः अससन्तः अजराः भात्वक्षसः न अति अक्तुः रेजन्ते।

४ यं विश्ववेदसं (अग्निम्) भृगवः (त्रि) भुवनस्य मज्मना पृथिव्या नाभा एरिरे। तं अग्निं स्वे दमे आ गीर्भिः हिनुहि (यतः) यः एकः (एव) वरुणः न वस्वः राजति।

५ यः मरुतां स्वनः इव सृष्टा सेना इव, दिव्या अशनिः यथा (वारयन् तथा) वराय न। सः अग्निः (स्वैः) तिग्मैः जम्भैः (सर्वमपि) अत्ति भर्वति च योधः इव शत्रून् सः वना न्यृञ्जते।

६ अग्निः नः उक्थस्य कुवित् वीः असत्, वसुः सः वसुभिः नः कामं कुवित् आवरत्, चोदः सः धियः सातये कुवित् तुतुज्यात्, शुचिप्रतीकं तं अनया धिया गृणे।

७ घृतप्रतीकं, ऋतस्य धूर्षदं अग्निं समिधानं मित्रं न (अग्ने) ऋञ्जते। (तदानीं) इध्यानः अक्रः विदथेषु दीद्यत्, नः शुक्रवर्णां धियं उत् यंसते।

हे अग्निदेव, आप भक्तोंकी कभी उपेक्षा न करते हुए अपने अमोघ मंगलदायक और सुखकर उपायसे हमारी संरक्षा कीजिए। आपकी योजनाएं ऐसी हैं कि उनमें न्यूनता कहीं नहीं मिल सकती। वे किसीके द्वारा च्युत नहीं की जा सकती। इसके सिवाय उनमें कभी खंड भी नहीं पड़ता। इस लिए, हे परमपूज्य देव, ऐसी योजनाओंसे हमारे स्वकीयोंकी संरक्षा कीजिए। ८ (१२)

सूक्त १४५.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–अग्नि ॥

अपनी (उपासना) प्रवीणताके जोरमें जब ऋत्विज इस अग्निकी सेवा करनेमें प्रवृत्त होता है तब वह अपने सर्वांगसुन्दर गायनके आलाप खड़े सुरमें निकालता रहता है। उसके साथ अग्नि भी प्रेमवेगसे, आहुतियां देनेके लिए बढ़ाई हुई पड़ीकी ओर बाईं तरफ बढ़ता है; क्यों कि सबके पहले वहीं उसके आसनसे भिड़कर उसका चुम्बन लेता रहता है। १

सत्यधर्मके प्रवाह अपने उद्गमस्थानमें अर्थात् देवके निवासस्थानमें दिखाई देने लगे। उन्होंनेही अग्निको गौरव किया। स्वर्गंगाके अंकपर कौतुकसे क्रीड़ा करते हुए इस (अग्निरूप बालकने) ईश्वरी तेजका पान किया, इसी कारण अब उसकी सर्वत्र प्रार्थना होती रहती है। २

एकही उद्देश साधनेके लिए दोनों परस्पर आतुर हुए हैं और दोनोंका उत्साह बराबरही है। अतएव अग्निका वह अपूर्वरूप प्रकट होनेके लिए (दोनों) प्रयत्न करते हैं; अर्थात् इस भावनासे कि हमारे भाग्यका निधान यही है, हम भी इस अग्निकी पुकार करें, यह बिलकुल योग्य है। क्योंकि जैसे घोड़ेकी लगाम हाथमें रहती है उसी प्रकार हमारे भाग्यके सूत्र इसी सूत्रधारके हाथमें हैं। ३

जिस अग्निकी उपासना दोनो (ऋत्विज) एकही घरमें रहनेवाले एकही वेदीपर जोड़ीसे, समानही उत्साहसे करते हैं वही यह अग्नि, क्या दिनमें क्या रात्रिमें, सदाही तरुण रहनेवाला यह शुभ्रतेजस्क अग्नि देखिये अवतीर्ण हुआ है। और मनुष्यजातिके कितनेही युग हो जायेंगे, परन्तु यह कदापि जराग्रस्त नहीं होगा। ४

---

८ हे अग्ने त्वं अप्रयुच्छन् अप्रयुच्छद्भिः शिवेभिः शग्मैः पायुभिः नः पाहि। (तथाच) हे इष्टे, अदब्धेभिः अदृपितेभिः अनिमिषद्भिः च (उग्रः) न जाः परि पाहि।

१ (यदा) होता मायया अस्य व्रतम् प्रति (तदा) सः ऊर्ध्वा शुचिपेशसं धियं दधानः। अग्निश्चापि, अग्निं स्रुचः दक्षिणावृतः क्रमते, याः (स्रुचः) अस्य धाम प्रथमं निंसते ह।

२ ऋतस्य दोहनाः योनौ (नाम) देवस्य सदने परिवृताः (अपि) ईं अभ्यनूषत, यत् अपां उपस्थे विभृतः आ अवसत्। अध स्वधाःअधयत्, याभिः ईयते सः।

३ समानं अर्थं मिथः वितरित्रता (द्वौ) सचमाना तत् (अपूर्व्यं) वपुः युयुवतः इत, आदीम् सः (नः) भगः न सम् आह्व्यः वोळ्हुःन रश्मीन् सः सारथिः अस्मन् (रश्मीन्) सम् अयस्त।

४ यम् ईम् द्वा सबंधसा, समाने योना मिथुना सबस्या सपर्यतः। (सोयं) दिवा न नक्तम् युवाः पलितः (अग्निः) अजनि, मानुषा युगा पुरु चरन् अपि अजरः।

मैं जो ध्यानयुक्त स्तोत्रोंसे दस बार प्रार्थना करता हूं सो इसीकी और हम मर्त्य मानव जो संरक्षणार्थ पुकार करते हैं सो भी इसी भगवानको। यह कमानीदार आकाशसे तेजीके साथ नीचे आता है और अपने स्वागत करनेवाले भक्तोंको साथ लेकर (जगत्‌में) अपूर्व ज्ञानका प्रसार करता है। ५

हे अग्निदेव, इस आकाशके भुवनोंके राजा एक आपही हैं। और इस भूलोकके भी (राजा) आपही हैं। कोई गोपाल (जैसे गाईका घरना है) उसी प्रकार आप स्वयं इन दोनों लोकोंपर सत्ता चलाते हैं। (आकाश और पृथ्वी) ये पृथ्वी इत्यादि गोजे इतने प्रचंड, शुभ्रवर्ण, तेज:पुंज, नाशरहित और भ्रमणशील यद्यपि हैं तथापि इस अग्निके कुशासनके लिए भी वे जैसे तैसे करकेही पुरते हैं। ६

हे अग्निदेव, आप प्रसन्न होकर इन हमारे स्तवनोंमें आनन्दपूर्ण हों। हे अग्ने, आप आनन्दमय, स्वतंत्र, सद्धर्मप्रभव और परमप्रज्ञ हैं, आपके दर्शन होते ही सब दिशाओंसे आप भक्तसन्मुखही होते हैं और सम्पूर्ण समृद्धियोंसे युक्त राजमहलकी तरह सब दिशाओंसे आप भक्तके सन्मुख होते रहते हैं। ७ (१३)

सूक्त १४५.

॥ ऋषि-दीर्घतमा ॥ देवता-अग्नि ॥

उसीसे पूछो. यह देखिये अग्नि इधरही आ रहा है। इसे सब बातोंका ज्ञान रहता है। वह सवज्ञ है। उसीकी बिनती करते हैं और प्रार्थना करते हैं। सब शास्त्रनियम इसीके. लिए हैं, सब यज्ञयाग भी इसीमें हैं। पवित्र सामर्थ्यका. सब प्रतापोंका और प्रतापी पुरुषका भी अधिपति वही है। १

कुछ पूछना है तो इसीसे पूछते हैं: पर ऐसा नहीं है कि चाहे जो मनुष्य इससे प्रश्न कर सके; सिर्फ साधु पुरुष, अपने मनके विचारके अनुसार, अपने हृदयकी बात इससे पूछ सकता है। वह (महात्मा) अग्निका बतलाया हुआ आगे या पीछेका कोईभी शब्द न भूलते हुए ध्यानमें रखकर (अग्निकेही) सद्बुद्धिके अनुसार चलता रहता है। २

---

५ तमीम् धीतय: दश व्रिश: हिन्वन्ति, वय मर्तास: (ऊतये) देवम् ऊतये हवामहे। स प्रवत: धनो: अधि आ ऋण्वति, अभिव्रजद्भिश्च नवा वयुना अधित।

६ हे अग्ने त्वम् हि दिव्यस्य राजसि त्व पार्थिवस्य अपि. पशुपा इव (त्व) त्मना (एतान् लोकान् वसयसि) ते इमे एनी बृहती, अभिश्रिया, हिरण्ययी, वक्री अपि (नव) बर्हि: (कथ कथमपि) आशाते।

७ अग्ने जुषस्व, हे मन्द्र, स्वधाव: ऋतजात सुक्रतो तत् (न:) वच: प्रति हर्य। य: (त्वम्) गुरुगो विभु: मान क्षय: इव दर्शत: रण्व: विश्वत: प्रत्यङ् असि।

१ त पृच्छत, स (आ) जगाम, स वेद, स चिकित्वान् स ईयते सा नु ईयते। तस्मिन् प्रशिष: सन्ति, तस्मिन् इष्टय, स: वाजस्य शवस: शुष्मिण: पति:।

२ तमित् पृच्छन्ति किंतु न सिम:, धीर: नु स्वेनेव मनसा यद् अग्रभीत् तत् विपृच्छति। अस्य च प्रथमं वच: न मृष्यते न च अपर, अदृपित: सन् (अस्य)क्रत्वा सचते।

(घृताहुतियोंसे भरी हुई) पळियां इसीकी ओर जाती हैं; स्फूर्तिजन्य स्तुतिस्तोत्रोंका स्थान भी वही है, हमारी की हुई सारी विनतियां भी उसीके कानमें पडे। नाना प्रकारकी प्रार्थनाओंका स्वीकार करनेवाला, जयशाली और यज्ञ सांगोपांग पूर्ण करनेवाला यह बालरूप अग्नि अपने जोरकी चमक प्रकट करने लगा है। इसका कृपाछत्र ऐसा पूर्ण है कि उसमें दोष निकालना बिलकुल असम्भव है। ३

अग्नि अपना सारा शरीर जब सम्हाल लेता है तब वह अवश्यही चारों ओर (धीरे धीरे) संचार करता है। परन्तु जब नवीन प्रकट होता है तब अपने परिवारके सहित एकदम झपाटेसे निकल जाता है। परन्तु अग्निके प्रकट होतेही प्रेमवेगसे जब उसकी स्तुति की जाती है तब अवश्यही वह पास आकर थके हुए भक्तजनोंमें आनन्द और प्रेमकी वृद्धि करनेके लिए उनकी पीठपर हाथ फिराता है। ४

यह जब मर्यादकमें या वनमें होता है तब किसी वन्यश्वापदकी तरह उग्र अवश्य दिखता है; परन्तु अब (आकाश और पृथ्वी परकी वेदीके) उत्कृष्ट पृष्ठभागपर उसकी स्थापना की है। मनुष्यको पहले पहल सद्धर्मका ज्ञान इसीने सिखलाया; क्योंकि वह सर्वज्ञ है, तथा परम धर्मका प्रवर्तक और सत्यकी केवल मूर्तिही है। ५ (१४)

सूक्त १४६.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–अग्नि ॥

अग्निके मस्तक तीन (प्रकारके) और किरण सात प्रकारके हैं और उसके स्वरूपमें न्यूनता मिलही नहीं सकती। वह (जगतके) मा बापके समीपही बैठा हुआ है। उस अग्निका मैं गुणसंकीर्तन करता हूं। देखिये, उसने देखनेमें चल परन्तु वस्तुतः अचल आकाशका तेजोरूप और विस्तीर्ण प्रदेश कैसा ओतप्रोत भर डाला है। १

दीर्घरूपसे स्फूरण पानेवाले महान अग्निने आकाश और पृथ्वी दोनोंको कभी का घेर डाला। जरारहित और उदारचरित अग्नि यहांसे फैलते फैलते आकाश तक जा भिडा। इसने पृथ्वीके गिरिशिखर पर पैर रखा, इतनेहीमें उसकी आरक्त शिखाएं मेघरूप गाईके थन तक पहुंच कर चाटने लगी। २

---

३ जुह्वः समित् गच्छन्ति तम् अर्चतः, स विश्वानि वचांसि सः (एकः) शृणवत्। सः पुरु प्रषः तुर्वणिः यज्ञसाधनः अच्छिद्रऊतिः शिशुः च रभः सना अदत्त।

४ यत् समारत उपस्थाय चरति (किन्तु) सद्यः जातः सन् युज्येभिः तत्सार। यत् ईम् अपिपिष्टितम् उशतीः (स्तुतयः) गच्छन्ति (तदानीमेव) श्रान्तम् (भक्तं) गान्ध्य मुदेव अभि मृशते।

५ सः अध्य वनर्गुः (वा) मृगः ईम्, (किंतु अधुना) उपमस्यां न्याचि उप नि धायि। मार्येभ्यः वयुना अग्निः (एव) व्यब्रवीत (सः) हि विद्वान् ऋतचित् सत्यः।

१ त्रिमूर्धानं, सप्तरश्मिं, अनूनम्, पित्रोः उपस्थे निषत्तम् अग्निम् गृणीषे। (पुनश्च:) अस्य चरतोपि ध्रुवस्य दिवः विश्वा रोचना आपप्रिवांसम् (गृणीषे)।

२ अयं उक्षा महान् एने (द्यावा पृथिव्यौ) अभि ववक्षे, अजरः ऋष्वः इत ऊतिः तस्थौ। (यदा) उर्व्याः सानौ पदः नि दधाते (तदानीमेव) अस्य अरुषासः (दीप्तयः) ऊधः रिहन्ति।

वे दोनों मनोहर धेनुएं अपने बछड़ोंके आसपास चक्कर काटते हुए एक के पीछे एक चली जाती हैं और आते आते उसके मार्ग निष्कंटक कर डालती हैं; क्योंकि उसका पूरा ध्यान (उनके इन बछड़ोंकी ओर) उस सर्वश्रेष्ठ (अग्नि)की ओर लगा रहता है। ३

ज्ञाता ऋषि अग्निको उसके स्वस्थानकी ओर ले जाते हैं और वहां सच्चे प्रेमसे योजित की हुई नाना प्रकारकी युक्ति प्रयुक्तियों से उस जरारहित अग्निको वहीं रख लेते हैं, इससे उत्कंठापूर्वक सेवा करनेवाले उन ऋषिवर्योंके आकाशरूप सागरकी ओर दृष्टि डालते ही इन ऋषियोंके कारण मर्त्यजनोंके लिए सूर्य प्रकट हुआ। ४

चाहे जिस स्थलमें दर्शन करने योग्य यदि कोई है तो वह यही विभूति है। सब छोटेबडोंको दीर्घायु-प्राप्तिके लिए स्तवन करके इसीको प्रसन्न करना चाहिए; क्यों कि यह सर्वरक्षक महोदार सबको दर्शन देनेवाला अग्नि इन सब जीवोंका पिता है। ५ (१५)

सूक्त १४७.

॥ ऋषि—दीर्घतमा । देवता—अग्नि ॥

हे अग्निदेव, (पुण्यप्रभावसे) तेजःपुंज, और आपको परमात्मा मान कर अन्तःकरणसे आपका भजन करनेवाले भक्तजन यज्ञोंसे आपकी सेवा कैसे करते हैं, सो कृपा करके हमें बतलाइये; इससे (हमें) पुत्रपौत्र दोनों देनेवाले देव हमारे धर्माचरणसे संन्तुष्ट होंगे। १

अत्यन्त तरुण अग्निदेव, हे स्वतंत्र, यह मेरा स्तोत्र कृपा करके सुनिये, इसमें औदार्यका वर्णन किया गया है और इसकी पद्यरचना भी मनोहर है। चाहे कोई प्रशंसा करे, चाहे निन्दा करे, परन्तु हे अग्ने, मैं आपका सेवक सर्ववन्द्य देव आपके सामने अवश्यही नम्र होऊंगा। २

---

३ सुमेके धेनू समानं वत्सं अभिसंचरन्ती विचरतः । (किंच अस्य) अध्वनः अनपवृज्यान् मिमाने, (यतः) विश्वान् केतान् महः अधि दधाने ।

४ धीरासः कवयः, नानाहृदा अजुर्यम् (हृदि) रक्षमाणाः पदं नयन्ति । (अमुं) सिषासन्तश्च ते सिंधुं पर्यपश्यन्, (ततः) एभ्यः (कविभ्यः) नृन् सूर्यः आविः अभवत् ।

५ परि काष्ठासु दिदृक्षेण्यः (अयं) जेन्यः (अग्निः) महः अर्भाय जीवसे ईळेन्यश्च । यत् अह एभ्यः गर्भेभ्यः (अयं) पुरुत्रा मघवा विश्वदर्शतः सूः अभवत् ।

१ हे अग्ने (सुकृतेन) शुचयन्तः, ते आयोः आशुषाणाः (भक्ताः) त्वा वाजेभिः कथा ददाशुः (तत्कथय) यत् देवाः, उभे तोके तनये (अस्मासु) दधानाः ऋतस्य सामन् रणयन्त ।

२ हे यविष्ठ, स्वधावः (अग्ने) अस्य मे मंहिष्ठस्य प्रभृतस्य वचसः बोध । त्वः पीयति, त्वः अनु गृणाति, (परंतु) हे अग्ने ते वन्दारुः अहं (ते) तन्वं वंदे ।

आपके आज्ञाकारी सेवकोंने उस [illegible] अंधपुत्रको देखते ही [illegible] उसकी रक्षा की। हे परमबुद्धिमान् सर्वज्ञ भगवान्, उन भक्तोंकी (अपने इस रीतिसे) रक्षा की, इस लिए, मनमें नुकसान करनेकी इच्छा रखते हुए भी, शत्रु (उन भक्तजनों)का एक बाल भी नहीं टेढ़ा कर सके। ३

हे अग्ने, जो कोई नीच मनुष्य स्वयं तो भक्ति करताही नहीं; किन्तु (सज्जनोंको अवश्यही, दुख देना चाहता है, और कपट करके हमें धोखा देना चाहता है, ऐसे दुरात्माका दुष्ट विचार उलटे उसीके गले पड़ता है और उसके गालीगलौजसे स्वयं उसीका नाश होता है। ४

तथा हे परमप्रतापी अग्निदेव, आपका स्तवन सर्वत्र होता रहता है; अतएव जो मनुष्य जान बूझकर कपटसे दूसरेका नाश करना चाहे उसके पंजेसे आप अपने गुणसंकीर्तन करनेवाले भक्तोंका बचाव कीजिए और ऐसा न होने दीजिए कि हम पर अनर्थ आवे। ५(१६)

सूक्त १४८.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–अग्नि ॥

जो यज्ञका आचार्य, सब प्रकारके स्वरूप धारण करनेवाला, सब देवोंका मूर्तस्वरूप है उस अग्निको जब स्वाधीनचित्त मातरिश्वाने मंथन करके प्रकट किया तबसे देदीप्यमान सूर्यकी भांतिही एक अद्वितीय और तेजस्वी विभूतिके तौरपर इसकी भी मनुष्यलोकमें स्थापना हुई। १

जो सचमुच भक्तिभावसे (देवकी) प्रार्थना करता है उसकी हानि कोई भी नहीं कर सकता; अग्निको इस प्रकारकी प्रार्थना मनसे अच्छी लगती है, इसी कारण मेरा कवच बन कर वह मेरी रक्षा करता है। लोगोंको धर्मरत भक्तोंका सत्कर्म, सेवा, इत्यादि सब कुछ प्रिय ही होता है। २

---

३ हे अग्ने ते (तव) पायवः ये मामतेय अध पश्यंतः (त) दुरितात् अरक्षन्। हे सुकतो विश्ववेदाः तान् (भक्तान्) ररक्ष (अतः) रिपवः दिप्सन्तः इत् अपि न अह देभुः।

४ हे अग्ने, यः अघायुः (स्वय) अररिवान् अरातिवा च द्वयेन (नः) मर्चयति, (अस्य) सः मंत्रः पुनः अस्मै (एव) गुरुः अस्तु, सः च दुरुक्तैः तन्वम् अनु मृक्षीष्ट।

५ उतवा हे सहस्य अग्ने, यः (कोपि) मर्तः प्रविद्वान् मर्तं द्वयेन मर्चयति। अतः हे स्तवमान अग्ने, स्तुवन्तम् पाहि, नः दुरिताय माकिः धार्वीः।

१ यत् ईम् होतारं, विश्वाप्सु, विश्वदेव्यम् (अग्निम्) विशः मातरिश्वा मथीत्। (तत्) च स्वः (सूर्य) न चित्र विभावं (देवाः) मनुष्यासु विक्षु वपुषे दधुः।

२ मन्म ददानम् (कोपि) न इत् दभन्त, तस्य (मन्मन) चाकन् अग्निः मम वरूथम्। (लोकाः) अस्य भरमाणस्य उपस्तुतिम् कर्म विश्वानि जुषन्त।

पूज्य ऋषिजनोंको उनके शाश्वत स्थानमेंही अग्नि मिला, फिर बड़े गौरवसे उन्होंने उसकी (वेदीपर) स्थापना की। इसके बाद वे आदरसे उसे यज्ञमें ले गये। परन्तु रथमें जोते हुए अश्वोंकी तरह वे बड़े वेगसे गये। ३

अग्नि अघटित चमत्कार घटित करता है (परन्तु उसी प्रकार) सैंकड़ों पदार्थ अपनी डाढ़ोंके नीचे डालकर रगड़ भी डालता है। और लोगोंकी आंखें चकाचौंधमें डालकर सारा जंगल प्रज्वलित कर डालता है। ऐसी दशामें वायु भी, जैसे किसी धनुर्धरके द्वारा वेगसे छोड़े हुए बाणको सहाय्यभूत होता है, उसी प्रकार प्रतिदिन अग्निकी ज्वालाओंके अनुकूलही बहता रहता है। ४

अग्नि चाहे गर्भावस्थामें हो, तथापि उसे कोई भी शत्रु, कोई भी घातकी अथवा कोई भी अत्याचारी पातकी उपसर्ग नहीं दे सकता। उसके प्रकट होनेपर उसके जाज्वल्य तेजसे वे अंधे हो जाते हैं और उन्हें कुछ दीखही नहीं पड़ता, तब फिर वे उपद्रव कैसे कर सकते हैं? परन्तु निरन्तर उपासनानिष्ठ भक्तजन अवश्यही उसे (अन्तःकरणमें) रख रहते हैं। ५(१७)

सूक्त १४९.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–अग्नि ॥

यह देखिये, दिव्य सम्पत्तिका उदार अधिपति, राजाओंका भी राजा इस (पवित्र) निधिके स्थानकी ओर इधरही आ रहा है। अतएव अब उसका आगमन होता है, इसलिए- में ये सोमप्रस्तर उसकी सेवाके लिए तैयार हों। १

यह अग्नि इस (भूतलपरके) लोगोंका तथा अन्तराळके भुवनोंका अपनी कीर्तिसे भूरिबाके नातेसे प्रसिद्ध है। जिसकी किरणरूप सृष्टिका पान सम्पूर्ण जीव नित्य करते रहते हैं वही यह अग्नि आगे बढ़कर अपने आसनपर आरोहण करता है। २

---

३ यम् (अग्निम्) यज्ञियासः (भक्ताः) नित्ये चित् नु सदने जगृभ्रे, (ततः एनम्) प्रशस्तिभिः दधिरे ; (पश्चात्) रथ्यः अश्वासः न ररहाणाः त गृभयन्तः इष्टौ प्र सु नयन्त ।

४ (अयं) दस्मः पुरूणि जम्भैः निरिणाति, आत् विभावा वने आरोचते । आत् विभावा वने आरोचते आत् (इत्) वातः अनु द्यून् अस्य शोचिः अनु वाति, अस्तुः असनां शर्याम् न ।

५ यम् गर्भे सन्तम् अपि न रिपवः न रिषण्यवः (नापि) रेषणाः रेषयन्ति । ते (अस्य) अभिख्या अन्धाः अपश्याः (सन्तः) न दभन्, (परन्तु) नित्यासः प्रेतारः (स्वान्तः) ईम् अरक्षन् ।

१ (अयं) सः महः रायः पतिः दन् इनः इनस्य वसुनः पदे आ आ ईषते । ध्रजन्तम् (एतम्) अद्रयः उप विधन् इत् ।

२ सः (अयं) यः नरां न रोदस्योः श्रवोभिः वृषा, जीवपीतसर्गः च । यः प्र सस्राणः योनौ शिश्रीत ।

जिसने नार्मिणीके कोटवाले नगरपर उज्वल प्रकाश डाला वही यह महाज्ञानी (अग्नि), प्रकाश फैला डालनेवाला मानो चपल अश्वही और सूर्यकी तरह तेजःपुंज अग्नि, आत्मशक्तिसे सौ गुना भर रहा है। ३

दो स्थानोंमें प्रकट होनेवाला और तीनों दिव्य लोक तथा सब अन्तराल प्रकाशसे ओतप्रोत भर डालनेवाला यह अत्यन्त पूज्य आचार्य सरिताओंके वसतिस्थानमें वास करता रहता है। ४

वही यह अग्नि दोनों स्थानोंमें प्रकट होनेवाला यज्ञका आचार्य है। सत्य भक्तिसे प्रेरित होकर जो भक्त इसे हविर्भाग अर्पण करता है उसे यह अग्नि अत्युत्कृष्ट संपत्ति और जगद्विख्यात सत्कीर्तिका लाभ अवश्यही कर देता है। ५ (१८)

सूक्त १५०.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अग्नि ॥

हे अग्निदेव, मैं आपसे बहुत धन मांगता हूं। क्योंकि मैं आपका अनन्य भक्त हूं। आप सबसे बडे हैं। आप धर्मका प्रचार करनेवाले हैं। आपहीकी कृपासे मैं आनन्दमें रहता हूं। १

आप मुझपर कृपा कीजिये। जो नास्तिक मनुष्य यज्ञ नहीं करता है और जो ईश्वरकी भक्ति नहीं करता है उसका आप नाश कीजिये। वह बडा धनवान होनेपर भी आप उसकी पुकार मत सुनिये। उसकी ओर आप ध्यान मत दीजिये। २

हे ज्ञानवान अग्निदेव, जो मनुष्य आपका भक्त है वह सबको आनन्द दिलाता है। वह भी उन भक्तोंकी उन्नति होती है। हे अग्निदेव, हम भी आपके भक्त हैं। इस लिये हमारी भी आप उन्नति कीजिये। आप हमें सबसे श्रेष्ठ बनाइये। ३ (१९)

---

३ यः नार्मिणीनाम् पुरम् अदीदेत् (सः) कविः (अग्निः) नभन्यः अत्यः अर्वा न, सूरः न रुरुक्वान्, शतात्मा (भवति)।

४ (सः) द्विजन्मा त्री रोचनानि विश्वा रजांसि अभि शुशुचानः यजिष्ठः होता अपां सधस्थे अस्थात्।

५ अयं सः द्विजन्मा होता, यः मर्तः सुतुकः अस्मै ददाश, (तस्मै) विश्वा वार्याणि श्रवस्या च दधे।

१ हे अग्ने दाश्वान् (अहं) त्वा पुरु वोचे, (यतः) अरिः तव स्वित् शरणे आ (अस्मि, यथा) महस्य तोदस्य इव शरणे आ (भवामि)।

२ (प्रहोषे) अनिनस्य, धनिनः (सतः) अररुषः चित् अदेवयोः च वि प्रहोषे (अपि) कदा चन प्रजिगतः।

३ हे विप्र अग्ने सः (तव) मर्त्यः (भक्तः) चन्द्रः महः दिवि व्राधन्तमः च, (अतः) हे अग्ने (वयं) ते वनुषः (अपि) प्रप्र इत् स्याम।

सूक्त १५१.

॥ ऋषि—दीर्घतमा । देवता—मित्रावरुण ॥

(ईश्वरके) ध्यानमें मग्न हुए सज्जनोंने (ज्ञानरूपी) गोधनकी इच्छा करके यज्ञके समय मित्रकी तरह उपकार करनेवाले, परम प्रिय और परमपूज्य अग्निको आकाशके जलसे प्रकट किया। उस समय अग्निने बड़े जोरसे गर्जना की। उससे आकाश और पृथ्वी भी कम्पित हुई। वे सोचने लगे कि मनुष्यकी रक्षा किस तरह होगी। १

सोमयाग करनेवाले पुरुमिळ्हकी आज्ञाके अनुसार चलनेवाले ऋत्विजोंने बड़े प्रेमसे आपको हवि अर्पण किया है। इस लिये आपकी स्तुति करनेवाले भक्तोंको आप ज्ञान और काव्य करनेकी स्फूर्ती अर्पण कीजिये। हे पराक्रमी पुरुष, घरका स्वामी अथवा यजमानकी प्रार्थनाकी ओर भी आप ध्यान दीजिये। २

हे वीर पुरुष, आप अन्तरिक्षसे उत्पन्न होते हैं। उत्कृष्ट सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिये आपके भक्त बड़े प्रेमसे आपकी उत्पत्तिका वर्णन करते हैं। यथाविधि किये हुए यज्ञका जब आप प्रेमसे स्वीकार करते हैं तब आप अपने साथ लाया हुआ सामर्थ्य धर्मप्रचारके लिये उनको अर्पण करते हैं। ३

हे ईश्वररूपी मित्र और वरुण, जिन लोगोंपर आप कृपा करते हैं उनका वैभव बढ़ता है। हे धर्मकी रक्षा करनेवाले देव, हमारे यज्ञकी आप प्रशंसा कीजिये। जिस तरह रथके साथ हमेशा बैल जोते हुए रहते हैं उसी तरह आपकी कृपासे लोगोंको प्राप्त होनेवाले सामर्थ्यके साथ सत्कर्म हमेशा रहता है। ४

आप अपने प्रभावसे पृथ्वीकी सुन्दर सम्पत्तिका संग्रह करते हैं। इस लिये निष्कलंक और तेजस्वी (बुद्धिरूप) धेनुएँ अच्छी तरह रहती हैं। जिस दिन आकाश मेघोंसे आच्छादित रहता है उस दिन जिस तरह तकवी पक्षी सूर्यका दर्शन लेनेके लिये सबेरे और श्यामको मधुर आवाज करती हैं उसी तरह वे धेनुएँ भी सुन्दर (काव्य) ध्वनि अपने मुंहसे निकालती हैं। ५ (२०)

---

१ स्वाध्याः गोषु गव्यवः विदथे, यं प्रिय यजत अग्निम् मित्र न, शिम्या अप्सु अजीजनन्, (तस्य अग्नेः । पाजसा गिरा च रोदसी जनुषां अवःप्रति अरेजताम् ।

२ यत् ह सोमिनः पुरुमीळ्हस्य स्वाभुवः (ऋत्विजः) मित्रासः न वाम् त्वत् (हविः) प्रदधिरे, अध अर्चते क्रतुं गातुं च वित्तम्, उत हे वृषणा पस्त्यवतः श्रुतम् ।

३ हे वृषणा, महे दक्षसे, वां रोदस्योः प्रवाच्यं जन्म क्षितयः आ भूषन् । यत् होत्रया शिक्षया अध्वरं वीथः, ईम् (दक्षम्) ऋताय अर्चते भरथः ।

४ हे असुरा, या वां महि प्रिया सा क्षितिः प्र (कृष्टा भवति) । हे ऋतवानौ (नः) ऋतम् बृहत् आ घोषथः । यवम् बृहतः दिवः (ऊर्ध्व) आयुजम् दक्षं, अपः च, रथस्य धुरि गाम् न उपयुञ्जाथे ।

५ अत्र मही, महिना वारम् ऋण्वथः (तेन) अरेणवः तुजः धेनवः सद्मन् आ (तिष्ठन्ति.) ताः उपर-ताती आनिम्रुचः उषसः तक्वीः इव सूर्यम् स्वरन्ति ।

हे मित्र और वरुण, जिस यज्ञमें आप बड़े जोरसे गाते हैं उस यज्ञमें स्वर्गकी स्त्रीयां भी जिनके बाल बड़े मनोहर दिखाई देते हैं आपके यशका वर्णन करते हैं। आप अपने मनसे हमारी बुद्धिकी उन्नति कीजिये। मैं जैसे कवीकी बुद्धिको स्तुति करनेकी प्रेरणा करनेवाले आपही हैं। ६

जो मनुष्य आपकी स्तुति करके यज्ञके द्वारा आपको हवि अर्पण करता है और जो कवि और पुजारी बड़े ओजसे आपका स्तवन करता है और आपकी उपासना करता है उनके पास आप जाते हैं और बड़े प्रेमसे उनके यज्ञके हवियोंका आप स्वीकार करते हैं। हमपर कृपा करनेवाले हे मित्र और वरुण, हमारी प्रार्थना और सच्ची भक्तिकी ओर ध्यान देकर हमारी ओर आइये। ७

न्याय और नीतिका प्रचार करनेवाले मित्र और वरुण, यज्ञके लिये लाये हुए गोरससे हम नियमके अनुसार हृदयसे आपहीकी पूजा करते हैं। (भक्तजन) आपहीको अनन्य भक्तिसे स्तुतियां और प्रार्थनाएँ अर्पण करते हैं। आप भी दिव्य वैभव साथ लेकर उनको हृदयसे अर्पण करते हैं। ८

हे वीर पुरुष, आप बड़े जवान है। श्रेष्ठ और सबकी रक्षा करनेवाला सामर्थ्य भी ईश्वरकी कृपासे आपही हमें अर्पण करते हैं इस लिये आकाशरूपी समुद्र और पणि भी आपके दैवी सामर्थ्यकी बराबरी नहीं कर सकते। ९ (२१)

---

६ हे मित्र वरुण यत्र गातुम् अवथ, तत्र (यज्ञे) केशिनीः ऋताय वाम् आ अनूषत। (युवां) त्मना धियः अवसृजतम् पिन्वतम् च युवम् विप्रस्य मन्मनाम् इरज्यथः।

७ यः वां शशमानः ह यज्ञैः दाशति, यः कविः होता (च) मन्मसाधनः (वां) यजति। तम् उप गच्छथः अह, (तस्य) अध्वरं वीथः, (तत्) हे अस्मयू (अस्माकं) गिरः सुमतिं च गन्तम्।

८ हे ऋतावाना, यज्ञैः गोभिः मनसःप्रयुक्तिषु न युवाम् प्रथमा अञ्जते। (भक्ताश्च) संयता मन्मना वां गिरः भरन्ति, (युवां हि) अदृप्यता मनसा रेवत् (च) आशाथे।

९ हे नरा, रेवत् वयः दधाथे, रेवत्, इतऊति, (च) माहिनम् (ऐश्वर्यमपि युवां) मायया आशाथे। (अतः) न द्यावः न उत सिन्धवः नापि पणयः वाम् देवत्वम् मघं (वा) अहभिः न आनशुः।

सूक्त १५२.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–मित्रावरुण ॥

हे मित्र और वरुण, आप ऐसा वस्त्र पहिनते हैं जिससे सबदूर प्रकाशही फैलता है। आप अपने नियत कर्ममें और अपने कृत्यमें कभी भूल नहीं करते। किसीकी कपटनीति (चालबाजी) आपके सामने नहीं चलती। हे मित्र और वरुण, इसका कारण यह है कि आप हमेशा सत्य धर्मसेही चलते हैं। १

हे मित्र और वरुण, आपके कामके विषयमें विद्वान् लोक जो अनुमान करते हैं वह बिलकुल ठीक निकलता है। उसके लिये विद्वान् लोग आपकी स्तुति करते हैं। आप जो काम करते हैं वह बिलकुल उचित है। शत्रुका हथियार जब तीन जगह पलकी धारका होता है तब आपका हथियार चार जगह पलकी धारका होता है। इस तरह आप शत्रुका नाश करते हैं। उसी समय देवोंकी निन्दा करनेवाले लोगोंका नाश आपही आप होता है। २

यह बड़ी आश्चर्यकी बात है कि जिस स्त्रीको पैर नहीं होते वह पैरवाली स्त्रियोंके आगे चलती है। हे मित्र और वरुण, आपका उपर्युक्त महिमा कौन जान सकता है?। आपका स्वरूप छोटा होनेपर भी आप जगतका भार सहन करते हैं। आपका अवतार सत्यधर्मको बढ़ाता है और असत्य धर्मका नाश करता है। ३

सूर्य–जिसपर स्वर्गकी स्त्रियां प्रेम करती हैं–सदा हमें चलता हुआ दिखाई देता है। आराम लेता हुआ वह कभी दिखाई नहीं देता। उसके तेजोमयी वस्त्र सबदूर प्रकाश फैलाते हैं। मित्र और वरुणका प्रीतिका स्थान भी आप (सूर्य) ही हैं। ४

उदय होतेही बिना लगामके अश्वही तरह सूर्य बड़े गर्वसे अपनी आग्नी दिखाकर और गर्जना करके आकाशमें एकदम उछलने और कूदने लगता है। इस आश्चर्यके कारण सदा युवा अवस्थाका उपभोग लेनेवाले देव मित्र और वरुणके वैभवकी स्तुति करते हैं और वे देव ईश्वरके अलक्ष्य गुणोंका वर्णन करते हैं और उसीमें मग्न हो जाते हैं। ५

---

१ युवम् पीवसा वस्त्राणि वसाथे, युवोः, मन्तवः, सर्गाश्च अच्छिद्राः । (युवाम्) विश्वा अनृतानि अव अतिरतम्, (यतः) हे मित्रावरुणा (युवाम्) ऋतेन सचेथे ।

२ एतत् चन त्वः वि चिकेतत् (यत्) एषाम् मन्त्रः (यः) कविशस्तः, सः सत्यः ऋघावान् च । (स पुनः) उग्रः चतुरश्रिः (भूत्वा) त्रिरश्रिम् हन्ति । (तदानीम्) देवनिदः ह प्रथमाः अजूर्यन् ।

३ अपात् पद्वतीनां (मध्ये) प्रथमा एति, हे मित्रा वरुणा वां तत् (कर्म) कः आ चिकेत । गर्भः अस्य चित् भारं आ भरति, ऋतं पिपर्ति, अनृतं नितारीत् ।

४ कनीनां जारं प्रयन्तमित् परिपश्यामसि न (तु) उपनिपद्यमानम् । (अपि च) अनवपृग्णा वितता (वस्त्राणि) वसानम्, मित्रस्य वरुणस्य च प्रियं धाम (पश्यामसि) ।

५ अर्वा जातः (सन्) अनश्वः अनभीशुः (तथापि) कनिक्रदत् पतयत् ऊर्ध्वसानुः (भवति) । (अतः हेतोः) युवानः (देवाः) मित्रेच वरुणेच धाम प्रगृणन्तः अचित्तम् ब्रह्म जुजुषुः ।

जिन धेनुओंने मेरी—मैं जो ममताका पुत्र हूं—रक्षा की उन्होंने मुझे—जो मैं उनकी उपासना करनेवाला भक्त—हूं अपना दूध पिलाकर हृष्टपुष्ट बनाया है। सब प्रकारकी विद्याओंको पढ़कर (दिव्यज्ञान) प्राप्त करनेके लिये मैं उनसे प्रार्थना करता हूं। उसके अनन्तर ईश्वरपर सब भरोसा रखकर दुःखसे मुक्त होनेकी इच्छा मैं करूंगा। ६

हे देव, हे मित्र और वरुण, मैंने अर्पण किये हुए हविर्योंका आप स्वीकार कीजिये। मैं आपकी सेवा करनेवाला भक्त हूं। इस लिये मेरी ओर आप ध्यान दीजिये। युद्धमें हमारी प्रार्थना सफल होवे, हमें दिव्य ज्ञान प्राप्त होवे और आपकी कृपासे हमारा कल्याण होवे। ७ (२२)

सूक्त १५३.

॥ ऋषि—दीर्घतमा । देवता—मित्रावरुण ॥

हे मित्र और वरुण, आप सामर्थ्यवान् हैं। हम सब लोग एकत्रित होकर प्रेमसे आपको हवि अर्पण करते हैं। हम नम्रतासे आपकी प्रार्थना करके आपकी सेवा करते हैं। हे स्वर्गके घीकी वर्षा करनेवाले देव; हमारे अध्वर्यु घीकी आहुतिकी तरह योग्य स्तोत्रोंसे आपको सन्तुष्ट करते हैं। १

आपकी अच्छी तरहसे स्तुति करनेसे और आपका ध्यान करनेसे दोनोंसे सामर्थ्य प्राप्त होता है। हे मित्र और वरुण, इस लिये मैं आपको एक सुन्दर स्तोत्र अर्पण करता हूं जब धर्ममन्दिरमें यज्ञका आचार्य आपका भजन करता है तब, हे वीर पुरुष, आपसे वह महात्मा (आचार्य) सबे आनन्दके लाभकी इच्छा करता है। २

हे मित्र और वरुण, यज्ञके सभामन्दिरमें आचार्य भी साधारण मनुष्यकी तरह आपको हवि अर्पण करके आपकी पूजा करता है। वह अपने हृदयको भी आपकी सेवामें लगाता है। उस समय मनकी शक्तिस्वरूप धेनु सत्यधर्म बढ़ानेके लिये और हवियोंको देनेवाले भक्तलोगोंके लिये दिव्य दूधसे भरी हुई, बड़ी मस्त रहती है। ३

---

६ (याः) धेनवः (मां) मामतेय अवन्तीः (ताः) मह्य (तारयन्त मां) अस्मद्धितं सस्मिन् ऊधः पीपयन्। वयुनानि विद्वान् पित्वः भिक्षेत अदितम् अस्मा आविवासन् उरुष्यन्।

७ हे देवौ मित्रावरुणौ नमसा अवस्या च वां हव्यजुष्टिं (प्रति) आ वहत्याम्। अस्माकं ब्रह्म पृतनासु सह्या। दिव्या वृष्टिः अस्माकं सुपारा (भवतु)।

१ हे मित्रावरुणा (वयं) सजोषाः हव्येभिः नमोभिः वां महः यजामहे। हे घृतस्नू, अध यत् अध्वर्यवः घृतैः न धीतिभिः वाम् भरन्ति।

२ प्रस्तुतिः वाम् प्रयुक्तिः न धाम (अतः) हे मित्रावरुणा (मया) सुवृक्तिः अयामि। यत् होता विदथेषु वाम् अनक्ति, (तदा) हे वृषणौ सः सूरिः वाम् सुम्नम् इयक्षन् (वर्तते)।

३ हे मित्रावरुणा यत् विदथे सः होता मानुषः न रातहव्यः सपर्यन् च (स्वांतः) वाम् हिनोति। (तदा) अदितिः धेनुः ऋताय, हविर्दे जनाय च पीपाय।

जब आपके भक्त आपके आनन्दमें मग्न होते हैं तब सोमरस, दिव्य धेनु, और स्वर्गोंका जल आपको यथेष्ठ रूपसे प्राप्त होते हैं। यदि इसी तरह सनातन भगवान् हमें हमेशा आनन्द देवे तो आप भी मित्र और वरुण, आईये और प्रकाशरूप धेनुके मधुर दूधका आस्वाद लीजिये। ४ (२३)

सूक्त १५४.

॥ ऋषि–दीर्घतमा । देवता–विष्णु ॥

हम पूर्ण रीतिसे विष्णुके पराक्रमोंका वर्णन नहीं कर सकते। क्यों कि वे बहुत हैं। विष्णुने सब जगत् व्याप्त किया है। इतनाही नहीं किन्तु देवलोग भी–जो सबसे ऊंचा है आपके बलके आधार पर ही रहता है। भिन्न भिन्न जगह तीन पैर रखकर आपने सब विश्व व्याप्त किया है। १

विष्णुके पराक्रमोंके कारण ही सब लोग उनकी स्तुति करते है। घोर वनमें सञ्चार करने-वाले और गुहामें रहनेवाले सिंहकी नाई विष्णुके (सब दिव्य देवताओंमें) बड़े पराक्रमी है। देखिये; उनके केवल तीन पैरोंने विश्वके सब भुवनोंको व्याप्त किया है। २

कार्य करनेको उत्साह दिलानेवाली हमारी सुन्दर स्तुतिको विष्णु सुने। हमारी स्तुतिको, आप प्रेमसे स्वीकार करते हैं। सब लोग आपका यश गाते हैं। आप बड़े वीर हैं। आप अकेले केवल तीन पैरोंसे इतने बड़े विश्वको व्याप्त करते हैं। ३

आप तीन जगह रहते हैं। हरएक जगह मधुर रस भरा हुआ है। तीनों स्थान अक्षय्य हैं। हरएक स्थानमें आपके भक्त बड़े आनन्दमें मग्न रहते हैं। आप स्वयं ऐसे है कि त्रिगुणात्मक विश्वको–पृथ्वी, आकाश और अन्य अन्य भुवनोंको आप अकेले संम्हाल सकते हैं। ४

---

४ उत वां मद्यासु विक्षु, अन्धः गावः आपः देवीः च पीपयन्त । उत न (अस्य) अस्य (भुवनस्य) पूर्व्यः पतिः दन् (भवतु, अतः) उस्रियायाः पयसः वीतम् पातम् ।

१ नु कम् विष्णोः वीर्याणि प्र वोचम्, यः (विष्णुः) पार्थिवानि रजांसि विममे । यः त्रेधा विचक्रमाणः उरुगायः (सन्) उत्तरं सधस्थं अस्कभायत् ।

२ (सः) विष्णुः तत् वीर्येण प्र स्तवते, कुचरः गिरिष्ठाः मृगः न भीमः । यस्य त्रिषु उरुषु विक्रमणेषु विश्वा भुवनानि अधि क्षियन्ति ।

३ (एतत्) शूषं मन्म गिरिक्षिते उरुगायाय वृष्णे विष्णवे प्रैतु । यः इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थं एकः (सन्नपि) त्रिभिः पदेभिः इत् विममे ।

४ यस्य त्री पदानि मधुना पूर्णा, अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति । यः उ त्रिधातु पृथिवीम् उत द्याम् विश्वा भुवनानि च एकः दाधार ।

Printed at Vaidya Brothers' Press, Thakurdwar, Bombay No. 2 & published at Shrutibodh Office 47 Kalbadevi Road, Bombay, by Gajanan Bhaskar Vaidya

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥ ५ ॥
ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥ ६ ॥ २४ ॥

॥ १५५ ॥ ऋषिः–दीर्घतमाः । देवता–विष्णुः । छन्दः–जगती ॥

॥१५५॥ प्र वः पान्तमन्धसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चत ।
या सानुनि पर्वतानामदाभ्या महस्तस्थतुरर्वतेव साधुना ॥ १ ॥
त्वेषमित्था समरणं शिमीवतोरिन्द्राविष्णू सुतपा वामुरुष्यति ।
या मर्त्याय प्रतिधीयमानमित्कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यथः ॥ २ ॥
ता ईं वर्धन्ति मह्यस्य पौंस्यं नि मातरा नयति रेतसे भुजे ।
दधाति पुत्रोऽवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधि रोचने दिवः ॥ ३ ॥

तत् । अस्य । प्रियं । अभि । पाथः । अश्यां । नरः । यत्र । देवऽयवः । मदंति । उरुऽक्रमस्य । सः । हि । बंधुः । इत्था । विष्णोः । पदे । परमे । मध्वः । उत्सः ॥५॥ ता । वां । वास्तूनि । उश्मसि । गमध्यै । यत्र । गावः । भूरिऽशृंगाः । अयासः । अत्र । अह । तत् । उरुऽगायस्य । वृष्णः । परमं । पदं । अव । भाति । भूरि ॥६॥२४॥

प्र । वः । पांतं । अंधसः । धियाऽयते । महे । शूराय । विष्णवे । च । अर्चत । या । सानुनि । पर्वतानां । अदाभ्या । महः । तस्थतुः । अर्वताऽइव । साधुना ॥ १ ॥ त्वेषं । इत्था । संऽअरणं । शिमीऽवतोः । इंद्राविष्णू इति । सुतऽपाः । वां । उरुष्यति । या । मर्त्याय । प्रतिऽधीयमानं । इत् । कृशानोः । अस्तुः । असनां । उरुष्यथः ॥ २ ॥ ताः । ईं । वर्धंति । महि । अस्य । पौंस्यं । नि । मातरा । नयति । रेतसे । भुजे । दधाति । पुत्रः । अवरं । परं । पितुः । नाम । तृतीयं । अधि । रोचने । दिवः ॥ ३ ॥

तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसीनस्य त्रातुरवृकस्य मीळ्हुषः ।
यः पार्थिवानि त्रिभिरिद्विगामभिरुरु क्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥ ४ ॥
द्वे इदस्य क्रमणे स्वर्दृशोऽभिख्याय मर्त्यो भुरण्यति ।
तृतीयमस्य नकिरा दधर्षति वयश्चन पतयन्तः पतत्रिणः ॥ ५ ॥
चतुर्भिः साकं नवतिं च नामभिश्चक्रं न वृत्तं व्यतीँरवीविपत् ।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋक्वभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम् ॥ ६ ॥ २५ ॥

॥ १५६ ॥ ऋषिः दीर्घतमाः । देवता विष्णुः । छन्दः जगती ॥

॥१५६॥ भवा मित्रो न शेव्यो घृतासुतिर्विभूतद्युम्न एवया उ सप्रथाः ।
अधा ते विष्णो विदुषा चिदर्ध्यः स्तोमो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १ ॥
यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।
यो जातमस्य महतो महि ब्रवत्सेदु श्रवोभिर्युज्यं चिदभ्यसत् ॥ २ ॥

तत्ऽतत् । इत् । अस्य । पौंस्यं । गृणीमसि । इनस्य । त्रातुः । अवृकस्य । मीळ्हुषः । यः । पार्थिवानि । त्रिऽभिः । इत् । विगामऽभिः । उरु । क्रमिष्ट । उरुऽगायाय । जीवसे ॥ ४ ॥ द्वे इति । इत् । अस्य । क्रमणे इति । स्वःऽदृशः । अभिऽख्याय । मर्त्यः । भुरण्यति । तृतीयं । अस्य । नकिः । आ । दधर्षति । वयः । चन । पतयन्तः । पतत्रिणः ॥ ५ ॥ चतुःऽभिः । साकं । नवतिं । च । नामऽभिः । चक्रं । न । वृत्तं । व्यतीन् । अवीविपत् । बृहत्ऽशरीरः । विऽमिमानः । ऋक्वऽभिः । युवा । अकुमारः । प्रति । एति । आऽहवं ॥ ६ ॥ २५ ॥

भव । मित्रः । न । शेव्यः । घृतऽआसुतिः । विभूतऽद्युम्नः । एवऽयाः । ऊं इति । सऽप्रथाः । अध । ते । विष्णो इति । विदुषा । चित् । अर्ध्यः । स्तोमः । यज्ञः । च । राध्यः । हविष्मता ॥ १ ॥ यः । पूर्व्याय । वेधसे । नवीयसे । सुमत्ऽजानये । विष्णवे । ददाशति । यः । जातं । अस्य । महतः । महि । ब्रवत् । सः । इत् । ऊं इति । श्रवःऽभिः । युज्यं । चित् । अभि । असत् ॥ २ ॥

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथा विद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन ।
आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥
तमस्य राजा वरुणस्तमश्विना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।
दाधार दक्षमुत्तममहर्विदं व्रजं च विष्णुः सखिवाँ अपोर्णुते ॥ ४ ॥
आ यो विवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृत्तरः ।
वेधा अजिन्वत्त्रिषधस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥५॥२६॥२१॥

॥ द्वाविंशोऽनुवाकः ॥

॥ १५७ ॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-अश्विनौ । छन्दः त्रिष्टुप ॥

॥१५७॥ अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद्देवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥

तं । ऊं इति । स्तोतारः । पूर्व्यं । यथा । विद । ऋतस्य । गर्भं । जनुषा । पिपर्तन । आ । अस्य । जानंतः । नाम । चित् । विवक्तन । महः । ते । विष्णो इति । सुऽमतिं । भजामहे ॥ ३ ॥ तं । अस्य । राजा । वरुणः । तं । अश्विना । क्रतुं । सचंत । मारुतस्य । वेधसः । दाधार । दक्षं । उत्ऽतमं । अहःऽविदं । व्रजं । च । विष्णुः । सखिऽवान् । अपऽऊर्णुते ॥ ४ ॥ आ । यः । विवाय । सचथाय । दैव्यः । इंद्राय । विष्णुः । सुऽकृते । सुकृत्ऽतरः । वेधाः । अजिन्वत् । त्रिऽसधस्थः । आर्यं । ऋतस्य । भागे । यजमानं । आ । अभजत् ॥ ५ ॥ २६ ॥ २१ ॥

अबोधि । अग्निः । ज्मः । उत् । एति । सूर्यः । वि । उषाः । चंद्रा । मही । आवः । अर्चिषा । अयुक्षातां । अश्विना । यातवे । रथं । प्र । असावीत् । देवः । सविता । जगत् । पृथक् ॥ १ ॥

यद्युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् ।
अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥
अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।
त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद्द्विपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ४ ॥
युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतींरश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥
युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या३राथ्येभिः ।
अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥ ६ ॥ २७ ॥ २ ॥

यत् । युंजाथे इति । वृषणं । अश्विना । रथं । घृतेन । नः । मधुना । क्षत्रं । उक्षतं । अस्माकं । ब्रह्म । पृतनासु । जिन्वतं । वयं । धना । शूरऽसाता । भजेमहि ॥ २ ॥ अर्वाङ् । त्रिऽचक्रः । मधुऽवाहनः । रथः । जीरऽअश्वः । अश्विनोः । यातु । सुऽस्तुतः । त्रिऽवंधुरः । मघऽवा । विश्वऽसौभगः । शं । नः । आ । वक्षत् । द्विऽपदे । चतुःऽपदे ॥ ३ ॥ आ । नः । ऊर्जं । वहतं । अश्विना । युवं । मधुऽमत्या । नः । कशया । मिमिक्षतं । प्र । आयुः । तारिष्टं । निः । रपांसि । मृक्षतं । सेधतं । द्वेषः । भवतं । सचाऽभुवा ॥ ४ ॥ युवं । ह । गर्भं । जगतीषु । धत्थः । युवं । विश्वेषु । भुवनेषु । अंतरिति । युवं । अग्निं । च । वृषणौ । अपः । च । वनस्पतीन् । अश्विना । ऐरयेथां ॥ ५ ॥ युवं । ह । स्थः । भिषजा । भेषजेभिः । अथो इति । ह । स्थः । रथ्या । रथ्येभिरितिरथ्येभिः । अथो इति । ह । क्षत्रं । अधि । धत्थः । उग्रा । यः । वां । हविष्मान् । मनसा । ददाश ॥ ६ ॥ २७ ॥ २ ॥

॥ द्वितीयाष्टके द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

॥ अथ द्वितीयाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

॥ १५८ ॥ ऋषिः—दीर्घतमाः । देवता—अश्विनौ । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥१५८॥ वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावभिष्टौ ।
दस्रा ह यद्रेक्णं औचथ्यो वां प्र यत्सस्राथे अकवाभिरूती ॥ १ ॥
को वां दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेथे नमसा पदे गोः ।
जिगृतमस्मे रेवतीः पुरंधीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥ २ ॥
युक्तो ह यद्वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः ।
उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥ ३ ॥
उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद्वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥ ४ ॥

वसू इति । रुद्रा । पुरुमंतू इति पुरुऽमंतू । वृधंता । दशस्यतं । नः । वृषणौ । अभिष्टौ । दस्रा । ह । यत् । रेक्णः । औचथ्यः । वां । प्र । यत् । सस्राथे इति । अकवाभिः । ऊती ॥ १ ॥ कः । वां । दाशत् । सुऽमतये । चित् । अस्यै । वसू इति । यत् । धेथे इति । नमसा । पदे । गोः । जिगृतं । अस्मे इति । रेवतीः । पुरंऽधीः । कामप्रेणऽइव । मनसा । चरंता ॥ २ ॥ युक्तः । ह । यत् । वां । तौग्र्याय । पेरुः । वि । मध्ये । अर्णसः । धायि । पज्रः । उप । वां । अवः । शरणं । गमेयं । शूरः । न । अज्म । पतयत्ऽभिः । एवैः ॥ ३ ॥ उपऽस्तुतिः । औचथ्यं । उरुष्येत् । मा । मां । इमे इति । पतत्रिणी इति । वि । दुग्धां । मा । मां । एधः । दशऽतयः । चितः । धाक् । प्र । यत् । वां । बद्धः । त्मनि । खादति । क्षां ॥ ४ ॥

न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत्स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥ ५ ॥
दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान्दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ १५९ ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-द्यावापृथिव्यौ । छन्दः जगती ॥

॥१५९॥ प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी ऋतावृधा मही स्तुषे विदथेषु प्रचेतसा ।
देवेभिर्ये देवपुत्रे सुदंससेत्था धिया वार्याणि प्रभूषतः ॥ १ ॥
उत मन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुर्महि स्वतवस्तद्धवीमभिः ।
सुरेतसा पितरा भूम चक्रतुरुरु प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥ २ ॥
ते सूनवः स्वपसः सुदंससो मही जज्ञुर्मातरा पूर्वचित्तये ।
स्थातुश्च सत्यं जगतश्च धर्मणि पुत्रस्य पाथः पदमद्वयाविनः ॥ ३ ॥

न । मा । गरन् । नद्यः । मातृऽतमाः । दासाः । यत् । ईं । सुऽसमुब्धं । अवऽअधुः । शिरः । यत् । अस्य । त्रैतनः । विऽतक्षत् । स्वयं । दासः । उरः । अंसौ । अपि । ग्धेति ग्ध ॥ ५ ॥ दीर्घऽतमाः । मामतेयः । जुजुर्वान् । दशमे । युगे । अपां । अर्थं । यतीनां । ब्रह्मा । भवति । सारथिः ॥ ६ ॥ १ ॥

प्र । द्यावा । यज्ञैः । पृथिवी इति । ऋतऽवृधा । मही इति । स्तुषे । विदथेषु । प्रऽचेतसा । देवेभिः । ये इति । देवपुत्रे इति देवऽपुत्रे । सुऽदंससा । इत्था । धिया । वार्याणि । प्रऽभूषतः ॥ १ ॥ उत । मन्ये । पितुः । अद्रुहः । मनः । मातुः । महि । स्वऽतवः । तत् । हवीमऽभिः । सुऽरेतसा । पितरा । भूम । चक्रतुः । उरु । प्रऽजायाः । अमृतं । वरीमऽभिः ॥ २ ॥ ते । सूनवः । सुऽअपसः । सुऽदंससः । मही इति । जज्ञुः । मातरा । पूर्वऽचित्तये । स्थातुः । च । सत्यं । जगतः । च । धर्मणि । पुत्रस्य । पाथः । पदं । अद्वयाविनः ॥ ३ ॥

ते मायिनो ममिरे सुप्रचेतसो जामी सयोनी मिथुना समोकसा ।
नव्यंनव्यं तन्तुमा तन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥ ४ ॥
तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।
अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥ ५ ॥ २ ॥

॥ १६० ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-द्यावापृथिव्यौ । छन्दः-जगती ॥

॥१६०॥ ते हि द्यावापृथिवी विश्वशम्भुव ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।
सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥ १ ॥
उरुव्यचसा महिनी असश्चता पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।
सुधृष्टमे वपुष्ये३न रोदसी पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥ २ ॥
स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।
धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य धुक्षत ॥ ३ ॥

ते । मायिनः । ममिरे । सुऽप्रचेतसः । जामी इति । सयोनी इति सऽयोनी । मिथुना । संऽओकसा । नव्यंऽनव्यं । तंतुं । आ । तन्वते । दिवि । समुद्रे । अंतरिति । कवयः । सुऽदीतयः ॥ ४ ॥ तत् । राधः । अद्य । सवितुः । वरेण्यं । वयं । देवस्य । प्रऽसवे । मनामहे । अस्मभ्यं । द्यावापृथिवी इति । सुऽचेतुना । रयिं । धत्तं । वसुऽमंतं । शतऽग्विनं ॥ ५ ॥ २ ॥

ते इति । हि । द्यावापृथिवी इति । विश्वऽशंभुवा । ऋतवरी इत्यृतऽवरी । रजसः । धारयत्कवी इति धारयत्ऽकवी । सुजन्मनी इति सुऽजन्मनी । धिषणे इति । अंतः । ईयते । देवः । देवी इति । धर्मणा । सूर्यः । शुचिः ॥ १ ॥ उरुऽव्यचसा । महिनी इति । असश्चता । पिता । माता । च । भुवनानि । रक्षतः । सुधृष्टमे इति सुऽधृष्टमे । वपुष्ये३ इति । न । रोदसी इति । पिता । यत् । सीं । अभि । रूपैः । अवासयत् ॥ २ ॥ सः । वह्निः । पुत्रः । पित्रोः । पवित्रऽवान् । पुनाति । धीरः । भुवनानि । मायया । धेनुं । च । पृश्निं । वृषभं । सुऽरेतसं । विश्वाहा । शुक्रं । पयः । अस्य । धुक्षत ॥ ३ ॥

अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुवा ।
वि यो ममे रजसी सुक्रतूययाजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥ ४ ॥
ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।
येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥ ३ ॥

॥ १६१ ॥ ऋषिः–दीर्घतमाः । देवता–ऋभवः । छन्दः–जगती ॥

॥१६१॥ किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठो न आजगन्किमीयते दूत्यं१कद्यदूचिम ।
न निन्दिम चमसं यो महाकुलोऽग्ने भ्रातर्द्रुण इद्भूतिमूदिम ॥ १ ॥
एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम् ।
सौधन्वना यद्येवा करिष्यथ साकं देवैर्यज्ञियासो भविष्यथ ॥ २ ॥
अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः ।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥ ३ ॥

अयं । देवानां । अपसां । अपःऽतमः । यः । जजान । रोदसी इति । विश्वशम्ऽभुवा ।
वि । यः । ममे । रजसी इति । सुक्रतुऽयया । अजरेभिः । स्कंभनेभिः । सं ।
आनृचे ॥ ४ ॥ ते इति । नः । गृणाने इति । महिनी इति । महि । श्रवः । क्षत्रं ।
द्यावापृथिवी इति । धासथः । बृहत् । येन । अभि । कृष्टीः । ततनाम । विश्वहा ।
पनाय्यं । ओजः । अस्मे इति । सं । इन्वतं ॥ ५ ॥ ३ ॥

किं । ऊं इति । श्रेष्ठः । किं । यविष्ठः । नः । आ । अजगन् । किं । ईयते ।
दूत्यं । कत् । यत् । ऊचिम । न । निन्दिम । चमसं । यः । महाऽकुलः । अग्ने ।
भ्रातः । द्रुणः । इत् । भूतिं । ऊदिम ॥ १ ॥ एकं । चमसं । चतुरः । कृणोतन ।
तत् । वः । देवाः । अब्रुवन् । तत् । वः । आ । अगमं । सौधन्वनाः । यदि । एव ।
करिष्यथ । साकं । देवैः । यज्ञियासः । भविष्यथ ॥ २ ॥ अग्निं । दूतं । प्रति ।
यत् । अब्रवीतन । अश्वः । कर्त्वः । रथः । उत । इह । कर्त्वः । धेनुः । कर्त्वा ।
युवशा । कर्त्वा । द्वा । तानि । भ्रातः । अनु । वः । कृत्वी । आ । इमसि ॥ ३ ॥

चकृवांस ऋभवस्तदपृच्छत क्वेदभूद्यः स्य दूतो न आजगन् ।
यदावाख्यच्चमसाञ्चतुरः कृतानादित्त्वष्टा ग्नास्वन्तर्न्यानजे ॥ ४ ॥
हनामैनाँ इति त्वष्टा यदब्रवीच्चमसं ये देवपानमनिन्दिषुः ।
अन्या नामानि कृण्वते सुते सचाँ अन्यैरेनान्कन्या३ नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥ ४ ॥
इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपामुपाजत ।
ऋभुर्विभ्वा वाजो देवाँ अगच्छत स्वपसो यज्ञियं भागमैतन ॥ ६ ॥
निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥ ७ ॥
इदमुदकं पिबतेत्यब्रवीतनेदं वा घा पिबता मुञ्जनेजनम् ।
सौधन्वना यदि तन्नेव हर्यथ तृतीये घा सवने मादयाध्वै ॥ ८ ॥

चकृऽवांसः । ऋभवः । तत् । अपृच्छत । क्व । इत् । अभूत् । यः । स्यः । दूतः । नः । आ । अजगन् । यदा । अवऽअख्यत् । चमसान् । चतुरः । कृतान् । आत् । इत् । त्वष्टा । ग्नासु । अन्तरिति । नि । आनजे ॥ ४ ॥ हनाम । एनान् । इति । त्वष्टा । यत् । अब्रवीत् । चमसं । ये । देवऽपानं । अनिन्दिषुः । अन्या । नामानि । कृण्वते । सुते । सचा । अन्यैः । एनान् । कन्या । नामऽभिः । स्परत् ॥ ५ ॥ ४ ॥ इन्द्रः । हरी इति । युयुजे । अश्विना । रथं । बृहस्पतिः । विश्वऽरूपां । उप । आजत । ऋभुः । विऽभ्वा । वाजः । देवान् । अगच्छत । सुऽअपसः । यज्ञियं । भागं । ऐतन ॥ ६ ॥ निः । चर्मणः । गां । अरिणीत । धीतिऽभिः । या । जरन्ता । युवशा । ता । अकृणोतन । सौधन्वनाः । अश्वात् । अश्वं । अतक्षत । युक्त्वा । रथं । उप । देवान् । अयातन ॥ ७ ॥ इदं । उदकं । पिबत । इति । अब्रवीतन । इदं । वा । घ । पिबत । मुंजऽनेजनं । सौधन्वनाः । यदि । तत् । नऽइव । हर्यथ । तृतीये । घ । सवने । मादयाध्वै ॥ ८ ॥

आपो भूयिष्ठा इत्येको अब्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अब्रवीत् ।
वधर्यन्तीं बहुभ्यः प्रैको अब्रवीदृता वदन्तश्चमसाँ अपिंशत ॥ ९ ॥
श्रोणामेक उदकं गामवाजति मांसमेकः पिंशति सूनयाभृतम् ।
आ निम्रुचः शकृदेको अपाभरत्किं स्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥१०॥८॥
उद्वत्स्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वपस्यया नरः ।
अगोह्यस्य यदसस्तना गृहे तदद्येदमृभवो नानु गच्छथ ॥ ११ ॥
सम्मील्य यद्भुवना पर्यसर्पत क्व । स्वित्तात्या पितरा व आसतुः ।
अशपत यः करस्नं व आददे यः प्राब्रवीत्प्रो तस्मा अब्रवीतन ॥ १२ ॥
सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत् ।
श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्या व्यख्यत ॥ १३ ॥

आपः । भूयिष्ठाः । इति । एकः । अब्रवीत् । अग्निः । भूयिष्ठः । इति । अन्यः । अब्रवीत् । वधःऽयन्तीम् । बहुऽभ्यः । प्र । एकः । अब्रवीत् । ऋता । वदन्तः । चमसान् । अपिंशत ॥ ९ ॥ श्रोणाम् । एकः । उदकम् । गाम् । अव । अजति । मांसम् । एकः । पिंशति । सूनया । आऽभृतम् । आ । निऽम्रुचः । शकृत् । एकः । अप । अभरत् । किम् । स्वित् । पुत्रेभ्यः । पितरा । उप । आवतुः ॥ १० ॥ ८ ॥ उद्वत्ऽसु । अस्मै । अकृणोतन । तृणम् । निवत्ऽसु । अपः । सुऽअपस्यया । नरः । अगोह्यस्य । यत् । असस्तन । गृहे । तत् । अद्य । इदम् । ऋभवः । न । अनु । गच्छथ ॥ ११ ॥ सम्ऽमील्य । यत् । भुवना । परिऽअसर्पत । क्व । स्वित् । तात्या । पितरा । वः । आसतुः । अशपत । यः । करस्नम् । वः । आऽददे । यः । प्र । अब्रवीत् । प्रो इति । तस्मै । अब्रवीतन ॥ १२ ॥ सुसुप्वांसः । ऋभवः । तत् । अपृच्छत । अगोह्य । कः । इदम् । नः । अबूबुधत् । श्वानम् । बस्तः । बोधयितारम् । अब्रवीत् । संवत्सरे । इदम् । अद्य । वि । अख्यत ॥ १३ ॥

दिवा यान्ति मरुतो भूम्याग्निरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।
अद्भिर्याति वरुणः समुद्रैर्युष्माँ इच्छन्तः शवसो नपातः ॥ १४ ॥ ६ ॥

॥ १६२ ॥ ऋषिः—दीर्घतमाः । देवता—अश्वस्तुतिः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥१६२॥ मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परि ख्यन् ।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तेः प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि ॥ १ ॥
यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य रातिं गृभीतां मुखतो नयन्ति ।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्णोः प्रियमप्येति पाथः ॥ २ ॥
एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।
अभिप्रियं यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥ ३ ॥
यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥ ४ ॥

दिवा । यान्ति । मरुतः । भूम्या । अग्निः । अयं । वातः । अन्तरिक्षेण । याति । अत्ऽभिः । याति । वरुणः । समुद्रैः । युष्मान् । इच्छन्तः । शवसः । नपातः ॥१४॥६

मा । नः । मित्रः । वरुणः । अर्यमा । आयुः । इन्द्रः । ऋभुक्षाः । मरुतः । परि । ख्यन् । यत् । वाजिनः । देवऽजातस्य । सप्तेः । प्रऽवक्ष्यामः । विदथे । वीर्याणि ॥ १ ॥ यत् । निःऽनिजा । रेक्णसा । प्रावृतस्य । रातिं । गृभीतां । मुखतः । नयन्ति । सुऽप्राङ् । अजः । मेम्यत् । विश्वऽरूपः । इन्द्रापूष्णोः । प्रियं । अपि । एति । पाथः ॥ २ ॥ एषः । छागः । पुरः । अश्वेन । वाजिना । पूष्णः । भागः । नीयते । विश्वऽदेव्यः । अभिऽप्रियं । यत् । पुरोळाशं । अर्वता । त्वष्टा । इत् । एनं । सौश्रवसाय । जिन्वति ॥३॥ यत् । हविष्यं । ऋतुऽशः । देवऽयानं । त्रिः । मानुषाः । परि । अश्वं । नयन्ति । अत्र । पूष्णः । प्रथमः । भागः । एति । यज्ञं । देवेभ्यः । प्रतिऽवेदयन् । अजः ॥ ४ ॥

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शंस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरंकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ ५ ॥ ७ ॥
यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचनं सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ ६ ॥
उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः ।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥ ७ ॥
यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणं सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ८ ॥
यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ९ ॥

होता । अध्वर्युः । आऽवयाः । अग्निम्ऽइन्धः । ग्रावऽग्राभः । उत । शंस्ता । सुऽविप्रः ।
तेन । यज्ञेन । सुऽअरंकृतेन । सुऽइष्टेन । वक्षणाः । आ । पृणध्वं ॥ ५ ॥ ७ ॥
यूपऽव्रस्काः । उत । ये । यूपऽवाहाः । चषालं । ये । अश्वऽयूपाय । तक्षति । ये ।
च । अर्वते । पचनं । संऽभरंति । उतो इति । तेषां । अभिऽगूर्तिः । नः । इन्वतु ॥ ६ ॥
उप । प्र । अगात् । सुऽमत् । मे । अधायि । मन्म । देवानां । आशाः । उप ।
वीतऽपृष्ठः । अनु । एनं । विप्राः । ऋषयः । मदंति । देवानां । पुष्टे । चकृम ।
सुऽबंधुं ॥ ७ ॥ यत् । वाजिनः । दाम । संऽदानं । अर्वतः । या । शीर्षण्या ।
रशना । रज्जुः । अस्य । यत् । वा । घ । अस्य । प्रऽभृतं । आस्ये । तृणं । सर्वा ।
ता । ते । अपि । देवेषु । अस्तु ॥ ८ ॥ यत् । अश्वस्य । क्रविषः । मक्षिका ।
आश । यत् । वा । स्वरौ । स्वऽधितौ । रिप्तं । अस्ति । यत् । हस्तयोः । शमितुः ।
यत् । नखेषु । सर्वा । ता । ते । अपि । देवेषु । अस्तु ॥ ९ ॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥ १० ॥ ८ ॥
यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामा श्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥ ११ ॥
ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ १२ ॥
यन्नीक्षणं मांस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ १३ ॥
निक्रमणं निषदनं विवर्तनं यच्च पड्बीशमर्वतः ।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ १४ ॥

यत् । ऊवध्यं । उदरस्य । अपऽवाति । यः । आमस्य । क्रविषः । गंधः । अस्ति । सुऽकृता । तत् । शमितारः । कृण्वंतु । उत । मेधं । शृतऽपाकं । पचंतु ॥ १० ॥ ८ ॥ यत् । ते । गात्रात् । अग्निना । पच्यमानात् । अभि । शूलं । निऽहतस्य । अवऽधावति । मा । तत् । भूम्यां । आ । श्रिषत् । मा । तृणेषु । देवेभ्यः । तत् । उशत्ऽभ्यः । रातं । अस्तु ॥ ११ ॥ ये । वाजिनं । परिऽपश्यंति । पक्वं । ये । ईं । आहुः । सुरभिः । निः । हर । इति । ये । च । अर्वतः । मांसऽभिक्षां । उपऽआसते । उतो इति । तेषां । अभिऽगूर्तिः । नः । इन्वतु ॥ १२ ॥ यत् । निऽईक्षणं । मांस्पचन्याः । उखायाः । या । पात्राणि । यूष्णः । आऽसेचनानि । ऊष्मण्या । अपिऽधाना । चरूणां । अंकाः । सूनाः । परि । भूषंति । अश्वं ॥ १३ ॥ निऽक्रमणं । निऽसदनं । विऽवर्तनं । यत् । च । पड्बीशं । अर्वतः । यत् । च । पपौ । यत् । च । घासिं । जघास । सर्वा । ता । ते । अपि । देवेषु । अस्तु ॥ १४ ॥

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभि विक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रति गृभ्णन्त्यश्वम् ॥ १५ ॥ ९ ॥
यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।
सन्दानमर्वन्तं पड्बीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ १६ ॥
यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ता ते ब्रह्मणा सूदयामि ॥ १७ ॥
चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देवबन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।
अच्छिद्रा गात्रा वयुना कृणोत परुष्परुरनुघुष्या वि शस्त ॥ १८ ॥
एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतुः ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्र जुहोम्यग्नौ ॥ १९ ॥

मा । त्वा । अग्निः । ध्वनयीत् । धूमऽगंधिः । मा । उखा । भ्राजंती । अभि । विक्त । जघ्रिः । इष्टं । वीतं । अभिऽगूर्तं । वषट्ऽकृतं । तं । देवासः । प्रति । गृभ्णंति । अश्वं ॥ १५ ॥ ९ ॥ यत् । अश्वाय । वासः । उपऽस्तृणंति । अधीऽवासं । या । हिरण्यानि । अस्मै । संऽदानं । अर्वंतं । पड्बीशं । प्रिया । देवेषु । आ । यमयंति ॥ १६ ॥ यत् । ते । सादे । महसा । शूकृतस्य । पार्ष्ण्या । वा । कशया । वा । तुतोद । स्रुचाऽइव । ता । हविषः । अध्वरेषु । सर्वा । ता । ते । ब्रह्मणा । सूदयामि ॥ १७ ॥ चतुःऽत्रिंशत् । वाजिनः । देवऽबंधोः । वंक्रीः । अश्वस्य । स्वऽधितिः । सं । एति । अच्छिद्रा । गात्रा । वयुना । कृणोत । परुःऽपरुः । अनुऽघुष्य । वि । शस्त ॥ १८ ॥ एकः । त्वष्टुः । अश्वस्य । विऽशस्ता । द्वा । यंतारा । भवतः । तथा । ऋतुः । या । ते । गात्राणां । ऋतुऽथा । कृणोमि । ताऽता । पिंडानां । प्र । जुहोमि । अग्नौ ॥ १९ ॥

मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत्ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥ २० ॥
न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
हरी ते युञ्जा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥ २१ ॥
सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम् ।
अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥ १० ॥

॥ १६३ ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-अश्वस्तुतिः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥ १६३ ॥ यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १ ॥
यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ २ ॥

मा । त्वा । तपत् । प्रियः । आत्मा । अपिऽयन्तं । मा । स्वऽधितिः । तन्वः । आ । तिष्ठिपत् । ते । मा । ते । गृध्नुः । अविऽशस्ता । अतिऽहाय । छिद्रा । गात्राणि । असिना । मिथू । करिति कः ॥ २० ॥ न । वै । ऊं इति । एतत् । म्रियसे । न । रिष्यसि । देवान् । इत् । एषि । पथिऽभिः । सुऽगेभिः । हरी इति । ते । युंजा । पृषती इति । अभूतां । उप । अस्थात् । वाजी । धुरि । रासभस्य ॥ २१ ॥ सुऽगव्यं । नः । वाजी । सुऽअश्व्यं । पुंसः । पुत्रान् । उत । विश्वऽपुषं । रयिं । अनागाःऽत्वं । नः । अदितिः । कृणोतु । क्षत्रं । नः । अश्वः । वनतां । हविष्मान् ॥ २२ ॥ १० ॥

यत् । अक्रंदः । प्रथमं । जायमानः । उत्ऽयन् । समुद्रात् । उत । वा । पुरीषात् । श्येनस्य । पक्षा । हरिणस्य । बाहू इति । उपऽस्तुत्यं । महि । जातं । ते । अर्वन् ॥ १ ॥ यमेन । दत्तं । त्रितः । एनं । अयुनक् । इंद्रः । एनं । प्रथमः । अधि । अतिष्ठत् । गंधर्वः । अस्य । रशना । अगृभ्णात् । सूरात् । अश्वं । वसवः । निः । अतष्ट ॥ २ ॥

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन ।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ ३ ॥
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४ ॥
इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना ।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः ॥ ५ ॥ ११ ॥
आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥
अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानळादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥ ७ ॥

असि । यमः । असि । आदित्यः । अर्वन् । असि । त्रितः । गुह्येन । व्रतेन । असि । सोमेन । समया । विऽपृक्तः । आहुः । ते । त्रीणि । दिवि । बंधनानि ॥ ३ ॥ त्रीणि । ते । आहुः । दिवि । बंधनानि । त्रीणि । अप्ऽसु । त्रीणि । अंतरिति । समुद्रे । उतऽइव । मे । वरुणः । छंत्सि । अर्वन् । यत्र । ते । आहुः । परमं । जनित्रं ॥ ४ ॥ इमा । ते । वाजिन् । अवऽमार्जनानि । इमा । शफानां । सनितुः । निऽधाना । अत्र । ते । भद्राः । रशनाः । अपश्यं । ऋतस्य । याः । अभिऽरक्षंति । गोपाः ॥ ५ ॥ ११ ॥ आत्मानं । ते । मनसा । आरात् । अजानां । अवः । दिवा । पतयंतं । पतंगं । शिरः । अपश्यं । पथिऽभिः । सुऽगेभिः । अरेणुऽभिः । जेहमानं । पतत्रि ॥ ६ ॥ अत्र । ते । रूपं । उत्ऽतमं । अपश्यं । जिगीषमाणं । इषः । आ । पदे । गोः । यदा । ते । मर्तः । अनु । भोगं । आनट् । आत् । इत् । ग्रसिष्ठः । ओषधीः । अजीगरिति ॥ ७ ॥

अनु त्वा रथो अनु मर्यो अर्वन्ननु गावोऽनु भगः कनीनाम् ।
अनु व्रातासस्तव सख्यमीयुरनु देवा ममिरे वीर्यं ते ॥ ८ ॥
हिरण्यशृङ्गोऽयो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।
देवा इदस्य हविरद्यमायन्यो अर्वन्तं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ॥ ९ ॥
ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः सं शूरणासो दिव्यासो अत्याः ।
हंसा इव श्रेणिशो यतन्ते यदाक्षिषुर्दिव्यमज्ममश्वाः ॥ १० ॥ १२ ॥
तव शरीरं पतयिष्ण्वर्वन्तव चित्तं वात इव ध्रजीमान् ।
तव शृङ्गाणि विष्ठिता पुरुत्रारण्येषु जर्भुराणा चरन्ति ॥ ११ ॥
उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ १२ ॥

अनु । त्वा । रथः । अनु । मर्यः । अर्वन् । अनु । गावः । अनु । भगः । कनीनाम् । अनु । व्रातासः । तव । सख्यं । ईयुः । अनु । देवाः । ममिरे । वीर्यं । ते ॥ ८ ॥ हिरण्यऽशृंगः । अयः । अस्य । पादाः । मनःऽजवाः । अवरः । इंद्रः । आसीत् । देवाः । इत् । अस्य । हविःऽअद्यं । आयन् । यः । अर्वंतं । प्रथमः । अधिऽअतिष्ठत् ॥ ९ ॥ ईर्मऽअंतासः । सिलिकऽमध्यमासः । सं । शूरणासः । दिव्यासः । अत्याः । हंसाःऽइव । श्रेणिऽशः । यतंते । यत् । आक्षिषुः । दिव्यं । अज्मं । अश्वाः ॥ १० ॥ १२ ॥ तव । शरीरं । पतयिष्णु । अर्वन् । तव । चित्तं । वातःऽइव । ध्रजीमान् । तव । शृंगाणि । विऽस्थिता । पुरुऽत्रा । अरण्येषु । जर्भुराणा । चरंति ॥ ११ ॥ उप । प्र । अगात् । शसनं । वाजी । अर्वा । देवद्रीचा । मनसा । दीध्यानः । अजः । पुरः । नीयते । नाभिः । अस्य । अनु । पश्चात् । कवयः । यंति । रेभाः ॥ १२ ॥

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथा शास्ते दाशुषे वार्याणि ॥ १३ ॥ १३ ॥

॥ १६४ ॥ ऋषिः-दीर्घतमाः । देवता-विश्वेदेवाः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥१६४॥ अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥
सप्त युञ्जन्ति रथमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।
त्रिनाभि चक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वा भुवनाधि तस्थुः ॥ २ ॥
इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वाः ।
सप्त स्वसारो अभि सं नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्त नाम ॥ ३ ॥
को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति ।
भूम्या असुरसृगात्मा क्व स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥

उप । प्र । अगात् । परमं । यत् । सधऽस्थं । अर्वान् । अच्छ । पितरं । मातरं । च । अद्य । देवान् । जुष्टऽतमः । हि । गम्याः । अथ । आ । शास्ते । दाशुषे । वार्याणि ॥ १३ ॥ १३ ॥

अस्य । वामस्य । पलितस्य । होतुः । तस्य । भ्राता । मध्यमः । अस्ति । अश्नः । तृतीयः । भ्राता । घृतऽपृष्ठः । अस्य । अत्र । अपश्यं । विश्पतिं । सप्तऽपुत्रं ॥ १ ॥ सप्त । युञ्जन्ति । रथं । एकऽचक्रं । एकः । अश्वः । वहति । सप्तऽनामा । त्रिऽनाभि । चक्रं । अजरं । अनर्वं । यत्र । इमा । विश्वा । भुवना । अधि । तस्थुः ॥ २ ॥ इमं । रथं । अधि । ये । सप्त । तस्थुः । सप्तऽचक्रं । सप्त । वहन्ति । अश्वाः । सप्त । स्वसारः । अभि । सं । नवन्ते । यत्र । गवां । निऽहिता । सप्त । नाम ॥ ३ ॥ कः । ददर्श । प्रथमं । जायमानं । अस्थन्ऽवन्तं । यत् । अनस्था । बिभर्ति । भूम्याः । असुः । असृक् । आत्मा । क्व । स्वित् । कः । विद्वांसं । उप । गात् । प्रष्टुं । एतत् ॥ ४ ॥

पाकः पृच्छामि मनसाविजानन्देवानामेना निहिता पदानि ।
वत्से बष्कयेऽधि सप्त तन्तून्वि तत्निरे कवय ओतवा उ ॥ ५ ॥ १४ ॥
अचिकित्वाञ्चिकितुषश्चिदत्र कवीन्पृच्छामि विद्मने न विद्वान् ।
वि यस्तस्तम्भ षळिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्विदेकम् ॥ ६ ॥
इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।
शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते गावो अस्य वव्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥
माता पितरमृत आ बभाज धीत्यग्रे मनसा सं हि जग्मे ।
सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥
युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणाया अतिष्ठद्गर्भो वृजनीष्वन्तः ।
अमीमेद्वत्सो अनु गामपश्यद्विश्वरूप्यं त्रिषु योजनेषु ॥ ९ ॥

पाकः । पृच्छामि । मनसा । अविऽजानन् । देवानां । एना । निऽहिता । पदानि । वत्से । बष्कये । अधि । सप्त । तंतून् । वि । तत्निरे । कवयः । ओतवै । ऊं इति ॥ ५ ॥ १४ ॥ अचिकित्वान् । चिकितुषः । चित् । अत्र । कवीन् । पृच्छामि । विद्मने । न । विद्वान् । वि । यः । तस्तंभ । षट् । इमा । रजांसि । अजस्य । रूपे । किं । अपि । स्वित् । एकं ॥ ६ ॥ इह । ब्रवीतु । यः । ईं । अंग । वेद । अस्य । वामस्य । निऽहितं । पदं । वेरिति वेः । शीर्ष्णः । क्षीरं । दुह्रते । गावः । अस्य । वव्रिं । वसानाः । उदकं । पदा । अपुः ॥ ७ ॥ माता । पितरं । ऋते । आ । बभाज । धीती । अग्रे । मनसा । सं । हि । जग्मे । सा । बीभत्सुः । गर्भऽरसा । निऽविद्धा । नमस्वंतः । इत् । उपऽवाकं । ईयुः ॥ ८ ॥ युक्ता । माता । आसीत् । धुरि । दक्षिणायाः । अतिष्ठत् । गर्भः । वृजनीषु । अंतरिति । अमीमेत् । वत्सः । अनु । गां । अपश्यत् । विश्वऽरूप्यं । त्रिषु । योजनेषु ॥ ९ ॥

तिस्रो मातॄस्त्रीन्पितॄन्बिभ्रदेक ऊर्ध्वस्तस्थौ नेमव ग्लापयन्ति ।
मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृष्ठे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्वाम् ॥ १० ॥ १५ ॥
द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ ११ ॥
पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।
अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षळर आहुरर्पितम् ॥ १२ ॥
पञ्चारे चक्रे परिवर्तमाने तस्मिन्ना तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥ १३ ॥
सनेमि चक्रमजरं वि वावृत उत्तानायां दश युक्ता वहन्ति ।
सूर्यस्य चक्षू रजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

तिस्रः । मातॄः । त्रीन् । पितॄन् । बिभ्रत् । एकः । ऊर्ध्वः । तस्थौ । न । ईम् । अव । ग्लपयंति । मंत्रयंते । दिवः । अमुष्य । पृष्ठे । विश्वऽविदं । वाचं । अविश्वऽमिन्वां ॥ १० ॥ १५ ॥ द्वादशऽअरं । नहि । तत् । जराय । वर्वर्ति । चक्रं । परि । द्यां । ऋतस्य । आ । पुत्राः । अग्ने । मिथुनासः । अत्र । सप्त । शतानि । विंशतिः । च । तस्थुः ॥ ११ ॥ पंचऽपादं । पितरं । द्वादशऽआकृतिं । दिवः । आहुः । परे । अर्धे । पुरीषिणं । अथ । इमे । अन्ये । उपरे । विऽचक्षणं । सप्तऽचक्रे । षट्ऽअरे । आहुः । अर्पितं ॥ १२ ॥ पंचऽअरे । चक्रे । परिऽवर्तमाने । तस्मिन् । आ । तस्थुः । भुवनानि । विश्वा । तस्य । न । अक्षः । तप्यते । भूरिऽभारः । सनात् । एव । न । शीर्यते । सऽनाभिः ॥ १३ ॥ सऽनेमि । चक्रं । अजरं । वि । ववृते । उत्तानायां । दश । युक्ताः । वहंति । सूर्यस्य । चक्षुः । रजसा । एति । आऽवृतं । तस्मिन् । आर्पिता । भुवनानि । विश्वा ॥ १४ ॥

साकंजानां सप्तथमाहुरेकजं षळिद्यमा ऋषयो देवजा इति ।
तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रेजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १५ ॥ १६॥
स्त्रियः सतीस्ताँ उ मे पुंस आहुः पश्यदक्षण्वान्न वि चेतदन्धः ।
कविर्यः पुत्रः स ईमा चिकेत यस्ता विजानात्स पितुष्पितासत् ॥ १६ ॥
अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात् ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात्क्व स्वित्सूते नहि यूथे अन्तः ॥ १७ ॥
अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।
कवीयमानः क इह प्र वोचद्देवं मनः कुतो अधि प्रजातम् ॥ १८ ॥
ये अर्वाञ्चस्ताँ उ पराच आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उ अर्वाच आहुः ।
इन्द्रश्च या चक्रथुः सोम तानि धुरा न युक्ता रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥

साकंऽजानां । सप्तथं । आहुः । एकऽजं । षट् । इत् । यमाः । ऋषयः । देवऽजाः । इति । तेषां । इष्टानि । विऽहितानि । धामऽशः । स्थात्रे । रेजंते । विऽकृतानि । रूपऽशः ॥ १५ ॥ १६ ॥ स्त्रियः । सतीः । तान् । ऊं इति । मे । पुंसः । आहुः । पश्यत् । अक्षणऽवान् । न । वि । चेतत् । अंधः । कविः । यः । पुत्रः । सः । ईं । आ । चिकेत । यः । ता । विऽजानात् । सः । पितुः । पिता । असत् ॥ १६ ॥ अवः । परेण । परः । एना । अवरेण । पदा । वत्सं । बिभ्रती । गौः । उत् । अस्थात् । सा । कद्रीची । कं । स्वित् । अर्धं । परा । अगात् । क्व । स्वित् । सूते । नहि । यूथे । अंतः ॥ १७ ॥ अवः । परेण । पितरं । यः । अस्य । अनुऽवेद । परः । एना । अवरेण । कविऽयमानः । कः । इह । प्र । वोचत् । देवं । मनः । कुतः । अधि । प्रऽजातं ॥ १८ ॥ ये । अर्वांचः । तान् । ऊं इति । परांचः । आहुः । ये । परांचः । तान् । ऊं इति । अर्वांचः । आहुः । इंद्रः । च । या । चक्रथुः । सोम । तानि । धुरा । न । युक्ताः । रजसः । वहंति ॥ १९ ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ २० ॥ १७ ॥
यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश ॥ २१ ॥
यस्मिन्वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे ।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥
यद्गायत्रे अधि गायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।
यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः ॥ २३ ॥
गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कमर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् ।
वाकेन वाकं द्विपदा चतुष्पदाक्षरेण मिमते सप्त वाणीः ॥ २४ ॥

द्वा । सुऽपर्णा । सऽयुजा । सखाया । समानं । वृक्षं । परि । सस्वजाते इति । तयोः । अन्यः । पिप्पलं । स्वादु । अत्ति । अनश्नन् । अन्यः । अभि । चाकशीति ॥ २० ॥ १७ ॥ यत्र । सुऽपर्णाः । अमृतस्य । भागं । अनिऽमेषं । विदथा । अभिऽस्वरंति । इनः । विश्वस्य । भुवनस्य । गोपाः । सः । मा । धीरः । पाकं । अत्र । आ । विवेश ॥ २१ ॥ यस्मिन् । वृक्षे । मधुऽअदः । सुऽपर्णाः । निऽविशंते । सुवते । च । अधि । विश्वे । तस्य । इत् । आहुः । पिप्पलं । स्वादु । अग्रे । तत् । न । उत् । नशत् । यः । पितरं । न । वेद ॥ २२ ॥ यत् । गायत्रे । अधि । गायत्रं । आऽहितं । त्रैस्तुभात् । वा । त्रैस्तुभं । निःऽअतक्षत । यत् । वा । जगत् । जगति । आऽहितं । पदं । ये । इत् । तत् । विदुः । ते । अमृतऽत्वं । आनशुः ॥ २३ ॥ गायत्रेण । प्रति । मिमीते । अर्कं । अर्केण । साम । त्रैस्तुभेन । वाकं । वाकेन । वाकं । द्विऽपदा । चतुःऽपदा । अक्षरेण । मिमते । सप्त । वाणीः ॥ २४ ॥

जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथंतरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।
गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो मह्ना प्र रिरिचे महित्वा ॥ २५ ॥ १८ ॥
उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचम् ॥ २६ ॥
हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ २७ ॥
गौरमीमेदनु वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।
सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ २८ ॥
अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।
सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ २९ ॥

जगता । सिंधुं । दिवि । अस्तभायत् । रथंऽतरे । सूर्यं । परि । अपश्यत् । गायत्रस्य । संऽइधः । तिस्रः । आहुः । ततः । मह्ना । प्र । रिरिचे । महिऽत्वा ॥ २५ ॥ १८ ॥
उप । ह्वये । सुऽदुघां । धेनुं । एतां । सुऽहस्तः । गोऽधुक् । उत । दोहत् । एनां । श्रेष्ठं । सवं । सविता । साविषत् । नः । अभिऽइद्धः । घर्मः । तत् । ऊं इति । सु । प्र । वोचं ॥ २६ ॥ हिङ्ऽकृण्वती । वसुऽपत्नी । वसूनां । वत्सं । इच्छंती । मनसा । अभि । आ । अगात् । दुहां । अश्विऽभ्यां । पयः । अघ्न्या । इयं । सा । वर्धतां । महते । सौभगाय ॥ २७ ॥ गौः । अमीमेत् । अनु । वत्सं । मिषंतं । मूर्धानं । हिङ् । अकृणोत् । मातवै । ऊं इति । सृक्वाणं । घर्मं । अभि । वावशाना । मिमाति । मायुं । पयते । पयःऽभिः ॥ २८ ॥ अयं । सः । शिंक्ते । येन । गौः । अभिऽवृता । मिमाति । मायुं । ध्वसनौ । अधि । श्रिता । सा । चित्तिऽभिः । नि । हि । चकार । मर्त्यं । विऽद्युत् । भवंती । प्रति । वव्रिं । औहत ॥ २९ ॥

अनच्छये तुरगातु जीवमेजद्ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम् ।
जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ३० ॥ १९ ॥
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३१ ॥
य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात् ।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश ॥ ३२ ॥
द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् ।
उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ३३ ॥
पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥ ३४ ॥

अनत् । शये । तुरऽगातु । जीवं । एजत् । ध्रुवं । मध्ये । आ । पस्त्यानां ॥ जीवः । मृतस्य । चरति । स्वधाभिः । अमर्त्यः । मर्त्येन । सऽयोनिः ॥ ३० ॥ १९ ॥
अपश्यं । गोपां । अनिऽपद्यमानं । आ । च । परा । च । पथिऽभिः । चरंतं ॥ सः । सध्रीचीः । सः । विषूचीः । वसानः । आ । वरीवर्ति । भुवनेषु । अंतः ॥ ३१ ॥
यः । ईं । चकार । न । सः । अस्य । वेद । यः । ईं । ददर्श । हिरुक् । इत् । नु । तस्मात् ॥ सः । मातुः । योना । परिऽवीतः । अंतः । बहुऽप्रजाः । निःऽऋतिं । आ । विवेश ॥ ३२ ॥
द्यौः । मे । पिता । जनिता । नाभिः । अत्र । बंधुः । मे । माता । पृथिवी । मही । इयं ॥ उत्तानयोः । चम्वोः । योनिः । अंतः । अत्र । पिता । दुहितुः । गर्भं । आ । अधात् ॥ ३३ ॥
पृच्छामि । त्वा । परं । अंतं । पृथिव्याः । पृच्छामि । यत्र । भुवनस्य । नाभिः ॥ पृच्छामि । त्वा । वृष्णः । अश्वस्य । रेतः ॥ पृच्छामि । वाचः । परमं । विऽओम ॥ ३४ ॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ३५ ॥ २० ॥
सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।
ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः परिभुवः परि भवन्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥
न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि ।
यदा मागन्प्रथमजा ऋतस्यादिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः ॥ ३७ ॥
अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम् ॥३८॥
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ३९ ॥

इयं । वेदिः । परः । अन्तः । पृथिव्याः । अयं । यज्ञः । भुवनस्य । नाभिः । अयं । सोमः । वृष्णः । अश्वस्य । रेतः । ब्रह्मा । अयं । वाचः । परमं । विऽओम ॥ ३५ ॥ २० ॥ सप्त । अर्धऽगर्भाः । भुवनस्य । रेतः । विष्णोः । तिष्ठन्ति । प्रऽदिशा । विऽधर्मणि । ते । धीतिऽभिः । मनसा । ते । विपःऽचितः । परिऽभुवः । परि । भवन्ति । विश्वतः ॥ ३६ ॥ न । वि । जानामि । यत्ऽइव । इदं । अस्मि । निण्यः । संऽनद्धः । मनसा । चरामि । यदा । मा । आ । अगन् । प्रथमऽजाः । ऋतस्य । आत् । इत् । वाचः । अश्नुवे । भागं । अस्याः ॥ ३७ ॥ अपाङ् । प्राङ् । एति । स्वधया । गृभीतः । अमर्त्यः । मर्त्येन । सऽयोनिः । ता । शश्वन्ता । विषूचीना । विऽयन्ता । नि । अन्यं । चिक्युः । न । नि । चिक्युः । अन्यं ॥ ३८ ॥ ऋचः । अक्षरे । परमे । विऽओमन् । यस्मिन् । देवाः । अधि । विश्वे । निऽसेदुः । यः । तत् । न । वेद । किं । ऋचा । करिष्यति । ये । इत् । तत् । विदुः । ते । इमे । सं । आसते ॥ ३९ ॥

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ ४० ॥ २१ ॥
गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।
अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥ ४१ ॥
तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।
ततः क्षरत्यक्षरं तद्विश्वमुप जीवति ॥ ४२ ॥
शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण ।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ॥ ४३ ॥
त्रयः केशिन ऋतुथा वि चक्षते संवत्सरे वपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभि चष्टे शचीभिर्ध्राजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥ ४४ ॥

सुयवसऽअत् । भगऽवती । हि । भूयाः । अथो इति । वयं । भगऽवन्तः । स्याम । अद्धि । तृणं । अघ्न्ये । विश्वऽदानीं । पिब । शुद्धं । उदकं । आऽचरन्ती ॥ ४० ॥ २१ ॥ गौरीः । मिमाय । सलिलानि । तक्षती । एकऽपदी । द्विऽपदी । सा । चतुःऽपदी । अष्टाऽपदी । नवऽपदी । बभूवुषी । सहस्रऽअक्षरा । परमे । विऽओमन् ॥ ४१ ॥ तस्याः । समुद्राः । अधि । वि । क्षरन्ति । तेन । जीवन्ति । प्रऽदिशः । चतस्रः । ततः । क्षरति । अक्षरं । तत् । विश्वं । उप । जीवति ॥ ४२ ॥ शकऽमयं । धूमं । आरात् । अपश्यं । विषुऽवता । परः । एना । अवरेण । उक्षाणं । पृश्निं । अपचन्त । वीराः । तानि । धर्माणि । प्रथमानि । आसन् ॥ ४३ ॥ त्रयः । केशिनः । ऋतुऽथा । वि । चक्षते । संवत्सरे । वपते । एकः । एषां । विश्वं । एकः । अभि । चष्टे । शचीभिः । ध्राजिः । एकस्य । ददृशे । न । रूपं ॥ ४४ ॥

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ४५ ॥
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ४६ ॥ २२ ॥
कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।
त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद्घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥ ४७ ॥
द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तस्मिन्त्साकं त्रिशता न शङ्कवोऽर्पिताः षष्टिर्न चलाचलासः ॥ ४८ ॥
यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।
यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥ ४९ ॥

चत्वारि । वाक् । परिऽमिता । पदानि । तानि । विदुः । ब्राह्मणाः । ये । मनीषिणः ।
गुहा । त्रीणि । निऽहिता । न । इङ्गयन्ति । तुरीयं । वाचः । मनुष्याः । वदन्ति ॥ ४५ ॥
इन्द्रं । मित्रं । वरुणं । अग्निं । आहुः । अथो इति । दिव्यः । सः । सुऽपर्णः । गरुत्मान् ।
एकं । सत् । विप्राः । बहुधा । वदन्ति । अग्निं । यमं । मातरिश्वानं । आहुः
॥ ४६ ॥ २२ ॥ कृष्णं । निऽयानं । हरयः । सुऽपर्णाः । अपः । वसानाः । दिवं ।
उत् । पतन्ति । ते । आ । अववृत्रन् । सदनात् । ऋतस्य । आत् । इत् । घृतेन ।
पृथिवी । वि । उद्यते ॥ ४७ ॥ द्वादश । प्रऽधयः । चक्रं । एकं । त्रीणि । नभ्यानि
कः । ऊं इति । तत् । चिकेत । तस्मिन् । साकं । त्रिऽशताः । न । शङ्कवः । अर्पिताः
षष्टिः । न । चलाचलासः ॥ ४८ ॥ यः । ते । स्तनः । शशयः । यः । मयःऽभूः
येन । विश्वा । पुष्यसि । वार्याणि । यः । रत्नऽधाः । वसुऽवित् । यः । सुऽदत्रः
सरस्वति । तं । इह । धातवे । करिति कः ॥ ४९ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ ५० ॥
समानमेतदुदकमुच्चैत्यव चाहभिः ।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्नयः ॥ ५१ ॥
दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शतमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्टिभिस्तर्पयन्तं सरस्वन्तमवसे जोहवीमि ॥ ५२ ॥ २३ ॥ २२ ॥

॥ त्रयोविंशोऽनुवाकः ॥

॥ १६५ ॥ ऋषिः-मरुत्वान् । देवता:-इन्द्रः । छन्दः त्रिष्टुप् ॥

॥१६५॥ कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥ १ ॥

यज्ञेन । यज्ञं । अयजंत । देवाः । तानि । धर्माणि । प्रथमानि । आसन् । ते । ह ।
नाकं । महिमानः । सचंत । यत्र । पूर्वे । साध्याः । संति । देवाः ॥ ५० ॥ समानं ।
एतत् । उदकं । उत् । च । एति । अव । च । अहऽभिः । भूमिं । पर्जन्याः ।
जिन्वंति । दिवं । जिन्वंति । अग्नयः ॥ ५१ ॥ दिव्यं । सुऽपर्णं । वायसं । बृहंतं ।
अपां । गर्भं । दर्शतं । ओषधीनां । अभीपतः । वृष्टिऽभिः । तर्पयंतं । सरस्वंतं ।
अवसे । जोहवीमि ॥ ५२ ॥ २३ ॥

कया । शुभा । सऽवयसः । सऽनीळाः । समान्या । मरुतः । सं । मिमिक्षुः ।
कया । मती । कुतः । आऽइतासः । एते । अर्चंति । शुष्मं । वृषणः । वसुऽया ॥ १ ॥

कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त ।
श्येनाँ इव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥ २ ॥
कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत्ते अस्मे ॥ ३ ॥
ब्रह्माणि मे मतयः शं सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ४ ॥
अतो वयमन्तमेभिर्युजानाः स्वक्षत्रेभिस्तन्वः शुम्भमानाः ।
महोभिरेताँ उप युज्महे न्विन्द्र स्वधामनु हि नो बभूथ ॥ ५ ॥ २४ ॥

कस्य । ब्रह्माणि । जुजुषुः । युवानः । कः । अध्वरे । मरुतः । आ । ववर्त । श्येनान्ऽइव । ध्रजतः । अंतरिक्षे । केन । महा । मनसा । रीरमाम ॥ २ ॥ कुतः । त्वं । इंद्र । माहिनः । सन् । एकः । यासि । सत्ऽपते । किं । ते । इत्था । सं । पृच्छसे । संऽअराणः । शुभानैः । वोचेः । तत् । नः । हरिऽवः । यत् । ते । अस्मे इति ॥ ३ ॥ ब्रह्माणि । मे । मतयः । शं । सुतासः । शुष्मः । इयर्ति । प्रऽभृतः । मे । अद्रिः । आ । शासते । प्रति । हर्यंति । उक्था । इमा । हरी इति । वहतः । ता । नः । अच्छ ॥ ४ ॥ अतः । वयं । अंतमेभिः । युजानाः । स्वऽक्षत्रेभिः । तन्वः । शुंभमानाः । महःऽभिः । एतान् । उप । युज्महे । नु । इंद्र । स्वधां । अनु । हि । नः । बभूथ ॥ ५ ॥ २४ ॥

क्व१ स्या वो मरुतः स्वधासीद्यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये ।
अहं ह्यु१ग्रस्तविषस्तुविष्मान्विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥ ६ ॥
भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः ।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद्वशाम ॥ ७ ॥
वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान् ।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥ ८ ॥
अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः ।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥ ९ ॥

क्व । स्या । वः । मरुतः । स्वधा । आसीत् । यत् । मां । एकं । संऽअधत्त । अहिऽहत्ये । अहं । हि । उग्रः । तविषः । तुविष्मान् । विश्वस्य । शत्रोः । अनमं । वधऽस्नैः ॥ ६ ॥ भूरि । चकर्थ । युज्येभिः । अस्मे इति । समानेभिः । वृषभ । पौंस्येभिः । भूरीणि । हि । कृणवाम । शविष्ठ । इंद्र । क्रत्वा । मरुतः । यत् । वशाम ॥ ७ ॥ वधीं । वृत्रं । मरुतः । इंद्रियेण । स्वेन । भामेन । तविषः । बभूवान् । अहं । एताः । मनवे । विश्वऽचंद्राः । सुऽगाः । अपः । चकर । वज्रऽबाहुः ॥ ८ ॥ अनुत्तं । आ । ते । मघऽवन् । नकिः । नु । न । त्वाऽवान् । अस्ति । देवता । विदानः । न । जायमानः । नशते । न । जातः । यानि । करिष्या । कृणुहि । प्रऽवृद्ध ॥ ९ ॥

एकस्य चिन्मे विभ्व१स्त्वोजो या नु दधृष्वान्कृणवै मनीषा ।
अहं ह्यु१ग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥१० ॥२५॥
अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र ।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥ ११ ॥
एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥ १२ ॥
को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीँरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥ १३ ॥

एकस्य । चित् । मे । विऽभु । अस्तु । ओजः । या । नु । दधृष्वान् । कृणवै । मनीषा । अहं । हि । उग्रः । मरुतः । विदानः । यानि । च्यवं । इंद्रः । इत् । ईशे । एषां ॥ १० ॥ २५ ॥ अमंदत् । मा । मरुतः । स्तोमः । अत्र । यत् । मे । नरः । श्रुत्यं । ब्रह्म । चक्र । इंद्राय । वृष्णे । सुऽमखाय । मह्यं । सख्ये । सखायः । तन्वे । तनूभिः ॥ ११ ॥ एव । इत् । एते । प्रति । मा । रोचमानाः । अनेद्यः । श्रवः । आ । इषः । दधानाः । संऽचक्ष्य । मरुतः । चंद्रऽवर्णाः । अच्छांत । मे । छदयाथ । च । नूनं ॥ १२ ॥ कः । नु । अत्र । मरुतः । ममहे । वः । प्र । यातन । सखीन् । अच्छ । सखायः । मन्मानि । चित्राः । अपिऽवातयंतः । एषां । भूत । नवेदाः । मे । ऋतानां ॥ १३ ॥

आ यद्दुवस्याद्दुवसे न कारुरस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा ।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥ १४ ॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥ २६ ॥ ३ ॥

॥ इति द्वितीयाष्टके तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

आ । यत् । दुवस्यात् । दुवसे । न । कारुः । अस्मान् । चक्रे । मान्यस्य । मेधा ।
ओ इति । सु । वर्त्त । मरुतः । विप्रं । अच्छ । इमा । ब्रह्माणि । जरिता । वः ।
अर्चत् ॥ १४ ॥ एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयं । गीः । मान्दार्यस्य । मान्यस्य ।
कारोः । आ । इषा । यासीष्ट । तन्वे । वयां । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽ-
दानुं ॥ १५ ॥ २६ ॥ ३ ॥

इति द्वितीयाष्टके तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३ ॥

जिस स्थानमें ईश्वरके भक्तलोग आनन्दमें मग्न रहते हैं वह विष्णुका प्रिय स्थान मुझेभी प्राप्त होगा। सचमुच जो विष्णुका सच्चा भक्त है वही केवल सब विश्वको व्याप्त करनेवाले विष्णुका प्रिय मित्र है। विष्णुके बड़े पवित्र स्थानसे ही अमृतका अक्षय्य झरना बहता है। ५

ऐसे बड़े (आनन्दमय पवित्र और वैभवयुक्त) स्थान ही प्राप्त करनेकी हम (हृदयसे इच्छा) करते हैं। बड़ी चंचल और सींगवाली दिव्य धनुएँ वहां रहती हैं। देखिये सब विश्वको व्याप्त करनेवाले विष्णुके श्रेष्ठ स्थानसेही हमे पूरा पूरा प्रकाश मिलता है। ६

सूक्त १५५.

॥ ऋषि दीर्घतमा। देवता विष्णु ॥

(हे ऋत्विज,) आप अपने सोमरसकी मधुरताका वर्णन. परम श्रेष्ठ और पराक्रमी विष्णुके सामने कीजिये। जब सच्चा भक्त विष्णुकी प्रार्थना करता है तब सचमुच उसने की हुई प्रार्थना विष्णु सुन लेते हैं। वही देख लीजिये; जिस तरह विजयी योधा जवान घोड़ेपर सवार होता है उसी तरह इन्द्र और विष्णु दोनों देव पहाड़के शिखरपर खड़े हुए हैं। १

हे इन्द्र और विष्णु आप बड़े बलवान हैं। इस लिये आपके सोमरसका जो मनुष्य स्वीकार करता है वह बड़े जोरसे चले हुए घोर संग्राममेंभी परास्त नहीं होता है। जब धनुर्धर धनुषपर बाण चढाकर निरपराधी मनुष्यपर छोड़ता है तब भी आप उस बाणकी दिशा पलटाकर उस निरपराधी मनुष्यकी—यदि वह आपका भक्त हो तो—रक्षा करते हैं। २

जब विष्णुके भक्त सोमरसका स्वीकार करते हैं तब उनका बल बहुतही बढता है। वे अपने बलसे मेघोदककी वर्षा कराके वीर्यको माता और पिता (आकाश और पृथ्वी) तक पहुंचाते हैं। उससे वे दीर्घकाल तक (धान्यका) उपभोग लेते हैं। इसी तरह विष्णुके भक्त वे पुत्र—स्वर्ग, अन्तरिक्ष और पृथ्वीमें अपने बलकी रक्षा करते हैं। ३

---

५ यत्र देवयवः नरः मदन्ति, तत् अस्य प्रियं पाथः अभि अश्याम्, (सः अनन्यभक्तः) सः हि उरुक्रमस्य बन्धुः इत्था, विष्णोः परमे पदे मध्वः उत्सः ॥ ६ (हे पत्नी यजमानौ) वां गमध्यै ता वास्तूनि उश्मसि, यत्र भूरिशृङ्गाः अयासः गावः। अत्राह(पदम्) उरुगायस्य वृष्णः तत् परमं पदं भूरि अवभाति ॥

१ (हे ऋत्विजः) वः अन्धसः पान्तम् महे शूराय धियायते च विष्णवे अर्चत। या (इन्द्राविष्णू) अदाभ्या पर्वतानाम् सानुनि साधुना अर्वता इव महः तस्थतुः।

विष्णुदेव विश्वके अधिपति और भक्तकी रक्षा करनेवाले हैं। आप बड़े उदार और दयाशील हैं। आपने केवल तीन पैरोंसे सब विश्वको व्याप्त किया है। मनुष्यकी आयु बढ़ानेके लिये और मनुष्यकी उन्नति करानेके लियेही केवल आपने विश्वको व्याप्त किया है। विशेष करके आपके इस पराक्रमके लिये हम आपका वर्णन करते हैं। ४

विष्णु सदा आकाशमेंही रहते हैं। आकाशमेंही स्थित होकर आप सब विश्वको देखते हैं। विष्णुके केवल दो पैरोंको हि देखकर मनुष्य आश्चर्यसे मुग्ध हो जाता है। विष्णुके तीसरे पैरकी ओर कोई देख नहीं सकता। मनुष्य अथवा पक्षी चाहे जितना सामर्थ्यवान हो अथवा बुद्धिवान हो; विष्णुके विषयमें कोई किसी प्रकारकी अटकल नहीं कर सकता। ५

चारों जगह सब प्राणियोंके जन्मको भिन्न भिन्न रीतिसे नये प्रकारसे बदल कर विष्णुदेव सब विश्वको सदा घुमाते रहते हैं। आपके शरीरको कोई नाप नहीं सकता। केवल भक्तिसे हि लोग आपका अन्दाज सहज रीतिसे कर सकते हैं। जब भक्त लोग युवा विष्णुको पुकारते हैं तब आप उनकी ओर दौडते चले आते हैं। ६

सूक्त १५६

(ऋषि दीर्घतमा । देवता विष्णु)

आपका यजन केवल घीकी आहुतिसे होता है। आपका वैभव बहुतही बड़ा है। आप सर्व व्यापी हैं। आप भक्तोंके लिये दौड़ते चले आते हैं। इस लिये मित्र मित्रकी नाई आप हमें आनन्द दीजिये। हे विष्णु, यह बात उचितही है कि ज्ञानी लोग आपका यश बढाते और भक्त लोग यज्ञके द्वारा आपको हवि अर्पण करें। इस तरह भक्त लोग आपकी प्रसन्न करते हैं। १

विष्णुदेव सचमुच पुराणपुरुषही है किन्तु आप नये भी हैं। आप सृष्टिको नियत रीतिसे चलाते हैं। आप स्वयम्भू भी हैं। इस लिये जो मनुष्य विष्णुकी भक्ति करता है और विष्णुके अवतारकी स्तुतिभी करता है सचमुच उसको (दैवी) ऐश्वर्य प्राप्त होता है। २

---

४ अस्य इनस्य भानुः आरुरुत्व मे ऋतुः (विष्णो.) सर्वाणि पौंस्यं पृथिव्यादि । यः (विष्णुः) त्रिभि इत् विक्रमभिः उरुगायाय जीवसे पार्थिवानि भुवनानि कृमिष्ठ ।

हे स्तुति करनेवाले लोग, सृष्टि नियमसेही सब धर्मोंकी नींव विष्णुही है। इस लिये, हे लोग, अपने अल्पबुद्धिके अनुसार विष्णुके अवतारकी स्तुति करो और आनन्दसे प्रसन्न रखो। हे लोग, जो यश तुमको विदित हैं उनका वर्णन करो। हे विष्णु, आपकी परमश्रेष्ठ कृपा हम पर बनी रहे। हम आपकी कृपाका अनुभव ले रहे हैं। ३

विष्णु देव मरुतोंपर शासन करते हैं। विष्णुके पराक्रममें भाग लेनेका अधिकार राजा वरुणकाभी है। उसी तरह अश्वी देवकाभी अधिकार है। दिन उत्पन्न करके (विश्वको) प्रकाशित करनेकी शक्ति और उत्कृष्ट सामर्थ्य आपही (विष्णु) में है। इसलिये विष्णु अपने साथीयोंके साथ स्वर्गमें आकर (प्रकाश रूपी) धेनुओंको बन्धनसे मुक्त कर देते हैं। (फैलाते) हैं। ४

इन्द्र स्वयं सत्कर्म्य करनेवाले हैं। इन्द्र बलवान भी हैं। अच्छा काम करनेकी इच्छा करनेवाले विष्णु भी (इन्द्रको) और चले गये। तीनों भुवनोंके अधिपति और शासन करनेवाले विष्णुने आर्य यजमानको आनन्दित किया। श्रेष्ठ धर्म उस (आर्य यजमान) को अर्पण करके उसकी उन्नति की। ५

अनुवाक २२.

सूक्त १५७.

॥ ऋषिः दीर्घतमा औचथ्यः ॥

अग्नि जागृत हुआ है। सूर्यका उदय अन्तरिक्षमें अब होनेवाला है। श्रेष्ठ और सुख देनेवाली उषाभी अपने तेजसे प्रकाशित हुई है। रथको जोतकर अश्वी देव भी तैय्यारीमें हैं। उस समय जगत्प्रेरक परमात्माने सब प्राणियोंको अपना अपना उद्योग करनेके लिये जागृत किया है। १

---

३ हे स्तोतारः तमु पूर्व्यं ऋतस्य गर्भं यथा विद जनुषा पिपर्तन। (युद्ध) नामानि अस्य नाम चित् आ विवक्तन, हे विष्णो महः ते सुमतिम् भजामहे। ४ अस्य मारुतस्य वेधसः (विष्णोः) तं क्रतुं राजा वरुणः तं (क्रतुं) अश्विना (अपि) सचन्त, (तांत) विष्णुः उत्तमं अहर्विदम् च दक्षं दधार, (सः) सखिवान् च (गवां) व्रजम अपोर्णुते। ५ आ विवेश, सुवं ह जगत्पति गर्भं प्रत्नः, सुवं विश्वेषु भुवनेषु अन्तः। सुवं सुवर्णी, अपि च, अपः च, वनस्पतिः गैरयेथाः। १ अग्निः अबोधि, सूर्यः क्षमः उदेति, चेत्रा मही च उषाः अर्चिषा आवः। अश्विना (अपि) रथं यातवे अयुक्षाताम् (युक्तमन् काले) सविता देवः जगत् पृथक् प्रासावीत्।

हे अश्विदेव, जब आप अपनो विजयी रथको जोतकर जानेके लिये तैयार होते हैं तब हमारी सेनापर घी और मधुकी वर्षा करके आप (यश देनेवाली) आशीस दीजिये। हम आपकी स्तुति करते हैं; इस लिये आपकी कृपासे रणभूमिमें हमें यश प्राप्त होवे। आप ऐसा कीजिये जिससे हमें वह सम्पत्ति और ऐश्वर्य प्राप्त होवे। जिसके लिये दोनों दलके वीर आपसमें युद्ध कर रहे हैं। २

हे अश्वि देव, आपका तीन चक्रोंका प्रसिद्ध रथ हमारे (प्रेमरूपी) मधुसे भरा हुआ है। इस लिये उसको आप हमारी ओर लाइये। आपके रथके घोडे बडे शीघ्रतासे दौड़ते हैं। आपके रथमें बैठनेके लिये तीन स्थान हैं। उसके आनेसे भक्त लोगोंका भलाही होता है। इस लिये सबलोग उसको भाग्य देनेवालाही समझते हैं। मनुष्य और चार पैरवाले पशुओंकी ओर आपका रथ आनन्दसे भरा हुआ आवे। ३

हे अश्विदेव, यदि हमें आप कुछ देते हैं तो ओजस दीजिये। आपके चाबुकसे—जिसमें मधु भरा हुआ है—(आशीसका पवित्र) सिञ्चन हमपर कीजिये। द्वेषबुद्धिका नाश कीजिये और सदा हमारी रक्षा कीजिये। ४

स्त्रीजातिमें गर्भकी उत्पत्ति आपहीके प्रभावसे होती है। सब भुवनोंमें आपही चैतन्य फैलाते हैं। हे अश्विदेव, हे पराक्रमी पुरुष, गर्मी और जलवृष्टिको आपही उत्पन्न करनेवाले हैं। वनस्पतियोंको जीवित देनेवाले आपही हैं। ५

आपही बड़े वैद्य हैं; जिनको औषधियोंके सब गुण विदित हैं। आप बड़े महारथी वीर हैं। रथको जोतनेके लिये अच्छे अच्छे घोड़े आपके पास आवश्यक होंगे। उग्रस्वरूप धारणकरनेवाले अश्विदेव, जो आपको बड़े प्रेमसे और भक्तिसे हवि अर्पण करते हैं उनको आप, लोगोंका आधिपत्य दिलाते हैं। ६

---

२ हे अश्विना यत् (युवं) रथम् युञ्जाथे (तदा युवां) नः क्षत्रम् घृतेन मधुना च उक्षतम्। अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतम्, वयं [illegible] धना भजेमहि।

३ अश्विनोः मधुवाहनः त्रिचक्रः [illegible] अर्वाङ् यातु। (सः) त्रिवंधुरः मघवा (अतः) विश्वसौभगः, नः द्विपदे चतुष्पदे शम् आ वक्षत्।

४ हे अश्विना युवं नः ऊर्जम् आ वहतम्, नः मधुमत्या कशया मिमिक्षतम्, आयुः प्र तारिष्टम्, रपांसि मृक्षतम्, द्वेषः सेधतम्, (नः) सचा भुवः नः भवतम्।

५ युवं ह जगतीषु गर्भं धत्थः, युवं च विश्वेषु भुवनेषु अन्तः। (चित्कला भवथः)। हे अश्विना, वृषणा युवं अग्निं, अपः च वनस्पतीन् ऐरयतम्।

६ युवं हि भेषजेभिः भिषजा स्थः, अथो (युवां) रथ्या, रथ्योभिः (युक्तौ) स्थः। अथो हे उग्रा यः हविष्मान्, वाम् मनसा ददाश, (तस्मै) क्षत्रम् अधि धत्थः।

अध्याय ३

सूक्त १५८

॥ ऋषि—दीर्घतमा । देवता—अश्विन ॥

हे अश्वी देव, आप (दैवी सम्पत्तिका) खजाना हैं। रुद्रस्वरूप आपही हैं। सबसे बलवान् और प्रज्ञावान् भी आपही हैं। हे वीरपुरुष, हे अद्भुत कर्म करनेवाले अश्वी देव, उचथ्यका पुत्र हाथ जोडकर आपसे अनमोल धनका भण्डार मागता है। कृपा करके आप उसे उसको दीजिये; देखिये,आप सब लोगोंपर उदारतासे कृपा करते हैं। १

हे दयानिधि, अश्वी देव,यज्ञवेदीके सामने जब हम बडे प्रेमसे आपको वन्दन करते हैं तब आप हम (भक्तों) पर बड़ा अनुग्रह करते हैं। किन्तु उस अनुग्रहके योग्य क्या कोई आपको सेवा करता है ?। हमारे दिव्य तेजको जागृत कीजिये। क्योंकि भक्तोंकी इच्छा पूरी करनेके लियेही आप हमेशा सब जगह सञ्चार करते हैं। २

(हे अश्वी देव), संकट दूर करनेके लियेही आपका रथ हमेशा तैयार रहता है। तुग्रके पुत्रकी सहायता करनेके लिये आपने अपने सामर्थ्यवान् रथको समुद्रके बीचमें ढकेल दिया था। जिस तरह पराक्रमी सेनापति अपने चञ्चल घोडोंके साथ (इधर उधर न जाकर) सहायताके लिये अपनी सेनाकी ओर चला जाता है उसी तरह मैंभी आपहीकी शरण लेता हूं। और यही मेरा कर्तव्य है। ३

इस प्रकार मैं–उचथ्यका पुत्र —आपकी स्तुति करता हूं। इस लिये आप मुझे संकटसे बचाइये। हमेशा भागनेवाली दोनों–दिन और रात–मेरी आयुका नाश न करें (मेरा रस निचोड़ न डालें)। बड़ी बड़ी लकडियोंकी बड़ी होली मुझे मत जला दे। देखिये; जिसने आपके भक्तको बांध दिया था वही अब जमीन पर गिर गया है और मट्टी खाता है। ४

१ हे (अश्विनौ) युवां वसू, रुद्रा, पुरुमन्तौ, वृधन्ता व स्तः, तत् , हे वृषणा, दस्रा, यत् रेक्णः औचथ्यः वां (याचते, तत्) दशस्यतं, यत् युवां अकवाभिः ऊती प्र सस्राथे। २ हे वसू गोः पदे (भक्तिसंयुतेन) नमसा यत् (स्तुमानि) (तस्मै) अस्मै ममत्ये चित (प्रीणनाय) को ददात् ? अस्मे रेवतीः पुरंधीः जिगृतम, (यत् युवां) कामप्रेणेव मनसा चरन्ता। ३ यत् (अयं) वाम् पेरुः (रथः) युक्तो ह (वर्तते)। (सः) पज्रो (रथः) तौग्र्याय, मध्ये अर्णसः (युवाभ्याम्) वि धायि, शूरः (सैनिकः) पतथाभिः एवैः अज्म न (अहं) वाम् अवः शरणम् उपगमेयम्। ४ (इयम्) उपस्तुतिः मा औचथ्यम् उरुष्येत्, इमे पतत्रिणी माम् मा दुग्धाम्। मां दशतयः चितः एधः मा धाक्। यत् (येन) वां (अयं भक्तः) बद्धः (सः) त्मना क्षां प्र खादति।

उन दासोंने मुझे बान्धकर नदीमें फेक दिया तथापि माताकी नाई प्रेम करनेवाली नदियोंने मुझे डुबाया नहीं। त्रैतनने मेरे सिरपर बड़े जोरसे मारा। अब देखिये; उस त्रैतनके शीघ्रही कन्धेका और बदनका चूर चूर होगा। ५

ममताका पुत्र दीर्घतमाको दसवे युगमें अथवा बुढापेमें ब्रह्मपद प्राप्त हुआ। कारण वह उसके कर्मकी सफलता होनेके अनुवंशिक कर्मका उपदेशक बन गया है। ६

सूक्त १५९

॥ ऋषि—दीर्घतमा। देवता—द्यावापृथिवी ॥

विद्वान् लोगोंकी सभामें यज्ञके समय मैं द्यावापृथिवीकाभी स्तवन करता हूं। आप (द्यावा पृथिवी) बहुत बड़े हैं; आप सद्धर्मकी उन्नति करनेवाले हैं और आप बड़े ज्ञानवान् हैं। आप दिव्य लोगोंका माता और पिता हैं। देवोंकी सहायतासे आप बड़े अद्भुत कार्य करते हैं। आप अपने प्रेममे देवोंकी पूज्य कृपाको बढाते हैं। इस तरह शोभाभी और दिखाई देती है। १

जब मैं ईश्वरकी स्तुति करता हूं तब जगत्पिता और जगन्माताका बड़े प्रेमसे मैं सदा चिन्तन करता हूं। सच मुच द्यावा पृथिवीने अमृतको उत्पन्न किया। आपने अपने बच्चोंके लिये विस्तीर्ण भूमिमें अमृतमय अनमोल सम्पत्ति भरा दी। २

सत्कर्म करनेवाले, उदार और आश्चर्यकारक काम करनेमें बड़े कुशल देवोंने द्यावापृथिवीको—मातापिताको—इस लिये प्रकट किया कि हम हमेशा सबेरे सबसे पहले उनका स्मरण करें। हे माता और पिता, इस जगत्में स्थिर और अस्थिर वस्तुओंका व्यापार जिन नियमोंसे चलता है वे नियम आपहीके कारण दृश्य रूपसे दिखाई देते हैं। आपको पुत्र बड़ा सीधा साधा है और आपही उसके स्थानकी रक्षा करते हैं। ३

---

५ नद्यः ह दासाः (मा) सुसमुब्धं अवाधुः (नद्यः) (इमं) [illegible] मा न गरन्। यत् अस्य शिरः त्रैतनः विनक्षत्, (तदपि सः) दासः स्वयं [illegible] अर्दत्।

६ मामतेयः दीर्घतमाः दशमे युगे जुजुर्वान्, अर्थं यतीनां अपां (च) ब्रह्मा नाम सारथिः भवति।

१ विदथेषु, यज्ञैः, (अहं) मही, ऋतावृधा, प्रचेतसा द्यावा पृथिवी प्र स्तुवे, ये देवपुत्रे देवेभिः सुदंससा, इत्था धियः वार्याणि प्रभूषतः।

२ उत हवे मतिभिः (एव) पितुः द्रुहः अद्रुहः मनः, मातुश्च महि स्वतवः (अहं) मन्ये। सुरेतसा पितरा उरु भूम प्रजायाः वरीमभिः अमृतम् चक्रतुः (तत्)।

३ ते सूनवः स्वपसः, सुदंससः, पूर्वचित्तये मही मातरा जज्ञुः। स्थातुः जगतः च धर्माणि (यत्) सत्यं (तत् युवां) पाथः, अद्वयाविनः पुत्रस्य पदं (अपि) पाथः

देवोंका महिमा और सामर्थ्य अपूर्व और अपार है । आपने द्यावापृथिवीको इस तरह उत्पन्न किया । देखनेसे विदित होता है कि वे आपसमें नातेदारही हैं । आप दोनोंका जन्मस्थान एकही है और आप दोनों एकही जगह रहते हैं । ज्ञानवान् और प्रकाशमान् देवोंने अपने कामसे यह दिखलाया है कि आकाशमें और समुद्रके पेटमें आपने एक अद्भुत और नया सम्बन्ध हमेशाके लिये जड़ा दिया है । ४

सबको चैतन्य देनेवाले देवोंने पूज्य और अपूर्व दान दिया है । सूर्य-उदयके समय हम सदा आपका चिन्तन करते हैं । द्यावापृथिवी बड़ी उदारतासे और प्रेमसे उस ऐश्वर्यको दशगुणी करके हमारी ओर ले आवे । ५

सूक्त १६०

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता द्यावापृथिवी ॥

उन द्यावापृथिवीकी ओर देखिये । आप धर्मपर प्रेम करते हैं । आप सब विश्वको सुख देनेवाली है । अन्तरिक्षमें ज्ञानका प्रचार करनेवाली शक्तियोंको आपहीका सहारा है । आपहीके पेटमें बड़े बड़े महात्मा लोग जन्म लेते हैं । उन महात्मा लोगोंके द्वारा ईश्वरकी चतुरता दिखाई देती है । उस दिव्य शक्तिकी चारों ओर सूर्य नियमके अनुसार घूमता रहता है । १

विस्तीर्ण, पवित्र और बड़े द्यावापृथिवीरूपी–मातापिता सब भुवनोंकी रक्षा करते हैं । द्यु और पृथिवीके बीचमें जो पोला प्रदेश दिखाई देता है उसमें रत्नोंकी तरह सुन्दर तारामण्डल है । वह तारामण्डल स्थिर है ! जगत्के पिताने सबोंका रूप मनोहर बनाया है । इस तरह उनकी शोभा बढ़ती हुई दिखाई देती है । २

अत्यन्त पवित्र, अत्यन्त ज्ञानवान्, और सत्कर्मका प्रचार करनेवाले ईश्वरने द्यावापृथिवीरूपी मातापिताके पेटमें जन्म लिया । उनका पुत्र बनकर ईश्वरने अपने अपूर्व सामर्थ्यसे सब भुवनोंको पवित्र किया । अपने भक्तोंको (शुद्ध सत्वरूप) दुग्ध पिलानेके लिये आपने चित्र विचित्र रंगकी गौ और सामर्थ्यवान बैल उत्पन्न किये । ३

---

४ ते मायिनः सुप्रचेतसः, (ते इमे) मिथुना जामी, सयोनी, समोकसा ममिरे, (अतः) कवयः सुदीतयश्च (देवाः) दिवि समुद्रे अन्तश्च नव्यंनव्यं तंतु आ तन्वते ।

५ सवितुः देवस्य तत् वरेण्यम् राधः (तत्) अद्य प्रसवे मनामहे। (तस्मात्) इमे द्यावापृथिवी सुचेतुना वसुमन्तं शतग्विनं रयिम् अस्मभ्यं धत्तम् ।

सब देवोंमें ईश्वर ही केवल कुशल और चतुर है, क्यों कि, सब लोगोंको सुख देनेवाली आकाश और पृथिवीको आपहीने उत्पन्न किया। अपनी अपूर्व चतुरतासे ईश्वरने अन्तरिक्षमें सब भुवनमण्डलोंको उत्पन्न किया। आपहीके आधारपर वे मण्डल अन्तरिक्षमें हमेशा घूमते रहते हैं। आपका आधार कभी पुराना और नष्ट होनेवाला नहीं है। ४

हे द्यावापृथिवी, आप बहुत उदार और बडे हैं। हम आपकी सदा स्तुति करते हैं। इस लिये आप हमारी कीर्ति बढाइये। आपकी कृपासे हमें अधिकारका पद प्राप्त होवे। आप ऐसा कीजिये जिससे आपके भक्तोंकी चारों ओर कीर्ति फैले और उनका सामर्थ्य बढे। ५

सूक्त १६१

॥ ऋषि दीर्घतमा। देवता ऋभु ॥

क्यों? क्या आप हमारी ओर आये हैं? क्या आप सबमे बडे हैं और छोटे हैं? आप किसके लिये आये होंगे? हमने क्या कहा होगा? यह यज्ञपात्र विश्वव्यापक ईश्वरी विभूतिसे उत्पन्न हुआ है। हम उसकी निन्दा नहीं करते किन्तु हे भाई अग्निदेव, हम इस काष्ठपात्रकी वर्णन स्तुतिही करते हैं। १

देवोंने आपसे कहा है कि एक चमससे आप चार चमस कीजिये? यही बात कहनेके लिये मैं आया हूं। हे सुधन्वाके पुत्र, यदि आप इस तरह करोगे तो देवोंकी तरह आपभी पूज्य होंगे। २

हे ऋभु, आप जानते हैं कि अग्नि देवोंका प्रतिनिधि है। हे भाई, उसके पास आपने कहा है कि आप एक अश्व, एक रथ, और एक गाय उत्पन्न करना चाहते है। आपने यह भी कहा है कि आप अपने मातापिताको जवान करना चाहते हैं। उपर्युक्त कार्य करके आप उसके पास चले आओगे। ३

अयं (ईश्वरः) अपसां देवानां अपस्तमः (यतः) यः विश्वशंभुवा रोदसी जजान। यः च सुक्रतूयया रजसी वि ममे, तेच अजरेभिः स्कम्भनीभिः समृ आनर्च।

५ हे महिनी द्यावापृथिवी, ते (युवां) गृणाने महे भवन्, बृहत् क्षत्रं च धारयथः। येन (अस्मार्क कृष्टीः विश्वहा अभिनतनाम, (एतादृशं) पनाय्यं ओजः अस्मे सम् इन्वतम्।

(अयं) किमुश्रेष्ठः किमु यविष्ठः नः आ अजगन्, किं दूत्यं ईयते किंतु यत् ऊचिम। यः महाकुल चमसं न निंदिम, किंतु हे भ्रातः अग्ने, दण; भूतिम इत् ऊदिम।

उपर्युक्त कार्य समाप्त करके आपने पूछा कि "जो देवोंका प्रतिनिधि (अग्नि)हमारी ओर सन्देसा ले आयाथा वह कहां है ?"इतनेमें त्वष्टाने देखा कि चार चमस तैयार हुए हैं। उसी समय वह देव स्त्रियोंमें जाकर छिप गया। ४

त्वष्टाने कहा की "तुमने देवोंके सोम पीनेके चमसोंकी निन्दा की है; इस लिये तुमको मार डालना चाहिये"। हे भाईयो ऋभु, जिस समय उपर्युक्त बात त्वष्टाने कही तबसे सोमरस अर्पण करते समय तुमारी शकल पलट गयी; देवकीसी तुमारी शकल हो गयी। तुमारा रूप पलटनेके कारण स्वर्गकी युवतियां तुमपर मोहित हो गयी और तुमपर प्रीती करने लगी। ५

आपने जो घोडे उत्पन्न कियेथे उनको इन्द्र ले गया। इन्द्रने उन्हे अपने रथको जोता। अश्वि देवोंने रथको तैयार किया। अपनी शकल बदलनेवाली कामधेनुको बृहस्पति अपने साथ ले गया। उपर्युक्त वातें होनेके अनन्तर ऋभु, विभ्वा, और वाज तीनोंको देवोंका सारूप प्राप्त हुआ। तुम सत्कर्म करनेवाले हो; इस लिये यज्ञमें तुमको हविका हिस्सा मिल गया। ६

तुमने अपने अतुल बुद्धिके सामर्थ्यसे केवल एक चमडेसे जीती गौ उत्पन्न की और बूढे हुए मातापिताको फिर जवान बनाया। हे सुधन्वाके पुत्र, तुमने एक साधारण अश्वसे एक अपूर्व अश्व उत्पन्न किया। तदनन्तर रथको जोतकर तुम देवोंकी ओर चले गये। ७

हे ऋत्विज, आप ऋभुओंसे ऐसी विनति की जिये कि "आप यह जल पीजिये;अथवा मुंज तृणसे पवित्र किया हुआ और छाना हुआ यह शुध्द जल पीजिये। हे सुधन्वाके पुत्र, यदि उपर्युक्त जल पीना आप नहीं चाहते तो तीसरी आहुति देते समय सोमरस पीकर आप आनन्दित हूजिये।" ८

---

४ हे ऋभवः तत् चकृवांसः (यूयम्) अपृच्छत "यः दूतः नः आ अजगन् स्यः क इत् अभूत्" इति यदा त्वष्टा चमसान् चतुरः कृतान् अव अख्यन् , आदित् सः ग्नासु अंतः नि आनजे।

५ "ये देवपानं चमसं अनिंदिषुः (तान्) एतान् हनाम" इति त्वष्टा यद् अब्रवीत् (तदानीमेव) सुते सचा अन्या नामानि कृण्वते, एनान् च (देव) कन्या अन्यैः नामभिः (एव) स्परत्।

६ इंद्रो हरी युयुजे, अश्विना रथं (युयुजाते), बृहस्पतिः विश्वरूपां (गां) उप अजत। (तदानीं) ऋभुः विभ्वा वाजश्च (यूयं) देवान् अगच्छत, सु अपसः यूयं यज्ञियं भागं ऐतन।

७ (यूयं) शचीभिः चर्मणः (एव) गां निः अरिणीत, या जरन्ता ता युवशा अकृणोतन। हे सौधन्वनाः अश्वात् अश्वं अतक्षत, युक्त्वा च रथं देवान् उप अयातन।

८ "इदं उदकं पिबत" इति (ऋभून्) अब्रवीतन, "इदं च मुंज नेजनम् वा पिबत, हे सौधन्वनाः यदि तत् नैव हर्यथ तृतीये सवने च (सोमरसेन) मादयाध्वै"।

एक ऋभुने कहा ' सबसे उदकका उपयोग अधिक है '। दूसरे ऋभुने कहा ' सबसे अग्नि श्रेष्ठ है ' तीसरा ऋभु कहने लगा कि 'सबके लिये निजको जलाने-वाली भूमि अत्यन्त उपयोगी है । ' इस तरह भिन्न भिन्न तत्त्वोंपर वाद प्रतिवाद करते करते तुमने सहज रीतिसे चारों चमसोंको तैयार कर डाला । ९

एक ऋभु अच्छे शरीरके गौको जलके पास ले जाता है । दूसरा ऋभु छुरीसे काटकर किये हुए मांसके टुकडोंको यज्ञके समय ठीक ठीक जगहपर अच्छी तरहसे रखता है । तीसरा ऋभु संध्याकालके समय वध किये हुए पशुके मांसका यज्ञके अयोग्य भागको दूर जाकर फेंक देता है । यज्ञके समय मातापिताको इससे अधिक अपने पुत्रसे क्या चाहिये । १०

हे शूरपुरुष, तुमने अपने आश्चर्यकारक कुशलतासे पशुओंके लिये टीलेपर घास उत्पन्न किया और पहाडके गहरे दरारोंमें स्वच्छ जल उत्पन्न किया । इतनी बातें करनेपरभी सूर्यके घरमें जाकर आप आरामसे सोते हैं । किसी तरह सूर्य छिपा नहीं जाता । वही काम आप फिर शुरू क्यों नहीं करते ? । ११

सब भुवनोंको छिपाकर जब तुम चारों ओर फैले हुए थे तब तुमपर प्रीति करने वाले माता-पिता-किस जगह बैठे हुए थे ? जिसने तुमारे हाथ पकडे थे उसको तुमने शाप दिया किन्तु जिसने तुमारी स्तुति की थी उसको तुमने आशीर्वाद दिया १२

जब आप सोनेके बाद जाग उठे तब आपने सूर्यको पूछा कि "हे सूर्य, जो किसी तरह छिपा नहीं जाता इसको किसने जगाया ? बकरेने उत्तर दिया कि कुत्तेने तुमको जगाया । सालभरमें आपको पहले महल उसने आजही देखा । १३

---

९ "आपः भूयिष्ठाः" इति एकः अब्रवीत्, अन्यः "अग्निः भूयिष्ठः" इति अब्रवीत् । एकः (भूमि-दन्तु) "बहुभ्यः वधर्यन्तीं (भूमिम् अभिकृत्य) प्र अब्रवीत् । (एवम्) ऋता वदन्तः चमसान् अपिंशत ।

१० एकः श्रोणाम् नाम उदकम् अव अनति, एकः शूनया आभृतम् (मेदो) मांसं विशांत । एकः (अपरः) आ निम्रुचः शकृत् (आर्दीनं) अप अभरत्, (एतस्मात्) किंस्वित् (अन्यत्) पितरौ पुत्रेभ्यः उप आवतुः— ।

११ हे नरः (यूयम्) अस्मै (पशुजाताय) उद्वत्सु तृणम् निवत्सु अपः सु अपस्यया अकृणोतन । यत् (च) अगोह्यस्य (सूर्यस्य) गृहे अससस्तन, तद् इदं (कस्मात्) न अनुगच्छथ ।

१२ यत् (यूयं कृत्स्नानि) भुवनानि संमील्य परि असर्पत वः पित्रा पितरा क्व स्वित् आसतुः । यो वः करम् आददे (तम्) अशपत, यः (वः) प्र अब्रवीत् तस्मै प्र अब्रवीतन ।

१३ सुषुप्वांसः (यूयं) तद् अपृच्छत हे अगोह्य इदम् कः नः अबूबुधत् । बस्तः श्वानं बोधयितारम् अब्रवीत्, अद्य संवत्सरे (पुनः) इदम् (वः) व्यख्यत ।

मरुत् देव उच्च आकाशमें संचार करते हैं. अग्निदेव पृथ्वीपर प्रदीप्त होते हैं और वायुदेव अन्तरिक्षमें चलते हैं। वरुण देवभी समुद्रके बहते हुए जलके बीचमें संचार करते हैं। किन्तु हे सामर्थ्यवान् ऋभु, आप ऐसे हैं कि वे सब देव आपका साथ रखनेकी सदा इच्छा करते हैं। १४

सूक्त १६२.

॥ ऋषि-दीर्घतमा । देवता-आश्विन ॥

इस यज्ञके समय विद्वान् लोगोंकी सभामें प्रत्यक्ष देवोंसे उत्पन्न हुए चपल और तेज अश्वके गुणोंका वर्णन करना हम चाहते हैं। इस समय मित्र, वरुण, अर्यमा, मरुत्, विश्वका प्राण और प्रभु इन्द्र आदि देवताएं हमारा त्याग न करें। २४ १

उपर्युक्त (मेध्य) घोडा ऊंचे दर्जेके कपडे पहिनकर अच्छी तरह सिद्ध हुआ बडे ठाठसे चलता है। उसके आगे लोग भी बली हाथोंमें लेकर चलते हैं। इन्द्र और पूषाके घर जानेके लिये एक चित्र विचित्र रंगका बकराभी चिल्लाता हुआ बडे ठाठसे चलता है। २५ २

जो बकरा तेज घोडेके आगे चलता हुआ दिखाई देता है वह देवोंका बडा प्यारा है। किन्तु इस यज्ञके समय पूषा देवको उसका बलिदान होनेवाला है। उस बकरेकी आहुति देव बडे आनन्दसे चाहते हैं। यह बात प्रकट है कि यह देवोंका बडा प्यारा पुरोडाश है। इस लिये विदित होता है कि त्वष्टा उस (बकरे) को उस अश्वके साथ आगे आगे चलाता है और यज्ञकी ओर ले जाता है। २६ ३

देवलोकको जानेके लिये तैयार हुए और हविर्भागके तौरपर अर्पण किये हुए अश्वको ऋत्विज बलिदान देते समय अग्निकी चारों ओर तीन दफे घुमाते हैं। यज्ञके समय अश्वका बलिदान होनेके पहले बकरेका बलिदान सबसे पहले पूषा देवके लिये अर्पण किया जाता है। यज्ञका आरंभ होते ही बकरेका बलि प्रथम अर्पण किया जाता है। जब बकरेका बलि दिया जाता है तब वह बकरा देवकी ओर स्वर्गमें चला जाता है। २७ ४

---

१४ मरुतः दिवः यान्ति, भूम्याः अग्निः अयम् वातः अंतरिक्षेण याति। वरुणः अद्भिः याति (परंच त्वा इते) हे शवसः नपात्, पुत्रान्, इच्छन्तः।

हे होता, अध्वर्यु, आवया, अग्निमिध, ग्रावस्तुत, प्रस्तोस्ता, और विद्वान् ब्रह्म आदि ऋत्विज, इस यज्ञमें घीका प्रवाह इतना बहना चाहिये कि यज्ञकी समाप्ति अच्छी तरह होवे । ५

यज्ञके लिये यूप तैयार करनेवाले, यूपको लानेवाले, यूपके चोटीको अच्छी तरह सजानेवाले, (मेध्य अश्वका मांस पकानेका बरतान तैयार करनेवाले) आदि सब लोग सन्तुष्ट होवें और हमारे यज्ञकी सिद्धि आनन्दसे सफल होवे । ६

जब मैं अच्छी तरहसे स्तोत्र गाने लगा तब वह हृष्टपुष्ट अश्व देवलोकको जानेके लिये तैयार हुआ । स्तुति करनेवाले लोग और ऋषि बड़े हर्षसे उस अश्वको पहुंचानेके लिये गये । जब वह अश्व देवलोकको चला गया तब देव बड़े प्रसन्न हुए । उस अश्वको हमभी अपने बन्धुके समान मानते हैं । ७

उस चपल घोडेकी रस्सी, उसके पैर बान्धनेकी रस्सी, उसके खानेका घास, और उसने मुहमें जो घास धरा है वह, आदि सब वस्तुएँ उसके साथ स्वर्गमें चले जावें । ८

उस मेध्य घोडेका मांस, जो मांस मक्खीने खाया होगा, जो मांस लकडी और छुरीको चिपका होगा, और जो मांस हाथ और नखोंकोभी चिपका होगा वे सब मांसके टुकडे देवोंको जा पहुंचे । ९

[illegible] होता, अध्वर्यु आवया: अग्निमिन्ध: [illegible] सुविप्र: [illegible] कल्पित: [illegible] तेन स्वरंकृतेन सु इष्टेन [illegible] आ पृणध्वम् ।

[illegible] ये च यूपाय तक्षति, ये च अश्वयूपाय [illegible] पचनं संभरन्ति, तेषां [illegible] आभिगूर्ति: न: इन्वतु ।

[illegible] मे मन्म सुमत् अधायि (हृष्टपुष्ट: [illegible] , वीतपृष्ठ: (अश्व:) देवानां [illegible] प्र आगात् । विप्रा: ऋषय: एनम् अनुमदन्ति, देवानां पुष्टे (प्राप्ति, वर्धने) [illegible] ।

[illegible] सर्वेषा: [illegible] शीर्षण्या ([illegible]) अस्य रज्जु: [illegible] वा घ अस्य आस्ये [illegible] सर्वा ता ते अपि देवेषु अस्तु ।

[illegible] मक्षिका आश, यत् वा स्वरौ स्वधितौ [illegible] अस्ति । यत् च [illegible] हस्तयो: [illegible] सर्वा ता ते अपि देवेषु अस्तु ।

पेटमें अपक घासका जो भाग रहता है वह सड़ जाता है । कच्चा मांसभी गंदा रहता है। इस लिये मांस काटनेवाले लोग उस मांसको साफ धोकर स्वच्छ करें। और वे मेध्य मांसको अच्छी तरह पकावे । १०

जब मेध्य मांस चूल्हेपर पकता है तब उसका कुछ भाग उबलने लगता है और कुछ हिस्सा बाहर निकल जाता है। जब उस मांसके भूजते हुए कुछ टुकडे लोहशूलपर चिपक जाते हैं तब कुछ हिस्सा पिघल जाता है । जमीन और घासपर पड़े हुए वे सब मांसके अंश खराब न होवे । वे सब मांसके अंश देवोंको जा पहुंचे । ११

जवान घोड़के मांसको पकानेका और देखनेका अधिकार जिसका रहता है वह कहता है कि ' अब इसका अच्छा सुवास चल रहा हैं; इस लिये (बरतानको नीचे उतारो)' । जो लोग मेध्य अश्वके मांसकी इच्छा करते हैं वे सन्तुष्ट होवे और हमारे कार्यमें सहायता देवें । १२

मेध्य अश्वका मांस पकानेके लिये एक बड़े लोहेके चमचकी, एक बड़े पीतलकी थालीकी, एक ढकनकी, एक लोहेकी कड़ाहीकी और एक बड़े लोहेकी जंजीर (कड़ी) की आवश्यकता है । १३

जिस स्थानमें वह अश्व आनन्दसे बैठता था वह आनन्द, उसने पीया हुआ जल, और खाया हुआ घास आदि सब वस्तुएं, उस अश्वको देवलोकमें मान्य होवे । १४

---

33 १० उदरस्य यद् ऊवध्यम् अपवाति, आमस्य क्रविषः यः गंधः अस्ति, तद् शमितारः सुकृता कृण्वन्तु उत मेधम् शृतपाकम् पचन्तु ।

34 ११ (हे अश्व) अग्निना पच्यमानात् ते गात्रात् यद् अवधावति, निहतस्य ते अधि शूलम् (यद्) अवधावति, तत् भूम्यां मा आश्रिषत्, मा तृणेषु (भवेत्). तत् उशद्भ्यः देवेभ्यः रातम् अस्तु

35 १२ ये वाजिनं पक्वं परिपश्यन्ति, ये (अयं) सुरभीः ईम निर्हर इति आहुः येच अर्वतः मांसभिक्षाम् उपासते, उतो तेषाम् अभिगूर्तिः नः इन्वतु ।

36 १३ यत् मांस्पचन्याः उखायाः नीक्षणं, या यूष्णः आसेचनानि पात्राणि, चरूणाम् ऊष्मण्या (वा) अपिधाना, अङ्काः सूनाः (एतानि) अश्वम् परिभूषन्ति ।

37 १४ अर्वतः यद् निक्रमणं निषदनम्, विवर्तनम् यच्च पड्बीशम्, यच्च (उदकं) पपौ घासिं जघास, सर्वा ते अपि देवेषु अस्तु ।

मेध्यमांस अधिक पकनेके कारण अग्निके धुएं का वास न आवे । जिस बरतानमें मांस पकता है वह बरतान नीचे गिर न जावे । जलनेका मांसका कुछ हिस्सा उबलनेके बाद अग्निमें गिरकर जल न जावे । जब मांसका अच्छी तरहसे हवन किया जाता है, जब मांस स्वादिष्ट बनता है, और जब पका हुआ मांस ' वषट् ' शब्दसे पवित्र किया जाता है तब देवलोग उस अश्वके मांसको पसन्द करके उसका स्वीकार करते हैं । १५

घोडेकी झूल, उसका सुवर्णका जीन, उसका लगाम, उसके पैर बान्धनेकी रस्सी, साफ करनेका कपडा आदि अश्वका सब सामान उसके साथ देव लोकको भेजनका प्रचार है । १६

दौड़ते दौड़ते थक जानेके बाद यदि किसीने तुमको (अश्वको) चाबूकसे पीटाहुआ हो, तो तुमको दुःख हुआ होगा । इस यज्ञमें होमके चमचेसे और मेरे स्तवनसे तुमारे दुःखका नाश होवे । १७

वह मेध्य अश्व बलि दिया जाता है । इस लिये सब देव उसपर भाईके समान प्रेम करते हैं । उसकी पसलीकी चौंतीस हड्डीयोंमें छुरी घुसती है । हे अश्व के काटने वाले लोग, इस अश्वके सब गात्रोंको बड़ी कुशलतासे अलग अलग कीजिये । प्रत्येक अवयवके जोडका नाम कहकर उसको काट डालिये । १८

प्रत्यक्ष त्वष्टाने उस अश्वको उत्पन्न किया, उसका काटनेवाला एक ही होता है । किन्तु उसको पकडनेवाले दो होते हैं । इसका प्रचार ही ऐसा है । (हे अश्व) जिस अनुक्रमसे तुमारे अवयव काटे जाते हैं उसी अनुक्रमसे मैं उसका बलि यज्ञाग्निमें अर्पण करता हूं । १९

---

१५ (हे अश्व) त्वा धूमगन्धिः अग्निः मा ध्वनयीत्, भ्राजन्ती उखा जघ्रिः मा अभिविक्त । इष्टम् वीतम् अभिगूर्तम् वषट्कृतम् (एतादृशमेव) तम् अश्वम् देवासः प्रति गृभ्णन्ति ।

१६ यद् अश्वाय अधीवासं वासः उपस्तृणन्ति, या अस्मै हिरण्यानि (परिष्कृतानि) यद् च संदानम्, पड्बीशम् च (एतानि) प्रिया (वस्तूनि) अश्वं देवेषु आ यमयन्ति ।

१७ (हे अश्व) ते सादे महसा शूकृतस्य यद् (कोपि) पार्ष्ण्या वा कशया वा (त्वां) तुतोद, ते सर्वा ताता (दुःखानि) हविषः स्रुचेव (मे) ब्रह्मणा (अपि) सूदयामि ।

१८ वाजिनः देवबन्धोः अश्वस्य चतुस्त्रिंशत् वंक्रीः स्वधितिः समेति । (हे विशसितारः) गात्रा वयुना अच्छिद्रा कृणोत, परुष्परुः अनुघुष्य वि शस्त ।

१९ त्वष्टुः (अश्व) अश्वस्य एकः विशस्ता (भवति), द्वा यन्तारा भवतः, तथा ऋतुः ते गात्राणां या ऋतुथा कृणोमि ता ता पिण्डानाम् अग्नौ प्रजुहोमि ।

जब इस लोकको (हे अश्व) तुम छोड जाते हो तब तुमारे प्राणकों किसी प्रकारका दुःख न होवे । तुमको काटनेवाले की छुरी तुमारे गलेमें रुक न जावे । तुमको काटनेवाला मनुष्य अपने अज्ञानके कारण गिद्धकी तरह तुमारे गात्रोंको अयोग्य स्थानमें काटकर बिगाड न डाले । २०

(हे अश्व), तुम मरोगे नहीं; अथवा तुमारा नाश भी नहीं होगा । सुलभ मार्गसे तुम देवोंको ओर चले जाते हो । प्रत्यक्ष इन्द्रके हरिद्वर्ण (हारे रंगके) अश्व और मरुत् देवकी हरिणो तुमारे साथ रथको जोते जायेंगे । अथवा अश्वी देवके जोरसे हिनहिनानेवाले बलवान् घोडोंकी जगह तुम जैसे जवान अश्व जोते जाओंगे । २१

यह तेज अश्व यज्ञको अर्पण किया हुआ है । वह हमें उत्तम गोधन देवे, वह हमे अश्व की सम्पत्ति देवे; वह हमें वीर्यशाली पुत्र देवे; वह हमें (दिव्य) सम्पत्ति देवे, वह हमारी सब तरहसे उन्नति करें । अनाद्यनन्त अदिति हमें पापसे मुक्त करें और यह अश्वमेध हमें अधिकार प्राप्त करा दे । २२

सूक्त १६३

॥ ऋषि दीर्घतमा । देवता—अश्वस्तुति ॥

(हे यज्ञीय अश्व,) तुमारा जन्म चाहे समुद्रसे हुआ हो अथवा मेघोदकसे हुआ हो । जब तुम उडकर अन्तरिक्षमें हिनहिनाकर प्रगट हुए तब तुमारा रूप कुछ और था । तुमारे पंख श्येन पक्षीकेसे चपल थे । तुमारे पैर हरनकेसे चञ्चल थे । हे अश्व, तुमारा बडा भाग्य है कि इस तरह तुमारा जन्म बहुत अच्छा हुआ है । १

यमने इस अश्वको दे दिया । त्रितने उसपर शूल डालकर उसको सजाया । उसके बाद इन्द्र स्वयं सबसे पहले उस पर सवार हुए । उसका लगाम पकडकर गन्धर्व खडा हुआ । हे वसुदेव, इस दिव्य अश्वको आपने सूर्यसे उत्पन्न किया । २

---

२० (ते) प्रियः आत्मा अपियन्तं त्वा मा तपत्, स्वधितिः ते तन्वः आ मा आतिष्ठिपत्, गृध्नुः अविशस्ता अतिहाय, ते गात्राणि असिना मिथु छिद्रा मा कः

२१ (हे अश्व) एतत् न वा उ म्रियसे, न रिष्यसि (परंच) देवान् इत् सुगेभिः पथिभिः एषि (इंद्रस्य) हरी ते युञ्जा (उत वा मरुताम्) पृषती (युंजा) अभूताम्, (अथवा) रासभस्य धुरि (त्वं) वाजी उप अस्थात् ।

(ईश्वरकी) अद्भुत लीलाकी दृष्टिसे देखनेसे विदित होता है कि हे अश्व, आपही स्वयं यम हैं । आप स्वयं आदित्य हैं।और आप स्वयं त्रितही हैं। सोमरसभी स्वयं आपही हैं । सब लोग कहते हैं कि तुमारा तीन बन्धनभी स्वर्गलोकमें हैं । ३

लोग कहते हैं कि "(हे अश्व) स्वर्गमें तुमारे जन्मस्थान तीन है, मेघोदकमें तुमारे जन्मस्थान तीन हैं, और समुद्रमेंभी तुमारे जन्मथान तीन हैं ।" कहते हैं कि वरुणकी तरह तुमारा जन्मभी श्रेष्ठ स्थानमें हुआ है । मुझे कहिये कि आपका जन्म कहां हुआ । ४

हे बलवान् अश्व, यह वही स्थान है, जहां तुमारा शरीर स्वच्छ किया जाता है । यह वही स्थान है जहां तुम अपने विजयके बडे आनन्दसे अपने खुरोंसे मट्टी उछलते थे । यहां तुमारी मंगलदायक रस्सी पडी हुई मैंने देखी थी । जो लोग सत्यधर्मकी रक्षा करते हैं वे ही उस रस्सीकोभी रक्षा करते हैं । ५

जिस तरह पक्षी नीचेसे ऊपर उडता है उसी तरह आपकोभी अन्तरिक्षमें उडते हुए मैंने अपने मनसे देखा । पवित्र मार्गसे ऊपर जानेवाले और पंखोंके द्वारा उडनेवाले आपके मस्तकको मैंने देखा है । जिस मार्गसे आपका मस्तक ऊपर उडता है उस मार्गपर पाप और गन्दा रजः कण दिखाई नहीं देता । ६

इस यज्ञमण्डपमें तुमारी मनोहर शकल मैंने देखी । जब तुम वेदीके पास हविरन्नका आस्वाद ले रहे थे उस समय तुमारा रूप बडा उत्साही दिखाई देता था । जब भक्तोंने खानेकी वस्तु तुमारे सामने धर दी तब तुमने उस घासको (तृण्णाहारको) एकदम खा डाला । ७

---

३ हे अर्वन् (भगवतः) गुह्येन व्रतेन (त्वं) यमः असि, आदित्यः असि त्रितश्चासि । सोमेनापि समया विपृक्तः असि, दिवि ते बन्धनानि त्रीणि इत्याहुः ।

४ ते दिवि बन्धनानि त्रीणि, इति आहुः अप्सु त्रीणि, समुद्रे अन्तः च त्रीणि (इत्याहुः) उत हे अर्वन् वरुण इव यत्र ते परमम् जनित्रम् आहुः (तद्) मे छन्त्सि ।

५ हे वाजिन् इमा ते अवमार्जनानि, इमा (ते) सनितुः शफानां निधाना । ते भद्रा रशनाः अत्रा-पश्यम्, याः ऋतस्य गोपाः अभिरक्षन्ति ।

६ (हे अश्व) ते आत्मानम् अवः दिवः पतंगमिव उत्पतंतम् मनसा आरात् अजानाम् । (अपि च ते पतत्रि शिरः अरेणुभिः सुगेभिः पथिभिः जेहमानम् अपश्यम् ।

७ अत्र गोः पदे आ ते उत्तमम् रूपम् इषः जिगीषमाणम् अपश्यम् । यदा च मर्तः ते भोगम् अनु आनट् आदित् (त्वं) ग्रसिष्ठः ओषधीः अजीगः ।

हे अश्व, रथ, पराक्रमी योद्धा, धेनुओंका समूह, कुमारीयोंके प्रेम (कटाक्ष) और मरुद्गण, आदि सब लोग तुमारे साथकी इच्छा करके तुमारे पीछे चले गये) देवभी तुमारे पराक्रमकी प्रशंसाही करते थे। ८

विदित होता है कि इस दिव्य अश्वकी अयाल सुवर्णकी बनी हुई है; मानों, उसके पैर फौलादके बने हुए हैं। इन्द्र—जो मनसेभी वेगवान् है और जिसके सामने किसीका भी कुछ नहीं चलता—उस दिव्य अश्वका स्वामी है। उस अश्वके बलिदानका स्वीकार करनेके लिये सब देव उपस्थित थे इतनाही नहीं किन्तु इन्द्र देव भी—जो उस अश्वपर सबसे पहिले आरूढ हुआ था—उपस्थित था। ९

दिव्य लोकके हृष्ट पुष्ट, सुन्दर, चपल और तेज घोडे अनुक्रमसे हंसमालिकेकी तरह बडी शीघ्रतासे दौडते हैं। सब घोडे स्वर्गमार्गपर एकत्रित होकर आकाशको व्याप्त करते हैं। १०

हे अश्व, तुमारा शरीर पक्षीकी तरह (आकाशमें) उड्डान कर सकता है। तुमारा मनभी वायुकी तरह वेगवान है। तुमारी अयाल इतनी बडी है कि वह सब दूर फैली हुई दिखाई देता है। वनमें तुमारी अयालका अवाज सुनाई देता है। ११

बलिदान करनेके स्थानपर वह जवान घोडा आ पहुंचा। इस समय उस अश्वका हृदय देवके ध्यानमें मग्न है। इस घोडेका भाई बकराभी उसके आगे चल रहा है। घोडा और बकरेके पीछे पवित्र स्तुति करनेवाले लोगभी चल रहे है। १२

---

८ हे अर्वन् रथः अनु त्वा, मर्यः (अपि) अनु (त्वा), गावः अनु, कनीनाम् भगः अपि (त्वाम्) अनु (इयुः) व्राताः तव सख्यम् अनु ईयुः, (एवम्) देवासः ते वीर्यं अनु ममिरे।

९ (अस्य) हिरण्यशृङ्गः अस्य पादाः अयः (भवन्ति), मनोजवाः अवरः इन्द्रः (अस्य अधिभूः) आसीत्। (अतः) अस्य हविरद्यं देवाः इत् आयन्, यः (एनं) अर्वन्तम् प्रथमः अध्यतिष्ठत् (सोपि आयात्)।

१० ईर्मान्तासः सिलिकमध्यमासः दिव्यासः शूरणासः अत्याः (एते) अश्वाः हंसा इव श्रेणिशः संयतन्ते, यदा (ते) दिव्यं अज्मम् आक्षुः।

११ हे अर्वन् तव शरीरम् पतयिष्णु, तव चित्तं वात इव ध्रजीमान्, तव शृङ्गाणि पुरुत्रा विष्ठिता अरण्येषु जर्भुराणा चरन्ति।

१२ (अयं) वाजी अर्वा देवद्रीचा मनसा (मन्यमानः) दीध्यानः शसनम् उप प्र अगात्। अजः अस्य नाभिः पुरः नीयते पश्चात् कवयः रेभाः अनुयन्ति।

वह अश्व उच्च स्वर्गलोकमें जा पहुंचा। उस अश्वको जगत्पिता और जगन्माता।काभी दर्शन हुआ। हे अश्व, सन्तुष्ट हृदयसे देवोंका दर्शन कीजिये।स्तोतृजनभी यजमानको ईश्वरकी कृपाका लाभ होनेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करते हैं। १३

देखिये; यह (किरणरूपी) सफेत बालोंका पुराणा आचार्य। इसका दूसरा भाई बडा खाऊ है। इसके तीसरे भाईका शरीर घीसे लिपट जानेके कारण बड़ा दीप्तिमान दिखाई देता है। सब लोगोंके स्वामीका और उसके सात पुत्रोंका दर्शन मुझे यहांही हुआ। १

एक चक्रके रथको सात मनुष्य जोतकर तैयार करते हैं। उस रथको एकही घोडा जोतते हैं, किन्तु उसका रूप सात प्रकारका है। उस रथका चक्र तीन स्थानमें गांठदार है। वे कभी घिसते नहीं हैं। उनका कभी नाशभी नहीं होता। इस एक चक्रके आधारपर ही सब भुवन अच्छी तरह घूम रहे हैं। २

दूसरा एक रथ सात चक्रोंका है। उसमें सात मनुष्य बैठते हैं। उसको सात घोडे जोते हुए रहते हैं और सात बहिनी उस रथके महत्त्वका वर्णन करते हैं। क्योंकि उस रथके स्थानमें दिव्य धेनुओंके सात रूप गुप्त रीतिमें छिपे हुए हैं। ३

क्या किसीने उस ईश्वरको उत्पन्न होते हुए देखा है जो सब स्थूल विश्वको सम्भालता है और जिसके शरीरमें हड्डी न होनेपर भी जो हड्डीयोंसे भरे हुए प्राणियोंकी रक्षा करता है? उस पृथ्वीका जीवनतत्त्व और आत्मतत्त्व उस समय कहां था जो जो वस्तुएँ पृथ्वीमें भरी हुई है वे उस समय कहां थी? जिसको उपर्युक्त बातें मालूम थी उसको पूछनेके लिये कौन गया था। ४

---

१३ (ततः) अर्वान् परमम् यत् सधस्थं (तत्) पितरं मातरं च अच्छ (प्रति) अगात् (तस्मात्) हे (अश्व) अद्य (त्वं) जुष्टतमः देवान् गम्याः हि, अथ (कामनावान्) दाशुषे वार्याणि आशास्ते।

१ अस्य वामस्य पलितस्य होतुः—तस्य मध्यमः भ्राता अश्नः अस्ति। अस्य तृतीयः भ्राता घृतपृष्ठः। अत्र अस्मिन् सप्तपुत्रम् विश्पतिम् अपश्यम्।

२ एकचक्रं रथं सप्त युञ्जन्ति, सप्तनामा एकः अश्वः (तं) वहति (तत्) नाभि त्रिनाभि, अजरं अनर्वम् च यत्र इमा भुवना अधितस्थुः।

३ इमं रथं ये सप्त (ते) अधि तस्थुः तं (सप्तचक्रं) रथं सप्त अश्वाः वहन्ति। सप्त स्वसारः अभि सं नवन्ते, यत्र गवां सप्त नाम निहिता (सन्ति)।

४ यत् अनस्थाः (सन्) अस्थन्वन्तं (इदं विश्वं) बिभर्ति (तं परमात्मानम्) प्रथमं जायमानम् कः (अपि) ददर्श (किम् ? न कोऽपि)। भूम्याः असुः असृक् आत्मा क्व स्वित् एतत् विद्वांसं प्रष्टुं कः उपगात्।

मेरे मनमें कुछ कपट नहीं है किन्तु मैं अज्ञानी हूं । इस लिये मैं पूछता हूं कि ईश्वरका रूप जो बिलकुल गुप्त है-किस प्रकारका है । देखिये; ज्ञानी लोक एक वर्षके वत्स (सूर्य) के शरीरपर सात धागेका भक्ति (उपासना) रूप वस्त्र फैलाते हैं । ५

इस विषयमें मुझे कुछ नहीं समझता है । मैं अज्ञानी हूं । जिन ज्ञानी लोगोंको ईश्वरके तत्त्वकी सब बातें विदित हैं उनसे मैं पूछता हूं कि बिनाजन्मके ईश्वरके-जो छः लोगोंको धारण करता है-रूपमें कुछ भिन्नता है या एकता है । ६

जिनको उपर्युक्त बातें विदित होवे मुझे शीघ्रही सब कह दे । उस मनोहर दिव्य पक्षीका निवासस्थान बहुत गूढ है । उसकी (किरणरूपी) धेनूएँ ऐसी है कि जिनके मस्तकसे दूधका प्रवाह चलता है । वे धेनूएँ तेजोमय वस्त्र पहिनती हैं और पैरोंसे जल पीती हैं । ७

जब यज्ञमें भूमाताने पिता (द्यु) की सेवा की तब पिताने ध्यानसे और मनसे भूमाताके साथ पहले पहल समागम किया और (द्युरूपी) पिताने सेवा करनेवाली पत्नीपर वृष्टयुदककी वर्षा की । भक्तलोग दोनोंके पास चले गये और दोनोंकी स्तुति करने लगे । ८

दक्षिणा नामकी यज्ञधेनूका काम करनेके लिये भूमाता तैयार हुई । भूमि भीजी हुई थी । मेघरूपी धेनूके पेटमें गर्भ उत्पन्न हुआ । वत्स चिल्लाकर अपनी माताकी ओर देखने लगा । यह गोमाता ऐसी है कि इस भुवनमें वह अपना चाहे सो रूप धारण कर सकती है । ९

५ मनसा पाकः अविजानन् (च) देवानां एना निहिता पदानि (अधिकृत्य) पृच्छामि । (यतः) कवयः बष्के बष्कये अधि, (वत्से) ओतवै उ सप्त तन्तून् वितत्निरे ।

६ अचिकित्वान् (अहं) न विद्वान् (च) अत्र चिकितुषः चित् कवीन् विद्मने पृच्छामि । (यत्) (यः) इमाः षट् रजांसि तस्तंभ (एतादृशस्य) अजस्य रूपे किं स्वित् एकम् (अस्ति खलु) ।

७ यः अङ्ग ईम् वेद (सः) इह ब्रवीतु । अस्य वामस्य वेः पदं निहितम् । अस्य गावः (ईदृशाः अपूर्व्याः यत् ताः) शीर्ष्णः क्षीरं दुह्रते (आपश्च) वव्रिम वसानाः उदकम् पदा अपुः ।

८ माता पितरम् ऋते आबभाजे, (सोऽपि) अग्रे धीती मनसा च संजग्मे हि । सा बीभत्सुः गर्भरसा निविद्धा, (तदा कवयः) नमस्वन्तः इत् उपवाकम् ईयुः ।

९ दक्षिणायाः धुरि (भू) माता युक्ता आसीत् । वृजनीषु अन्तः गर्भः अतिष्ठत् । वत्सः अमीमेत् त्रिषु योजनेषु विश्वरूप्यं गाम् अनु अपश्यत् ।

(हे आदित्यरूपी परमेश्वर), मातृरूपी तीन और पितृरूपी तीन ऐसे मिलकर छः भुवनोंको आप अकेले धारण करके खड़े हैं । इतना बोझ धारण करके भी आप थक नहीं जाते । स्वर्गलोकमें रहनेवाले देव आपसमें एक ऐसी भाषा बोलते हैं कि वह किसीके समझमें नहीं आती । किन्तु वे आपसमें उस भाषाके द्वारा अपना मतलब समझ लेते हैं । १०

इस सृष्टिक्रमके चक्रके बारा डण्डे होते हैं । वे कभी घिस नहीं जाते । आकाशमण्डलमें वे हमेशा चारों ओर घूमते रहते हैं । हे अग्निदेव, इसी चक्रपर सब पुत्रोंकी (रात और दिन दोनोंकी) जोडी बैठी हुई है । वे सब मिलकर सात सौ वीस (७२०) हैं । ११

कई लोग कहते हैं कि (द्युरूपी) पिताके पांच चरण होते हैं; और उसका रूप बारा प्रकारका है । वह जलकी वर्षा करनेवाला है और वह आकाशके उच्च प्रदेशमें रहता है । और दूसरे लोग कहते हैं कि वह पिता पासके प्रदेशमें रहता है और छः दण्डके सात चक्रके रथपर बैठकर सब कुछ देखता है । १२

एक चक्रके पांच दण्डे होते हैं और वह हमेशा घूमता रहता है । सब भुवनोंकी उसीका आधार है । उस चक्रके लोहेकी धुरीपर बहुत बोझ पड़ता है । तथापि वह कभी तप नहीं जाता । अनन्तकालसे वह चक्र एकही धुरीपर घूमता रहता है; तथापि वह धुरी कभी टूट नहीं जाती । १३

एक अखण्ड धुरीकी चारों ओर नाश न होनेवाला चक्र घूमता रहता है । उसकी लकडी उलट फुलट हुई है । उनको दस घोडे जोते हुए हैं और वे चक्रको खींच रहे हैं । नाना प्रकारके रंगोंके गोलोंसे सूर्यका नेत्र घिरा हुआ है और वह अपने मार्गसे चल रहा है । सब भुवनोंको उसीकाही आधार है । १४

---

१० तिस्रः मातृः त्रीन् पितॄन् बिभ्रत् एकः (एव) ऊर्ध्वः तस्थौ, (एनं आ[illegible]) ईम् न अव ग्लापयन्ति । अमुष्य दिवः पृष्ठे (देवाः) विश्वविदम् (किं) (न) परस्परमिन्नाम् वाचम् मंत्रयन्ति ।

११ द्वादशारं ऋतस्य चक्रम् नहि तज्जराय, (तत्) द्याम् परि वर्वर्ति, हे अग्ने अत्र च मिथुनासः पुत्राः (सर्वे मिलित्वा) सप्त शतानि विंशतिः (संख्याकाः) तस्थुः ।

१२ पंचपादं, द्वादशाकृतिम् पुरीषिणम् पितरम् दिवः परे अर्धे आहुः । अथ इमे अन्ये [illegible]) उपरे षळरे सप्त चक्रे (रथे) अर्पितम् (उत्तमं) विचक्षणम् आहुः ।

१३ पंचारे चक्रे परिवर्तमाने-तस्मिन् विश्वा भुवनानि आतस्थुः तस्य अक्षः भूरिभारः (अपि) न तप्यते सनाभिः सनात् एव न शीर्यते ।

१४ सनेमि चक्रं अजरम् विववृते, (तस्य) उत्तानायां (धुरि) दश युक्ताः वहन्ति । सूर्यस्य चक्षुः रजसा आवृतम् एति, तस्मिन् विश्वा भुवनानि आर्पिता (सन्ति) ।

सातोंका जन्म एकसाथही हुआ; किन्तु अन्तिम सातवेका जन्म भिन्न प्रकारसे हुआ । बचे हुए छः का जन्म एकही स्थानसे हुआ । देवोंसेही उनका जन्म माना जाता है; और वेही ऋषि कहलाये जाते हैं । उनके कर्मफल निजकी इच्छाके अनुसारही अनुक्रमसे मिलते है । वे नाना प्रकारका रूप धारण करते हैं । किन्तु वे अपने स्वामीकी इच्छाके अनुसारही बर्ताव करते हैं । १५

सचमुच वे स्त्रीयां हैं । किन्तु उन्होंने मुझे कहा की वे पुरुष हैं । जिनको आंख हैं उनको यह बात विदित हो सकती है । आन्धा इस बातको किस तरह जान सकता है ? जो सच्चा सुपुत्र है वही इस बातको जानेगा । जो सुपुत्र इस बातको जानता होगा वह अपने पिताका भी पिता होगा । १६

अत्युच्च स्थानके नीचे किन्तु इस भुगोलके ऊपर वह गौ—जो अपने पैरसे अपने बच्चोंको ऊपर उठाती है—दिखाई देने लगी ! नहीं मालुम, वह किस तरफ और किसकी ओर चली जा रही है । यह बात किसीको विदित नहीं है कि वह बच्चेको कहां जनती है । झुण्डमें वह कभी नहीं जनती । १७

अत्युच्च स्थानके नीचे किन्तु नीचेके स्थानके ऊपर यह विश्व स्थित है, इस विश्वका पिता ईश्वर है । इस संसारमें ऐसा कौन ज्ञानी पुरुष है जो उस ईश्वरको ठीक ठीक पहिचान सके ? उस पुरुषने ईश्वरके विषयमें क्या उपदेश किया है ? दिव्य मन कहांसे उत्पन्न हुआ ? १८

जो (किरण) सचमुच अपनीओर नीचे आते हुए दिखाई देते हैं वे ऊपर जानेवाले हैं; और जो (किरण) सचमुच ऊपर चले जाते हैं वे अपनी ओर नीचे आते हुए दिखाई देते हैं ? यह क्या बात है । हे सोम और इन्द्र, दोनों मिलकर तुमने यह आश्चर्य उत्पन्न किया है । किन्तु रजोगुणके कारण ही जुआमें जोते हुए घोडोंकी तरह यह सृष्टिनियम योग्य रीतिसे चल रहा है । १९

---

१५ साकञ्जानां (मध्ये) सप्तथम् एकजम् आहुः (शाचरः) षट् यमाः इत् देवजाः ऋषयः इति (आहुः) तेषाम् इष्टानि (फलानि) धामशः विहितानि, स्थात्रे विकृतान्यपि रेजन्ते ।

१६ स्त्रियः सतीः तान् उ पुंसः (इति) मे आहुः, (एतद्) अक्षण्वान् पश्यत्, अंधः न विचेतत् । यः पुत्र कविः स ईम् आचिकेत, (अपि च) यः तानि विजानात् सः पितुः पिता असत् ।

१७ परेण अवः एना अवरेण परः वत्सं पदा बिभ्रति गौः उत्स्थात्, सा कद्रीची, कं स्वित् अर्धम् परा अगात्, क स्वित् सूते, नहि यूथे अन्तः ।

१८ परेण, अवः, एना अवरेण परः, यः अस्य (विश्वस्य) पितरं अनुवेद (एतादृशः) कवीयमानः (ऋषिः) इह प्र वोचम् देवम मनः कुतः अधि प्रजातम् ? ।

१९ ये अर्वाञ्चः तान् उ पराचः, आहुः ये च पराञ्चः तान् उ अर्वाचः आहुः । (एवम्) हे सोम, त्वम् इन्द्रश्च या (अद्भुतानि) चक्रथुः तानि धुरा युक्ताः [अश्वाः] न रजसः वहन्ति ।

सुन्दर पंखके दो प्रेमी मित्र—जो बिलकुल एक मनके हैं--एकही वृक्षपर बैठे हुए थे । उनमेंसे एक उस वृक्षके मधुर फलका आस्वाद लेता है और दूसरा कुछ-भी न खाकर सब बातें अपने आखोंसे केवल देखता है । २०

वे सुन्दर पंखके पक्षी अपने ज्ञानसामर्थ्यसे अमरत्वका कुछ भाग उस स्थानपर सदा पहुंचाते हैं जहां ज्ञानस्वरूप परमेश्वरका निवासस्थान है । विश्वकी रक्षा करनेवाले परमात्माका कुछ अंश मुझमें--जो मैं बड़ा अज्ञानी हूं—भी उपस्थित है । २१

जिस वृक्षपर सुन्दर पंखवाले पक्षी मधुर फलोंको खाकर आराम लेते हैं और अण्डा डालते हैं उस वृक्षकी चोटीका फल बड़ा स्वादिष्ट होता है । किन्तु जगत्पिता ईश्वरका ज्ञान जिसको नहीं है उसको वह फल नहीं मिलता । २२

गायत्रसे गायत्री, त्रिष्टभसे त्रैष्टभ और जागतसे जगती छन्द किस प्रकार उत्पन्न हुए क्या इस बातको कोई जानता है ? । इस बातको जाननेवालोंकोही अमरत्व प्राप्त होता है । २३

गायत्री छन्दसे अर्क छन्द उत्पन्न हुआ । अर्क छन्दसे साम छन्दकी रचना हुई । और कई त्रैष्टुभ छन्द मिलकर एक वाक उत्पन्न हुआ । दो अथवा चार चरणोंके वाकोंसे एक अनुवाक होता है ? अक्षरोंकी संख्या के हिसाबसे सात मुख्य वृत्त बनते हैं । २४

२० द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षम् परिषस्वजाते । तयोः अन्यः स्वादु पिप्पलम् अत्ति अनश्नन् अन्यः अभि चाकशीति ।

२१ यत्र सुपर्णाः विदथा अमृतस्य भागम् अनिमेषम् अभिस्वरन्ति । अत्र [मे शरीरे] सः इनः विश्वस्य भुवनस्य धीरः गोपाः मा पाकम् आ विवेश ।

२२ यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णाः निविशन्ते सुवते च अधि विश्वे । तस्य इत् अग्रे पिप्पलम् स्वादु इत्याहुः यः पितरं न वेद (सः) तत् न उत् नशत् ।

२३ यत् गायत्रे अधि गायत्रम् आहितम् त्रैष्टुभात् वा त्रैष्टुभं निः अतक्षत । यत् वा जगत् जगति आहितम् य इत् तत् विदुः ते अमृतत्वम् आनशुः ।

२४ गायत्रेण प्रति मिमीते अर्कम् अर्केण साम त्रैष्टुभेन वाकम् । वाकेन (अनु) वाकम् द्विपदा चतुष्पदा अक्षरेण च सप्त वाणीः मिमते ।

जागत और साम वृत्तोंका सामर्थ्य इतना है कि आकाशमें आकाशगंगा धारण की जाती है । रथन्तर-सामनामका छन्द अथवा वृत्त गानेसे (आकाशमें) सूर्यका दर्शन होता है । गायत्री छन्दके तीन ज्वालाएं रहती है । इस लिये तेज और बडेपनमें वह (गायत्री) छन्द सबसे श्रेष्ठ है ।　　२५

बहुत दूध देनेवाली धेनुको मैं अब पुकारता हूं जो चतुर होगा वही उस गौको दोह सकेगा । सबको प्रेरणा करनेवाला सविता देव सबसे उत्तम जीवनका हमें लाभ देवे । देखिये; सूर्यका प्रकाश कितना तेज है । इस लिये मुझे सूर्यके गुणोंकाभी वर्णन करना चाहिये ।　　२६

देखिये वह गौ सब संसारकी स्वामिनी है । अपने बछडेके पास आनेके लिये वह जोरसे रांभती हुई उत्साहसे दौडती चली आती है । यह अवध्य धेनु अश्वी देवके लिये दूध देवे । हमें बडा सौभाग्य प्राप्त होनेके लिये उसकी उन्नति होवे । २७

आंख बन्द करके पकडे हुए बच्चेकी ओर वह धेनु उसका सीर चाटनेके लिये रांभती हुई चली जाती है । तदनन्तर वह धेनु बडी उत्सुकतासे अपने बच्चेका मुंह अपने थनके दूधकी ओर मोडती है । फिर वह धेनु धीरे धीरे रांभने लगती है । इतनेमें उसके थनमें दूध भर जाता है ।　　२८

देखिये; यह वत्सभी रांभता है । उस वत्सकी ओर उस धेनुका ध्यान लगा हुआ है । वर्षा करनेवाले मेघकी तरह वह धेनु डकारती है । इस तरह ध्यान लगानेमें वह मनुष्यसेभी श्रेष्ठ है । किन्तु वह धेनु जब बिजलीका रूप धारण करती है तब वह अपना सच्चा रूप प्रकट करती है ।　　२९

---

२५ जगता दिवि सिन्धुम् अस्तभायत् । रथंतरे सूर्यम् परि अपश्यत् । गायत्रस्य समिधः तिस्रः आहुः ततः मह्ना (च) महित्वा (च) प्र अरिरिचे ।

२६ एतां सुदुघां धेनुं उपह्वये उत सुहस्तः गोधुक् एनां दोहत् । सविता (देवः) श्रेष्ठं सवं नः साविषत्, (यतः च) घर्मः अभीद्धः, तत् उ षु प्र वोचम् ।

२७ वसूनां वसुपत्नी हिंकृण्वती वत्सम् इच्छन्ती मनसा अभि आ अगात् । इयम् अघ्न्या अश्विभ्यां पयः दुहाम्, सा महते सौभगाय वर्धताम् ।

२८ गौः वत्सं मिषन्तं अनु अमीमेत्, मूर्धानं मातवै उ हिङ् अकृणोत् । (ततः) अस्य सृक्वाणम् घर्मम् सृक्वाणम् अभि वावशाना, मायुं मिमाति, पयोभिः पयते ।

२९ अयं (वत्सोपि) येन गौः अभिवृता सः शिङ्क्ते, (सापि) ध्वसनौ अधि श्रिता मायुं मिमाति । सा चित्तिभिः मर्त्यं (अपि) नि हि चकार, (परं च) विद्युत् भवन्ती वव्रिं प्रति औहत) ।

सांस लेनेवाली, चंचल और सजीव रीतिसे हिलनेवाली कोई वस्तु इस शरी रूपी झूलेमें दृढ रीतिसे गडी हुई है । जीवात्मा भी मृत पदार्थोंके सृष्टि नियमके अनुसार ही चलता है । मरनेवाला शरीर और अमर आत्मा दोनों एकही जगह स्थित है । ३०

शरीरको धारण करनेवाला जी सदा अपने नियमके अनुसार इस संसारमें आता है और फिर चला जाता है । मैं इस बातको देख चुका हूं । उस जीमें संयोग और वियोगका दोनों सामर्थ्य है । वह बारबार संसारमें लौट आता है । ३१

जिसने उस जीको उत्पन्न किया उसको वह नहीं जानता । क्योंकि जो हमेशा इस जीको देखता है वह छिपा हुआ रहता है । इसी कारणही मनुष्य प्राणी अपनी माताके पेटमें लिपटा हुआ रहता है और बारबार जन्म लेकर दुःखसागरमें डूबा हुआ रहता है । ३२

द्यु मेरा पिता है । मुझे उत्पन्न करनेवाला वही है । और मेरे जीवनका आधार वही है । यह विशाल पृथ्वी मेरी माता है । मेरा नातेदार सब कुछ पृथिवी है । सब लोगोंका जन्मस्थान पेटके बीचमेंके पोले प्रदेश में ही है । उसी स्थानमें पिता अपनी कन्याका गर्भकी रखता है । ३३

अब मैं तुझे पूछता हूं कि ' पृथिवीकी अन्तिम सीमा कहा है ' । जगत्का केन्द्र कहा है । सांड घोड़ेका शुक्र कौनसा है ? और वाक्-देवीका अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान कौनसा है ? ३४

---

३० अनत्, तुरगातु, जीवम्, एजत् (एतादृशं वस्तु) पस्त्यानाम् मध्ये ध्रुवम् आ शये । जीवः मृतस्य स्वधाभिः चरति अमर्त्यः मर्त्येन सयोनिः ।

३१ (सनोः) गोपां अनिपद्यमानम् पथिभिः आ च परा च चरन्तम् अपश्यम् । स सध्रीचीः स विषूची वसानः भुवनेषु अन्तः आवरीवर्ति ।

३२ यः (ईश्वरः) ईं चकार सः (जीवात्मा) अस्य न वेद । यः ईं ददर्श (सः) तस्मात् हिरुक् इत् । (अतः) मातुः योनौ अन्तः परिवीतः सः बहुप्रजा निर्ऋतिम् आ विवेश ।

३३ अत्र द्यौः मे पिता जनिता नाभिः च, इयं मही (पृथिवी) मे माता बन्धुः च (भवति) उत्तानयोः चम्वोः अन्तः (जगतः) योनिः, अत्र पिता दुहितुः गर्भम् आ अधात् ।

३४ त्वाम् पृथिव्याः परं अन्तं पृच्छामि, यत्र भुवनस्य नाभिः (तत्) पृच्छामि, वृष्णः अश्वस्य रेतः त्वां पृच्छामि, वाचः परमं व्योम च पृच्छामि ।

यह वेदी पृथिवीकी अन्तिम सीमा है । यह यज्ञ सर्व जगतका केन्द्र है । यह सोमरस ही सांड घोडेका शुक्र है । और यह 'ब्रम्ह' वाक्-देवीका श्रेष्ठ स्थान है ।　　३५(२०)

वे सात (सूर्य किरण)–जगत्का अपूर्ण गर्भ–बीजरूपसे रहते हैं । वे विष्णुकी आज्ञाके अनुसार नियमपर चलते हैं । वे बुद्धिमान् हैं; और सब जगत्को व्याप करके रहते हैं । वे ध्यानसे सब वस्तुओंका विचार करते हैं ।　　३६

मैं यह नहीं जानता हूं कि सब कुछ मैं हूं । मैं मनसे बन्धा हुआ हूं । मेरा ध्यान ठिकानेपर नहीं है । मैं हमेशा सञ्चार करता हूं । किन्तु परम तत्वसे उत्पन्न हुआ चैतन्य अब मुझमें प्रकट हुआ तबसे (ईश्वरी) वाक्–देवीका अंश मुझे प्राप्त हुआ ।　　३७

इस आत्माका जीवन उसके हिलनेसेही विदित होता है । वह कभी पीछे हट जाता है और कभी आगे बढ़ता है । वह अमर होनेपरभी मरने वाले शरीरके साथ जन्म लेता है । वे दोनों (शरीर और आत्मा) आपसमें संलग्न होकर रहते हैं । किन्तु वे सब स्थानोंमें नानारूपसे घूमते हुए रहते हैं । किन्तु सब लोग केवल शरीरकोही देखते हैं और आत्माको नहीं देखते ।　　३८

जिसतरह देव स्वर्गके बड़े उच्चस्थानोंमे रहते हैं उसी तरह वेदोंकी ऋचाओंके प्रत्येक अक्षरमें देवोंका रहनेका स्थान है । जो मनुष्य ऋचाओंके अक्षरोंको नहीं जानता उसको वेद पढनेसे कुछभी लाभ नहीं है । जो ऋचाओंके अक्षरोंको जानते हैं वे वेदोंको पढनेसे आनन्दमें इकठे रहते हैं ।　　३९

---

३५ इयं वेदिः पृथिव्याः परः अन्तः, अयं यज्ञः भुवनस्य नाभिः, अयं सोमः वृष्णः अश्वस्य रेतः, अयं ब्रह्मा वाचः परमं व्योम ।

३६ सप्त अर्धगर्भाः (ये) भुवनस्य रेतः (ते) विष्णोः प्रदिशा (स्व) विधर्मणि तिष्ठन्ति । ते विपश्चितः मनसा परिभुवः (सन्तः) विश्वतः (विश्वं) धीतिभिः परि भवन्ति

३७ यदिव इदं अस्मि (इति) न जानामि. (किंतु) निण्यः मनसा संनद्धः चरामि । यदा ऋतस्य प्रथमजाः मा आ अगन् आत् इत् अस्याः वाचः भागं अश्नुवे.

३८ स्वधया गभीतः अमर्त्यः मर्त्येन सयोनिः अपाङ् प्राङ् एति ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता (सन्तौ) अन्यं चिक्युः, अन्यं न निचिक्युः

३९. परमे व्योमन् (इव) यस्मिन् ऋचः अक्षरे अधि विश्वे देवाः निषेदुः । (तन्हि) यः तत् न वेद ऋचा किं करिष्यति ये इत् तत् विदुः ते इमे समासते

हे धेनु, तुझे खानेके लिये घास चाहिये। वह तृण तुझे प्राप्त होवे और तुमारा भाग्य सदा बना रहे। तुमारे भाग्यके साथ हमभी भाग्यवान् हो जायेंगे। हे अवध्य धेनु, तूं हमारी ओर आ जाव। सदा यहां तृण खा कर जल पी जाव। ४० (२१)

जब यह सफेन तेजस्वी (मेघवाणी रूपी) धेनु जल उत्पन्न करती है तब रांभती है। उसके कभी एक कभी दो, कभी चार, कभी आठ और कभी नौ पैर होते हैं। उसके कभी कभी सहस्र अक्षर भी होते हैं और वह उच्च स्वर्ग लोकमें रहती है। ४१

उस (मेघरूपी) धेनुकेही कारण समुद्र सदा पानीसे पूर्णरूपसे भरा हुआ रहता है। और उसीके कारण पृथिवीके चारों ओरके प्रदेशोंमें सब लोग आनन्दमें जीन्दे रहते हैं। वहांसे ही अमृतकी वर्षा होती है और इस तरह सब विश्वकी रक्षा होती है। ४२

दूर अन्तरपर गोबरका धुआं मैंने दिखाई दिया। एकके पीछे एक ऊपर जानेवाले धुएंके बादल चारों ओर फैले हुवे थे। चित्र विचित्र रंगके बैलको वहां पराक्रमी पुरुष पकाते थे। उसीको पुराणे कालका पहिला धर्म कहते थे। ४३

तीन देव-जिनकी जटाएं दूर तक बढी हुई हैं—अपने अपने समयपर पृथिवीपर आते हैं। उनमेंसे एक हर साल भूस्थानोंको स्वच्छ करता है। उनमेंसे दूसरा अपने सामर्थ्यसे सब विश्वपर देखभाल करता है। उनमेंसे केवल तीसरेको हम प्रत्यक्ष रूपसे जान सकते हैं। उसकी चाल मालुम होती है; किन्तु वह दिखाई नहीं देता। ४४

---

४० सूयवसाद् भगवती हि भूयाः, अथ वयम् भगवन्तः स्याम, हे अघ्न्ये विश्वदानीम् तृणम् अद्धि, आचरन्ती च शुद्धम् उदकम् पिब।

४१ (इयम्) गौरीः सलिलानि तक्षती मिमाय, एकपदी, द्विपदी, चतुष्पदी, (अर्थात्) (तथाहि) अष्टापदी नवपदी सहस्राक्षरा बभूवुषी परमे व्योमन् (वर्तते)

४२ तस्याः समुद्राः अधि वि क्षरन्ति, तेन च चतस्रः प्रदिशः जीवन्ति। ततः अक्षरम् क्षरति, तत् विश्वम् उपजीवति।

४३ शकमयम् धूमम् आरात् अपश्यम्, एना अवरेण विषुवता (परेण) परः, वीराः पृश्निम् उक्षाणम् अपचन्त, (तानि) तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्।

४४ त्रयः केशिनः ऋतुथा विचक्षते, (एकस्मिन्) संवत्सरे एषाम् एकः वपते। एकः विश्वम् शचीभिः अभिचष्टे एकस्य ध्राजिः दृश्यते न (तु) रूपम्।

चार प्रकारकी वाक् देवी समझी जाती है । जो ज्ञानवान् ब्राह्मण हैं वे ही केवल वाक्-देवीके चारों प्रकारोंको समझ सकते हैं । उनमेंसे पहले तीन प्रकार गुप्त रहते हैं । वे समझमें नहीं आते । जिसको मनुष्य बोलते हैं वह वाक्-देवीका चौथा प्रकार है । ४५

उस (ईश्वरको) ही इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं । देवलोकमें रहनेवाला और सुन्दर पंखवाला वही है । सचमुच वह अकेलाही है । तबभी ज्ञानी लोक उसको बहुत प्रकारके नामोंसे पुकारते हैं । उसीको अग्नि, यम अथवा मातरीश्वाभी कहते हैं । ४६ (२२)

आकाशमें जानेका जो एक काले रंगका मार्ग है उस मार्गसे सुवर्ण रंगके सुन्दर पक्षी जलरूप वस्त्र पहिनकर आकाशमें उडते हैं । जब वे अपने निवासस्थानसे लौट आते हैं तब पृथिवी घीकी वर्षासे बिलकुल गीली हो जाती है । ४७

चक्र एक ही होता है । किन्तु उसके बारह डण्ड होते हैं । उसके तीन नाह होते हैं । वे किस प्रकार होते हैं यह बात किसीको विदित नहीं है । उस चक्रके तीन सौ साठ डण्ड होते हैं । वह चक्र शङ्कु की तरह बडे जोरसे घूमता रहता है । ४८

हे सरस्वति, आपका थन अक्षय, और कल्याण करनेवाला है । उस थनके द्वाराही मनोहर वस्तुओंकी सन्दरता बढती है । आपका थन रत्नोंका भण्डार है । आपका थन बडी उदारतासे सबोंकी इच्छा परी करता है । इसलिये आपके थनका दूध हमें पिलाइये । ४९

---

४५ वाक् पदानि चत्वारि परिमिता, ये ब्राह्मणाः मनीषिणः (ते) तानि विदुः । त्रीणि (पदानि) गुहा निहिता न इङ्गयन्ति, वाचः तुरीयं (पदं) मनुष्याः वदन्ति ।

४६ (परमेश्वरम्) इन्द्रं, मित्रं, वरुणं, अग्निं आहुः, अथो सः (एव) दिव्यः सुपर्णः गरुत्मान् । एकम् सन् विप्राः बहुधा वदन्ति, अग्निम् यमम् मातरिश्वानम् आहुः ।

४७ हरयः सुपर्णाः अपः वसानाः कृष्णं नियानं (निर) दिवम् उत्पतन्ति । (यदा) ते ऋतस्य सदनात् आ अववृत्रन्, आत् इत् पृथिवी घृतेन वि उद्यते ।

४८ चक्रम् एकम्, द्वादश प्रधयः, त्रीणि नभ्यानि कः उ तत् चिकेत । तस्मिन् (चक्रे) त्रिशताः साकं षष्टिः (अराः) शंकवः न चलाचलासः (शंकवः) न अर्पिताः ।

४९ हे सरस्वति, ते स्तनः यः शशयः मयोभूः, येन (त्वं) विश्वा वार्याणि पुष्यसि, यः रत्नधाः यः वसुवित्, यः सुदत्रः तम् (स्तनं) इह धातवे कः ।

देवोंने यज्ञपुरुषके द्वारा यज्ञ किया। यदि सच पूछा जाय तो यही सबसे पुराना और पहिला धर्म है। तदनन्तर जहां पुराने और श्रेष्ठ साध्यदेव रहते थे उस स्वर्गलोकमें वे (यज्ञ करनेवाले) देव बनकर रहने लगे। ५०

उदक सब स्थानोंमें एकही प्रकारका होता है। वह उदक भाफके रूपसे ऊपर चला जाता है और पुनः वर्षाके रूपसे नीचे गिरता है। इस प्रकार जलकी वर्षा पृथिवीको हरियाली बनाता है। और यज्ञके अग्निसे आकाश तेजोमय दिखाई देता है। ५१

द्युलोकमें रहनेवाला सरस्वान् देव बड़ा वेगवान् और (बलवान् पक्षी है यही देव उदक का और) वनस्पतियोंका सुन्दर बचा है। जलकी वर्षा करके वह सब लोगोंको बड़ा आनन्द दिलाकर उनको सहज रीतिसे प्रसन्न करता है। वह हम पर कृपा करें और इसलिये मैं उससे प्रार्थना करता हूं। ५२(२३).

अनुवाक २३

सूक्त १६५

॥ ऋषि—आगस्त्य। देवता—मरुत् ॥

समान बलके और एकही स्थानमें रहनेवाले सब मरुत् देवोंकी कान्ति सुन्दर होनेके कारण वे बड़े शोभायमान् दिखाई देते हैं। वे कहांसे और किस उद्देशसे आये होंगे? कुछभी हो। वे हमारे शूर मित्र हैं। उन(से लाभ होनेके लिये हम उन) के सामर्थ्यकी प्रशंसा करते हैं। और बड़े जोरसे उनकी स्तुति हम गाते हैं। १

---

५० देवाः यज्ञेन यज्ञं अयजंत, तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्। देवाः ते ह देवा महिमानः नाकं सचंते यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति,।

५१ एतत् उदकम् (यत्) अहोभिः उत् च अवच एति तत् समानम्। पर्जन्याः भूमिं जिन्वन्ति, (तथाच) अग्नयः दिवम्, जिन्वन्ति

५२ दिव्यम् वायसं, बृहन्तम्, अपाम् गर्भम्, ओषधीनाम् दर्शतम्। अभीपतः वृष्टिभिः (जगत्) तर्पयन्तं (एतादृशं) सुपर्णम् सरस्वन्तम् अवसे जोहवीमि।

१ (पश्य एते) सवयसः सनीळाः मरुतः कया शुभा समान्या (कान्त्या) सं मिमिक्षुः। कया मती, कुत एता सः, एते (नः) वृषणः वसूया (एतान्) शुष्मं अर्चन्ति।

हे जवान मरुत्, इस समय आप कौनसे भक्तोंकी स्तुतिरसका आस्वाद ले रहे हैं । यज्ञमें मरुत् देवोंको कौनसा भक्त ले गया होगा ? । वह भक्तिकी कौनसी श्रेष्ठ रीति है जिससे श्येन पक्षीकी तरह आकाशमें उडनेवाले मरुत्–देवोंको हम प्रसन्न करेंगे । २

हे इन्द्र, आप बडे श्रेष्ठ हैं । सज्जन लोगोंकी रक्षा करनेवाले आपही हैं । आप अकेले क्यों चले जाते हैं ? सचमुच आप अपने मनमें किस बातका विचार कर रहे हैं ? जब आप अपने विजयी लोगोंके साथ चलते हैं तब आप हमारा स्वास्थ्य पूछते हैं । हरित् रंगके अश्वोंका पालन करनेवाले इन्द्र, आप हमें कहिये कि आप हमारे विषयमें क्या सोचते हैं । ३

स्तोत्रोंका गाना और भक्तिसे प्रार्थना भी मेरे लिये की जाती है । सोमरससे मुझे हो आनन्द होता है । जब मैं अपना वज्र फेंक देता हूं तब वह शत्रुका नाश करता है । भक्त लोग मुझसे सदा प्रार्थना करते हैं । साम गाना मैं पसन्द करता हूं । इसी लिये मेरे अश्व मुझे गानेके स्थानकी ओर ले जाते हैं । ४

हम इसी लिये पराक्रम करते हैं कि हमें सदा विजय प्राप्त होवे और हमारी शोभा बढे । वे अश्व अपनी इच्छासे निजको जोतते हैं और तैयार होते हैं । हे इन्द्र, हमारी इस रीतिको आप अच्छी तरह जानते ही हैं । ५(२४).

---

२ युवानः (मरुतः) कस्य ब्रह्माणि जुजुषुः, मरुतः कः अध्वरे आ ववर्त । श्येनान् इव अंतरिक्षे ध्रजतः मरुतः केन महा मनसा रीरमाम ।

३ हे इन्द्र हे सत्पते त्वं माहिनः सन् एकः कुतः यासि ? ते (मनसि) किं इत्था ? शुभानैः समराणः (नः) सं पृच्छसे (तद्) हे हरिवः यत् ते (मनसि) अस्मे (वर्तते) तत् नः वोचेः ।

४ (इमानि) ब्रह्माणि, मतयश्च मे (भवन्ति,) सुतासः च (मम) शं (भवन्ति) । मे शुष्मः अद्रिः प्रभृतः सन् (अरातीन्) इयर्ति (अपि च भक्तास्तु) उक्था हि (मां एव) आ शासते, प्रति हर्यन्ति इमा नः हरी ता अच्छ वहतः

५ अतः वयमपि अंतमेभिः स्वक्षत्रेभिः तन्वः शुंभमानाः, महोभिः (प्रमत्तैश्च) एतान् उपयुज्महे, हे इन्द्र, त्वं हि (एवां) नः स्वधां अनुबभूथ

हे मरुत् देव, अही राक्षसका वध करनेके लिये तुमने मुझसे प्रार्थना की। उस समय तुमारा सामर्थ्य कहां चला गया था? मैं सचमुच धैर्यवान् हूं और पराक्रमी हूं। इसी लिये हमने अपने भयंकर शस्त्रोंसे जगत्के शत्रुओंका नाश किया। ६

हे पराक्रमी पुरुष, आपने अपने सामर्थ्यसे बड़े बड़े काम किये। आपके पराक्रम सचमुच आपके प्रत्यक्ष अतुल मित्र ही हैं। हे पराक्रमी इन्द्र, अब हमें हमारे सामर्थ्यसे और पराक्रमसे हम चाहे सो काम करने दीजिये। ७

हे मरुत् देव, क्रोधमें आकर बड़े पराक्रमसे हमने वृत्रको मार डाला। हमने मनुके लिये सब विश्वको आनन्द देनेवाले सर्वोदकोंको अपने वज्रसे सहज रीतीसे मुक्त किया। ८

हे उदारशील इन्द्र, आपके सामने किसीके बलका कुछ नहीं चलता। देवोंमें आपके सदृश ज्ञानी दूसरा कोईभी नहीं। हे बलवान् इन्द्र, जिन कामोंको करनेका आपने पण कियाथा उनको अब कीजिये। ९

---

६ हे मरुतः क्व सा वः स्वधा आसीत् यत् माम् एकमेव अहिहत्ये समधत्त। अहं हि उग्रः, तविषः तुविष्मान् (अतएव) विश्वस्य शत्रोः (शत्रूणां) वधस्नैः अनमम्

७ हे वृषभ (इन्द्र) त्वं बलु अस्मे (अस्माभिः) युज्येभिः समानेभिः पुंस्येभिः भूरि चकर्थ। (तर्हि) हे शविष्ठ (वयं) मरुतः क्रत्वा, नु (यथाशक्ति) भूरीणि (वीर्याणि) कृणवाम।

८ हे मरुतः मामेव तविषः वधुरान् स्वेन इन्द्रियेण वृत्रम् व धीम्। एताः विश्वचन्द्राः सुगाः अपः अहम् (एव) वज्रबाहुः (सन्) मनवे चकार।

९ हे मघवन् त्वे अनुत्तम न किः नु, त्वावान् विद्वानः न कः (अपि) देवता, हे प्रवृद्ध न जातः नापि जायमानः (अपि) नशते (तर्हि) यानि करिष्या (तानि) कृणुहि।

यह कहना योग्य होगा कि विश्वको व्याप्त करनेवाला सामर्थ्य (अकेलेमें) मुझमें है। क्यों कि जो काम करनेका मैं निश्चय करता हूं वह काम मैं करके दिखलाता हूं। हे मरुत् देव, मैं भयंकर हूं। मैं ज्ञानी हूं; इस लिये इन्द्रने जो जो वस्तुएं उत्पन्न की हैं उन सब वस्तुओंका मैं स्वामी हूं। १० (२९)

हे पराक्रमी मरुत् देव, आपने जो अभी मेरी स्तुति की और जो मनोहर स्तोत्र आपने गाया उससे मैं आनन्दित हुआ हूं। क्यों कि वीर्यवान् और अत्यन्त पूज्य इन्द्रके लिये—जो तुमारा वड़ा मित्र है और जो तुमारा प्रत्यक्ष प्राण और आत्मा है आपने वड़े प्रेमसे और भक्तिसे एक स्तोत्र गाया है। ११

निष्कलंक, कीर्तिमान् और सामर्थ्यवान् आप प्रत्यक्ष रूपसे मेरे सामने आप खडे हैं। हे मनोहर कान्तिके मरुत्-देव, वड़े ध्यानके द्वारा आपने मुझे प्रसन्न किया है; और अवभी वैसाही मुझे प्रसन्न कीजिये। १२

हे मरुत् देव, इस जगतमें सचमुच आपके गुणोंका वर्णन किसने किया है? हे मित्र, हम आपके मित्र हैं; इस लिये आप हमारी ओर आइये। आपकी कान्ति अद्भुत है। हे मरुत्-देव, सुन्दर स्तुति करनेकी प्रेरणा हमें उत्पन्न कीजिये। सत्यधर्मके अनुसार हम आपकी उपासना करते हैं। इस लिये आप हमारी और ध्यान दीजिये। १३

---

१० हे (मरुत:) विभु ओज: एकस्य मे भवत् अस्तु (यत:) या नु मनीषा दधृष्वान् (तानि) कृणवै हे मरुत: उग्र; विद्वान: अहं- इंद्र: उत्--गानि च्यवम्, एषाम् ईशे हि।

११ हे मरुत: अत्र (व:) स्तोम: माम् अमन्दत (अपिच) हे नर:, यत् श्रुत्यं ब्रह्म मे (यूयं) चक्र सुमखाय, वृष्णे, इंद्राय सख्ये तन्वे मत्रं, यूयं मे सखाय तनूभि: (चकृढ्वे)।

१२ अनवद्य: च, श्रव: इषश्च आ दधाना: एते (यूयं) मा प्रति रोचमाना: एवेत्। हे मरुत: (यथा यूयं) चंद्रवर्णा: (पूर्वं) संचक्ष्य मे अच्छान्त. (तथा) नूनम् अपि छदयथ।

१३ हे मरुत: व: अत्र क: नु ममहे, हे सखाय:, सखीन् (अस्मान्) अच्छ प्र यातन। हे चित्रा: (यूयं) मन्मानि आपिवासयन्त: एषाम् मे ऋतानाम् (उपासनानाम्) नवदा भूत।

जिस तरह विद्वान् कवि एक भक्तके पाससे दूसरे भक्तकी ओर चला जाता है उसी तरह सज्जन लोगोंकी बुद्धिके सामर्थ्यसे हम तुझे (मरुत-देव) अपनी ओर ले आये। हे मरुत् देव, ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले भक्तलोगोंकी ओर आप अपना ध्यान पहुंचाविये । स्तोत्रोंको गानेवाले भक्तोंने आपके लिये स्तोत्र गाया है । १४(२६) (३)

हे मरुत्-देव, तुमारे माननीय मित्र मान्दार्यने यह स्तोत्र और यह प्रार्थना तुमारे लिये की । इस लिये हमें उत्साह और बल दीजिये । हमारी इच्छा पूरी करनेवाला आपका सामर्थ्य ही हमारे जीवनका आधार है । १५

॥ तृतीय अध्याय समाप्त ॥

१४(हे मरुतः) यत् आ दुवस्यात् दुवसे कारुः न, (मान्यस्य) मेधाः (वः) अस्मान् चक्र । हे मरुतः, इमं विप्रम् अच्छ आ वर्त, इमा ब्रह्माणि जरिता वः अर्चत् ।

१५ हे मरुतः, एष स्तोमः, इयं गीः च, मान्यस्य कारोः मान्दार्यस्य वः (अधिकृत्य प्रार्थिताऽस्ति) (अतः) तन्वे इषा आ यासीष्ट, (वः) वयाम् च विद्याम, जीरदानुं वृजनम् च (भुंजीमहि)

Printed at Vaidya Brothers' Press, Thakurdwar, Bombay No. 2 & published at Shrutibodh Office 47 Kalbadevi Road, Bombay, by Gajanan Bhaskar Vaidya.

हिन्दी, मराठी, गुजराती और अङ्गरेजी चार
भाषाओं में अलग अलग प्रसिद्ध होनेवाला

वेदों का भाषांतर।

प्रति मास में ६४ पृष्ठ; ३२ पृष्ठ संहिता [स्वर और पदपाठ सहित]

* * ३२ पृष्ठ भाषान्तर। * *

वर्ष १] वैशाख संवत १९६९-जून सन १९१२ [अंक १२

वार्षिक मूल्य डाकव्ययसहित रु. ४

हिन्दी

सम्पादक,

रामचंद्र विनायक पटवर्धन, बी. ए. एल् एल्. बी.
अच्युत बलवंत कोल्हटकर, बी. ए. एल् एल्. बी.
दत्तो अप्पाजी तुळजापुरकर, बी. ए. एल् एल्. बी.

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूत्।
अधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्॥

यास्काचार्य.

'श्रुतिबोध' ऑफिस, ४७, कालकादेवी रोड, बम्बई.

प्रति अंकका मूल्य आठ आने.

॥ अथ द्वितीयाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ १६६ ॥ ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—मरुतः । छन्दः—जगती ॥

॥१६६॥ तन्नु वो॑चाम रभ॒साय॒ जन्म॑ने॒ पूर्वं॑ महि॒त्वं वृ॑ष॒भस्य॑ के॒तवे॑ ।
ऐ॒धेव॒ याम॑न्मरुतस्तुविष्वणो यु॒धेव॑ शक्रास्तवि॒षाणि॑ कर्तन ॥ १ ॥
नित्यं॒ न सू॒नुं मधु॒ बिभ्र॑त॒ उप॒ क्रीळ॑न्ति क्री॒ळा वि॒दथे॑षु घृ॒ष्वयः॑ ।
नक्ष॑न्ति रु॒द्रा अव॑सा नम॒स्विनं॒ न म॑र्धन्ति॒ स्वत॑वसो हवि॒ष्कृत॑म् ॥ २ ॥
यस्मा॒ ऊमा॑सो अ॒मृता॒ अरा॑सत रा॒यस्पोषं॑ च ह॒विषा॑ ददा॒शुषे॑ ।
उ॒क्षन्त्य॑स्मै म॒रुतो॑ हि॒ता इ॑व पु॒रू रजां॑सि॒ पय॑सा मयो॒भुवः॑ ॥ ३ ॥
आ ये रजां॑सि॒ तवि॑षीभि॒रव्य॑त॒ प्र व॒ एवा॑सः॒ स्वय॑तासो अध्रजन् ।
भय॑न्ते॒ विश्वा॒ भुव॑नानि ह॒र्म्या॑ चि॒त्रो वो॒ याम॒: प्रय॑तास्वृ॒ष्टिषु॑ ॥ ४ ॥

॥ अथ द्वितीयाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

॥ तत् । नु । वोचाम । रभसाय॑ । जन्म॑ने । पूर्व॑म् । महि॒ऽत्वम् । वृ॒ष॒भस्य॑ । के॒तवे॑ । ऐ॒धाऽइ॑व । याम॑न् । म॒रु॒तः॒ । तु॒वि॒ऽस्व॒नः॒ । यु॒धाऽइ॑व । श॒क्राः॒ । त॒वि॒षाणि॑ । क॒र्त॒न॒ ॥ १ ॥ नित्य॑म् । न । सू॒नुम् । मधु॑ । बिभ्र॑तः । उप॑ । क्रीळ॑न्ति । क्री॒ळाः । वि॒दथे॑षु । घृ॒ष्वयः॑ । नक्ष॑न्ति । रु॒द्राः । अव॑सा । न॒म॒स्विन॑म् । न । म॒र्ध॒न्ति॒ । स्वऽत॑वसः । ह॒विः॒ऽकृत॑म् ॥ २ ॥ यस्मै॑ । ऊमा॑सः । अ॒मृताः॑ । अरा॑सत । रा॒यः । पोष॑म् । च । ह॒विषा॑ । द॒दा॒शुषे॑ । उ॒क्षन्ति॑ । अ॒स्मै॒ । म॒रुतः॑ । हि॒ताःऽइ॑व । पु॒रु । रजां॑सि । पय॑सा । म॒यः॒ऽभुवः॑ ॥ ३ ॥ आ । ये रजां॑सि । तवि॑षीभिः । अव्य॑त । प्र । वः॒ । एवा॑सः । स्वऽय॑तासः । अ॒ध्र॒ज॒न् । भय॑न्ते । विश्वा॑ । भुव॑नानि । ह॒र्म्या॑ । चि॒त्रः । वः॒ । याम॑: । प्रऽय॑तासु । ऋ॒ष्टिषु॑ ॥ ४ ॥

यत्त्वेषयामा नदयन्त पर्वतान्दिवो वा पृष्ठं नर्या अचुच्यवुः ।
विश्वो वो अज्मन्भयते वनस्पती रथीयन्तीव प्र जिहीत ओषधिः ॥५॥१॥
यूयं न उग्रा मरुतः सुचेतुनारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।
यत्रा वो दिद्युद्रदति क्रिविर्दती रिणाति पश्वः सुधितेव बर्हणा ॥ ६ ॥
प्र स्कम्भदेष्णा अनवभ्रराधसोऽलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।
अर्चन्त्यर्कं मदिरस्य पीतये विदुर्वीरस्य प्रथमानि पौंस्या ॥ ७ ॥
शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात्पूर्भी रक्षता मरुतो यमावत ।
जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥ ८ ॥
विश्वानि भद्रा मरुतो रथेषु वो मिथस्पृध्येव तविषाण्याहिता ।
अंसेष्वा वः प्रपथेषु खादयोऽक्षो वश्चक्रा समया वि वावृते ॥ ९ ॥

यत् । त्वेषऽयामाः । नदयन्त । पर्वतान् । दिवः । वा । पृष्ठं । नर्याः । अचुच्यवुः । विश्वः । वः । अज्मन् । भयते । वनस्पतिः । रथियन्तीऽइव । प्र । जिहीते । ओषधिः ॥ ५ ॥ १ ॥ यूयं । नः । उग्राः । मरुतः । सुऽचेतुना । अरिष्टऽग्रामाः । सुऽमतिं । पिपर्तन । यत्र । वः । दिद्युत् । रदति । क्रिविःऽदती । रिणाति । पश्वः । सुधिताऽइव । बर्हणा ॥ ६ ॥ प्र । स्कम्भऽदेष्णाः । अनवभ्रऽराधसः । अलातृणासः । विदथेषु । सुऽस्तुताः । अर्चन्ति । अर्कं । मदिरस्य । पीतये । विदुः । वीरस्य । प्रथमानि । पौंस्या ॥ ७ ॥ शतभुजिऽभिः । तं । अभिऽह्रुतेः । अघात् । पूःऽभिः । रक्षत । मरुतः । यं । आवत । जनं । यं । उग्राः । तवसः । विऽरप्शिनः । पाथन । शंसात् । तनयस्य । पुष्टिषु ॥ ८ ॥ विश्वानि । भद्रा । मरुतः । रथेषु । वः । मिथस्पृध्याऽइव । तविषाणि । आऽहिता । अंसेषु । आ । वः । प्रऽपथेषु । खादयः । अक्षः । वः । चक्रा । समया । वि । ववृते ॥ ९ ॥

भूरीणि भद्रा नर्येषु बाहुषु वक्षःसु रुक्मा रभसासो अञ्जयः ।
अंसेष्वेताः पविषु क्षुरा अधि वयो न पक्षान्व्यनु श्रियो धिरे ॥ १० ॥ २ ॥
महान्तो मह्ना विभ्वो३ विभूतयो दूरेदृशो ये दिव्या इव स्तृभिः ।
मन्द्राः सुजिह्वाः स्वरितार आसभिः संमिश्ला इन्द्रे मरुतः परिष्टुभः ॥ ११ ॥
तद्वः सुजाता मरुतो महित्वनं दीर्घं वो दात्रमदितेरिव व्रतम् ।
इन्द्रश्चन त्यजसा वि ह्रुणाति तज्जनाय यस्मै सुकृते अराध्वम् ॥ १२ ॥
तद्वो जामित्वं मरुतः परे युगे पुरू यच्छंसममृतास आवत ।
अया धिया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दंसनैरा चिकित्रिरे ॥ १३ ॥
येन दीर्घं मरुतः शूशवाम युष्माकेन परीणसा तुरासः ।
आ यत्ततनन्वृजने जनास एभिर्यज्ञेभिस्तदभीष्टिमश्याम् ॥ १४ ॥

भूरीणि । भद्रा । नर्येषु । बाहुषु । वक्षःऽसु । रुक्माः । रभसासः । अंजयः । अंसेषु । एताः । पविषु । क्षुराः । अधि । वयः । न । पक्षान् । वि । अनु । श्रियः । धिरे ॥ १० ॥ २ ॥ महांतः । मह्ना । विऽभ्वः । विऽभूतयः । दूरेऽदृशः । ये । दिव्याःऽइव । स्तृऽभिः । मंद्राः । सुऽजिह्वाः । स्वरितारः । आसऽभिः । संऽमिश्लाः । इंद्रे । मरुतः । परिऽस्तुभः ॥ ११ ॥ तत् । वः । सुऽजाताः । मरुतः । महिऽत्वनं । दीर्घं । वः । दात्रं । अदितेःऽइव । व्रतं । इंद्रः । चन । त्यजसा । वि । ह्रुणाति । तत् । जनाय । यस्मै । सुऽकृते । अराध्वं ॥ १२ ॥ तत् । वः । जामिऽत्वं । मरुतः । परे । युगे । पुरु । यत् । शंसं । अमृतासः । आवत । अया । धिया । मनवे । श्रुष्टिं । आव्य । साकं । नरः । दंसनैः । आ । चिकित्रिरे ॥ १३ ॥ येन । दीर्घं । मरुतः । शूशवाम । युष्माकेन । परीणसा । तुरासः । आ । यत् । ततनन् । वृजने । जनासः । एभिः । यज्ञेभिः । तत् । अभि । इष्टिं । अश्यां ॥ १४ ॥

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १५ ॥ ३ ॥

॥ १६७ ॥ ऋषिः--अगस्त्यः । देवता--इन्द्रः । छन्दः--त्रिष्टुप् ॥

॥ १६७ ॥ सहस्रं त इन्द्रोतयो नः सहस्रमिषो हरिवो गूर्ततमाः ।
सहस्रं रायो मादयध्यै सहस्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥ १ ॥
आ नोऽवोभिर्मरुतो यान्त्वच्छा ज्येष्ठेभिर्वा बृहद्दिवैः सुमायाः ।
अध यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य चिद्धनयन्त पारे ॥ २ ॥
मिम्यक्ष येषु सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः ।
गुहा चरन्ती मनुषो न योषा सभावती विदथ्येव सं वाक् ॥ ३ ॥
परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः ।
न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥ ४ ॥

एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयं । गीः । मांदार्यस्य । मान्यस्य । कारोः । आ । इषा । यासीष्ट । तन्वे । वयां । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ १५ ॥ ३ ॥

सहस्रं । ते । इंद्र । ऊतयः । नः । सहस्रं । इषः । हरिऽवः । गूर्तऽतमाः । सहस्रं । रायः । मादयध्यै । सहस्रिणः । उप । नः । यंतु । वाजाः ॥ १ ॥ आ । नः । अवःऽभिः । मरुतः । यांतु । अच्छ । ज्येष्ठेभिः । वा । बृहत्ऽदिवैः । सुऽमायाः । अध । यत् । एषां । निऽयुतः । परमाः । समुद्रस्य । चित् । धनयंत । पारे ॥ २ ॥ मिम्यक्ष । येषु । सुऽधिता । घृताची । हिरण्यऽनिर्निक् । उपरा । न । ऋष्टिः । गुहा । चरंती । मनुषः । न । योषा । सभाऽवती । विदथ्याऽइव । सं । वाक् ॥ ३ ॥ परा । शुभ्राः । अयासः । यव्या । साधारण्याऽइव । मरुतः । मिमिक्षुः । न । रोदसी इति । अप । नुदंत । घोराः । जुषंत । वृधं । सख्याय । देवाः ॥ ४ ॥

जोषद्यदीमसुर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृमणाः ।
आ सूर्येव विधतो रथं गात्त्वेषप्रतीका नभसो नेत्या ॥ ५ ॥ ४ ॥
आस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्राम् ।
अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतसोमो दुवस्यन् ॥ ६ ॥
प्र तं विवक्मि वक्म्यो य एषां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।
सचा यदीं वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीर्वहते सुभागाः ॥ ७ ॥
पान्ति मित्रावरुणाववद्याच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।
उत च्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥ ८ ॥
नही नु वो मरुतो अन्त्यस्मे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।
ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोऽर्णो न द्वेषो धृषता परि ष्ठुः ॥ ९ ॥

जोषत् । यत् । ईं । असुर्या । सचध्यै । विसितऽस्तुका । रोदसी । नृऽमनाः । आ । सूर्याऽइव । विधतः । रथं । गात् । त्वेषऽप्रतीका । नभसः । न । इत्या ॥ ५ ॥ ४ ॥ आ । अस्थापयंत । युवतिं । युवानः । शुभे । निऽमिश्लां । विदथेषु । पज्रां । अर्कः । यत् । वः । मरुतः । हविष्मान् । गायत् । गाथं । सुतऽसोमः । दुवस्यन् ॥ ६ ॥ प्र । तं । विवक्मि । वक्म्यः । यः । एषां । मरुतां । महिमा । सत्यः । अस्ति । सचा । यत् । ईं । वृषऽमनाः । अहंऽयुः । स्थिरा । चित् । जनीः । वहते । सुऽभागाः ॥ ७ ॥ पांति । मित्रावरुणौ । अवद्यात् । चयते । ईं । अर्यमो इति । अप्रऽशस्तान् । उत । च्यवंते । अच्युता । ध्रुवाणि । ववृधे । ईं । मरुतः । दातिऽवारः ॥ ८ ॥ नहि । नु । वः । मरुतः । अंति । अस्मे इति । आरात्तात् । चित् । शवसः । अंतं । आपुः । ते । धृष्णुना । शवसा । शुशुऽवांसः । अर्णः । न । द्वेषः । धृषता । परि । स्थुः ॥ ९ ॥

वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठा वयं श्वो वोचेमहि समर्ये ।
वयं पुरा महि च नो अनु द्यून्तन्न ऋभुक्षा नरामनु ष्यात् ॥ १० ॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥ ५ ॥

॥ १६८ ॥ ऋषिः-अगस्त्यः । देवता-मरुतः । छन्दः-जगती ॥

॥१६८॥ यज्ञायज्ञा वः समना तुतुर्वणिर्धियंधियं वो देवया उ दधिध्वे ।
आ वोऽर्वाचः सुविताय रोदस्योर्महे ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः ॥ १ ॥
वव्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥
सोमासो न ये सुतास्तृप्तांशवो हृत्सु पीतासो दुवसो नासते ।
ऐषामंसेषु रम्भिणीव रारभे हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे ॥ ३ ॥

वयं । अद्य । इंद्रस्य । प्रेष्ठाः । वयं । श्वः । वोचेमहि । सऽमर्ये । वयं । पुरा । महि । च । नः । अनु । द्यून् । तत् । नः । ऋभुक्षाः । नरां । अनु । स्यात् ॥ १० ॥ एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयं । गीः । मांदार्यस्य । मान्यस्य । कारोः । आ । इषा । यासीष्ट । तन्वे । वयां । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ११ ॥ ५ ॥

यज्ञाऽयज्ञा । वः । समना । तुतुर्वणिः । धियंऽधियं । वः । देवऽयाः । ऊं इति । दधिध्वे । आ । वः । अर्वाचः । सुविताय । रोदस्योः । महे । ववृत्या । अवसे । सुवृक्तिऽभिः ॥ १ ॥ वव्रासः । न । ये । स्वऽजाः । स्वऽतवसः । इषं । स्वः । अभिऽजायंत । धूतयः । सहस्रियासः । अपां । न । ऊर्मयः । आसा । गावः । वंद्यासः । न । उक्षणः ॥ २ ॥ सोमासः । न । ये । सुताः । तृप्तऽअंशवः । हृत्ऽसु । पीतासः । दुवसः । न । आसते । आ । एषां । अंसेषु । रंभिणीऽइव । ररभे । हस्तेषु । खादिः । च । कृतिः । च । सं । दधे ॥ ३ ॥

अव स्वयुक्ता दिव आ वृथा ययुरमर्त्याः कशया चोदत त्मना ।
अरेणवस्तुविजाता अचुच्यवुर्दृळ्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४ ॥
को वोऽन्तर्मरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।
धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुप्रैषा अहन्योऽनैतशः ॥ ५ ॥ ६ ॥
क्व स्विदस्य रजसो महस्परं क्वावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।
यच्च्यावयथ विथुरेव संहितं व्यद्रिणा पतथ त्वेषमर्णवम् ॥ ६ ॥
सातिर्न वोऽमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।
भद्रा वो रातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुज्रयी असुर्येव जञ्जती ॥ ७ ॥
प्रति ष्टोभन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदभ्रियां वाचमुदीरयन्ति ।
अव स्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदी घृतं मरुतः प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥

अव । स्वऽयुक्ताः । दिवः । आ । वृथा । ययुः । अमर्त्याः । कशया । चोदत । त्मना । अरेणवः । तुविऽजाताः । अचुच्यवुः । दृळ्हानि । चित् । मरुतः । भ्राजत्ऽऋष्टयः ॥ ४ ॥ कः । वः । अंतः । मरुतः । ऋष्टिऽविद्युतः । रेजति । त्मना । हन्वाऽइव । जिह्वया । धन्वऽच्युतः । इषां । न । यामनि । पुरुऽप्रैषाः । अहन्यः । न । एतशः ॥ ५ ॥ ६ ॥ क्व । स्वित् । अस्य । रजसः । महः । परं । क्व । अवरं । मरुतः । यस्मिन् । आऽयय । यत् । च्यवयथ । विथुराऽइव । संऽहितं । वि । अद्रिणा । पतथ । त्वेषं । अर्णवं ॥ ६ ॥ सातिः । न । वः । अमऽवती । स्वःऽवती । त्वेषा । विऽपाका । मरुतः । पिपिष्वती । भद्रा । वः । रातिः । पृणतः । न । दक्षिणा । पृथुऽज्रयी । असुर्याऽइव । जंजती ॥ ७ ॥ प्रति । स्तोभंति । सिंधवः । पविऽभ्यः । यत् । अभ्रियां । वाचं । उत्ऽईरयंति । अव । स्मयंत । विऽद्युतः । पृथिव्यां । यदि । घृतं । मरुतः । प्रुष्णुवंति ॥ ८ ॥

असूंत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।
ते सप्सरासोऽजनयन्ताभ्वमादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥ ७ ॥

॥ १६९ ॥ ऋषिः—अगस्त्यः । देवता–इन्द्रः । छन्दः त्रिष्टुप् ॥

॥१६९॥ महश्चित्त्वमिन्द्र यत एतान्महश्चिदसि त्यजसो वरूता ।
स नो वेधो मरुतां चिकित्वान्त्सुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥ १ ॥
अयुंजन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विदानासो निष्षिधो मर्त्यत्रा ।
मरुतां पृत्सुतिर्हासमाना स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ ॥ २ ॥
अम्यक्सा त इन्द्र ऋष्टिरस्मे सनेम्यभ्वं मरुतो जुनन्ति ।
अग्निश्चिद्धि ष्मातसे शुशुक्वानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥ ३ ॥

असूंत । पृश्निः । महते । रणाय । त्वेषं । अयासां । मरुतां । अनीकं । ते । सप्सरासः । अजनयंत । अभ्वं । आत् । इत् । स्वधां । इषिरां । परि । अपश्यन् ॥ ९ ॥ एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयं । गीः । मांदार्यस्य । मान्यस्य । कारोः । आ । इषा । यासीष्ट । तन्वे । वयां । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ १० ॥ ७ ॥

महः । चित् । त्वं । इंद्र । यतः । एतान् । महः । चित् । असि । त्यजसः । वरूता । सः । नः । वेधः । मरुतां । चिकित्वान् । सुम्ना । वनुष्व । तव । हि । प्रेष्ठा ॥ १ ॥ अयुंजन् । ते । इंद्र । विश्वऽकृष्टीः । विदानासः । निःऽसिधः । मर्त्यऽत्रा । मरुतां । पृत्सुतिः । हासमाना । स्वःऽमीळ्हस्य । प्रऽधनस्य । सातौ ॥ २ ॥ अम्यक् । सा । ते । इंद्र । ऋष्टिः । अस्मे इति । सनेमि । अभ्वं । मरुतः । जुनंति । अग्निः । चित् । हि । स्म । अतसे । शुशुक्वान् । आपः । न । द्वीपं । दधति । प्रयांसि ॥ ३ ॥

त्वं तू न इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।
स्तुतश्च यास्ते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त वाजैः ॥ ४ ॥
त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्य चिदृतायोः ।
ते षु णो मरुतो मृळयन्तु ये स्मा पुरा गातूयन्तीव देवाः ॥ ५ ॥ ८ ॥
प्रति प्र याहीन्द्र मीळ्हुषो नॄन्महः पार्थिवे सदने यतस्व ।
अध यदेषां पृथुबुध्नास एतास्तीर्थे नार्यः पौंस्यानि तस्थुः ॥ ६ ॥
प्रति घोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुपब्दिः ।
ये मर्त्यं पृतनायन्तमूमैर्ऋणावानं न पतयन्त सर्गैः ॥ ७ ॥
त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्या रदा मरुद्भिः शुरुधो गोअग्राः ।
स्तवानेभिः स्तवसे देव देवैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥ ९ ॥

त्वं । नु । नः । इंद्र । तं । रयिं । दाः । ओजिष्ठया । दक्षिणयाऽइव । रातिं । स्तुतः । च । याः । ते । चकनंत । वायोः । स्तनं । न । मध्वः । पीपयंत । वाजैः ॥ ४ ॥
त्वे इति । रायः । इंद्र । तोशऽतमाः । प्रऽनेतारः । कस्य । चित् । ऋतऽयोः । ते । सु । नः । मरुतः । मृळयंतु । ये । स्म । पुरा । गातुयंतिऽइव । देवाः ॥ ५ ॥ ८ ॥
प्रति । प्र । याहि । इंद्र । मीळ्हुषः । नॄन् । महः । पार्थिवे । सदने । यतस्व । अध । यत् । एषां । पृथुऽबुध्नासः । एताः । तीर्थे । न । अर्यः । पौंस्यानि । तस्थुः ॥ ६ ॥
प्रति । घोराणां । एतानां । अयासां । मरुतां । शृण्वे । आऽयतां । उपब्दिः । ये । मर्त्यं । पृतनाऽयंतं । ऊमैः । ऋणऽवानं । न । पतयंत । सर्गैः ॥ ७ ॥
त्वं । मानेभ्यः । इंद्र । विश्वऽजन्या । रद । मरुत्ऽभिः । शुरुधः । गोऽअग्राः । स्तवानेभिः । स्तवसे । देव । देवैः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ८ ॥ ९ ॥

॥ १७० ॥ ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—अनुष्टुप् ॥

॥ १७० ॥ न नूनमस्ति नो श्वः कस्तवेद यदद्भुतम् ।
अन्यस्य चित्तमभि संचरेण्यमुताधीतं वि नश्यति ॥ १ ॥
किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।
तेभिः कल्पस्व साधुया मा नः समरणे वधीः ॥ २ ॥
किं नो भ्रातरगस्त्य सखा सन्नति मन्यसे ।
विद्मा हि ते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्न दित्ससि ॥ ३ ॥
अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः ।
तत्रामृतस्य चेतनं यज्ञं ते तनवावहै ॥ ४ ॥
त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।
इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्वाध प्राशान ऋतुथा हवींषि ॥ ५ ॥ १० ॥

न । नूनं । अस्ति । नो इति । श्वः । कः । तत् । वेद । यत् । अद्भुतं । अन्यस्य । चित्तं । अभि । संऽचरेण्यं । उत । आऽधीतं । वि । नश्यति ॥ १ ॥ किं । नः । इंद्र । जिघांससि । भ्रातरः । मरुतः । तव । तेभिः । कल्पस्व । साधुऽया । मा । नः । संऽअरणे । वधीः ॥ २ ॥ किं । नः । भ्रातः । अगस्त्य । सखा । सन् । अति । मन्यसे । विद्म । हि । ते । यथा । मनः । अस्मभ्यं । इत् । न । दित्ससि ॥ ३ ॥ अरं । कृण्वंतु । वेदिं । सं । अग्निं । इंधतां । पुरः । तत्र । अमृतस्य । चेतनं । यज्ञं । ते । तनवावहै ॥ ४ ॥ त्वं । ईशिषे । वसुऽपते । वसूनां । त्वं । मित्राणां । मित्रऽपते । धेष्ठः । इंद्र । त्वं । मरुत्ऽभिः । सं । वदस्व । अध । प्र । अशान । ऋतुऽथा । हवींषि ॥ ५ ॥ १० ॥

॥ १७१ ॥ ऋषिः--अगस्त्यः । देवता--मरुतः । छन्दः--त्रिष्टुप् ॥

॥१७१॥ प्रति व एना नमसाहमेमि सूक्तेन भिक्षे सुमतिं तुराणाम् ।
रराणता मरुतो वेद्याभिर्नि हेळो धत्त वि मुचध्वमश्वान् ॥ १ ॥
एष वः स्तोमो मरुतो नमस्वान्हृदा तष्टो मनसा धायि देवाः ।
उपेमा यात मनसा जुषाणा यूयं हि ष्ठा नमस इद्वृधासः ॥ २ ॥
स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तूत स्तुतो मघवा शम्भविष्ठः ।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ ३ ॥
अस्मादहं तविषादीषमाण इन्द्राद्भिया मरुतो रेजमानः ।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन्तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥ ४ ॥

प्रति । वः । एना । नमसा । अहं । एमि । सुऽउक्तेन । भिक्षे । सुऽमतिं । तुराणां । रराणता । मरुतः । वेद्याभिः । नि । हेळः । धत्त । वि । मुचध्वं । अश्वान् ॥ १ ॥ एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । नमस्वान् । हृदा । तष्टः । मनसा । धायि । देवाः । उप । ईं । आ । यात । मनसा । जुषाणाः । यूयं । हि । स्थ । नमसः । इत् । वृधासः ॥ २ ॥ स्तुतासः । नः । मरुतः । मृळयंतु । उत । स्तुतः । मघऽवा । शंऽभविष्ठः । ऊर्ध्वा । नः । संतु । कोम्या । वनानि । अहानि । विश्वा । मरुतः । जिगीषा ॥ ३ ॥ अस्मात् । अहं । तविषात् । ईषमाणः । इंद्रात् । भिया । मरुतः । रेजमानः । युष्मभ्यं । हव्या । निऽशितानि । आसन् । तानि । आरे । चकृम । मृळत । नः ॥ ४ ॥

येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम् ।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥ ५ ॥
त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन्भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ ११ ॥

॥ १७२ ॥ ऋषिः-अगस्त्यः । देवता-मरुतः । छन्दः-गायत्री ॥

॥ १७२ ॥ चित्रो वोऽस्तु यामश्चित्र ऊती सुदानवः ।
मरुतो अहिभानवः ॥ १ ॥
आरे सा वः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः ।
आरे अश्मा यमस्यथ ॥ २ ॥
तृणस्कन्दस्य नु विशः परि वृङ्क्त सुदानवः ।
ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ॥ ३ ॥ १२ ॥

येन । मानासः । चितयंते । उस्राः । विऽउष्टिषु । शवसा । शश्वतीनां । सः । नः । मरुत्ऽभिः । वृषभ । श्रवः । धाः । उग्रः । उग्रेभिः । स्थविरः । सहःऽदाः ॥ ५ ॥ त्वं । पाहि । इंद्र । सहीयसः । नॄन् । भव । मरुत्ऽभिः । अवयातऽहेळाः । सुऽप्रकेतेभिः । ससहिः । दधानः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ६ ॥ ११ ॥

चित्रः । वः । अस्तु । यामः । चित्रः । ऊती । सुऽदानवः । मरुतः । अहिऽभानवः ॥ १ ॥ आरे । सा । वः । सुऽदानवः । मरुतः । ऋंजती । शरुः । आरे । अश्मा । यं । अस्यथ ॥ २ ॥ तृणऽस्कंदस्य । नु । विशः । परि । वृंक्त । सुऽदानवः । ऊर्ध्वान् । नः । कर्त । जीवसे ॥ ३ ॥ १२ ॥

॥ १७३ ॥ ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥१७३॥ गायत्साम नभन्यं यथा वेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत्सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥ १ ॥
अर्चद्वृषा वृषभिः स्वदुहव्यैर्मृगो नाश्नो अति यज्जुगुर्यात् ।
प्र मन्दयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यजत्रः ॥ २ ॥
नक्षद्धोता परि सद्म मिता यन्भरद्गर्भमा शरदः पृथिव्याः ।
क्रन्ददश्वो नयमानो रुवद्गौरन्तर्दूतो न रोदसी चरद्वाक् ॥ ३ ॥
ता कर्माषतरास्मै प्र च्यौत्नानि देवयन्तो भरन्ते ।
जुजोषदिन्द्रो दस्मवर्चा नासत्येव सुग्म्यो रथेष्ठाः ॥ ४ ॥

गायत् । साम । नभन्यं । यथा । वेः । अर्चाम । तत् । ववृधानं । स्वःऽवत् ।
गावः । धेनवः । बर्हिषि । अदब्धाः । आ । यत् । सद्मानं । दिव्यं । विवासान् ॥ १ ॥
अर्चत् । वृषा । वृषऽभिः । स्वऽदुहव्यैः । मृगः । न । अश्नः । अति । यत् । जुगु-
र्यात् । प्र । मंदयुः । मनां । गूर्त । होता । भरते । मर्यः । मिथुना । यजत्रः ॥ २ ॥
नक्षत् । होता । परि । सद्म । मिता । यन् । भरत् । गर्भं । आ । शरदः । पृथिव्याः ।
क्रंदत् । अश्वः । नयमानः । रुवत् । गौः । अंतः । दूतः । न । रोदसी इति । चरत् ।
वाक् ॥ ३ ॥ ता । कर्म । अषऽतरा । अस्मै । प्र । च्यौत्नानि । देवऽयंतः । भरंते ।
जुजोषत् । इंद्रः । दस्मऽवर्चाः । नासत्याऽइव । सुग्म्यः । रथेऽस्थाः ॥ ४ ॥

तमु ष्टुहीन्द्रं यो ह सत्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।
प्रतीचश्चिद्योधीयान्वृषण्वान्ववव्रुषश्चित्तमसो विहन्ता ॥ ५ ॥ १३ ॥
प्र यदित्था महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसी कक्ष्ये३ नास्मै ।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥ ६ ॥
समत्सु त्वा शूर सतामुराणं प्रपथिन्तमं परितंसयध्यै ।
सजोषस इन्द्रं मदे क्षोणीः सूरिं चिद्ये अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥
एवा हि ते शं सवना समुद्र आपो यत्त आसु मदन्ति देवीः ।
विश्वा ते अनु जोष्या भूद्गौः सूरींश्चिद्यदि धिषा वेषि जनान् ॥ ८ ॥
असाम यथा सुषखाय एन स्वभिष्टयो नरां न शंसैः ।
असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्ठास्तुरो न कर्म नयमान उक्था ॥ ९ ॥

तं । ऊं इति । स्तुहि । इंद्रं । यः । ह । सत्वा । यः । शूरः । मघऽवा । यः । रथेऽस्थाः । प्रतीचः । चित् । योधीयान् । वृषण्ऽवान् । ववव्रुषः । चित् । तमसः । विऽहंता ॥ ५ ॥ १३ ॥ प्र । यत् । इत्था । महिना । नृऽभ्यः । अस्ति । अरं । रोदसी इति । कक्ष्ये३ इति । न । अस्मै । सं । विव्ये । इंद्रः । वृजनं । न । भूम । भर्ति । स्वधाऽवान् । ओपशंऽइव । द्यां ॥ ६ ॥ समत्ऽसु । त्वा । शूर । सतां । उराणं । प्रपथिन्ऽतमं । परिऽतंसयध्यै । सऽजोषसः । इंद्रं । मदे । क्षोणीः । सूरिं । चित् । ये । अनुऽमदंति । वाजैः ॥ ७ ॥ एव । हि । ते । शं । सवना । समुद्रे । आपः । यत् । ते । आसु । मदंति । देवीः । विश्वाः । ते । अनु । जोष्या । भूत् । गौः । सूरीन् । चित् । यदि । धिषा । वेषि । जनान् ॥ ८ ॥ असाम । यथा । सुऽसखायः । एन । सुऽअभिष्टयः । नरां । न । शंसैः । असत् । यथा । नः । इंद्रः । वंदनेऽस्थाः । तुरः । नः । कर्म । नयमानः । उक्था ॥ ९ ॥

विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः

मित्रायुवो न पूर्पतिं सुशिष्टौ मध्यायुव उप शिक्षन्ति यज्ञैः ॥ १० ॥ १४ ॥

यज्ञो हि ष्मेन्द्रं कश्चिदृन्धञ्जुहुराणश्चिन्मनसा परियन् ।

तीर्थे नाच्छा तातृषाणमोको दीर्घो न सिध्रमा कृणोत्यध्वा ॥ ११ ॥

मो षू ण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः ।

महश्चिद्यस्य मीळ्हुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ॥ १२ ॥

एषः स्तोम इन्द्र तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।

आ नो ववृत्याः सुविताय देव विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १३ ॥ १५ ॥

विऽस्पर्धसः । नरां । न । शंसैः । अस्माक । असत् । इंद्रः । वज्रऽहस्तः । मित्रऽयुवः ।
न । पूःऽपतिं । सुऽशिष्टौ । मध्यऽयुवः । उप । शिक्षंति । यज्ञैः ॥ १० ॥ १४ ॥
यज्ञः । हि । स्म । इंद्रं । कः । चित् । ऋंधन् । जुहुराणः । चित् । मनसा । परिऽयन् ।
तीर्थे । न । अच्छ । ततृषाणं । ओकः । दीर्घः । न । सिध्रं । आ । कृणोति ।
अध्वा ॥ ११ ॥ मो इति । सु । नः । इंद्र । अत्र । पृत्ऽसु । देवैः । अस्ति । हि ।
स्म । ते । शुष्मिन् । अवऽयाः । महः । चित् । यस्य । मीळ्हुषः । यव्या । हविष्मतः ।
मरुतः । वंदते । गीः ॥ १२ ॥ एषः । स्तोमः । इंद्र । तुभ्यं । अस्मे इति । एतेन ।
गातुं । हरिऽवः । विदः । नः । आ । नः । ववृत्याः । सुविताय । देव । विद्याम ।
इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ १३ ॥ १५ ॥

॥ १७४ ॥ ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥१७४॥ त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षा नॄन्पाह्यसुर त्वमस्मान् ।
त्वं सत्पतिर्मघवा नस्तरुत्रस्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥
दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्णा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥
अजा वृत इन्द्र शूरपत्नीर्द्यां च येभिः पुरुहूत नूनम् ।
रक्षो अग्निमशुषं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥
शेषन्नु त इन्द्र सस्मिन्योनौ प्रशस्तये पवीरवस्य मह्ना ।
सृजदर्णांस्यव यद्युधा गास्तिष्ठद्धरी धृषता मृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥

त्वं । राजा । इंद्र । ये । च । देवाः । रक्ष । नॄन् । पाहि । असुर । त्वं । अस्मान् । त्वं । सत्ऽपतिः । मघऽवा । नः । तरुत्रः । त्वं । सत्यः । वसवानः । सहःऽदाः ॥ १ ॥ दनः । विशः । इंद्र । मृध्रऽवाचः । सप्त । यत् । पुरः । शर्म । शारदीः । दर्त् । ऋणोः । अपः । अनवद्य । अर्णाः । यूने । वृत्रं । पुरुऽकुत्साय । रंधीः ॥ २ ॥ अजः । वृतः । इंद्र । शूरऽपत्नीः । द्यां । च । येभिः । पुरुऽहूत । नूनं । रक्षो इति । अग्निं । अशुषं । तूर्वयाणं । सिंहः । न । दमे । अपांसि । वस्तोः ॥ ३ ॥ शेषन् । नु । ते । इंद्र । सस्मिन् । योनौ । प्रऽशस्तये । पवीरवस्य । मह्ना । सृजत् । अर्णांसि । अव । यत् । युधा । गाः । तिष्ठत् । हरी इति । धृषता । मृष्ट । वाजान् ॥ ४ ॥

वह कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्स्यूमन्यू ऋज्रा वातस्याश्वा ।
प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीकेऽभि स्पृधो यासिषद्वज्रबाहुः ॥ ५ ॥ १६ ॥
जघन्वाँ इन्द्र मित्रेरूञ्चोदप्रवृद्धो हरिवो अदाशून् ।
प्र ये पश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्ता वहमाना अपत्यम् ॥ ६ ॥
रपत्कविरिन्द्रार्कसातौ क्षां दासायोपबर्हणीं कः ।
करत्तिस्रो मघवा दानुचित्रा नि दुर्योणे कुयवाचं मृधि श्रेत् ॥ ७ ॥
सना ता त इन्द्र नव्या आगुः सहो नभोऽविरणाय पूर्वीः ।
भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥

वह । कुत्सं । इंद्र । यस्मिन् । चाकन् । स्यूमन्यू इति । ऋज्रा । वातस्य । अश्वा । प्र । सूरः । चक्रं । वृहतात् । अभीके । अभि । स्पृधः । यासिषत् । वज्रऽबाहुः ॥५॥१६॥ जघन्वान् । इंद्र । मित्रेरून् । चोदऽप्रवृद्धः । हरिऽवः । अदाशून् । प्र । ये । पश्यन् । अर्यमणं । सचा । आयोः । त्वया । शूर्ताः । वहमानाः । अपत्यं ॥ ६ ॥ रपत् । कविः । इंद्र । अर्कऽसातौ । क्षां । दासाय । उपऽबर्हणीं । करिति कः । करत् । तिस्रः । मघऽवा । दानुऽचित्राः । नि । दुर्योणे । कुयवाचं । मृधि । श्रेत् ॥ ७ ॥ सना । ता । ते । इंद्र । नव्याः । आ । अगुः । सहः । नभः । अविऽरणाय । पूर्वीः । भिनत् । पुरः । न । भिदः । अदेवीः । ननमः । वधः । अदेवस्य । पीयोः ॥ ८ ॥ त्वं । धुनिः । इंद्र । धुनिऽमतीः । ऋणोः । अपः । सीराः । न । स्रवंतीः । प्र । यत् । समुद्रं । अति । शूर । पर्षि । पारय । तुर्वशं । यदुं । स्वस्ति ॥ ९ ॥

त्वमस्माकमिन्द्र विश्वध स्या अवृकतमो नरां नृपाता ।

स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥ १७ ॥

॥ १७५ ॥ ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥१७५॥ मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।

वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥

आ नस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।

सहावाँ इन्द्र सानसिः पृतनाषाळमर्त्यः ॥ २ ॥

त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।

सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

त्वं । अस्माकं । इंद्र । विश्वधं । स्याः । अवृकऽतमः । नरां । नृऽपाता । सः । नः । विश्वासां । स्पृधां । सहःऽदाः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ १० ॥ १७ ॥

मत्सि । अपायि । ते । महः । पात्रस्यऽइव । हरिऽवः । मत्सरः । मदः । वृषा । ते । वृष्णे । इंदुः । वाजी । सहस्रऽसातमः ॥ १ ॥ आ । नः । ते । गंतु । मत्सरः । वृषा । मदः । वरेण्यः । सहऽवान् । इंद्र । सानसिः । पृतनाषाट् । अमर्त्यः ॥ २ ॥ त्वं । हि । शूरः । सनिता । चोदयः । मनुषः । रथं । सहऽवान् । दस्युं । अव्रतं । ओषः । पात्रं । न । शोचिषा ॥ ३ ॥

मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।

वह शुष्णाय वधं कुत्सं वातस्याश्वैः ॥ ४ ॥

शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युम्निन्तम उत क्रतुः ।

वृत्रघ्ना वरिवोविदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मय इवापो न तृष्यते बभूथ ।

तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १८ ॥

॥ १७६ ॥ ऋषिः–अगस्त्यः । देवता–इन्द्रः । छन्दः–अनुष्टुप् ॥

॥ १७६ ॥ मत्सि नो वस्यइष्टय इन्द्रमिन्दो वृषा विश ।

ऋघायमाण इन्वसि शत्रुमन्ति न विन्दसि ॥ १ ॥

मुषाय । सूर्यं । कवे । चक्रं । ईशानः । ओजसा । वह । शुष्णाय । वधं । कुत्सं । वातस्य । अश्वैः ॥ ४ ॥ शुष्मिन्ऽतमः । हि । ते । मदः । द्युम्निन्ऽतमः । उत । क्रतुः । वृत्रऽघ्ना । वरिवःऽविदा । मंसीष्ठाः । अश्वऽसातमः ॥ ५ ॥ यथा । पूर्वेभ्यः । जरितृऽभ्यः । इंद्र । मयःऽइव । आपः । न । तृष्यते । बभूथ । तां । अनु । त्वा । निऽविदं । जोहवीमि । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ६ ॥ १८ ॥

मत्सि । नः । वस्यःऽइष्टये । इंद्रं । इंदो इति । वृषा । आ । विश । ऋघायमाणः । इन्वसि । शत्रुं । अंति । न । विंदसि ॥ १ ॥

तस्मिन्ना वेशया गिरो य एकश्चर्षणीनाम् ।
अनु स्वधा यमुप्यते यवं न चर्कृषद्वृषा ॥ २ ॥

यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्च क्षितीनां वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥ ३ ॥

असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥

आवो यस्य द्विबर्हसोऽर्केषु सानुषगसत् ।
आजाविन्द्रस्येन्दो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥

यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्य इन्द्र मयइवापो न तृष्यते बभूथ ।
तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १९ ॥

तस्मिन् । आ । वेशय । गिरः । यः । एकः । चर्षणीनां । अनु । स्वधा । यं । उप्यते । यवं । न । चर्कृषत् । वृषा ॥ २ ॥ यस्य । विश्वानि । हस्तयोः । पंच । क्षितीनां । वसु । स्पाशयस्व । यः । अस्मऽध्रुक् । दिव्याऽइव । अशनिः । जहि ॥ ३ ॥ असुन्वंतं । समं । जहि । दुःऽनशं । यः । न । ते । मयः । अस्मभ्यं । अस्य । वेदनं । दद्धि । सूरिः । चित् । ओहते ॥ ४ ॥ आवः । यस्य । द्विऽबर्हसः । अर्केषु । सानुषक् । असत् । आजौ । इंद्रस्य । इंदो इति । प्र । आवः । वाजेषु । वाजिनं ॥ ५ ॥ यथा । पूर्वेभ्यः । जरितृऽभ्यः । इंद्र । मयःऽइव । आपः । न । तृष्यते । बभूथ । तां । अनु । त्वा । निऽविदं । जोहवीमि । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरदानुं ॥ ६ ॥ १९ ॥

॥ १७७ ॥ ऋषिः–अगस्त्यः । देवता–इन्द्रः । छन्दः–त्रिष्टुप् ॥

॥१७७॥ आ चर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।
स्तुतः श्रवस्यन्नवसोप मद्रिग्युक्त्वा हरी वृषणा याह्यर्वाङ् ॥ १ ॥
ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मयुजो वृषरथासो अत्याः ।
ताँ आ तिष्ठ तेभिरा याह्यर्वाङ् हवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥ २ ॥
आ तिष्ठ रथं वृषणं वृषा ते सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
युक्त्वा वृषभ्यां वृषभ क्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्रिक् ॥ ३ ॥
अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्ययमिन्द्र सोमः ।
स्तीर्णं बर्हिरा तु शक्र प्र याहि पिबा निषद्य वि मुचा हरी इह ॥ ४ ॥

आ । चर्षणिऽप्राः । वृषभः । जनानां । राजा । कृष्टीनां । पुरुऽहूतः । इंद्रः । स्तुतः । श्रवस्यन् । अवसा । उप । मद्रिक् । युक्त्वा । हरी इति । वृषणा । आ । याहि । अर्वाङ् ॥ १ ॥ ये । ते । वृषणः । वृषभासः । इंद्र । ब्रह्मऽयुजः । वृषऽरथासः । अत्याः । तान् । आ । तिष्ठ । तेभिः । आ । याहि । अर्वाङ् । हवामहे । त्वा । सुते । इंद्र । सोमे ॥ २ ॥ आ । तिष्ठ । रथं । वृषणं । वृषा । ते । सुतः । सोमः । परिऽसिक्ता । मधूनि । युक्त्वा । वृषऽभ्यां । वृषभ । क्षितीनां । हरिऽभ्यां । याहि । प्रऽवता । उप । मद्रिक् ॥ ३ ॥ अयं । यज्ञः । देवऽयाः । अयं । मियेधः । इमा । ब्रह्माणि । अयं । इंद्र । सोमः । स्तीर्णं । बर्हिः । आ । तु । शक्र । प्र । याहि । पिब । निऽसद्य । वि । मुच । हरी इति । इह ॥ ४ ॥

ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङुप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥ २० ॥

॥ १७८ ॥ ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥१७८॥ यद्ध स्या त इन्द्र श्रुष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।
मा नः कामं महयन्तमा धग्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥ १ ॥
न घा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।
आपश्चिदस्मै सुतुका अवेषन्गमन्न इन्द्रः सख्या वयश्च ॥ २ ॥
जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।
प्रभर्ता रथं दाशुष उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥ ३ ॥

ओ इति । सुऽस्तुतः । इंद्र । याहि । अर्वाङ् । उप । ब्रह्माणि । मान्यस्य । कारोः ।
विद्याम । वस्तोः । अवसा । गृणंतः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ५ ॥ २० ॥

यत् । ह । स्या । ते । इंद्र । श्रुष्टिः । अस्ति । यया । बभूथ । जरितृऽभ्यः । ऊती । मा । नः । कामं । महयंतं । आ । धक् । विश्वा । ते । अश्यां । परि । आपः । आयोः ॥ १ ॥ न । घ । राजा । इंद्रः । आ । दभत् । नः । या । नु । स्वसारा । कृणवंत । योनौ । आपः । चित् । अस्मै । सुऽतुकाः । अवेषन् । गमत् । नः । इंद्रः । सख्या । वयः । च ॥ २ ॥ जेता । नृऽभिः । इंद्रः । पृत्ऽसु । शूरः । श्रोता । हवं । नाधमानस्य । कारोः । प्रऽभर्ता । रथं । दाशुषः । उपाके । उत्ऽयंता । गिरः । यदि । च । त्मना । भूत् ॥ ३ ॥

एवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रखादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत्।
समर्य इषः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥ ४ ॥
त्वया वयं मघवन्निन्द्र शत्रूनभि ष्याम महतो मन्यमानान्।
त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

॥ १७९ ॥ ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—रतिः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥ १७९ ॥ पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥ १ ॥
ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः ॥ २ ॥

एव । नृऽभिः । इंद्रः । सुऽश्रवस्या । प्रऽखादः । पृक्षः । अभि । मित्रिणः । भूत् । सऽमर्ये । इषः । स्तवते । विऽवाचि । सत्राऽकरः । यजमानस्य । शंसः ॥ ४ ॥ त्वया । वयं । मघऽवन् । इंद्र । शत्रून् । अभि । स्याम । महतः । मन्यमानान् । त्वं । त्राता । त्वं । ऊं इति । नः । वृधे । भूः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ५ ॥ २१ ॥

पूर्वीः । अहं । शरदः । शश्रमाणा । दोषाः । वस्तोः । उषसः । जरयंतीः । मिनाति । श्रियं । जरिमा । तनूनां । अपि । ऊं इति । नु । पत्नीः । वृषणः । जगम्युः ॥ १ ॥ ये । चित् । हि । पूर्वे । ऋतऽसापः । आसन् । साकं । देवेभिः । अवदन् । ऋतानि । ते । चित् । अव । असुः । नहि । अंतं । आपुः । सं । ऊं इति । नु । पत्नीः । वृषऽभिः । जगम्युः ॥ २ ॥

न मृषा श्रान्तं यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव ।
जयावेदत्र शतनीथमाजिं यत्सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥ ३ ॥
नदस्य मा रुधतः काम आगन्नित आजातो अमुतः कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषणं नी रिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्तम् ॥ ४ ॥
इमं नु सोममन्तितो हृत्सु पीतमुप ब्रुवे ।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळतु पुलुकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥
अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः ।
उभौ वर्णावृषिरुग्रः पुपोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥ ६ ॥ २२ ॥ २३ ॥

न । मृषा । श्रान्तं । यत् । अवन्ति । देवाः । विश्वाः । इत् । स्पृधः । अभि । अश्नवाव । जयाव । इत् । अत्र । शतऽनीथं । आजिं । यत् । सम्यञ्चा । मिथुनौ । अभि । अजाव ॥ ३ ॥ नदस्य । मा । रुधतः । कामः । आ । अगन् । इतः । आऽजातः । अमुतः । कुतः । चित् । लोपामुद्रा । वृषणं । निः । रिणाति । धीरं । अधीरा । धयति । श्वसन्तं ॥ ४ ॥ इमं । नु । सोमं । अन्तितः । हृत्ऽसु । पीतं । उप । ब्रुवे । यत् । सीं । आगः । चकृम । तत् । सु । मृळतु । पुलुऽकामः । हि । मर्त्यः ॥ ५ ॥ अगस्त्यः । खनमानः । खनित्रैः । प्रऽजां । अपत्यं । बलं । इच्छमानः । उभौ । वर्णौ । ऋषिः । उग्रः । पुपोष । सत्याः । देवेषु । आऽशिषः । जगाम ॥ ६ ॥ २२ ॥ २३ ॥

॥ चतुर्विंशोऽनुवाकः ॥

॥ १८० ॥ ऋषिः–अगस्त्यः । देवता–अश्विनौ । छन्दः–त्रिष्टुप् ।

॥१८०॥ युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद्वां पर्यर्णांसि दीयत् ।
हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥ १ ॥
युवमत्यस्याव नक्षथो यद्विपत्मनो नर्यस्य प्रयज्योः ।
स्वसा यद्वां विश्वगूर्ती भराति वाजायेट्टे मधुपाविषे च ॥ २ ॥
युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।
अन्तर्यद्वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥ ३ ॥
युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रयेऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद्वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥ ४ ॥

युवोः । रजांसि । सुऽयमासः । अश्वाः । रथः । यत् । वां । परि । अर्णांसि । दीयत् । हिरण्ययाः । वां । पवयः । प्रुषायन् । मध्वः । पिबंतौ । उषसः । सचेथे इति ॥ १ ॥ युवं । अत्यस्य । अव । नक्षथः । यत् । विऽपत्मनः । नर्यस्य । प्रऽयज्योः । स्वसा । यत् । वां । विश्वगूर्ती इति विश्वऽगूर्ती । भराति । वाजाय । ईट्टे । मधुऽपौ । इषे । च ॥ २ ॥ युवं । पयः । उस्रियायां । अधत्तं । पक्वं । आमायां । अव । पूर्व्यं । गोः । अंतः । यत् । वनिनः । वां । ऋतप्सू इत्यृतऽप्सू । ह्वारः । न । शुचिः । यजते । हविष्मान् ॥ ३ ॥ युवं । ह । घर्मं । मधुऽमंतं । अत्रये । अपः । न । क्षोदः । अवृणीतं । एषे । तत् । वां । नरौ । अश्विना । पश्वःऽइष्टिः । रथ्याऽइव । चक्रा । प्रति । यंति । मध्वः ॥ ४ ॥

आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः ।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥ ५ ॥ २३ ॥
नि यद्युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरंधिम् ।
प्रेषद्वेषद्वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥ ६ ॥
वयं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिर्हितावान् ।
अधा चिद्धि ष्माश्विनावनिन्द्या पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥ ७ ॥
युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत्सहस्रैः ॥ ८ ॥

आ । वां । दानाय । ववृतीय । दस्रा । गोः । ओहेन । तौग्र्यः । न । जिव्रिः ।
अपः । क्षोणी इति । सचते । माहिना । वां । जूर्णः । वां । अक्षुः । अंहसः ।
यजत्रा ॥ ५ ॥ २३ ॥ नि । यत् । युवेथे इति । निऽयुतः । सुदानू इति सुऽदानू ।
उप । स्वधाभिः । सृजथः । पुरंऽधिं । प्रेषत् । वेषत् । वातः । न । सूरिः । आ ।
महे । ददे । सुऽव्रतः । न । वाजं ॥ ६ ॥ वयं । चित् । हि । वां । जरितारः ।
सत्याः । विपन्यामहे । वि । पणिः । हितऽवान् । अध । चित् । हि । स्म । अश्विनौ ।
अनिंद्या । पाथः । हि । स्म । वृषणौ । अंतिऽदेवं ॥ ७ ॥ युवां । चित् । हि । स्म ।
अश्विनौ । अनु । द्यून् । विऽरुद्रस्य । प्रऽस्रवणस्य । सातौ । अगस्त्यः । नरां । नृषु ।
प्रऽशस्तः । काराधुनीऽइव । चितयत् । सहस्रैः ॥ ८ ॥

प्र यद्वहेथे महिना रथस्य प्र स्यन्द्रा याथो मनुषो न होता ।
धत्तं सूरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥ ९ ॥
तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यं ।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥ २४ ॥

॥ १८१ ॥ ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—अश्विनौ । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥१८१॥ कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम् ।
अयं वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम् ॥ १ ॥
आ वामश्वासः शुचयः पयस्पा वातरंहसो दिव्यासो अत्याः ।
मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥ २ ॥
आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः ।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहम्पूर्वो यजतो धिष्ण्या यः ॥ ३ ॥

प्र । यत् । वहेथे इति । महिना । रथस्य । प्र । स्यंद्रा । याथः । मनुषः । न । होता ।
धत्तं । सूरिऽभ्यः । उत । वा । सुऽअश्व्यं । नासत्या । रयिऽसाचः । स्याम ॥ ९ ॥
तं । वां । रथं । वयं । अद्य । हुवेम । स्तोमैः । अश्विना । सुविताय । नव्यं ।
अरिष्टऽनेमिं । परि । द्यां । इयानं । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ १० ॥ २४ ॥

कत् । ऊं इति । प्रेष्ठौ । इषां । रयीणां । अध्वर्यंता । यत् । उत्ऽनिनीथः ।
अपां । अयं । वां । यज्ञः । अकृत । प्रऽशस्तिं । वसुधिती इति वसुऽधिती । अवितारा ।
जनानां ॥ १ ॥ आ । वां । अश्वासः । शुचयः । पयःऽपाः । वातऽरंहसः । दिव्यासः ।
अत्याः । मनःऽजुवः । वृषणः । वीतऽपृष्ठाः । आ । इह । स्वऽराजः । अश्विना ।
वहंतु ॥ २ ॥ आ । वां । रथः । अवनिः । न । प्रवत्वान् । सृप्रऽवंधुरः । सुविताय ।
गम्याः । वृष्णः । स्थातारा । मनसः । जवीयान् । अहंऽपूर्वः । यजतः । धिष्ण्या ।
यः ॥ ३ ॥

इहेह जाता समवावशीतामरेपसा तन्वा३नामभिः स्वैः ।
जिष्णुर्वामन्यः सुमखस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुभगः पुत्र ऊहे ॥ ४ ॥
प्र वां निचेरुः ककुहो वशाँ अनु पिशङ्गरूपः सदनानि गम्याः ।
हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्रा रजांस्यश्विना वि घोषैः ॥ ५ ॥ २५ ॥
प्र वां शरद्वान्वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् ।
एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥ ६ ॥
असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।
उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥ ७ ॥

इहऽइह । जाता । सं । अवावशीतां । अरेपसा । तन्वा । नामऽभिः । स्वैः । जिष्णुः । वां । अन्यः । सुऽमखस्य । सूरिः । दिवः । अन्यः । सुऽभगः । पुत्रः । ऊहे ॥ ४ ॥ प्र । वां । निऽचेरुः । ककुहः । वशान् । अनु । पिशंगऽरूपः । सदनानि । गम्याः । हरी इति । अन्यस्य । पीपयंत । वाजैः । मथ्रा । रजांसि । अश्विना । वि । घोषैः ॥ ५ ॥ २५ ॥ प्र । वां । शरत्ऽवान् । वृषभः । न । निष्षाट् । पूर्वीः । इषः । चरति । मध्वः । इष्णन् । एवैः । अन्यस्य । पीपयंत । वाजैः । वेषंतीः । ऊर्ध्वाः । नद्यः । नः । आ । अगुः ॥ ६ ॥ असर्जि । वां । स्थविरा । वेधसा । गीः । बाळ्हे । अश्विना । त्रेधा । क्षरंती । उपऽस्तुतौ । अवतं । नाधमानं । यामन् । अयामन् । शृणुतं । हवं । मे ॥ ७ ॥

उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ८ ॥
युवां पूषेवाश्विना पुरंधिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।
हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ९ ॥ २६ ॥

॥ १८२ ॥ ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—अश्विनौ । छन्दः—जगती ॥

॥१८२॥ अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिणः ।
धियंजिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥ १ ॥
इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुत्तमा दस्रा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।
पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन दाश्वांसमुप याथो अश्विना ॥ २ ॥

उत । स्या । वां । रुशतः । वप्ससः । गीः । त्रिऽबर्हिषि । सदसि । पिन्वते । नॄन् ।
वृषा । वां । मेघः । वृषणा । पीपाय । गोः । न । सेके । मनुषः । दशस्यन् ॥ ८ ॥
युवां । पूषाऽइव । अश्विना । पुरंऽधिः । अग्निं । उषां । न । जरते । हविष्मान् ।
हुवे । यत् । वां । वरिवस्या । गृणानः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ९ ॥ २६ ॥

अभूत् । इदं । वयुनं । ओ इति । सु । भूषत । रथः । वृषण्ऽवान् । मदत । मनीषिणः । धियंऽजिन्वा । धिष्ण्या । विश्पलावसू इति । दिवः । नपाता । सुऽकृते । शुचिऽव्रता ॥ १ ॥ इन्द्रऽतमा । हि । धिष्ण्या । मरुत्ऽतमा । दस्रा । दंसिष्ठा । रथ्या । रथिऽतमा । पूर्णं । रथं । वहेथे इति । मध्वः । आऽचितं । तेन । दाश्वांसं । उप । याथः । अश्विना ॥ २ ॥

किमत्र दस्रा कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।
अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥ ३ ॥

जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना ।
वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥ ४ ॥

युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय कम् ।
येन देवत्रा मनसा निरूहथुः सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः ॥ ५ ॥ २७ ॥

अवविद्धं तौग्र्यमप्स्वन्तरनारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।
चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिषिताः पारयन्ति ॥ ६ ॥

किं । अत्र । दस्रा । कृणुथः । किं । आसाथे इति । जनः । यः । कः । चित् । अहविः । महीयते । अति । क्रमिष्टं । जुरतं । पणेः । असुं । ज्योतिः । विप्राय । कृणुतं । वचस्यवे ॥ ३ ॥ जंभयतं । अभितः । रायतः । शुनः । हतं । मृधः । विदथुः । तानि । अश्विना । वाचंऽवाचं । जरितुः । रत्निनीं । कृतं । उभा । शंसं । नासत्या । अवतं । मम ॥ ४ ॥ युवं । एतं । चक्रथुः । सिंधुषु । प्लवं । आत्मन्ऽवंतं । पक्षिणं । तौग्र्याय । कं । येन । देवऽत्रा । मनसा । निःऽऊहथुः । सुऽपप्तनि । पेतथुः । क्षोदसः । महः ॥ ५ ॥ २७ ॥ अवऽविद्धं । तौग्र्यं । अपऽसु । अंतः । अनारंभणे । तमसि । प्रऽविद्धं । चतस्रः । नावः । जठलस्य । जुष्टाः । उत् । अश्विऽभ्यां । इषिताः । पारयंति ॥ ६ ॥

कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् ।
पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥ ७ ॥
तद्वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्मादद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥ २८ ॥

॥ १८३ ॥ ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—अश्विनौ । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥१८३॥ तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।
येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥ १ ॥
सुवृद्रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥ २ ॥

कः । स्वित् । वृक्षः । निःऽस्थितः । मध्ये । अर्णसः । यं । तौग्र्यः । नाधितः । परिऽअसस्वजत् । पर्णा । मृगस्य । पतरोःऽइव । आऽरभे । उत् । अश्विना । ऊहथुः । श्रोमताय । कं ॥ ७ ॥ तत् । वां । नरा । नासत्यौ । अनु । स्यात् । यत् । वां । मानासः । उचथं । अवोचन् । अस्मात् । अद्य । सदसः । सोम्यात् । आ । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ८ ॥ २८ ॥

तं । युञ्जाथां । मनसः । यः । जवीयान् । त्रिऽवन्धुरः । वृषणा । यः । त्रिऽचक्रः । येन । उपऽयाथः । सुऽकृतः । दुरोणं । त्रिऽधातुना । पतथः । विः । न । पर्णैः ॥ १ ॥ सुऽवृत् । रथः । वर्तते । यन् । अभि । क्षां । यत् । तिष्ठथः । क्रतुऽमंता । अनु । पृक्षे । वपुः । वपुष्या । सचतां । इयं । गीः । दिवः । दुहित्रा । उषसा । सचेथे इति ॥ २ ॥

आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥ ३ ॥
मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम् ।
अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥ ४ ॥
युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान् ।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥ ५ ॥
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ २९ ॥ ४ ॥

आ । तिष्ठतं । सुऽवृतं । यः । रथः । वां । अनु । व्रतानि । वर्तते । हविष्मान् । येन । नरा । नासत्या । इषयध्यै । वर्तिः । यायः । तनयाय । त्मने । च ॥ ३ ॥ मा । वां । वृकः । मा । वृकीः । आ । दधर्षीत् । मा । परि । वर्क्तं । उत । मा । अति । धक्तं । अयं । वां । भागः । निऽहितः । इयं । गीः । दस्रौ । इमे । वां । निऽधयः । मधूनां ॥ ४ ॥ युवां । गोतमः । पुरुऽमीळ्हः । अत्रिः । दस्रा । हवते । अवसे । हविष्मान् । दिशं । न । दिष्टां । ऋजुयाऽइव । यंता । आ । मे । हवं । नासत्या । उप । यातं ॥ ५ ॥ अतारिष्म । तमसः । पारं । अस्य । प्रति । वां । स्तोमः । अश्विनौ । अधायि । आ । इह । यातं । पथिऽभिः । देवऽयानैः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ६ ॥ २९ ॥

इति द्वितीयाष्टके चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अध्याय ४.

सूक्त १६६.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–मरुत ॥

सब लोगोंकी इच्छा पूरी करनेवाले और पराक्रमी इन्द्रकी, मानों, हे मरुत्देव, आप ध्वजाही हैं। आप बड़े जोरसे प्रकट होते हैं। हे मरुत्गण, आपने प्राचीनकालमें जो पराक्रम किये हैं उसके लिये आपकी स्तुति करना हमारा कामही है। हे मरुत्गण, सिंहनाद करनेवाले आप बड़े पराक्रमी वीर है। एक हाथमें मशाल और दूसरे हाथमें तलवार लेकर इस लोकमें आते समय, मार्गमें आप अपना पराक्रम दिखाते चले आते हैं। १

जिस तरह पिता अपने लड़कोंको मिठाई खिलाता है उसी तरह–लीला करनेवाले और देदीप्यमान् मरुत्देव, अपने भक्तोंपर प्रेमका दान अर्पण करते हैं। आप यज्ञमण्डपमें आकर बड़े आनन्दसे खेल करते हैं। हे रुद्ररूप धारणकरनेवाले मरुत्देव, जो भक्त आपके सामने बड़ी नम्रतासे सिर झुकाते हैं उनपर आप बड़ी कृपा करते हैं। निजके बलपर निर्भर रहनेवाले मरुत्देव, हवि अर्पण करनेवाले भक्तोंका कभी नाश नहीं करते। २

भक्तोंकी रक्षा करनेवाले अमर मरुत्देव, हविर्भाग अर्पण करनेवाले भक्तोंको हमेशा दिव्य ऐश्वर्य अर्पण करते हैं। भक्तोंका कल्याण करनेकी इच्छा करनेवाले मरुत्देव, अपने भक्तोंकी उन्नति करनेके लिये अन्तरिक्षके विस्तीर्ण प्रदेश वृष्टिसे गीले करते हैं। ३

हे मरुत्देवगण, आपके अश्व स्वयं रथको जोत लेते हैं। जब आपके अश्व दौड़ते चले जाते हैं तब वे अपने वेगसे सब रजो लोकको व्याप्त करते हैं और उसको हिलाते हैं। जब मरुत्देवगण बाहर निकलते हैं तब सब मनुष्य डरके मारे घबराने लगते हैं। और जब वे अपने हाथमें भाला लेते हैं तब आपकी सवारीकी शोभा कुछ अपूर्व दिखाई देती है। ४

---

१ रभसाय जन्मने वृषभस्य (इन्द्रस्य) केतवे (मरुद्गणाय) तत् (तेषां) पूर्वं महित्वं वोचाम नु । हे तुविष्मणः शक्राः मरुतः यामन्, (पाणौ स्थितेन) एधेन युधवत्व तविषाणि कर्तन

२ नित्यं सूनुं न (भक्तजन) मधु उपबिभ्रतः (एते) धृष्णवः क्रीळाश्च (मरुतः) विदथेषु क्रीळन्ति । रुद्राः नमस्विन अवसा नक्षन्ति, स्वतवसः हविष्कृतम् न मर्धन्ति ।

३ (एते) ऊमासः अमृताः हविषा रदाशुषे यस्मै (भक्ताय) रायः पोषं च अरासत, अस्मै मयोभुवः मरुतः हिता इव पुरुरजांसि पयसा उक्षन्ति ।

४ (मरुतः) ये (एते) व. एवासः स्वयतासः (ते यदा खलु) प्र अध्रजन् तविषीभिः रजांसि आ अव्रात । (युष्माकं निर्गमने) विश्वा भुवनानि हर्म्या च भयन्ते (परंच) प्रयतासु ऋष्टिषु वः यामः चित्रः (खलु) ।

वेगसे चलनेवाले भयंकर मरुत्देवगण जब गर्जना करते हैं तब पहाडके गुफाओंमेंसे प्रतिध्वनि निकलने लगता है और आकाशका विस्तीर्ण और गोल प्रदेश हिलने लगता है। हे मरुत्-देवगण, जब आपआपने मार्गसे चलते हैं तब डरसे बड़े बड़े वृक्ष उखड जाते हैं और छोटे छोटे वृक्ष भी रथके चक्रकी तरह वेगसे घूमते हुए दिखाई देते हैं। वे भी बहुत दूरतक फेंक दिये जाते हैं। ५ (१)

हे भयंकर मरुत्देवगण, आपकी सेनाको कोई भी किसी तरह रोक नहीं सकता। आप हमपर कृपा कीजिये और हमारे मनोरथ सफल कीजिये। जिस तरह भयंकर शस्त्रअस्त्रोंसे पशुओंका नाश होता है उसी तरह भयंकर दांतवाली बिजलीसे भी दुष्ट लोगोंका नाश होता है। ६

जब मरुत्देव कृपा करते हैं तब यह हमेशा बनी रहती है। आपकी कृपासे सबको लाभ होता है; किन्तु आपका विद्युत अस्त्र बहुतही भयंकर है। मरुत्देवोंकी स्तुति हमेशा यज्ञ-मन्दिरमें चलती है। आनन्ददेनेवाले सोमरसको पीनेके लिये मरुत्-देव गर्जना करते हुए आते हैं। प्राचीनकालमें इन्द्रने जो पराक्रम किये उनको मरुत्-देव अच्छी तरह जानते हैं। ७

हे मरुत्-देव, जिस तरह चारों ओर घिरे हुए दीवारोंसे शहरकी रक्षा की जाती है उसी तरह जिन भक्तोंपर आप प्रसन्न होते हैं उनकी पातकोंसे और दुष्टलोगोंकी गालियोंसे आप रक्षा करते हैं। हे भयंकर और पराक्रमी मरुत्-देव, आप बहुत बड़े हैं। हे मरुत्-देव, जिन भक्तोंपर आप कृपा करते हैं उनकी कुटुम्ब—पोषणके कारण उत्पन्न हुई चिन्ताओंसे आप रक्षा करते हैं। ८

हे मरुत्-देव, आपके रथपर स्थान मिलनेके लिये प्रत्यक्ष कल्याण और बल मानो, आपसमें झगड़ रहे हैं। आपके रथपर प्रत्यक्ष कल्याण और बल खिचाखिच भर रहे हैं। जब आप शत्रुओंपर चढाई करनेके लिये चलते हैं तब आपके कन्धेपर चक्र और शस्त्र-अस्त्र अलंकारकी तरह लटके हुए दिखाई देते हैं। आपके रथकी धुरा इस तरह चलता है कि रथके सब चक्र एकदम वेगसे घूमते हुए दिखाई देते हैं। ९

---

५ यत् त्वेषयामाः (मरुतः स्वनिः स्वनेन) पर्वतान् नदयन्त, दिवः वा पृष्ठं नर्याः अचुच्यवुः, (तदा हे मरुतः) वः अज्मन् विश्वः वनस्पतिः भयते, ओषधिः रथयन्तीव प्र जिहीते ।

६ उग्राः मरुतः, अरिष्टग्रामाः यूयं सुचेतुना नः सुमतिम् पिपर्तन, (पश्यत) यत्र वः दिद्युत् (विद्युत्) क्रिविर्दती सृधिता अहन्ता पश्वः इव, (अपायून्) नि रिणाति ।

७ (एते हि) स्कम्भदेष्णाः, अनवभ्रराधसः, अलातृणासः (मरुतः) विदथेषु सुष्टुताः । मदिरस्य (सोमस्य) पीतये अर्कम् अर्चन्ति, (यतः) वीरस्य (इन्द्रस्य) प्रथमानि पौंस्या विदुः ।

८ मरुतः यम् (भक्तजनं) आवत, तम् शतभुजिभिः पूर्भिः (इव) अभिह्रुतः अघात् च रक्षत । हे उग्राः त्वसः विरप्शिनः, यं जनं पाथन (तमपि) तनयस्य पुष्टिषु (उत्पन्नात्) शंसात् (रक्षत) ।

९ हे मरुतः वः रथेषु विश्वानि भद्रा तविषाणि च मिथस्पृध्येव आहिता । वः प्रपथेषु (वः) अंसेषु आ (परिष्कारा इव) खादयः (दोलायन्ते), वः (रथस्य) अक्षः चक्रा समया वि वावृते ।

मरुत्‌देवोंके बाहु बड़े पराक्रमी और यश प्राप्त करनेवाले हैं। आपकी छाती अलंकारोंसे शोभायमान दिखाई देती है। आपके गलेमें सफेत माला दिखाई देती है। आपका हथियार बड़ा तेज है। इस तरह सजे हुए जब आप चलते हैं तब आपआपनी दिव्य कान्ति जिस तरह पक्षी अपने पंख फैलता है उसी तरह सबदूर फैलते हैं। १० (२)

जिस तरह नक्षत्रोंके कारण द्युलोक सब दूर प्रकाशमान दिखाई देता है उसी तरह बड़े पराक्रमी मरुत्‌देव भी अपने ऐश्वर्य और सामर्थ्यके कारण सबदूर प्रकाशमान दिखाई देते हैं। मरुत्‌देव बड़ा आनन्द देनेवाले हैं। आप बड़ी मीठी बात करनेवाले हैं। आप अच्छी तरह गाते हैं। आप हमेशा इन्द्रका साथ रखते हैं। सब लोग मानों, आपको स्तुतियोंसे चारों ओरसे घेर लेते हैं। ११

हे अमर मरुत्-देव, आपका प्रेम बिलकुल सचा है। अपने भक्तोंपर आपकी कृपा भविष्यत् युगमें भी सदाके लिये बनी रहती है। मनुष्य जातिका कल्याण करनेकी आपकी इच्छा है। इस लिये हम आपसे प्रार्थना करते हैं। आप बड़े शूर हैं और आपअपने पराक्रमके कारण बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। १२

हे मरुत्-देव, आप केवल पवित्रस्थानमेंही प्रकट होते हैं। आपका तेज बहुत बड़ा है। जिस तरह अदितिका अधिकार बहुत बड़ा है उसी तरह आपका दान भी असीम है। जिस पुण्यवान् पुरुषपर आप कृपा करते हैं उस पुरुषका इन्द्र भी तिरस्कार नहीं करता है। १३

हे वेगवान् मरुत्‌देव, आपने दिये हुए दिव्य और असीम ऐश्वर्यके कारण हमारी हमेशा उन्नति होवे। जिस स्थानमें हमारे लोग रहते हैं उसी स्थानमें उनकी सन्ततिकी वृद्धि होवे। उसी लिये हम यज्ञ करते हैं और उसीके कारण हमारा उद्देश्य पुरा होवे। १४

---

१० नर्येषुबाहुषु भूरीणि भद्रा, वक्षः सु रभसासः अञ्जयः रुक्माः, अंसेषु एताः, पविषु अधि क्षुराः, (एवं सन्तः) वयः न पक्षान् श्रियः वि अनु धिरे।

११ मह्ना महान्तः, विभ्वः, विभूतयः ये (एते) मरुतः स्तृभिः दिव्याः (लोकः) इव दूरेदृशः। (ते) मन्द्राः सुजिह्वाः आसभिः स्वरितारः, इन्द्र समिश्लाः (त) परिष्टुभः च (सन्ति)।

१२ हे सुजाताः मरुतः, वः तत् महित्वनम् (भवति यत्) अदितेः व्रतमिव वः दात्रम् सुदीर्घम् (भवति)। यस्मै सुकृते जनाय अराध्वम्, तत् (वः दात्रम्) इन्द्रः चन त्यजसा वि ह्रुणाति।

१३ हे अमृतासः मरुतः, तत् वः जामित्वम् यत् शंसम् आवत (तत्) पूर्वं युगे (अपि) पुरु, अया धिया मनवे श्रुष्टिम् आव्य, नरः (मरुतः) दसनैः साकं आचिकित्रिरे।

१४ हे तुरासः मरुतः येन युष्माकेण परीणसा (राया) दीर्घं ततनाम। यत् (अस्माकं) जनासः (स्वस्मिन्) वृजने आ ततनन् तत्, एभिर्यज्ञेभिः (मे) इष्टिं अभि अश्याम्।

सूक्त १७३.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–इन्द्र ॥

हे इन्द्र, आपको सन्तुष्ट करनेके लिये (उद्गाता) आकाशमें चारों ओर फैलनेवाला गान गायेगा। स्वर्गके प्रकाशकी तरह चारों ओर इधर उधर फैलनेवाला अपूर्व स्तोत्र भी हम जोरसे गायेंगे। आप अपने अमूर्त स्वरूपसे दर्भके आसनपर यहां बैठते हैं। तेजोरूप धेनु भी जिनको कोई भी सता नहीं सकता-आपकी सेवामें तैयार रहती है। १

पराक्रमी पुरोहित, पराक्रमी आचार्योंके साथ आपकी उपासना करते हैं, और आपको ताजा, गरम गरम हविरन्न अर्पण करते हैं क्योंकि भूखे सिंहकी तरह आप उसका बड़े उत्साहसे स्वीकार करें। हे सबसे श्रेष्ठ-देव, यज्ञ होता, माननीय यजमान और उसके स्त्रीके साथ बड़े आनन्दसे आपको सन्तुष्ट करनेके लिये आपकी स्तुति करता है। २

हे इन्द्र, यह आचार्य (पुरोहित) अग्निके बड़े बड़े तीन स्थानोंकी प्रदक्षिणा करके शरद्ऋतुमें उत्पन्न होनेवाले संपत्ती साथ लेकर पृथिवीपर आता है। इसी ऋतुमें अश्व हिनहिनाते हुए मार्गसे चलते हैं। बैल भी डकारते हुए चलते हैं। दिव्यवाचा, भी दूतीकी तरह पृथ्वी और आकाशके बीचमें सदा घबरावती हुई दिखाई देती है। ३

इन्द्र जिन वस्तुओंको चाहता है उन वस्तुओंको हम आपको अर्पण करेंगे। इन्द्रके लिये भक्तलोग प्रतिभाशाली स्तोत्रोंका गाते हैं। नेतश्री इन्द्र उन वस्तुओंका और स्तोत्रोंका प्रसन्न स्वीकार करें। नासत्यकी तरह वह भक्तके आधीन रहता है। भक्तोंके लिये, इन्द्र, रथपर बैठा हुआ तैयार है। ४

---

१५ हे मरुतः एषः वः स्तोमः इयम् गीः मान्यस्य कारोः मान्दार्यस्य । इषा तन्वे [illegible] वयाम् इषम् वृजनम् जीरदानुम् विद्याम ।

१६ हरिवः इन्द्र, [illegible] अन्यः महस्व गृणतः [illegible] रायः, (अपि च) सहस्राणि वाजः नः मादयध्वै नः उप यन्तु ।

२ सुमायाः मरुतः ज्येष्ठेभिः बृहद्भिः वा अर्वाग्भिः नः अच्छ आ यान्तु । अथ यत् एषां परमाः नियुतः समुद्रस्य पारे चित् धनयन्त ।

३ घृताची, हिरण्य [illegible], सुधिता (एतादृशी [illegible] योषा) [illegible] मिम्यक्ष, उपमान ऋष्टिः । (सापि कदाचित्) गुहा चरन्ती मनुषः योषा न (निगूढा कदाचित् च) विदथ्या वाक् इव सभावती सं (दृश्यते) ।

४ [illegible] अयासः मरुतः (तथा) [illegible] पतिष्ठिताः, [illegible] (स्त्रीया) इव, [illegible] (अपि च) रोदसी न आ [illegible] (नित्यं) देवाः ([illegible]) [illegible] ।

विद्युत्‌रूप रोदसी स्त्रीका रूप बहुत दिव्य है; उसके बाल बड़े सुन्दर है। मरुत्–देवोंके साथ हमेशा रहनेके लिये रोदसी स्त्रीने उनको पसन्द किया। जिस तरह सूर्यका तेज उनके रथके पास चला जाता है उसी तरह वह तेजोमय विद्युत-रूपी रोदसी स्त्री मरुत्–देवोंके रथके पास चली जाती है। ५ (४)

जवान मरुत्–देवोंने आनन्द देनेवाली और यज्ञ सभामें गम्भीरतासे इधर उधर चलनेवाली युवा रोदसी स्त्रीको अपने रथमें बिठा लिया। उस समय, हे मरुत्-देव, आपकी स्तुति करनेवाले भक्त लोगोंने आपको हवि और सोम अर्पण किया आपकी स्तुतिकी और आपका स्तोत्र गाया। इस तरह उन्होंने आपकी सेवा की। ६

मरुत्–देवोंका एक बड़ा विशेष गुण (महिमा) है। वह गुण वर्णन करने योग्य और सच भी है। मरुत्–देवोंकी घमण्डी और विश्वास–करने योग्य रोदसी–स्त्री फल-वृष्टिरूप भाग्यशाली स्त्रियोंको भी अपने साथ ले आती है। ७

यह भी आपहीका महिमा है कि मित्र, वरुण और अर्यमा भी आपके भक्तोंका पापोंसे रक्षा करते हैं। वे दुष्टलोगोंको ढूण्डकर निकालते हैं और उनका नाश करते हैं। जो लोग पूर्ण रीतीसे अचल है वे भी चल होंगे किन्तु जो दान देनेवाले भक्त है उनकी उन्नति अवश्यही होगी। ८

हे मरुत्–देव, किसी मनुष्यको आपका पता नहीं लगा—चाहे वह मनुष्य पुराने कालका हो अथवा आज कलका हो। जब मरुत्–देव क्रुद्ध होते हैं तब वे समुद्रका तरह दुष्टलोगोंको घेर लेते हैं और उनको डुबाते है। ९

---

५ यत् असुर्या, त्विषितस्तुका, नृमणाः (एतादृशी) रोदसी (मरुतः) सचध्यै ईम् जोषत, (तदा) सूर्या इव नभसः इन्यान, (सा) त्वेषप्रतीका (रोदसी) विभतः (मरुद्गणस्य) रथम् आ अगात्।

६ (ते) युवानः (तां) शुभं निमिश्लां, विदथेषु पज्राम् युवतिम् (स्वे रथे) आ अस्थापयन्त, यद् हे मरुतः वः हविष्मान् सुतसोमः दुवस्यन् (च) अर्कः (वः) गाथ गायन्।

७ एषा मरुतां यो महिमा वक्तव्यः सत्यः (च सः) अस्ति, तम् प्र ववक्मि। यद् ईम् अह युः (चापि) स्थिरा वृषमनाः (रोदसी), सुभागाः चित् जनीः वहते।

८ मित्रावरुणौ अर्यमा च ईम् अवद्यात् पान्ति, अप्रशस्तान् (अपि अन्विष्य) चयते। उत अच्युता च्यावानि (अपि) च्यवन्ते (परन्तु) हे मरुतः ईम् दातिवारः वावृधे (खलु)।

९ हे मरुतः अस्मे (मानुषेषु ये केऽपि) अन्तितः आरात्तात् चित् (नु तेऽपि) वः शवसः अन्त न आपुः। धृष्णुना शवसा शुशुवांसः द्वेषः अर्णः न धृषता परि स्थुः।

हम इन्द्रके प्यारे भक्त हैं। हम युद्धमें और यज्ञमें भी इन्द्रकी सदा स्तुति करते हैं। इसके पहिले भी हम इन्द्रकी स्तुति कर चुके हैं। भविष्यत् कालमें भी हम उनकी स्तुति करेंगे। इस लिये मरुत्-देवोंका स्वामी-इन्द्र-सबसे पहिले हमें प्रसन्न होवे। १०

हे मरुत्-देव, माननीय मान्दार्यने आपकी स्तुति की है और आपसे प्रार्थना भी की है। इस लिये उत्साह दिलाने और बढ़ानेवाली शक्ति आप हमें अर्पण कीजिये। उस सामर्थ्यके कारणही हमारी इच्छा सफल होंगी और हमारा मन स्थिर होगा। ११ (५)

सूक्त १६८.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-मरुत् ॥

हे मरुत्-देव, हरएक यज्ञमें हम जैसे आपके भक्त आपकी उपासना बड़े उत्साहसे करते हैं आपभी हमारी उपासना की और बड़े प्रेमसे ध्यान देते हैं। सब जगत्का कल्याण करनेके लिये और हमपर कृपा करनेके लिये हम आपकी पवित्र स्तुति करते हैं। हमारी स्तुतिके कारणही आपके मनका झुकाव हमारी ओर होवे। १

मरुत्-देवोंका जन्म आपही आप होता है। सबको डरानेवाले मरुत्-देव पर्वतकी तरह निजके बलपर निर्भर रहते हैं। प्रकाश फैलाकर मनका उत्साह बढ़ानेके लिये मरुत्-देव प्रकट होते हैं। पराक्रमी मरुत्-देव महासागरके प्रचण्ड तरङ्गोंकी तरह असंख्य हैं। और वे धेनूकी तरह पूजा करने योग्य हैं। २

जिस तरह रसीली और पुष्टि देनेवाली सोमलताका पिया हुआ रस हृदयको आनन्द दिलाता है और उसमें रहता है उसी तरह मरुत्-देव भी भक्तोंके अन्तःकरणको आनन्द दिलाकर उसमें रहते हैं। सुन्दर स्त्रीके बाहुकी तरह आपके कन्धेपर फूलोंकी माला दिखाई देती है। आपके एक हाथमें ढाल और दूसरे हाथमें तलवार रहती है। ३

---

१० इन्द्रस्य प्रेष्ठा. वयं समर्ये (यज्ञे वा) अद्य, श्वः (तदुत्तरं च) वयं (तं) वोचेमहि। पुरा। वयं। (तं। नः महि च (स्तुवन्तः), अनु द्यून् च (इतः परमपि स्तोष्यामहे) तत् ऋभुक्षाः नरां (मध्ये) नः अनुष्यात्)

११ हे मरुतः एषः वः स्तोम इयं गीः मान्यस्य कारोः मान्दार्यस्य (तत्) तन्वे इषा आ यासीष्ट, वयाम् इषम्, जीरदानुं वृजनम् विद्याम।

१ (हे मरुतः) यज्ञायज्ञा समना तुतुर्वणिः (यो भक्तः सः) वः (अस्ति), वः देवयाः उ धियंधियं (स्वातः) दधिध्वे, (तस्मात्) रोदस्योः महे सुविताय, अवसेच सुवृक्तिभिः वः अर्वाचः ववृत्याम्।

२ स्वजाः, धूतयः ये (मरुतः ते) वव्रासः न (गिवराः) इष, स्वश्च (वितरणाय) अभिजायन्त। (एते) उक्षणः अपां ऊर्मय न सहस्रियासः, गावः न आसा वन्द्यासः।

३ तृप्तअंशव ये सोमाः सुतासः न पीतासः न हृत्सु (सन्तुष्यन्ति मरुत्) ये दुवसः (हृत्सु) आसते, एषां अंसेषु (माला) रंभिणीव ररंभे, हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे।

मरुत्-देवोंके अश्व रथको आपही आप जोत लेते हैं। वे मरुत्-देव अपने रथमें बैठकर आकाशसे मजेमें भूलोकमें आये हुआ हैं। हे मरुत्-देव, आपही अपने घोडोंको चाबुकसे दबाइये। मरुत्-देव जन्मसे ही निष्कलंक और बलवान् है; आपके हाथमें चमकनेवाला भाला भी है। इसलिये आप (पहाड जैसे) अचल वस्तुको भी हिला (चलायमान्‌कर) सकते हैं। और आप उसका वस्तुका नाश भी करते हैं। ४

हे मरुत्-देव, चमकनेवाली बिजली ही आपका भाला है। जिस तरह बोलते समय जिव्हाके सामर्थ्यसे औठ हिलते हैं उसी तरह आपको हिलानेवाला और आपको प्रेरणा करनेवाला कौन है? । सब लोगोंको नाश करनेका और बल देनेका सामर्थ्य आपकेही पास है। जिस तरह सूर्यके नाना प्रकारके किरण सब स्थानोंमें संचार करते हैं उसी तरह जब आप अन्तरिक्षसे बाहर निकलते हैं तब सब स्थानोंमें आप भी सञ्चार करते हैं। ५ (६)

हे मरुत्-देव, जिस स्थानसे आप भूलोकपर आये है उस रजोलोकका उत्पत्तिस्थान और निवासस्थान कहां है? जब मेघरूप शत्रुओंके गणको आप बिजली (अशनी) के झपटेसे उडा देते हैं तब देदीप्यमान अन्तरिक्षरूपी समुद्रके परे आप जोरसे चले जाते है। ६

जिस तरह आपकी कृपासे प्राप्त हुआ विजय बल देनेवाला, स्वर्गको प्राप्त करनेवाला, उज्वल और आनन्द देनेवाला होता है उसी तरह आपने दिया हुआ दान भी बडे दाती मनुष्यकी दक्षिणा की तरह कल्याण करनेवाला, आकाशकी बिजलीकी तरह वेगसे चलनेवाला, और सबको चकित करनेवाला होता है। ७

मरुत्-देव अपनी गर्जनारूपी शद्वोंसे मानो अपने जयकी घोषणा करते है। दूसरी ओर रथचक्रके घीसनेसे मेघरूपी समुद्रमें भी खलबली मची है। मरुत्-देव पृथिवीके ऊपर अमृतकी वृष्टि करते है। उस समय चमकती हुई बिजली हंसती हुई दिखाई देती है। ८

---

४ (यथा) स्वयुक्ताः (अश्वाः) दिव आ वृथा अव ययुः, हे अमर्त्याः (तान्) कशायात्मना (मनाक्) चोदत, । (एते) अरेणवः, तुविजाताः भ्राजदृष्टयः मरुतः दृळ्हानि चित् अचुच्यवुः ।

५ हे ऋष्टिविद्युतः, मरुतः, हन्वेव जिव्हया, को नु अत वः त्मना रेजति ? दधां यामनि । (यूयं) इषस्युतः, अह्न्य एतशः न पुरुप्रैषाः ।

६ हे मरुतः यस्मिन् (रजसि) आयय, अस्य महो रजसः परं क्वस्वित् अवरं (चापि) क: ? यद् संहितमपि अंद्णा विधुरेव च्यवयथ, (तद्) त्वेषम् अर्णवम् च वि पतथ ।

७ वः अमवती, स्ववती त्वेषा विपाका सातिः न, हे मरुतः वः रातिः (अपि) गाः, पृणतः दक्षिणा न इषुधी, असुर्येव (च) जञ्जती ।

८ ( ) अभ्रियां वाचं उदीरयन्ति (परं एतेषां) पविभ्यः सिंधवः प्रतिष्ठोभन्ति । यदि मरुतः घृतम् प्रभ्रुक्षन्ति विद्युतः (अपि) पृथिव्यां अन्न स्मयन्त ।

भयंकर लड़ाई करनेके लिये पृश्निमाताने वेगवान् और उज्वल मरुत् गणोंको जनाया वे बड़े लड़नेवाले है; इस तरह वे अपना पराक्रम प्रकट करते हैं । इसी कारण प्राणि जातिके हलचलमें प्रबन्ध दिखाई देने लगा । ९

हे मरुत्–देव माननीय मन्दार्यने आपहीके लिये यह प्रार्थना की । इस लिये आप हमें उत्साह बढ़ानेवाला सामर्थ्य अर्पण कीजिये । उस सामर्थ्यके आधारपर हम जीवित रहेंगे और हमारी इच्छा सफल होगी । १० (७)

सूक्त १६९.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–इन्द्र ॥

हे इन्द्र, कोई भी मनुष्य चाहे जितना बड़ा हो, कोई भी मनुष्य चाहे जितना बलवान् हो; उसके हमलेसे हमारी रक्षा करनेवाले आपही है । हे सकलदेव–प्रभो, आप बड़े ज्ञानी है । सबसे प्यारा जो आनन्द वह आपहीके पास है । आप वह आनन्द हमें प्रदान कीजिये । १

हे इन्द्र, यह बात विदित होती है कि मनुष्यजातिके शत्रुओंका नाश करनेवाले, सब लोगोंको मार्ग दिखानेवाले और ज्ञानवान देवोंपर आप अपनी आज्ञा चलाते हैं । युद्ध करके स्वर्ग–लोकसे प्रकाश लानेके लिये मरुत्–देवोंकी सेना बड़े वेगसे आगे चल रही है । २

हे इन्द्र, हमारी रक्षा करनेके लिये आप अपने हाथमें अपना हथियार रखते है । मरुत्–देवोंने भी हमारी रक्षा करनेके लिये अपना सब सामर्थ्य प्रकट किया है । जिस तरह अग्नि जलनेवाली लकड़ीको घेरता है अथवा जलका प्रवाह जिस तरह किसी टापूको घेर लेता है उसी तरह इन्द्र और मरुत्–देवोंने हमारे लिये सब सुखोंको अपने हाथमें ले रखा है । ३

---

९ महते रणाय पृश्निः अयासां मरुतां त्वेषं अनीकम् असूत । सप्सरासः ते अभ्वम् अजनयन्त, आत् इत् (जनाः) इषिरां स्वधाम पर्यपश्यन ।

१० हे मरुतः एषः वः स्तोमः इयं च गीः मान्यस्य कारोः मान्दार्यस्य, (सा) तन्वे, इषा आयासीष्ट वयां इषं,—जीरदानुं वृजनं विद्याम ।

१ हे इन्द्र यतः महः चित् महः चित् त्यजसः त्वम् एतान् वरूता असि, सः मरुतां वेधः चिकित्वान् तव प्रेष्ठा सुम्ना नः वनुष्व हि ।

२ हे इन्द्र मर्त्यत्रा निःषिधः विश्वकृष्टीः विदानासः ते (देवासः) अयुञ्जन्त (इव, यत) हासमाना मरुतां पृत्सुतिः स्वर्मीळ्हस्य प्रधनस्य सातौ (अयुज्यत)।

३ हे इन्द्र सा ते ऋष्टिः अस्मे अम्यक्, मरुतः (अपि) सनेमि अभ्वं जुनन्ति । शुशुक्वान् अग्निः चित् हि स्म अतसे, (यद्वा) आपः द्वीपं न प्रयांसि दधति ।

हे इन्द्र जिस तरह प्रभावशाली गोरूपी धन आप हमें देते हैं उसी तरह दिव्य ऐश्वर्य भी हमें आनन्दसे प्रदान कीजिये। आपकी स्तुति हम अच्छी तरह करते हैं। किन्तु जिस स्तुतिसे आप प्रसन्न हुए उसी स्तुतिसे वायुभी प्रसन्न होवे। जिस तरह वायुका हृदय सुगन्धिसे भर जाता है उसी तरह हमारा हृदय भी भक्तिसे भर जाता है। ४

हे इन्द्र, पवित्र हृदयके भक्तोंका कल्याण करनेवाला, और सम्पत्ति बढानेवाला दिव्य ऐश्वर्य आपहीके हाथमें है। आपके मित्र देदीप्यमान मरुत्–देव आपके भक्तोंके सामने जाकर उनका सन्मान करते हैं; व हम पर सदा कृपा करे। ५ (८)

हे इन्द्र, मरुत्–देव कृपारूपी प्रसादकी वर्षा करनेवाले और बड़े पराक्रमी हैं। मरुत्-देवोंको आपभी सहायता दीजिये और अपना पराक्रम दिखाइये। जिस तरह राजाकी सेना रणभूमिमें तैयार रहती है उसी तरह मरुत्–देवोंके बलवान किरणरूपी हिरनोंकी कुण्ड यहां सदा खड़ा रहा है। ६

भयंकर और वेगवान मरुत्–देव बड़े जोरसे आ रहे हैं। सुनिये: उनका आवाज बड़े जोरसे सुनाई दे रहा है। जिस तरह पापी देनदार (कर्जदार)का नाश होता है उसी तरह मरुत्–देव प्रेम करनेवाले मित्रका जो द्वेष करता है उस दुष्ट मनुष्यका नाश करते हैं। ७

हे इन्द्र, मरुत् देवोंके साथ आप यहां आइये। आप हमें (माननीय पुरुषोंको) ऐसा दान दीजिये जिससे ज्ञानरूप प्रकाश सब दूर फैले और हमारे सब दुःख मिट जाय। हे देवाधिदेव इन्द्र, पूजा करने योग्य सब देव भी आपकी स्तुति करते हैं। आप हमपर ऐसी कृपा कीजिये जिससे हमारी इच्छा सफल होवे और हमारा उत्साह और बढे। ८ (९)

---

४ हे इन्द्र त्वं तु नः ओजिष्ठया दक्षिणया रातिमिव तं रयिं दाः, त्वं स्तुतश्च (वाभिः), याः ते चकनन्त (ताः) मध्वः वायोः स्तनं न (भक्तान्) वाजैः पीपयन्त ।

५ हे इन्द्र, कस्य चित् ऋतायोः प्रणेतारः तोशतमाः रायः त्वे (एव); (तद्) ये (भक्तानां) पुरः गातूयन्तीव स्म, ते देवाः मरुतः नः सु मृळयन्तु ।

६ हे इन्द्र, मीळ्हुषः, महः नॄन् च प्रतीप्र याहि; पार्थिवे सदने यतस्व । अध यत् तीर्थे अर्यः पौंस्यानि न, एषां पृथुबुध्नासः एताः तस्थुः ।

७ घोराणां, अयासां, आयताम् मरुताम् उपब्दिः प्रति शृण्वे ये (ते) पृतनायन्तम् मर्त्यम्, ऋणवानम् न, ऊमैः सर्गैः । पतयन्त ।

८ हे इन्द्र, त्वम् मरुद्भिः (आगत्य) मानेभ्यः, विश्वजन्या, गो अग्राः शुरुधः रद । हे देव त्वं स्तवानेभिः देवैः स्तवसे, (तद्) इषम्, जीरदानुम् वृजनम् विद्याम ।

सूक्त १७०.

॥ ऋषि—अगस्त्य । देवता—इन्द्र ॥

(जो वस्तु मिलनेकी हम इच्छा करते हैं वह वस्तु) आज भी नहीं मिलती और कल भी मिलनेवाली नहीं है। इस लिये इसवातका विश्वास हम नहीं करते कि भविष्यत् कालमे वह वस्तु मिलेगी अथवा नहीं। जब कोई मनुष्य किसी दूसरेके प्रसन्न करनेकी इच्छा करता है तब उसकी इच्छा सफल नहीं होती। १

हे इन्द्र, हमारा नाश करनेकी आप इच्छा क्यों करते है। मरुत्—देव आपके भाई हैं। उनपर आप प्रेम कीजिये; और युद्धमें हमारा नाश मत कीजिये। २

हे भाई, अगस्त्य, आप हमारे मित्र कहलाये जाते हैं, किन्तु आप हमें हवि अर्पण नहीं करते। हम आपको अच्छी तरह समझते हैं। आप हमें कुछ भी देनेकी इच्छा नहीं करते है। ३

आप क्रुद्ध मत हूजिये। देखिये, अब हम वेदी तैयार करते हैं। अग्निको प्रज्वलित करते हैं। अमरत्वको चैतन्य दिलानेवाले यज्ञको अब हम तुमारे लिये यथाविधि करते हैं। ४

सब प्रकारकी इच्छा सफल करनेवाले इन्द्र, सब अच्छे अच्छे लाभोंके आपही स्वामी हैं। हे इन्द्र, सब मित्रोंमे आप श्रेष्ठ है। आप अकेलही सबसे उदार हैं। इसलिये मरुत्—देवोंके साथ आप प्रेमसे बात कीजिये। ठीक ठीक समयपर आकर हमने दिये हुए हवियोंका आप स्वीकार कीजिये। ५

---

१ न नूनम् अस्ति, नो श्वः (ततः) यद् अद्भुतं तद् को वेद। अन्यस्य चित्तम् अभि संचरेण्यम्, उत (च) आधीतम् विनश्यति।

२ हे इन्द्र नः किं जिघांससि ? मरुतः तव भ्रातरः, तेभिः साधुया कल्पस्व, समरणे नः मा वधीः।

३ हे भ्रातः अगस्त्य (नः) सखा सन् अस्मान् (एव) किम् अति मन्यसे ? (वयं) ते मनः यथा (तथ) विद्म, (यद्) अस्मभ्यम् इत् न दित्ससि।

४ (प्रसीदत,) वेदिम् (ऋत्विजः) अरं कृण्वन्तु, अग्निं पुरः समिन्धताम्। तत्र अमृतस्य (अपि) चेतनम् (एतादृशं) ते यज्ञं तनवावहै।

५ हे वसुपते त्वं वसूनां ईशिषे, हे मित्रपते, श्रेष्ठः त्वं मित्राणां (चापि ईशिषे)। हे इन्द्र त्वं मरुद्भिः सं वदस्व, अथ हवींषि ऋतुथा प्र अशान।

सूक्त १७१.

॥ ऋषि—अगस्त्य । देवता—मरुत् ॥

मैं आपको, हे मरुत्–देव, बार बार नमस्कार करता हूं। मैं आपहीके पास आया हूं। भक्तोंके लिये शीघ्रतासे आप दौडते चले आते हैं। आपके गुणोंका वर्णन करके हम आपकी कृपा चाहते हैं। हे मरुत्–देव, हमारी विनतीकी ओर ध्यान दीजिये और क्रोध छोड दीजिये। आप अपने अश्वोंको भी रथसे अलग कीजिये। क्योंकि आप हमपर प्रसन्न हुए हैं। १

हे मरुत्–देव, यह स्तोत्र हम आपहीका है जो हमने बडी नम्रतासे गाया है। आपके स्तोत्रको यथाविधि बडी नम्रतासे गाते हैं। आप भी उस स्तोत्रका स्वीकार कीजिये। उस स्तोत्रका स्वाद लेनेके लिये आप सभी भक्तिसे इधर आइये। क्योंकि आप सदा अपने भक्तोंकी उन्नति ही करते हैं। २

हम मरुत्–देवोंका यथाविधि स्तवन करते हैं। इस लिये वे हमपर सदा कृपा करें। सब लोगोंका कल्याण करनेवाले इन्द्रकी भी हम स्तुति करते हैं। इस लिये इन्द्र भी हमपर प्रसन्न रहें। हम जय प्राप्त करनेकी सदा इच्छा करते हैं। हमारी रक्षा करनेके लिये आपके सुन्दर भाले सदा तैयार रहें। ३

हे मरुत्–देव, भयंकर इन्द्रसे मैं डरता हूं। उनके पाससे मैं दूर चला जाता हूं। आपके लिये हविरूपी अन्न मैंने तैयार रखे थे। किन्तु हविरूपी अन्नको मैंने दूर लौटा दिया। इस लिये हमे क्षमा कीजिये। ४

---

१ (हे मरुतः अद्य) अहं एना नमसा वः एमि, तुराणां (युष्माकम्) सुमतिं भिक्षे। हे मरुतः वेद्याभि-रराणता, हेळः नि धत्त, अश्वान् वि मुचध्वम्।

२ हे मरुतः एषः नमस्वान् स्तोमः वः (एव), सः हृदा तष्टः, हे देवाः (स) धायि। (यूयं) जुषाणाः ईम् मनसा उप आयात, यूयम् हि नमसः इत् वृधासः स्थ।

३ स्तुतासः मरुतः नः मृळयन्तु, उत शंभविष्ठः मघवा (च) स्तुतः (सन् मृळयतु), हे मरुतः (अस्माकं) जिगीषा, विश्वा अहानि, (सुनिहितानां) वः (ऋष्टीनां) कोम्या वनानि ऊर्ध्वा सन्तु।

४ हे मरुतः अस्मात् तविषात् इन्द्रात् अहं भिया रेजमानः ईषमाणः (च अपैमि)। हव्या युष्मभ्यं निशितानि आसन्। तानि आरे चकृम, (तत्) नः मृळत।

हे इन्द्र, जब सनातन उषा अपने सामर्थ्यसे प्रकाशित होती है तब आपहीकी कृपासे उस देदीप्यमान् उषा-देवीका दर्शन मान-पुत्रोंको हुआ। इच्छाको सफल करनेवाले हे (पराक्रमी) इन्द्र, आप बड़े पुराण-पुरुष है। धैर्य और बल देनेवाले आपही है। आप बड़े उग्र हैं। इस लिये भयंकर मरुत्-देवोंको साथ लेकर आप हमारी ओर आइये और हमें यश प्राप्त होवे। ५

हे इन्द्र, आप बलवान् और पराक्रमी मरुत्-देवोंकी रक्षा कीजिये। आप मरुत्-देवोंपर क्रोध मत कीजिये और क्रोधको छोड़ दीजिये। सब जगत् समझता है कि आप बुद्धिमान् मरुत्-देवोंके विजयी अधिपति है। आपहीकी सहायसे हमारा उत्साह सफल होवे और आपकी कृपा हमपर सदा बनी रहे। ६ (११)

सूक्त १७२.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–मरुत् ॥

हे दानशील मरुत्-देव, आप आश्चर्यकारक रीतिसे हमारी ओर आवे। सांपकी तरह चम्चल किरणोंके मरुत्-देव, आपके सामर्थ्यके कारणही आप आश्चर्यकारक रीतिसे हमारी ओर आवे। १

हे दानशील मरुत्-देव, शत्रुओंके शरीरमें घुमनेवाला और नाश करनेवाला आपका शस्त्र हमेशा हमसे दूर रहे। जिस अशनि पत्थरसे आप मारते है वह भी हमसे दूर रहे। २

हे दानशील मरुत्-देव, तृणस्कन्दके लोगोंको आप चारों ओरसे घेर लीजिये और उनको काट डालिये। हमें यश प्राप्त होवे और हम जीवित रहे। हमारी उन्नति भी होवे। ३ (१२)

---

५ शश्वतीनां (उषसां) शवसः व्युष्टिषु, येन (त्वया) उस्राः मानासः चितयन्त हे वृषभ, सः (त्वं) स्थविरः सहोदाः च (तत्) उग्रः (त्वं) उग्रेभिः मरुद्भिः नः श्रवः धाः

६ हे इन्द्र, त्वं सहीयसः नॄन् पाहि, मरुद्भिः अवयातहेळाः भव, (तैः) सुप्रकेतेभिः सासहिः दधानः (त्वं), इषं जीरदानुं वृजनं विद्याम।

१ हे सुदानवः वः यामः चित्रः अस्तु, हे अहिभानवः मरुतः, (वः यामः) ऊती चित्रः (अस्तु).

२ हे सुदानवः मरुतः, सा (दिद्युत्) ऋघावती सा च अश्म आरे (अस्तु), (अपि च) यम् अस्यथ (सोऽपि) अस्मत् आरे (अस्तु)।

३ हे सुदानवः, तृणस्कन्दस्य विशः परि वृङ्क्त, जीवसे नः ऊर्ध्वान् कर्त।

हे मरुत-देव, मान्यवर मान्दार्यने आपका स्तोत्र गाया है। उसीने आपसे प्रार्थना की है। इसी लिये आनन्द देनेवाला सामर्थ्य आप हमारी ओर ले आइये। उस सामर्थ्यके कारणही हमारी इच्छा सफल होगी और उसीके कारणही हमारा मन स्थिर होगा।　　१५ (३)

सूक्त १६७.

॥ ऋषि—अगस्त्य । देवता—मरुत् ॥

हे हरिदश्व, इन्द्र, आपके सहस्र प्रसाद, आपकी आनन्द देनेवाली और स्तुति करने योग्य सहस्र प्रेरणा, आपकी सहस्र (दिव्य) सम्पत्ति और आपकी असीम पवित्र शक्ति हमें आनन्दमें मग्न करनेके लिये हमारी ओर आवे।　　१

आश्चर्य-कारक मरुत् अपने उत्तम और दीप्तिमान् प्रसादोंके साथ हमारी ओर आवे। (यह काम करना आपके लिये कठिन नहीं है)। क्योंकि आपके नियुत् नामके सुन्दर अश्व दौड़ते दौड़ते समुद्रके पार चले जा सकते हैं।　　२

एक सुन्दर स्त्री मरुत्-देवोंके साथ हमेशा रहती है। मक्खनकी तरह उस स्त्रीका शरीर बहुत कोमल है। सुवर्णकी तरह उसकी कान्ति तेजस्वी है। और उसके शरीरका ढङ्ग बहुत ही मनोहर है। जिस तरह मरुत्-देवोंका भाला उनसे अलग नहीं होता उसी तरह वह स्त्री भी उनसे कभी अलग नहीं होती। अन्तःपुरमें रहनेवाली स्त्रीकी तरह वह स्त्री कभी कभी गुप्त रहती है। और कभी कभी वह स्त्री सभामें आनेवाली स्त्रीकी तरह और यज्ञके समय (मेघगर्जनारूप) देवस्तुतिरूप स्त्रीकी तरह प्रत्यक्ष रूपसे सबको दिखाई देती है।　　३

शुभ्र-कान्तिमान् और कभी न थकनेवाले मरुत्-देवोंने उस युवा स्त्रीको अपने पास लिया। इससे यह विदित होता है कि सब मरुत्-देव उस युवा स्त्रीपर बहुत प्रेम करते हैं। मरुत्-देव बड़े उग्र हैं; किन्तु वे रोदसी स्त्रीका कभी त्याग नहीं करते। विद्युत-रूप रोदसी स्त्री मरुत्-देवोंका आनन्द बढ़ाती है। इस लिये वे भी प्रेमसे उस स्त्रीका स्वीकार करते हैं।　　४

---

१ हे इंद्र यथा वः (तथा) नमन्य साम (उद्गाता) गायत, (वयंच) तव स्वयं (शं) वाजान च (वयं) भजाम। वह वहिते सहस्रम् दिव्य (त्वा), अदब्धाः गावः धेनवश्च आ विवासन्।

२ मुदा (स्वंचन) इर्मासः (त्वाम्) स्वयुक्ताः यत् (स्व) आशः मृगः न (तानि) अतिसुगुर्यात (तथा) अर्वन। हे नृप, मरुतः होता, यजत्रः मन्येथ मिथुना (त्वाम) मनाम् प्र भरते।

३ (इव, यदाय न अवम्) होता (अग्नेः) मिता सप्त परि यत् नक्षत्, (न) शरदः गर्भ पृथिव्या आ गतत्। नयमानः अश्वः क्रदत्, गौः क्वत, (माध्यमिका) वाक् वृतः न रोदसी अन्तः चरत्।

४ आभि (इन्द्राद) ता अभवत (एव हवींषि) कर्म, देवयन्तः (अपि अश्ने) चोत्सानि प्र भरते। (तद्) दानवर्चाः इद्रः (तानि) जुजोषत्, (त) नामत्येव सुम्न्यः रथेष्ठ।

बड़े बड़े पुरुषोंकी और द्वेष न करनेवाले साधु-सज्जन लोगोंकी प्रार्थनाकी ओर इन्द्र सदा ध्यान देवे। वज्र धारणकरनेवाले इन्द्र सदा हमारा कल्याण करे। नगरका अच्छी तरह प्रबन्ध करनेवाले राजाको प्रसन्न करनेकी और उनका सन्मान करनेकी जिस तरह प्रजा इच्छा करती है उसी तरह इन्द्रके हार्दिक प्रेमकी इच्छा करनेवाले भक्तलोक भी यज्ञ-यागसे उनको प्रसन्न करते हैं। १० (१४)

कई स्थानोंमें इन्द्रको सन्तुष्ट करनेके लिये यज्ञयाग चल रहे हैं। कई स्थानोंमें चञ्चल और भ्रष्ट मनुष्य बिना उद्देशके इधर उधर घूमता हुआ दिखाई देता है। जिस तरह प्यासे मनुष्यको जलका प्रवाह घरकासा आनन्द देता है उसी तरह यज्ञ-याग करनेवाले मनुष्यको इन्द्र आनन्दित करता है। चिन्ता करनेवाले मनुष्यको दूरके मार्गपर चलनेसे जिस तरह दुःख होता है उसी तरह भ्रष्ट मनुष्यका, इन्द्र-देव तिरस्कार करता है। ११

हे इन्द्र, ऐसे युद्धके समय हमारा तिरस्कार मत् कीजिये। हे पराक्रमी इन्द्र, आपके चारों ओर सब देव बैठे हुए हैं; आपको हविर्भाग देनेके लिये यहां बिलकुल तैयार है। आप सबसे श्रेष्ठ-देव है; आप सब लोगोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले हैं। हवीको अर्पण करनेवाले भक्तलोग अपनी तोतली भाषासे आपके और मरुत्‌देवोंके गुणोंका वर्णन करते हैं। आप उसका आनन्दसे स्वीकार कीजिये। १२

हे इन्द्र, हम आपको यह स्तोत्र अर्पण करते हैं। हे हरिदश्व इन्द्र, हमारी स्तुतिसे प्रसन्न होकर हमें अच्छा मार्ग दिखलाइये। हे देव, जिस मार्गसे हमारा कल्याण होगा वही मार्ग हमें दिखलाइये। उस मार्गमें जानेसे आपका सहारा हमें मिलेगा, हमारी इच्छा सफल होगी और हमारा उत्साह बढ़ेगा। १३(१५)

---

५ यो ह सत्वा, यः शूरः मघवा यः रथेष्ठः। (यश्च) वृषण्वान् प्रतीचः चित् योधीयान्, ववव्रुषः तमसः चित् विहन्ता च, तमु इन्द्रम् स्तुहि।

६ यत् (इन्द्रः) महिना (विश्वेभ्यः) नृभ्यः प्र कृष्टः अस्ति इत्था, अस्मै कक्ष्ये रोदसी अरं न। (अयम्) इन्द्रः स्वधावान् वृजनम् न भूम सम् विव्ये, द्याम् ओपशम् इव भर्ति।

७ हे शूर सतां उराणम् प्रपथिन्तमं च त्वा समत्सु परितंसयध्यै, (एते) ये सजोषसः क्षोणीः (ते त्वां) सूरिं इन्द्रं चित् मदे वाजैः अनुमदन्ति।

८ यत् ते आपः देवीः (भूमिं आगम्य) समुद्रे आसु मदन्ति, एव हि सवना ते शम् (भवन्ति)। यदि सूरीन् चित् जनान् (चित) धिषा वेषि, (तद् किं चित्रम् यदि) विश्वाः गौः ते जोष्या अनु भूत्।

९ नरां शंसैः न, एन यथा सुषखायः स्वभिष्टयः (तथा) असाम। (अपि च नः मन्त्रैः) न तुरः इन्द्रः (अस्माकं) कर्म उक्था च नयमानः नः वन्दनेष्ठाः यथा असत् (तथा भूयात्)।

बड़े बड़े पुरुषोंकी और द्वेष न करनेवाले साधु–सज्जन लोगोंकी प्रार्थनाकी ओर इन्द्र सदा ध्यान देवे। वज्र धारणकरनेवाले इन्द्र सदा हमारा कल्याण करें। नगरकी अच्छी तरह प्रबन्ध करनेवाले राजाको प्रसन्न करनेकी और उनका सन्मान करनेकी जिस तरह प्रजा इच्छा करती है उसी तरह इन्द्रके हार्दिक प्रेमकी इच्छा करनेवाले भक्तलोक भी यज्ञ-यागसे उनको प्रसन्न करते हैं।   १० (१४)

कई स्थानोंमें इन्द्रको सन्तुष्ट करनेके लिये यज्ञयाग चल रहे हैं। कई स्थानोंमें चञ्चल और भ्रष्ट मनुष्य बिना उद्देशके इधर उधर घूमता हुआ दिखाई देता है। जिस तरह प्यासे मनुष्यको जलका प्रवाह घरकामें आनन्द देता है उसी तरह यज्ञ-याग करनेवाले मनुष्यको इन्द्र आनन्दित करता है। चिन्ता करनेवाले मनुष्यको दूरके मार्गपर चलनेसे जिस तरह दुःख होता है उसी तरह भ्रष्ट मनुष्यका, इन्द्र-देव तिरस्कार करता है।   ११

हे इन्द्र, ऐसे युद्धके समय हमारा तिरस्कार मत् कीजिये। हे पराक्रमी इन्द्र, आपके चारों ओर सब देव बैठे हुए हैं; आपको हविर्भाग देनेके लिये यहां बिलकुल तयार है। आप सबसे श्रेष्ठ-देव हैं; आप सब लोगोंकी इच्छा पूरी करनेवाले हैं। हवीको अर्पण करनेवाले भक्तलोग अपनी नम्रताभरी भाषामें आपके और मरुद्देवोंके गुणोंका वर्णन करते हैं। आप उसको आनन्दसे स्वीकार कीजिये।   १२

हे इन्द्र, हम आपको यह स्तोत्र अर्पण करते हैं। हे हरिदश्व इन्द्र, हमारी स्तुतिसे प्रसन्न होकर हमें अच्छा मार्ग दिखलाइये। हे देव, जिस मार्गसे हमारा कल्याण होगा वही मार्ग हमें दिखलाइये। उस मार्गसे जानेसे आपकी सहायता हमें मिलेगा, हमारी इच्छा सफल होगी और हमारा उत्साह बढ़ेगा।   १३(१५)

---

१० नरां विष्पर्धस्. च शर्तैः न (अयम्) वज्रहस्त इन्द्रः अस्माकं अगन्. पूर्त्तिम् शुशाद्धी मित्रयुवः न, (एनं इन्द्रस्य) मध्य युव. (तम्) यज्ञैः उप शिक्षन्ति।

११ (क्वचित्) कश्चित् यज्ञः इन्द्र कन्धन् हि स्म, (क्वचित्) मनसा जुहुराणः चित् परियन् (दृश्यते)। तीर्थे अच्छ तातृषाणम् ओको न (प्रथम कर्म), दिघ्र दीर्घाध्वा आकृणोति (एतादृशं अपरम् कर्म)।

१२ हे देवैः (वृत) इन्द्र, अत्र पृत्सु मो षु नः (त्याक्षीः), ते अवया अस्ति स्म हि। हे शुष्मिन् वस्य मे विमतः यव्या गीः (मे) महः मीळ्हुषः चित् मरुतश्च वन्दते (तां जुषस्व)।

१३ हे इन्द्र, अस्मे एषः स्तोमः तुभ्यं अस्ति, एतेन हे हरिवः नः गातु विदः। हे देव सुक्षिताय नः आ ववृत्याः (येन) इष जीरदानु वृजनम् विद्याम.

सूक्त १७४.

॥ ऋषि—अगस्त्य । देवता—इन्द्र ॥

हे इन्द्र, जितने देव है उन सबोंके आप राजा है, हमारी पराक्रमी सेनाकी आप रक्षा कीजिये । हे परमात्मन्, आप हमारी भी रक्षा कीजिये । आप साधु लोगोंमे भी बड श्रेष्ठ है । आप बडे उदार है; और आप हमारी रक्षा करनेवाले है । आप सत्यस्वरूप सम्पत्ति देनेवाले और धैर्य बढानेवाले है । १

हे इन्द्र, हमें गाली देनेवाले दुष्ट लोगोंका आपने नाश कर डाला । उसी समय उनके निवास स्थानोंकाभी—शारद नामक सात किलाओंका भी आपने नाश कर डाला । हे पवित्र इन्द्र, बडे बडे जलके प्रवाहोंको—जिनमें भयंकर लहर उछलती है आपने बहाया । युवा पुरुकुत्स आपका भक्त है । उसके शत्रुको आपने उसके आधीन कराया । २

हे इन्द्र, जगतके शत्रुओंकी सेनाके नेता बडे शूर है । उन्होंने गोल आकाशको व्याप्त किया है इस लिये आप उन्हे वहांसे निकाल दीजिये । हमारे घरमे जो अग्निहोत्र है उसका नाश न होवे । क्योंकि वह शीघ्र फल देनेवाला है । सिंहकी तरह जागृत रहकर हमारे अग्निहोत्र और उपासनाकी आप रक्षा कीजिये । ३

हे इन्द्र, आपके वज्रके केवल आवाजसे और तेजस्विताके कारणही सब जगत्के शत्रुओंका एकही स्थानमे नाश हुआ । शत्रुओंका नाश होनेके कारण आपका तेज बहुत बढ गया है । देखिये: इन्द्रने शत्रुओंके साथ युद्ध किया और दिव्य उदकके प्रवाह बन्धनसे छोडकर बहा दिये । रुके हुए प्रकाशरूपी धेनुओंको भी इन्द्रने मुक्त किया । इन्द्र अपने अश्वपर सवार हुए और भक्तोंको दिव्य सामर्थ्य प्राप्त कराया । ४

---

१ हे इंद्र, ये च देवाः (तेषां) त्वं राजा, हे असुर रक्ष (नः) त्वम् नॄन्, अस्मांश्च पाहि । त्वं सत्पतिः मघवा, नः तरुत्रः त्वम् सत्यः वसवानः सहोदाः (असि) ।

२ हे इंद्र, यत् मृध्रवाचः विशः (त्वम्) दनः (तदेव एषां) शारदीः शर्म (नाम) सप्त पुरः (त्वम्) दर्त् । हे अनवद्य, अर्णः अपः ऋणोः, यूने पुरुकुत्साय (अस्य) वृत्रं रन्धीः ।

३ हे इंद्र (रतां द्विषतां सेनाः) याम् (अवृण्वन्), हे पुरुहूत येभिः च (यौः वृता ताः) शूरपत्नीः वृतः नूनम् अज । अजुर, तूर्वयाण दमे अग्निम्, अपांसि च (दोषा) वस्तोः सिंहो न रक्षः ।

४ हे इंद्र, ते पत्नीरवस्य महा (एव) ते (द्विषः नव) प्रशस्तये सस्मिन् योनौ शेषन् नु । वर् (स) युधा अर्णांसि, गाः (च) अवसृजन्, तिष्ठन् हरी (त्वम् भक्तार्थं) धृषता वाजान् मृष्ट ।

हे इन्द्र, कुत्स नामके भक्तपर आपकी बडी कृपा है; इस लिये सीधे मार्गसे चलनेवाले और एकसे दौडनेवाले वायुके अश्वोंको आप उसकी ओर ले आइये। उषाका उदय होते समय सूर्य अपने एक चक्रके रथको हमारी ओर ले आवे। वज्र धारण करनेवाला इन्द्र पापी शत्रुओंपर चढाई करें। ५ (१६)

हे हरिदश्व इन्द्र, यह बात सबको विदित ही है कि सज्जन लोगोंको प्रेरणा करनेवाले आपही हैं। आपके भक्तलोगोंको सतानेवाले और दानधर्म न करनेवाले दुष्ट लोगोंका आपहीने नाश किया। हे इन्द्र, किसीका अधिकार न माननेवाले दुष्ट लोगोंका जब आपने नाश किया तब सब प्राणियोंको शीघ्रही विदित हुआ कि आप उनकी रक्षा करनेवाले हैं। ६

हे इन्द्र, काव्यकी रचना करनेवाले ज्ञानवान् कवियोंने आपका ठीक ठीक वर्णन किया है कि आप दुष्ट लोगोंका नाश करते हैं। (वे मर जाकर पृथिवीपर सो जाते हैं।) दयाशील परमेश्वरने अपनी उदारतासे पृथिवीकी शोभा बढायी। आपने रणांगणमें युद्ध किया और कुयवाचका नाश कर डाला। ७

हे इन्द्र, आपके प्राचीन कालके पराक्रमोंका नये कवियोंने बडे प्रेमसे वर्णन किया है। आपने पापी दुष्ट लोगोंका नाश कर डाला; इस लिये युद्ध होनेकी संभावना बहुत कम है। ईश्वरकी भक्ति न करनेवाले दुष्ट लोगोंके निवासस्थानोंका आपने नाश कर डाला; और ईश्वरकी निन्दा करनेवाले दुष्ट लोगोंका भी आपने नाश किया। ८

हे इन्द्र, जब आप गर्जना करते हैं तब सब जगत् डरके मारे कांपने लगता है। धुनि नामके राक्षसने दिव्य उदक-धाराओंको रोक दिया था; किन्तु आपने उसका नाश करके उन उदक-धाराओंको बन्धनसे छुडा लिया। उसीके कारण नदीके प्रचण्ड प्रवाह बहने लगे। हे पराक्रमी इन्द्र, आप आकाशरूप समुद्रके परे सहज रीतिसे चले जा सकते हैं। इस लिये तुर्वश और यदु नामके भक्तोंको आप अपने साथ समुद्रके परे ले जाइये। ९

---

५ हे इंद्र, यस्मिन् (त्वम्) चाकन् (तम्) कुत्सं, वातस्य स्यूमन्यू ऋज्रा अश्वा वह। (स) सूरश्चक्रं अभीके प्र वृहतात्, वज्रबाहुः स्पृधः अभि यासिषत्।

६ हे इंद्र, हे हरिवः, (त्वम्) चोदप्रवृद्धः मिथ्रकृन् अदाशून् अघन्वान्। अपन्यं वहमानाः ये (अरातयः) त्वया शूर्ताः, (ते) आयोः अर्यमणम् (त्वाम्) सचा प्र पश्यन्।

७ हे इंद्र, अर्कसातौ (त्वाम्) कविः रपत् (यद् त्वम्) दासाय क्षाम् उपबर्हणीम् कः। (सत्वम्) मघवा तिस्रः (भुवः) दानुचित्राः करत्, दुर्योणे च मृधि कुयवाचं नि भेत्।

८ हे इंद्र! ता ते सना नव्याः (अपि) आ अगुः, अभिरणाय (त्वम्) पूर्वीः नभःसहः अदेवीः (तेषां, च) पुरः न भिदः भिनत्, अदेवस्य हीवोः वधः (अपि) ननमः।

९ हे इंद्र त्वम् धुनिः, धुनिमतीः अपः, स्रवन्तीः सीरा न ऋणोः। हे शूर यत् समुद्रं प्र अतिपर्षि तुर्वशं यदु च स्वस्ति पारय।

हे इन्द्र, आप हमारा कल्याण कीजिये। निरपराधि मनुष्यको आप नहीं सताते। सब मनुष्योंकी आप बड़े प्रेमसे रक्षा करते हैं। इस लिये हमारे सब शत्रुओंका आप नाश कीजिये। उसीके कारण हमारी इच्छा सफल होगी और हमारी उन्नति होगी। १० (१७).

सूक्त १७५.

॥ ऋषि—अगस्त्य । देवता—इन्द्र ॥

हे हर्यश्व इन्द्र, आप आनन्दित हूजिये। यह आनन्द देनेवाला आनन्दरूपी सोमरस मानों, आपका प्रत्यक्ष तेजही विदित होता है। यज्ञ-पात्रसे सोमरसको आप पीते हैं। आनन्द देनेवाला, ओजस्वी, और असंख्य जयोंको प्राप्त करनेवाला बलवान् सोमरस, आप जैसे बलवान् पुरुषके लिये स्वीकार करने योग्य है। १

हे इन्द्र, आनन्द बढानेवाला, वीर्यवान, उत्कृष्ट और उग्र सोमरस हमारी इच्छा सफल करनेवाला है। शत्रुओंको जीतनेवाला अमर सोमरस आपकी ओर पहुंचे। २

हे इन्द्र, आप सचमुच बड़े दानी और पराक्रमी पुरुष हैं। मैं जैसे दीन मनुष्यकी इच्छा पूरी करनेवाले आपही है। आपही शत्रुओंको जीतनेवाले हैं। अधार्मिक दस्युओंको (मट्टीके) बरतनकी तरह आप तपाइये। ३

---

१० हे इन्द्र त्वम विश्वस्य अस्माकम् स्याः, अवृकतमः (त्वम्) नरां नृपाता (असि)। सः (त्वम्) विश्वासां नः स्पृधां सहोदाः (येन) इव जीरदानुम् वृजनम् विद्याम.

१ हे हरिवः मत्सि, मत्सरः मदः ते महः इव पात्रस्य (त्वया) अपायि, (अयम्) इन्दुः वाजी, सहस्रसातमः वृषा (सोमः) ते वृष्णे (समुचित एव)।

२ हे इन्द्र, नः मत्सरः, वृषा, मदः वरेण्यः, सहवान्, सानसिः पृतनाषाट्, अमर्त्यः (सोमः) ते आगन्तु।

३ (हे इन्द्र) त्वम् हि सनिता, शूरः, (तथा) मनुषः (मम सदृशो) रथम् चोदय, (सहावान् (त्व) अव्रतम् दस्युम् (भस्मय) पात्रं न शोचिषा ओष।

हे सर्वज्ञ इन्द्र, आप जगत्के शासन करनेवाले हैं। आपने अपने ईश्वरी सामर्थ्यसे सूर्यके रथका एक चक्र निकाल डाला। (शुष्णके) मृत्युको और कुत्सको वायुरूप अश्वोंसे शुष्णकी ओर ले आयिये। ४

सचमुच आपका आनन्द बहुतही ओजस्वी है। आपका कर्तृत्व बहुतही अपूर्व है। आप शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं। अपने पराक्रमसे आप सब लोगोंको आनन्द देते हैं। सर्वव्यापी सामर्थ्य आप देनेवाले हैं। इस लिये सब लोक आपकी स्तुति करते हैं। ५

हे इन्द्र, जिस तरह प्यासे मनुष्यको जलसे आनन्द होता है उसी तरह प्राचीन समयके सब भक्तोंको आपके पराक्रमोंसे आनन्द हुआ। उसी तरह प्राचीन समयके 'निविद्' स्तोत्रसे मैं भी आपकी स्तुति करता हूं। इच्छाको शीघ्रतासे सफल करनेवाले इन्द्र, हमारी उन्नति होवे और आपकी कृपासे हमारा कल्याण होवे। ६ (१८)

सूक्त १७६.

॥ ऋषि—अगस्त्य । देवता—मरुत् ॥

हे आनन्द देनेवाले सोमरस, हमें सुख प्राप्त करनेके लिये आप इन्द्रको आनन्दित कीजिये। आप भी बड़े पराक्रमी हैं। इस लिये वीर पुरुषोंके शरीरमें आप प्रवेश कीजिये। (हे इन्द्र,) जब क्रोधसे आप शत्रुओंपर चढ़ाई करते हैं तब एक भी शत्रु आपके सामने खड़ा नहीं रहता। १

---

४ हे कवे (इंद्र) ईशानः (त्वम्) ओजसा सूर्यं चक्रं मुषाय, वातस्य अश्वैः, कुत्सम् वधं च शुष्णाय वह।

५ ते मदः शुष्मिन्तमः हि उत क्रतुः द्युम्नितमः। (ते) वृत्रघ्ना वरिवोविदा (मदेन) अस्मत्तमः मंसीष्ठाः।

६ हे इंद्र यथा पूर्वेभ्यो जरितृभ्यः (त्वम्) तृष्यते आपः न मयइव बभूथ, (तद्) त्वा ताम्निविदं अनु जोहवीमि, (तस्मात्) इषं वीरदानुं वृजनम् विद्याम।

१ हे इन्दो, नः वस्य इष्टये इन्द्रं मत्सि, (त्वंहि)। वृषा (तद् तम् वीरं) आ विश, (हे इंद्र) ऋघायमाणः इन्वसि (यस्य) शत्रुम् अन्ति न विन्दसि।

हे इन्द्र, आप प्राणिजातिके अकेले प्रभु है। इस लिये आप ऐसा कीजिये जिससे मेरा मन आपकी स्तुति करनेमें मग्न हो जावे। बैलके जोतनेके अनुसार जिस तरह अनाज बोया जाता है उसी तरह आपकी इच्छाके अनुसार प्राणिजातिका कर्मबीज बोया जाता है। २

पांच जातिके लोक जिस धनकी इच्छा करते है वह धन आपहीके हाथमें है। हमारे शत्रुओंको आप ढूण्ढकर निकालो और जिस तरह बिजली किसी वस्तुका नाश करती है उसी तरह हमारे शत्रुओंका आप नाश कीजिये। ३

जो मनुष्य आपको सोम अर्पण करता है किन्तु आपकी भक्ति नहीं करता, जो मनुष्य आपको आनन्द नहीं देता और जिस मनुष्यका पता भी नहीं लगता, भक्ति न करनेवाले उन लोगोंका आप किसी युक्तीसे नाश कीजिये। उन युक्तियोंको हमें आप विदित कीजिये। मैं आपका भक्त हूं; इस लिये मैं विश्वास करता हूं कि आप सब बाते मुझे विदित करेंगे। ४

इन्द्रकी कीर्ति दोनों लोकमें फैली हुई है। इन्द्रका स्तोत्र सब जगह गाया जाता है। सोमरसने इन्द्रको सहायता दी। मनोहर कान्तिका सोमरस इन्द्रको अर्पण किया गया। जिस युद्धमें योद्धाओंके सामर्थ्यकी परीक्षा की जाती है ऐसे युद्धमें भी पराक्रमी वीरोंकी आप रक्षा करते हैं। ५

हे इन्द्र, जिस तरह प्यासे मनुष्यको जल मिलनेसे आनन्द होता है उसी तरह प्राचीन समयके भक्तोंको आपकी कृपा प्राप्त होनेसे आनन्द हुआ। पुराने निविद् स्तोत्रसे मैं भी आपकी स्तुति करता हूं। इस लिये हमारी इच्छा सफल कीजिये और आपकी कृपासे हमारा आनन्द बढे। ६ (१९)

---

२ चर्षणीनाम् यः एकः (एव प्रभुः) तस्मिन् (इन्द्रे) गिरः आ वेशय, यम् अनु स्वधा (कर्म) उप्यते, वृषा यवं चर्कृषत् न।

३ यस्य हस्तयोः पञ्च क्षितीनां विश्वानि वसु, (तम्) यः अस्मध्रुक् (तं) स्पाशयस्व, दिव्या अशनिः इव तम् (च) जहि।

४ असुन्वन्तम्, यः ते मयः न (भवति) दूणाशं (पाप्मानं) जहि, अस्य वेदनं अस्मभ्यं दद्धि, (एतत्) सूरिः चित् ओहते।

५ यस्य द्विबर्हसः (महतः) अर्केषु सानुषक् असत् (तमत) आवः, हे इन्दो इन्द्रस्य (स्वम्) आजौ वाजेषु वाजिनम् प्र आवः।

६ हे इन्द्र यथा पूर्वेभ्यः जरितृभ्यः (त्वम्) तृष्यते आपः न, मयः इव बभूथ। (अतः) ताम् निविदम् अनु त्वा जोहवीमि, (तद्) इषं जीरदानुं वृजनम् विद्याम।

सूक्त १७७.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–इन्द्र ॥

हे इन्द्र, आपने सब जगत् व्याप्त किया है। आप लोगोंकी इच्छा पूरी करनेवाले हैं। आप सब लोगोंके स्वामी हैं। असंख्य लोग आपकी स्तुति करते हैं। यथाविधि मैंने आपका स्तवन किया है। इस लिये आप अपने युवा अश्वोंको रथको जोतिये; मेरी विनती सुननेके लिये भूलोकमें आप मेरे पास आइये और आपका उत्तम प्रसाद मुझे अर्पण कीजिये। १

हे इन्द्र, आपके युवा अश्व आप जैसे वीर्यशाली और प्रसिद्ध पुरुषके रथको जोतनेके योग्य हैं। भक्त लोगोंकी प्रार्थनाको सुनतेही आपके युवा अश्व स्वयं रथको जोत लेते हैं। इस लिये, हे इन्द्र, आप अपने युवा अश्वोंपर सवार होकर हमारी ओर भूलोकमें आइये। हमने सोमरस तैयार रखा है। इस लिये हम आपको बड़ी नम्रतासे बुलाते हैं। २

हे इन्द्र, मानों, आप इष्टसिद्धिकी वर्षा करनेवाले हैं। भक्तके मनोरथ पूरी करनेवाले इन्द्र, आप ऐसे रथपर आरूढ हूजिये जिससे हमारी सिद्धि होवे। आपके लिये सोमरस तैयार किया हुआ रखा है। उसमें अच्छे अच्छे स्वादिष्ट पदार्थ डाल दिये गये हैं। हे श्रेष्ठ पुरुष, अपने युवा अश्वोंको जोतकर आप हमारी ओर भूलोकमें आइये। ३

यहां यज्ञ शुरू हुआ है; जिसको सब देव मानते हैं। यहां मेध्य पशु बन्धा हुआ खड़ा है। हे इन्द्र, आपके लिये प्रार्थना-स्तोत्र चल रहे हैं। इधर सोमरस रखा हुआ है और दर्भासन भी बिछा हुआ है। हे सामर्थ्यवान इन्द्र, आप हमारी ओर जरूर आइये। हमारे सोमरसका स्वीकार कीजिये, थोडी देर आरामसे लेट जाइये और अपने अश्वोंको भी रथसे छोड देकर विश्रान्ति दीजिये। ४

---

१ त्वम् इंद्रः चर्षणिप्राः जनानां वृषभः, कृष्टीनां राजा, पुरुहूत (असि), स्तुतः (त्वम्) वृषणा हरी युक्त्वा श्रवस्यन् अवसा (सह) मद्रिक् अर्वाङ् उप आ याहि।

२ हे इंद्र, ते ये वृषणः वृषभासः अन्याः वृषरथासः, अत्या युजः (च)। तान् आतिष्ठ; तेभिः अर्वाङ् आयाहि, हे इंद्र त्वा सोमे सुते हवामहे।

३ वृषा (त्वम्) ते वृषणं रथं आ तिष्ठ, सोम सुतः परिषिक्ता मधूनि। क्षितीनां वृषभ, वृषभ्यां हरिभ्यां (रथ) युक्त्वा, प्रवता मद्रिक् उप याहि।

४ अयं देवया. यज्ञः, अयं मियेधः इमा ब्रह्माणि, हे इंद्र अयं सोमः। (इद) बर्हिः स्तीर्णम् तु, शक्र प्र याहि (सोमं) पिब निषद्य (च) इह हरी विमुच।

हे इन्द्र, हमने यथाविधि आपकी स्तुति की है । इस लिये आप माननीय और श्रेष्ठ कवियोंके प्रार्थना-स्तोत्रोंकी ओर भूलोकमें आइये। प्रातःकालमें हम आपकी स्तुति करते हैं। इस लिये हमपर आप कृपा रखिये और आपकी कृपासे हमारी इच्छा सफल होवे। हमें केवल आपहीका आधार है । उससे हमारी इच्छा सफल होवे और हमारा उत्साह और बढे। ५ (२०)

सूक्त १७८.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-इन्द्र ॥

हे इन्द्र, आप अपने भक्तोंकी प्रार्थनाकी ओर ध्यान देकर उनकी रक्षा करनेके लिये सदा तैयार रहते हैं। आप बडे दयाशील हैं। इस लिये हम आपकी प्रार्थना करते हैं कि आप हमारे उच्च मनोरथोंका नाश मत कीजिये। आपके भक्तलोगोंका आपके विषयमें जो काम है वह काम वे ठीक समयपर आपकी कृपासे करें। क्योंकि आप विश्वात्मा-विश्वव्यापी हैं। १

दोनों भगिनियोंने (दिन और रात) हमारे लिये जो जो काम किया है उसकी पूर्ति, हे जगत्-पति इन्द्र, आप कीजिये। पवित्र इच्छाओंको उत्पन्न करनेवाले दिव्य जल इन्द्रको आकर मिलते हैं। वह इन्द्र जो हमपर प्रेम करता है-हमारा उत्साह बढावे और हमारी आयुकी वृद्धि करे। २

पराक्रमी इन्द्र और उसकी वीर्यशाली सेनाका युद्धमें सदा विजय होता है । इन्द्र प्रार्थना करनेवाले भक्तोंकी पुकार सदा सुनता है। हवि अर्पण करनेवाले भक्तके पास इन्द्र अपना रथ ले जाता है। जब इन्द्र चाहता है तब वह चाहे जिस मनुष्यके द्वारा दिव्य (वेद) वाणीका उच्चारण कराता है। ३

---

५ सुष्टुत इन्द्र अर्वाङ् मान्यस्य कारोः ब्रह्माणि उपयो याहि, (नः) अवसा (दोषा) वस्तोः (त्वां) गृणन्तः (अर्कैः) विद्याम इष जीरदानु वृजनम च विद्याम ।

१ हे इंद्र यया जरितृभ्य ऊती बभूथ सा यद्ध श्रुष्टिः ते अस्ति (तद्) नो महयन्तम् कामं मा आधक्, आयोः (च) विश्वा आपः ते परि अश्याम् ।

२ या नु स्वसारा योनौ नः (अर्थं) कृणवन्त, ता राजा इंद्रः न घ आ दभन् । सुतुकाः चित् आपः अस्मै अवेषन् । (स) नः सख्या वयश्च गमत् ।

३ शूरः इंद्रः नृभिः पृत्सु जेता नाधमानस्य कारोः हवं श्रोता । दाशुषः उपाके रथं प्रभर्ता, यदि च त्मना भूत् (देव्याः) गिरः उद्यन्ता ।

इन्द्र स्वयं सामर्थ्यका अलंकार है। जब इन्द्र अपने भक्तोंकी स्तुति सुनता है तब वह अपनी सेनाके साथ अपने प्रिय भक्तोंकी ओर चला आता है। जब घमासान युद्ध चलता है तब भी यजमानकी सत्य स्तोत्र-वाणी इन्द्रके अपूर्व गुणोंका वर्णन करती है। ४

हे ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्र, आपहीके बलके कारण घमण्डी और पापी शत्रुओंको हम सहज रीतिसे जीत सकते हैं। हमारी रक्षा करनेवाले आपही हैं। आपही हमारी उन्नति करते हैं। आपहीके आधारसे हमारे मनोरथ शीघ्रतासे सफल होते हैं और हमारा उत्साह बढ़ जाता है। ५ (२१)

सूक्त १७९.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–रति ॥

मैं बहुत वर्षोंसे लगातार रातदिन कष्ट उठाता हूं। दिनपरदिन बुढ़ापा पास आ जाता है। बुढ़ापेमें शरीरका प्रत्येक अवयव ढीला पड़ जाता है और शरीरका मोह नष्ट होता है। इस अवस्थामें क्या पुरुष अपनी स्त्रीके साथ समागमसुखका अनुभव न लेवे ? १

देखिये। प्राचीन समयमें जो सत्य बात करनेवाले महात्मा पुरुष थे और प्रत्यक्ष देवोंके साथ सच्ची बात करनेवाले महात्मा पुरुष थे वे भी अपने जन्मतक ब्रह्मचर्यव्रतका पालन कर नहीं सके। इस लिये यह बात उचितही है कि स्त्री भी अपने पतिके साथ समागम-सुखका अनुभव ले लेवे। २

---

४ एष (अयं) इंद्रः पृत्सु प्रसाहः, नृभिः मिमिक्षः अभिभूत्। विवाचि सपर्यं (अपि) यजमानस्य सत्राकरः शंसः (अस्य) हवः स्तवते।

५ हे मघवन् वयं त्वया महतः मन्यमानान् शत्रून् अभिष्याम, त्वं (नः) त्राता त्वमु नः वृधे भूः (येन) इषं जीरदानुं वृजनं विद्याम।

१ पूर्वीः शरदः अहं शश्रमाणाः, दोषाः वस्तोः उषसः जरयन्तीः (एव); जरिमा (च) तनूनां श्रियं मिनाति, (एवं सत्यपि) वृषणः स्वपत्नीः संजगम्युः नु (किम्)।

२ येचित् हि पूर्वे ऋतसापः आसन् (येच) देवेभिः साकं ऋतानि अवदन्, ते चित् अव असुः, (व्रतस्य) अन्तम् नहि आपुः (अतः) पत्नीः वृषभिः सं जगम्युः नु।

इस तरह मत समझना कि ब्रह्मचर्यव्रत पालन करनेके कष्ट हमने मुफ्त उठाये। क्योंकि देव स्वयं हमारी रक्षा करते हैं। देवोंकी कृपासे हमने अपने शत्रुओंको जीत लिया है। (इससे अधिक हम क्या चाहते हैं?) यदि तुम और हम एक मतसे संसारसुखका अनुभव लेंगे तो हम सहज रीतिसे उससे सैकडों लाभ उठावेंगे और सुगमतासे संसारकी कठिनताओंको झेलेंगे। ३

जब महानदीका जल रोका जाता है तब उस नदीको बाढ आ जाती है। जिस तरह उस बाढको कोई रोक नहीं सकता उसी तरह मैं अपने इच्छाको दबा नहीं सकता। मैं लोपामुद्राके सम्बन्धमें इतना मोहित हो रहा हूं कि मेरा वीर्य, बुद्धि, और धैर्य भी सब भ्रष्ट हो गये हैं। लोपामुद्रा अबला है किन्तु उसने मेरे बलका हरण किया है। ४

जिस सोमतत्त्वको हम अपने शरीरमें इकट्ठे करते हैं उसीके सामने खडे रहकर मैं प्रार्थना करता हूं कि जो पाप मैंने किया होगा उसके लिये आप क्षमा कीजिये। क्योंकि मनुष्य प्राणीही ऐसा है जिसके मनमें सैकडों अच्छे और बुरे विचार उत्पन्न होते हैं। ५

जिस तरह जमीन खोदनेसे कष्ट होते हैं उसी तरह तपश्चर्या करनेमें अगस्त्य ऋषिको कष्ट उठाने पडे। नाश न होनेवाले बल और सन्तानकी इच्छा अगस्त्य ऋषिकी थी। जब अगस्त्य ऋषिको सामर्थ्य प्राप्त हुआ तब आपने दोनों पक्षोंकी उन्नति की। इस समय इसीके सत्य आशीर्वादका फल भी देव लोकमें आपको मिला। ६ (२२) (५३)

---

३ न मृषा श्रान्तम् यत् (नः) देवाः अवन्ति, विश्वाः स्पृधः इत् अभ्यश्नवाव (च); यत् सम्यञ्चा मिथुनौ (आवाम्) अभि अजाव, (तत्) अत्र शतनीथम् आजिम् जयाव इत्।

४ रुधतः नदस्य कामः मा आ अगन्, इतः अमुतः कुतश्चित् (अपि) आजातः, (इव) लोपामुद्रा अधीरा (सत्यपि) धीरं वृषणं मां निरिणाति, श्वसन्तम् धयति।

५ इमं नु हृत्सु पीतम् (अतः) अन्तितः (वर्तमानं) सोमम् उप ब्रुवे, यत् सीम् आगः चकृम तत् (सः) सु मृळतु। मर्त्यः हि पुलुकामः।

६ अगस्त्यः ऋषिः खनित्रैः (इव तपसा) खनमानः, अपत्यं, प्रजां, बलम् (च) इच्छमानः, उग्रः सन् उभौ वर्णौ पुपोष। देवेषु (च) सत्याः आशिषः जगाम।

अनुवाक २४.

सूक्त १८०.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–अश्विन ॥

हे अश्विदेव, जब आपका रथ अन्तरिक्षरूपी रजोमय समुद्रके आसपास इधर उधर सञ्चार करता है तब भी आपके अश्व सीधे और सरल मार्गसे ही चलते हैं। आपके सुवर्णमय चक्रके धुरासे अमृतके बिन्दु इधर उधर उडते हैं। आप भी मधुर रस प्राशन करके उषाके साथ इधर आते हैं। १

शीघ्रतासे दौडनेवाले, लोगोंका लाभ करनेवाले, पवित्र और वेगवान् सूर्यके पहिले अश्विदेव उषाके साथ आते हैं। जब आप आते हैं तब भक्तलोग इस उद्देश्यसे आपकी स्तुति करते हैं कि आपकी भगिनी उषा आपको अपने साथ ले आवे और हमें दिव्य सामर्थ्य और उत्साहका लाभ होवे। २

दिव्य धेनुके अपक्व और प्रकाशमय स्तनमें आपने परिपक्व और उत्कृष्ट अमृतत्त्व रखा है। हे सत्यस्वरूप अश्विदेव, जिस तरह अरण्यके बीचमें टेढे मार्गसे चलनेवाला वायु पवित्र होता है उसी तरह पवित्र हृदयसे मैं (जो आपका भक्त हूं) आपकी सेवा करता हूं। ३

हे पराक्रमी अश्विदेव अत्रिऋषिके लिये आपने जलके प्रवाहकी तरह तीव्र उष्णताको ठण्डा और मधुर कर दिया। इसी लिये हे अश्विदेव, आपके लिये पशु-यज्ञ किया जाता है और मधुर रस हमारी ओर रथके चक्रकी तरह दौडता चला आता है। ४

---

१ हे (अश्विनौ) यत् युवोः रथः रजांसि अर्णांसि परि दीयत (तदपि) वाम् अश्वाः सुयमासः, वाम् हिरण्ययाः पवयः (पीयूष) प्रुषायन्, (हे अश्विनौ) मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे।

२ यत् युवम् अत्यस्य, विपत्मनः नर्यस्य प्रयज्योः (सूर्यस्य) अव नक्षथः, (तदा) हे विश्वगूर्ती, हे मधुपौ (स्तोता) ईट्टे यत् वाम् स्वसा वाजाय, इषं च (वाम्) भराति।

३ युवम् (विश्वाया) गोः आमायाम् उस्रियायाम् (वक्षणायां) पक्व पूर्व्यं च पयः यत् अधत्तम्। हे ऋतप्सू वनिनः अन्तः ह्वारः (व्रातः) न शुचिः हविष्मान वाम् यजत।

४ युवम् ह घर्मं अत्रये, घर्मं अपः क्षोदः न मधुमन्तम् अवृणीतम्। तत् हे नरौ, अश्विनौ वाम् पश्व इष्टिः, (अतश्च) मध्वः रथ्या चक्रा इव (नः) प्रतियन्ति।

हे अद्भुत कर्म करनेवाले अश्वीदेव, जिस तरह बुड्ढे हुए तुग्रपुत्रने आपको मोहित किया उसी तरह आपको घीकी आहुति देकर मैं आपका मन मोहित करता हूं और आपका आशीर्वाद प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूं। आपके बलने आकाश और पृथिवीको व्याप्त किया है। हे पूजनीय देव, जो पापके ढेर लगे हुए थे उनका आपने बिलकुल नाश कर डाला। ५

हे उदार अश्वीदेव, जब भक्तोंकी ओर आनेके लिये आप अपने अश्वोंको जोतते हैं तब आपके प्रभावसे आपके भक्त बुद्धिमान् होते हैं। बुद्धिमान् भक्त आपको सन्तुष्ट करके वायुकी तरह चारों ओर सञ्चार करते है। सत्कर्म करनेवाला जो भक्त है उसका बल बढानेके लिये आप उसको पवित्र सामर्थ्य अर्पण करते हैं। ६

हम आपकी स्तुति करनेवाले सच्चे भक्त हैं। हम आपके गुणोंका वर्णन करते हैं। धनी मनुष्य यदि धर्मको माननेवाला न हो और कञ्जूस हो तो हम उसकी ओर ध्यान भी नहीं देते। हे निष्कलंक और वीर्यवान् अश्वीदेव, सदा ईश्वरका चिन्तन करनेवाले भक्तोंकी आप रक्षा करते हैं। ७

हे अश्वीदेव, सब पुरुषोंमें अगस्त्य ऋषि बड़े श्रेष्ठ है। ज्ञानरूपी जलका प्रचण्ड प्रवाह प्राप्त होनेके लिये सबसे श्रेष्ठ अगस्त्यऋषि भी प्रत्येक दिन प्रातःकालको आपको जगाते हैं और 'काराधुनी' नामके सुन्दर बाद्यसे आपकी मनोहर स्तुति गाते हैं। इस तरह वे आपकी प्रार्थना सदा करते रहते हैं। ८

---

५ हे दस्रा, जिव्रिः तौग्र्यो न, (अहं) वां दानाय, गोः ओहेन च आववृतीय । आपः क्षोणी च वाम् महिना सचते, हे यजत्रा, अंहसः अमुः वाम् (पुरा) जूर्णः (एव) ।

६ हे सुदानू यद् नियुतः नि युंक्थे (तदैव) स्वधाभिः (भक्तहृदि) पुरंधिम् सृजथः । (ततः) सूरिः (सः) वातः न वेषत् (वाम्) प्रेषत् (स) सुव्रतः न (अस्य) महे वाजम् आद दे ।

७ वयं वाम् जरितारः सत्याः चित् हि, विपन्यामहे, पणिः वि हितवान् । अधा चित् हि स्म हे अनिन्द्यौ वृषणौ अश्विनौ (तं) अंति देवम् पाथः हि स्म ।

८ हे अश्विनौ विद्रस्य (ज्ञानस्य) प्रस्रवणस्य सातौ, नरां नृषु प्रशस्तः अगस्त्यः कराधुनीव (मंजुघोषैः) सहस्रैः (शंसैः) युवां चित् हि अक्तून् चितयत् स्म ।

सब जगह सञ्चार करनेवाले हे अश्विदेव, आपका रथ स्वर्गमें भी जा सकता है। आप अपने रथमें बैठकर आज इधर आते हैं। किन्तु जब आप हमारी ओर आते हैं तब किसी मनुष्यका रूप धारण करके होता बनकर आते हैं। इस लिये हमारे यजमानको आप बुद्धिरूपी उत्तम अश्व अर्पण कीजिये। हे नासत्य, हम भी आपके ऐश्वर्यके भागी होंगे। ९

हे अश्विदेव, आपके रथचक्र कभी नहीं टूटता है। आपका रथनक्षत्र लोकके चारों ओर सञ्चार करता है। ऐसे आपके यशस्वी रथको हमारे कल्याणके लिये हम स्तोत्रोंके द्वारा बुलाते हैं। इस तरह इच्छाको शीघ्रतासे सफल करनेवाला और हमारा उत्साह बढ़ानेवाला आपका सहारा हमें प्राप्त होगा। १० (२४)

सूक्त १८१.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–अश्विन ॥

हे अश्विदेव, आप बड़े दयाशील हैं। सात्विक सम्पत्ति देनेवाले और सात्विक प्रेम करनेवाले आपही हैं। स्वर्गके जलका अंश आप कब लायेंगे? हे दिव्य सम्पत्ति देनेवाले अश्विदेव, इस यज्ञके द्वारा हम आपके गुणोंकी प्रशंसा करते हैं। १

आपके रथके पवित्र और दिव्य अश्व अन्नका प्राशन करनेवाले वायुकी तरह बलवान्, मनकी तरह वेगवान, वीर्यवान, हृष्टपुष्ट, और निजके तेजसे प्रकाशित होनेवाले हैं। वे अश्व आपको हमारी ओर बड़ी शीघ्रतासे ले आवें। २

जिस तरह ढालू जमीनपरसे जलका प्रवाह बड़े वेगसे बहता है उसी तरह आपका रथ बड़े जोरसे चलता है। रथ हांकनेवालेका जो स्थान उस रथपर बना हुआ है वह भी बड़ा चौड़ा है। हमारा कल्याण करनेके लिये वह रथ हमारी ओर आवे। ध्यान और चिन्तन करनेयोग्य हे अश्विदेव, मन सबसे चञ्चल है; किन्तु आपका पवित्र रथ मनसे भी अधिक चञ्चल है। आपका रथ बड़े ठाठसे सबके आगे चलता है। ३

---

९ हे स्पन्द्रा, यत् रथस्य महिना प्रवहेथे, (तदा) (कश्चित्) मनुषः होता न (अस्मान्) प्र याथः। उत वा हे नासत्या (नः) सूरिभ्यः (प्रशामय) सु अश्व्यम् धनम् (येन वयमपि) रयिवन्तः स्याम।

१० हे अश्विनौ वाम् तम् नव्यम् अरिष्टनेमिम् द्याम् परि इयानम् रथम् वयम् अद्य (नः) सुविताय स्तोमैः हुवेम, (येन) इषम् जीरदानुम् वृजनम् च विद्याम।

१ प्रेष्ठौ, इषां रयीणां च अध्वर्यन्तौ युवाम् यत् अपाम् उत् निनीथः (तत्) कत् उ? हे वसुधिती हे जनानां अवितारौ, अयम् यज्ञः वाम् प्रशस्तिम् अकृत।

२ वाम् अश्वाः शुचयः पयस्पाः वातरंहसः, दिव्यासः, अत्याः, मनोजुवः, वृषणः वीतपृष्ठाः स्वराजः (अश्वाः) हे अश्विना युवाम् आ वहन्तु।

३ (अस्माकम्) प्रवत्वान् अवनिः न, वाम् रथः सुप्रवन्धुरः (नः) सुविताय आ गम्याः। हे स्थातारौ, हे धिष्ण्यौ यः (रथः) अहंपूर्वः, वृष्णः मनसः (अपि) जवीयान्।

इस यज्ञमें प्रकट होनेवाले अश्वीदेव, आपके गुणोंका वर्णन सब लोग बारबार करते हैं। आपकी मूर्ति निष्कलंक और कीर्ति पवित्र है। इस लिये आपका स्तोत्र सब लोक गाते हैं। इससे यह विदित होता है कि आप दोनोंमेंसे एक हमारे यशका नेता है और दूसरा द्युलोकका भाग्यवान पुत्र है। ४

बड़े वेगसे नीचे दौड़नेवाला और उच्च उच्च शिखरका आपका सुवर्णमय रथ, आपकी इच्छासे आपके भक्तोंकी ओर आवे। हे अश्वीदेव, आप दोनोंमेंसे एककी स्तुति करनेसे भी स्तोताको सामर्थ्य प्राप्त होता है। रथके अश्व हृष्टपुष्ट हो जाते हैं और अपने हिनहिनानेसे अन्तरिक्षको व्याप्त करते हैं। ५ (२५)

शरदृतुमें धान्यरूपी सम्पत्ति आपके रथमें रखी जाती है। आपका रथ भी उत्साह देनेवाले अमृतके बिन्दुओंकी वर्षा करता है और इधर उधर सञ्चार करता है। जब हम आप दोनोंमेंसे एककी स्तुति करते हैं तब हमें सामर्थ्य प्राप्त होता है, बड़ी बड़ी नदीयोंको बाढ़ आती है और जलके प्रवाह हमारी ओर बहते हैं। ६

सबको नियमके अनुसार चलानेवाले अश्वीदेव, आपकी पुरानी स्तुतिका प्रवाह बड़े जोरसे मेरे मुहसे बाहर निकलता है। उस स्तुतिसे आप सन्तुष्ट हुजिये और हमपर कृपा कीजिये क्योंकि मैं आपका भक्त हूं। जब आप सञ्चार करते हैं और विश्रान्ति लेते हैं तब भी मेरी ओर ध्यान दीजिये। ७

---

४ इह इहेव जाताः (यत्) अवावशीताम् (तत्) अरेपसा तन्वा, स्वैः नामभिः (च) वाम् अन्यः (नः) सुमखस्य जिष्णुः सूरिः (भवति) अन्यः दिवः सुभगः पुत्रः (इति) ऊहे ।

५ वाम् निम्नगः, ककुहः, हिरण्यरूपः (रथः वाम्) वशां अनु (नः) सद्मानि प्र गम्याः । हे अश्विना, (वाम्) अन्यस्य वाजैः हरी पीपयन्त, मथ्रा (च तौ) घोषैः रजांसि वि (आप्यायतः) ।

६ वाम् (रथः) शरद्वान् न वृषभः निष्पाट् (च), मध्वः इषम् पृक्षः इषः प्र चरति । (वाम्) अन्यस्य एवैः वाजैः (याः) पीपयन्त, (ताः) ऊर्ध्वाः वहन्तीः नद्यः नः आ अगुः ।

७ हे वेधसा अश्विना, त्रेधा वाचा इह क्षरन्ती स्थविरा (च) वाम् धीः असर्जि । (अस्माकम्) उपस्तुती (युवाम्) नाधमानम् अवतम्, यामन् अयामन् (च) मे हवं शृणुतम् ।

यज्ञगृहमें तीन दर्भासन रखे जाते हैं। वहां आपके उज्वल और तेजोमयरूपकी स्तुति की जाती है। उस समय भक्तोंके हृदयमें आपके लिये प्रेम उत्पन्न होता है। हे वीर पुरुष, जब आप हमारे मनोरथ पूर्ण करते हैं तब आप ज्ञानरूपकी वर्षा करते हैं और मनुष्योंकी इच्छा सफल करके उनका ऐश्वर्य बढाते हैं। ८

हे अश्वीदेव, पुषादेवके समान आप भी सब लोगोंकी रक्षा करते हैं। ज्ञानवान् भक्त आपको हवि अर्पण करते हैं और वे जिस तरह अग्नि और उषाकी स्तुति करते हैं उस तरह वे आपकी भी स्तुति करते हैं। सब प्रेमसे मैं आपकी स्तुति और प्रार्थना करता हूं। इस लिये आप ऐसी कृपा हमपर कीजिये जिससे हमारी इच्छा सफल होवे और हमारा उत्साह बढ़े। ९

सूक्त १८२.

॥ ऋषि—अगस्त्य । देवता—अश्विन ॥

देखिये; अश्वीदेवोंके आनेका चिन्ह दिखाई देने लगा; चलो; आगे चलो । देखिये वहां पराक्रमी पुरुषोंका रथ खडा है । हे ज्ञानवान् भक्तलोग, अश्वीदेवोंको सन्तुष्ट कीजिये। सद्बुद्धि देनेवाले आपही है। मनुष्य जातिको दयारूपी सम्पत्ति देनेका सामर्थ्य आपके पास है। आप ध्यान करने योग्य हैं। द्युलोकसे वे प्रकट होते हैं। केवल पुण्यवान् पुरुष आपके पवित्र सत्वका अनुभव ले सकते हैं। १

हे अश्वीदेव, (पराक्रममें) इन्द्र और आप एकसे ही है। आप चिन्तन करने योग्य हैं। मरुतोंकी तरह आप शत्रुओंका नाश करनेवाले और अपूर्व काम करनेवाले हैं। आप रथपर आरूढ होते हैं। हे अश्वीदेव, अमृत—रससे भरे हुए रथमें बैठकर हवि अर्पण करनेवाले भक्तोंकी ओर आप चले जाते हैं। २

---

८ उत त्रिबर्हिषि सदने वाम् रुशत: वप्सस: त्या गी: (प्रयतान्) नॄन् पिन्वते । हे वृषणा, (अवम्) वाम् वृषा (वरद) मेघ: गो: सेके न मनुष: दशस्यन् (तान्) पीपाय ।

९ हे अश्विना युवाम् पूषेव अग्नि उषाम् न पुरन्धि: हविष्मान् (वाम्) अरते । यत् (अहम्) वरिवस्या गृणान: वाम् हुवे (तत्) इषम् जीरदानु वृजनम् विद्याम ।

१ (पश्यत जना:) इदं (अश्विनो: वयुनम् (पुरत:) अभूत्, ओ सु भूषत, (अयं) वृषण्वान् रथ:, हे मनीषिण: (ऋत्विज: एतान्) मदत । (इमावपि) धियं जिन्वा धिष्ण्या, विश्पलावसू, दिव: नपाता, सुकृते शुचिव्रता (च)।

२ (युवाम्) इन्द्रतमा, धिष्ण्या हि, (युवाम् च) मरुत्तमा दस्रा, दंसिष्ठा, रथ्या रथीतमा, पूर्णं रथं मध्व: आ वहेथे, तेन च हे अश्विना दाश्वांसम् उप याथ: ।

हे सामर्थ्यवान् देव, आप क्या करते हैं ? आप क्यों ठेरे हुए हैं ? यहांके लोक देवोंको हवि अर्पण करनेके बदले अपने घमण्डमें मग्न हुए हैं। इस लिये उनको छोड़ देना चाहिये। धर्मभ्रष्ट और दुष्ट लोगोंकी आयुको घटाकर देवोंके गुणोंका वर्णन करनेवाले भक्त लोगोंको ज्ञानरूपी प्रकाश आप अर्पण करें। ३

(सज्जन लोगोंको) गाली देनेवाले लोगोंका आप नाश कीजिये। सत्पुरुषोंके शत्रुओंका भी आप नाश कीजिये। हे अश्विदेव, आप सब बातें जानते ही हैं। (हमारी ओरसे प्रार्थना करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है)। स्तुति करनेवाले लोगोंकी प्रार्थना सफल होवे। हे सत्यस्वरूप अश्विदेव, आप दोनों मेरे स्तोत्रोंको सफल करें। ४

तुग्रपुत्रोंके लिये आपने महासमुद्रमें एक आनन्द देनेवाली और सजीव नौका–जिसके पंख थे–तैयार की। आप उडनेमें बडे कुशल हैं। ईश्वरकी ओर ध्यान लगानेवाले भक्तोंके साथ आप अपने उस नावमें उदककी उछलनेवाली लहरोंके ऊपर समुद्रके परे उड गये। ५

तुग्रपुत्र जब महासागरमें फेंका गया था तब वह गाढ अनन्त अन्धेरेमें डुब गया था। अश्विदेव निजकी प्रेरणासे समुद्रमें उन चार नावोंको चलाते थे। समुद्रमें उन चार नावोंका बहुतही उपयोग होता है। वे (नाव) समुद्रके परे उसको ले जाते हैं। ६

---

३ हे दस्रा अत्र किम् कृणुथः, किम् आसाथे, (अत्र) जनः यः कश्चित् अहविः महीयते (च) (तद्) अति क्रमिष्टम्, पणेः असु जरतम्, वचस्यवे विप्राय (मे) ज्योतिः कृणुतम्।

४ रायतः शुनः अभितः जंभयतम्, हतम् मृधः, हे अश्विना, (ए) तानि विदथुः। जरितुः वाचं वाचं रत्निनीम् कृतम्, हे नासत्या (युवाम्) उभा मम शंसम् अवतम्।

५ युवम् तौग्र्याय सिन्धुषु, आत्मन्वन्तम् पक्षिणम् प्लवम् (एतम्) कम् चक्रथुः। येन सुपप्तनी (युवाम्) महः क्षोदसः पेतथुः देवत्रा मनसा (भक्तेन सह च) निरूहथुः।

६ अप्स्वन्तः अवविद्धं तौग्र्यम् अनारंभणे तमसि च प्रविद्धम् जठलस्य जुष्टाः अश्विभ्याम् इषिताः चतस्रः नावः उत् पारयन्ति (पश्य)।

जिस तरह जलमें डुबे हुए मनुष्यको वृक्षका आधार मिलता है उसी तरह घबरे हुए तुग्रपुत्रको समुद्रमें आपहीका (मानों बलवान वृक्षका) आधार मिला; मानों नीचे गिरते हुए पशुको उड़नेके लिये पंख प्राप्त हुए। हे अश्वीदेव, आपने तुग्रपुत्रकी रक्षा की। इस लिये आपकी कीर्ति बहुत दूरतक फैली हुई है। ७

वीर्यशाली सत्यस्वरूप अश्वीदेव, मानपुत्रोंने आपकी जो स्तुति की है वह आपको प्रिय होवे। जब हम आपको सोम अर्पण करते हैं तब आपकी कृपासे हमारी इच्छा शीघ्रतासे सफल होवे और हमारा उत्साह बढ़े। ८ (२८)

सूक्त १८३.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–अश्विन ॥

हे वीर्यशाली अश्विदेव, आप अपना रथ जोतकर तैयार कीजिये। आपका रथ मनसे भी अधिक वेगवान् है। उसमें बैठनेके लिये तीन स्थान हैं और उसके तीन चक्र हैं। जिस तरह पक्षी अपने पखोंसे उड़ता है उसी तरह आप भी अपने रथमें—जिसके तीन तत्वरूपी चक्र होते हैं—बैठकर अपने भक्तोंके घर चले आते हैं। १

जब आप अपनी दयाका सामर्थ्य दिखलानेके लिये रथमें बैठकर आते हैं तब आपका रथ बड़ी शीघ्रतासे और सीधे मार्गसे पृथिवीकी ओर आता है। जिस तरह आप आकाश-कन्या–उषाके साथ चले आते हैं उसी तरह हमारी सुन्दर स्तुति भी आपके साथ शीघ्रतासे दौड़े। २

---

७ यम् नाधितः तौग्र्यः पर्यषस्वजत् (सः) अर्णसः मध्ये निष्ठितः वृक्षः कस्वित्? (येन) पतत्रैः मृगस्य आरभे पर्णा इव (अभवत्), हे अश्विना (एवम् युवाम् स्व) श्रोमताय (एन) कम् उत् ऊहथुः।

८ हे नरा नासत्या यत् मानासः वाम् उचथम् अवोचन् तत् वाम् अनुस्यात्। अद्य अस्मात् सोम्यस्य सदसः, इषम् जीरदानुम् वृजनम् विद्याम।

१ हे वृषणा मनसः यः जवीयान यः त्रिवन्धुरः त्रिचक्रश्च (रथः) तं युञ्जाथाम्। येन त्रिधातुना (रथेन) विः पर्णी न, (युवाम्) पतथः, सुकृतः दुरोणम् च उपयाथः।

२ यत् कत्मन्ता (युवाम) पृथ्वी अनुतिष्ठतः (तत् सः) रथः (अपि) अभिक्षाम यत् सुवृत् वर्तते। (यथा युवाम) वपुष्या दिवः दुहित्रा उषसा सचेथे (तथा) इयम् गीः (वः) वपुः सचताम्।

भक्तोंने अर्पण किये हुए हवियोंसे भरा हुआ आपका रथ आपकी आज्ञाके अनुसार सीधे मार्गसे चलता है । उसी रथमें आप बैठिये । हे शूर—सत्यस्वरूप अश्वीदेव, उपर्युक्त रथमें बैठकर आप अपने भक्तों और उनके पुत्रों और पौत्रोंको जागृत करके उनको बुद्धि अर्पण करनेके लिये उनके घर चले जाते हैं। ३

हे अश्वीदेव, आपका (क्रोधरूप) भेड़ियां और भेडी दोनों हमारा नाश न करें । आप हमारा त्याग मत कीजिये । हमें छोड़कर दूसरी जगह मत् जाइये । देखिये; आपके लिये यहां हविर्भाग रखा हुआ है । हे महापराक्रमी अश्वीदेव, मधुर सोमरससे भरे हुए बरतन भी आपके सामने रखे हुए है । ४

हे अद्भुत् पराक्रम करनेवाले अश्वीदेव, गौतमऋषि, पुरुमिळह, और अत्रिऋषि भी आपकी कृपा प्राप्त करनेके लिये आपको हवि अर्पण करते हैं और आपकी स्तुति करते हैं । हे नासत्य, जिस तरह नियमके अनुसार चलनेवाला मनुष्य अपनी इच्छा सफल करनेके लिये सीधे मार्गसे चलता है उसी—तरह आप भी मेरी इच्छा सफल करनेके लिये सरल मार्गसे मेरी ओर आइये । ५

अब हम (अज्ञानरूपी) अन्धकारके परे पहुंचे हैं । इस लिये, हे अश्वीदेव, हमने जो आपके गुणोंका वर्णन किया है वह हम आपहीको अर्पण करते हैं । जिस मार्गसे देव चलते हैं उसी मार्गसे आप हमारी ओर आइये । हमारी इच्छा शीघ्रतासे सफल करके आप हमारा उत्साह बढावें । ६ (२६) (४)

---

३ यो (स्यम्) वाम् रथः हविष्मान् व्रतानि अनुवर्तते (तम्) सुवृतम् आ तिष्ठतम् । हे नरा नासत्या, येन (भक्तस्य) वर्तिः, त्मने तनयाय त्मने इव वर्ध्यै याथः ।

४ वाम् (क्रोधः) वृकः (अस्मान्) मा, वृकी (अवकृपा अपि) मा आ दधर्षीत्, मा परिवृक्तम् उत मा अति धक्तम् । अयं वां भागः निहितः इयम् गीः, हे दस्रौ इमे वाम् मधूनाम् निधयः ।

५ हे दस्रा, गोतमः पुरुमीळ्हः अत्रिश्च हविष्मान् युवाम् अवसे हवते । यन्ता ऋजुयेव दिशम् दिशा न हे नासत्या, मे हवम् उप आयातम् ।

६ वयम् अस्य तमसः पारम् अतारिष्म, हे अश्विना, (अयम्) स्तोमो (वि) वाम् प्रति अधायि । (तद्) देवयानैः पथिभिः इह आ यातम्, (येन) इषम् वृजनम् जीरदानुं विद्याम ।

॥ चौथा अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

Printed at Vaidya Brothers' Press Tankardwar, Bombay No. 2 & published at Shrutibodh Office 47 Kalbadevi Road, Bombay, by Gajanan Bhaskar Vaidya.

हिन्दी

श्रुतिबोध.

हिन्दी, मराठी, गुजराती और अङ्गरेजी
चार भाषाओंमें अलग अलग
प्रसिद्ध होनेवाला
वेदोंका भाषांतर।

प्रति मासमें ६४ पृष्ठ; ३२ पृष्ठ संहिता [स्वर और पदपाठ सहित]
३२ पृष्ठ भाषान्तर

प्रबन्ध २] ज्येष्ठ संवत् १९७०—जून सन १९१३ [अंक १२

सम्पादक,
रामचंद्र विनायक पटवर्धन, बी. ए., एल् एल्. बी.
अच्युत बलवंत कोल्हटकर, बी. ए., एल् एल्. बी.
[illegible], बी. ए., एल् एल्. बी.

वार्षिक मूल्य
डा. व्य. सहित. रु. ४

'श्रुतिबोध'
ऑफिस,
५० कालबादेवी.
बम्बई.

प्रति अंकका मूल्य
आठ आने.

॥ अथ द्वितीयाष्टके पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

॥ १८४ ॥ ऋषिः-अगस्त्यः । देवता-अश्विनौ । छन्दः-त्रिष्टुप् ।

॥ १८४ ॥ ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।
नासत्या कुह चित्सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥ १ ॥
अस्मे ऊ षु वृषणा मादयेथामुत्पणीँर्हतमूर्म्या मदन्ता ।
श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥ २ ॥
श्रिये पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥ ३ ॥
अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः ।
अनु यद्वां श्रवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्षणयो मदन्ति ॥ ४ ॥

॥ अथ द्वितीयाष्टके पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ता । वाम् । अद्य । तौ । अपरम् । हुवेम । उच्छन्त्याम् । उषसि । वह्निः । उक्थैः । नासत्या । कुह । चित् । सन्तौ । अर्यः । दिवः । नपाता । सुदाःऽतराय ॥ १ ॥ अस्मे इति । ऊँ इति । सु । वृषणा । मादयेथाम् । उत् । पणीन् । हतम् । ऊर्म्या । मदन्ता । श्रुतम् । मे । अच्छोक्तिऽभिः । मतीनाम् । एष्टा । नरा । निऽचेतारा । च । कर्णैः ॥ २ ॥ श्रिये । पूषन् । इषुकृताऽइव । देवा । नासत्या । वहतुम् । सूर्यायाः । वच्यन्ते । वाम् । ककुहाः । अप्ऽसु । जाताः । युगा । जूर्णाऽइव । वरुणस्य । भूरेः ॥ ३ ॥ अस्मे इति । सा । वाम् । माध्वी इति । रातिः । अस्तु । स्तोमम् । हिनोतम् । मान्यस्य । कारोः । अनु । यत् । वाम् । श्रवस्या । सुदानू इति सुऽदानू । सुऽवीर्याय । चर्षणयः । मदन्ति ॥ ४ ॥

एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥ ५ ॥
अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ १८५ ॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-द्यावापृथिव्यौ । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥१८५॥ कतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को वि वेद ।
विश्वं त्मना बिभृतो यद्ध नाम वि वर्तेते अहनी चक्रियेव ॥ १ ॥
भूरिं द्वे अचरन्ती चरन्तं पद्वन्तं गर्भमपदी दधाते ।
नित्यं न सूनुं पित्रोरुपस्थे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ २ ॥

एषः । वां । स्तोमः । अश्विनौ । अकारि । मानेभिः । मघऽवाना । सुऽवृक्ति । यातं । वर्तिः । तनयाय । त्मने । च । अगस्त्ये । नासत्या । मदन्ता ॥ ५ ॥ अतारिष्म । तमसः । पारं । अस्य । प्रति । वां । स्तोमः । अश्विनौ । अधायि । आ । इह । यातं । पथिऽभिः । देवऽयानैः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ६ ॥ १ ॥

कतरा । पूर्वा । कतरा । अपरा । अयोः । कथा । जाते इति । कवयः । कः । वि । वेद । विश्वं । त्मना । बिभृतः । यत् । ह । नाम । वि । वर्तेते इति । अहनी इति । चक्रियाऽइव ॥ १ ॥ भूरिं । द्वे इति । अचरन्ती इति । चरन्तं । पद्ऽवन्तं । गर्भं । अपदी इति । दधाते इति । नित्यं । न । सूनुं । पित्रोः । उपऽस्थे । द्यावा । रक्षतं । पृथिवी इति । नः । अभ्वात् ॥ २ ॥

अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ३ ॥
अतप्यमाने अवसावन्ती अनु ष्याम रोदसी देवपुत्रे ।
उभे देवानामुभयेभिरह्नां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ४ ॥
संगच्छमाने युवती समन्ते स्वसारा जामी पित्रोरुपस्थे ।
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ५ ॥ २ ॥
उर्वी सद्मनी बृहती ऋतेन हुवे देवानामवसा जनित्री ।
दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ६ ॥

अनेहः । दात्रं । अदितेः । अनर्वं । हुवे । स्वःऽवत् । अवधं । नमस्वत् । तत् । रोदसी इति । जनयतं । जरित्रे । द्यावा । रक्षतं । पृथिवी इति । नः । अभ्वात् ॥ ३ ॥ अतप्यमाने इति । अवसा । अवंती इति । अनु । स्याम । रोदसी इति । देवपुत्रे इति देवऽपुत्रे । उभे इति । देवानां । उभयेभिः । अह्नां । द्यावा । रक्षतं । पृथिवी इति । नः । अभ्वात् ॥ ४ ॥ संगच्छमाने इति संऽगच्छमाने । युवती इति । समंते इति संऽअंते । स्वसारा । जामी इति । पित्रोः । उपऽस्थे । अभिजिघ्रंती इत्यभिऽजिघ्रंती । भुवनस्य । नाभिं । द्यावा । रक्षतं । पृथिवी इति । नः । अभ्वात् ॥ ५ ॥ २ ॥ उर्वी इति । सद्मनी इति । बृहती इति । ऋतेन । हुवे । देवानां । अवसा । जनित्री इति । दधाते इति । ये इति । अमृतं । सुप्रतीके इति सुऽप्रतीके । द्यावा । रक्षतं । पृथिवी इति । नः । अभ्वात् ॥ ६ ॥

उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यज्ञे अस्मिन् ।
दधाते ये सुभगे सुप्रतूर्ती द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ७ ॥
देवान्वा यच्चकृमा कच्चिदागः सखायं वा सदमिज्जास्पतिं वा ।
इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥ ८ ॥
उभा शंसा नर्या मामविष्टामुभे मामूती अवसा सचेताम् ।
भूरि चिदर्यः सुदास्तरायेषा मदन्त इषयेम देवाः ॥ ९ ॥
ऋतं दिवे तदवोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधाः ।
पातामवद्याद्दुरितादभीके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥ १० ॥
इदं द्यावापृथिवी सत्यमस्तु पितर्मातर्यदिहोपब्रुवे वाम् ।
भूतं देवानामवमे अवोभिर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥ ३ ॥

उर्वी इति । पृथ्वी इति । बहुले इति । दूरेअन्ते इति दूरेऽअन्ते । उप । ब्रुवे । नमसा । यज्ञे । अस्मिन् । दधाते इति । ये इति । सुभगे इति सुऽभगे । सुप्रतूर्ती इति सुऽप्रतूर्ती । द्यावा । रक्षतं । पृथिवी इति । नः । अभ्वात् ॥ ७ ॥ देवान् । वा । यत् । चकृम । कत् । चित् । आगः । सखायं । वा । सदं । इत् । जाःऽपतिं । वा । इयं । धीः । भूयाः । अवऽयानं । एषां । द्यावा । रक्षतं । पृथिवी इति । नः । अभ्वात् ॥ ८ ॥ उभा । शंसा । नर्या । मां । अविष्टां । उभे इति । मां । ऊती इति । अवसा । सचेतां । भूरि । चित् । अर्यः । सुदाःऽतराय । इषा । मदन्तः । इषयेम । देवाः ॥ ९ ॥ ऋतं । दिवे । तत् । अवोचं । पृथिव्यै । अभिऽश्रावाय । प्रथमं । सुऽमेधाः । पातां । अवद्यात् । दुःऽइतात् । अभीके । पिता । माता । च । रक्षतां । अवःऽभिः ॥ १० ॥ इदं । द्यावापृथिवी इति । सत्यं । अस्तु । पितः । मातः । यत् । इह । उपऽब्रुवे । वां । भूतं । देवानां । अवमे इति । अवःऽभिः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ११ ॥ ३ ॥

॥ १८६ ॥ ऋषिः–अगस्त्यः । देवता–विश्वेदेवाः । छन्दः–त्रिष्टुप् ॥

॥१८६॥ आ न इळाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥ १ ॥
आ नो विश्व आस्क्रा गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ।
भुवन्यथा नो विश्वे वृधासः करन्त्सुषाहा विथुरं न शवः ॥ २ ॥
प्रेष्ठं वो अतिथिं गृणीषेऽग्निं शस्तिभिस्तुर्वणिः सजोषाः ।
असद्यथा नो वरुणः सुकीर्तिरिषश्च पर्षदरिगूर्तः सूरिः ॥ ३ ॥
उप व एषे नमसा जिगीषोषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
समाने अहन्विमिमानो अर्कं विषुरूपे पयसि सस्मिन्नूधन् ॥ ४ ॥

आ । नः । इळाभिः । विदथे । सुऽशस्ति । विश्वानरः । सविता । देवः । एतु । अपि । यथा । युवानः । मत्सथ । नः । विश्वम् । जगत् । अभिऽपित्वे । मनीषा ॥ १ ॥ आ । नः । विश्वे । आस्क्राः । गमंतु । देवाः । मित्रः । अर्यमा । वरुणः । सऽजोषाः । भुवन् । यथा । नः । विश्वे । वृधासः । करन् । सुऽसहा । विथुरं । न । शवः ॥ २ ॥ प्रेष्ठं । वः । अतिथिं । गृणीषे । अग्निं । शस्तिऽभिः । तुर्वणिः । सऽजोषाः । असत् । यथा । नः । वरुणः । सुऽकीर्तिः । इषः । च । पर्षत् । अरिऽगूर्तः । सूरिः ॥ ३ ॥ उप । वः । आ । ईषे । नमसा । जिगीषा । उषसानक्ता । सुदुघाऽइव । धेनुः । समाने । अहन् । विऽमिमानः । अर्कं । विषुऽरूपे । पयसि । सस्मिन् । ऊधन् ॥ ४ ॥

उत नोऽहिर्बुध्न्यो३ मयस्कः शिशुं न पिप्युषीव वेति सिन्धुः ।
येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥ ५ ॥ ४ ॥
उत न ईं त्वष्टा गन्त्वच्छा स्मत्सूरिभिरभिपित्वे सजोषाः ।
आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥ ६ ॥
उत न ईं मतयोऽश्वयोगाः शिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।
तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥ ७ ॥
उत न ईं मरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु ।
पृषदश्वासोऽवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥ ८ ॥
प्र नु यदेषां महिना चिकित्रे प्र युञ्जते प्रयुजस्ते सुवृक्ति ।
अध यदेषां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥ ९ ॥

उत । नः । अहिः । बुध्न्यः । मयः । करिति कः । शिशुं । न । पिप्युषीऽइव । वेति । सिंधुः । येन । नपातं । अपां । जुनाम । मनःऽजुवः । वृषणः । यं । वहंति ॥ ५ ॥ ४ ॥ उत । नः । ईं । त्वष्टा । आ । गंतु । अच्छ । स्मत् । सूरिऽभिः । अभिऽपित्वे । सऽजोषाः । आ । वृत्रऽहा । इंद्रः । चर्षणिऽप्राः । तुविःऽतमः । नरां । नः । इह । गम्याः ॥ ६ ॥ उत । नः । ईं । मतयः । अश्वऽयोगाः । शिशुं । न । गावः । तरुणं । रिहंति । तं । ईं । गिरः । जनयः । न । पत्नीः । सुरभिःऽतमं । नरां । नसंत ॥ ७ ॥ उत । नः । ईं । मरुतः । वृद्धऽसेनाः । स्मत् । रोदसी इति । सऽमनसः । सदंतु । पृषत्ऽअश्वासः । अवनयः । न । रथाः । रिशादसः । मित्रऽयुजः । न । देवाः ॥ ८ ॥ प्र । नु । यत् । एषां । महिना । चिकित्रे । प्र । युंजते । प्रऽयुजः । ते । सुऽवृक्ति । अध । यत् । एषां । सुऽदिने । न । शरुः । विश्वं । आ । इरिणं । प्रुषायंत । सेनाः ॥ ९ ॥

प्रो अश्विनाववसे कृणुध्वं प्र पूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।
अद्वेषो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृतीय देवान् ॥ १० ॥
इयं सा वो अस्मे दीधितिर्यजत्रा अपिप्राणी च सदनी च भूयाः ।
नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥ ५ ॥

॥ १८७ ॥ ऋषिः–अगस्त्यः । देवता–अन्नस्तुतिः । छन्दः–गायत्री ॥

॥ १८७ ॥ पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ १ ॥
स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे ।
अस्माकमविता भव ॥ २ ॥

प्रो इति । अश्विनौ । अवसे । कृणुध्वं । प्र । पूषणं । स्वऽतवसः । हि । संति । अद्वेषः । विष्णुः । वातः । ऋभुक्षाः । अच्छ । सुम्नाय । ववृतीय । देवान् ॥ १० ॥ इयं । सा । वः । अस्मे इति । दीधितिः । यजत्राः । अपिऽप्राणी । च । सदनी । च । भूयाः । नि । या । देवेषु । यतते । वसुऽयुः । विद्याम । इषं । वृजनं । जीरऽदानुं ॥ ११ ॥ ५ ॥

पितुं । नु । स्तोषं । महः । धर्माणं । तविषीं । यस्य । त्रितः । वि । ओजसा । वृत्रं । विऽपर्वं । अर्दयत् ॥ १ ॥ स्वादो इति । पितो इति । मधो इति । पितो इति । वयं । त्वा । ववृमहे । अस्माकं । अविता । भव ॥ २ ॥

उप नः पितवा चर शिवः शिवाभिरूतिभिः ।
मयोभुरद्विषेण्यः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥ ३ ॥

तव त्ये पितो रसा रजांस्यनु विष्ठिताः ।
दिवि वाता इव श्रिताः ॥ ४ ॥

तव त्ये पितो ददतस्तव स्वादिष्ठ ते पितो ।
प्र स्वाद्मानो रसानां तुविग्रीवा इवेरते ॥ ५ ॥ ६ ॥

त्ये पितो महानां देवानां मनो हितम् ।
अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥ ६ ॥

यददो पितो अजगन्विवस्व पर्वतानाम् ।
अत्रा चिन्नो मधो पितोऽरं भक्षाय गम्याः ॥ ७ ॥

यदपामोषधीनां परिंशमारिशामहे ।
वातापे पीव इद्भव ॥ ८ ॥

उप । नः । पितो इति । आ । चर । शिवः । शिवाभिः । ऊतिऽभिः । मयःऽभुः । अद्विषेण्यः । सखा । सुऽशेवः । अद्वयाः ॥ ३ ॥ तव । त्ये । पितो इति । रसाः । रजांसि । अनु । विऽस्थिताः । दिवि । वाताःऽइव । श्रिताः ॥ ४ ॥ तव । त्ये । पितो इति । ददतः । तव । स्वादिष्ठ । ते । पितो इति । प्र । स्वाद्मानः । रसानां । तुविग्रीवाःऽइव । ईरते ॥ ५ ॥ ६ ॥ त्ये इति । पितो इति । महानां । देवानां । मनः । हितं । अकारि । चारु । केतुना । तव । अहिं । अवसा । अवधीत् ॥ ६ ॥ यत् । अदः । पितो इति । अजगन् । विवस्व । पर्वतानां । अत्र । चित् । नः । मधो इति । पितो इति । अरं । भक्षाय । गम्याः ॥ ७ ॥ यत् । अपां । ओषधीनां । परिंशं । आऽरिशामहे । वातापे । पीवः । इत् । भव ॥ ८ ॥

यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे ।
वातापे पीव इद्भव ॥ ९ ॥
करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथिः ।
वातापे पीव इद्भव ॥ १० ॥
तं त्वा वयं पितो वचोभिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।
देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥ ११ ॥ ७ ॥

॥ १८८ ॥ ऋषिः अगस्त्य । देवता-आप्रियः । छन्दः-गायत्री ॥

॥ १८८ ॥ समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् ।
दूतो हव्या कविर्वह ॥ १ ॥
तनूनपादृतं यते मध्वा यज्ञः समज्यते ।
दधत्सहस्रिणीरिषः ॥ २ ॥
आजुह्वानो न ईड्यो देवाँ आ वक्षि यज्ञियान् ।
अग्ने सहस्रसा असि ॥ ३ ॥

यत् । ते । सोम । गोऽआशिरः । यवऽआशिरः । भजामहे । वातापे । पीवः । इत् । भव ॥ ९ ॥ करंभः । ओषधे । भव । पीवः । वृक्कः । उदारथिः । वातापे । पीवः । इत् । भव ॥ १० ॥ तं । त्वा । वयं । पितो इति । वचःऽभिः । गावः । न । हव्या । सुसूदिम । देवेभ्यः । त्वा । सधऽमादं । अस्मभ्यं । त्वा । सधऽमादं ॥ ११ ॥ ७ ॥

संऽइद्धः । अद्य । राजसि । देवः । देवैः । सहस्रऽजित् । दूतः । हव्या । कविः । वह ॥ १ ॥ तनूऽनपात् । ऋतं । यते । मध्वा । यज्ञः । सं । अज्यते । दधत् । सहस्रिणीः । इषः ॥ २ ॥ आऽजुह्वानः । नः । ईड्यः । देवान् । आ । वक्षि । यज्ञियान् । अग्ने । सहस्रऽसाः । असि ॥ ३ ॥

प्राचीनं बर्हिरोजसा सहस्रवीरमस्तृणन् । यत्रादित्या विराजथ ॥ ४ ॥
विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः ।
दुरो घृतान्यक्षरन् ॥ ५ ॥ ८ ॥
सुरुक्मे हि सुपेशसाधि श्रिया विराजतः । उषासावेह सीदताम् ॥ ६ ॥
प्रथमा हि सुवाचसा होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ७ ॥
भारतीळे सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयत श्रिये ॥ ८ ॥
त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्त्समानजे ।
तेषां नः स्फातिमा यज ॥ ९ ॥
उप त्मन्या वनस्पते पाथो देवेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥ १० ॥
पुरोगा अग्निर्देवानां गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते ॥ ११ ॥ ९ ॥

प्राचीनं । बर्हिः । ओजसा । सहस्रऽवीरं । अस्तृणन् । यत्र । आदित्याः । विऽराजथ ॥ ४ ॥ विऽराट् । सम्ऽराट् । विऽभ्वीः । प्रऽभ्वीः । बह्वीः । च । भूयसीः । च । याः । दुरः । घृतानि । अक्षरन् ॥ ५ ॥ ८ ॥ सुरुक्मे इति सुऽरुक्मे । हि । सुऽपेशसा । अधि । श्रिया । विऽराजतः । उषसौ । आ । इह । सीदतां ॥ ६ ॥ प्रथमा । हि । सुऽवाचसा । होतारा । दैव्या । कवी इति । यज्ञं । नः । यक्षतां । इमं ॥ ७ ॥ भारति । इळे । सरस्वति । याः । वः । सर्वाः । उपऽब्रुवे । ताः । नः । चोदयत । श्रिये ॥ ८ ॥ त्वष्टा । रूपाणि । हि । प्रऽभुः । पशून् । विश्वान् । सम्ऽआनजे । तेषां । नः । स्फातिं । आ । यज ॥ ९ ॥ उप । त्मन्या । वनस्पते । पाथः । देवेभ्यः । सृज । अग्निः । हव्यानि । सिस्वदत् ॥ १० ॥ पुरःऽगाः । अग्निः । देवानां । गायत्रेण । सं । अज्यते । स्वाहाऽकृतीषु । रोचते ॥ ११ ॥ ९ ॥

॥ १८९ ॥ ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—अग्निः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥१८९॥ अग्ने नयं सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमंउक्तिं विधेम ॥ १ ॥
अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्त्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वी भवा तोकाय तनयाय शं योः ॥ २ ॥
अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।
पुनरस्मभ्यं सुवितायं देव क्षां विश्वेभिरमृतेभिर्यजत्र ॥ ३ ॥
पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान् ।
मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥ ४ ॥
मा नो अग्नेऽव सृजो अघायाविष्यवे रिपवे दुच्छुनायै ।
मा दत्वते दशते मादते नो मा रीषते सहसावन्परा दाः ॥ ५ ॥ १० ॥

अग्ने । नयं । सुऽपथा । राये । अस्मान् । विश्वानि । देव । वयुनानि । विद्वान् । युयोधि । अस्मत् । जुहुराणं । एनः । भूयिष्ठां । ते । नमःऽउक्तिं । विधेम ॥ १ ॥ अग्ने । त्वं । पारय । नव्यः । अस्मान् । स्वस्तिऽभिः । अति । दुःऽगानि । विश्वा । पूः । च । पृथ्वी । बहुला । नः । उर्वी । भव । तोकाय । तनयाय । शं । योः ॥ २ ॥ अग्ने । त्वं । अस्मत् । युयोधि । अमीवाः । अनग्निऽत्राः । अभिऽअमंत । कृष्टीः । पुनः । अस्मभ्यं । सुवितायं । देव । क्षां । विश्वेभिः । अमृतेभिः । यजत्र ॥ ३ ॥ पाहि । नः । अग्ने । पायुऽभिः । अजस्रैः । उत । प्रिये । सदने । आ । शुशुक्वान् । मा । ते । भयं । जरितारं । यविष्ठ । नूनं । विदत् । मा । अपरं । सहस्वः ॥ ४ ॥ मा । नः । अग्ने । अव । सृजः । अघाय । अविष्यवे । रिपवे । दुच्छुनायै । मा । दत्वते । दशते । मा । अदते । नः । मा । रिषते । सहसाऽवन् । परा । दाः ॥ ५ ॥ १० ॥

वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद्गृणानो अग्ने तन्वे३ वरूथम् ।
विश्वाद्रिरिक्षोरुत वा निनित्सोरभिह्रुतामसि हि देव विष्पट् ॥ ६ ॥
त्वं ताँ अग्न उभयान्वि विद्वान्वेषि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।
अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्मर्मृजेन्य उशिग्भिर्नाक्रः ॥ ७ ॥
अवोचाम निवचनान्यस्मिन्मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ ।
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥ ११ ॥

॥ १९० ॥ ऋषिः—अगस्त्यः । देवता—बृहस्पतिः । छन्दः त्रिष्टुप् ॥

॥ १९० ॥ अनर्वाणं वृषभं मन्द्रजिह्वं बृहस्पतिं वर्धया नव्यमर्कैः ।
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आशृण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥ १ ॥
तमृत्विया उप वाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।
बृहस्पतिः स ह्यञ्जो वरांसि विभ्वाभवत्समृते मातरिश्वा ॥ २ ॥

वि । घ । त्वाऽवान् । ऋतऽजात । यंसत् । गृणानः । अग्ने । तन्वे । वरूथं ।
विश्वात् । रिरिक्षोः । उत । वा । निनित्सोः । अभिऽह्रुतां । असि । हि । देव ।
विष्पट् ॥ ६ ॥ त्वं । तान् । अग्ने । उभयान् । वि । विद्वान् । वेषि । प्रऽपित्वे ।
मनुषः । यजत्र । अभिऽपित्वे । मनवे । शास्यः । भूः । मर्मृजेन्यः । उशिक्ऽभिः ।
न । अक्रः ॥ ७ ॥ अवोचाम । निऽवचनानि । अस्मिन् । मानस्य । सूनुः । सह-
साने । अग्नौ । वयं । सहस्रं । ऋषिऽभिः । सनेम । विद्याम । इषं । वृजनं ।
जीरऽदानुं ॥ ८ ॥ ११ ॥

अनर्वाणं । वृषभं । मंद्रऽजिह्वं । बृहस्पतिं । वर्धय । नव्यं । अर्कैः । गाथान्यः ।
सुऽरुचः । यस्य । देवाः । आऽशृण्वंति । नवमानस्य । मर्ताः ॥ १ ॥ तं । ऋत्वियाः ।
उप । वाचः । सचंते । सर्गः । न । यः । देवऽयता । असर्जि । बृहस्पतिः । सः ।
हि । अंजः । वरांसि । विऽभ्वा । अभवत् । सं । ऋते । मातरिश्वा ॥ २ ॥

उपस्तुतिं नमस उद्यतिं च श्लोकं यंसत्सवितेव प्र बाहू ।
अस्य क्रत्वाहन्यो३यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥ ३ ॥
अस्य श्लोको दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यंसद्यक्षभृद्विचेताः ।
मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायाँ अभि द्यून् ॥ ४ ॥
ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।
न दूढ्ये३अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥ ५ ॥ १२ ॥
सुप्रैतुः सूयवसो न पन्था दुर्नियन्तुः परिप्रीतो न मित्रः ।
अनर्वाणो अभि ये चक्षते नोऽपीवृता अपोर्णुवन्तो अस्थुः ॥ ६ ॥
सं यं स्तुभोऽवनयो न यन्ति समुद्रं न स्रवतो रोधचक्राः ।
स विद्वाँ उभयं चष्टे अन्तर्बृहस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥ ७ ॥

उपऽस्तुतिं । नमसः । उत्ऽयतिं । च । श्लोकं । यंसत् । सविताऽइव । प्र । बाहू इति । अस्य । क्रत्वा । अहन्यः । यः । अस्ति । मृगः । न । भीमः । अरक्षसः । तुविष्मान् ॥ ३ ॥ अस्य । श्लोकः । दिवि । ईयते । पृथिव्या । अत्यः । न । यंसत् । यक्षऽभृत् । विऽचेताः । मृगाणां । न । हेतयः । यन्ति । च । इमाः । बृहस्पतेः । अहिऽमायान् । अभि । द्यून् ॥ ४ ॥ ये । त्वा । देव । उस्रिकं । मन्यमानाः । पापाः । भद्रं । उपऽजीवन्ति । पज्राः । न । दुःऽध्ये । अनु । ददासि । वामं । बृहस्पते । चयसे । इत् । पियारुं ॥ ५ ॥ १२ ॥ सुऽप्रैतुः । सुऽयवसः । न । पन्थाः । दुःऽनियन्तुः । परिऽप्रीतः । न । मित्रः । अनर्वाणः । अभि । ये । चक्षते । नः । अपिऽवृताः । अपऽऊर्णुवन्तः । अस्थुः ॥ ६ ॥ सं । यं । स्तुभः । अवनयः । न । यन्ति । समुद्रं । न । स्रवतः । रोधऽचक्राः । सः । विद्वान् । उभयं । चष्टे । अन्तः । बृहस्पतिः । तरः । आपः । च । गृध्रः ॥ ७ ॥

एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान्बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ८ ॥ १३ ॥

॥ १९१ ॥ ऋषि–अगस्त्यः । देवता सूर्यः । छन्द अनुष्टुप् ॥

॥१९१॥ कङ्कतो न कङ्कतोऽथो सतीनकङ्कतः ।
द्वाविति प्लुषी इति न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ १ ॥
अदृष्टान्हन्त्यायत्यथो हन्ति परायती ।
अथो अवघ्नती हन्त्यथो पिनष्टि पिंषती ॥ २ ॥
शरासः कुशरासो दर्भासः सैर्या उत ।
मौञ्जा अदृष्टा वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥ ३ ॥
नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥ ४ ॥
एत उ त्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्करा इव ।
अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥ ५ ॥ १४ ॥

एव । महः । तुविऽजातः । तुविष्मान् । बृहस्पतिः । वृषभः । धायि । देवः । सः । नः । स्तुतः । वीरऽवत् । धातु । गोऽमत् । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ ८ ॥ १३ ॥

कङ्कतः । न । कङ्कतः । अथो इति । सतीनऽकङ्कतः । द्वौ । इति । प्लुषी इति । इति । नि । अदृष्टाः । अलिप्सत ॥ १ ॥ अदृष्टान् । हन्ति । आऽयती । अथो इति । हन्ति । पराऽयती । अथो इति । अवऽघ्नती । हन्ति । अथो इति । पिनष्टि । पिंषती ॥ २ ॥ शरासः । कुऽशरासः । दर्भासः । सैर्याः । उत । मौञ्जाः । अदृष्टाः । वैरिणाः । सर्वे । साकम् । नि । अलिप्सत ॥ ३ ॥ नि । गावः । गोऽस्थे । असदन् । नि । मृगासः । अविक्षत । नि । केतवः । जनानाम् । नि । अदृष्टाः । अलिप्सत ॥ ४ ॥ एते । ऊं इति । त्ये । प्रति । अदृश्रन् । प्रऽदोषम् । तस्कराःऽइव । अदृष्टाः । विश्वऽदृष्टाः । प्रतिऽबुद्धाः । अभूतन ॥ ५ ॥ १४ ॥

द्यौर्वः पिता पृथिवी माता सोमो भ्रातादितिः स्वसा ।

अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥ ६ ॥

ये अंस्या ये अङ्ग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः ।

अदृष्टाः किं चनेह वः सर्वे साकं नि जस्यत ॥ ७ ॥

उत्पुरस्तात्सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।

अदृष्टान्त्सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥ ८ ॥

उदपप्तदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्वन् ।

आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥ ९ ॥

सूर्ये विषमा सजामि दृतिं सुरावतो गृहे । सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १० ॥ १९ ॥

इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् । सो चिन्नु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ ११ ॥

द्यौः । वः । पिता । पृथिवी । माता । सोमः । भ्राता । अदितिः । स्वसा । अदृष्टाः । विश्वऽदृष्टाः । तिष्ठत । इलयत । सु । कं ॥ ६ ॥ ये । अंस्याः । ये । अङ्ग्याः । सूचीकाः । ये । प्रऽकङ्कताः । अदृष्टाः । किं । चन । इह । वः । सर्वे । साकं । नि । जस्यत ॥ ७ ॥ उत् । पुरस्तात् । सूर्यः । एति । विश्वऽदृष्टः । अदृष्टऽहा । अदृष्टान् । सर्वान् । जम्भयन् । सर्वाः । च । यातुऽधान्यः ॥ ८ ॥ उत् । अपप्तत् । असौ । सूर्यः । पुरु । विश्वानि । जूर्वन् । आदित्यः । पर्वतेभ्यः । विश्वऽदृष्टः । अदृष्टऽहा ॥ ९ ॥ सूर्ये । विषं । आ । सजामि । दृतिं । सुराऽवतः । गृहे । सः । चित् । नु । न । मराति । नो इति । वयं । मराम । आरे । अस्य । योजनं । हरिऽस्थाः । मधु । त्वा । मधुला । चकार ॥ १० ॥ १९ ॥ इयत्तिका । शकुन्तिका । सका । जघास । ते । विषं । सो इति । चित् । नु । न । मराति । नो इति । वयं । मराम । आरे । अस्य । योजनं । हरिऽस्थाः । मधु । त्वा । मधुला । चकार ॥ ११ ॥

त्रिः सप्त विष्पुलिङ्गका विषस्य पुष्यमक्षन् ।　　ताश्चिन्नु न मरन्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १२ ॥
नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् ।
सर्वासामग्रभं नामारे अस्य योजनं हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥ १३ ॥
त्रिः सप्त मयूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ।
तास्ते विषं वि जभ्रिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥ १४ ॥
इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनद्म्यश्मना ।
ततो विषं प्र वावृते पराचीरनु संवतः ॥ १५ ॥
कुषुम्भकस्तदब्रवीद्गिरेः प्रवर्तमानकः ।
वृश्चिकस्यारसं विषमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥ १६ ॥ १६ ॥ २४ ॥ १ ॥

त्रिः । सप्त । विष्पुलिंगकाः । विषस्यं । पुष्यं । अक्षन् । ताः । चित् । नु । न । मरंति । नो इति । वयं । मराम । आरे । अस्य । योजनं । हरिऽस्थाः । मधुं । त्वा । मधुला । चकार ॥ १२ ॥ नवानां । नवतीनां । विषस्यं । रोपुंषीणां । सर्वासां । अग्रभं । नामं । आरे । अस्य । योजनं । हरिऽस्थाः । मधुं । त्वा । मधुला । चकार ॥ १३ ॥ त्रिः । सप्त । मयूर्यः । सप्त । स्वसारः । अग्रुवः । ताः । ते । विषं । वि । जभ्रिरे । उदकं । कुंभिनीःऽइव ॥ १४ ॥ इयत्तकः । कुषुंभकः । तकं । भिनद्मि । अश्मना । ततः । विषं । प्र । ववृते । पराचीः । अनु । संऽवतः ॥ १५ ॥ कुषुंभकः । तत् । अब्रवीत् । गिरेः । प्रऽवर्तमानकः । वृश्चिकस्य । अरसं । विषं । अरसं । वृश्चिक । ते । विषं ॥ १६ ॥ १६ ॥ २४ ॥ १ ॥

॥ इति चतुर्विंशोऽनुवाकः । प्रथमं मंडलं समाप्तं ॥

॥ अथ द्वितीयं मण्डलम् ॥

॥ प्रथमोऽनुवाकः ॥

॥ १ ॥ ऋषिः—आङ्गिरसः । देवता—अग्निः । छन्दः—जगती ॥

॥ १ ॥ त्वम॑ग्ने द्युभि॒स्त्वमा॑शुशु॒क्षणि॒स्त्वम॒द्भ्यस्त्वमश्म॑न॒स्परि॑ ।
त्वं वने॑भ्य॒स्त्वमोष॑धीभ्य॒स्त्वं नृ॒णां नृ॑पते जायसे॒ शुचि॑ः ॥ १ ॥
तवा॑ग्ने हो॒त्रं तव॑ पो॒त्रमृ॒त्विय॒ं तव॑ ने॒ष्ट्रं त्वम॒ग्निदृ॑ताय॒तः ।
तव॑ प्रशा॒स्त्रं त्वम॑ध्वरीयसि ब्र॒ह्मा चासि॑ गृ॒हप॑तिश्च नो॒ दमे॑ ॥ २ ॥
त्वम॑ग्न॒ इन्द्रो॑ वृष॒भः स॒ताम॑सि॒ त्वं विष्णु॑रुरुगा॒यो न॑म॒स्य॑ः ।
त्वं ब्र॒ह्मा र॑यि॒विद्ब्र॑ह्मणस्पते॒ त्वं वि॑धर्तः सचसे॒ पुरं॑ध्या ॥ ३ ॥

त्वं । अ॒ग्ने । द्यु॒ऽभिः॑ । त्वं । आ॒ऽशु॒शु॒क्षणि॑ः । त्वं । अ॒त्ऽभ्यः । त्वं । अश्म॑नः । परि॑ । त्वं । वने॑भ्यः । त्वं । ओष॑धीभ्यः । त्वं । नृ॒णां । नृ॒ऽप॒ते॒ । जा॒य॒से॒ । शुचि॑ः ॥ १ ॥ तव॑ । अ॒ग्ने॒ । हो॒त्रं । तव॑ । पो॒त्रं । ऋ॒त्विय॑ं । तव॑ । ने॒ष्ट्रं । त्वं । अ॒ग्नित् । ऋ॒त॒ऽय॒तः । तव॑ । प्र॒ऽशा॒स्त्रं । त्वं । अ॒ध्व॒रि॒ऽय॒सि॒ । ब्र॒ह्मा । च॒ । असि॑ । गृ॒हऽप॑तिः । च॒ । नः॒ । दमे॑ ॥ २ ॥ त्वं । अ॒ग्ने॒ । इंद्रः॑ । वृ॒ष॒भः । स॒तां । अ॒सि॒ । त्वं । विष्णु॑ः । उ॒रु॒ऽगा॒यः । न॒म॒स्य॑ः । त्वं । ब्र॒ह्मा । र॒यि॒ऽवित् । ब्र॒ह्म॒णः॒ । प॒ते॒ । त्वं । विध॑र्त॒रिति॑ विऽध॑र्तः । स॒च॒से॒ । पुरं॑ऽध्या ॥ ३ ॥

त्वम॑ग्ने॒ राजा॒ वरु॑णो धृ॒तव्र॑त॒स्त्वं मि॒त्रो भ॑वसि द॒स्म ईड्यः॑ ।
त्वम॑र्य॒मा सत्प॑ति॒र्यस्य॑ स॒म्भुजं॒ त्वमंशो॑ वि॒दथे॑ देव भाज॒युः ॥ ४ ॥
त्वम॑ग्ने॒ त्वष्टा॑ विध॒ते सु॒वीर्यं॒ तव॒ ग्नावो॑ मित्रमहः सजा॒त्य॑म् ।
त्वमा॑शु॒हेमा॑ ररिषे॒ स्वश्व्यं॒ त्वं न॒रां शर्धो॑ असि पु॒रु॒वसुः॑ ॥ ५ ॥ १७ ॥
त्वम॑ग्ने रु॒द्रो असु॑रो म॒हो दि॒वस्त्वं शर्धो॒ मारु॑तं पृ॒क्ष ई॑शिषे ।
त्वं वातै॑ररु॒णैर्या॑सि शङ्ग॒यस्त्वं पू॒षा वि॑ध॒तः पा॑सि॒ नु त्मना॑ ॥ ६ ॥
त्वम॑ग्ने द्रविणो॒दा अ॑रं॒कृते॒ त्वं दे॒वः स॑वि॒ता र॑त्न॒धा अ॑सि ।
त्वं भगो॑ नृपते॒ वस्व॑ ईशिषे॒ त्वं पा॒युर्दमे॒ यस्तेऽवि॑धत् ॥ ७ ॥

त्वं । अ॒ग्ने॒ । राजा॑ । वरु॑णः । धृ॒तऽव्र॑तः । त्वं । मि॒त्रः । भ॒व॒सि॒ । द॒स्मः । ईड्यः॑ ।
त्वं । अ॒र्य॒मा । सत्ऽप॑तिः । यस्य॑ । स॒म्ऽभुज॑म् । त्वं । अंशः॑ । वि॒दथे॑ । दे॒व॒ ।
भा॒ज॒युः ॥ ४ ॥ त्वं । अ॒ग्ने॒ । त्वष्टा॑ । वि॒ध॒ते । सु॒ऽवीर्य॑म् । तव॑ । ग्नावः॑ । मि॒त्र॒ऽम॒हः॒ ।
स॒ऽजा॒त्य॑म् । त्वं । आ॒शु॒ऽहेमा॑ । र॒रि॒षे॒ । सु॒ऽअश्व्य॑म् । त्वं । न॒राम् । शर्धः॑ । अ॒सि॒ ।
पु॒रु॒ऽवसुः॑ ॥ ५ ॥ १७ ॥ त्वं । अ॒ग्ने॒ । रु॒द्रः । असु॑रः । म॒हः । दि॒वः । त्वं । शर्धः॑ ।
मारु॑तम् । पृ॒क्षः । ई॒शि॒षे॒ । त्वं । वातैः॑ । अ॒रु॒णैः । या॒सि॒ । शं॒ऽग॒यः । त्वं । पू॒षा ।
वि॒ध॒तः । पा॒सि॒ । नु । त्मना॑ ॥ ६ ॥ त्वं । अ॒ग्ने॒ । द्र॒वि॒णः॒ऽदाः । अ॒र॒म्ऽकृते॑ । त्वं ।
दे॒वः । स॒वि॒ता । र॒त्न॒ऽधाः । अ॒सि॒ । त्वं । भगः॑ । नृ॒ऽप॒ते॒ । वस्वः॑ । ई॒शि॒षे॒ । त्वं ।
पा॒युः । दमे॑ । यः । ते॒ । अवि॑धत् ॥ ७ ॥

त्वाम॑ग्ने॒ दम॒ आ वि॒श्पतिं॑ वि॒शस्त्वां राजा॑नं सुवि॒दत्र॑मृञ्जते ।
त्वं विश्वा॑नि स्वनीक पत्यसे॒ त्वं स॒हस्रा॑णि श॒ता द॒श प्रति॑ ॥ ८ ॥
त्वाम॑ग्ने पि॒तर॑मि॒ष्टिभि॒र्नर॒स्त्वां भ्रा॒त्राय॒ शम्या॑ तनू॒रुच॑म् ।
त्वं पु॒त्रो भ॑वसि॒ यस्तेऽवि॑ध॒त्त्वं सखा॑ सु॒शेवः॑ पास्या॒धृषः॑ ॥ ९ ॥
त्वम॑ग्न ऋ॒भुरा॒के न॑म॒स्य॑१॒॑स्त्वं वाज॑स्य क्षु॒मतो॑ रा॒य ई॑शिषे ।
त्वं वि भा॒स्यनु॑ दक्षि दा॒वने॒ त्वं वि॒शिक्षु॑रसि य॒ज्ञमा॒तनिः॑ ॥ १० ॥ १८ ॥
त्वम॑ग्ने॒ अदि॑तिर्देव दा॒शुषे॒ त्वं होत्रा॒ भार॑ती वर्धसे गि॒रा ।
त्वमिळा॑ श॒तहि॑मासि॒ दक्ष॑से॒ त्वं वृ॑त्र॒हा व॑सुपते॒ सर॑स्वती ॥ ११ ॥

त्वां । अ॒ग्ने॒ । दमे॑ । आ । वि॒श्पति॑म् । विशः॑ । त्वाम् । राजा॑नम् । सु॒ऽवि॒दत्र॑म् । ऋ॒ञ्ज॒ते॒ ।
त्वम् । विश्वा॑नि । सु॒ऽअ॒नी॒क॒ । प॒त्य॒से॒ । त्वम् । स॒हस्रा॑णि । श॒ता । द॒श । प्रति॑ ॥ ८ ॥
त्वाम् । अ॒ग्ने॒ । पि॒तर॑म् । इ॒ष्टिऽभिः॑ । नरः॑ । त्वाम् । भ्रा॒त्राय॑ । शम्या॑ । त॒नू॒ऽरुच॑म् । त्वम् ।
पु॒त्रः । भ॒व॒सि॒ । यः । ते॒ । अवि॑धत् । त्वम् । सखा॑ । सु॒ऽशेवः॑ । पा॒सि॒ । आ॒ऽधृषः॑ ॥ ९ ॥
त्वम् । अ॒ग्ने॒ । ऋ॒भुः । आ॒के । न॒म॒स्यः॑ । त्वम् । वाज॑स्य । क्षु॒ऽमतः॑ । रा॒यः । ई॒शि॒षे॒ ।
त्वम् । वि । भा॒सि॒ । अनु॑ । ध॒क्षि॒ । दा॒वने॑ । त्वम् । वि॒ऽशिक्षुः॑ । अ॒सि॒ । य॒ज्ञम् ।
आ॒ऽतनिः॑ ॥ १० ॥ १८ ॥ त्वम् । अ॒ग्ने॒ । अदि॑तिः । दे॒व॒ । दा॒शुषे॑ । त्वम् । होत्रा॑ ।
भार॑ती । व॒र्ध॒से॒ । गि॒रा । त्वम् । इळा॑ । श॒तऽहि॑मा । अ॒सि॒ । दक्ष॑से । त्वम् । वृ॒त्र॒ऽहा ।
व॒सु॒ऽप॒ते॒ । सर॑स्वती ॥ ११ ॥

त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्तव स्पार्हे वर्ण आ सन्दृशि श्रियः ।
त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः ॥ १२ ॥
त्वामग्न आदित्यास आस्यं त्वां जिह्वां शुचयश्चक्रिरे कवे ।
त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥ १३ ॥
त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञिषे शुचिः ॥ १४ ॥
त्वं तान्त्सं च प्रति चासि मज्मनाग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे ।
पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥ १५ ॥

त्वं । अग्ने । सुऽभृतः । उत्ऽतमं । वयः । तव । स्पार्हे । वर्णे । आ । संऽदृशि । श्रियः । त्वं । वाजः । प्रऽतरणः । बृहन् । असि । त्वं । रयिः । बहुलः । विश्वतः । पृथुः ॥ १२ ॥ त्वां । अग्ने । आदित्यासः । आस्यं । त्वां । जिह्वां । शुचयः । चक्रिरे । कवे । त्वां । रातिऽसाचः । अध्वरेषु । सश्चिरे । त्वे इति । देवाः । हविः । अदंति । आऽहुतं ॥ १३ ॥ त्वे इति । अग्ने । विश्वे । अमृतासः । अद्रुहः । आसा । देवाः । हविः । अदंति । आऽहुतं । त्वया । मर्तासः । स्वदंते । आऽसुतिं । त्वं । गर्भः । वीरुधां । जज्ञिषे । शुचिः ॥ १४ ॥ त्वं । तान् । सं । च । प्रति । च । असि । मज्मना । अग्ने । सुऽजात । प्र । च । देव । रिच्यसे । पृक्षः । यत् । अत्र । महिना । वि । ते । भुवत् । अनु । द्यावापृथिवी इति । रोदसी इति । उभे इति ॥ १५ ॥

ये स्तोतृभ्यो गोअंग्रामश्वंपेशसमग्ने रातिमुंपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वंदेम विदथे सुवीराः ॥ १६ ॥ १९ ॥

॥ २ ॥ ऋषिः—गृत्समदः । देवता—अग्निः । छन्दः—जगती ॥

॥ २ ॥ यज्ञेनं वर्धत जातवेदसमग्निं यंजध्वं हविषा तनां गिरा ।
समिधानं सुंप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ॥ १ ॥
अभि त्वा नक्तीरुषसों ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिव इवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपों भासि पुरुवार संयतः ॥ २ ॥
तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्यैरिरे ।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥ ३ ॥

ये । स्तोतृऽभ्यः । गोऽअंग्राम् । अश्वंऽपेशसम् । अग्ने । रातिम् । उपऽसृजन्ति । सूरयः । अस्मान् । च । तान् । च । प्र । हि । नेषि । वस्यः । आ । बृहत् । वदेम । विदथे । सुऽवीराः ॥ १६ ॥ १९ ॥

यज्ञेन । वर्धत । जातऽवेदसम् । अग्निम् । यजध्वम् । हविषा । तना । गिरा । सम्ऽइधानम् । सुऽप्रयसम् । स्वःऽनरम् । द्युक्षम् । होतारम् । वृजनेषु । धूःऽसदम् ॥ १ ॥ अभि । त्वा । नक्तीः । उषसः । ववाशिरे । अग्ने । वत्सम् । न । स्वसरेषु । धेनवः । दिवःऽइव । इत् । अरतिः । मानुषा । युगा । आ । क्षपः । भासि । पुरुऽवार । सम्ऽयतः ॥ २ ॥ तम् । देवाः । बुध्ने । रजसः । सुऽदंससम् । दिवःपृथिव्योः । अरतिम् । नि । एरिरे । रथंऽइव । वेद्यम् । शुक्रऽशोचिषम् । अग्निम् । मित्रम् । न । क्षितिषु । प्रऽशंस्यम् ॥ ३ ॥

तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः ।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ॥ ४ ॥
स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋञ्जते गिरा ।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद्द्यौर्न स्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु ॥ ५ ॥ २० ॥
स नो रेवत्समिधानः स्वस्तये सन्ददस्वान्रयिमस्मासु दीदिहि ।
आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देव वीतये ॥ ६ ॥
दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि ।
प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतः ॥ ७ ॥

तं । उक्षमाणं । रजसि । स्वे । आ । दमे । चन्द्रम्ऽइव । सुऽरुचं । ह्वारे । आ । दधुः ।
पृश्न्याः । पतरं । चितयन्तं । अक्षऽभिः । पाथः । न । पायुं । जनसी इति । उभे इति ।
अनु ॥ ४ ॥ सः । होता । विश्वं । परि । भूतु । अध्वरं । तं । ऊं इति । हव्यैः ।
मनुषः । ऋञ्जते । गिरा । हिरिऽशिप्रः । वृधसानासु । जर्भुरत् । द्यौः । न । स्तृऽभिः ।
चितयत् । रोदसी इति । अनु ॥ ५ ॥ २० ॥ सः । नः । रेवत् । सम्ऽइधानः ।
स्वस्तये । सम्ऽददस्वान् । रयिं । अस्मासु । दीदिहि । आ । नः । कृणुष्व । सुविताय ।
रोदसी इति । अग्ने । हव्या । मनुषः । देव । वीतये ॥ ६ ॥ दाः । नः । अग्ने ।
बृहतः । दाः । सहस्रिणः । दुरः । न । वाजं । श्रुत्यै । अप । वृधि । प्राची इति ।
द्यावापृथिवी इति । ब्रह्मणा । कृधि । स्वः । न । शुक्रं । उषसः । वि । दिद्युतः ॥ ७ ॥

स ईधान उषसो राम्या अनु स्वर्ण दीदेदरुषेण भानुना ।
होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे ॥ ८ ॥
एवा नो अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष्पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा ।
दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुरूपमिषणि ॥ ९ ॥
वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति ।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम् ॥ १० ॥
स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त्सुजाता इषयन्त सूरयः ।
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥ ११ ॥

सः । इधानः । उषसः । राम्याः । अनु । स्वः । न । दीदेत् । अरुषेण । भानुना । होत्राभिः । अग्निः । मनुषः । सुऽअध्वरः । राजा । विशाम् । अतिथिः । चारुः । आयवे ॥ ८ ॥ एव । नः । अग्ने । अमृतेषु । पूर्व्य । धीः । पीपाय । बृहत्ऽदिवेषु । मानुषा । दुहाना । धेनुः । वृजनेषु । कारवे । त्मना । शतिनम् । पुरुऽरूपम् । इषणि ॥ ९ ॥ वयम् । अग्ने । अर्वता । वा । सुऽवीर्यम् । ब्रह्मणा । वा । चितयेम । जनान् । अति । अस्माकम् । द्युम्नम् । अधि । पञ्च । कृष्टिषु । उच्चा । स्वः । न । शुशुचीत । दुस्तरम् ॥ १० ॥ सः । नः । बोधि । सहस्य । प्रऽशंस्यः । यस्मिन् । सुऽजाताः । इषयन्त । सूरयः । यम् । अग्ने । यज्ञम् । उपऽयन्ति । वाजिनः । नित्ये । तोके । दीदिऽवांसम् । स्वे । दमे ॥ ११ ॥

उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि ।
वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥ १२ ॥
ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १३ ॥ २१ ॥

॥ ३ ॥ ऋषिः–गृत्समदः । देवता–अग्नयः । छन्दः–त्रिष्टुप् ॥

॥ ३ ॥ समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वानि भुवनान्यस्थात् ।
होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥ १ ॥
नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन् तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः ।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥ २ ॥

उभयासः । जातऽवेदः । स्याम । ते । स्तोतारः । अग्ने । सूरयः । च । शर्मणि । वस्वः । रायः । पुरुऽचन्द्रस्य । भूयसः । प्रजाऽवतः । सुऽअपत्यस्य । शग्धि । नः ॥ १२ ॥ ये । स्तोतृऽभ्यः । गोऽअग्राम् । अश्वऽपेशसम् । अग्ने । रातिम् । उपऽसृजन्ति । सूरयः । अस्मान् । च । तान् । च । प्र । हि । नेषि । वस्यः । आ । बृहत् । वदेम । विदथे । सुऽवीराः ॥ १३ ॥ २१ ॥

सम्ऽइद्धः । अग्निः । निऽहितः । पृथिव्याम् । प्रत्यङ् । विश्वानि । भुवनानि । अस्थात् । होता । पावकः । प्रऽदिवः । सुऽमेधाः । देवः । देवान् । यजतु । अग्निः । अर्हन् ॥ १ ॥ नराशंसः । प्रति । धामानि । अञ्जन् । तिस्रः । दिवः । प्रति । मह्ना । सुऽअर्चिः । घृतऽप्रुषा । मनसा । हव्यम् । उन्दन् । मूर्धन् । यज्ञस्य । सम् । अनक्तु । देवान् ॥ २ ॥

ईळितो अग्ने मनसा नो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य ।
स आ वह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥ ३ ॥
देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥ ४ ॥
वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥ ५ ॥ २२ ॥
साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते ।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥ ६ ॥
दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा ।
देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥ ७ ॥

ईळितः । अग्ने । मनसा । नः । अर्हन् । देवान् । यक्षि । मानुषात् । पूर्वः । अद्य । सः । आ । वह । मरुतां । शर्धः । अच्युतं । इंद्रं । नरः । बर्हिऽसदं । यजध्वं ॥ ३ ॥ देव । बर्हिः । वर्धमानं । सुऽवीरं । स्तीर्णं । राये । सुऽभरं । वेदी इति । अस्यां । घृतेन । अक्तं । वसवः । सीदत । इदं । विश्वे । देवाः । आदित्याः । यज्ञियासः ॥ ४ ॥ वि । श्रयंतां । उर्विया । हूयमानाः । द्वारः । देवीः । सुप्रऽअयनाः । नमःऽभिः । व्यचस्वतीः । वि । प्रथंतां । अजुर्याः । वर्णं । पुनानाः । यशसं । सुऽवीरं ॥ ५ ॥ २२ ॥ साधु । अपांसि । सनता । नः । उक्षिते इति । उषसानक्ता । वय्याऽइव । रण्विते इति । तंतुं । ततं । संवयंती इति संऽवयंती । समीची इति संऽईची । यज्ञस्य । पेशः । सुदुघे इति सुऽदुघे । पयस्वती इति ॥ ६ ॥ दैव्या । होतारा । प्रथमा । विदुःऽतरा । ऋजु । यक्षतः । सं । ऋचा । वपुःऽतरा । देवान् । यजंतौ । ऋतुऽथा । सं । अंजतः । नाभा । पृथिव्याः । अधि । सानुषु । त्रिषु ॥७॥

सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा देवी भारती विश्वतूर्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥ ८ ॥
पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥ ९ ॥
वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः ।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥ १० ॥
घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥ ११ ॥ २३ ॥

सरस्वती । साधयंती । धियं । नः । इळा । देवी । भारती । विश्वऽतूर्तिः । तिस्रः । देवीः । स्वधया । बर्हिः । आ । इदं । अच्छिद्रं । पांतु । शरणं । निऽसद्य ॥ ८ ॥ पिशंगऽरूपः । सुऽभरः । वयःऽधाः । श्रुष्टी । वीरः । जायते । देवऽकामः । प्रऽजां । त्वष्टा । वि । स्यतु । नाभिं । अस्मे इति । अथ । देवानां । अपि । एतु । पाथः ॥ ९ ॥ वनस्पतिः । अवऽसृजन् । उप । स्थात् । अग्निः । हविः । सूदयाति । प्र । धीभिः । त्रिधा । संऽअक्तं । नयतु । प्रऽजानन् । देवेभ्यः । दैव्यः । शमिता । उप । हव्यं ॥ १० ॥ घृतं । मिमिक्षे । घृतं । अस्य । योनिः । घृते । श्रितः । घृतं । ऊं इति । अस्य । धाम । अनुऽस्वधं । आ । वह । मादयस्व । स्वाहाऽकृतं । वृषभ । वक्षि । हव्यं ॥ ११ ॥ २३ ॥

॥ ४ ॥ ऋषिः–सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता–अग्निः । छन्दः–त्रिष्टुप् ॥

॥ ४ ॥ हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।
मित्र इव यो दिधिषाय्यो भूद्देव आदेवे जने जातवेदाः ॥ १ ॥
इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वा३योः ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥ २ ॥
अग्निं देवासो मानुषीषु विक्षु प्रियं धुः क्षेष्यन्तो न मित्रम् ।
स दीदयदुशतीरूर्म्या आ दक्षाय्यो यो दास्वते दम आ ॥ ३ ॥
अस्य रण्वा स्वस्येव पुष्टिः संदृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥ ४ ॥

हुवे । वः । सुऽद्योत्मानं । सुऽवृक्तिं । विशां । अग्निं । अतिथिं । सुऽप्रयसं ।
मित्रःऽइव । यः । दिधिषाय्यः । भूत् । देवः । आऽदेवे । जने । जातऽवेदाः ॥ १ ॥
इमं । विधन्तः । अपां । सधऽस्थे । द्विता । अदधुः । भृगवः । विक्षु । आयोः ।
एषः । विश्वानि । अभि । अस्तु । भूम । देवानां । अग्निः । अरतिः ।
जीरऽअश्वः ॥ २ ॥ अग्निं । देवासः । मानुषीषु । विक्षु । प्रियं । धुः । क्षेष्यन्तः ।
न । मित्रं । सः । दीदयत् । उशतीः । ऊर्म्याः । आ । दक्षाय्यः । यः । दास्वते ।
दमे । आ ॥ ३ ॥ अस्य । रण्वा । स्वस्यऽइव । पुष्टिः । संऽदृष्टिः । अस्य ।
हियानस्य । धक्षोः । वि । यः । भरिभ्रत् । ओषधीषु । जिह्वां । अत्यः । न । रथ्यः ।
दोधवीति । वारान् ॥ ४ ॥

आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम् ।
स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वां यो मुहुरा युवा भूत् ॥ ५ ॥ २४ ॥
आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।
कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥ ६ ॥
स यो व्यस्थादभि दक्षदुर्वीं पशुर्नैति स्वयुरगोपाः ।
अग्निः शोचिष्माँ अतसान्युष्णन्कृष्णव्यथिरस्वदयन्न भूम ॥ ७ ॥
नू ते पूर्वस्यावसो अधीतौ तृतीये विदथे मन्म शंसि ।
अस्मे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तं क्षुमन्तं वाजं स्वपत्यं रयिं दाः ॥ ८ ॥
त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत्सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥ ९ ॥ २५ ॥

आ । यत् । मे । अभ्वं । वनदः । पनंत । उशिक्ऽभ्यः । न । अमिमीत । वर्ण ।
सः । चित्रेण । चिकिते । रंऽसु । भासा । जुजुर्वान् । यः । मुहुः । आ । युवा ।
भूत् ॥ ५ ॥ २४ ॥ आ । यः । वना । ततृषाणः । न । भाति । वाः । न । पथा ।
रथ्याऽइव । स्वानीत् । कृष्णऽअध्वा । तपुः । रण्वः । चिकेत । द्यौःऽइव । स्मयमानः ।
नभःऽभिः ॥ ६ ॥ सः । यः । वि । अस्थात् । अभि । धक्षत् । उर्वी । पशुः । न ।
एति । स्वऽयुः । अगोपाः । अग्निः । शोचिष्मान् । अतसानि । उष्णन् ।
कृष्णऽव्यथिः । अस्वदयत् । न । भूम ॥ ७ ॥ नु । ते । पूर्वस्य । अवसः ।
अधिऽइतौ । तृतीये । विदथे । मन्म । शंसि । अस्मे इति । अग्ने । संयत्ऽवीरं ।
बृहंतं । क्षुऽमंतं । वाजं । सुऽअपत्यं । रयिं । दाः ॥ ८ ॥ त्वया । यथा ।
गृत्सऽमदासः । अग्ने । गुहा । वन्वंतः । उपरान् । अभि । स्युरिति स्युः । सुऽवीराः ।
अभिमातिऽसहः । स्मत् । सूरिऽभ्यः । गृणते । तत् । वयः । धाः ॥ ९ ॥ २५ ॥

॥ ५ ॥ ऋषिः—सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता—अग्निः । छन्दः—अनुष्टुप् ॥

॥ ५ ॥ होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसुं शकेम वाजिनो यमम् ॥ १ ॥

आ यस्मिन्त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि ।
मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥ २ ॥

दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्माणि वेरु तत् ।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥ ३ ॥

साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वया इवानु रोहते ॥ ४ ॥

ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।
कुवित्तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ॥ ५ ॥

यदी मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित ।
तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥ ६ ॥

होता । अजनिष्ट । चेतनः । पिता । पितृऽभ्यः । ऊतये । प्रऽयक्षन् । जेन्यं । वसु । शकेम । वाजिनः । यमं ॥ १ ॥ आ । यस्मिन् । सप्त । रश्मयः । तताः । यज्ञस्य । नेतरि । मनुष्वत् । दैव्यं । अष्टमं । पोता । विश्वं । तत् । इन्वति ॥ २ ॥ दधन्वे । वा । यत् । ईं । अनु । वोचत् । ब्रह्माणि । वेः । ऊं इति । तत् । परि । विश्वानि । काव्या । नेमिः । चक्रंऽइव । अभवत् ॥ ३ ॥ साकं । हि । शुचिना । शुचिः । प्रऽशास्ता । क्रतुना । अजनि । विद्वान् । अस्य । व्रता । ध्रुवा । वयाःऽइव । अनु । रोहते ॥ ४ ॥ ताः । अस्य । वर्णं । आयुवः । नेष्टुः । सचंत । धेनवः । कुवित् । तिसृऽभ्यः । आ । वरं । स्वसारः । याः । इदं । ययुः ॥ ५ ॥ यदि । मातुः । उप । स्वसा । घृतं । भरंती । अस्थित । तासां । अध्वर्युः । आऽगतौ । यवः । वृष्टीऽइव । मोदते ॥ ६ ॥

स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम् ।
स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम् ॥ ७ ॥
यथा विद्वाँ अरं करद्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।
अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ॥ ८ ॥ २६ ॥

॥ ६ ॥ ऋषिः-सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता-अग्निः । छन्दः-गायत्री ॥

॥६॥ इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः । इमा ऊ षु श्रुधी गिरः ॥१॥
अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन सुजात ॥ २ ॥
तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपर्येम सपर्यवः ॥ ३ ॥
स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद्द्वेषांसि ॥ ४ ॥
स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् । स नः सहस्रिणीरिषः ॥५॥

स्वः । स्वाय । धायसे । कृणुता । ऋत्विक् । ऋत्विजं । स्तोमं । यज्ञं । च । आत् । अरं । वनेम । ररिम । वयं ॥ ७ ॥ यथा । विद्वान् । अरं । करत् । विश्वेभ्यः । यजतेभ्यः । अयं । अग्ने । त्वे इति । अपि । यं । यज्ञं । चकृम । वयं ॥ ८ ॥ २६ ॥

इमां । मे । अग्ने । संऽइधं । इमां । उपऽसदं । वनेरिति वनेः । इमाः । ऊं इति । सु । श्रुधि । गिरः ॥ १ ॥ अया । ते । अग्ने । विधेम । ऊर्जः । नपात् । अश्वंऽइष्टे । एना । सुऽउक्तेन । सुऽजात ॥ २ ॥ तं । त्वा । गीःऽभिः । गिर्वणसं । द्रविणस्युं । द्रविणःऽदः । सपर्येम । सपर्यवः ॥ ३ ॥ सः । बोधि । सूरिः । मघऽवा । वसुऽपते । वसुऽदावन् । युयोधि । अस्मत् । द्वेषांसि ॥ ४ ॥ सः । नः । वृष्टिं । दिवः । परि । सः । नः । वाजं । अनर्वाणं । सः । नः । सहस्रिणीः । इषः ॥ ५ ॥

ईळानायावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरा गहि ॥ ६ ॥
अन्तर्ह्यग्न ईयसे विद्वाञ्जन्मोभया कवे । दूतो जन्येव मित्र्यः ॥ ७ ॥
स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक् ।
आ चास्मिन्त्सत्सि बर्हिषि ॥ ८ ॥ २७ ॥

॥ ७ ॥ ऋषिः-सोमाहुतिर्भार्गवः । देवता-अग्निः । छन्दः-गायत्री ॥

॥ ७ ॥ श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्ने द्युमन्तमा भर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥१॥
मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्षि तस्या उत द्विषः ॥ २ ॥
विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव । अति गाहेमहि द्विषः ॥ ३ ॥
शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥ ४ ॥
त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥ ५ ॥

ईळानाय । अवस्यवे । यविष्ठ । दूत । नः । गिरा । यजिष्ठ । होतः । आ । गहि ॥ ६ ॥ अंतः । हि । अग्ने । ईयसे । विद्वान् । जन्म । उभया । कवे । दूतः । जन्याऽइव । मित्र्यः ॥ ७ ॥ सः । विद्वान् । आ । च । पिप्रयः । यक्षि । चिकित्वः । आनुषक् । आ । च । अस्मिन् । सत्सि । बर्हिषि ॥ ८ ॥ २७ ॥

श्रेष्ठं । यविष्ठ । भारत । अग्ने । द्युऽमंतं । आ । भर । वसो इति । पुरुऽस्पृहं । रयिं ॥ १ ॥ मा । नः । अरातिः । ईशत । देवस्य । मर्त्यस्य । च । पर्षि । तस्याः । उत । द्विषः ॥ २ ॥ विश्वाः । उत । त्वया । वयं । धाराः । उदन्याःऽइव । अति । गाहेमहि । द्विषः ॥ ३ ॥ शुचिः । पावक । वंद्यः । अग्ने । बृहत् । वि । रोचसे । त्वं । घृतेभिः । आऽहुतः ॥ ४ ॥ त्वं । नः । असि । भारत । अग्ने । वशाभिः । उक्षऽभिः । अष्टाऽपदीभिः । आऽहुतः ॥ ५ ॥

द्रुअन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥ ६ ॥ २८ ॥

॥ ८ ॥ ऋषिः—गृत्समदः । देवता—अग्निः । छन्दः—गायत्री ॥

॥८॥ वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुप स्तुहि । यशस्तमस्य मीळ्हुषः ॥१॥
यः सुनीथो ददाशुषेऽजुर्यो जरयन्नरिम् । चारुप्रतीक आहुतः ॥ २ ॥
य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीयते ॥ ३ ॥
आ यः स्वर्ण भानुना चित्रो विभात्यर्चिषा । अञ्जानो अजरैरभि ॥ ४ ॥
अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः । विश्वा अधि श्रियो दधे ॥ ५ ॥
अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।
अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यतः ॥ ६ ॥ २९ ॥ ५ ॥

द्रुऽअन्नः । सर्पिःऽआसुतिः । प्रत्नः । होता । वरेण्यः । सहसः । पुत्रः । अद्भुतः ॥ ६ ॥ २८ ॥

वाजयन्ऽइव । नु । रथान् । योगान् । अग्नेः । उप । स्तुहि । यशःऽतमस्य । मीळ्हुषः ॥ १ ॥ यः । सुऽनीथः । ददाशुषे । अजुर्यः । जरयन् । अरिं । चारुऽप्रतीकः । आऽहुतः ॥ २ ॥ यः । ऊं इति । श्रिया । दमेषु । आ । दोषा । उषसि । प्रऽशस्यते । यस्य । व्रतं । न । मीयते ॥ ३ ॥ आ । यः । स्वः । न । भानुना । चित्रः । विऽभाति । अर्चिषा । अंजानः । अजरैः । अभि ॥ ४ ॥ अत्रिं । अनु । स्वऽराज्यं । अग्निं । उक्थानि । वावृधुः । विश्वाः । अधि । श्रियः । दधे ॥५॥ अग्नेः । इंद्रस्य । सोमस्य । देवानां । ऊतिऽभिः । वयं । अरिष्यंतः । सचेमहि । अभि । स्याम । पृतन्यतः ॥ ६ ॥ २९ ॥ ५ ॥

॥ इति द्वितीयाष्टके पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अध्याय ५.

सूक्त १८४.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता-अश्विन ॥

हे सत्य-स्वरूप अश्वीदेव, आपको हवि अर्पण करनेवाला (ऋत्विज यहां आपके सामने खड़ा है)। आप बड़े प्रसिद्ध हैं। हम आपके भक्त हैं; इस लिये आज, कल और सदाके लिये उषाका उदय होते ही हम स्तोत्रोंसे आपका स्वागत करते हैं। हे आकाशमें प्रकाशित होनेवाले देव, आप चाहे जहां रहें; हम आपकी उपासना करते हैं। दान देनेवाले यजमानके लिये हम (आपको हवि अर्पण करते हैं)। १

हे वीर्यवान अश्वीदेव, हमारे यज्ञमें आप आनन्दित हूजिये। और हम जैसे भक्तोंके प्रेमकी ओर आप ध्यान दीजिये। दान न देनेवाले कञ्जूस और दुष्ट मनुष्योंका आप नाश कीजिये। हे पराक्रमी अश्वीदेव, अच्छे अच्छे स्तोत्रोंसे हम आपकी उपासना करते हैं। आप उसका स्वीकार कीजिये। हमारी उपासनाका उद्देश्यभी आप अच्छी तरह जानते हैं। इस लिये हमारी प्रार्थनाकी ओर ध्यान देकर आप उसको सुनिये। २

हे सब लोगोंका पालन करनेवाले अश्वीदेव, सूर्यादेवीके विवाहको जानेके लिये भक्तलोग बाणकी तरह वेगसे चलनेवाले अश्वीदेवोंकी स्तुति गाते हैं। हे अश्वीदेव, आपके प्रसिद्ध और बड़े अश्व अन्तरिक्षमें प्रकट होते हैं। सामर्थ्यवान वरुणके पुराने अश्वोंकी तरह आपके अश्व भी प्रशंसा करने योग्य हैं। ३

हे मधुर रसका पान करनेवाले देव, आप अपना वर्णन करने योग्य प्रसाद हमें अर्पण कीजिये। आप अपने माननीय कवियोंके स्तोत्रोंका प्रभाव प्रकट कीजिये। हे उदार देव, पराक्रम और बल प्राप्त होनेके लिये आपके उपासक लोग आपकी स्तुति सुनते हैं और आपकी स्तुति गानेमें मग्न होते है। ४

---

१ हे नासत्यौ, अद्य वह्निः तौ वाम् अद्य उच्छन्त्याम् उषसि तौ (वाम्) अपरं च उक्थैः हुवेम। हे दिवः नपातौ, कुहचित् सन्तौ (वाम्, वयं) अर्यः सुदास्तराय (यजमानाय) हुवेम।

२ हे वृषणा, अस्मे (अध्वरे) सु मादयेथाम्, (प्रेम्णः) ऊर्म्यां मदन्ता च पणीन् उद्धतम्। हे नरा, अच्छोक्तिभिः शृणु, मतीनाम् च चिकितारा (युयम्) कर्णैः मे (इदं) श्रुतम्।

३ हे पूषन् इषुकृतेव (सन्तौ) नासत्या देवा सूर्यायाः श्रिये वहतुम् (एतौ भक्ताः स्तुवन्ति), हे अश्विना वाम् अप्सुजाता ककुहाः भूरेः वरुणस्य जूर्णा गृणाइव वच्यन्ते।

४ हे माध्वी, सा वां रातिः अस्मे अस्तु, आन्यस्य कारोः स्तोमं हिनोत। हे सुदानू, यत् सुवीरायेव (सर्वे) वर्पणयः वाम् (यजमानाः) श्रवस्या अनुमदन्ति।

हे उदार अश्विदेव, मानपुत्रोंने पवित्र अन्तःकरणसे आपके लिये आपका स्तोत्र गाया है। हे नासत्य, हमारे पोतोंका, हमारे पुत्रोंका, और हमारा कल्याण करनेके लिये आप हमारे घरमें आइये और अगस्त्य ऋषिपरभी सन्तुष्ट होकर आप कृपा कीजिये। ५

हे अश्विदेव, आपकी कृपासे (अज्ञानरूपी) अन्धःकारके परे हम जा सके। क्यों कि, हे अश्विदेव, हमने अपने मुखसे आपका स्तोत्र गाया है। आप जैसे देवोंको जो मार्ग ठीक ठीक विदित है उस मार्गसे आप हमारी ओर आइये। इस तरह आपका सहारा हमें प्राप्त होगा और शीघ्रतासे हमारी इच्छा पूरी करनेवाला हमारा उत्साह भी बढ़ेगा। ६ (१)

सूक्त १८५.

॥ ऋषि-अगस्त्य । देवता द्यावापृथिवी ॥

हे ज्ञानवान् पुरुष, क्या यह बात कोई जानता होगा कि (द्यु और पृथिवी) इन दोनोंमेंसे किसका जन्म पहिले हुआ और इन दोनोंका जन्म किस तरह हुआ ? इन्होंने (द्यावा पृथिवीने) सब विश्वको धारण किया है। दिन और रातकी जोड़ी चक्रकी तरह सदा घूमती रहती है। १

मनुष्यकी तरह द्यावापृथिवी पैरोंसे नहीं चलती। तथापि पैरोंसे चलनेवाले हजारों प्राणियोंको आप दोनों धारण करती हैं। जिस तरह अपनी पुत्र अपनी मातापिताकी गोदमें बड़े प्रेमसे खेलता कूदता है उसी तरह, हे द्यावापृथिवी, हम जैसे सब प्राणियोंको अपनी गोदमें लीजिये और भयंकर सङ्कटसे हमारी रक्षा कीजिये। २

---

५ हे मघवाना अश्विना, एषवाम् स्तोमः मानेभिः सुवृक्ति अकारि। नासत्या, तनयाय त्मने च वर्तिः यातम्, अगस्त्ये च मदन्ता। (५)

६ अस्य तमसः पारम् अतारिष्म। अश्विना एष स्तोमः वाम् प्रति अधायि। देवयानैः पथिभिः इह आ यातम् (येन) इषं जीरदानुं वृजनम् विद्याम।

१ कवयः, अयोः कतरा पूर्वा कतरा परा, कथा जाते (इति) कः वि वेद। यत् ह विश्वं नाम त्मना बिभृतः, (येन) अहनी चक्रियेव वि वर्तेते।

२ (यदि) द्वे अपदी (सत्यौ पदन्यासम्) अचरन्ती, चरन्तम् पद्वन्तं भूरिं गर्भम् दधाते। नित्यं सूनुं पित्रोः उपस्थे न, हे द्यावापृथिवी नः अभ्वात् रक्षतं।

अदिति (ईश्वररूपी अनन्त शक्ति) का दान (आपके आयुधकी तरह) निष्कलंक, पवित्र चिर और दिव्यतेजोमय है। वह दान प्राप्त होनेके लिये मैं आपको हवि अर्पण करता हूं और नम्रतासे आपकी प्रार्थना करता हूं। हे अन्तरिक्षमें रहनेवाले देव, आपके भक्तोंपर ईश्वरकी कृपा होवे और भयंकर संकटसे आप भक्तोंकी रक्षा करें। ३

हे द्यावा पृथिवी, आपको कोई भी कष्ट नहीं दे सकता है। आप सब देवताओंके मातापिता हैं। आप अपने भक्तोंपर कृपा करती हैं और उनका पालन करती हैं। इस लिये यह बात हमारे लिये उचित है कि आपकी आज्ञाके अनुसार हम चलें। हे द्यावा पृथिवी, आप रातों रात दिन बारीबारीसे देवोंके साथ रहती है। इस लिये भयंकर संकटसे आप हमारी रक्षा कीजिये। ४

हे द्यावा पृथिवी, आप दोनों सदा साथ रहती हैं। आप दोनों सदा युवा अवस्थामें रहती हैं। आप दोनोंका स्वरूप इतना मिलता जुलता है कि आप दोनों नातेदार अथवा बहिनकीसी मालूम होती हैं। मातापिताकी गोदमें खेलनेवाले और सब भुवनोंके बीचमें रहनेवाले (सर्यको) आप बड़े प्रेमसे चूमा लेती हैं। इस लिये, द्यावा पृथिवी, भयंकर संकटसे आप हमारी रक्षा कीजिये। ५ (२)

हे द्यावा पृथिवी, आपका स्वरूप विस्तीर्ण है। सब देवोंका अधिष्ठान आप ही हैं; और सब देवोंपर आप प्रेम करते हैं। सब देवोंकी माता आपही हैं। इस लिये यज्ञरूपी सत्यमार्गसे मैं आपकी प्रार्थना करता हूं। आपका स्वरूप मोहित करनेवाला है। भक्तोंके लिये आप अपने पास अमृत रखते हैं। इस लिये आप भयंकर संकटसे हमारी रक्षा कीजिये। ६

---

३ अदितेः अनेहः स्वर्वत् अवधं नमस्वत् दात्रं हुवे। तत् हे रोदसी जरित्रे जनयतम् हे द्यावापृथिवी नः अभ्वात् रक्षतम्।

४ अतप्यमाने अवसा अवन्ती रोदसी देवपुत्रे अनुष्याम उभे (युवां) अ [illegible] अह्नाम् उभयेभिः देवानाम् (मध्ये स्याम)। तत् हे द्यावापृथिवी नः अभ्वात् रक्षतम्।

५ (युवां) संगच्छमाने, युवती, समन्ते, स्वसारा, जामी च (स्थः), पितुरुपस्थे भुवनस्य नाभिम् अभि जिघ्रन्ती हे द्यावापृथिवी युवाम् अभ्वात् नः रक्षतम्।

६ उर्वी सद्मनी बृहती अवसा च देवानां जनित्री ऋतेन हुवे। ये (युवां) सुप्रतीके अमृतं दधाते, ते हे द्यावापृथिवी युवां नः अभ्वात् रक्षतम्।

हे पृथिवी, आपका स्वरूप विस्तीर्ण है। आपका (शरीर) विशाल और असीम है। इस लिये यज्ञके द्वारा आप जैसे देवताओंकी बड़ी नम्रतासे मैं प्रार्थना करता हूं। आप सहज रीतिसे यशका लाभ करा सकते हैं। इस लिये भयंकर संकटसे आप हमारी रक्षा कीजिये। ७

यदि देवोंका, मित्रोंका अथवा अपने यजमानका हमने द्वेष किया हो तो हमारे ध्यानमें गाये हुए स्तोत्रोंके द्वारा उस पापका नाश होवे। हे द्यावा पृथिवी, भयंकर संकटसे आप हमारी रक्षा कीजिये। ८

हे द्यावा पृथिवी, आप स्तुति करने योग्य हैं। आप मनुष्यजातिका लाभ करनेवाले हैं। आप हमारी रक्षा कीजिये। हमारे काममें आप सदा सहायता देवें और हमपर आपकी कृपा सदा बनी रहे। हम आपके भक्त हैं; इस लिये आपके सत्य स्वरूपको हम समझें और हमें आनन्द होवे। हमारे दानी यजमानका लाभ करानेके लिये हम अपनी प्रार्थनाके द्वारा आपका मन आकर्षित करते हैं। ९

हे द्यावा पृथिवी, आपहीकी कृपासे हमें बुद्धिका लाभ होता है। सबसे पहिले सत्यार्थसे भरा हुआ हमारा स्तोत्र आप शान्त रीतिसे सुनिये। आपका स्तोत्र गानेसे हमारे पापोंका और दुःखोंका नाश होता है। आप हमारी रक्षा कीजिये। आप हमारे माबाप हैं; इस लिये आपकी कृपा सदा हमपर बनी रहे; उससे हमारी रक्षा होवे। १०

हे द्यावा पृथिवी आपकी प्रार्थना मैंने की है। इस लिये वह मेरी प्रार्थना सफल होवे। [देव]ोंकी अपेक्षा हमपर आप अधिक प्रेम कीजिये हमारी प्रार्थना सफल होवे। आपकी कृपासे हमारा उत्साह भी अधिक बढ़ेगा। ११ (३)

---

७ ऊर्वी पृथ्वी बहुले दूरे अन्ते (वाम्) अस्मिन् यज्ञे नमसा उपब्रुवे। ये (युवां) सुभगे सुप्रतूर्ती (सर्वान्) दधाते ते, द्यावापृथिवी युवां अभ्वात् नः रक्षत।

८ यत् कश्चित् आगः देवान्, सखायं वा सदमित् जास्पतिं वा चकृम, एषां इयं धीः अवयान भूयाः। तत् हे द्यावापृथिवी अभ्वात् नः रक्षत।

९ शंसा, नर्या एते उभा माम् अविष्टाम, उभे ऊती अवसा च माम् सचेतां। हे देवाः (वयं) अर्यः [इ]षा भूरि चित् सदन्तः (वाम्) सुदास्तराय इषयेम।

१० (तयोः एवअवसा) सुमेधाः तत् (इदं) ऋतं (स्तवनं) दिवे पृथिव्यैच अभिश्रावाय प्रथमं अवो[च]म। (तत् युवाम्) अवद्यात् दुरितात् अर्भीके पाताम् पिता माता च अवोभिः रक्षताम्।

११ हे द्यावापृथिवी, हे पितः मातः यत् इह वा उपब्रुवे तत् सत्यं अस्तु। अर्वाभिः देवानामपि अवमं [भ]वम् (येन वयं) इषं जीरदानुं वृजनं विद्याम।

सूक्त १८६.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–विश्वेदेव ॥

सवितारूपी (विश्वे) देव सब लोगोंके स्वामी हैं। आप बड़े देदीप्यमान हैं। हम आपकी स्तुति करते हैं। और आपका यश बढानेके लिये आपको हवि अर्पण करते हैं। आप उससे सन्तुष्ट होकर हमारे यज्ञगृहमें आइये। हे सदा युवा अवस्थामें रहनेवाले देव, आप हमें ज्ञान अर्पण कीजिये और सब जगत्‌को आनन्दित कीजिये। १

एक स्वरूपमें मिलनेवाले सब देव–मित्र अर्यमा और दयालु वरुण हमारी ओर आवे। क्योंकि आपके आनेसे हमारी उन्नति होगी और आपके प्रभावसे हमारा सामर्थ्य और बढ़ेगा और दृढ होगा। २

अग्निदेव हमारा महिमान् हुआ है और अग्निदेवपर हम बड़ा प्रेम करते हैं। अग्निदेवका हम यश वर्णन करते हैं और हम आपकी स्तुति भी करते हैं। आप बड़े दयालु हैं और भयंकर संकटसे भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये आप बड़े वेगसे दौड़ते हैं। ३

हे उषा और रात्रि देवी, (भक्तोंको) यथेष्ठ दूध दिलानेवाली आप हैं। मानों आप प्रत्यक्ष धेनुही है। पराक्रमसे हमारी इच्छा पूरी करानेके लिये मैं आपके पास आया हूं और आपको नमस्कार करता हूं। आप अपने स्तनोंमें भिन्न भिन्न समयपर नानाप्रकारका (इष्ट लाभरूपी) दूध उत्पन्न करा सकते हैं। किन्तु आपके यशका वर्णन मैं सदा केवल एकही मात्रसे गाता हूं। ४

---

१ विश्वानरः, देवः सविता नः इळाभिः सुशस्ति च विदथे आएतु। यथा हे युवानः (युष्माकं) अभिपित्वे मनीषा. नः विश्वं जगच्चापि मत्सथ।

२ आरकाः विश्वे देवाः, मित्रः अर्यमा, सजोषाः वरुणः च नः आ गमन्तु। यथा (ते) विश्वे नः वृधासः भुवन्, सुराहा शवः विथुर न करन्।

३ वः प्रेष्ठ अतिथिम् अग्निम् शस्तिभिः गृणीषे। (सोपि) सजोषाः तुर्वणिश्च। यथा सुकीर्तिः सूरिः च वरुणः नः असत, अरिगूर्तः (सः यथा नः) इषः पर्षत् (तथा कृणुत)।

४ उषसानक्ता सुदुघा धेनुरिव (युवां, । तत) वः नमसा जिगीषा च उप एषे। (युवयोः) अस्मिन् ऊधन् विषुरूपे पयसि (सति, अहं) समाने अहन् अर्कं (सकृदेव) विमिमानः।

हे महदाकाश, अहिर्बुध्न्य हमारा कल्याण करें। जिस तरह गौ बछड़ेको दूध पिलानेके लिये दौड़ती चली जाती है उसी तरह आकाश-गंगा हमारी ओर वेगसे आवे। आकाशमें उत्पन्न होनेवाले अग्निका हम स्तवन करेंगे। मनकी तरह वेगवान् और जवान अश्व आग्नके रथको जोते हुए हैं। ५(४)

दयालु त्वष्टा ज्ञानवान् देवोंके साथ हमारी ओर आवे। वृत्रको मारनेवाला, जगत्‌को व्याप्त करनेवाला, सब पराक्रमी पुरुषोंमें श्रेष्ठ और शूर इन्द्र भी हमारी ओर आवे। ६

मनोरूप अश्वको अधिकारमें रखनेवाला इन्द्र हमपर कृपा रखे और जिस तरह गौ अपने बछड़ेको चाटनेको दौड़ती है उसी तरह इन्द्र भी बड़े प्रेमसे हमें आनन्दित करें। क्यों कि जिस तरह नवीन स्त्री अपने पतिको आलिङ्गन देती है उसी तरह हमारी वाक्‌देवी प्रशंसा करने योग्य और पराक्रमी इन्द्रकी ही स्तुति करती है। इसमें सन्देह नहीं है। ७

मरुत्-देवोंकी सेना बहुत बड़ी है। वे अपनी रोदसी स्त्रीकी सम्मतिसे चलते हैं। वे मरुत्-देव हमारी ओर आवें और हमारे पास बैठें। जलके प्रवाहकी तरह जल्दी दौड़नेवाले और चित्रविचित्र रङ्गके अश्व मरुत्-देवोंके रथको जोते हुए हैं। वे मरुत्-देव, मानों शत्रुओंका नाश करनेवाले, मित्ररूप इन्द्रके साथ सदा रहते हैं। ८

पवित्र अन्तःकरणसे की हुई प्रार्थनाओंको मरुत्-देव सफल करते हैं। जब वे अपने अश्व रथको जोतते हैं तब वे अपने सामर्थ्यसे बड़े विभूषित दिखाई देते हैं। जब सूर्य अपने तेजसे प्रकाशित होता है तब मरुत्-देव बिजलीके साथ नीचे आते हैं और जमीन और नदीयोंको जलसे भरा देते हैं। ९

---

५ उत अहिर्बुध्न्यः नः मयः कः, शिशुं न पिप्युषी इव सिंधुः वेति। येन अपाम् नपात जुनाम, मनोजुवः वृषणः यं वहन्ति।

६ उत सजोषाः त्वष्टा अभिपित्वे स्मन् सूरिभिः नः ईम् अच्छ आ गन्तु। (अपिच) वृत्रहा, चर्षणिप्राः इन्द्रः नरां तुविष्टमः इह नः आगम्याः।

७ उत गावः ईम् तरुणं शिशुं रिहन्ति न, अश्वयोगाः (इंद्रस्य) मतयः नः रिहन्तु। (नः) गिरःच पत्नी जनयः न, नरां सुरभिष्टमं तमीं नसन्त।

८ उत वृद्ध सेनाः मरुतः स्मत रोदसी समनसः, न ईम् (आगत्य) सदन्तु। (एतेषां) रथाः अवनयः न पृषदश्वासः, (एते) देवाः च रिशादसः मित्रयुजः न।

९. यद ते (भक्तानां) सुवृक्ति प्रयुजः प्रयुञ्जते (तदानी मेव) एषां महिना (ते) प्र चिकित्रे। अध यत् सुदिने शरु न एषां सेनाः विश्वं इरिणं प्रुषायन्त।

हे ऋत्विज, देवोंकी कृपा प्राप्त करनेके लिये अश्वीदेवोंको प्रसन्न कीजिये। आप पूषादेवोंको भी प्रसन्न कीजिये। क्यों कि वे स्वयम् बलवान् हैं। इस लिये वे अपने निजके बलसे विभूषित होते हैं। उसी तरह विष्णु, वायुदेव, और ऋभुओंका नेता इन्द्रदेव भी स्वयं बलवान् है। इस लिये कोई भी शत्रु आपके सामने खड़ा नहीं रह सकता। हमारा कल्याण करनेके लिये सब देव हमारी ओर आवे। १०

हे नमस्कार करने योग्य देव, हमने बड़े ध्यानसे आपकी प्रार्थना की है। हमारी प्रार्थनाको आप सफल कीजिये। हमारी प्रार्थना सदा सचेत रहें। क्यों कि हमारी प्रार्थना कुछ बड़े उद्देश्यसे आप जैसे देवोंकी ओर जानेकी चेष्टा करती है। इस लिये शीघ्रतासे सफल होनेवाला आपका सहारा हमें प्राप्त होवे और हमारा उत्साह बढे। ११ (५)

सूक्त १८७.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–अन्नस्तुति ॥

हे अन्नरूपी सोम, आपमें पुष्टि देनेवाला जो (तत्व) सामर्थ्य है उसकी स्तुति मुझे करनी चाहिये। बलवान् पुरुषोंकी शक्तिको भी आपका रस बढाता है। उस सामर्थ्यवान् और पुष्टि देनेवाले बलके कारण ही त्रित–देव अपने शत्रुओंको मार डाल सका। १

हे अन्नरूपी सोम, आप पीनेके योग्य है। आपका मधुर रस पीनेसे आनन्द होता है। हम आपहीकी सदा इच्छा करते हैं। इस लिहे आप हमपर कृपा कीजिये और हमारी रक्षा कीजिये। २

---

१० अश्विनौ अवसे प्र कृणुध्वम, पूषणम् च प्रकृणुध्वम् स्वतवसोहि सन्ति। विष्णुः अद्वेषः, वातः ऋभुक्षा (एतावपि अद्वेषौ), देवान् सुम्नाय अच्छा वतृतीय।

११ यजत्राः इयं सा वः अस्मे दीधितिः अपिप्राणीच सदनीच भूयाः। या वसूयुः देवेषु नि यतते, (तेन) इष जोरदानु वृजन विद्याम।

१ महः तविषी (च) धर्माणं पितुं स्तोषं नु, यस्य ओजसा त्रितः वृत्रं विपर्वं अर्दयत्।

२ हे स्वादो पितो, हे मधो पितो वयं त्वा ववृमहे अस्माकं अविता भव।

हे उत्कृष्ट (सोमरस, आप अपने सुन्दर चमचोंके साथ हमारी ओर आइये। आप हमारा लाभ करनेवाले हैं। आप हमारे मित्र होनेके योग्य हैं। आप किसीका द्वेष नहीं करते। आप कपटनीति नहीं जानते। ३

हे पीनेके योग्य अन्नरूपी सोमरस, आकाशमें सञ्चार करनेवाले वायुकी तरह आपका अर्क (रस) इस लोकमें सब जगह भरा हुआ है। ४

हे उदार पेय, हे मधुर रस, जो मनुष्य आपके स्वादिष्ट रसका प्राशन करता है उसका गला चलते समय (मल्लकी तरह) हृष्ट पुष्ट दिखाई देता है। ५ (६)

हे मधुर सोमरस, वे श्रेष्ठ देव आपपर बड़ा प्रेम करते हैं। आपहीकी सहायतासे उन देवोंने अहो राक्षसका वध किया। केवल आपहीकी सहायतासे ऐसा बड़ा और अच्छा काम हो सकता है। ६

हे रस, जब (पर्वतरूपी) मेघोंके चमकनेवाले (पवित्र) जलोंके साथ आप मिल जाते हैं तब भी वहांसे आप हमारी ओर आइये। ७

हे सब स्थानोंको व्याप्त करनेवाले पेयरस, हम जल भी पीते हैं और ओषधीयोंका रस भी पीते हैं। तथापि उन सबोंको पुष्टि देनेवाले तत्व आपही हैं। ८

---

३ हे पितो शिवः त्वम् शिवाभिः ऊतिभिः नः उप आचर, मयोभुः अद्विषेण्यः सुशेवः अद्वयाः सखा (भव)।

४ पितो तव त्ये रसाः दिवि वाताः श्रिताः इव रजांसि अनु विष्ठिताः।

५ पितो, ददतः तव, हे स्वादिष्ठ पितो ते रसनां स्वाद्मानः तुविग्रीवा इव ईरते।

६ हे पितो त्वे महानां देवाना मनः हितम् (अपिच) तव केतुना चारु अकारि (यद्) तव अवसा अहिं अवधीत्।

७ हे पितो यद् अदः पर्वतानां विवस्व अजगन, अत्र चित मधो पितो, नः भक्षाय अरं गम्याः

८ यद् आपां ओषधीनां परिंशं आ रिशामहे, हे वातापे (तस्य) पीवः इत् भव।

हे सोमरस, दही, दूध अथवा अनाज आदि सब वस्तुओंको पुष्टि देनेवाला तत्व (सार) आपही है। ६

हे ओषधिरूप सोमरस, करम्भमें (लड्डूमें) पुष्टि देनेका गुण आपहीने रखा है। हमारे हृदयके जीवितका सार आपही है। हमारी बुद्धिको आपही तीव्र बनाते हैं। इस लिये हमें पुष्टि देनेवाले आपही हूजिये। १०

हे पोषकरस, जिस तरह गौसे दूधका लाभ होता है उसी तरह जब हम आपकी स्तुति करते हैं तब आपसे हमें यज्ञ करनेका सामान प्राप्त होता है। जब आप हमारे हवियोंका स्वीकार करते हैं तब आप आनन्दित होते हैं। जब आपको आनन्द प्राप्त होता है तब आप मिलजुलकर मित्रतासे हम जैसे भक्तोंमें रहते हैं। ११ (७)

सूक्त १८८.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–आप्रिय ॥

हे हजारों मनुष्योंको जीतनेवाले अग्नि, आप देदीप्यमान् हैं। जब आप प्रज्वलित होते हैं तब देवोंके साथ आप बडे विभूषित दिखाई देते हैं। आप बडे ज्ञानवान् हैं। आप हमारे प्रतिनिधी बनकर हविर्भाग देवोंको पहुंचाइये। १

हे स्वयम्भु अग्नि, सच्चा वर्ताव करनेवाले यजमानके लिये हम इस यज्ञको मधुर आहुति अर्पण करते हैं। इस यज्ञसे सैकडों आनन्द देनेवाले लाभ प्राप्त होते हैं। २

हम आपको हवि अर्पण करते हैं। आप पूजा करने योग्य हैं। पूज्य देवोंके साथ आप हमारी ओर आते हैं। इस लिये यह बात उचित है कि हमारे लिये हजारों आशीर्वाद देनेवाले आपही हैं। ३

---

९ हे सोम गवाशिर यवाशिरः ते भजामहे, हे वातापे (त्वम्) पीवः इत् भव।

१० हे ओषधे त्वं करम्भः भव, त्वं पीवः त्वं वृक्कः उदारथिः (भव) हे वातापे पीवः इत् भव।

११ पितो, तं त्वा वयं वचोभिः गावः न हव्या सुषूदिम, । देवेभ्यः त्वा सधमादं अस्मभ्यंच सधमादं त्वां (सुषूदिम)।

१ हे सहस्रजित्, त्वं समिद्धः देवः देवैः अद्य राजसि (त्वं) कविः दूतः (सन्) हव्या वह।

२ हे तनूनपात् ऋतः ऋतं यते मध्वा समज्यते सहस्रिणीः इषः च दधत्।

३ आजुह्वानः ईड्यः त्वं नः आगयान् देवान् नः आवक्षि, अग्ने (त्वं) सहस्रसा असि।

हजारों वीर पुरुषोंसे आप श्रेष्ठ हैं। पूर्व दिशाकी ओर आपके लिये कुशासन बिछा हुआ है। उस प्रकारके आसनपर, हे आदित्य, आप अपने तेजसे विभूषित दिखाई देते हैं। ४

महाराज्ञी, चक्रवर्तिनी, वैभवयुक्ता, प्रभावशालिनी, असंख्या आदि नाना प्रकारके यज्ञमण्डपके द्वार घीकी तरह स्निग्ध (चिक) रसकी वर्षा करते हैं। ५ (८)

अच्छे अच्छे अलंकारोंसे लदी हुई उषा बड़ी सुन्दर और विभूषित दिखाई देती हैं। यहां आकर उषा अपनी आसनपर बैठें। ६

प्रज्ञावान् और सबसे पुराने दो दिव्य होता हमारा यज्ञ समाप्त करें। आपका उच्चारण बहुतही अच्छा है। ७

हे भारती इळे सरस्वति, हम आप जैसे सब देवताओंकी प्रार्थना करते हैं। इस लिये आप हमें ऐश्वर्यकी ओर ले जाइये। (आप हमें ऐश्वर्य दीजिये)। ८

प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले त्वष्टादेव भी पशुओंको उत्पन्न करते हैं। त्वष्टादेवकी उन्नतिके लिये आप यज्ञ कीजिये। ९

हे वृक्षराज, आप स्वयं देवोंके लिये हविरन्न उत्पन्न कीजिये। अग्नि स्वयं उस हविरन्नमें मधुरता उत्पन्न करेगा। १०

सब देवोंका नेता अग्निही है। गायत्र स्तोत्र गाकर हम आपका आदर करते हैं। [illegible] तब आपका प्रकाश अतीव प्रज्वलित होता है। ११ (९)

---

४ सहस्रवीरं बर्हिः प्राचीन अस्तृणन हे आदित्याः (तत्र) ओजसा विराजथ।

५ याः विराट् सम्राट् विभ्वीः प्रभ्वीः बह्वीः भूयसीः च (इति नाम्न्यः) ता दुरः घृतानि अक्षरन्।

६ सुरुक्मे सुपेशसा श्रिया अधि विराजतः (ते) उषासौ इह आ सीदताम्।

७ प्रथमा सुवाचसा कवी दैव्या होतारा, नः इमं यज्ञ यक्षतां।

८ हे भारति इळे सरस्वति याः वः सर्वाः उप ब्रुवे ताः नः श्रिये चोदयत।

९ रूपाणि प्रभुः त्वष्टा विश्वान् पशून समानजे, तेषां (पशूनां) स्फातिं नः (अर्थम्) आ यज।

१० वनस्पते त्मन्या देवेभ्यः पाथः उप सृज, अग्निः हव्यानि सिष्विदत्।

११ देवानां पुरोगाः अग्निः गायत्रेण समज्यते स्वाहा कृतीषु रोचते।

सूक्त १८९.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–अग्नि ॥

हे अग्निदेव, सब प्रकारके धर्मोंको आप जानतेही हैं। इस लिये सत्य मार्गसे आप हमें श्रेष्ठ सम्पत्तिकी ओर ले जाइये। पापके कारण ही मनुष्य सत्य मार्गसे भ्रष्ट होता है। ऐसे पापको आप हमसे दूर ले जाइये। बड़ी नम्रतासे हम आपकी स्तुति करते हैं। १

हे अग्नि, स्तुति करने योग्य केवल आपही हैं। कल्याण करनेवाले साधनोंसे आप हमें संकटके परे ले जाइये। पुत्रपौत्रादिकोंका कल्याण करनेके लिये, प्रचण्ड, विस्तीर्ण और असीम (प्राकार) कोटकी भीतकी तरह आप हमारी रक्षा करनेवाले बन जाइये। २

हे अग्निदेव, हमारे सब रोगोंको आप भगाइये। हे अग्निदेव, यह बात निश्चित ही है कि आप जिसकी रक्षा नहीं करते उसको वे सब रोग कष्ट देते हैं। हे पूजा करने योग्य अग्निदेव, हमारा सदा कल्याण करनेके लिये आप सब देवोंके साथ इस भूलोकमें आइये। ३

हे अग्निदेव, आप अपने यज्ञवेदीपर विराजमान हूजिये। क्यों कि आप यज्ञवेदीपर बड़ा प्रेम करते हैं। आप सदा हमारी रक्षा कीजिये। हे महापराक्रमी अग्निदेव, आपकी युवा अवस्था कभी नष्ट नहीं होती। इस लिये आप ऐसा कीजिये जिससे हम जैसे भक्तोंको वर्तमान कालमें और भविष्यत् कालमें कभी डर न लगे। ४

हे अग्निदेव, दुष्ट, पापी और वध करनेवाले शत्रुओंके चंगुलमें हमें मत दीजिये। बड़े संकटसे हमारी रक्षा कीजिये। हे बलवान् अग्निदेव, दुष्ट, क्रूर और दांत न होनेपर भी काटनेवाले सर्पादि प्राणियोंसे हमारी रक्षा कीजिये। ५ (१०)

---

१ हे देव अग्ने त्वं विश्वानि वयुनानि विद्वान् सुपथा अस्मान् राये नय। जुहुराणम् एनः अस्मत् युयोधि, ते भूयिष्ठां नमउक्तिम् विधेम।

२ अग्ने नव्यः त्वम् स्वस्तिभिः विश्वा दुर्गाणि अति पारय। नः तोकाय तनयाय शंयोः पृथ्वी, बहुला उर्वी च पूः भव।

३ अग्ने, त्वम् अमीवाः अस्मत् युयोधि, (ततः) अनग्नित्राः कृष्टीः (ते) अभ्यमन्त। यः पुनः हे यजत्र, देव अस्मभ्यं सुवितय विश्वेभिः अमृतेभिः क्षां (आ गहि)।

४ उतहे अग्ने (त्वं) प्रिये सदने आ शुशुक्वान् अजस्रैः पायुभिः नः पाहि। हे यविष्ठ ते जरितारं भयं नूनं मा विदत्, हे सहस्वः अपरम (अपि) मा (विदत्)।

५ हे अग्ने अघाय, अविष्यवे रिपवे, (वा) दुच्छुनायै (वा) नः मा अवसृजः। दत्वते दशते, (उतवा) अदते नः मा (अवसृज), हे सहसावन् रिषते (अपि) मा परा दाः।

हे सत्यधर्मकी रक्षा करनेवाले अग्निदेव, हम जैसे आपके भक्त आपकी स्तुति करते हैं। इस लिये आप हमें, मानों, एक ऐसा कवच अर्पण कीजिये जिससे निन्दा करनेवाले दुष्ट लोगोंसे हमारी रक्षा होवे। क्योंकि, हे अग्निदेव, दुष्ट और नीच मनुष्योंको बांधकर उनका नाश करनेवाले आपही हैं। ६

हे पूजा करने योग्य अग्निदेव, (द्युलोक और मृत्युलोक) दोनों लोकोंको आप अच्छी तरह जानते हैं। आप (इतने बड़े होनेपर भी) प्रातःकालमें मनुष्य लोगोंमें आपके जो भक्त हैं उनकी ओर आप प्रेमसे आते हैं। सायंकालमें भी आप मानवी भक्तोंके स्वाधीन होते हैं। आप बहुत क्रोधी भी हैं; किन्तु कवी लोगोंके वशमें आप रहते हैं। विद्वान् लोग आपको चाहे जिस तरह समजाते हैं। ७

हे अग्निदेव, आपहीके लिये हम स्तुति-स्तोत्रोंको गाते हैं। मैं मानपुत्र हूं। मैंने भी बलवान् अग्निपर निष्ठा रखी है। ऋषि-मण्डलीके द्वारा हमें हजारों लाभ होवे। उसीसे हमारी इच्छा सफल होगी और हमारा उत्साह बढ़ेगा। आपका आधार मिलनेसे हम आनन्द प्राप्त होता है। ८ (११)

सूक्त १९०.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता-बृहस्पति ॥

सब विद्याओंका स्वामी बृहस्पति है। आपको जीतनेवाला कोई नहीं है। आप बड़े वीर्यवान हैं। आपकी बातचीत तो बड़ी मीठी होती है। आप स्तुति करने योग्य हैं। हम आपको अर्क(स्तोत्रोंसे प्रसन्न करते हैं) सब स्तुतियोंके स्वामी आपही हैं। आप बड़े देदीप्यमान् हैं। जब बृहस्पतिकी स्तुति गाई जाती है तब सब देव और मनुष्य एकाग्र ध्यानसे सुनने लगते हैं। १

बारबार जो स्तुति गायी जाती है वह आपहीकी सेवामें रहती है। मानों, भक्तजनोंके हृदयसे प्रेमका झरनाही बहता अथवा प्रकट होता है। विश्वके सुन्दर वस्तुओंको जो प्रकाशित करते हैं वे आप बृहस्पतिही है। मातरिश्वा अन्तरिक्षके मानो, प्राणतत्वही है। मातरिश्वाके रूपसे सब धर्मकार्योंमें आप प्रकट होते हैं। २

---

६ हे ऋतजात अग्ने त्वावान् (त्वया) गृणानः तन्वे विश्वान् रिरिक्षोः उत वा निनित्सोः वरूथं च वि यंसत्। हे देव त्वम् अभिह्रुताम् विपट् असि।

७ हे यजत्र अग्ने, तान् उभयान् विद्वान् (असि त्वम्) प्रपित्वे मनुषः वेषि, अभिपित्वे मनवे शास्यः अकः न उशिग्भिः मर्मृजेन्यः च भूः।

८ अस्मिन् निवचनानि अवोचाम। (अहं) मानस्य सूनुः सहसाने अग्नौ (नि तिष्ठामि)। ऋषिभिः वयं सहस्रं सनेम, इषं जीरदानुं वृजनं च विद्याम।

१ अनर्वाणम् वृषभं, मन्द्रजिह्वं नव्य बृहस्पतिं अर्कैः वर्धय, यस्य गाथान्यः सुरुचः नवमानस्य, देवाः मर्ताः आ शृण्वन्ति।

२ तम् ऋत्वियाः वाचः उप स्वचन्ते, यः देवयताम् सर्गः न असर्जि। स हि बृहस्पतिः वरांसि अञ्जः (खलु)। स विभ्वा मातरिश्वा ऋते अभवत्।

जिस तरह सूर्य अपने बाहुरूप रश्मियोंका प्रवेश हरएक वस्तुओंमें कराता है उसी तरह बृहस्पति अपने भक्तोंके अन्तःकरणमें स्तुति और भक्ति करनेकी और कीर्तिका लाभ करनेकी इच्छा उत्पन्न कराते हैं। इतनाही नहीं; किन्तु दिनका स्वामी सूर्य भी परम सात्विक बृहस्पतिके प्रतापसेही सिंहकी तरह भयंकर और पराक्रमी बना हुआ है। ३

बृहस्पति बड़े ज्ञानवान् है। और आप सुन्दर वस्तुओंका भण्डार है। वेगवान् शक्तिकी तरह आपकी कीर्ति आकाशमें और पृथ्वीपर सबदूर फैली हुई है। जिस तरह (शिकारीके बाण) बड़े वेगसे हिरनपर गिरते हैं उसी तरह बृहस्पतिके सुन्दर और तेजस्वी अस्त्र द्युलोकको व्याप्त करते हैं। ४

हे भगवान् बृहस्पति, जो बलवान् और पापी लोग आपको कुछ नहीं समझते किन्तु आपके आधारपरही जीवित रहते हैं उन नीच मनुष्योंको आप कभी अच्छी वस्तु अर्पण नहीं करते किन्तु आप उन दुष्ट लोगोंको निस्संदेह दण्ड दिलाते हैं। ५ (१२)

जिस मार्गपर घास बिछा हुआ है उस मार्गकी तरह आप बड़े सुगम है और आपको कोई रोक भी नहीं सकता। सच्चे मित्रकी तरह आपका अन्तःकरण सदा प्रसन्न रहता है। बृहस्पतिकी कृपासे कई लोग ऐसे हैं जिनको कोई जीत नहीं सकता। वे लोग हमपर कृपादृष्टि रखते हैं। पहिले पहल वे लोग (अज्ञानमें) मग्न हुये थे। किन्तु पीछेसे वे लोग (अज्ञानसे) मुक्त हुवे। (अथवा) ज्ञानी बन गये। ६

जिस तरह वायु वेगसे चलता है अथवा नदीके जलकी लहरे समद्रमें जाकर मिलती है उसी तरह हमारी प्रार्थना आपकी ओर दौड़े। सब वस्तुओंको देखनेवाले बृहस्पति अपनी दिव्य दृष्टिसे नाव और जल (श्रद्धा और विधि) दोनोंको बड़े ध्यानसे देखते है। ७

---

३ उपस्तुतिं नमसः उद्यतिं श्लोकं च सविता बाहू इव (सः) प्र यंसत्। अस्य अरक्षसः क्रत्वा यो अहन्यः स· सूर्योपि) भीमः मृगः न तुविष्मान् अस्ति।

४ अस्य श्लोकः यक्षभृत् विचेताः (इति), दिवि ईयते पृथिव्यां अत्यः न यंसत् (च)। मृगाणां न बृहस्पतेः इमाः हेतयः अहिमायान् वृन् अभि यन्ति।

५ हे देव ये पापाः पप्राः त्वा उस्त्रिकम् मन्यमानाः (अपि) भद्रं (त्वाम्) उपजीवन्ति। तस्मै दूध्ये वार्मं नानु ददासि (किंतु) हे बृहस्पते तं पियारुम् चयसे इत्।

६ त्व सूयवसः पथा न सुप्रतुः, दुर्नियन्तुरपि त्वं मित्र· न परिप्रीतः (भवसि)। ये अनर्वाणः नः अभि चक्षते (ते) अपिवृताः (पर पश्चात) अपोर्णुवन्तः अस्थुः।

७ य स्तुभः अवनयः न, रोधचक्राः ख्रवतः न सं यन्ति। विद्वान् सः गृध्रः (सन्) उभयं तरः अपद्य अंतः चष्ट।

भक्तोंको सुगम रीतिसे प्राप्त होनेवाले, बलवान् उदार और बडे बृहस्पति देव, हमारे हृदयमें सदा रहते हैं। बृहस्पति देव हमारी प्रार्थनाओंसे आनन्दित होवे और हमपर शूरता और ज्ञानकी वर्षा करें। उससे सफल होनेवाली और उत्साह बढानेवाली शक्ति हमें प्राप्त होवे। ८ (१३)

सूक्त १९१.

॥ ऋषि–अगस्त्य । देवता–सूर्य ॥

यह बात निश्चित है कि भूमीपर अथवा जलमें रहनेवाले किसी जहरीले प्राणीका विष मेरे शरीरको जलाता है। १

(शरीरके) जिस स्थानपर यह विष रहता है उस स्थानमें यह ओषधी लगानेसे उस विषका नाश हो जाता है। दूसरी ओषधी लगानेसे वह अदृश्य विष दूर भागने लगाता है। इस ओषधीका गुण ऐसा है कि एकही समय यह ओषधी लगानेसे किसी भी प्रकारके विषका नाश होता है। दूसरी ओषधी एसी है कि केवल उसके सूंघनेसे चाहे जिस प्रकारके विषका नाश होता है। २

यह मालूम होता है कि शर (बासकी लकडी) कुशर, दर्भ सैर्य, मुञ्ज, वैरीया आदि प्रकारके घांसमें रहनेवाले प्राणीयोंका अदृश्य विष मेरे शरीरको तीव्रतासे जलाता है। ३

जिस समय गौ अपने स्थानमें लेट रही थी, हिरन अपनी जगहपर सो रहे थे और मनुष्य प्राणीयोंका चैतन्य अपने स्थानपर आनन्दसे आराम करताथा उस समय वह अदृश्य विष मेरे शरीरको जलाने लगा। ४

ये जहरीले प्राणी चोरोंकी तरह रात्रिके समय छिपकर घूमते हुए दिखाई देते हैं। ये जहरीले प्राणी स्वयं सब लोगोंको देखते हुए छिपकर घूमते रहते है। किन्तु अब सचेत रहिये। ५ (१४)

---

८ एव महः तुविजातः तुविष्मान् वृषभः बृहस्पतिः देवः अधायि। सः स्तुतः वीरवत् गोमत् नः धातु (येन) इषम् जीरदानुं वृजनम् विद्याम।

१ कङ्कतः न कङ्कतः अथो सतीन कङ्कतः द्वौ इति प्लुषी इति (अथो वा) अदृष्टाः मां नि अलिप्सत।

२ (काचित् ओषधीः) आयती अदृष्टान् हन्ति, अथो (काचित्) परायती हन्ति। अथो अवघ्नती हन्ति, अथो पिंषती पिनष्टि।

३ शरासः कुशरासः दर्भासः सैर्याः उत मौञ्जाः वैरिणाः (एतेषु निलीनाः) सर्वे अदृष्टाः साकं (मां) नि अलिप्सत।

४ गावः गोष्ठे नि असदन्, मृगासः नि अविक्षत, जनानाम् (अपि) केतवः नि (अभवन्, एतस्मिन् काले) अदृष्टाः नि अलिप्सत।

५ एते उत्ये (अदृष्टाः) तस्कराः इव प्रदोषे अदृश्रम्। हे अदृष्टाः विश्वदृष्टाः (यूयं) प्रतिबुद्धाः अभूतन।

हे जहरीले प्राणी, आपका भी द्यु पिता है, पृथिवी माता है, सोम भाई है, और अदिती भगिनी है। स्वयं छिपकर सब प्राणियोंको देखनेवाले जहरीले विष, शीघ्रतासे यहांसे चले जाव; दौडो; भागो। ६

पैरोंसे चलनेवाले, (सर्पकी तरह) बदनसे भी चलनेवाले, (बिच्छूकी तरह) डंक मारकर काटनेवाले और इससे भी अधिक जहरीले हे दृश्य और अदृश्य विष, आप सबोंका शीघ्रतासे नाश होवे। ७

देखिये, सब विश्वको देखनेवाले और अदृश्य विषोंका नाश करनेवाले सूर्यका उदय पूर्व दिशाकी ओर हो रहा है। वह सूर्य अदृश्य विष और दुष्ट जीवोंका नाश करें। ८

सब विश्वको देखनेवाला, सब दुष्ट लोगोंका नाश करनेवाला और अदृश्य विषोंका भी नाश करनेवाला सूर्य आकाशमें ऊपर चढ रहा है। ९

शराबकी दुकानमें रहनेवाले मनुष्यको जिस तरह शराबके पीपेसे बाधा नहीं होती उसी तरह सब विषोंका नाश करानेके लिये मैं उनको सूर्यकी ओर भगा देता हूं। जिस तरह सूर्य कभी मरता नहीं है उसी तरह हम भी कभी नहीं मरेंगे। सुवर्ण रंगके रश्मिरूप अश्वोंपर आरूढ होकर सूर्यने सब विषोंका नाश किया और मधुविद्यासे उनका अमृत बना दिया। १० (१५)

कपिंजली जैसे छोटेसे पक्षीने तुमारे शरीरको जलानेवाले विषको चाट डाला; किन्तु वह नहीं मरता। उसी तरह हम भी नहीं मरेंगे। क्यों कि सुवर्ण रश्मिरूप अश्वोंपर आरूढ होकर सूर्यने सब विषोंका नाश किया। और मधुविद्याके द्वारा उनका मधुर अमृत बना दिया। ११

---

६ (यथा अस्माकं तथा) वः (अपि) द्यौः पिता, पृथिवी माता, सोमो भ्राता, अदितिः स्वसा (अस्ति),। तस्मात् हे विश्वदृष्टाः अदृष्टाः तिष्ठत, सु कं इलयत।

७ ये अस्याः ये च अङ्ग्याः, ये सूचीकाः, (ये च) प्रकङ्कताः (इति) हे अदृष्टाः, किंचन इह वः (ते) सर्वे (यूयं) साकं निजस्यत।

८ विश्वदृष्टः अदृष्टहा सूर्यः सर्वान् अदृष्टान् सर्वाश्च यातुधान्यः जंभयन् पुरस्तात् उदेति।

९ असौ आदित्यः सूर्यः विश्वानि पुरु जुर्वन्, अदृष्टहा विश्वदृष्टः (च सन्) पर्वतात् उदपप्तत्।

१० दृतिं सुरावतः गृहे (इव) सूर्ये विषम् आ सजामि। सो चिन्नु न मराति, नो वयं मराम, हरिष्ठाः (सः) अस्य योजनं आरे (चकार। हे विष) त्वा मधुला (सः) मधु चकार।

११ इयत्तिका शकुंतिका सका ते विषं जघास, (परं) सोचिन्नु न मराति, नो वयं मराम, हरिष्ठाः (सः) अस्य योजनं आरे (चकार, हे विष) त्वा मधुला मधु चकार।

विष्फुलिंग नामकी इक्कीस चिड़ियोंने बढते हुए विषोंको चाट डाला। किन्तु वे नहीं मर गयीं। उसी तरह हम भी नहीं मरेंगे। सुवर्ण रश्मिरूप अश्वोंपर आरूढ होकर सूर्य सब विषोंको दूर ले गया और मधुविद्याके द्वारा उनका मधुर अमृत बनाया। १२

विषोंका नाश करनेवाली नव्वानवे नदियोंके नामोंका उच्चारण मैंने किया। इस लिये सुवर्ण रश्मिरूप अश्वोंपर आरूढ होकर सूर्य सब विषोंको दूर ले गया और मधुविद्याके द्वारा उनका मधुर अमृत बनाया। १३

इक्कीस मयुरी (मोरनी) और बिवाह न हुई सात बहिन तुमारे शरीरको जलानेवाले विषोंको जलकी तरह ले गयी। १४

यह नकुल (नेवला) छोटासा है। यदि मेरे विषका नाश यह नहीं करेगा तो मैं उसको कुचल डालुंगा। देखिये; इस स्थानसे विष उतरने लगा। बस: सब कहीं दूर चला गया। १५

पहाडसे बाहर एक नकुल आया और उसने कहा कि यह तो मामुली (साधारण) बीछूका विष है। वह कुछ नहीं है। हे बिछू; चले जाव। तुमारा विष तीव्र नहीं है। १६। १६। २४। १

---

१२ त्रि: सप्त विष्पुलिंगा: विषस्य पुष्यम् अक्षन् ता: चिन्नुवमरन्ति. नो वय मराम, हरिष्ठ: (स:) अस्य योजनं आरे (चकार। हे विष) त्वा मधुला मधु चकार।

१३ नवानां नवतीनां विषस्य रोपुषीणाम् सर्वासां नाम अग्रभम्। हरिष्ठ। अस्य योजनं आरे (चकार। हे विष) मधुला त्वा मधु चकार (स:)।

१४ त्रि: सप्त मयूर्य: (याश्च) अप्रुव: सप्त स्वसार. ता: ते विषं, कुंभिनी: उदकम् इव निजभ्रिरे।

१५ इयत्तक: कुषुम्भक: (परं यदि विषम् नाप गच्छति तर्हि) तक अश्मना भिनद्मि। तत: विषं अनु पराची: संवत: प्र वावृत्।

१६ तत, गिरे: प्रवर्तमानक: कुषुनक. अब्रवीत (यद इदं) वृश्चिकस्य विषम् (इद) अरसं। हे वृश्चिक ते विषम् अरसम्।

॥ इति चतुर्विंशोऽनुवाक: । प्रथमं मंडलं समाप्तं ॥

॥ द्वितीय मंडल ॥

॥ प्रथम अनुवाक ॥

सूक्त १.

॥ ऋषि—आंङ्गिरस । देवता—अग्नि ॥

हे अग्निदेव, आप सब लोगोंकी रक्षा करनेवाले हैं और आप बड़े तेजःपुंज हैं। प्रत्येक दिन जब आप कभी स्वर्गके उदकसे अथवा कभी कड़े पत्थरसे अथवा कभी निर्जन अरण्यसे अथवा कभी कभी वनस्पतिसेभी प्रकट होते हैं तब आपका पवित्र स्वरूपही दिखाई देता है। १

हे अग्निदेव, यज्ञमें होता (पुरोहित) का सम्मान आपहीको दिया जाता है। योग्य समयपर ऋत्विजोंके कर्म करनेका सम्मान आपहीको दिया जाता है। सत्य धर्मसे आचरण करनेवाले यजमानके यज्ञमें नेष्ट्रयकाभी सम्मान आपहीको दिया जाता है। शासन करनेका कामभी आपही करते हैं। अध्वर्युका कामभी आपही करते हैं। आपही ब्रह्मा हैं और हमारे घरमें गार्हपत्य अग्नि भी आप हैं। २

हे अग्निदेव, पुण्यवान पुरुषोंकी इच्छा पूरी करनेवाले इन्द्र आपही हैं। पूजा करने योग्य विष्णु आपही हैं। आपकी कीर्ति सब दूर फैली हुई है। हे ब्रह्मणस्पतिरूप (अग्निदेव,) दिव्य सम्पत्ति देनेवाले आपही हैं। हे जगत्की रक्षा करनेवाले अग्निदेव, अपूर्व बुद्धिदेवीने भी आपही की शरण ली है। ३

---

१ हे अग्ने त्वम् अशुशुक्षणिः त्वम् अद्भ्यः, त्वम् अश्मनः परि, त्वम् वनेभ्यः, त्वम् ओषधिभ्यः, हे नृणां नृपते त्वम् शुचिः (सन) जायसे।

२ हे अग्ने, होत्रं तव, ऋत्वियं पोत्रं तव (इत्) तव नेष्ट्रं, ऋतायतः त्वम् अग्नित् (एव)। तव प्रशास्त्रं, त्वम् अध्वरीयसि, (त्वम्) ब्रह्मा च, नः दमे गृहपतिश्चासि।

३ अग्ने सतां वृषभः इन्द्रः त्वमसि, त्वम् उरुगायः नमस्यः विष्णुः असि। ब्रह्मणस्पते (अग्ने) त्वम् रयिविद् ब्रह्मा असि। हे विधर्तः त्वम् पुरंध्या सचसे।

हे अग्निदेव, विश्वका राजा वरुण आपही हैं जिसके नियम सदा अटल है। महा पराक्रमी और स्तुति करने योग्य मित्र आपही हैं। सब सज्जन लोगोंके स्वामी अर्यमा आपही हैं। हे अग्निदेव, उपभोग लेने योग्य जो सुख (अर्यमा) अर्पण करता है वह सुख यज्ञमण्डपमें उदारतासे अर्पण करनेवाले अंश नामक देव आपही हैं। ४

हे अग्निदेव, त्वष्टादेव आपही है। इस लिये भक्तोंके शरीरमें जो उत्तम वीर्य उत्पन्न होता है वह आपहीका स्वरूप है। हे अग्निदेव, मित्रकी तरह आपकी कान्ति सुख देनेवाली है। इस लिये आपकी दिव्य शक्ति भी सब विश्वके साथ भीतरी रूपसे फैली हुई है। बिजलीकी तरह शीघ्रतासे आकर भक्तोंको बुद्धिरूप अश्व आपही अर्पण करते हैं। आप बडे ऐश्वर्यवान हैं; इस लिये बलवान पुरुषोंका बल आपही हैं। ५ (१७)

हे अग्निदेव, विस्तीर्ण आकाशमें रहनेवाले परमात्मारुद्र आपही हैं। मरुत्-देवोंकी सेना आपही हैं। जिस सामर्थ्यसे प्राणीजातिका पोषण होता है उस सामर्थ्यके स्वामी आपही हैं। कल्याण करनेवाले आप प्रातःकालमें तेजस्वी वायूके साथ सबदूर सञ्चार करते हैं। सब लोगोंका पोषण करनेवाले पुषादेवके रूपसे आप भक्तोंकी रक्षा करते हैं। ६

हे अग्निदेव, सेवारूप अलंकारसे आपको विभूषित करनेवाले भक्तोंको सामर्थ्यरूपी धन अर्पण करनेवाले आपही हैं। सब प्रकारके अमोल रत्नोंका भण्डार सवितादेव हैं और सवितादेव आपहीका रूप है। हे सब लोगोंके स्वामी अग्निदेव, आप सबका कल्याण करनेवाले हैं। इस लिये जो उत्तम दिव्यधन है उसपर आपही अधिकार चलाते हैं। आप वेदीमेंही रहते हैं और वहांपर प्रेमसे सेवा करनेवाले भक्तोंकी आपही रक्षा करते हैं। ७

---

४ हे अग्ने, धृतव्रतः वरुणो राजा त्वमसि, दस्म ईड्यः च मित्रः त्वम् (असि)। त्वम् सत्पतिः अर्यमासि, हे देव, यस्य (अर्यम्णः) सम्भुजम् विदथे भाजयुः अंशः (अस्ति, सः) त्वमेव।

५ हे अग्ने विधते सुवीर्यं (यः) त्वष्टा (सः) त्वमसि, तव मित्रमहः ग्नाः (विश्वेन) सजात्यम्। त्वम् आशुहेमा स्वश्व्यं ररिषे। त्वम् पुरुवसुः नरां शर्धः असि।

६ अग्ने महः दिवः असुरः रुद्रः (सः) त्वमसि, मारुतं शर्धः त्वमेव, पृक्षः ईशिषे। त्वम् शंगयः अरुणैः वातैर्यासि, त्वम् पूषा सन् विधतः त्मना पासि नु।

७ हे अग्ने त्वम् अरंकृते द्रविणोदाः, रत्नधाः सविता देवः त्वम् असि। नृपते त्वम् भगः वस्वः ईशिषे, यस्य ते अविधत् (तस्य) त्वम् पायुः भवसि।

हे अग्निदेव, आप सब लोगोंका पालन करनेवाले हैं और सब जगत्के उदार राजा है; इस लिये भक्तलोग आपका सम्मान करते है। हे सुन्दर अग्निदेव, सब वस्तुओंके स्वामी आपही हैं। यह बात नहीं कि आप दस पांच लोगोंसे श्रेष्ठ हैं किन्तु आप सैकडों, नहीं, असंख्य लोगोंसे भी श्रेष्ठ हैं।   ८

हे अग्निदेव, आप जगत्के पिता हैं। इस लिये सब लोक यज्ञयागोंसे आपको सन्तुष्ट करते हैं और आपकी कृपा प्राप्त करनेके लिये आप जैसे तेजोमय शरीरवाले देवको अपनी तपश्चर्यासे प्रसन्न करते हैं। उस समय आपकी सेवा करनेवाले भक्तोंके आप पुत्र, बन जाते हैं अथवा उनके आनन्द देनेवाले मित्र बनकर शत्रुओंकी चढ़ाईसे उनकी रक्षा करते हैं।   ९

हे अग्निदेव, आप प्रत्यक्ष पूजा करनयोग्य ऋभुही हैं। पराक्रम और सामर्थ्यरूपी सम्पत्तिके स्वामी आपही हैं। हवि अर्पण करनेवाले भक्तोंका कल्याण करनेके लिये ही आप प्रज्वलित होते हैं और प्रकाशित होते हैं। हवि अर्पण करनेवाले भक्तोंके यज्ञकी सिद्धि करनेके लिये आप उनको सत्य मार्ग दिखाईये।   १०(१८)

हे अग्निदेव, हवि अर्पण करनेवाले भक्तोंके आपही अदिति हैं। होत्रा और भारती देवताओंके रूपमें, स्तुतियोंसे आपही आनन्दित होते हैं। भक्तोंके शरीरमें फूर्ति उत्पन्न करनेके लिये असंख्य वर्षोंकी पुरानी इळाका रूप आपही धारण करते हैं। हे उत्तम वस्तुओंके स्वामी, अग्निदेव, आप वृत्रका नाश करनेवाले हैं और सरस्वति भी आपही हैं।   ११

---

८ हे अग्ने विश्पतिं त्वां, (जगतः) सुविदत्र राजानं त्वाम् विशः ऋञ्जते। हे स्वनीक त्वं विश्वानि पत्यसे, त्वम् दश, शता, सहस्राणि (अपि) प्रति (जयसे)।

९ अग्ने, नरः (जगतः) पितरम् त्वा इष्टिभिः (वर्धयन्ति), भ्रात्राय च तनूरुचम् त्वाम् शम्या (प्रसाधयन्ति), यस्ते अविधत तस्य त्वम् पुत्रः भवसि, त्वम् सुशेवः सखा सन् आधृषः पासि।

१० अग्ने नमस्यः ऋभुः त्वम् आके असि, क्षुमतः वाजस्य रायः त्वम् ईशिषे। दावने त्वम् विभासि अनु धक्षि, त्वम् विशिक्षुः यज्ञम् आतनिः असि।

११ हे अग्नेदेव, त्वम् दाशुषे अदितिरसि, त्वम् होत्रा, भारती (च सन्) गिरा वर्धसे। दक्षसे त्वम् शतहिमा इळा असि; वसुपते त्वम् वृत्रहा सरस्वती च असि।

हे अग्निदेव, आपका शरीर बहुत बड़ा है। अपूर्व युवा अवस्थाकी आप प्रत्यक्ष मूर्तिही हैं। सुन्दरता जिसको कहते हैं वह केवल आपहीके प्रशंसा करने योग्य और मनोहर शरीरमें दिखाई देती हैं। सब संकटोंकेपार ले जानेवाले केवल आपही है। बडे सात्विक प्रतापकी आप प्रत्यक्ष मूर्तिही हैं। विश्वसे भी बड़ी और अपार सम्पत्ति आपही हैं। १२

हे अग्निदेव, आदित्यदेव आपहीको अपना मुख कहते हैं। हे ज्ञानवान् अग्निदेव, वे पवित्र विभूति, आपहीको अपनी जिव्हा कहते है। उदार देव आपके पीछे पीछे आकर यज्ञमें आपको अर्पण कीये हुए हविर्भागको खाते हैं। १३

हे अग्निदेव, जो देव स्वयं अमर होकर किसीका द्वेष नहीं करते वे भी आपको अर्पण किये हुए हविर्भागको निजके मुखसे खाते हैं। मरनेवाला मनुष्य भी आपहीकी कृपासे अन्नरसका आस्वाद लेता है और ओषधियोंके उदरमें भी सूक्ष्मरूपसे आपही प्रकट होते हैं। १४

पवित्रस्थानमें प्रकट होनेवाले अग्निदेव, जगत्में सब वस्तुओंको आप व्याप्त कर सकते हैं। क्योंकि आप अपने प्रतापके कारण सब वस्तुओंसे श्रेष्ठ हैं। आपका सामर्थ्य इतना बड़ा है कि पृथिवी और आकाश दोनोंको अन्तरिक्षमें व्याप्त करके आपका सामर्थ्य अवशिष्ट रहता है। १५

---

१२ हे अग्ने, सुभृतः त्वम उत्तमं वयः (असि), तत्र स्पार्हे सदृशि वर्णे आ (निखिलाः) श्रियः (अधिवसन्ति)। प्रतरणः बृहन् वाजः त्वमसि, बहुलः विश्वतस्पृथुः च रयिः त्वमेव।

१३ हे अग्ने आदित्यासः त्वाम् आस्यम् (चक्रिरे), हे कवे, शुचयः (देवाः) त्वाम् जिव्हां चक्रिरे। रातिषाचः देवाः त्वाम् अध्वरेषु सश्चिरे, त्वे च आहुतम् हविः अदन्ति।

१४ हे अग्ने, अद्रुहः विश्वे अमृतासः देवाः त्वे आहुतं हविः आसा अदन्ति। मर्तासः (अपि) आसुतिं त्वया (एव) स्वदन्ते, वीरुधां त्वं शुचिः गर्भो जज्ञिषे।

१५ अग्ने त्वम् मज्मना (न केवलं) तान् च सम् असि, प्रति च असि, (किंतु) हे सुजात देव प्ररिच्यसे च। यत् अत्रनेपृक्षः स्व महिना द्यावापृथिवी रोदसी उभे अनु वि भुवत्।

आपकी स्तुति करनेवाले भक्त लोगोंको आप (ज्ञान), गोधन, और (सुबुद्धिरूपी) अश्व-धन भी बड़ी उदारतासे अर्पण करते हैं। आनन्द देनेवाली वस्तुओंकी ओर आप उनके साथ हमें ले जाइये। हम भी पराक्रमी वीरोंके साथ यज्ञमें आपके महत् यशका वर्णन करेंगे। १६

सूक्त २.

॥ ऋषि—गृत्समद । देवता—अग्नि ॥

अग्निको सब वस्तुओंका ज्ञान है। इस लिये यज्ञमें पहिले पहल अग्निको प्रसन्न करना चाहिये। स्तुतियुक्त शब्दोंसे और हवियोंसे अग्निकी पूजा कीजिये। प्रज्वलित हुआ अग्नि आनन्द देनेवाला है। आप बड़े दिव्य और पराक्रमी पुरुष है। स्वर्गलोकमें होता और पृथिवीमें हमारे नेता आपही हैं। १

हे अग्निदेव, जिस तरह धेनु अपने स्थानमें (गोष्ठ) अपने वत्सकी ओर रांभती हुई चली जाती है उसी तरह उषा और रात उत्साहसे आपकी ओर दौड़ती हुई चली जाती है। हे अग्न, आपपर सब लोग प्रेम करते हैं। आप स्वर्गलोकके महाबुद्धिमान अधिष्ठाता हैं। मानव युगमें आप भूलोकमें रात्रिके समय प्रकाशित होते हैं। २

पृथिवी और आकाश दानोंपर नियमसे अधिकार चलानेवाले सूर्यको और अद्भुत कर्म करनेवाले अग्निको देव रजोलोकके तले अथवा भूलोकमें ले आये। वेगवान रथकी तरह अग्निदेव बड़े प्रसिद्ध है। आपका तेज बड़ा शुद्ध है और मित्रकी तरह सब स्थानोंमें आपकी स्तुति की जाती है। ३

---

१६ अग्ने ये सूरयः स्तोतृभ्यः गो अग्रां अश्वपेशसं राति उप सृजन्ति । तान् च अस्मान च वस्यः आ प्र नेषि हि (वयं च) सुवीराः (सन्तः) विदथे बृहत् वदेम ।

१ जातवेदसं अग्निम् यज्ञेन वर्धत, तना गिरा हविषाच यजध्वम् । समिधानं सुप्रयस, स्वर्णरं द्युक्षं होतारम् (नः) वृजनेषु धूर्षदम (अग्निम यजध्वम्) ।

२ अग्ने, धेनवः स्वसरेषु वत्सं न, नक्तीः उषसः त्वा अभिवावशिरे । हे पुरुवार त्वम् दिवः इव अरतिः (सन्नपि) मानुषा युगा क्षपः (आ), सयतः आ भासि ।

३ तमुदंससं (अग्निम) द्यावा पृथिव्योः अरतिम् देवाः रजसः बुध्ने नि एरिरे, । रथमिव वेद्यम् शुक्रशोचिषम मित्रं न क्षितिषु प्रशस्य अग्निम् (नि एरिरे) ।

अन्तरिक्षमें (दिनपर दिन) बढ़नेवाले चन्द्रमाकी तरह अग्निकी कान्ति मनोहर है। जिस तरह सुवर्णका नीधि गुप्त स्थानमें रखा जाता है उसी तरह तेजस्वी अग्नि भी वेदीके स्थानमें स्थापित किया जाता है। अग्निदेव चित्र विचित्र रंगकी मेघमालामें मानों एक सुन्दर पक्षी बनकर रहता है। जिस तरह नदीके जलपर पूल सदा स्थित रहता है उसी तरह द्यु और पृथिवी दोनों लोकोंपर आपकी दृष्टि सदा-अटल रहती है। ४

अग्निदेव होताका रूप धारण करें और सबको व्याप्त करनेवाले यज्ञकी चारों ओरसे रक्षा करें। सब लोग हवियोंसे और स्तुतियोंसे आपहीको विभूषित करते हैं। अग्निदेव वनौषधीयोंके अरण्यमें बड़े ठाठसे सञ्चार करते हैं। जिस तरह नक्षत्रोंके कारण आकाश चमकता हुआ दिखाई देता है उसी तरह अग्निदेव भी अपनी ज्वालाओंसे अन्तरिक्षके प्रदेशको प्रकाशित करता है। ५ (२०)

हे अग्निदेव, आप बड़े उदार हैं। इस लिये हमारा कल्याण करनेके लिये आप दिव्य सम्पत्तिरूपी प्रभासे प्रज्वलित हूजिये और उस सम्पत्तिकी वर्षा हमपर कीजिये। आप प्रकाशित हूजिये और हमारा कल्याण करनेके लिये मैं जैसे दीन मनुष्यके हविर्भागका आप स्वीकार कीजिये। इसी लिये द्यु और पृथिवी दोनोंको इधर आप ले आईये। ६

हे अग्निदेव, जो सम्पत्ति श्रेष्ठ है उन सबको आप हमें अर्पण कीजिये। जो सबसे बड़ी और श्रेष्ठ सम्पत्ति है वह भी हमें अर्पण कीजिये। जिस तरह द्वार खोलनेसे भीतरका मार्ग दिखाई देता है उसी तरह (सात्त्विक) सामर्थ्य प्राप्त करनेका भी मार्ग आप हमें दिखलाइये जिससे आपकी कीर्ति सबदूर फैले। आप ऐसा कीजिये जिससे द्यावापृथिवीकी कृपा हमपर सदा बनी रहे और हमारी प्रार्थना सफल होवे। तेजस्वी सूर्यकी तरह उषा भी प्रकाशित होवे। ७

---

४ रजसि उक्षमाण, (चन्द्रमिव सुरुचं अग्निम) ह्वारे सुरुच चंद्रमिव स्वं दमे आ तम आदधुः । पृश्न्याः पतरम , पाथः पायुम् न, उभे जननी अक्षभिः अनु चितयन्तम् (तम् आ दधुः)।

५ स होता विश्व अध्वर परिभूतु, तमु मनुषः हव्यैः गिरा च ऋञ्जते हिरिशिप्रः वृधसानासु जर्भुरत (अथ अग्निः) द्यौः स्तृभिः न, रोदसी अनुचितयत ।

६ स त्वम् सदद्स्वान , नः स्वस्तये रेवत् समिधानः रयिम् अस्मासु दीदिहि । नः सुविताय च, हे अग्ने देव. मनुषः मे हव्या वीतये, रोदसी आ कृणुष्व ।

७ हे अग्ने बृहतः दाः, सहस्रिणः (अपि) दाः, श्रुत्यै दुरः न वाजम् अप वृधि । ब्रह्मणा द्यावा पृथिवी प्राची कृधि, शुक स्वः न उषसः वि दिद्युतुः ।

रात्रिका और उषाका उदय होतेही सब लोग अग्निको प्रज्वलित करते हैं। अग्नि भी सूर्यकी तरह अपनी लाल प्रभासे प्रकाशित होते हैं। जब भक्त लोग अग्निकी स्तुति करते हैं तब यज्ञकी सिद्धि भी अच्छी तरह सफल होती है। अग्निदेव, सब देवोंका राजाही है; किन्तु भक्त जनोंका कभी न भानेवाला प्यारा महिमान् है। ८

हे अग्निदेव, आप अमर देवोंमें बड़े श्रेष्ठ हैं। इस तरह हम जैसे मनुष्योंकी ध्यानबुद्धि परम दीप्तिमान् देवोंकी ओर लगी हुई है। उसी कारण स्वर्ग लोककी धेनुएं हमारी इच्छाके अनुसार पृथिवीमें आती हैं और सैकड़ों प्रकारकी और अच्छे स्वरूपकी वस्तुएं अपने स्तनोंसे निकालकर हमें अर्पण करती हैं। ९

हे अग्निदेव, आपकी कृपाके कारण और हमारी प्रार्थनाके कारण हमारे पुरुषार्थ (सामर्थ्य)का प्रभाव सब लोगोंमें दिखाई देवे। आप ऐसा कीजिये जिससे हमारा प्रताप सूर्यकी तरह असह्य होकर पांच प्रकारके लोकोंमें उच्च स्थानपर चमकता हुआ दिखाई देवे। १०

हे पराक्रमी अग्निदेव, जिन महात्माओंका जन्म उच्चकुलमें हुआ है वे भी आपकी कृपाकी इच्छा करते हैं। आप प्रशंसा करने योग्य हैं। आप पूजा करने योग्य हैं। इस लिये सामर्थ्यवान् लोग भी आपकी सेवा करते हैं। आप हमें अपने प्यारे बालबच्चे समझकर हमारे वेदीके स्थानपर प्रकाशित होते हैं। आप हमें अपनाइये और सब प्रकार हमारा कल्याण कीजिये। ११

---

८ राम्या उषसश्चानु इधानः सः स्वः न अरुणेन भानुना दीदेत्। अग्निः होत्राभिः मनुषः स्वध्वरः (भवति), विशां राजा (सन्नपि) आयवे सः चारुः अतिथिः।

९ हे अमृतेषु पूर्व्य अग्ने, नः मानुषाधीः बृहद्दिवेषु (देवेषु) एव पीपाय। (तेन) धेनुः वृजनेषु (आगत्य) इर्वाणि शतिन च पुरुरूपं च (अभीष्टं) कारवे त्मना दुहाना (भवति)

१० हे अग्ने वयं नः सुवीर्यं अर्वता वा ब्राह्मणा वा जनां अति चितयेम। अस्माकं द्युम्नं पंच कृष्टिषु अधि उच्चा कृधि, तत्र स्वन दुष्टरं शुशुचीत।

११ हे सहस्य सुजाताः सूरयः यस्मिन् (त्वयि) इषयन्त (स त्वं) प्रशंस्यः। हे अग्ने वाजिनः यं (त्वम्) यज्ञं उपयान्ति, (अस्मत्सदृशे) नित्ये तोके दीदिवांसं (उपयन्ति) स त्वम् स्वेदमे नः बोधि।

हे सर्वज्ञ अग्निदेव, आप हमें ऐसा आशीर्वाद दीजिये जिससे हम जैसे आपके भक्त लोक और हमारे यजमान दोनों आनन्दमें रहें। आप हमें ऐसा उत्कृष्ट ऐश्वर्य दीजिये जिससे हमें आनन्द, बहुत सन्तान, और पुत्रपौत्रका लाभ होवे। १२

जो बड़े बड़े उदार महात्मा आपकी स्तुति करनेवाले लोगोंको, ज्ञानरूपी गोधन और बुद्धिरूपी अश्वका दान देते हैं उन्हें और उनके साथ हमें भी आप आनन्द देनेवाली वस्तुओंकी ओर ले जाइये। आपकी कृपासे हम और हमारे पराक्रमी और विजयी वीर यज्ञसभामें आपके यशका वर्णन करते हैं। १३ (२१)

सूक्त ३.

॥ ऋषि–गृत्समद । देवता–अग्नि ॥

देखिये; पृथिवीपर अथवा वेदीमें स्थापित किया हुआ अग्नि प्रज्वलित होकर सब भुवनोंके सामने खड़ा हुआ है। सनातन, परम पवित्र, महाप्रज्ञावान, देदीप्यमान, और वंदनीय अग्नि सब देवोंको हवियोंसे सन्तुष्ट करें। १

हे अग्निदेव, सब लोग आपकी स्तुति करते हैं और आपकी ज्वालाएं बड़ी सुन्दर दिखाई देती हैं। उन दीप्तिमान् ज्वालाओंके कारण आप तीनों स्थानोंको अथवा तीनों द्युलोकोंको प्रकाशित करके जगत्को स्पष्टरूपसे दिखाई देते हैं। जब लोग आपकी स्तुति करते हैं और यज्ञकुण्डमें घीकी धाराएं बहती हैं तब आप हमारे स्तुतियुक्त हवियोंको यज्ञके पहिले देवोंको अर्पण करके उन्हें विभूषित कीजिये। २

---

१२ हे जातवेदाः अग्ने, वय ते स्तोतारः (अस्माकं) सूरयः च उभयासः शर्मणि स्याम। पुरुचन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य वस्वः रायः नः शग्धि।

१३ हे अग्ने ये सूरयः स्तोतृभ्यः गो अग्रां अश्व पेशसं रातिम् उपसृजन्ति तान् च अस्मान् च वस्य आ प्र नेषिहि (वयं च) सुवीराः (सत) विदथे बृहत् वदेम।

१ पृथिव्यां निहितः (अयं) अग्निः समिद्धः (सन्) विश्वानि भुवनानि प्रत्यङ् अस्थात्। प्रदिवः पावकः सुमेधाः देवः अर्हन् (च अयं) अग्निः होता देवान् यजतु।

२ शुचिर्चिः नराशंसः (स्व) मह्ना (स्वानि) धामानि तिस्रः दिवश्च प्रति अञ्जन् (वर्तते) घृतप्रुषा मनसा हव्य उन्दन्; यज्ञस्य मूर्धन् देवान् समनक्तु।

हे अग्निदेव, आप पूजा करने योग्य हैं। आप सबसे पुराने हैं। हम आपकी हार्दिक स्तुति करते हैं। इस लिये आप देवोंको हविर्दानसे सन्तुष्ट कीजिये। जो कभी युद्धमें पीछे नहीं हटते ऐसे मरुत्–गणोंको आप ले आइये। हे ऋत्विज, कुशासनपर बैठे हुए इन्द्रकी आप पूजा कीजिये। ३

हे देदीप्यमान् कुशासन, दिव्य ऐश्वर्यकी प्राप्ति होनेके लिये हमने आपको अग्निके वेदीपर बिछाया है। आप वीर्य देनेवाले हैं, उन्नति करनेवाले हैं, और सम्पति बढानेवाले हैं। आप मक्खनकी तरह मुलाइम भी हैं। इस लिये हे वसुदेव, हे पूजा करने योग्य आदित्यदेव, हे देवगण, आप सब मिलकर इस आसनपर विराजमान् हूजिये। ४

जब हम नमस्कार और प्रार्थना करते हैं तब यज्ञ–शालाका लम्बा और चौड़ा दिव्य द्वार खुल जावे। कभी न टूटनेवाला यज्ञमण्डपका चौडा द्वार अब खुल जावे। यह बात सबको विदित ही है कि बड़े बड़े शूर पुरुष आपकी सेवा करते हैं; इस लिये आप अपने भक्तोंकी रक्षा करके उनको पवित्र करते हैं। ५ (२२)

देखिये, युवा रात और उषा सुन्दर पक्षीकी तरह मनोहर दिखाई देती है। वे आपसमें चिपके हुए (संलग्न) दिखाई देती है। प्रेमसे इच्छारूपी दूध देनेवाले आपही हैं। आपमें प्रेमरूपी रस पूर्ण रीतिसे भरा हुआ है। (कालरूप) सूत सबदूर फैला हुआ है और उसीका धागा आप सदा बीनती रहती हैं। हमारे यज्ञका स्वरूप और हमारा सत्कर्म आप सदा बढानेवाले हैं। ६

हमारे यज्ञके दो दिव्य यज्ञहोता सबसे पुराने बडे ज्ञानवान् और तेजस्वी हैं। आप हमारा यज्ञ ऋक्–स्तोत्रोंसे योग्य रीतिसे समाप्त करते हैं। आप योग्य समयपर देवोंका यजन करते हैं। पृथिवीके बीचमें (यज्ञवेदीपर) तीन उच्च आसनोंपर उन देवोंको बिठलाकर आप उनको विभूषित करते हैं। ७

---

३ अग्ने अर्हन् (त्वम्) मानुषात् पूर्वः मनसा ईळितः अद्य नः देवान् यक्षि। स त्वम् मरुतां अच्युतम् शर्धः आ वह, हे नराः बर्हिषदं इंद्र च यजध्वम्।

४ हे देव बर्हिः (त्वम्) राये अस्यां वेदी स्तीर्णम्। (त्वंच) वर्धमानं, सुवीरं, सुभरं घृतेन अक्तम् (इव पेशलं, तद) हे वसवः, हे विश्वे देवाः, यज्ञियासः आदित्याः इदं सीदत।

५ सुप्रायणाः द्वारो देवीः नमोभिः हूयमानाः उर्विया वि श्रयन्ताम्। सुवीरम् यशसम् (आर्य) वर्णम् पुनानाः अजुर्याः व्यचस्वतीश्च वि प्रथन्ताम्।

६ (इमे) उक्षिते वय्येव रण्वितं उषसानक्ता, समीची सुदुघे पयस्वती ततं (काल) तन्तु संवयन्ती, नः यज्ञस्य पेशः अपांसि च साधु (कृण्वाताम्)।

७ प्रथमा विदुष्टरा वपुष्टरा, दैव्या होतारा ऋचा ऋजु सम् यक्षतः। (तौ) देवान् ऋतुथा यजन्तौ (तान्) पृथिव्याः नाभा त्रिषु सानुषु अधि सम् अञ्जतः।

हमारा ध्यान सफल करनेवाली सरस्वति, देदीप्यमान् इळा और जगत्पर अधिकार चलानेवाली भारती तीनों देवी हमेशाकी तरह कुशासनपर बैठे हमें अपनी सहायता देवें और हमारी रक्षा करें। ८

देखिये; सुवर्णकी तरह कान्तिमान् और हृष्टपुष्ट वीर प्रकट होता है। आप प्रत्यक्ष यौवनका निधी ही हैं। त्वष्टादेव सब लोगोंकी प्रार्थनाको सुनते हैं। सब देवोंके आप प्यारे हैं। आपकी कृपासे हमारे कुलमें एक ऐसा (वीर) पुरुष उत्पन्न होवे जो सब कुलकी उन्नति करें और अन्तमें देवलोकको चले जाय। ९

यह वनस्पति यूप पास खडे रहकर (मेध्य हवि) को (मुक्त करें) छोड दे। जब ध्यान-स्तोत्र शुरू होते हैं तब अग्निदेव उसको पकायेंगे। देवलोकमें रहनेवाला और वहांकी रीतिका जाननेवाला शमिता (जो पशुका वध करता है) तीन बार सिञ्चित किये हुए हवियोंको देवोंकी ओर ले जावे। १०

इस अग्निमें घी सिञ्चित किया हुआ है। क्यों कि घीसे अग्नि प्रज्वलित होता है। घीमें अग्नि रहता है और घी अग्निका तेज है। हे इच्छाको सफल करनेवाले अग्नि, आप अपने स्वभावके अनुसार आनन्दित हूजिये और स्वाहा शब्दका उच्चारण करके हमने अर्पण किये हुए हवियोंको देवोंकी ओर पहुंचाइये। ११ (२३)

---

८ नः धियं साधयन्ती सरस्वती, देवी इळा, विश्वतूर्तिः भारती, (एताः) तिस्रः देवीः स्वधया इदं बर्हिः आ निषद्य, (इदं) शरणं अच्छिद्रम् पान्तु।

९ पिशंगरूपः सुभरः वीरः जायते (सः) श्रुष्टी, देवकामः च। अथ (सोयं) त्वष्टा अस्मे प्रजां वि स्यतु नाभिं च (यथा) सः देवानाम् पाथः अपि एतु।

१० वनस्पतिः (हव्यं) अवसृजन् उप अस्थात्, (ततः) अग्निः धीभिः हविः प्र सूदयाति। दैव्यः शमिता प्रजानन् तत् त्रिधा समनक्तं हव्यं देवेभ्यः उपनयतु।

११ घृतं मिमिक्षे, घृतम् अस्य योनिः, (अयं) घृते श्रितः, घृतम् उ अस्य धाम (भवति)। हे वृषभ (अग्ने) अनुष्वधं मादयस्व, स्वाहाकृतं हव्यम् वक्षि, (तस्मात् तद् देवेभ्यः) आ वह।

सूक्त ४.

॥ ऋषि–सोमाहुति । देवता–अग्नि ॥

अग्निका प्रकाश बहुतही उज्ज्वल है । आप पवित्र हैं । आप प्रत्यक्ष आनन्दकी मूर्ति हैं । आप सब लोगोंके महिमान् हैं । तुमारे कल्याणके लिये मैं तुमको आहुति अर्पण करता हूं । सब भक्तिवान लोग मित्रकी तरह सर्वज्ञ अग्निसे प्रेम करते हैं । १

भृगुऋषियोंने दिव्य उदकके निवास स्थानमें पहिले पहल अग्निदेव की सेवा की । उसके अनन्तर उन्होंने अग्निदेवको दो स्थानोंमें स्थापित किया । अग्निका बुद्धिरूप अश्व बडा वेगवान् है । देवोंके नियमके अनुसार चलनेवाले अग्निदेवका सब भुवनोंमें जय हो । २

अग्निदेवको मनुष्यलोकमें रहनेकी इच्छा हुई । इस लिये देवोंने मनुष्यलोकमें आपको स्थापित किया । सब देव आपसे बडा प्रेम करते हैं । दानी भक्त बडी नम्रतासे आपका सम्मान करते हैं । अग्निदेव उत्सुक रात्रियोंको प्रकाशित करते हैं । ३

जब अग्निदेव सब दूर फलते हैं तब आपकी कल्याण करनेवाली उन्नति होती हुई दिखाई देती है । जब आप प्रज्वलित होते हैं तब भी आपका दर्शन मनोहर होता है । जिस तरह जोरसे दौडनेवाला घोडा अपनी जिव्हाको (मुंहसे बारबार बाहर निकालकर) और अपनी पुच्छको हिलाता है उसी तरह अग्निदेव जब वनस्पतिमें प्रवेश करते हैं तब वनस्पति भी उसके बलसे हिलने लगती हैं । ४

---

१ सुद्योत्मानं, सुवृक्तिं, सुप्रयसं विशां अतिथिम् अग्निम् वः हुवे । यः जातवेदाः देवः आदेवे जने मित्र इव दिधिषाय्यः भूत् ।

२ इमं अपां सधस्थे विधन्तः भृगवः (इमं) आयोः विक्षु द्विता अदधुः । एषः जीराश्वः देवानां अरतिः अग्निः विश्वानि भूम अभि अस्तु ।

३ मानुषीषु विक्षु क्षेष्यन्तः देवासः अग्निं प्रियं मित्रं न (अत्र) धुः । यः दास्वते दक्षाय्यः, सः दमे आ उशतीः ऊर्म्याः दीदयत् ।

४ अस्य पुष्टिः स्वस्येव रण्वा, अस्य हियानस्य दक्षोः सम् दृष्टिः (रण्वा एव) । यः रथ्यः अत्यः न जिव्हाम् वारान् दोधवीति, ओषधीषु वि भरिभ्रत् ।

अग्निने अपने भयंकर सामर्थ्यसे पापरूप अरण्यको जलाया। कवियोंने मेरे पास आपके सामर्थ्यका वर्णन किया। जब आपकी स्तुति की जाती है तब आप भक्तोंके सामने प्रकट होते हैं और अपना सामर्थ्य दिखलाते हैं। जब अग्निदेवके स्वरूपका नाश (भस्म) होता है (बुझा हुआ दिखाई देता है) तब फिर आप बडे सुन्दर तेजसे प्रकाशमान् दिखाई देते हैं। ५

जब अग्नि बडे तेजसे प्रकाशमान् होते हैं तब मानों, ऐसा विदित होता है कि आप किसी अरण्यको जलानेके लिये तैयार हुए हैं। जिस तरह मार्गसे वेगसे बहते हुए जलके प्रवाहका बडा आवाज होता है अथवा जोरसे चलते हुए रथका भी बडा आवाज होता है, उसी तरह अग्नि भी अरण्यको जलाते समय बडा आवाज करते हैं। अग्निदेवका मार्ग काला है किन्तु आपका स्वरूप उज्वल और आनन्द देनेवाला है; जिस तरह मेघोंसे आकाश हंसता हुआ दिखाई देता है उसी तरह अग्निका मुख भी हंसता हुआ दिखाई देता है। ६

जब अग्निदेव (अरण्यको जलाकर) सब दूर फैलते हैं तब आप विस्तीर्ण पृथिवीको भी जलाते हैं। बनके पशुओंकी तरह स्वतन्त्र रीतिसे चारों ओर सञ्चार करते हैं। आपका मार्ग काला है, आप बडे देदीप्यमान् हैं और आपकी ध्वजा भी काली है। जब आप बनके वनस्पतियोंको जलाते हैं तब यह बात विदित होती है कि उसके बहानेसे मानों, आप सब पृथिवीको जलानेको तैयार हुए हैं। ७

प्राचीन कालमें आपने हमपर जो कृपा की है उस कृतज्ञताका स्मरण करके इस तीसरे यज्ञसभामें हम आपकी स्तुति करते हैं। इस लिये, हे अग्निदेव, हमपर कृपा करके आप हमे ऐसा ऐश्वर्य दीजिये जिससे हमें सज्जन, श्रेष्ठ, प्रतापवान् और सात्विक सुपुत्र प्राप्त होवे। ८

हे अग्निदेव, हम आपकी स्तुति और भक्ति एकाग्र ध्यानसे करते हैं। जो दुष्ट शत्रु हमारे सामने खडे हुए हैं उनका नाश करनेके लिये आपकी कृपासे ऐसे सामर्थ्य और पराक्रमका अपूर्व लाभ हम जैसे भक्त और यजमान दोनोंको सदा होवे जो युवा अवस्थामें प्राप्त होता है। ९ (२५)

---

५ यत् (अस्य) वनदः अभ्वम् आ पनन्त, (असौ) उशिग्भ्यो न (स्वीयं) वर्णम् मे अमिमीत। (तद्) यः जुजुर्वान् मुहुः आ युवा भूत् सः (अग्निः अयं) चित्रेण भामा रम्यः चिकित।

६ यः वना तातृषाणः न आ भाति, पथः वाः न, रथः इव स्वानीत् (अयं) कृष्णाध्वा तपुः रण्वः, नभः इव स्मयमानः द्यौरिव चिकेत।

७ यः वि अस्थात् उर्वीम् अभि वक्षत् सः अगोपाः पशुः न स्वयुः एति। (सः अयम्) शोचिष्मान् अतसानि उष्णन् कृष्णव्यथिः अग्निः भूम अस्वदयन् न।

८ ते पूर्वस्य अवसा अधीतौ तृतीये विदथे नु (इदं) मन्म शंसि। (अतः) हे अग्ने संयद्वीरं बृहन्तम् क्षुमन्तं वाजम् स्वपत्यं रयिम् अस्मे दाः।

९ हे अग्ने (त्वा) गुहा वनन्तः वय गृत्समदासः उपरा त्वया यथा अभि स्युः (यथा च) सुवीरासः अभिमातिषाहः (भवेम तथा) स्मत् सूरिभ्यो गृणते च तत् वयः धाः।

सूक्त ५.

॥ ऋषि–सोमाहुति । देवता–अग्नि ॥

यज्ञके होता, चैतन्य देनेवाला और जगत्‌के पिता अग्नि हमारे पितरपर कृपा करनेके लिये प्रकट हुए हैं। हमें कल्याण और विजय प्राप्त करानेके लिये आप हमारे यज्ञका स्वीकार करते हैं। इस लिये पराक्रमी और सात्विक अग्निको हम इस यज्ञमें पहिले बुलाते हैं। १

अग्निदेव यज्ञके नेता है। सातकर्मोंका सूत्र आपहीके अधिकारमें है। आप अब पोता बनकर देवोंके विषयमें आठवा कर्म भी मनुराजके घरकी तरह यहां भी करते हैं। २

जो हविर्भाग ऋत्विज अर्पण करते हैं जो प्रशंसायुक्त स्तोत्र ऋत्विज प्रेमसे गाते हैं उन् सब कर्मोंको आप जानते ही हैं। जिस तरह चक्रके चारों ओर धुरी होती है उसी तरह ऋत्विक कर्मोंका ज्ञान आपहीमें भरा हुआ है। ३

पवित्र यज्ञ कर्मके साथ पवित्र अग्नि सब लोगोंको मार्ग दिखलानेके लिये प्रकट हुए हैं। आपके कर्मके प्रचारमें कभी भी परिवर्तन नहीं होता है। वृक्षकी शाखाकी तरह कर्मके ज्ञानको जाननेवाला विद्वान ऋत्विज अग्निके सकल ज्ञानका एक छोटासा हिस्साही है। ४

जो तीन बहिन यज्ञकर्ममें उपस्थित थीं उनसे अधिक मनोहर बिजली रूपी चञ्चल धेनु अग्निरूपी नटकी कान्तिसे मोहित हुई। ५

जब बहिन घी हाथमें लेकर (अग्निमें डालनेके लिये) माताके पास खड़ी रहती है अथवा जिस तरह बोये हुए अनाजको जल गिरनेसे आनन्द होता है उसी तरह दोनों बहिनोंके आनेसे अध्वर्यु (अग्नि)को आनन्द होता है। ६

---

१ (अयं) चेतनः (जगतः) पिता च होता जेन्यं वसु प्रयक्षन् पितृभ्य ऊतये अजनिष्ट, तत् (अस्य) वाजिनः यमम् शकेम ।

२ यस्मिन् यज्ञस्य नेतरि सप्त रश्मयः आ तताः (सः) पोता मनुष्वत् तत् अष्टमं विश्वं दैव्यम् (कर्म) इन्वति (एव)।

३ यत् वा ईम् दधन्वे, यत् ब्रह्माणि (वा) वोचत् तत् वेः उ। (यतः) विश्वानि काव्यः नेमिः चक्रमिव परि अभवत् ।

४ (अयं) शुचिः प्रशास्ता शुचिनाहि क्रतुना साकं अजनि । अस्य ध्रुवा व्रता विद्वाँ, वयाःइव अनु रोहते ।

५ याः स्वसारः इदं ययुः याभ्यः च तिसृभ्यः (य) आ वरं ताः आयुवः धेनवः अस्य नेष्टुः वर्ण सचन्त ।

६ यदि घृतं भरन्ती स्वसा, मातुः उप अस्थित, (तदा) तासां आगतौ, यवः वृष्टी इव, अध्वर्युः मोदते ।

अग्नि निजको सन्तुष्ट करनेके लिये स्वयं पुरोहित बन जाय और ऋत्विजका कार्य अच्छी तरह समाप्त करें। आपका वर्णन करनेसे हमारा आनन्द बढेगा और हम भी यह यज्ञ आपहीको अर्पण करेंगे। ७

हे ज्ञानवान्, अग्निदेव, सब माननीय देवोंको सन्तुष्ट करनेके लिये हमने यह यज्ञ किया है। हे अग्निदेव, यह यज्ञ आपहीको अर्पण होवे। ८ (२६)

सूक्त ६.

॥ ऋषि–सोमाहुति । देवता–अग्नि ॥

हे अग्निदेव, मैंने अर्पण की हुई समिधा और उपासनाका आप प्रेमसे स्वीकार कीजिये। मैं आपकी जो स्तुति करता हूं उसको भी आप आनन्दसे सुनिये। १

हे तपस्तेजके कारण प्रकट होनेवाले अग्निदेव, बुद्धिरूप अश्व आपके बड़े प्यारे हैं। योग्य रीतिसे आपकी सेवा करनेका मुझे अवसर मिले। हे ज्ञानवान् देव, इस स्तुतिके द्वारा मैं आपकी सेवा करता हूं। २

हे देव, आपको स्तुति बड़ी प्यारी है। इस लिये स्तुतिके द्वारा आपकी सेवा करना हम चाहते हैं। हे सामर्थ्य और सम्पत्ति देनेवाले देव, आप भक्तिरूप सम्पत्तिकी इच्छा करते हैं। इस लिये भक्तिके द्वारा आपकी सेवा करनेकी हमारी इच्छा है। ३

हे धनके स्वामी, आप दिव्य धन देनेवाले हैं। कृपारूपी दान देनेवाले आप हमारे यजमान हूजिये। आप हमारे शत्रुओंका और द्वेष करनेवाले दुष्ट लोगोंका नाश कीजिये। ४

हे अग्निदेव, आप आकाशसे वर्षा कीजिये। नाश न होनेवाले सत्व-सामर्थ्य आप हमें अर्पण कीजिये। आप ऐसा कीजिये जिससे सैंकड़ों प्रकारका बल हमें प्राप्त होवे। ५

---

७ (अयम्) ऋत्विक् स्वः स्वाय धायसे ऋत्विजम् कृणुताम्। आत् वयं (अद्य) स्तोमं वनेम, यज्ञं च अरम् करिम।

८ यथा विद्वान् (अग्निः) विश्वेभ्यः यजतेभ्यः अरम् करत् (तथा) हे अग्ने यम् (इमं) यज्ञं वयम् चकृम (सः) अयं त्वे अपि (अर्पितः स्यात्)।

१ हे अग्ने इमां मे समिधं, इमां उपसदम् (इमौ च) वनेः उत च इमाः गिरः सु श्रुधि।

२ अग्ने, हे ऊर्जः नपात्, अश्वमिष्टेः अया ते विधेम, हे सुजात एना सूक्तेनापि (विधेम)।

३ तं त्वा गिर्वणसं गीर्भिः, हे द्रविणोदः, द्रविणस्यु (त्वां) वयं सपर्यवः सपर्येम।

४ हे वसुपते, वसुदावन, स त्वं मघवा सूरिः च बोधि, द्वेषांसि अस्मत् युयोधि।

५ स (त्वम्) नः दिवस्परि वृष्टिम् (कृणुहि), स (त्वं) नः अनर्वाणम् वाजम्, स (त्वं) नः सहस्रिणीः इषश्च (देहि)।

हे यौवनकी मूर्ति, हे देव प्रतिनिधि, हे पूजा करने योग्य पुरोहित, हमारी स्तुतियोंसे आप सन्तुष्ट हूजिये। आपके गुणोंका वर्णन-करनेवाले और आपकी कृपाकी इच्छा करनेवाले भक्तोंकी ओर आप आइये। ६

हे प्रज्ञावान् अग्नि, आप सर्वज्ञ है। आप निजके लोगोंका और दूसरे लोगोंका भी कल्याण करनेवाले हैं। देव और मनुष्यजाति दोनों प्रकारके लोगों में आप एकसा हेलमेलका बर्ताव करते हैं। ७

आप सब बातोंको जानतेही हैं। इस लिये आप ऐसा कीजिये जो देवोंको प्रिय है। हे ज्ञानवान् देव, यज्ञसे आप सब देवोंको यथेष्ट सन्तुष्ट कीजिये। आप इस कुशासनपर विराजमान् हूजिये। ८ (२७)

सूक्त ७.

॥ ऋषि–सोमाहुति । देवता–अग्नि ॥

हे तरुण अग्निदेव, हे भारत, आप बड़े श्रेष्ठ और तेजस्वी हैं। आप ऐसी सम्पत्ति ले आइये जिससे सब लोक लालसित होते हैं। १

हे अग्निदेव, देवों और माननीय मनुष्योंका सन्मान न करनेकी दुर्बुद्धिका प्रभाव हमपर न पड़े। सज्जन लोगोंका द्वेष करनेवाले और दुष्ट लोगोंके चंगुलसे हमें आप मुक्त कीजिये (छोड़ दीजिये)। २

जिस तरह पानीके छोटे नालेके परे मनुष्य सहज रीतिसे जा सकता हैं उसी तरह आपकी कृपासे सज्जन लोगोंका द्वेष करनेवाले शत्रुओंका नाश हम सहज रीतिसे करें। ३

हे परम पवित्र अग्नि, आप पवित्र और पूजा करने योग्य हैं। जब घीकी आहुति आपको अर्पण की जाती है तब आप अधिक प्रज्वलित होते हैं। ४

हे भारतके लोगोंपर प्रेम करनेवाले अग्निदेव, जब हम आपकी हार्दिक प्रार्थना करते हैं और सब आनन्द बढ़ानेवाले सामगायनोंसे और छन्दयुक्त ऋचाओंसे आपकी उपासना करते हैं तब आप हमको अपनाते हैं (हमारा कल्याण करते हैं)। ५

---

६ हे यविष्ठ दूत, हे यजिष्ठ होतः, (त्वम्) नः गिरा अवस्यवे (त्वां) ईळानाय आ गहि।

७ हे अग्ने हे कवे, (त्वम्) उभया जन्म विद्वान्, जन्याइव मित्र्यः दूतः (सन्, उभयोः) अन्तः ईयसे हि।

८ स (त्वम्) विद्वान (देवान्) आ च पिप्रयः हे चिकित्वः (तान्) आनुषक् यक्षि, अस्मिन् च बर्हिषि सत्सि।

१ हे यविष्ठ, हे भारत अग्ने, हे वसो श्रेष्ठं द्युमन्तम् पुरुस्पृह रयिम् आ भर।

२ देवस्य मर्त्यस्य च (विषयका) अरातिः नः मा ईशत, तस्याः उत द्विषश्च अति पर्षि (नः)।

३ उत त्वया उदन्या धारा इव विश्वाः द्विषः अति गाहेमहि।

४ हे पावक अग्ने, शुचिः वन्द्यः त्वम् घृतेभिः आहुतः (सन्) बृहत विरोचसे।

५ हे भारत अग्ने, त्व वशाभिः उक्षभिः अष्टापदीभिः आहुतः (सन्) नः असि।

हे अग्निदेव, वनस्पति आपका अन्न है; घी आपका पेय है। आप यज्ञके प्राचीन, उत्कृष्ट होता हैं। आप तपके सामर्थ्यसे प्रकट होनेवाले अद्भुत विभूति हैं। ६ (२८)

सूक्त ८.

॥ ऋषि–गृत्समद । देवता–अग्नि ॥

जिस तरह युद्धको जानेवाला योद्धा अपने रथका और बड़े बड़े घोडोंका वर्णन करता है उसी तरह हमको (हे भक्त), अग्निके अद्भुत दानका भी वर्णन करना चाहिये। १

अग्निदेव दान देनेवाले भक्तोंको अच्छी तरह मार्ग दिखलाते हैं। धर्मके अनुसार न चलनेवाले लोगोंको आप कष्ट देते हैं। किन्तु आपको कोई भी कष्ट नहीं दे सकता। आपका स्वरूप बहुत मनोहर है। इस लिये अग्निदेवको हम हवि अर्पण करते हैं। २

हे अग्निदेव, जब आपकी स्तुति की जाती है तब मानों, हर एक घरमें प्रातःकाल और सायंकालमें अग्निरूपी ईश्वरके वैभवका स्तवन किया जाता है। ३

जिस तरह सूर्य अपने रश्मियोंसे देदीप्यमान् होता है उसी तरह आप भी अपनी प्रभासे तेजःपुंज दिखाई देते हैं। आपकी नाश न होनेवाली ज्वालाओंके कारण सब वस्तुएं स्पष्ट-रूपसे दिखाई देती हैं। ४

सब वस्तुओंको खानेवाले (भक्षण करनेवाले) अग्निका (अखण्डपर) साम्राज्य है (वे अधिकार चलाते है)। उस महत्वके अनुसार सामगानसे हम आपके यशका वर्णन करते हैं और उसको बढ़ाते हैं। क्यों कि सब प्रकारका ऐश्वर्य आपहीमें इकट्ठा हुआ है। ५

अग्नि, इन्द्र, सोम, और अन्य देवताओंकी कृपासे हमें कोई भी कष्ट न दे सके। सज्जन) लोगोंके शत्रुओंका और उनकी सेनाका पराभव होवे। ६ (२९) (५

---

६ अन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नः वरेण्यः सहसः पुत्रः (अथ) होता अद्भुतः (खलु)।

१ वाजयन् रथान् इव नु यशतमस्य मीळ्हुषः अग्नेः योगान् उपस्तुहि।

२ यः दाशुषे सुनीथः (स्वयं) अजुर्यः अरिम् जम्भयन् चारुप्रतीकः (च सः) आहुतः।

३ यः उ दमेषु आ दोषोषसि श्रिया प्रशस्यते यस्य च व्रत न मीयते (सः आहुतः)।

४ यः स्वः न भानुना (रोचिष्मान) अर्चिषा च अजरः अभि अग्रानः चित्रः विभाति।

५ (इम) अग्निम् अत्रिम् (अस्य) स्वराज्यम् अनु, उक्थानि वव्रधुः, सः विश्वाः श्रियः अधि दधे।

६ अग्नेः इन्द्रस्य सोमस्य, देवानां ऊतिभिश्च वयम अरिष्यन्तः, पृतन्यतः अभिष्याम।

॥ इति द्वितीयाष्टके पंचमोऽध्याय ॥ ५ ॥

हिन्दी श्रुतिबोध.

हिन्दी, मराठी, गुजराती और अङ्गरेजी
चार भाषाओंमें अलग अलग
प्रसिद्ध होनेवाला
वेदोंका भाषांतर।

प्रति मासमें ६४ पृष्ठ; ३२ पृष्ठ संहिता [स्वर और पदपाठ सहित]
३२ पृष्ठ भाषान्तर

प्रबन्ध २] आषाढ संवत् १९७० - आगष्ट सन १९१३ [अंक १४

सम्पादक,
रामचंद्र विनायक पटवर्धन, बी. ए., एल एल. बी.
अच्युत बलवंत कोल्हटकर, बी. ए., एल एल. बी.
दत्तो अप्पाजी तुलजापुरकर, बी. ए. एल एल. बी.

वार्षिक मूल्य
डा. व्य. सहित. रु. ४

'श्रुतिबोध'
ऑफिस,
४७ कालबादेवी,
बम्बई.

प्रति अंकका मूल्य
आठ आने.

Printed at Shruti Bodh Printing Press & Published at Shruti-Bodh Office, 47, Kalbadevi, Bombay by Narayan Vasudeo Mahajani

॥ अथ द्वितीयाष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

॥ ९ ॥ ऋषिः—गृत्समदः । देवता—अग्निः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥ ९ ॥ नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥ १ ॥
त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता ।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः ॥ २ ॥
विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥ ३ ॥
अग्ने यजस्व हविषा यजीयाञ्छ्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः ।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥ ४ ॥

नि । होता । होतृऽसदने । विदानः । त्वेषः । दीदिऽवान् । असदत् । सुऽदक्षः । अदब्धव्रतऽप्रमतिः । वसिष्ठः । सहस्रम्ऽभरः । शुचिऽजिह्वः । अग्निः ॥१॥ त्वं । दूतः । त्वं । ऊं इति । नः । परःऽपाः । त्वं । वस्यः । आ । वृषभ । प्रऽनेता । अग्ने । तोकस्य । नः । तने । तनूनां । अप्रऽयुच्छन् । दीद्यत् । बोधि । गोपाः ॥ २ ॥ विधेम । ते । परमे । जन्मन् । अग्ने । विधेम । स्तोमैः । अवरे । सधऽस्थे । यस्मात् । योनेः । उत्ऽआरिथ । यजे । तं । प्र । त्वे इति । हवींषि । जुहुरे । संऽइद्धे ॥ ३ ॥ अग्ने । यजस्व । हविषा । यजीयान् । श्रुष्टी । देष्णं । अभि । गृणीहि । राधः । त्वं । हि । असि । रयिऽपतिः । रयीणां । त्वं । शुक्रस्य । वचसः । मनोता ॥ ४ ॥

उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।
कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥ ५ ॥
सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति ।
अदब्धो गोपा उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ १० ॥ ऋषिः—गृत्समदः । देवता—अग्निः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥ १० ॥ जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेळस्पदे मनुषा यत्समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥ १ ॥
श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥ २ ॥
उत्तानायामजनयन्त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥ ३ ॥

उभयं । ते । न । क्षीयते । वसव्यं । दिवेऽदिवे । जायमानस्य । दस्म । कृधि । क्षुऽमंतं । जरितारं । अग्ने । कृधि । पतिं । सुऽअपत्यस्य । रायः ॥ ५ ॥ सः । एना । अनीकेन । सुऽविदत्रः । अस्मे इति । यष्टा । देवान् । आऽयजिष्ठः । स्वस्ति । अदब्धः । गोपाः । उत । नः । परःऽपाः । अग्ने । द्युऽमत् । उत । रेवत् । दिदीहि ॥ ६ ॥ १ ॥

जोहूत्रः । अग्निः । प्रथमः । पिताऽइव । इळः । पदे । मनुषा । यत् । संऽइद्धः । श्रियं । वसानः । अमृतः । विऽचेताः । मर्मृजेन्यः । श्रवस्यः । सः । वाजी ॥ १ ॥ श्रूयाः । अग्निः । चित्रऽभानुः । हवं । मे । विश्वाभिः । गीःऽभिः । अमृतः । विऽचेताः । श्यावा । रथं । वहतः । रोहिता । वा । उत । अरुषा । अह । चक्रे । विऽभृत्रः ॥ २ ॥ उत्तानायां । अजनयन् । सुऽसूतं । भुवत् । अग्निः । पुरुऽपेशासु । गर्भः । शिरिणायां । चित् । अक्तुना । महःऽभिः । अपरिऽवृतः । वसति । प्रऽचेताः ॥ ३ ॥

जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥ ४ ॥
आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा३ जर्भुराणः ॥ ५ ॥
ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद्वदेम ।
अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥ ६ ॥ २ ॥

॥ ११ ॥ ऋषिः–गृत्समदः । देवता–इन्द्रः । छन्दः–त्रिष्टुप् ॥

॥ ११ ॥ श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम् ।
इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः ॥ १ ॥
सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः ॥ २ ॥

जिघर्मि । अग्नि । हविषा । घृतेन । प्रतिऽक्षियंतं । भुवनानि । विश्वा । पृथुं । तिरश्चा । वयसा । बृहंतं । व्यचिष्ठं । अन्नैः । रभसं । दृशानं ॥ ४ ॥ आ । विश्वतः । प्रत्यंचं । जिघर्मि । अरक्षसा । मनसा । तत् । जुषेत । मर्यऽश्रीः । स्पृहयत्ऽवर्णः । अग्निः । न । अभिऽमृशे । तन्वा । जर्भुराणः ॥ ५ ॥ ज्ञेयाः । भागं । सहसानः । वरेण । त्वाऽदूतासः । मनुऽवत् । वदेम । अनूनं । अग्नि । जुह्वा । वचस्या । मधुऽपृचं । धनऽसाः । जोहवीमि ॥ ६ ॥ २ ॥

श्रुधि । हवं । इंद्र । मा । रिषण्यः । स्याम । ते । दावने । वसूनां । इमाः । हि । त्वां । ऊर्जः । वर्धयंति । वसुऽयवः । सिंधवः । न । क्षरंतः ॥ १ ॥ सृजः । महीः । इंद्र । याः । अपिन्वः । परिऽस्थिताः । अहिना । शूर । पूर्वीः । अमर्त्यं । चित् । दासं । मन्यमानं । अव । अभिनत् । उक्थैः । वावृधानः ॥ २ ॥

उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥ ३ ॥
शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः ।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥ ४ ॥
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥ ५ ॥ ३ ॥
स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥ ६ ॥
हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम् ।
वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित्सरिष्यन् ॥ ७ ॥

उक्थेषु । इत् । नु । शूर । येषु । चाकन् । स्तोमेषु । इंद्र । रुद्रियेषु । च । तुभ्यं । इत् । एताः । यासु । मंदसानः । प्र । वायवे । सिस्रते । न । शुभ्राः ॥ ३ ॥ शुभ्रं । नु । ते । शुष्मं । वर्धयंतः । शुभ्रं । वज्रं । बाह्वोः । दधानाः । शुभ्रः । त्वं । इंद्र । वावृधानः । अस्मे इति । दासीः । विशः । सूर्येण । सह्याः ॥ ४ ॥ गुहा । हितं । गुह्यं । गूळ्हं । अपऽसु । अपिऽवृतं । मायिनं । क्षियंतं । उतो इति । अपः । द्यां । तस्तभ्वांसं । अहन् । अहिं । शूर । वीर्येण ॥ ५ ॥ ३ ॥ स्तवं । नु । ते । इंद्र । पूर्व्या । महानि । उत । स्तवाम । नूतना । कृतानि । स्तवं । वज्रं । बाह्वोः । उशंतं । स्तवं । हरी इति । सूर्यस्य । केतू इति ॥ ६ ॥ हरी इति । नु । ते । इंद्र । वाजयंता । घृतऽश्चुतं । स्वारं । अस्वार्ष्टां । वि । समना । भूमिः । अप्रथिष्ट । अरंस्त । पर्वतः । चित् । सरिष्यन् ॥ ७ ॥

नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् ।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि ॥ ८ ॥
इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः ।
अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥ ९ ॥
अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वीत् ।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य ॥ १० ॥ ४ ॥
पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥ ११ ॥
त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।
अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥ १२ ॥

नि । पर्वतः । सादि । अप्रऽयुच्छन् । सं । मातृऽभिः । वावशानः । अक्रान् । दूरे । पारे । वाणीं । वर्धयंतः । इंद्रऽइषितां । धमनिं । पप्रथन् । नि ॥ ८ ॥ इंद्रः । महां । सिंधुं । आऽशयानं । मायाऽविनं । वृत्रं । अस्फुरत् । निः । अरेजेतां । रोदसी इति । भियाने इति । कनिक्रदतः । वृष्णः । अस्य । वज्रात् ॥ ९ ॥ अरोरवीत् । वृष्णः । अस्य । वज्रः । अमानुषं । यत् । मानुषः । निऽजूर्वीत् । नि । मायिनः । दानवस्य । मायाः । अपादयत् । पपिऽवान् । सुतस्य ॥ १० ॥ ४ ॥ पिबऽपिब । इत् । इंद्र । शूर । सोमं । मंदंतु । त्वा । मंदिनः । सुतासः । पृणंतः । ते । कुक्षी इति । वर्धयंतु । इत्था । सुतः । पौरः । इंद्रं । आव ॥ ११ ॥ त्वे इति । इंद्र । अपि । अभूम । विप्राः । धियं । वनेम । ऋतऽया । सपंतः । अवस्यवः । धीमहि । प्रऽशस्तिं । सद्यः । ते । रायः । दावने । स्याम ॥ १२ ॥

स्याम ते त इन्द्र ये त ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।
शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवास्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥ १३ ॥
रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्ध इन्द्र मारुतं नः ।
सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥ १४ ॥
व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत्सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।
अस्मान्त्सु पृत्स्वा तरुत्रावर्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ॥ १५ ॥ ५ ॥
बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान् ।
स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत्त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥ १६ ॥
उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र ।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥ १७ ॥

स्याम । ते । ते । इंद्र । ये । ते । ऊती । अवस्यवः । ऊर्जं । वर्धयंतः । शुष्मिन्ऽतमं । यं । चाकनाम । देवाः । अस्मे इति । रयिं । रासि । वीरऽवंतं ॥ १३ ॥ रासि । क्षयं । रासि । मित्रं । अस्मे इति । रासि । शर्धः । इंद्र । मारुतं । नः । सऽजोषसः । ये । च । मंदसानाः । प्र । वायवः । पांति । अग्रऽनीतिं ॥ १४ ॥ व्यंतु । इत् । नु । येषु । मंदसानः । तृपत् । सोमं । पाहि । द्रह्यत् । इंद्र । अस्मान् । सु । पृत्ऽसु । आ । तरुत्र । अवर्धयः । द्यां । बृहत्ऽभिः । अर्कैः ॥ १५ ॥ बृहंतः । इत् । नु । ये । ते । तरुत्र । उक्थेभिः । वा । सुम्नं । आऽविवासान् । स्तृणानासः । बर्हिः । पस्त्यऽवत् । त्वाऽऊताः । इत् । इंद्र । वाजं । अग्मन् ॥ १६ ॥ उग्रेषु । इत् । नु । शूर । मंदसानः । त्रिऽकद्रुकेषु । पाहि । सोमं । इंद्र । प्रऽदोधुवत् । श्मश्रुषु । प्रीणानः । याहि । हरिऽभ्यां । सुतस्य । पीतिं ॥ १७ ॥

धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम् ।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥ १८ ॥
सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रितायं ॥ १९ ॥
अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः ।
अवर्तयत्सूर्यो न चक्रं भिनद्वलमिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥ २० ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥२१॥६॥१॥

॥ द्वितीयोऽनुवाकः ॥

॥ १२ ॥ ऋषिः-गृत्समदः । देवता-इन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥ १२ ॥ यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान्क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ १ ॥

धिष्व । शवः । शूर । येन । वृत्रं । अवऽअभिनत् । दानुं । और्णऽवाभं । अप । अवृणोः । ज्योतिः । आर्याय । नि । सव्यतः । सादि । दस्युः । इंद्र ॥ १८ ॥ सनेम । ये । ते । ऊतिऽभिः । तरंतः । विश्वाः । स्पृधः । आर्येण । दस्यून् । अस्मभ्यं । तत् । त्वाष्ट्रं । विश्वऽरूपं । अरंधयः । साख्यस्य । त्रितायं ॥ १९ ॥ अस्य । सुवानस्य । मंदिनः । त्रितस्य । नि । अर्बुदं । ववृधानः । अस्तरित्यस्तः । अवर्तयत् । सूर्यः । न । चक्रं । भिनत् । वलं । इंद्रः । अंगिरस्वान् ॥ २० ॥ नूनं । सा । ते । प्रति । वरं । जरित्रे । दुहीयत् । इंद्र । दक्षिणा । मघोनी । शिक्ष । स्तोतृऽभ्यः । मा । अति । धक् । भगः । नः । बृहत् । वदेम । विदथे । सुवीराः ॥ २१ ॥ १ ॥

यः । जातः । एव । प्रथमः । मनस्वान् । देवः । देवान् । क्रतुना । परिऽअभूषत् । यस्य । शुष्मात् । रोदसी इति । अभ्यसेतां । नृम्णस्य । मह्ना । सः । जनासः । इंद्रः ॥ १ ॥

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥ २ ॥
यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून्यो गा उदाजदपधा वलस्य ।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः ॥ ३ ॥
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँ लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥ ४ ॥
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम् ।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥ ५ ॥ ७ ॥
यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥ ६ ॥

यः । पृथिवीं । व्यथमानां । अदृंहत् । यः । पर्वतान् । प्रऽकुपितान् । अरम्णात् । यः । अन्तरिक्षं । विऽममे । वरीयः । यः । द्यां । अस्तभ्नात् । सः । जनासः । इंद्रः ॥ २ ॥ यः हत्वा । अहिं । अरिणात् । सप्त । सिंधून् । यः । गाः । उत्ऽआजत् । अपऽधा । वलस्य । यः । अश्मनोः । अंतः । अग्निं । जजान । संऽवृक् । समत्ऽसु । सः । जनासः । इंद्रः ॥ ३ ॥ येन । इमा । विश्वा । च्यवना । कृतानि । यः । दासं । वर्णं । अधरं । गुहा । अकरित्यकः । श्वघ्नीऽइव । यः । जिगीवान् । लक्षं । आदत् । अर्यः । पुष्टानि । सः । जनासः । इंद्रः ॥ ४ ॥ यं । स्म । पृच्छंति । कुह । सः । इति । घोरं । उत । ईं । आहुः । न । एषः । अस्ति । इति । एनं । सः । अर्यः । पुष्टीः । विजःऽइव । आ । मिनाति । श्रत् । अस्मै । धत्त । सः । जनासः । इंद्रः ॥ ५ ॥ ७ ॥ यः । रध्रस्य । चोदिता । यः । कृशस्य । यः । ब्रह्मणः । नाधमानस्य । कीरेः । युक्तऽग्राव्णः । यः । अविता । सुऽशिप्रः । सुतऽसोमस्य । सः । जनासः । इंद्रः ॥ ६ ॥

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ७ ॥
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥ ८ ॥
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥ ९ ॥
यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥ १० ॥ ८ ॥
यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥ ११ ॥

यस्य । अश्वासः । प्रऽदिशि । यस्य । गावः । यस्य । ग्रामाः । यस्य । विश्वे । रथासः । यः । सूर्यं । यः । उषसं । जजान । यः । अपां । नेता । सः । जनासः । इंद्रः ॥ ७ ॥ यं । क्रंदसी इति । संयती इति संऽयती । विह्वयेते इति विऽह्वयेते । परे । अवरे । उभयाः । अमित्राः । समानं । चित् । रथं । आतस्थिऽवांसा । नाना । हवेते इति । सः । जनासः । इंद्रः ॥ ८ ॥ यस्मात् । न । ऋते । विऽजयंते । जनासः । यं । युध्यमानाः । अवसे । हवंते । यः । विश्वस्य । प्रतिऽमानं । बभूव । यः । अच्युतऽच्युत् । सः । जनासः । इंद्रः ॥ ९ ॥ यः । शश्वतः । महि । एनः । दधानान् । अमन्यमानान् । शर्वा । जघान । यः । शर्धते । न । अनुऽददाति । शृध्यां । यः । दस्योः । हंता । सः । जनासः । इंद्रः ॥ १० ॥ ८ ॥ यः । शंबरं । पर्वतेषु । क्षियंतं । चत्वारिंश्यां । शरदि । अनुऽअविंदत् । ओजायमानं । यः । अहिं । जघान । दानुं । शयानं । सः । जनासः । इंद्रः ॥ ११ ॥

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥ १२ ॥
द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥ १३ ॥
यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥ १४ ॥
यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥ १५ ॥ ९ ॥

॥ १३ ॥ ऋषिः—गृत्समदः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥१३॥ ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्धते ।
तदाहना अभवत्पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥ १ ॥

यः । सप्तऽरश्मिः । वृषभः । तुविष्मान् । अवऽअसृजत् । सर्तवे । सप्त । सिन्धून् । यः । रौहिणं । अस्फुरत् । वज्रऽबाहुः । द्यां । आऽरोहंतं । सः । जनासः । इंद्रः ॥ १२ ॥ द्यावा । चित् । अस्मै । पृथिवी इति । नमेते इति । शुष्मात् । चित् । अस्य । पर्वताः । भयंते । यः । सोमऽपाः । निऽचितः । वज्रऽबाहुः । यः । वज्रऽहस्तः । सः । जनासः । इंद्रः ॥ १३ ॥ यः । सुन्वंतं । अवति । यः । पचंतं । यः । शंसंतं । यः । शशमानं । ऊती । यस्य । ब्रह्म । वर्धनं । यस्य । सोमः । यस्य । इदं । राधः । सः । जनासः । इंद्रः ॥ १४ ॥ यः । सुन्वते । पचते । दुध्रः । आ । चित् । वाजं । दर्दर्षि । सः । किल । असि । सत्यः । वयं । ते । इंद्र । विश्वह । प्रियासः । सुऽवीरासः । विदथं । आ । वदेम ॥ १५ ॥ ९ ॥

ऋतुः । जनित्री । तस्याः । अपः । परि । मक्षु । जातः । आ । अविशत् । यासु । वर्धते । तत् । आहनाः । अभवत् । पिप्युषी । पयः । अंशोः । पीयुषं । प्रथमं । तत् । उक्थ्यं ॥ १ ॥

सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम् ।
समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ २ ॥
अन्वेको वदति यद्ददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ३ ॥
प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥ ४ ॥
अधाकृणोः पृथिवीं सन्दृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक्पथः ।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः ॥ ५ ॥ १० ॥
यो भोजनं च दयसे च वर्धनमार्द्रादा शुष्कं मधुमद्दुदोहिथ ।
सः शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥ ६ ॥

सध्री । ईं । आ । यंति । परिं । बिभ्रतीः । पयः । विश्वऽप्स्न्याय । प्र । भरंत । भोजनं । समानः । अध्वा । प्रऽवतां । अनुऽस्यदे । यः । ता । अकृणोः । प्रथमं । सः । असि । उक्थ्यः ॥ २ ॥ अनु । एकः । वदति । यत् । ददाति । तत् । रूपा । मिनन् । तत्ऽअपाः । एकः । ईयते । विश्वाः । एकस्य । विऽनुदः । तितिक्षते । यः । ता । अकृणोः । प्रथमं । सः । असि । उक्थ्यः ॥ ३ ॥ प्रऽजाभ्यः । पुष्टिं । विऽभजंतः । आसते । रयिंऽइव । पृष्ठं । प्रऽभवंतं । आऽयते । असिन्वन् । दंष्ट्रैः । पितुः । अत्ति । भोजनं । यः । ता । अकृणोः । प्रथमं । सः । असि । उक्थ्यः ॥४॥ अध । अकृणोः । पृथिवीं । संऽदृशे । दिवे । यः । धौतीनां । अहिऽहन् । अरिणक् । पथः । तं । त्वा । स्तोमेभिः । उदऽभिः । न । वाजिनं । देवं । देवाः । अजनन् । सः । असि । उक्थ्यः ॥ ५ ॥ १० ॥ यः । भोजनं । च । दयसे । च । वर्धनं । आर्द्रात् । आ । शुष्कं । मधुऽमत् । दुदोहिथ । सः । शेवऽधिं । नि । दधिषे । विवस्वति । विश्वस्य । एकः । ईशिषे । सः । असि । उक्थ्यः ॥ ६ ॥

यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधि दाने व्य१वनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ॥ ७ ॥
यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत्सास्युक्थ्यः ॥ ८ ॥
शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ ९ ॥
विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम् ।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥ १०॥११॥
सुप्रवाचनं तव वीर वीर्य१ं यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु ।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥ ११ ॥

यः । पुष्पिणीः । च । प्रऽस्वः । च । धर्मणा । अधि । दाने । वि । अवनीः । अधारयः । यः । च । असमाः । अजनः । दिद्युतः । दिवः । उरुः । ऊर्वान् । अभितः । सः । असि । उक्थ्यः ॥ ७ ॥ यः । नार्मरं । सहऽवसुं । निऽहन्तवे । पृक्षाय । च । दासऽवेशाय । च । अवहः । ऊर्जयन्त्याः । अपरिऽविष्टं । आस्यं । उत । एव । अद्य । पुरुऽकृत् । सः । असि । उक्थ्यः ॥ ८ ॥ शतं । वा । यस्य । दश । साकं । आ । अद्यः । एकस्य । श्रुष्टौ । यत् । ह । चोदं । आविथ । अरज्जौ । दस्यून् । सं । उनप् । दभीतये । सुप्रऽअव्यः । अभवः । सः । असि । उक्थ्यः ॥ ९ ॥ विश्वा । इत् । अनु । रोधनाः । अस्य । पौंस्यं । ददुः । अस्मै । दधिरे । कृत्नवे । धनं । षट् । अस्तभ्नाः । विऽस्तिरः । पञ्च । संऽदृशः । परि । परः । अभवः । सः । असि । उक्थ्यः ॥ १० ॥ ११ ॥ सुऽप्रवाचनं । तव । वीर । वीर्यं । यत् । एकेन । क्रतुना । विन्दसे । वसु । जातूऽस्थिरस्य । प्र । वयः । सहस्वतः । या । चकर्थ । सः । इन्द्र । विश्वा । असि । उक्थ्यः ॥ ११ ॥

अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम् ।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः ॥ १२ ॥
अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १३ ॥ १२ ॥

॥ १४ ॥ ऋषिः गृत्समदः । देवता-इन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥ १४ ॥ अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेभिः सिञ्चता मद्यमन्धः ।
कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥ १ ॥
अध्वर्यवो यो अपो वव्रिवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशायँ एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥ २ ॥
अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥ ३ ॥

अरमयः । सरःऽअपसः । तराय । कं । तुर्वीतये । च । वय्याय । च । स्रुतिं । नीचा । सन्तं । उत् । अनयः । पराऽवृजं । प्र । अंधं । श्रोणं । श्रवयन् । सः । असि । उक्थ्यः ॥ १२ ॥ अस्मभ्यं । तत् । वसो इति । दानाय । राधः । सं । अर्थयस्व । बहु । ते । वसव्यं । इंद्र । यत् । चित्रं । श्रवस्याः । अनु । द्यून् । बृहत् । वदेम । विदथे । सुऽवीराः ॥ १३ ॥ १२ ॥

अध्वर्यवः । भरत । इंद्राय । सोमं । आ । अमत्रेभिः । सिंचत । मद्यं । अंधः । कामी । हि । वीरः । सदं । अस्य । पीतिं । जुहोत । वृष्णे । तत् । इत् । एषः । वष्टि ॥ १ ॥ अध्वर्यवः । यः । अपः । वव्रिऽवांसं । वृत्रं । जघान । अशन्याऽइव । वृक्षं । तस्मै । एतं । भरत । तत्ऽवशाय । एषः । इंद्रः । अर्हति । पीतिं । अस्य ॥ २ ॥ अध्वर्यवः । यः । दृभीकं । जघान । यः । गाः । उत्ऽआजत् । अप । हि । वलं । वरिति वः । तस्मै । एतं । अंतरिक्षे । न । वातं । इंद्रं । सोमैः । आ । ऊर्णुत । जूः । न । वस्त्रैः ॥ ३ ॥

अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥ ४ ॥
अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥ ५ ॥
अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥ ६ ॥ १३ ॥
अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्न्यवृणग्भरता सोममस्मै ॥ ७ ॥
अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥ ८ ॥

अध्वर्यवः । यः । उरणं । जघानं । नवं । चख्वांसं । नवतिं । च । बाहून् । यः ।
अर्बुदं । अवं । नीचा । बबाधे । तं । इंद्रं । सोमस्य । भृथे । हिनोत ॥ ४ ॥
अध्वर्यवः । यः । सु । अश्नं । जघानं । यः । शुष्णं । अशुषं । यः । विऽअंसं । यः ।
पिप्रुं । नमुचिं । यः । रुधिऽक्रां । तस्मै । इंद्राय । अंधसः । जुहोत ॥ ५ ॥ अध्वर्यवः ।
यः । शतं । शंबरस्य । पुरः । बिभेदं । अश्मनाऽइव । पूर्वीः । यः । वर्चिनः । शतं ।
इंद्रः । सहस्रं । अपऽअवपत् । भरत । सोमं । अस्मै ॥ ६ ॥ १३ ॥ अध्वर्यवः । यः ।
शतं । आ । सहस्रं । भूम्याः । उपऽस्थे । अवपत् । जघन्वान् । कुत्सस्य । आयोः ।
अतिथिऽग्वस्य । वीरान् । नि । अवृणक् । भरत । सोमं । अस्मै ॥ ७ ॥ अध्वर्यवः ।
यत् । नरः । कामयाध्वे । श्रुष्टी । वहंतः । नशथ । तत् । इंद्रे । गभस्तिऽपूतं । भरत ।
श्रुताय । इंद्राय । सोमं । यज्यवः । जुहोत ॥ ८ ॥

अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥ ९ ॥
अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद्दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥ १० ॥
अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।
तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥ ११ ॥
अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १२ ॥ १४ ॥

॥ १५ ॥ ऋषि-गृत्समदः । देवता-इन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥१५॥ प्र घा न्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥ १ ॥

अध्वर्यवः । कर्तन । श्रुष्टिं । अस्मै । वने । निऽपूतं । वने । उत् । नयध्वं । जुषाणः । हस्त्यं । अभि । वावशे । वः । इंद्राय । सोमं । मदिरं । जुहोत ॥ ९ ॥ अध्वर्यवः । पयसा । ऊधः । यथा । गोः । सोमेभिः । ईं । पृणत । भोजं । इंद्रं । वेद । अहं । अस्य । निऽभृतं । मे । एतत् । दित्संतं । भूयः । यजतः । चिकेत ॥ १० ॥ अध्वर्यवः । यः । दिव्यस्य । वस्वः । यः । पार्थिवस्य । क्षम्यस्य । राजा । तं । ऊर्दरं । न । पृणत । यवेन । इंद्रं । सोमेभिः । तत् । अपः । वः । अस्तु ॥ ११ ॥ अस्मभ्यं । तत् । वसो इति । दानाय । राधः । सं । अर्थयस्व । बहु । ते । वसव्यं । इंद्र । यत् । चित्रं । श्रवस्याः । अनु । द्यून् । बृहत् । वदेम । विदथे । सुऽवीराः ॥ १२ ॥ १४ ॥

प्र । घ । नु । अस्य । महतः । महानि । सत्या । सत्यस्य । करणानि । वोचं । त्रिऽकद्रुकेषु । अपिबत् । सुतस्य । अस्य । मदे । अहिं । इंद्रः । जघान ॥१॥

अवंशे द्यामस्तभायद्बृहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।
स धारयत्पृथिवीं पप्रथच्च सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ २ ॥
सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।
वृथासृजत्पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ३ ॥
स प्रवोळ्हॄन्परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ ।
सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ४ ॥
स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात्सो अस्नातॄनपारयत्स्वस्ति ।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ५ ॥ १५ ॥
सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ६ ॥

अवंशे । द्यां । अस्तभायत् । बृहंतं । आ । रोदसी इति । अपृणत् । अंतरिक्षं । सः । धारयत् । पृथिवीं । पप्रथत् । च । सोमस्य । ता । मदे । इंद्रः । चकार ॥ २ ॥ सद्मऽइव । प्राचः । वि । मिमाय । मानैः । वज्रेण । खानि । अतृणत् । नदीनां । वृथा । असृजत् । पथिऽभिः । दीर्घऽयाथैः । सोमस्य । ता । मदे । इंद्रः । चकार ॥ ३ ॥ सः । प्रऽवोळ्हॄन् । परिऽगत्य । दभीतेः । विश्वं । अधाक् । आयुधं । इद्धे । अग्नौ । सं । गोभिः । अश्वैः । असृजत् । रथेभिः । सोमस्य । ता । मदे । इंद्रः । चकार ॥४॥ सः । ईं । महीं । धुनिं । एतोः । अरम्णात् । सः । अस्नातॄन् । अपारयत् । स्वस्ति । ते । उत्ऽस्नाय । रयिं । अभि । प्र । तस्थुः । सोमस्य । ता । मदे । इंद्रः । चकार ॥ ५ ॥ १५ ॥ सः । उदंचं । सिंधुं । अरिणात् । महिऽत्वा । वज्रेण । अनः । उषसः । सं । पिपेष । अजवसः । जविनीभिः । विऽवृश्चन् । सोमस्य । ता । मदे । इंद्रः । चकार ॥ ६ ॥

स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत्पराक्षुक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद्व्यनगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ७ ॥
भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ८ ॥
स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ९ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १० ॥ १६ ॥

॥ १६ ॥ ऋषिः-गृत्समदः । देवता-इन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥१६॥ प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥ १ ॥

सः । विद्वान् । अपऽगोहं । कनीनां । आविः । भवन् । उत् । अतिष्ठत् । पराऽवृक् ।
प्रति । श्रोणः । स्थात् । वि । अनक् । अचष्ट । सोमस्य । ता । मदे । इंद्रः ।
चकार ॥ ७ ॥ भिनत् । वलं । अंगिरःऽभिः । गृणानः । वि । पर्वतस्य । दृंहितानि ।
ऐरत् । रिणक् । रोधांसि । कृत्रिमाणि । एषां । सोमस्य । ता । मदे । इंद्रः ।
चकार ॥ ८ ॥ स्वप्नेन । अभिऽउप्य । चुमुरिं । धुनिं । च । जघंथ । दस्युं । प्र ।
दभीतिं । आवः । रंभी । चित् । अत्र । विविदे । हिरण्यं । सोमस्य । ता । मदे ।
इंद्रः । चकार ॥ ९ ॥ नूनं । सा । ते । प्रति । वरं । जरित्रे । दुहीयत् । इंद्र । दक्षिणा ।
मघोनी । शिक्ष । स्तोतृऽभ्यः । मा । अति । धक् । भगः । नः । बृहत् । वदेम ।
विदथे । सुऽवीराः ॥ १० ॥ १६ ॥

प्र । वः । सतां । ज्येष्ठऽतमाय । सुऽस्तुतिं । अग्नौऽइव । संऽइधाने । हविः ।
भरे । इंद्रं । अजुर्यं । जरयंतं । उक्षितं । सनात् । युवानं । अवसे । हवामहे ॥ १ ॥

यस्मादिन्द्राद्बृहतः किं चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्सम्भृताधि वीर्या ।
जठरे सोमं तन्वी३सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥ २ ॥
न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥ ३ ॥
विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते ।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥ ४ ॥
वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे ।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति ॥ ५ ॥ १७ ॥
वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा ।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृप्णुहि ॥ ६ ॥

यस्मात् । इंद्रात् । बृहतः । किं । चन । ईं । ऋते । विश्वानि । अस्मिन् । संऽभृता । अधि । वीर्या । जठरे । सोमं । तन्वि । सहः । महः । हस्ते । वज्रं । भरति । शीर्षणि । क्रतुं ॥ २ ॥ न । क्षोणीभ्यां । परिऽभ्वे । ते । इंद्रियं । न । समुद्रैः । पर्वतैः । इंद्र । ते । रथः । न । ते । वज्रं । अनु । अश्नोति । कः । चन । यत् । आशुऽभिः । पतसि । योजना । पुरु ॥ ३ ॥ विश्वे । हि । अस्मै । यजताय । धृष्णवे । क्रतुं । भरंति । वृषभाय । सश्चते । वृषा । यजस्व । हविषा । विदुःऽतरः । पिब । इंद्र । सोमं । वृषभेण । भानुना ॥ ४ ॥ वृष्णः । कोशः । पवते । मध्वः । ऊर्मिः । वृषभऽअन्नाय । वृषभाय । पातवे । वृषणा । अध्वर्यू इति । वृषभासः । अद्रयः । वृषणं । सोमं । वृषभाय सुस्वति ॥ ५ ॥ १७ ॥ वृषा । ते । वज्रः । उत । ते । वृषा । रथः । वृषणा । हरी इति । वृषभाणि । आयुधा । वृष्णः । मदस्य । वृषभ । त्वं । ईशिषे । इंद्र । सोमस्य । वृषभस्य । तृप्णुहि ॥ ६ ॥

प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥ ७ ॥
पुरा सम्बाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥ १८ ॥

॥ १७ ॥ ऋषिः-गृत्समदः । देवता-इन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥१७॥ तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नथोदीरते ।
विश्वा यद्गोत्रा सहसा परीवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् ॥ १ ॥
स भूतु यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।
शूरो यो युत्सु तन्वं परिव्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥ २ ॥

प्र । ते । नावं । न । समने । वचस्युवं । ब्रह्मणा । यामि । सवनेषु । दधृषिः । कुवित् । नः । अस्य । वचसः । निऽबोधिषत् । इंद्रं । उत्सं । न । वसुनः । सिचामहे ॥ ७ ॥ पुरा । संऽबाधात् । अभि । आ । ववृत्स्व । नः । धेनुः । न । वत्सं । यवसस्य । पिप्युषी । सकृत् । सु । ते । सुमतिऽभिः । शतक्रतो इति शतऽक्रतो । सं । पत्नीभिः । न । वृषणः । नसीमहि ॥ ८ ॥ नूनं । सा । ते । प्रति । वरं । जरित्रे । दुहीयत् । इंद्र । दक्षिणा । मघोनी । शिक्ष । स्तोतृऽभ्यः । मा । अति । धक् । भगः । नः । बृहत् । वदेम । विदथे । सुवीराः ॥ ९ ॥ १८ ॥

तत् । अस्मै । नव्यं । अंगिरस्वत् । अर्चत । शुष्माः । यत् । अस्य । प्रत्नऽथा । उत्ऽईरते । विश्वा । यत् । गोत्रा । सहसा । परिऽवृता । मदे । सोमस्य । दृंहितानि । ऐरयत् ॥ १ ॥ सः । भूतु । यः । ह । प्रथमाय । धायसे । ओजः । मिमानः । महिमानं । आ । अतिरत् । शूरः । यः । युत्ऽसु । तन्वं । परिऽव्यत । शीर्षणि । द्यां । महिना । प्रति । अमुंचत ॥ २ ॥

अधाकृणोः प्रथमं वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।
रथेष्ठेन हर्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक् ॥ ३ ॥
अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृत्प्रवया अभ्यवर्धत ।
आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यन्तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥ ४ ॥
स प्राचीनान्पर्वताँ दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः ।
अधारयत्पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ॥ ५ ॥ १९ ॥
सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक्तुविष्वणिः ॥ ६ ॥
अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम् ।
कृधि प्रकेतमुप मास्या भर दद्धि भागं तन्वो३ येन मामहः ॥ ७ ॥

अध । अकृणोः । प्रथमं । वीर्यं । महत् । यत् । अस्य । अग्रे । ब्रह्मणा । शुष्मं । ऐरयः । रथेऽस्थेन । हरिऽअश्वेन । विऽच्युताः । प्र । जीरयः । सिस्रते । सध्र्यक् । पृथक् ॥ ३ ॥ अध । यः । विश्वा । भुवना । अभि । मज्मना । ईशानऽकृत् । प्रऽवयाः । अभि । अवर्धत । आत् । रोदसी इति । ज्योतिषा । वह्निः । आ । अतनोत् । सीव्यन् । तमांसि । दुधिता । सं । अव्ययत् ॥ ४ ॥ सः । प्राचीनान् । पर्वतान् । दृंहत् । ओजसा । अधराचीनं । अकृणोत् । अपां । अपः । अधारयत् । पृथिवीं । विश्वऽधायसं । अस्तभ्नात् । मायया । द्यां । अवऽस्रसः ॥ ५ ॥ १९ ॥ सः । अस्मै । अरं । बाहुऽभ्यां । यं । पिता । अकृणोत् । विश्वस्मात् । आ । जनुषः । वेदसः । परि । येन । पृथिव्यां । नि । क्रिविं । शयध्यै । वज्रेण । हत्वी । अवृणक् । तुविऽस्वनिः ॥ ६ ॥ अमाजूःऽइव । पित्रोः । सचा । सती । समानात् । आ । सदसः । त्वा । इये । भगं । कृधि । प्रऽकेतं । उप । मासि । आ । भर । दद्धि । भागं । तन्वः । येन । ममहः ॥ ७ ॥

भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम दुदिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान् ।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥ २० ॥

॥ १८ ॥ ऋषिः–गृत्समदः । देवता–इन्द्रः । छन्दः–त्रिष्टुप् ॥

॥ १८ ॥ प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः ।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥ १ ॥
सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता ।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊं जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥ २ ॥
हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन ।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये ॥ ३ ॥

भोजं । त्वां । इंद्र । वयं । हुवेम । ददिः । त्वं । इंद्र । अपांसि । वाजान् । अविड्ढि । इंद्र । चित्रया । नः । ऊती । कृधि । वृषन् । इंद्र । वस्यसः । नः ॥ ८ ॥ नूनं । सा । ते । प्रति । वरं । जरित्रे । दुहीयत् । इंद्र । दक्षिणा । मघोनी । शिक्ष । स्तोतृऽभ्यः । मा । अति । धक् । भगः । नः । बृहत् । वदेम । विदथे । सुवीराः ॥ ९ ॥ २० ॥

प्रातरिति । रथः । नवः । योजि । सस्निः । चतुःऽयुगः । त्रिऽकशः । सप्तऽरश्मिः । दशऽअरित्रः । मनुष्यः । स्वःऽसाः । सः । इष्टिऽभिः । मतिऽभिः । रंह्यः । भूत् ॥ १ ॥ सः । अस्मै । अरं । प्रथमं । सः । द्वितीयं । उतो इति । तृतीयं । मनुषः । सः । होता । अन्यस्याः । गर्भं । अन्ये । ऊं इति । जनंत । सः । अन्येभिः । सचते । जेन्यः । वृषा ॥ २ ॥ हरी इति । नु । कं । रथे । इंद्रस्य । योजं । आऽयै । सुऽउक्तेन । वचसा । नवेन । मो इति । सु । त्वां । अत्र । बहवः । हि । विप्राः । नि । रीरमन् । यजमानासः । अन्ये ॥ ३ ॥

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥ ४ ॥
आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥ ५ ॥ २१ ॥
आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥ ६ ॥
मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥ ७ ॥
न म इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।
उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥ ८ ॥

आ । द्वाभ्यां । हरिऽभ्यां । इंद्र । याहि । आ । चतुःऽभिः । आ । षट्ऽभिः । हूयमानः । आ । अष्टाभिः । दशऽभिः । सोमऽपेयं । अयं । सुतः । सुऽमख । मा । मृधः । करिति कः ॥ ४ ॥ आ । विंशत्या । त्रिंशता । याहि । अर्वाङ् । आ । चत्वारिंशता । हरिऽभिः । युजानः । आ । पंचाशता । सुऽरथेभिः । इंद्र । आ । षष्ट्या । सप्तत्या । सोमऽपेयं ॥ ५ ॥ २१ ॥ आ । अशीत्या । नवत्या । याहि । अर्वाङ् । आ । शतेन । हरिऽभिः । उह्यमानः । अयं । हि । ते । शुनऽहोत्रेषु । सोमः । इंद्र । त्वाऽया । परिऽसिक्तः । मदाय ॥ ६ ॥ मम । ब्रह्म । इंद्र । याहि । अच्छ । विश्वा । हरी इति । धुरि । धिष्व । रथस्य । पुरुऽत्रा । हि । विऽहव्यः । बभूथ । अस्मिन् । शूर । सवने । मादयस्व ॥ ७ ॥ न । मे । इंद्रेण । सख्यं । वि । योषत् । अस्मभ्यं । अस्य । दक्षिणा । दुहीत । उप । ज्येष्ठे । वरूथे । गभस्तौ । प्रायेऽप्राये । जिगीवांसः । स्याम ॥ ८ ॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥ २२ ॥

॥ १९ ॥ ऋषिः-गृत्समदः । देवता-इन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥ १९ ॥ अपाय्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः ।
यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥ १ ॥
अस्य मन्दानो मध्वो वज्रहस्तोऽहिमिन्द्रो अर्णोवृतं वि वृश्चत् ।
प्र यद्वयो न स्वसराण्यच्छा प्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥ २ ॥
स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैरयदहिहाच्छा समुद्रम् ।
अजनयत्सूर्यं विदद्गा अक्तुनाह्नां वयुनानि साधत् ॥ ३ ॥
सो अप्रतीनि मनवे पुरूणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्रम् ।
सद्यो यो नृभ्यो अतसाय्यो भूत्पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य सातौ ॥ ४ ॥

नूनं । सा । ते । प्रति । वरं । जरित्रे । दुहीयत् । इंद्र । दक्षिणा । मघोनी । शिक्ष । स्तोतृऽभ्यः । मा । अति । धक् । भगः । नः । बृहत् । वदेम । विदथे । सुवीराः ॥ ९ ॥ २२ ॥

अपायि । अस्य । अंधसः । मदाय । मनीषिणः । सुवानस्य । प्रयसः । यस्मिन् । इंद्रः । प्रऽदिवि । ववृधानः । ओकः । दधे । ब्रह्मण्यंतः । च । नरः ॥ १ ॥
अस्य । मंदानः । मध्वः । वज्रऽहस्तः । अहिं । इंद्रः । अर्णःऽवृतं । वि । वृश्चत् । प्र । यत् । वयः । न । स्वसराणि । अच्छ । प्रयांसि । च । नदीनां । चक्रमंत ॥ २ ॥
सः । माहिनः । इंद्रः । अर्णः । अपां । प्र । ऐरयत् । अहिऽहा । अच्छ । समुद्रं । अजनयत् । सूर्यं । विदत् । गाः । अक्तुना । अह्नां । वयुनानि । साधत् ॥ ३ ॥
सः । अप्रतीनि । मनवे । पुरूणि । इंद्रः । दाशत् । दाशुषे । हंति । वृत्रं । सद्यः । यः । नृऽभ्यः । अतसाय्यः । भूत् । पस्पृधानेभ्यः । सूर्यस्य । सातौ ॥ ४ ॥

स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणङ्मर्त्याय स्तवान् ।
आ यद्रयिं गुहदवद्यमस्मै भरदंशं नैतशो दशस्यन् ॥ ५ ॥ २३ ॥
स रन्धयत्सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय ।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥ ६ ॥
एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः ।
अश्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ७ ॥
एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः ।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥ २४ ॥

सः । सुन्वते । इंद्रः । सूर्यं । आ । देवः । रिणक् । मर्त्याय । स्तवान् । आ । यत् । रयिं । गुहत्ऽअवद्यं । अस्मै । भरत् । अंशं । न । एतशः । दशस्यन् ॥ ५ ॥ २३ ॥ सः । रंधयत् । सऽदिवः । सारथये । शुष्णं । अशुषं । कुयवं । कुत्साय । दिवःऽदासाय । नवतिं । च । नव । इंद्रः । पुरः । वि । ऐरत् । शंबरस्य ॥ ६ ॥ एव । ते । इंद्र । उचथं । अहेम । श्रवस्या । न । त्मना । वाजयंतः । अश्याम । तत् । साप्तं । आशुषाणाः । ननमः । वधः । अदेवस्य । पीयोः ॥ ७ ॥ एव । ते । गृत्सऽमदाः । शूर । मन्म । अवस्यवः । न । वयुनानि । तक्षुः । ब्रह्मण्यंतः । इंद्र । ते । नवीयः । इषं । ऊर्जं । सुऽक्षितिं । सुम्नं । अश्युः ॥ ८ ॥ नूनं । सा । ते । प्रति । वरं । जरित्रे । दुहीयत् । इंद्र । दक्षिणा । मघोनी । शिक्ष । स्तोतृऽभ्यः । मा । अति । धक् । भगः । नः । बृहत् । वदेम । विदथे । सुवीराः ॥ ९ ॥ २४ ॥

॥ २० ॥ ऋषिः-गृत्समदः । देवता-इन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥ २० ॥ वयं ते वय इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम् ।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ॥ १ ॥
त्वं न इन्द्र त्वाभिरूती त्वायतो अभिष्टिपासि जनान् ।
त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीरभि यो नक्षति त्वा ॥ २ ॥
स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता ।
यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेषत् ॥ ३ ॥
तमु स्तुष इन्द्रं तं गृणीषे यस्मिन्पुरा वावृधुः शाशदुश्च ।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः ॥ ४ ॥
सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान्ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥ ५ ॥ २५ ॥

वयं । ते । वयः । इंद्र । विद्धि । सु । नः । प्र । भरामहे । वाजऽयुः । न । रथं । विपन्यवः । दीध्यतः । मनीषा । सुम्नं । इयक्षंतः । त्वाऽवतः । नॄन् ॥ १ ॥ त्वं । नः । इंद्र । त्वाभिः । ऊती । त्वाऽयतः । अभिष्टिऽपा । असि । जनान् । त्वं । इनः । दाशुषः । वरूता । इत्थाऽधीः । अभि । यः । नक्षति । त्वा ॥ २ ॥ सः । नः । युवा । इंद्रः । जोहूत्रः । सखा । शिवः । नरां । अस्तु । पाता । यः । शंसंतं । यः । शशमानं । ऊती । पचंतं । च । स्तुवंतं । च । प्रऽनेषत् ॥ ३ ॥ तं । ऊं इति । स्तुषे । इंद्रं । तं । गृणीषे । यस्मिन् । पुरा । वबृधुः । शाशदुः । च । सः । वस्वः । कामं । पीपरत् । इयानः । ब्रह्मण्यतः । नूतनस्य । आयोः ॥ ४ ॥ सः । अंगिरसां । उचथा । जुजुष्वान् । ब्रह्म । तूतोत् । इंद्रः । गातुं । इष्णन् । मुष्णन् । उषसः । सूर्येण । स्तवान् । अश्नस्य । चित् । शिश्नथत् । पूर्व्याणि ॥ ५ ॥ २५ ॥

स ईं श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः ।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान् ॥ ६ ॥
स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥ ७ ॥
तस्मै तवस्यमनु दायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।
प्रति यदस्य वज्रं बाह्वोर्धुर्हत्वी दस्यून्पुर आयसीर्नि तारीत् ॥ ८ ॥
नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ९ ॥ २६ ॥

॥ २१ ॥ ऋषिः–गृत्समदः । देवता–इन्द्रः । छन्दः–त्रिष्टुप् ॥

॥२१॥ विश्वजिते धनजिते स्वर्जिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते ।
अश्वजिते गोजिते अब्जिते भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्यतम् ॥ १ ॥

सः । ह । श्रुतः । इंद्रः । नाम । देवः । ऊर्ध्वः । भुवत् । मनुषे । दस्मऽतमः । अव । प्रियं । अर्शसानस्य । सह्वान् । शिरः । भरत् । दासस्य । स्वधाऽवान् ॥ ६ ॥ सः । वृत्रऽहा । इंद्रः । कृष्णऽयोनीः । पुरम्ऽदरः । दासीः । ऐरयत् । वि । अजनयत् । मनवे । क्षां । अपः । च । सत्रा । शंसं । यजमानस्य । तूतोत् ॥ ७ ॥ तस्मै । तवस्यं । अनु । दायि । सत्रा । इंद्राय । देवेभिः । अर्णऽसातौ । प्रति । यत् । अस्य । वज्रं । बाह्वोः । धुः । हत्वी । दस्यून् । पुरः । आयसीः । नि । तारीत् ॥ ८ ॥ नूनं । सा । ते । प्रति । वरं । जरित्रे । दुहीयत् । इन्द्र । दक्षिणा । मघोनी । शिक्ष । स्तोतृऽभ्यः । मा । अति । धक् । भगः । नः । बृहत् । वदेम । विदथे । सुवीराः ॥ ९ ॥ २६ ॥ विश्वऽजिते । धनऽजिते । स्वःऽजिते । सत्राऽजिते । नृऽजिते । उर्वराऽजिते । अश्वऽजिते । गोऽजिते । अप्ऽजिते । भर । इंद्राय । सोमं । यजताय । हर्यतं ॥ १ ॥

अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वतेऽषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।
तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥ २ ॥
सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः ।
वृतंचयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥ ३ ॥
अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥ ४ ॥
यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः ।
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥
इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥ ६ ॥ २७ ॥

अभिऽभुवे । अभिऽभंगाय । वन्वते । अषाळ्हाय । सहमानाय । वेधसे । तुविऽग्रये । वह्नये । दुस्तरीतवे । सत्राऽसहे । नमः । इंद्राय । वोचत ॥ २ ॥ सत्राऽसहः । जनऽभक्षः । जनंऽसहः । च्यवनः । युध्मः । अनु । जोषं । उक्षितः । वृतंऽचयः । सहुरिः । विक्षु । आरितः । इंद्रस्य । वोचं । प्र । कृतानि । वीर्या ॥ ३ ॥ अनानुऽदः । वृषभः । दोधतः । वधः । गंभीरः । ऋष्वः । असमष्टऽकाव्यः । रध्रऽचोदः । श्नथनः । वीळितः । पृथुः । इंद्रः । सुऽयज्ञः । उषसः । स्वः । जनत् ॥ ४ ॥ यज्ञेन । गातुं । अप्ऽतुरः । विविद्रिरे । धियः । हिन्वानाः । उशिजः । मनीषिणः । अभिऽस्वरा । निऽसदा । गाः । अवस्यवः । इंद्रे । हिन्वानाः । द्रविणानि । आशत ॥ ५ ॥ इंद्र । श्रेष्ठानि । द्रविणानि । धेहि । चित्तिं । दक्षस्य । सुभगऽत्वं । अस्मे इति । पोषं । रयीणां । अरिष्टिं । तनूनां । स्वाद्मानं । वाचः । सुदिनऽत्वं । अह्नां ॥ ६ ॥ २७ ॥

॥ २२ ॥ ऋषिः—गृत्समदः । देवता—इन्द्रः । छन्दः—अष्टिः ॥

॥ २२ ॥ त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत् । स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १ ॥

अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे । अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ २ ॥

साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः । दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ ३ ॥

तव त्यन्नर्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम् ।
यद्देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः ।
भुवद्विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम् ॥ ४ ॥ २८ ॥ २ ॥

त्रिऽकद्रुकेषु । महिषः । यवऽआशिरं । तुविऽशुष्मः । तृपत् । सोमं । अपिबत् । विष्णुना । सुतं । यथा । अवशत् । सः । ईं । ममाद । महि । कर्म । कर्तवे । महां । उरुं । सः । एनं । सश्चत् । देवः । देवं । सत्यं । इंद्रं । सत्यः । इंदुः ॥ १ ॥ अध । त्विषिऽमान् । अभि । ओजसा । क्रिविं । युधा । अभवत् । आ । रोदसी इति । अपृणत् । अस्य । मज्मना । प्र । ववृधे । अधत्त । अन्यं । जठरे । प्र । ईं । अरिच्यत । सः । एनं । सश्चत् । देवः । देवं । सत्यं । इंद्रं । सत्यः । इंदुः ॥ २ ॥ साकं । जातः । क्रतुना । साकं । ओजसा । ववक्षिथ । साकं । वृद्धः । वीर्यैः । ससहिः । मृधः । विऽचर्षणिः । दाता । राधः । स्तुवते । काम्यं । वसु । सः । एनं । सश्चत् । देवः । देवं । सत्यं । इंद्रं । सत्यः । इंदुः ॥ ३ ॥ तव । त्यत् । नर्यं । नृतो इति । अपः । इंद्र । प्रथमं । पूर्व्यं । दिवि । प्रऽवाच्यं । कृतं । यत् । देवस्य । शवसा । प्र । अरिणाः । असुं । रिणन् । अपः । भुवत् । विश्वं । अभि । अदेवं । ओजसा । विदात् । ऊर्जं । शतऽक्रतुः । विदात् । इषं ॥ ४ ॥ २८ ॥

॥ त्रितीयोऽनुवाकः ॥

॥ २३ ॥ ऋषिः—गृत्समदः । देवता—बृहस्पतिः । छन्दः—जगती ॥

॥२३॥ गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥ १ ॥
देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः ।
उस्रा इव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥ २ ॥
आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि ।
बृहस्पते भीमममित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥ ३ ॥
सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥ ४ ॥

गणानां । त्वा । गणऽपतिं । हवामहे । कविं । कवीनां । उपमश्रवःऽतमं । ज्येष्ठऽराजं । ब्रह्मणां । ब्रह्मणः । पते । आ । नः । शृण्वन् । ऊतिऽभिः । सीद । सदनं ॥ १ ॥ देवाः । चित् । ते । असुर्य । प्रऽचेतसः । बृहस्पते । यज्ञियं । भागं । आनशुः । उस्राःऽइव । सूर्यः । ज्योतिषा । महः । विश्वेषां । इत् । जनिता । ब्रह्मणां । असि ॥ २ ॥ आ । विऽबाध्य । परिऽरपः । तमांसि । च । ज्योतिष्मंतं । रथं । ऋतस्य । तिष्ठसि । बृहस्पते । भीमं । अमित्रऽदंभनं । रक्षःऽहनं । गोत्रऽभिदं । स्वःऽविदं ॥ ३ ॥ सुनीतिऽभिः । नयसि । त्रायसे । जनं । यः । तुभ्यं । दाशात् । न । तं । अंहः । अश्नवत् । ब्रह्मऽद्विषः । तपनः । मन्युऽमीः । असि । बृहस्पते । महि । तत् । ते । महिऽत्वनं ॥ ४ ॥

न तमंहो न दुरितं कुत॑श्चन नारा॑तयस्तितिरुर्न द्वया॒विन॑ः ।
विश्वा॒ इद॑स्माध्व॒रसो॒ वि बा॑धसे॒ यं सु॑गो॒पा रक्ष॑सि ब्रह्मणस्पते ॥ ५ ॥ २९॥
त्वं नो॑ गो॒पाः प॑थि॒कृद्वि॑चक्ष॒णस्तव॑ व्र॒ताय॑ म॒तिभि॑र्जरामहे ।
बृह॑स्पते॒ यो नो॑ अ॒भि ह्वरो॑ द॒धे स्वा तं म॑र्मर्तु दु॒च्छुना॒ हर॑स्वती ॥ ६ ॥
उ॒त वा॒ यो नो॑ म॒र्चया॒दना॑गसोऽराती॒वा मर्तः॑ सानु॒को वृकः॑ ।
बृह॑स्पते॒ अप॒ तं व॑र्तया प॒थः सु॒गं नो॑ अ॒स्यै दे॒ववी॑तये कृधि ॥ ७ ॥
त्रा॒तारं॑ त्वा त॒नूनां॑ हवाम॒हेऽव॑स्पर्तरधिव॒क्तार॑मस्म॒युम् ।
बृह॑स्पते देव॒निदो॒ नि ब॑र्हय॒ मा दु॒रेवा॒ उत्त॑रं सु॒म्नमुन्न॑शन् ॥ ८ ॥
त्वया॑ व॒यं सु॒वृधा॑ ब्रह्मणस्पते स्पा॒र्हा वसु॑ मनु॒ष्या द॑दीमहि ।
या नो॑ दू॒रे त॒ळितो॒ या अरा॑तयो॒ऽभि सन्ति॑ ज॒म्भया॒ ता अ॑न॒प्नसः॑ ॥ ९ ॥

न । तं । अंहः॑ । न । दुः॒ऽइ॒तं । कुत॑ः । च॒न । न । अरा॑तयः । ति॒ति॒रुः॒ । न । द्व॒या॒विन॑ः । विश्वा॑ः । इत् । अ॒स्मा॒त् । ध्व॒रस॑ः । वि । बा॒ध॒से॒ । यं । सु॒ऽगो॒पाः । रक्ष॑सि । ब्रह्म॑णः । प॒ते॒ ॥ ५ ॥ २९ ॥ त्वं । नः॒ । गो॒पाः । प॒थि॒ऽकृत् । वि॒ऽच॒क्ष॒णः । तव॑ । व्र॒ताय॑ । म॒तिऽभि॑ः । ज॒रा॒म॒हे॒ । बृह॑स्पते । यः । नः॒ । अ॒भि । ह्वर॑ः । द॒धे । स्वा । तं । म॒र्म॒र्तु॒ । दु॒च्छुना॑ । हर॑स्वती ॥ ६ ॥ उ॒त । वा॒ । यः । नः॒ । म॒र्चया॑त् । अना॑गसः । अ॒रा॒ति॒ऽवा । मर्त॑ः । सा॒नु॒कः । वृकः॑ । बृह॑स्पते । अप॑ । तं । व॒र्त॒य॒ । प॒थः । सु॒ऽगं । नः॒ । अ॒स्यै । दे॒वऽवी॑तये । कृ॒धि॒ ॥ ७ ॥ त्रा॒तार॑ं । त्वा॒ । त॒नूना॑ं । ह॒वा॒म॒हे॒ । अव॑ऽस्पर्तः । अ॒धि॒ऽव॒क्तार॑ं । अ॒स्म॒ऽयुं । बृह॑स्पते । दे॒व॒ऽनिद॑ः । नि । ब॒र्ह॒य॒ । मा । दुः॒ऽएवा॑ः । उत्ऽत॑रं । सु॒म्नं । उत् । न॒श॒न् ॥ ८ ॥ त्वया॑ । व॒यं । सु॒ऽवृधा॑ । ब्र॒ह्म॒णः॒ । प॒ते॒ । स्पा॒र्हा । वसु॑ । म॒नु॒ष्या॑ । आ । द॒दी॒म॒हि॒ । याः । नः॒ । दू॒रे । त॒ळित॑ः । याः । अरा॑तयः । अ॒भि । सन्ति॑ । ज॒म्भय॑ । ताः । अ॒न॒प्नस॑ः ॥ ९ ॥

त्वया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते पप्रिणा सस्निना युजा ।
मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥१०॥३०॥
अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद्दमिता वीळुहर्षिणः ॥ ११ ॥
अदेवेन मनसा यो रिषण्यति शासामुग्रो मन्यमानो जिघांसति ।
बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो वधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥ १२ ॥
भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेषु सनिता धनंधनम् ।
विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वो३मृधो बृहस्पतिर्वि ववर्हा रथाँ इव ॥ १३ ॥
तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम् ।
आविस्तत्कृष्व यदसत्त उक्थ्यं१ बृहस्पते वि परिरापो अर्दय ॥ १४ ॥

त्वया । वयं । उत्ऽतमं । धीमहे । वयः । बृहस्पते । पप्रिणा । सस्निना । युजा । मा । नः । दुःऽशंसः । अभिऽदिप्सुः । ईशत । प्र । सुऽशंसाः । मतिऽभिः । तारिषीमहि ॥ १० ॥ ३० ॥ अननुऽदः । वृषभः । जग्मिः । आऽहवं । निःऽतप्ता । शत्रुं । पृतनासु । ससहिः । असि । सत्यः । ऋणऽयाः । ब्रह्मणः । पते । उग्रस्य । चित् । दमिता । वीळुऽहर्षिणः ॥ ११ ॥ अदेवेन । मनसा । यः । रिषण्यति । शासां । उग्रः । मन्यमानः । जिघांसति । बृहस्पते । मा । प्रणक् । तस्य । नः । वधः । नि । कर्म । मन्युं । दुःऽएवस्य । शर्धतः ॥ १२ ॥ भरेषु । हव्यः । नमसा । उपऽसद्यः । गंता । वाजेषु । सनिता । धनंऽधनं । विश्वाः । इत् । अर्यः । अभिऽदिप्स्वः । मृधः । बृहस्पतिः । वि । ववर्ह । रथान्ऽइव ॥ १३ ॥ तेजिष्ठया । तपनी । रक्षसः । तप । ये । त्वा । निदे । दधिरे । दृष्टऽवीर्यं । आविः । तत् । कृष्व । यत् । असत् । ते । उक्थ्यं । बृहस्पते । वि । परिऽरपः । अर्दय ॥ १४ ॥

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु ।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ १५ ॥ ३१ ॥
मा नः स्तेनेभ्यो ये अभि द्रुहस्पदे निरामिणो रिपवोऽन्नेषु जागृधुः ।
आ देवानामोहते वि व्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥ १६ ॥
विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत्साम्नःसाम्नः कविः ।
स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्तरि ॥ १७ ॥
तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।
इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ १८ ॥
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ १९ ॥ ३२ ॥ ६ ॥

बृहस्पते । अति । यत् । अर्यः । अर्हात् । द्युऽमत् । विऽभाति । क्रतुंऽमत् । जनेषु । यत् । दीदयत् । शवसा । ऋतऽप्रजात । तत् । अस्मासु । द्रविणं । धेहि । चित्रं ॥ १५ ॥ ३१ ॥ मा । नः । स्तेनेभ्यः । ये । अभि । द्रुहः । पदे । निरामिणः । रिपवः । अन्नेषु । जगृधुः । आ । देवानां । ओहते । वि । व्रयः । हृदि । बृहस्पते । न । परः । साम्नः । विदुः ॥ १६ ॥ विश्वेभ्यः । हि । त्वा । भुवनेभ्यः । परि । त्वष्टा । अजनत् । साम्नःऽसाम्नः । कविः । सः । ऋणऽचित् । ऋणऽयाः । ब्रह्मणः । पतिः । द्रुहः । हंता । महः । ऋतस्य । धर्तरि ॥ १७ ॥ तव । श्रिये । वि । वि । अजिहीत । पर्वतः । गवां । गोत्रं । उत्ऽअसृजः । यत् । अंगिरः । इंद्रेण । युजा । तमसा । परिऽवृतं । बृहस्पते । निः । अपां । औब्जः । अर्णवं ॥ १८ ॥ ब्रह्मणः । पते । त्वं । अस्य । यंता । सुऽउक्तस्य । बोधि । तनयं । च । जिन्व । विश्वं । तत् । भद्रं । यत् । अवंति । देवाः । बृहत् । वदेम । विदथे । सुवीराः ॥ १९॥

॥ इति द्वितीयाष्टके षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अध्याय ६.

सूक्त १

॥ ऋषि--गृत्समद । देवता--अग्नि ॥

हे अग्नि, आप बड़े ज्ञानवान्, उग्र, देदीप्यमान्, और बडे कुशल यज्ञ--होता है। होतामें आपही अधिष्ठित हुये हैं। भक्तोंकी रक्षा करनेका काम आप सदा करते रहते हैं। आप बड़े मनोहर हैं। सैंकडों प्रकारसे आप अपने भक्तोंका लाभ कराते हैं। आपकी भाषा बड़ी पवित्र है। १

स्वर्गमें ले जानेवाले आप हमारे नेता हैं। आप स्वर्ग--लोकमें हमारी रक्षा करते हैं। हमारी इच्छा पूरी करनेवाले अग्निदेव, जिन वस्तुओंकी हम इच्छा करते हैं उनकी ओर हमें आपही ले जाते हैं। हे अग्निदेव, हमारी और हमारे पुत्र और पौत्रोंकी उन्नति करनेके लिये आप प्रकाशित होते हैं। आप हमे कभी भी नहीं भूलते हैं। आप हमारी रक्षा करनेवाले हैं। २

हे अग्नि, जिस उंचे लोकमें आप प्रकट होते हैं वहांभी हम आपकी सेवा करेंगे। नीचेके भूलोकमेंभी हम स्तुतियोंके द्वारा आपका भजन करेंगे। जिन जिन स्थानोंपर आपका जन्म होता है वहां मैं आपकी पूजा करता हूं। इसी लिये आप प्रज्वलित होते हैं। जब आप प्रज्वलित होते हैं तब ऋत्विज आपको हवि अर्पण करते हैं। ३

हे अग्निदेव, आप भक्तलोगोंकी प्रार्थना सुनते हैं। आप यज्ञ--कर्म करनेमें बड़े कुशल हैं। इसलिये हवियोंसे देवोंके लिये आप यजन कीजिये। आपको अर्पण करनेके योग्य हमारे पास जो सम्पत्ति है वह यही है। इसलिये आप उस हविरूपी सम्पत्तिका आनन्दसे स्वीकार कीजिये और उसकी प्रशंसा कीजिये। सच पूछा जाय तो आपको किसी बातकी कमी नहीं है। आप भूलोक और स्वर्गलोकके वैभवके स्वामी है। हमारे अन्तःकरणमें उत्तम कविता उत्पन्न करनेकी प्रेरणा आपही कराते हैं। ४

---

१ विद्वान् त्वेषः दीदिवान् सुदक्षः (अयम्) होता होतृ सदने असदत्। (सः अयम्) अग्निः अदब्धव्रतप्रमतिः वसिष्ठः सहस्रंभरः शुचि जिह्वः।

२ त्वम् नः दूतः त्वमु (नः) परस्पाः, वृषभ त्वम् वस्य आ प्रणेता असि। हे अग्ने नः (नः) तोकस्य च तनूनाम् तने (त्वम्) दीद्यत् अप्रयुच्छन् गोपाः बोधि।

३ अग्ने, ते परमे जन्मन् (त्वा) विधेम, अवरे सधस्थे स्तोमैः विधेम। (यतः) यस्मात् योनेः त्वम् उदारिथ तं (स्थानं अधिकृत्य) यजे, (अतः) समिद्धे त्वे (ऋत्विजः) हवींषि प्र जुहुरे।

४ अग्ने, श्रुष्टी यजीयान् च त्वम् हविषा (देवान्) यजस्व, इदं (एव) देष्णम् राधः (तद्) अभिगृणीहि। (किम् अनवाप्तम् त्वया) त्वम् हि रयीणाम् रयीपतिरसि, त्वम् शुक्रस्य वचसः च मनोता।

हे पराक्रमी देव, भक्तोंको दान करनेके लिये आप प्रत्येक दिन प्रकट होते हैं। तबभी स्वर्गलोक और भूलोककी सम्पत्तिकी जो पुञ्जी आपके पास है वह कभी घट नहीं जाती। हे अग्नि, आप अपने भक्तोंको पराक्रमी बनाइये। आप उनको ऐसा वैभव अर्पण कीजिये जिसपर किसीका अधिकार नहीं चल सकता है। ५

हे अग्निदेव, आप बड़े दयाशील है। यज्ञ कर्ममें भी आप बड़े कुशल है। हमारा कल्याण करनेके लिये आप अपने प्रज्वलित मुखसे देवोंको सन्तुष्ट करते हैं। आप ऐसे होशियार हैं कि आपके सामने किसीकी चालाखी नहीं चलती। पृथ्वीपर आप हमारी रक्षा करनेवाले हैं। इतनाही नहीं; किन्तु स्वर्गलोकमें भी हमारा कल्याण करनेवाले आपही हैं। इस लिये, हे अग्निदेव, आप इस तरह प्रकाशित हूजिये जिस तरह आपके प्रकाशके द्वारा हमें ऐश्वर्य प्राप्त होवे और हमारी उन्नति होवे। ६

सूक्त १०.

॥ ऋषि—गृत्समद। देवता—अग्नि ॥

हे अग्निदेव, सब विश्वको उत्पन्न करनेवाले आपही है। इसलिये आपकी जय हो। जब हमारे ऋत्विज आपको उत्तर—वेदीपर प्रज्वलित करते हैं तब अमर और महाज्ञानी (अग्नि) अपने तेजोरूप वैभवसे विभूषित होते हैं। सब तरहसे आप सेवा करने योग्य है। आप बड़े पुण्यवान हैं और सत्वगुण आपमें दिखाई देता हैं। १

मनोहर अग्नि सब प्रकारके स्तोत्रोंके द्वारा हमारी पुकार सुने। आप अमर हैं। सबको जाननेवाले आपही हैं। आप अपने रथको कभी कभी काले रंगके, कभी कभी लाल रंगके और हरे रंगके घोड़ोंको जोतते हैं। ऐसे रथमें बैठकर आप नाना प्रकारके यज्ञमें चले जाते हैं। २

अग्निकुण्ड जैसे पवित्रस्थानमें ही अग्नि उत्पन्न होता है और प्रकट होता है। नानाप्रकारकी वनस्पतियोंके पेटमे आप सदा सूक्ष्म रूपसे रहते हैं। इस लिये सक्त जाड़ेके दिनोंमेंभी अन्धेरी रातमें महा प्रज्ञावान् अग्नि अपने तेजसे प्रकट होता है। आप कभी अन्धेरेसे ढक नहीं जाते और आप सब स्थानोंमें रहते हैं। ३

---

५ हे दस्म, (भक्तानुग्रहाय) दिवे दिवे जायमानस्य ते उभयम वसव्यम न क्षीयते। अग्ने जरितारं ते क्षुमन्तं कृधि, स्वपत्य च राय. पात कृधि।

६ सुविदत्रः आर्यजिष्ठश्च स त्वम अस्मे स्वस्ति, एना अनीकेन देवान यक्षि। हे अग्ने अदब्धः त्वम नः गोपाः उत पस्पाः (सन) द्युमत् उत रेवत दीदिहि।

१ अग्नि. प्रथम. पिता (इति) जोहूत्र. (सः) यत इळस्पदे मनुषा समिद्धः (भवति तदा सः) अमतः विचेताः श्रियं वसानः (भवति), (स) मर्मृजन्यः (सः) श्रवस्यः सः वाजी।

२ (अयं) चित्रभानुः अग्निः विश्वाभिः गीर्भिः मे हवं श्रुयाः सः अमृतः विचेताश्च। (अस्य) रथं श्यावा रोहिता वा उत रुपा (अश्वौ) वहतः अह (सः) विभृत्रः चक्रे।

३ सप्तृनाम (अग्निम्) उत्तानायाम (अरण्याम्) अजनयन, (यतः सः) अग्निः पुरुपेशासु (ओषधीषु) गर्भे भुवन। शिरियाणाम चित (स.) प्रचेताः अग्निः स्वमहोभिः अक्तुना अपरिवृतः वसति ?

ऐसे अग्निपर अब मैं हविर्द्रव्यसे और घीसे वर्षा करताहूं। सब भुवनमें हरएक स्थानमें आप रहते हैं। आपका शरीर बड़ा चौडा है। आपका सामर्थ्य बहुत बडा है। आप सब स्थानोंको व्याप्त करके रहते हैं। सब प्रकारकी अनाजरूपी सम्पत्ति आपके पास है। इस लिये आप बड़े सुन्दर दिखाई देते हैं। ४

हे अग्नि, आप सब प्रकारसे श्रेष्ठ हैं। मैं अब घी की वर्षा करता हूं। मुझपर आप कृपा करके अंत:करणसे हमारी सेवाका आप स्वीकार कीजिये। नयी स्त्रीके पराक्रमी और युवा पतिके समान अग्निके शरीरकी कान्ति बडी तेज और सुन्दर दिखाई देती है। जब आपका तीव्र तेज सब दूर फैलता है तब आपको कोई स्पर्श नहीं कर सकता। ५

हे अग्नि, आप अपने उत्कृष्ट सामर्थ्यसे सब लोगोंपर अधिकार चलाते हैं। इस लिये आप हमारे हवियोंका स्वीकार कीजिये। आप हमारे नेता हैं। इस लिये जिस तरह मनु राजाने आपके यज्ञका वर्णन किया है उसी तरह हम भी आपके यज्ञका वर्णन करेंगे। आपके शरीरका अवयव टूटा हुआ नहीं है। आप अपने भक्तोंपर मधुर रस की वर्षा करते हैं। सब प्रकारकी सम्पत्तिकी इच्छा करके स्तुति द्वारा मैं अग्निका स्वागत करता हूं और आपको घीकी आहुति अर्पण करताहूं। ६ (२)

सूक्त ११.

॥ ऋषि-गृत्समद। देवता-इन्द्र ॥

हे इन्द्र, आप हमारी पुकार सुनिये; आप हमारा तिरस्कार मत कीजिये; आपकी कृपासे स्वर्गकी सम्पत्तिका लाभ हमें प्राप्त होवे; धनकी इच्छासे हमारी स्तुति लालसित हुई है। इस लिये हमारी स्तुति नदीके प्रवाहकी तरह बडे आनन्दसे शीघ्रताके साथ आपकी ओर दौडती चली जाती है। १

हे शूर इन्द्र, उस दुष्ट भुजंगने अथाह और अपार जलको चारों ओरसे रोक रखा था। उछलती हुई जलकी लहरोंको आपने भूमीपर छोड दिया (गिराया)। सामगीतके द्वारा आपकी स्तुति की गयी और आप बडे आनन्दित हो गये। निजको अमर समझकर घमण्डमें रहने वाले राक्षसको आपने भूमिपर गिरा दिया और उसको चीरफाड कर उसका नाश कर डाला। २

---

४ (इमम्) विश्वा भुवनानि प्रति क्षियन्तम् अग्निम् हविषा घृतेन च जिघर्मि। तिरश्चा पृथु, वयसा बृहन्तम्, व्यचिष्ठम्, अन्नैः रभसं दृशानं च (जिघर्मि)। ५ विश्वतः प्रत्यंचम (इमम्) अग्निम जिघर्मि, (सः) अरक्षसा मनसा तज्जुषेत। मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णोऽपि (अयम) अग्निः जर्भुराणः, तन्वा न अभिमृशे। ६ वरेण (गुणेन सर्वं) सहमानः (स्वीयं) भागं ज्ञेयाः, त्वादूतासः मनुवत् (स्तोमं) वदेम। (इमम) अनूनम् मधुपृचम, अग्निम् धनसाः (अहम्) जुह्वा वचस्या च जोहवीमि। १ हे इन्द्र त्वं (नः) श्रुधि, मा रिषण्यः, ते वसूनाम् दावने स्याम। इमाः हि ऊर्जः वसुयवः सिन्धवः न क्षरन्तः त्वाम् वर्धयन्ति। २ हे शूर इन्द्र, याः महीः पूर्वाः च (आपः) अहिना परिस्थिताः (ताः) त्वं अपिन्वः असृजः च (तदा) उक्थैः वावृधानः सन अमर्त्यं चित (आत्मानं) मन्यमानम दासम् त्वम् अवाभिनत्।

हे शूर इन्द्र, जिन सामगान और रुद्रपुत्र-मरुत स्तुतियुक्त स्तोत्रोंको आप चाहते हैं उन स्तुतियोंसे आप आनन्दित होते हैं। वे ही पवित्र और वन्दनीय स्तुतियां वायुकेसे वेगमे आपकी ओर शीघ्रतासे दौड़ती चली जाती है। ३

हे शूर इन्द्र, आपके अपूर्व और निष्कलंक प्रतापकी कीर्ति हम चारों ओर फैलाते हैं। आपका चमकनेवाला वज्रभि हम आपके कन्धेपर रखते हैं। हे इन्द्र, आप बड़े पवित्र है। आप अपने सामर्थ्य और वीर्यके कारण आनन्दित होते हैं। हमारा कल्याण करनेके लिये सूर्यकी तरह आप अपने तीव्र वज्रमे अधर्मी और अनार्य शत्रुओंका नाश कीजिये। ४

हे शूर इन्द्र, आप अपने पराक्रमसे उस दुष्ट राक्षसका वध कीजिये जो पोले आकाशमें (शून्य स्थानमें) रहता है, जो वहांके जलमें डुबकर छिपा हुआ रहता है, जो अदृश्य और माया रूपमें रहता है, जो सब स्वर्गलोकको ढांकता है और जो मेघोदकोंको रोक लेता है। ५

हे इन्द्र, जिस तरह प्राचीन कालमें आपने किये हुए पराक्रमोंका हमने बर्णन किया उसी तरह आजकल आपने किये हुए पराक्रमोंका भी हम वर्णन करेंगे। आपके कन्धेपर रखे हुए और युद्धके लिये तैयार हुए आपके तीव्र और चमकनेवाले वज्रके प्रतापका जिस तरह हम वर्णन करते हैं उसी तरह आपके तेजोमय और पीले रंगके दोनों अश्वोंकाभी [जो, मानो, सूर्यकी देदीप्यमान ध्वजाही है] हम वर्णन करेंगे। ६

हे इन्द्र, जब आपकी गम्भीर घोषणा होती है तब अग्निमें घीकी आहुति अर्पण की जाती है और पृथिवीपर जलकी वर्षा होती है। जब आपके तेजोरूप अश्वोंने अपने सामर्थ्यसे इस प्रकारका सिंहनाद (घोषणा) किया तब सब दूर पृथिवीपर सन्नाटा छा गया और मेघरूप पहाड एक क्षणमें चुपकसा स्थिर हो गया। ७

---

३ हे शूर इन्द्र येषु उक्थेषु स्तोमेषु वा रुद्रियेषु (गानेषु) चाकन, यासु च त्वं मंदसानः (ताः) एताः शुभ्रा वायवे न तुभ्य इत प्र सिस्रते।

४ ते शुभ्रं शुष्मं (वयं) वर्धयन्तः नु, (उत च) शुभ्रं वज्रं ते बाह्वोः दधानाः (सन्तः वर्तामहे)। (अतः) हे इन्द्र, शुभ्रस्त्वं वावृधानः सन अस्मे सूर्येण वज्रेण दासीः विशः सद्याः।

५ (स्वर) गुहा हितम, (तत्रत्येषु) अप्सु अपीवृतम् तत्रैव गूळ्हं क्षियन्तम (अपि) गुह्यं मायिनं, उत च अपः द्यां च तस्तभ्वांसं अहिं दानुं, हे शूर त्वम् वीर्येण अहन।

६ हे इन्द्र ते पूर्व्या महानि (कृतानि) स्तव, उत नूतना कृतानि स्तवाम। (संग्रामम्) उशन्तं तव बाह्वो वज्रं स्तवाम। सूर्यस्य केतू (इव ते) हरी (अपि) स्तव।

७ हे इन्द्र ते हरी घृतश्चुतं स्वारं अस्वार्ष्टाम नु, (एतस्मिन्नेवावसरे) भूमिः समना वि अप्रतिष्ठ, पर्वतश्चित सरिष्यन (अपि) अरंस्त।

पर्वत एक क्षणमें गिर गया। किन्तु वह मेघरूपी पर्वत उदकरूपी माताओंके साथ घोषणा करते करते इधर उधर घुम रहा था। भक्तलोगोंने उस दिव्य घोषणाका महिमा पृथिवीके दूरदूरके देशोंमें सब दूर फैलाया। मानों, इन्द्रकी प्रेरणासे उत्पन्न हुए गम्भीर घोषणाका आवाज (प्रतिध्वनी) चारों ओर फैला। ८

चुपचाप महासागरमें छिपकर पडे हुए, महासागरको सामर्थ्यसे रोकनेवाले, और नाना प्रकारकी कुटिलनीतिसे वर्ताव करनेवाले वृत्रको इन्द्रने फेक दिया और उसका नाश किया। भयंकर घोषणा करनेवाले इन्द्रके वज्रसे डरकर आकाश और पृथिवी थरथर कांपने लगी। ९

मनुष्य जातिका कल्याण करनेवाले पराक्रमी इन्द्रने अपने वज्रसे जब मनुष्य जातिका द्वेष करनेवाले वृत्रका नाश किया तब उस तीव्र वज्रकी भयंकर घोषणा हो रही थी। भक्तलोगोंने जो सोमरस इन्द्रको अर्पण किया था उसका प्राशन (पान) जब आपने किया तब मायारूपी राक्षसकी कपटनीतिका आपने नाश कर डाला। १०

हे पराक्रमी इन्द्र, कृपा करके आप सोमरसका पान कीजिये। यह पवित्र और आनन्द देनेवाला रस आपको आनन्दित करें। सोमरसका यथेष्ठ पान कर आपकी शूरता बढे। आप हमारी प्रार्थना सुनिये और सोमरससे आपका मन शान्त होवे। ११

हे इन्द्र, आपके गुणोंका वर्णन करनेवाले हम जैसे भक्तजन आपकी शरण लेते हैं। सत्यधर्मसे हम आपकी उपासना करते हैं। इस लिये आपकी कृपासे हमारा मन आपकी ओर आकर्षित होवें। आपकी कृपाकी हम आशा करते हैं और आपके यशका हम वर्णन करते हैं। इस लिये हमें आपकी दिव्य सम्पत्तिका लाभ होवे। १२

---

८ पर्वतः अप्रयुच्छन् नि सादि, (ततः प्राक् सः) मातृभिः सं वावशानः अक्रान्। (भक्ता अपि) दूरे [illegible]रे (तां) वाणीं वर्धयन्तः, इंद्रेषिताम् (एव) धमनिं नु पप्रथन्।

९ महां सिन्धुं आशयानं मायाविनं वृत्रम् इंद्रः निः अस्फुरत्। (एतस्मिन् अवसरे) अस्य वृष्णः (इंद्रस्य) कनिक्रदतः वज्रात् भियानो रोदसी अरेजताम्।

१० मानुषः वृष्णः अस्य (इंद्रस्य) वज्रः यत् अमानुषम् (वृत्रं) निजूर्वात् (तदा सः वज्रः अपि) [illegible]रवीत्। (एवम्) सुतस्य पपिवान् इंद्रः मायिनः दानवस्य मायाः निरपादयत्।

११ हे शूर इन्द्र (इमं) सोमं पिब पिब इत् मन्दिनः सुतासः त्वा मन्दन्तु। कुक्षी ते पृणन्तः (इमे सोमाः [illegible]म्) वर्धयन्तु। पौरः सुत (अयं) इत्था इंद्रम् आव।

१२ हे इन्द्र विप्राः (वयं) त्वे अपि अभूम। ऋतया (त्वां) सपन्तः धियं (त्वयि) वनेम (इति आशास्महे) अवस्यवः (वयं, तव) प्रशस्तं यशः धीमहि, सद्यः ते रायः दावने (पात्रीभूताः) स्याम।

हे इन्द्र, आपकी कृपारूपी प्रसादकी हम इच्छा करते हैं। आपकी कृपाके कारण ही आपके तेजोमय प्रतापकी कीर्ति दिन प्रतिदिन हम बढाते हैं। इस लिये अब आप हमें अपनाइये। हे भगवन, आप ऐसा कीजिये जिससे हमें उत्तम शौर्यका लाभ होवे, और जिसमे हमें वैभव और वीर पुरुषोंके संगतिका भी लाभ होवे। १३

हे इन्द्र, हमें शान्ति अर्पण कीजिये। हे सन्मित्र, हमें मरुत्-देवोंकी सेनाका आश्रय दीजिये। आपकी कृपासे आनन्द देनेवाले, प्रेम करनेवाले, और सोमरसका आस्वाद लेनेवाले वायुकी भी अनुकूलता हमें प्राप्त होवें। १४

जिन मरुत्-देवोंको देखकर आप आनन्दित होते हैं वे मरुत्-देव सोमरसका पान करें। आपको कभी प्यास नहीं लगती और आप बड़े सामर्थ्यवान भी हैं; आप सदा सन्तुष्ट रहते हैं; तबभी कृपा करके आप सोमरसका प्राशन कीजिये। आप लोगोंकी रक्षा करनेवाले हैं; युद्धमें हमारी कीर्ति आपने ही बढाई। जब हम उच्च स्वरसे आपके गुणोंका वर्णन करते हैं अथवा अर्कका (सूर्य) गान गाकर आकाशमें चिल्लाहट मचाते हैं तब भी आप हमारा गौरव बढाते हैं। १५

हे जगतकी रक्षा करनेवाले देव, सचमुच वे लोक धन्य हैं जिन लोगोंने बड़े प्रेमसे आपकी स्तुति की और जिनको आपकी कृपासे शान्ति सुखका लाभ हुआ। यज्ञ सभामें जो लोक लम्बा चौडा कुशासन आपके लिये बिछाते हैं केवल उनको ही सात्विक सामर्थ्यका लाभ होता है और उनको आप कृपारूपी प्रसाद अर्पण करते हैं। १६

हे वीर पुरुष, भयंकर काम करनेके समय भी आप आनन्दित होते हैं। इस लिये 'त्रिकद्रुक' नामक उत्सवमें आप सोमरसका प्राशन कीजिये। जिस रथको पीले रंगके तेजस्वी अश्व जोते हुए हैं ऐसे रथमें बैठकर और अपने मूंछपर हाथ फिराते हुए प्रसन्न होकर सोमरसका प्राशन करनेके लिये आप इधर आइये। १७

---

१३ हे इन्द्र, अवस्यवः ये (वयं) ते ऊर्ती (एव) ऊर्जम् वर्धयन्तः (सन्तः) ते (वयं) ते स्याम। हे देव शुष्मितमं, वीरवन्तम् यम् च चाकनाम तम रयिम् अस्मे रासि।

१४ (सुम्नस्य) क्षयं रासि, अस्मे मित्रं रासि, हे इन्द्र मारुतं शर्धः नः रासि। सजोषसः मन्दसानाः च ये वायवः अप्रणीतिम पान्ति (तानपि रासि)

१५ येषु (त्वं) मंदमानः (ते मरुतः) नु व्यन्तु इत्। परं च हे इन्द्र तृपन द्रप्सत् च सोमं पाहि। (अपि च) हे तरुत्र अस्मान पृत्सु आ सु (अवर्धयः खलु परं) बृहत् भिः अर्कैः द्याम् चापि अवर्धयः।

१६ (अपि च) हे तरुत्र, ये ते सुम्नम् उक्थैः आविवासान् ते इत् बृहन्तः नु। अथ वा हे इन्द्र ये पस्त्यावत बर्हिः स्तृणानासः (तेपि) त्वोताः वाजम् अग्मन।

१७ हे शूर इन्द्र उग्रेषु इत् (कर्मसु) मन्दसानः त्वं त्रिकद्रुकेषु सोमं पाहि। (अपि च) श्मश्रुषु प्रदोधुवत् प्रीणानः सन् हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् याहि।

हे इन्द्र, जिस सामर्थ्यसे आपने वृत्रको और और्णभाव राक्षसको कुचल डाला वह सामर्थ्य आप अब प्रकट कीजिये। हे देव, हम जैसे आर्यलोगोंके लिये आपने दिव्य प्रकाश प्रकट किया। दिव्य प्रकाशको रोकनेवाला अधर्मी और पापी दुष्ट राक्षस आपकी बायी ओर मर हुआ पड़ा है। १८

आपकी कृपासे हमारे कुल पापी और अधर्मी शत्रुओंका नाश होवे। जो जो आर्यलोग अपने पराक्रमसे हमारे शत्रुओंका नाश करते हैं उनकी सहायताका लाभ हमें प्राप्त होवे। हमारे साथ मित्रकासा वर्ताव करनेवाले लोगोंके त्रित नेता होते हैं। हमारे लिये ही त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको आपने, उसके आधीन करा दिया। १९

त्रित नामक भक्त इन्द्रको स्वच्छ वस्त्रमें छाना हुआ और आनन्द देनेवाला सोमरस अर्पण करता है। उसीके लिये इन्द्रने विशाल रूप धारण किया और अर्बुद राक्षसको मिट्टीमें मिला दिया। इन्द्र अंगिराऋषीके पक्षपाती हैं। जिस तरह सूर्य अपना तेजस्वी चक्र घुमता है उसी तरह इन्द्रने अपना वज्र घुमाकर बल राक्षसका नाश किया। २०

हे इन्द्र, आपकी प्रसिद्ध दयालु और उदार बुद्धिरूपी धेनू अपने भक्तोंको मनोरथरूपी दूध पिलावे और उनको सन्तुष्ट करें। आप अपने सब भक्तोंको वैसाही दूध पिलाइये। आपही हमारे कल्याण करनेवाले हैं। हमारा तिरस्कार मत् कीजिये। हम अपने वीर पुत्रोंके साथ यज्ञसभामें आपके यशका वर्णन करेंगे। २१

सूक्त १४.

॥ ऋषि-गृत्समद । देवता-इन्द्र ॥

हे सज्जन लोग, जिसके प्रकट होते ही और जिसके प्रताप और वीर्यरूपी तेजके कारण आकाश और पृथ्वी डर गयी वही इन्द्र है। आपके प्रकट होतेही आप सब विश्वके स्वामी और सब देवोंके श्रेष्ठ अधिपति बन गये। आप अपने करतूतसे देवोंके अलंकार बन गये। १

---

१८ हे शूर, येन वृत्रम् च और्णवाभं च दानुम् अवाभिनत् (तत्) शवः (अधुना) धिष्व। हे इन्द्र (यत्) त्वम् आर्याय ज्योतिः अप अवृणोः (तदा एव) दस्युः सव्यतः नि सादि।

१९ विश्वाः स्पृधः दस्यून ते (एव) ऊतिभिः (परं च) आर्येण (ओजसा) ये तरुन्तः (तान) सनमे। (अतः), साख्यस्य त्रिताय त्वाष्ट्रम् विश्वरूपम् यत् अरंधयः तत् अस्मभ्यम् एव।

२० मन्दिनः (सोमान्) सुवानस्य अस्य त्रितस्य (हेतोः) वावृधानः (इन्द्रः) अर्बुदं निरस्तः। (तथा च अंगिरस्वान् इन्द्रः सूर्यः (स्वरथ) चकं न वज्रम् अवर्तयत् वलम् च भिनत्।

२१ नूनं हे इंद्र ते सा (विश्रुता) मघोनी दक्षिणा मतिः जरित्रे वरं प्रति दुहीयत्। (तदेव) स्तोतृभ्यो शिक्ष, मा नः अति धक्, भगोसि नः सुवीराः (सन्तः) विदथे ते बृहत् (यशः) वदेम।

१ यः जातः एव प्रथमः मनस्वान् च देवो (भूत्वा) देवान् क्रतुना पर्यभूषत्। यस्य शुष्मात् नृम्णस्य मन्हा च रोदसी अभ्यसेताम्, हे जनासः स इन्द्रः।

जिसने हिलनेवाली पृथिवीको दृढ किया और जिसने काम्पित होनेवाले पर्वतको भी स्थित किया, जिसने विशाल अन्तरिक्षके प्रदेशको भी व्याप्त किया और जिसने आकाशके नक्षत्रोंको भी स्थिर किया वही यह इन्द्र है। २

जिसने अहि नामक महाभुजंगका बध करके सात नदीयोंको बन्धनसे मुक्त किया जिसने प्रकाशरूपी गौओंको बलराक्षसके बन्धनसे छुडा लिया, जिसने कडेसे कडे पत्थरके पेटमेंभी अग्निको उत्पन्न किया और युद्धमें सज्जन लोगोंके शत्रुओंका जिसने नाश किया वही इन्द्र है। ३

जिसने सब अस्थिर भुवनोंको उत्पन्न किया. जिसने आर्यजनके पापी और दुष्ट शत्रुओंका नाश करके उनको गुफाकी ओर हकाल दिया और जिसने शिकारीकी तरह पराक्रमी और विजयी सज्जन लोगोंके शत्रुओंको परास्त करके उनकी घमण्ड उतार दी और उनका वैभव छीन लिया वही यह इन्द्र है। ४

कुछ नास्तिक लोग पूंछते हैं कि वह भयंकर इन्द्र कहां है? कई लोग इन्द्रको मानतेही नहीं। किन्तु यह उनकी भूल है। क्यों कि पक्षीयोंको हकाल देनेका काम जैसा सहज है वैसे इन्द्रदेव सज्जन लोगोंके शत्रुओंका नाश सहज रीतिसे करते हैं। इस लिये इन्द्रदेवकी प्रेमसे स्तुति करनी चाहिये। वही यह इन्द्र है। ५

कोई भी मनुष्य श्रीमान हो, दीन हो, ज्ञानी हो, नम्रतासे प्रार्थना करनेवाला हो अथवा कवि हो, सबको प्रेरणा करनेवाले आपही हैं। सोमवल्लीको पीस डालनेके लिये पत्थरको लेनेवाले और सोमरसको निचोडनेवाले दोनों पुरुषोंकी रक्षा करनेवाले इन्द्र आप ही हैं। ६

---

२ यः व्यथमानां पृथिवीं अदृंहत, यः प्र कुपितान् पर्वतान् अरम्णात। यः वरीयः अन्तरिक्षं विममे, द्याम् अस्तभ्नात्, हे जनासः स इन्द्रः।

३ यः अहिम् हत्वा सप्त सिन्धून् आरिणात्, यः बलस्य अपधा गाः उदाजत्। यः अश्मनः अन्तः अग्निम् जजान समत्सु च (सताम् शत्रूणां) संवृक् (भवति) हे जनासः सः इन्द्र।

४ येन इमा विश्वा च्यवना भुवनानि कृतानि, यः दासं वर्णम् गुहा अधरम् अकः। श्वघ्नीव यः जिगीवान अर्यः पुष्टानि लक्षम् च आदत्, हे जनासः सः इन्द्रः।

५ स कुहेति यं घोरम् (अधिकृत्य) पृच्छन्ति स्म, उत एष नास्तीति एनम् आहुः। (परं च) विजः इव यः अर्य पुष्टीः (लीलया) आ मिनाति अस्मै श्रत् धत्त (एव), अतः हे जनासः इन्द्रः।

६ यो रध्रस्य चोदिता, यः कृशस्य, यो ब्रह्मणः (वा) नाधमानस्य कीरेः (वा)। यः युक्तग्राव्णः सुत सोमस्य च सुशिप्रः अविता (भवति), हे जनासः स इन्द्रः।

जिसकी आज्ञाके अनुसार सब (बुद्धिरूप) अश्व चलते हैं, जिसकी आज्ञाके अनुसार सब (प्रकाशरूपी) धेनूएं चलती है, जिसका शासन (इन्द्रियरूप) गांवपर चलता है, जिसकी आज्ञाके अनुसार मनोरूप रथ चलता है, जिसने सूर्य और उषाको उत्पन्न किया, और जिसके कथनके अनुसार दिव्य उदक वर्षा करते हैं, हे सज्जन, वही इन्द्र है । ७

आपसमें लढनेवाली, परस्परके ऊपर चढाई करनेवाली, परस्परका द्वेष करनेवाली दोनों पक्षोंके शत्रुओंकी सेना जिसकी सहायताकी इच्छा करके जिसको पुकारती हैं, और विजयकी इच्छा करके दोनों पक्षोंके लोक जिसको निजकी ओर बुलाते हैं, हे सज्जन लोग, वही इन्द्र हैं । ८

बिना जिसकी कृपाके किसीको जयका लाभ नहीं होता है, युद्धमें लढते समय निजकी रक्षाके लिये सब लोग जिसको पुकारते हैं, जिसके रूपके अनुसार सब विश्वका आकार बन गया है, और जो अचल वस्तुकोभी उलट पुलटकर चल कर सकता है, हे सज्जन, वही इन्द्र है । ०

भयंकर पाप करनेवाले और उद्दण्डतासे वर्ताव करनेवाले दुष्ट लोगोंका जो अपने वज्रसे नाश करता है, सज्जन लोगोंका अपमान करनेवाले लोगोंको जो कभी क्षमा नहीं करता है और जो अधर्मी दुष्ट लोगोंका सदा नाश ही करता है, हे सज्जन, वही इन्द्र है ।१०

पर्वतकी गुहामें चुपचाप छिपे हुए शंबरासुर राक्षसका तलाश करके जिसने उसका वध कर डाला और शरद ऋतुके चालिसवे दिन नीचे गिरनेपरभी पराक्रम दिखानेका बहाना करनेवाले अहि राक्षसका जिसने नाश किया, वही, हे सज्जन, इन्द्र है ।११

---

७ यस्य प्रदिशि (सर्वे) अश्वासः, यस्य (प्रदिशि सर्वे) गावः यस्य (प्रदिशि) ग्रामाः, यस्य (प्रदिशि) विश्वे रथासः । यः सूर्यम् , यः उषसं जजान, यो अपां नेता, हे जनासः स इन्द्रः ।

८ क्रंदसी (परस्परं) संयती (अनीके) यं विव्हयेते, परे अवरे च उभयाः अमित्राः यं (आव्हयन्ति)। समानं (मन्तं) रथम् आतस्थिवांसा (द्वावपि यं) नाना हवेते, हे जनासः स इन्द्रः ।

९ यस्मा ऋते जनासः न विजयन्ते, युध्यमानाः यं अवसे हवन्ते । यः विश्वस्य प्रतिमानं बभूव, यो अच्युतच्युत् हे जनासः स इन्द्र ।

१० शश्वतः महि एनो दधानान अमन्यमानान् (नृशंसान्) यः शर्वा जघान । यः शर्धते शुध्याम यः न अनुददाति, यः दस्योः हन्ता हे जनासः स इन्द्रः ।

११ पर्वतेषु क्षियन्तं शंबरम् यः शरदि चत्वारिंश्यां तिथौ अन्वविन्दत् । यः शयानम् अपि ओजायमानं अहिम् दानुम जघान हे जनासः सः इन्द्रः

नानाप्रकारके सात रश्मियोंसे जो विभूषित होता है, जिस बड़े पराक्रमी वीरने अपने बड़े सामर्थ्यसे महानदीयोंके जल प्रवाहोंको पृथ्वीपर बन्धनसे मुक्त किया, स्वर्गपर चढ़ाई करनेवाले रौहिणी राक्षसको, अपने वज्रकी तरह कडे हाथोंसे फेक दिया, हे सज्जन, वही इन्द्र है । १२

पृथिवी और आकाश जिसको नमस्कार करते हैं, जिसके डरके कारण सब पर्वतभी कांपने लगते हैं, भक्तोंने अर्पण किये हुए सोमरसका जो प्राशन करता है, जिसके बाहु वज्रकी तरह बडे कडे होते हैं और जिसके हाथमें वज्र रहता है, हे सज्जन, वही इन्द्र है । १३

सोमरसको निचोडकर छाननेवाले ऋत्विजोंकी जो रक्षा करता है, हविरन्न पकानेवाले, स्तोत्र पढनेवाले और निजके गुणोंकी प्रशंसा करनेवाले लोगोंपर कृपा करके जो उनकी रक्षा करता है, सोमरसका प्राशन करके जो आनन्दित होता है और जिसको हवि अर्पण किया जाता है, हे सज्जन, वही इन्द्र है । १४

किसीके अन्तःकरणको आपके स्वरूपका पता नहीं लगता है । किन्तु आपको हविरन्न अर्पण करनेवाले भक्तोंको आप सत्व सामर्थ्य प्रदान करते हैं । इसमें सन्देह नहीं कि उस समय आप अपना स्वरूप सामर्थ्यके द्वारा प्रकट करते हैं, हे इन्द्र, हम आपसे प्रेम करते हैं । इस लिये हम अपने शूर पुत्रोंके साथ आपके यशका वर्णन करते रहेंगे । १५

वर्षाऋतुही सोमलताकी माता है । वर्षाऋतुके उदकसे सोम उत्पन्न हुआ है । जिस आकाशके उदकमें सोम उत्पन्न होता है उसीमें सोम प्रवेश करता है । इस लिये सोमलता तेजोमय और हृष्टपुष्ट दिखाई देती हैं । सोमलताका रस दूधकी तरह सफेत दिखाई देता है और ऊपर उछलता है, सोमलतासे जो अमृत निकाला जाता है वह यही है । इस लिये पहिले आपके बड़े कामकी प्रशंसा करनी चाहिये । १

---

१२ सप्तरश्मिः वृषभः तुविष्मान च यः सप्त सिन्धून सर्तवे अवासृजन् । यः वज्रबाहुः द्याम् आरोहन्तं रौहिणम अस्फुरत् हे जनासः स इंद्रः ।

१३ अस्मै द्यावापृथिवी चित् नमेते, अस्य शुष्मात् पर्वताः चित् भयन्ते । यः सोमपाः निचितः वज्रबाहुः (अपि) वज्र हस्तः हे जनासः स इन्द्रः ।

१४ यः सुन्वन्तम्, यः पचन्तम्, यः शंसन्तं, यः शशमानम् (अपि) ऊती अवति । यस्य ब्रह्म वर्धनं (भवति) यस्य सोमः, यस्य इदम् राधः (अपि) वर्धनं (भवति) हे जनासः सः इन्द्रः ।

१५ यः त्वम दुध्रः (सन्) चित् सुन्वते पचते वाजं आ दर्दषि, सः किल सत्योसि, (अतः) हे इन्द्र वयं विश्वहा ते प्रियासः (संतः) सुवीरासः विदथम् आवदेम ।

१ (वर्षा) ऋतुः (सोमस्य) जनित्री, तस्या परिजातः यासु (सः) वर्धते (ताः) अपः मक्षु आ अविशत् । तत् (सा वल्लिः) आहनाः पयः पिप्युषी अभवत्, (तत् एव) अंशोः पीयूषं भवति । तत् (ते महत्कर्म) प्रथमं उक्थ्यम् एव ।

पूर्णरीतिसे जलसे भरी हुई सब नदीयां चारों ओरसे आपकी ओर आती है। सब जगत्‌का पोषण करनेके लिये जलरूप अनाज वे (नदीयां) अपने साथ ले आती है। आकाशसे नीचे आनेवाले प्रवाहोंका, समुद्रकी ओर बहनेका मार्ग एकही है। ये सब वस्तुएं आपहींने उत्पन्न की है; इस लिये सबसे पहिले आपहीका स्तवन करना चाहिये। २

ईश्वर जो कुछ अर्पण करता है वह जीव है। आकार नष्ट करनेका काम केवल मृत्युका ही है। और वह सबका नाश करके सब स्थानोंमें सञ्चार करती है। प्रत्येक प्राणीकी चेष्टाओंको-चाहे भली हो अथवा बुरी हो-केवल पृथ्वी ही सहती है। आपहीने सब वस्तुएं उत्पन्न की है। इस लिये पहिले आपकी स्तुति करनी चाहिये। ३

जिस तरह याचकने स्विकार किया हुआ बहुत धन वह अपने कन्धेपर ले नहीं जा सकता उसी तरह सब प्राणी पृथिवी भरके सब अनाजका उपयोग नहीं कर सकते। चाहे जितना अनाज उत्पन्न करनेके लिये (मेघ) तैयार रहता है। जगतके पिताने दूधरूपी अन्नभी बच्चोंके लिये उत्पन्न किया है। क्योंकि बच्चे चाब नहीं सकते। दूधको चाबनेकी आवश्यकता नहीं है। आपहींने सब वस्तुओंको उत्पन्न किया है। इस लिये सबसे पहिले आपहीका स्तवन करना चाहिये। ४

आपने जो पृथिवी उत्पन्न की है उसकी शोभा बढानेके लिये आपने नक्षत्र युक्त आकाश भी उत्पन्न किया। वृत्र राक्षसका वध करनेवाले आप ही हैं। पवित्र जलके बन्द किये हुए मार्गको भी आपने खोल रखे हैं। जिस तरह प्यासे वीर पुरुषको जल देकर सन्तुष्ट किया जाता है उसी तरह स्तोत्रोंके द्वारा आपके यज्ञका वर्णन करके आपको भी प्रसन्न किया जाता है। इस तरह आपका उत्साह और बढता है। आपहीने सब वस्तुओंको उत्पन्न किया है। इस लिये सबसे पहिले आपहीका स्तवन करना चाहिये। ५(१०

हे इन्द्र, केवल आपही हमें अनाज और सम्पत्ति देकर हमारी उन्नति करते हैं। गीले जमीनसे सूखा अनाज उत्पन्न करनेकी आपहीकी करतूत है। आपने अपने दिव्य सम्पत्तिका सञ्चय सूर्यमण्डलमें ही रखा है। उपर्युक्त सब वस्तुओंके आप अकेले ही स्वामी है। इस लिये सबसे पहिले आपका स्तवन करना चाहिये। ६

---

२ पयः परि बिभ्रतीः (नद्यः) सध्री ईम् आ यन्ति, विश्वपस्न्याय भोजनं च प्र भरन्त। प्रवतां (उदधिं प्रति) अनुष्यदे अध्वा समानः, यः ता (वीर्याणि) अकृणोः सः प्रथममेव उक्थ्योसि।

३ यदेकः (ईश्वरः) ददाति तत् (अपरः जीवः) अनुवदति, तदपाः एकः (वस्तु) रूपा मिनन् ईयते। एकस्य विश्वाः विनुदः (एका) तितिक्षते, यः ता (वीर्याणि) अकृणोः सः प्रथममेव उक्थ्योसि।

४ पृष्ठं प्रभवन्तं रयिं आयते (ददति) इव प्रजाभ्यः पुष्टिम् विभजन्त आसते। (जगत्) पितुः भोजनं दंष्ट्रैः आसिन्वन्नेव (अर्भकः) अत्ति, यः ता (वीर्याणि) अकृणोः सः प्रथममेव उक्थ्योसि।

५ अध्र दिवे संदृशे पृथिवीम् अकृणोः, हे अहि हन् यः (त्वम्) धीतिना पथः अरिणक्। वाजिनम् उदभिः न तं त्वा देवम् देवाः स्तोमेभिः अजनन् सः (त्वम्) उक्थ्योसि।

६ यः (त्वं नः) भोजनं च वर्धनं च दयसे, (अपि च) आर्द्रात् (क्षेत्रात्) आ शुष्कं मधुमच्च दुदोहिथ। सः त्वं विवस्वति शेवधिं नि दधिषे, एक एव विश्वस्य ईशिषे स (त्वं) उक्थ्योसि।

सृष्टिनियमके अनुसार जिसके सामर्थ्यसे फल और फूलोंसे भरे हुए वृक्ष उत्पन्न होते हैं जिसके सामर्थ्यसे जलके प्रवाह भिन्न भिन्न स्थानोंमें बहते हैं, जिसके तेजके तुल्य कोई भी वस्तु नहीं है, जिसने आकाशमें बिजली उत्पन्न की, जो विस्तीर्ण सागरको घेरता है ऐसे केवल आप, हे इन्द्र, अकेले ही है। इस लिये आप स्तुति करने योग्य है। ७

भक्तोंको सामर्थ्य प्रदान करनेके लिये और पापी दुष्टोंका नाश करनेके लिये आपने नार्मर राक्षसको मार डाला और उसके वैभवका नाश किया। इस तरह आपने अपनी उज्वल तलवारका तेज प्रकट किया। इतनाही नहीं; किन्तु इससेभी अपूर्व काम आप करते हैं। इस लिये पहिलेकी तरह अबभी आप स्तुति करने योग्य है। ८

हे इन्द्र, अपने भक्तोंकी पुकार सुनते ही आप अपने रथको घोडोंको जोतते हैं और उसकी रक्षा करनेके लिये शीघ्र ही चले जाते हैं। दभीति नामके भक्तकी रक्षा करनेके लिये आपने उसके शत्रुको ऐसे स्थानमें रखा जहांसे वह किसी तरह छुट नहीं सका। इस तरह आप भक्तोंकी रक्षा करनेमें सदा तैयार रहते हैं। सचमुच इस लिये आप स्तुति करने योग्य है। ९

उदक-प्रवाहको रोकनेके लिये तैयार हुई सब प्रकारकी शक्तियोंका आपके सामर्थ्यके सामने कुछ भी नहीं चला। बड़ा काम करनेमें आप बडे कुशल हैं। छः लोकोंको और पांच दिशाओंको आपने नियत स्थानमें स्थापित किया। सबको व्याप्त करके आप फिर भी बाकी है। इस लिये यह निसन्देह बात है कि आप स्तुति करने योग्य हैं। १०

हे शूर इन्द्र, केवल एक बड़ा काम करके आप सब सम्पत्तिको हरण करते हैं। जातुष्ठिर सरीखे बलवान् और जवान राक्षसकी भी घमण्ड आप उतार देते हैं। इस लिये आपके पराक्रमका गौरव बढे उतनाही अच्छा है। हे इन्द्र, सब बड़े बड़े काम आपहीने किये हैं। इस लिये सचमुच आप स्तुति करने योग्य है। ११

---

७ यः (त्वं) पुष्पिणीः च प्रस्वः अवनीः च दाने अधि धर्मणा वि अधारयः। यः च दिवः असमाः दिद्युतः अजनः उरुः (सन्) ऊर्वान (उदधीन) अभितः (असि) सः उक्थः असि।

८ पृक्षाय च दासवेशाय च यः त्वम नार्मरं सहवसुं निहन्तवे अवहः। ऊर्जयन्त्याश्च (असिलतायाः) आस्यम अपरिविष्टम. (कृतम्, नच एता वन्येव ते वीर्याणि) उत पुरुकृत एव सः त्वम् अघ उक्थोसि।

९ यद्ध एकस्य श्रुष्टौ, शतं वा दश (हरीन) साकं यस्य (ते रथे) आयः, चोदम् च आविथ। दभीतये दस्यून् अरज्जौ सम् उनप, (एवं) सुप्राव्यो अभवः सः उक्थोसि।

१० विश्वाः इत् रोधनाः यस्य पौंस्यम अनुदद्ुः अस्मै च कृत्नवे धनम् (अनु) दधिरे. (यः तत) षड् विष्टरः पंच संदृशश्च अस्तभ्राः पर परि अभवः, सः उक्थोसि।

११ हे वीर, एकेनैव क्रतुना वसु विन्दसे, सहस्वतः जातुष्ठिरस्य वयः प्र (विन्दसे च) तत तव वीर्यम् सुप्रवाचनम (भवति), या (एता) विश्वा त्वं चकर्थ स त्वम् (उक्थोसि)

हे इन्द्र, आपने जोरसे बहनेवाले नदीके प्रवाहको इस लिये रोक लिया कि **तुर्वीति** और **वय्य** सहज रीतिसे तैरकर पार जा सके। लङ्गडे और अन्धे **परावृजकी** उन्नति करके आपने उसकी कीर्ति चारों और बढा दी। इस लिये सचमुच आप स्तुति करने योग्य है। १२

हे दिव्यनिधे इन्द्र, आपका कृपारूपी धन हमें इसतरह प्रदान कीजिये जिससे आप उसको सदा बढातेही रहेंगे। आपके पास अच्छी अच्छी सम्पत्ति बाकी है। वह सम्पत्ति प्राप्त करनेके लिये हम अपने वीरपुत्रोंके साथ यज्ञसभामें आपके यशका वर्णन करते रहेंगे। १३ (१२)

सूक्त १४.

॥ ऋषि--गृत्समद। देवता--इंद्र ॥

हे अध्वर्यू, इन्द्रको अर्पण करनेके लिये सोमरस ले आइये। उस आनन्द देनेवाले सोमरसको पानी पीनेके बरतानमें डालो। शूर इन्द्र सोमरसका प्राशन करनेके लिये लालसित होते है। इस लिये पराक्रमी इन्द्रको सोमरस अर्पण कीजिये। क्योंकि वे उसीकी इच्छा करते हैं। १

हे अध्वर्यू, जिस तरह बिजली किसी वृक्षको कांट डालती है उसी तरह इन्द्रभी अपने वज्रसे दिव्य उदकोंको चारों ओरसे रोकनेवाले वृत्रको कांट डालते हैं। इन्द्र देव, सोमरसको बहुत चाहते हैं। इस लिये आपको सोमरस अर्पण करना चाहिये। सोमरस प्राशन करनेके लिये इन्द्र-देव बडे योग्य है। २

हे अध्वर्यू, जिसने दृभिक राक्षसका वध किया जिसने प्रकाशरूपी धेनुओंको मुक्त किया, जिसने बल राक्षसका सच्चा स्वरूप लोगोंको दिखाकर उसको मार डाला और जिसने वायुकी तरह सब विश्वको व्याप्त किया है उस इन्द्रको बागारूपी वस्त्रकी तरह सोमलतासे ढाक दीजिये। ३

---

१२ तुर्वीतये च वय्याय च कं तराय सरपसः स्रुतिम् त्वं अरमयः। अधं श्रोणं नीचा सन्तं परावृजं प्र श्रवयन उदनयः, स त्वं उक्थ्योसि।

१३ हे वसो इंद्र, तत ते राधः अस्मभ्यं दाना स समर्थयस्व, यत (स्वयमेव त्वं) चित्रं श्रवस्याः, बहु ते वसव्यम। (तद) सुवीराः वयं अनुयून विदथे ते बृहत् (यशः) वदेम।

१ अध्वर्यवः, इंद्राय सोमं भरत, मद्यम अन्धः अमत्रेभिः सिचत। अयं वीरो हि सदम अस्य पीतिम् कामी (भवति), (तद) वृष्णे जुहोत, एष तद वष्टि इत।

२ अध्वर्यवः, अशन्येव वृक्षं, यः अपः वव्रिवांसं वृत्रं (वज्रेण) जघान। तस्मै तद्वशाय एतम् भरत, एष इंद्रः अस्य पीतिम अर्हति।

३ अध्वर्यवः, यो दृभीकं जघान, यो (दिव्याः) गाः उदाजत् वलं हि अप वः। अंतरिक्षे वातम् न तस्मै (विश्वव्यापिने इंद्राय) एतम (सृजत), जूः न वस्त्रैः सोमैः इंद्र आ ऊर्णुत।

हे अध्वर्यू, जब उरण राक्षसने अपने नव्वानव्वे बाहूओंको उठाकर हमला किया तब इन्द्रने उसका नाशकर डाला। आपने अर्बुद राक्षसकोभी नीचे पटककर उसको मार डाला। इस लिये हमारे सोमरसका अस्वाद लेनेके लिये हम आपसे प्रार्थना करते हैं। ४

हे अध्वर्यू, जिस इन्द्रने अश्न राक्षसका वध किया और जिसने लालची शुष्ण-व्यस, विप्रु, नमुची और रुधिक्रा आदि राक्षसोंका नाश किया उस इन्द्रको हम सोम, रसका प्राशन करनेके लिये आग्रहसे बुलाते हैं। ५

हे अध्वर्यू, जिसने शम्बर राक्षसके सौ विशाल किलोंका बिजलीकी तरह नाशकर डाला और जिसने वर्चीकी एक लाख सेनाकाभी नाश किया उस पराक्रमी इन्द्रके लिये सोमरस ले आइये। ६

हे अध्वर्यू, जिसने लाखों शत्रूओंका वध करके उनको पृथिवीपर चारों ओर फेंक दिया जिसने कुत्स, आयु और अतिथिग्व आदि भक्तोंके लडनेवाले शत्रूओंको परास्त किया ऐसे इन्द्रके लिये सोमरस ले आइये। ७

हे शूर अध्वर्यू, आप इन्द्रकी आज्ञाको मानते ही हैं। इस लिये इन्द्रकी कृपासे आप अपनी इच्छा पूरी कर सकते हैं। हे यज्ञनिष्ठ भक्त, अपने बाहुबलसे सोमलतासे निचोडा हुआ पवित्र रस पुण्यवान इन्द्रको अर्पण कीजिये। ८

---

४ अध्वर्यवः, नव नवतिं च बाहून् चख्वांसं उरणं यो जघान, यः अर्बुदं नीचा अव बबाधे तम् इंद्र सोमस्य भृथे हिनोत।

५ अध्वर्यवः, यो अश्नं सु जघान, यः अशूयं शुष्णम्, यः व्यंसम्, यः पिप्रुं नमुचिम् च यो रुधिक्रा (जघान) तस्मै इन्द्राय अन्धसः जुहोत।

६ अध्वर्यवः, यः शंबरस्य शतं पूर्वीः पुरः अश्मनेव बिभेद। य इन्द्रः वर्चिनः शतम् सहस्रम् (योधान्) अवापतत् अस्मै इन्द्राय सोमं भरत।

७ अध्वर्यवः, यः शतं सहस्रं (अरीन्) जघन्वान् भूम्याः उपस्थे आ अवपत्। यः कुत्सस्य आयोः अतिथिग्वस्य च वीरान् (अरातीन्) न्यवृणक्, अस्मै सोमं भरत।

८ नरः अध्वर्यवः, (अस्य) श्रुष्टी वहन्तः (यूयं) यत् कामयाध्वे तत् इन्द्रे नशथ। हे यज्यवः, गभस्तिपूतम् सोमं श्रुताय इंद्राय भरत, जुहोत।

हे अध्वर्यू, इन्द्रकी आज्ञाके अनुसार आप वर्ताव कीजिये। वनमें अथवा अरण्यमेंभी सोमरस पवित्र समझा जाता है। इस लिये सोमरसको पानीमें मिलाकर इन्द्रको अर्पण करनेके लिये साथ ले जाइये। इन्द्र देव सदा सन्तुष्टही रहता है; किन्तु तुमने अपने हाथोंसे निकाले हुए रसकी इच्छा इन्द्र करता है। इस लिये आनन्द देनेवाला सोमरस इन्द्रको अर्पण कीजिये। ९

हे अध्वर्यू, जिस तरह गौका स्तन दूधसे भरा रहता है उसी तरह सोमरससे भरा हुआ प्याला उदार इन्द्रको अर्पण करके सन्तुष्ट कीजिये। यह बात मुझे विदितही है; नहीं, मैं निश्चयसे जानता हूं कि पूजा करने योग्य इन्द्र, सोमरस अर्पण करनेवाले भक्तोंको अच्छी तरह पहचानता है। १०

हे अध्वर्यू, दिव्य ऐश्वर्य और भूलोककी ऐहिक सम्पत्तिके स्वामी इन्द्र ही हैं। जिस तरह धान्यकी वर्षा करके विजयी वीर पुरुषको सन्तुष्ट किया जाता है उसी तरह सोमरसकी धाराए बहाकर इन्द्रको पूर्ण रीतिसे सन्तुष्ट कीजिये। आप ऐसा समझिये कि आपका मुख्य कर्तव्य यही है। ११

हे दिव्य ऐश्वर्यके भण्डारके स्वामी इन्द्र, आप कृपारूपी धन हमें ऐसा अर्पण कीजिये जिससे चारों ओर हमारी कीर्ति दिनपर दिन आप बढ़ावेंगे। आपके पास अच्छी अच्छी सम्पत्ति अभीतक बहुत बाकी है। वह सम्पत्ति प्राप्त करनेके लिये हम अपने वीर पुत्रोंके साथ यज्ञसभामें आपका यश वर्णन करेंगे। १२ (१४)

सूक्त १५.

॥ ऋषि-गृत्समद। देवता-इन्द्रः ॥

हे इन्द्र, आपका चरित्र बहुत बड़ा है। आपका चरित्र बहुत सच्चा है। इस लिये मैं आपके चरित्रका वर्णन करता हूं। "चिकद्रुक" उत्सवमें इन्द्रने सोमरसका प्राशन किया। उससे आनन्दमें आकार आपने अहि राक्षसका वध कर डाला। ८-१

---

९ हे अध्वर्यवः, अस्मै श्रुष्टिं कर्तन, वनेपि निपूतम (सोमं) वने (संमिश्रं) अन्नयध्वम्। जुषाणोपि वः अयं अभिवावशे, (तद्) मदिरं सोमं इंद्रय जुहोत।

१० हे अध्वर्यवः, यथा गोः ऊधः पयसा (प्र पूर्णः) ईम् भोजम् इंद्रम् सोमेभिः पृणत। अहम् एतद् वेद, (एतद्) मे निभृतम्, (यद्) यजनः दित्संतम् भूयः चिकेत।

११ अध्वर्यवः यो दिव्यस्य वस्वः, यः पार्थिवस्य क्षम्यस्यापि राजा। ऊर्दर (वीरं) यवेन न तम इंद्रं सोमेभिः पृणत, तदेव अपः वः अस्तु।

१२ वसो इंद्र तद् (ते) राध अस्मभ्यं दानाय समर्थयस्व यत् अनु द्यून् चित्रम् श्रवस्याः, बहु ते वसव्यम् (अतः) सुवीराः (वयम्) विदथे (ते) बृहत् (यशः) वदेम।

१ नु अस्य महतः सत्यस्य महानि सत्या करणानि प्र द्य वोचम्। सः इंद्रः चिकद्रुकेषु अस्य सुतस्य अपिबन् मदे चास्य अहिम् जघान।

जिस आकाशमें किसीका सहरा नहीं है ऐसे स्थानमें आपने नक्षत्रोंको दृढतासे स्थापित किया। सब अन्तरिक्षको आपने वायूसे भरा दिया और (आकर्षण शक्तिसे) उसको संभालकर उसकी सीमा बढ़ायी। सोमरसका प्राशन करके आनन्दमें आकार आपने उपर्युक्त बातें कीं। २

घरका स्थान नियत करनेकी तरह आपने पूर्व (पश्चिम) आदि दिशाओंको नियत किया। स्वर्गकी नदीयोंके उगतका स्थान आपहीने अपने वज्रसे खोल दिया। और उनको बहनेके लिये उनका बन्धन तोड़कर उनका लम्बा चौडा मार्ग सहजरीतिसे खोल दिया। सोमरसके प्राशनके आनन्दमें आकार इन्द्रने उपर्युक्त बातें कीं। ३

हे इन्द्र, दभीति नामके भक्तको पकडकर ले जानेवाले दुष्ट राक्षसको आपने घेर लिया और उसके हथियारोंको जलते हुए अग्निमें फेककर उनको जला दिया। दभी भक्तको आपने धेनू, अश्व, और रथरूपी सम्पत्ति दे दी। सोमरस-प्राशनके आनन्दमें आकर आपने उपर्युक्त बातें कीं। ४

जोरसे आवाज करनेवाले संसाररूपी जलके प्रवाहको रोककर इन्द्र अपने (न तैरनेवाले) भक्तोंको सहज रीतिसे उसके पार ले गया। जब (संसाररूपी) जलके पार वे भक्त चले गये तब वे आनन्दित हुवे। सोमरस-प्राशनके आनन्दमें आकार आपने उपर्युक्त बातें कीं। ५

इन्द्र अपने प्रभावसे समुद्रके उदकके प्रवाहको ऊपर ले गये। आपने उषाके रथको तोड़ डाला। जोरसे चढ़ाई करनेवाली शत्रुकी सुस्त सेनाका आपने नाश कर डाला। सोमरसप्राशनके आनन्दमें आकार आपने उपर्युक्त बातें कीं। ६

---

२ अवंशे (आकाशे) बृहन्तं द्याम अस्तभायन, रोदसी च अंतरिक्षं (वायुना) आ अपृणत। (तस्मिश्च) सः पृथिवीम् धारयत् पप्रथत् च, (एता) ता सोमस्य मदे इंद्रः चकार।

३ सद्मेव मानैः (सः) प्राचः (दिशः) वि मिमाय, वज्रेण नदीनाम खानि अतृणत्। (ताश्च) दीर्घाथैः पथिभिः वृथा असृजत् (एता) ता इंद्रः सोमस्य मदे चकार।

४ सः दभीतेः प्रवोढव्यन् परिगत्य (तेषां) विश्वम आयुधम इद्धे अग्नौ अधाक्। (दभीतिं च) गोभिः अश्वैः समसृजत् (एता) ता इंद्रः सोमस्य मदे चकार।

५ सः ईं महीम धुनिम एतोः अरम्णात, स च अस्नातृन स्वानि अपारयत्। ते च उत्स्नाय रयिम अभि प्रतस्थुः, (एता) ता इंद्रः सोमस्य मदे चकार।

६ सः महित्वा सिन्धुम उदक्षम अरिणात्। वज्रेण उषसः अनः सं पिपेष। जवनीभिः (सेनाभिः) अजवसः (सेनाः) विवृश्चन्, (एता) ता इंद्रः सोमस्य मदे चकार।

जिस स्थानमें वे युवा स्त्री छिपी हुई बैठी थी वह स्थान (इन्द्रकी कृपासे) परिव्राट ऋषिको मिला। उसी समय वह वहां उपस्थित होकर उनके सामने खड़ा हुआ। वह लंगडा था; किन्तु इन्द्रकी कृपासे वह अच्छी तरह चलने लगा। वह अन्धा था; किन्तु इन्द्रकी कृपासे वह अच्छी तरह देखने लगा। सोमरसका पान करनेके आनन्दमें आकार इन्द्रने उपर्युक्त अद्भुत बातें कीं। ७

अंङ्गिरसकी स्तुतिसे आप बड़े प्रसन्न हुए और आपने बल राक्षसको चीरकर उसको मार डाला। पहाडके किलोंको आपने हिलाया और कोटकी भीतको बड़ी कुशलतासे आपने नाश किया। सोमरसका पान करनेके आनन्दमें आकार इन्द्रने उपर्युक्त अद्भुत बातें कीं। ८

चुमुरी और धुनि राक्षसोंको आपने नीन्दके रोगसे तंग किया और जमीनपर पटककर उनको मार डाला। पापी दुष्टोंका वध करके आपने **दभीतिकी** रक्षा की। आपकी कृपासे ही नाश न होनेवाले वस्तुका उसको लाभ हुआ। सोमरसका प्राशन करनेके आनन्दमें आकर इन्द्रने उपर्युक्त अद्भुत बातें कीं। ९

हे इन्द्र, भक्तोंके विषयसे आपकी प्रसिद्ध और उदार बुद्धिरूपी धेनु भक्तोंकी इच्छाको पूरी करके उनको दूध पिलाती है। उसी तरह हमारी इच्छा पूरी करके हमें दूध पिलाइये। क्योंकि हमभी आपके भक्त हैं। हमारा भाग्य आपही पर निर्भर है। हमारा तिरस्कार मत कीजिये। हम अपने शूर पुत्रोंके साथ यज्ञसभामें आपके यशका वर्णन करेंगे। १०

सूक्त १६.

॥ ऋषि--गृत्समद। देवता--इन्द्र ॥

हे सज्जन लोग, जिस तरह प्रज्वलित अग्निमें (इन्द्रके लिये) हवि अर्पण किया जाता है उसी तरह इन्द्रको-जो सब सज्जनोंसे श्रेष्ठ है--अपूर्व स्तवन मैं अर्पण करता हूं। आप सब जगतको दुर्बल कर सकते हैं। किन्तु आप कभी दुर्बल नहीं होते हैं। आपका बढ़ा हुआ सामर्थ्य प्राचीन कालसे सदा स्थित रहता है। आप सदा युवा अवस्थाही में रहते हैं। ऐसे विख्यात इन्द्रकी कृपा हमपर होनेके लिये हम इन्द्रकी स्तुति करते हैं। १

---

७ सः परावृक् कनीनां अपगोहं विद्वान (तेषां पुरः) आनिः भवन उदतिष्ठत। श्रोणाऽपि (सः) प्रातिष्ठात्, अनक् व्यचष्ट (एता) ता इंद्रः सोमस्य मदे चकार।

८ अंगिरोभिः गृणानः बलं भिनत्, पर्वतस्य दृंहितानि वि ऐरयत। एषाम कृत्रिमाणि रोधांसि रिणक्, (एता) ता इंद्रः सोमस्य मदे चकार।

९ चुमुरिं धुनिं च स्वप्नेन अभ्युप्य दस्यूम् जघन्थ, दभीतिम प्र आवः। रम्भी चित् अत्र हिरण्यम विविदे, (एता) ता इंद्रः सोमस्य मदे चकार।

१० हे इंद्र नूनं ते सा मघोनी दक्षिणा (अनुग्रहमतिः) जरित्रे वरं प्रति दुहीयत, (तमेव वरं) स्तोतृभ्यो शिक्ष, मा अति धक्, भगो नः, (अतः) सुवीराः (वयं ते) बृहद्यशः विदथ वदेम।

१ समिधाने अग्नौ हवि रिव, वः सतां ज्येष्ठतमाय (इयं) सुष्टुतिम प्र भरे। जरयन्तमपि अजुर्यम्, सनात् उक्षितम् युवानं इंद्रं अवसे हवामहे।

बडे श्रेष्ठ इन्द्रके अतिरिक्त इस जगत्में कुछभी नहीं रह सकता है। आपहीमें सब सामर्थ्य एकत्रित हुआ है। आप जैसे भगवानके उदरमें सोमरस, शरीरमें अपार सामर्थ्य-तेज, हाथोंमें वज्र और मस्तिष्कमें दिव्य ज्ञान रहता है। २

हे इन्द्र, आपके दिव्य महिमाका पता भूमि और स्वर्ग दोनों लोकोंको नहीं लगा। समुद्र और पर्वत दोनों आपके रथको रोक नहीं सकते। आपके सामर्थ्यका सामना कोई नहीं कर सकता। जब आप अपने रथको वेगवान घोडोंको जोतकर उसमें बैठकर असंख्य योजनोंतक (असीम सीमातक) दौडते चले जाते हैं तब आपका बडा सामर्थ्य सहज रीतिसे लोगोंको विदित होता है। ३

आप पूजा करने योग्य हैं; आप धैर्यकी केवल मूर्ति ही हैं। भक्तोंको सहायता देनेके लिये आप सदा तैयार रहते हैं। आप जैसे पराक्रमी वीरकी सब लोग उपासना करते हैं। हे मित्र, आपको हवि अर्पण करके आपका यजन करना चाहिये। हे इन्द्र, आप बड़े पराक्रमी और बड़े ज्ञानी हैं। आपके रश्मिसमुदायमें बड़ा भारी वीर्य भरा हुआ है। आप अपने तेजोमय मुखसे हमारा सोमरस प्राशन कीजिये। ४

वीरता उत्पन्न करनेवाले सोमरसके कटोरेमें मधुर रस उछलकर बह रहा है। वीरोंने अर्पण किये हुए हवियोंका इन्द्र स्वीकार करते हैं। वीरश्रेष्ठ इन्द्रके प्राशन करनेके लिये ऋत्विज कटोरेमें सोमरस डालते हैं। अध्वर्यु अच्छे स्वभावके मनुष्य हैं; प्रेरणा करनेवाले सोमरसको कूटनेके लिये पत्थरभी अच्छे उपस्थित हैं। सोमरस स्वयम् वीरता बढानेवाला है। ऋत्विजोंने वीर-श्रेष्ठ इन्द्रको अर्पण करनेके लिये छाना हुआ सोमरस तैयार रखा है। (इसमें आश्चर्यही क्या है?)। ५

आपका वज्र विजयी होता है, आपका रथ विजयी है, आपके घोडेभी विजयी हैं, आपका हथियार भी विजयी है। हे वीरश्रेष्ठ, वीर पुरुषमें जो वीरता दिखाई देती है उसके स्वामी आपही हैं। हे इन्द्र, सोमरस वीरताको उत्पन्न करनेवाला है; इस लिये उसका प्राशन करके आप सन्तुष्ट हूजिये। ६

---

२ यस्मात् बृहतः ई इंद्रात् ऋते वि॰ चन (विद्यते), अस्मिन् इंद्रे अधि विश्वा वीर्या संभृता (सन्ति। एतादृशः सः) जठरे सोमं, तन्वी महः सहः, हस्ते वज्रं, शीर्षणि च क्रतुं भरति।

३ इंद्र ते इंद्रियं क्षोणीभ्यां न पारेभ्ये, ते रथो पि समुद्रैः पर्वतैः (परिभ्ये) न यत् आशुभिः (हरिभिः) पुरु योजना पतसि, (तदा) ते वज्रम् कश्चन न अन्वश्नोति (इति विनायासं ज्ञायते)।

४ अस्मै यजनाय धृष्णवे सप्रथसे वृषभाय विश्वे हि कर्तुं भरन्ति। (तद् मित्र तम) हविषा यजस्व, हे इंद्र त्वं वृषा विदुष्टरः वृषभेण (अग्नेः) भानुना सोमं पिब।

५ वृष्णः मध्वः कोशः ऊर्मिः, वृषभान्नाय वृषभाय पातवे पवते। वृषणा अध्वर्यू, वृषभासः अद्रय, वृषणम् सोमम् वृषभाय सुष्वति।

६ ते वज्रः वृषा, उत ते रथो वृषा, हरी वृषणा, आयुधानि (अपि) वृषभाणि। हे वृषभ, वृष्णः मदस्य त्वं ईशिषे, इंद्र वृषभस्य सोमस्य तृप्णुहि।

हे इन्द्र, आप स्तुतिको पसन्द करते हैं। युद्धरूप समुद्रमें तैरनेके लिये आप, मानों, नौका ही हैं। धीरजको पकडकर सोम अर्पण करते समय प्रार्थनाके द्वारा मैं आपके पास आता हूं। क्या इन्द्र हमारी प्रार्थना सुनेंगे? मानों, इन्द्र स्वयं अपार सम्पत्ति देनेवाला स्थिर झरना ही है। किन्तु उसको भी हम सोमरससे भिगो देते हैं। ७

बनमें चारा खाकर हृष्टपुष्ट हुई धेनु जिस तरह अपने बछाकी रक्षा करती है उसी तरह हमपर आनेवाली आगामी आपत्तिसे हमारी रक्षा करनेके लिये आप हमारी ओर आइये। हे इन्द्र, आप बडे ज्ञानी है। जिस तरह वीर पुरुष अपनी पत्नीसे प्रेमसे मिलता है उसी तरह हमारी भेट शीघ्रतासे आपकी दयालु बुद्धिके साथ होवे (अथवा आप हमपर शीघ्र कृपा करें)। ८

हे इन्द्र आपकी प्रसिद्ध और उदार बुद्धिरूपी धेनु अपने भक्तोंके मनोरथ पुरे करके उनको सन्तुष्ट करे। हम जैसे भक्तोंको वैसाही दूध पिलाईये। आपहीपर हमारा भाग्य निर्भर है। हमारा तिरस्कार मत कीजिये। हम अपने शूरपुत्रोंके साथ यज्ञ सभामें आपका यश वर्णन करेंगे। ९ (१८)

सूक्त १७.

॥ ऋषि--गृत्समद । देवता--इन्द्र ॥

अंगिरसकी तरह इन्द्रके लिये खडे स्वरसे एक प्रसिद्ध और नया स्तोत्र गाना चाहिये। प्राचीन कालकी तरह इन्द्रका प्रभाव भी अबतक सबको विदितही है। कोटकी भीतमें रुके हुए प्रकाशरूपी धेनुओंके समुदायको, हे इन्द्र, आपने बन्धनसे मुक्त किया। सोमरसका प्राशन करके आनन्दमें आकर कोटकी भीतका आपने नाश किया। १

सोमरसका प्राशन करनेका अधिकार सबसे पहिले आपहीका है। आपका सामर्थ्य इतना बडा है कि उसके द्वारा आपने सब बडेपनको व्याप्त किया है। युद्धमें तेजरूपी कवचसे आप अपना शरीर ढांक देते हैं। आपहीने अपने शिरपर अन्तरिक्ष रूपी नक्षत्र-गोलको धारण किया है। ऐसे पराक्रमी इंद्रकी जय हो। २

---

७ समनं नावं न त्वा वचस्युवं दाधृषिः (अहं) ते ब्रह्मणा सवनेषु प्र यामि। सः अस्यनः वचसः निबोधिषत् कुविन्, इंद्र वसुनः उत्सं न (सोमेन) सिचामहे।

८ यवसस्य पिप्युषी धेनुः वत्सं न, संवाधारा पुरा नः अभि आ ववृत्स्व। शतक्रतो, वृषणः पत्नीभिः न, ते सुमतीभिः सकृत् सु सं नसीमहि।

९, इंद्र नूनं ते सा मघोनी दक्षिणा (अनुग्रहमतिः) जरित्रे वरं प्रति दुहीयत। (तमेव वरं) स्तोतृभ्यो शिक्ष, मा अति धक् भगो नः, (अतः) सुवीराः (वयं ते) बृहत यशः विदथे वदेम।

१ यत् अस्य शुष्माः प्रत्नथा ईरते, यच्च परावृता विश्वा गोत्रा दृंहितानि स सोमस्य मदे ऐरयत, तद् अंगिरस्वत अस्मै नव्यं अर्चत।

२ यो ह प्रथमाय धायसे (भवति) यः ओजो मिमानः महिमानं आतिरत। यः शूरः पृत्सु तन्वं परिव्ययत, शीर्षणि च महिन्न द्यां प्रत्यमुंचत स भुतु।

हे इन्द्र, आपका पराक्रम सबसे बड़ा और प्राचीन है। केवल अपने शब्दोंसे आप अपना प्रभाव दिखाते हैं। पीले रंगके अश्व अपने रथको जोतकर और उसमें बैठकर आप अपने पराक्रमी शत्रुओंका नाश करते हैं। शत्रुओंमेंसे कुछ मिलकर और कुछ अकेले चारों ओर दौड़कर भाग गये। ३

हे इन्द्र, आप सब भुवनोंके पराक्रमी प्राचीन स्वामी हैं। आप सदा युवा अवस्थामें रहते हैं। आप सब भुवनोंको व्याप्त करके अधिक बढ़े हुए हैं। आपही सब जगत्के स्वामी हैं। आपहीने विश्वरूपी गोल उत्पन्न किया है। आपही उसको प्रकाशित करते हैं। और आपहीने अन्तरिक्षको व्याप्त किया है। सब दूर फैले हुए अन्धकारको एकत्रित करके आपने अपने प्रकाशके द्वारा उसको बान्धकर रखा है। ४

आगे झुके हुए और गिरनेवाले पर्वतको आपने अपने प्रतापसे दृढतासे स्थित किया और जलकी ओर वर्षा करनेका काम सौंप दिया। सब प्राणियोंका पोषण करनेवाली पृथिवीको आपहीका आधार है। हे इन्द्र, आपहीने अपने दिव्य बलसे अन्तरिक्षमें नक्षत्रोंको सम्भालकर अपनी ओर खींचकर रखा है। ५ (१९)

हे जगत् पिता इन्द्र, सब प्राणियोंके ज्ञानरूपी सामर्थ्यसे श्रेष्ठ आपका वज्र है। हे इन्द्र, जिस वज्रसे आपने बड़ी घोषणा करके क्रिविराक्षसका नाश करके उसको भूमिपर फेंक दिया वह वज्र आपके बाहूपर अच्छीतरह शोभायमान दिखाई देता है। ६

जिस तरह पिताके गृहमें युवा कन्या अपने कल्याणके लिये आपसे प्रार्थना करती है उसी तरह मैं भी बड़ी नम्रतासे अपने कल्याणके लिये आपसे-जो सब प्राणियोंका एकही आधार है-विनति करताहूं। बुद्धिरूपी प्रकाश हमारेमें उत्पन्न कीजिये। जो कुछ हमें देना है सो आप देतेही हैं। जिस भाग्यसे आप आनन्दित होते हैं वेही भाग्य हमें अर्पण करनेके लिये ले आइये और हमें दे दीजिये। ७

---

३ अध तत् महत् वीर्यं प्रथमं अकृणोः, यत् अग्रे ब्रह्मणा (एव) अस्य शुष्मं एरयः। (ततः) रथेष्ठेन हर्यश्वेन त्वया विच्युताः जीरयः सध्यक् पृथक् च प्र सिस्रते।

४ अध यो मज्मना विश्वा भुवना अभि प्रवयाः ईशानकृत् अन्यवर्धत। आत् सः वह्निः रोदसी ज्योतिषा अततान, दुधिता तमांसि सीव्यन् समव्ययत्।

५ स प्राचीनान् पर्वतान् ओजसा दृंहत् अपां अपः अधराचीनम् (च) अकृणोत्। विश्व धायसं पृथिवीं अधारयत्, मायया च द्याम् अवस्रसः अस्तभ्नात्।

६ यम पिता (इंद्रः) विश्वस्मात् आ जनुषः वेदसः परि अकृणोत्, येन च तुविष्वाणिः क्रिविं हत्वा समर्थ्ये पृथिव्याम् नि अवृणक्, सः (वज्रः) अस्मै बाहुभ्याम् अरम्।

७ पित्रोः सचा अमाजूः सती (त्वत्तः) समानात् सदसः आ (भाग्यं ईयते तद्वत्) अहमपि त्वां भगम् इये। प्रकेतं कृधि, उपमासि, (परं च) येन तन्वः मामहः तम भागं आ भर दद्धि च।

हे इन्द्र आपका आत्मा बडा उदार है; हम आपहीको पुकारते है। काम करनेकी बुद्धि आपही अर्पण करते हैं और सात्विक सामर्थ्य आपही दे देते हैं। आप अपने अद्भुत लीलासे हमारी सहायता कीजिये। हे वीरश्रेष्ठ इन्द्र, हमें उच्च आनन्द भी प्रदान कीजिये।८

हे इन्द्र, आपकी प्रसिद्ध और उदार बुद्धि अपने भक्तोंपर अनुग्रह करें और उनकी इच्छा पूरी करें; इस तरह आपकी कृपारूपी दयालु धेनु अपने भक्तोंको दूध पिलावे। आपही प्रत्यक्ष हमारा भाग्य है। इस लिये हमारा तिरस्कार मत कीजिये। हम अपने पराक्रमी पुत्रोंके साथ यज्ञ सभामें आपका यश वर्णन करेंगे। ९ (२०)

सूक्त १८.

॥ ऋषि--गृत्समद । देवता--इन्द्र ॥

देखिये; प्रात:कालकेसमय यज्ञरूपी रथ बिलकुल तैयार है। यह रथ (भक्तोंकी) इच्छा पूरी करनेवाला है; उसके चार घोडे होते हैं; उनके (घोडोंके) तीन चाबूक होते हैं, और उनके सात लगाम होते हैं। उस रथके दस दरवाजे होते हैं। वह रथ मनुष्यका सदा कल्याण ही करता है। और स्वर्गके प्रकाशका भी लाभ कराता है। उत्साहके साथ अग्निमें अर्पण की हुई आहुतियोंके कारण और हार्दिक स्तवन करनेके कारण ही उपर्युक्त रथ बडे वेगसे दौडता है। १

इन्द्रके निमित्त यज्ञ करनेके लिये पहिले पहल अग्निकी आवशकता है। दूसरे बार विचार करनेसे यह विदित हुआ कि ऐसे कार्यके लिये अग्निकी ही आवशकता है। तिसरे बार विचार करनेसे भी यह विदित हुआ कि अग्निकी आवशकता है। क्योंकि सब मनुष्योंके लिये यज्ञ करनेवाला अग्नि ही है। (वह भिन्न भिन्न स्थानोंमें भीन्न भीन्न रूपहे रहता है)। वह अग्नि सूक्ष्मरूपसे किसी जगह रहता है; किसी जगह प्रकट रूपसे रहता है; वह पराक्रमी वीर किसी दूसरे मनुष्यके साथ भी रहता है। २

यहां इन्द्रके आनेके लिये खडे आवाजसे मैं एक अपूर्व स्तोत्र गाता हूं और पीले रंगके घोडोंको रथको जोतता हूं। हे इन्द्र, हमारे यहां ऐसे बहुत कवि है जो आपकी सेवा करनेके लिये तैयार है। इस लिये और और दूसरे भक्त जन सेवा करनेके लिये आपको न रोकें। ३

---

८ इंद्र त्वां भोजम वयं हुवेम, इंद्र त्वम अपांसि वाजान च ददिः। चित्रया उती नः अविड्ढि, हे वृषन् इंद्र, नः वस्यसः कृधि।

९ हे इंद्र नूनं ते सा मघोनी दक्षिणा (अनुग्रहमतिः) जरित्रे वरं प्रति दुहीयत। (तमेव वरं) स्तोतृभ्यो शिक्ष, मा अतिधक्, भगो नः (असि, अतः) सुवीराः वयं ते बृहत् (यशः) विदथे वदेम।

१ (अयं यज्ञरूपो) नवो रथः प्रातः अयोजि, स च सस्निः चतुर्युगः, सप्तरश्मिः, दशारित्रः, मनुष्यः स्वर्षाः च। स च इष्टिभिः मतिभिः रंह्यो भूत। २ अस्मै प्रथमं सः अरं, सः द्वितीयं, उतो तृतीयं सः मानुषः होता। अन्यस्याः गर्भं, अन्ये जनत उं, सः जेन्यः वृषा अन्येभिः सचते। ३ नु कम् इंद्रस्य आये सूक्तेन नवेन वचसा रथे (अस्य) हरि योजम। (इंद्र) अत्र बहवो विप्राः (परिचरन्ति त्वाम् अतः) अन्ये यजमानासः मो षु त्वाम नि रीरमन।

हे इन्द्र, हम आपको बुलाते हैं; इस लिये रथको दो घोडे जोतकर आइये अथवा चार घोडे जोतकर आइये अथवा छः घोडे जोतकर आइये अथवा आठ घोडे अथवा दस घोडे जोतकरभी सोमरस प्राशन करनेके लिये आइये। हे परम पवित्र देव इन्द्र, यह सोमरस आपहीके लिये छानकर तैयार रखा हुआ है। इस लिये इसका तिरस्कार मत कीजिये। ४

बीस, तीस अथवा चालीस अश्वोंकोभी जोतकर आप हमारी ओर भूलोकमें आइये। हे इन्द्र, आप अपने उत्तम रथको पचास साठ और सत्तर घोडोंको जोतिये; किन्तु सोमरसका प्राशन करनेके लिये आइये। ५

यदि आवश्यकता हो तो अस्सी, नव्वे, अथवा सौ घोडे जोते हुए रथमें बैठकर (भूलोकमें) हमारी ओर आइये। आपको आनन्दित करनेके लिये बडी भक्तिसे शुनहोत्र नामके पात्रमें सोमरस रखा हुआ है। ६

हे इन्द्र, मेरी प्रार्थना सुनिये। कृपा करके सब घोडोंको अपने रथको जोतिये। अन्य अन्य स्थानोंमें कई भक्तलोग आपको बुलाते हैं। तथापि सबसे पहले सोमरस प्राशन करनेके लिये आप हमारे यहां सवन नामके यज्ञमें आइये और आनन्दित हूजिये। ७

इन्द्रके साथ मेरी बडी मित्रता है। उसका कभी नाश न होवे। आपकी दया-रूपी धेनू हमारे मनोरथ पुरे करें। आपके बाहूही हमारा कवच है। आपके बाहूके सहारेसेही हमारा युद्धमें विजय होवे। ८

---

४ इंद्र हूयमानः (त्वं) सोमपेयं द्वाभ्यां हरिभ्यां आ याहि, चतुर्भिरायाहि, षड्भिः अष्टाभिः दशभिर्वा याहि। हे सुमख अयं ते सुतः, मा मृधः कः।

५ हे इंद्र विंशत्या, त्रिंशता चत्वारिंशता वा हरिभिः युजानः अर्वाङ् आ याहि। (अथवा) पंचाशता सुरथेभिः (अश्वेभिः) आ याहि, षष्ट्या सप्तत्या (वा) आ याहि।

६ अशीत्या नवत्या वा अर्वाङ् आ याहि, शतेन हरिभिः उह्यमानः आ याहि। हे इंद्र अयं हि सोमः ते मदाय, शुनहोत्रेषु त्वाया परिषिक्तः (भवति)।

७ हे इंद्र (त्वं) मम ब्रह्म अच्छ याहि (ते) विश्वा हरी रथस्य धुरि धिष्व। पुरुत्रा विहव्यो बभूथ हि। तदपि हे शूर अस्मिन् सवने मादयस्व।

८ इंद्रेण मम मे सख्यं (नत) न वि योषत्, अस्य दक्षिणा (अनुग्रह बुद्धिः) अस्मभ्यं दुहीत। अस्य गभस्तौ उप ज्येष्ठे वरूथे प्राये प्राये जिगीवांसः स्याम।

हे इन्द्र आपकी उदार और प्रसिद्ध अनुग्रहबुद्धि रूपी धेनू आपके भक्तोंकी इच्छा पूरी करें और इस तरह उनको दूध पिलावे हम जैसे भक्तोंको भी हमारे मनोरथ पूर्ण करके दूध पिलावे। हमारा भाग्य आपही पर निर्भर है । इस लिये हमारा तिरस्कार मत कीजिये आप ऐसा कीजिये जिससे हम अपने शूर पुत्रोंके साथ यज्ञसभामें आपके यशका वर्णन करेंगे । ९ [२२]

सूक्त १९.

॥ ऋषि--गृत्समद । देवता--इन्द्र ॥

सोमरसके मधुर पानसे बुद्धिमान भक्तोंको मानों, आनन्दही उत्पन्न होता है। इस लिये बहुत लोग सोमलताका हृदयसे स्वीकारही करते हैं। इन्द्रका महिमा प्राचीन कालसे बहुत बढा हुआ है। इन्द्रकी प्रार्थना करनेमें मग्न हुए भक्तलोगोंको भी सोमरस पान बडा मीठा लगता है १

मधुर रसका पान करके आनन्दमें आये हुए इन्द्रने अपने हाथमें वज्र लेकर अहि राक्षसका वध किया । क्योंकि उस अहि राक्षसने उछलनेवाले दिव्य उदकोंके प्रवाहोंको रोक दिया था । जिस तरह पक्षी अपने घोसलेकी ओर चले जाते हैं उसी तरह रुके हुए दिव्य नदीयोंके आनन्दमय प्रवाहभी पृथिवीकी ओर दौडते हुए चले जाते हैं। २

अहि राक्षसका नाश करनेवाले श्रेष्ठ इन्द्रने दिव्य जलकी लहरोंको समुद्रमें मिल जानेके लिये उसकी ओर भेज दिये। आपहीने सूर्यको उत्पन्न करके प्रकाशरूपी धेनुओंको अपने आधीनकर लिया । आपहीने रात्रिको उत्पन्न किया और दिनमें उद्योग करनेके लिये मनुष्यको नियत किया । ३

इन्द्रने हवि अर्पण करनेवाले भक्तोंको अपार और अपूर्व धन अर्पण किया है । आपहीने वृत्र राक्षसका वध किया । जिन जिन लोगोंको सूर्यका प्रकाश मिलनेकी इच्छा है वे बडी नम्रतासे इन्द्रका सहारा लेते है। सहारा लेने योग्य केवल इन्द्रही है । ४

---

९ हे इंद्र नूनं ते सा मघोनी दक्षिणा (अनुग्रहमतिः) जरित्रे वरं प्रति दुहीयत् । (तमेव वरं) स्तोतृभ्यः शिक्ष, मा अति धक् भगो नः (असि, अतः) सुवीराः (वयं ते) बृहत् (यशः) विदथे वदेम ।

१ मनीषिणः सुवानस्य प्रयसः अस्य अंधसः मदाय अपायि । प्रदिवि वावृधानः इंद्रः ब्रह्मण्यन्तः नरः च यस्मिन् ओकः दधे ।

२ अस्य मध्वः मन्दानः वज्रहस्तः इंद्रः अर्णोवृतम् अहिम् वि वृश्चत् । यत् वयः स्वसराणि अच्छ न, नदीनाम् प्रयांसि च (तम्) प्र चक्रमन्त ।

३ सः अहिहा माहिनः इंद्रः अपां अर्णः समुद्रम् अच्छ प्रैरयत्। सूर्यम् अजनयत्, गाश्च विदत्, अन्हाम् वयुनानि अक्तुना साधत् ।

४ इंद्रः अप्रतीनि पुरूणि दाशुषे मनवे दाशत्, स च वृत्रं हन्ति । (अतः) सूर्यस्य सातौ पस्पृधानेभ्यः यः सद्यः अतस्तप्यो भूत (स इंद्र एव) ।

स्तुतिसे प्रसन्न होनेवाले इन्द्रने सूर्यको सोम अर्पण करनेवाले तुच्छ भक्तोंके स्वाधीन करा दिया। एतशाने जो स्तुति की उसका इन्द्रने स्वीकार किया और उसके लिये उसको आपने अपार सम्पत्ति दे दी। वह सम्पत्ति ऐसी थी कि जिससे निन्दनीय पापोंका नाश होता था। ५

श्रेष्ठ और तेजःपुञ्ज इन्द्रने सबको खानेवाले शुष्ण और कुयव (धान्यका नाश करनेवाले) राक्षसोंको सारथी कुत्सके आधीन करा दिया। आपहीने दिवोदासके लिये शंबर राक्षसके नव्वानवे किलोंका नाश किया। ६

हे इन्द्र, सात्विक सामर्थ्य प्राप्त करनेकी हमारी इच्छा है। इस लिये हमारे लिये यह बात सहज और उचितही है कि कीर्ति प्राप्त करनेकी इच्छासे हम आपकी स्तुति करें। सात वंश (पीढ़ी) से आपका प्रेम हम (भक्तों) पर है। इस लिये आपकी कृपाका लाभ हमें मिलनाही चाहिये। हे भगवन, देवोंकी निन्दा करनेवाले और पापी लोगोंके शस्त्रोंका आप नाश कीजिये। ७

गृत्समद आदि और हम भी आपके प्रसादकी इच्छा कर रहे हैं। इस लिये हे पराक्रमी इन्द्र, आपके स्तोत्र और उपासनाके अनुसारही हम काम करते हैं। हे इन्द्र, आपकी प्रार्थनामें मग्न हुए नये भक्तोंको आप उत्साह, तेज, आराम और आनन्द अर्पण कीजिये। ८

हे इन्द्र, आपकी प्रसिद्ध और उदार अनुग्रह बुद्धिरूपी धेनू आपके भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करें। हम आपके भक्त है इस लिये हमें भी वैसा दूध पिलाइये। आपही हमारे भाग्य है। हमारा तिरस्कार मत कीजिये। हम अपने शूर पुत्रोंके साथ आपके यशका वर्णन सदा करते रहेंगे। ९ (२४)

---

५. स्तवान् सः इंद्रो देवः सुन्वते मर्त्याय सूर्यं आ रिणक्। यत् एतशः दशस्यन (सन्), अस्मै (एतशाय इंद्रः) गुहद्वद्यम् रयिम अंशं च आ भरत्।

६ सः सदिवः इंद्रः सारथये कुत्साय, अशुषम् शुष्णम कुयवम् अरंधयत। दिवोदासाय च शंबरस्य नव नव तिम पुरः वि एरयत्

७ हे इंद्र श्रावस्या न त्मना वाजयन्तः ते उक्थम् एव अह्नेम। आशुशाणाः (वयं ते) तत् साप्तम् अश्याम अदेवस्य पीयोः वधः (त्वम्) ननमः

८ हे शूर एव अवस्यवो न गृत्समदाः ते मन्म वयुनानि च तक्षुः। इंद्र ब्रह्मण्यन्तश्च (ते) ते नवीयः ऊर्जम् इषम् सुक्षितिम् सुम्नं च अश्युः।

९ हे इंद्र नूनं ते सा मघोनी दक्षिणा (अनुग्रहमतिः) जरित्रे वरं प्रति दुहीयत्। (तमेव वरं) स्तोतृभ्यः शिक्ष, मा अति धक् भगो नः असि, सुवीराः (वयं ते) बृहत् यशः विदथे वदेम।

सूक्त २०.

॥ ऋषि--गृत्समद । देवता--इंद्र ॥

जिस तरह पराक्रमी पुरुष बड़े जोरसे अपना रथ चलता है उसी तरह, हे इन्द्र, हम बड़े उत्साहके साथ आपका काम करनेमें अपनी आयुके दिन व्यतीत करते हैं। इस लिये, हे इन्द्र, हमारी ओर कृपाकी दृष्टीसे आप देखिये। हम आपहीके गुणोंका वर्णन करते हैं। हम हृदयसे आपहीका ध्यान करते हैं और शूर पुरुषोंको आनन्द दिलानेके लिये यज्ञ करते हैं। १

हे इन्द्र, आप हमारे ही है। आपहीपर भरोंसा रखकर जो भक्त आपकी सेवा करता है उनके मनोरथ आप पूरे करते हैं और कृपारूपी कवचसे आप उनकी रक्षा करते हैं। जो भक्त सच्चे हृदयसे आपकी शरण लेते हैं उन दानी भक्तोंके आप रक्षा करनेवाले स्वामी बन जाते हैं। २

जिसके जयकी सब लोग घोषणा करते हैं वही आप है; आप पराक्रमी पुरुषोंके कल्याण करनेवाले मित्र है; आप जवानीके बड़े पुतले हैं; आप हमारी रक्षा करनेवाले बन जाइये। हे इन्द्र, आप अपनी कृपाकी द्वारा प्रशंसा करनेवाले ऋत्विज अर्चन करनेवाले भक्त, हवि अर्पण करनेवाले और स्तुति करनेवाले उपासक आदि लोगोंको दुःख-समुद्रके पार लेजाते हैं। ३

जिसकी कृपासे सब भक्तलोगोंकी उन्नति हुई और सबको अधिकार प्राप्त हुआ उस इन्द्रकी स्तुति मैं करता हूं और उसके गुणोंका वर्णन करता हूं। जब आप कृपा करते हैं तब प्रार्थनामें मग्न होनेवाले नये भक्तोंका भी आप दिव्य सम्पत्ति प्रदान करके उनके मनोरथ पूरे करते हैं। ४

अंगिरसोंके स्तोत्रोंसे आप सन्तुष्ट होते हैं। उनके मार्गोंको आप साफ करते हैं। जब आप उनका प्रार्थना स्तोत्र सुनते हैं तब आप उन्हे सामर्थ्य अर्पण करते हैं। जब आप स्तुतियोंसे बड़े प्रसन्न होते हैं तब आप सूर्यको उत्पन्न करते हैं और उषाको दूसरी ओर हटाते हैं। आपने भूके पापी और दुष्ट लोगोंके स्थानोंका नाश किया। ५(२५)

---

१ वाजयुः रथं न, वयं ते इन्द्र, नः वयः प्र भरामहे सु विद्धि. विपन्यवः, मनीषा दीध्यतः, त्वावतः नृन् सुम्नं इयक्षन्तः।

२ इन्द्र, त्वं नः, त्वाभिः ऊती त्वायतः जनान् अभिष्टिपा असि, यः त्वा इत्थाधीः अभि नक्षति दाशुषः इतः वरूता त्वं।

३ जोहुत्रः, युवा, नरां शिवः सखा इन्द्रः नः पाता अस्तु, यः ऊती शंसंतं, शशमानं, पचंतं, स्तुवंतञ्च प्र मेषत्।

४ यस्मिन् पुरा ववृधुः शाशदुः च तं ऊं इन्द्रं स्तुषे, तं गृणीषे इयानः, ब्रह्मण्यतः नूतनस्य आयोः सः वस्वः काम पीपरत्।

५ अंगिरसा उक्था जुजुष्वान्, गातुं इष्णन् सः इन्द्रः ब्रह्म तूतोत्, स्तवान्, सूर्येण उषसः मुष्णन्, अश्नस्य चित् पूर्व्याणि शिश्नथत्।

इन्द्र जैसे प्रसिद्ध देवने नाना प्रकारकी अद्भुत वस्तुएं उत्पन्न की है। भक्तोंकी सहायता करनेके लिये आप सदा तैयार रहते हैं। इसी कारणसे स्वतन्त्ररीतिसे अधिकार चलानेवाले स्वामीने पापी और घातुक राक्षसके सिरको तोड़कर जमीनपर गिरा दिया। ६

वृत्रका वध करनेवाले इन्द्रने बडे बडे किलोंका नाश कर डाला। काले और पापी अनार्यलोगोंका आपहीने पृथिवी और दिव्य उदकोंको आर्य लोगोंके लिये उत्पन्न किया। इस लिये भक्त लोगोंने आपकी बडी प्रशंसा की और आपने उनको सामर्थ्य अर्पण किया। ७

लहरोंसे उछलनेवाले दिव्य जलप्रवाहोंको आपने जब अपने आधीन कर लिया तब सब देव आपके अपार बल और महिमाका सम्मान करने लगे। जब इन्द्रने अपने कन्धेपर अपना वज्र रखा तब आपने अधर्मी और दुष्ट लोगोंका नाश कर डाला। आपने उनके नगरोंका भी नाश किया जिसके कोटकी भींत लोहेकी बनी हुई थी। ८

हे इन्द्र, आपकी विख्यात और उदार अनुग्रही बुद्धिरूपी धेनु आपके भक्तोंके मनोरथ पुरे करें और इसतरह उनको दूध पिलाकर उनको सन्तुष्ट करे। हमें भी उसी तरह दूध पिलाइये (हमारे मनोरथ आप पुरे करें) हमारा भाग्य आपही पर निर्भर है; हमारा तिरस्कार मत कीजिये। हम अपने वीर पुत्रोंके साथ आपके यशका यज्ञ सभामें वर्णन करेंगे। ९ [२६]

सूक्त २१.

॥ ऋषि--गृत्समद । देवता--इन्द्र ॥

सब विश्व, सब वैभवों, स्वर्गके प्रकाश, सब लोगों, सब वीर पुरुषों, गोधन और दिव्य उदकोंको जीतनेवाले पूजनीय इन्द्रको मधुर सोमरस अर्पण कीजिये। १

---

६ सः ह श्रुतः इन्द्रः नाम देवः मनुषे दस्मतमः ऊर्ध्वः भुवत्। स्वधावान सव्हान् अघशंसस्य दासस्य प्रियं शिरः अवभरत्।

७ सः वृत्रहा इन्द्रः पुरंदरः कृष्णयोनीः दासीः वि ऐरयत्। क्षाम अपः च (आर्याय) मनवे अजनयत्, यजमानस्य शंसम् सत्रा तूतोत्।

८ अर्णसातौ तस्मै इंद्राय देवेभिः सत्रा तवस्यं अनु दायि। यत् च अस्य बाव्होः वज्रम प्रति धुः (तदा सः) दस्यून् हत्वी आयसीः पुरः नि तारीत्।

९ हे इन्द्र, नूनं ते सा मघोनी दक्षिणा (अनुग्रहबुद्धिः) जरित्रे वरं प्रति दुहीयत्। (तमेव वरं) स्तोतृभ्यः शिक्ष, मा अति धक्, भगः नः (असि अतः) सुवीराः (वयं ते) बृहत् यशः विदथे वदेम।

१ विश्वजिते, धनजिते, स्वर्जिते, सत्राजिते, नृजिते, उर्वराजिते, अश्वजिते, गोजिते, अब्जिते, यजताय इन्द्राय हर्यतम सोमम भर।

जो शत्रुओंका नाश करता है, जो राक्षस सेनाका भी नाश करता है, जो भक्तोंको प्रेमसे अपनता है, जो सबको जीतने वाला है, जो सब लोगोंपर अधिकार चला कर न्याय और नीतिसे प्रबन्ध रखता है, जो सिंहकी तरह गरजता है, जो स्तोत्रोंके स्वामी है, जिसके बलका पता किसीको नहीं लगता और जो बडेसे बड़े लोगोंपर भी अपना अधिकार चलाता है ऐसे श्रेष्ठ इन्द्रके गुणोंका वर्णन कीजिये । २

बडे बडे लोगोंको दबावमें रखनेवाला, सब लोगोंपर अधिकार चलानेवाला, लोक-प्रिय, स्थिर वस्तुको अस्थिर करनेवाला पराक्रमी योद्धा इन्द्र अपनी इच्छाके अनुसार विशालरूप धारण करता है । सब दिव्य निधिके आप भण्डार हैं । आप बडे विजयी हैं सब लोग आपकी शरण लेते हैं । ऐसे पराक्रमी इन्द्रके बडे कामोंका मैं वर्णन करताहूं । ३

जिस पराक्रमी महावीरने दुष्ट और घातुक राक्षसोंका नाश किया, जो बडे धैर्य-वान् और उदार है, जिसकी चतुरताका पता नहीं लगता, जो धनवान लोगोंका उत्साह बढाता है और दुष्ट लोगोंका नाश करता है, जो सबसे बलवान् है और जो सबको व्याप्त करता है, और जिसके यज्ञसे आनन्द बढता है ऐसे इन्द्रने उषा (प्रात:काल) और सूर्यको उत्पन्न किया । ४

जब भगवानकी कृपा प्राप्त करनेके लिये उत्साही और ज्ञानी भक्त लोगोंने अपना ध्यान इन्द्रकी ओर लगाया तब यज्ञके कारणही दिव्य उदकोंकी वर्षा उनको प्राप्त हुई और वे आनन्दित हुवे । इन्द्रके प्रसादकी इच्छा करके भक्तलोगोंने अपने पांच इन्द्रियोंके द्वारा इन्द्रकी ओर ध्यान लगाया । जब उन्होंने इन्द्रकी स्तुति और उपासना की तब उनको सामर्थ्यरूपी सम्पत्तिका लाभ हुआ । ५

हे इन्द्र, जो सबसे उत्तम और श्रेष्ठ सम्पत्ति है वह हमारे स्वाधीन कीजिये । आप हमें अच्छे विचार प्रदान कीजिये । उद्योगसे जो भाग्य प्राप्त होता है वही भाग्य हमें प्रदान कीजिये । आप हमारा सब ऐश्वर्य बढाइये । हमें स्वास्थ्य अर्पण कीजिये; हमारी वाणी मधुर होवे; हरएक दिन आप हमपर कृपा करके हमारा कल्याण कीजिये । ६

---

२ अभिभुवे अभिभंगाय वन्वते अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे, तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे इंद्राय नमः वोचत ।

३ सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहः च्यवनः युध्मः अनुजोषम उक्षितः शतंचयः सहुरिः (इंद्रः) विक्षु आरितः । (अस्य) इंद्रस्य वीर्या कृतानि प्रवोचम ।

४ अनानुदः, वृषभः, दोधतो वधः, गम्भिरः, ऋष्वः, असमष्टकाव्याः, रध्रचोदः, श्नथनः, वीळितः, पृथुः, सुयज्ञः इंद्र, उषसः स्वश्च अजीजनत् ।

५ उशिजः मनीषिणः धियो हिन्वानः अप्तुरः (इंद्रात्) यज्ञेन गातुं विविद्रिरे । अवस्यवः गा इंद्रे हिन्वानः आभिस्वरा निषदा द्रविणानि आशत ।

६ इंद्र, अस्मे श्रेष्ठानि द्रविणानि, चित्तिम् दक्षस्य सुभगत्वं, रयीणां पोषम् तनूनाम् अरिष्टिम्, वाचः स्वाद्मानम्, अन्हाम सुदिनत्वं च धेहि ।

सूक्त २२.

॥ ऋषि--गृत्समद । देवता--इन्द्र ॥

इन्द्र बडे बलवान् है और आपका प्रभाव भी बहुत बड़ा है । ' त्रिकद्रुक ' उत्सवमें आपने विष्णुका रूप धारण करके यथेच्छा सोमरसका प्राशन किया। उस सोमरसके प्राशनके कारण ही इन्द्रके शरीरमें बड़ी वीरता उत्पन्न हुई । मानों सर्व श्रेष्ठ और सर्वव्यापी इन्द्र बडे बडे अद्भुत पराक्रम दिखलावे । दिव्य और सत्य-प्रभाव सोमरस इन्द्रदेवके शरीरमें पूर्णरीतिसे अपने तेजका प्रभाव दिखावे । १

क्रूर इन्द्रने अपने पराक्रमसे युद्धमें क्रिवि राक्षसको परास्त किया और आकाश और पृथिवीको व्याप्त किया । सोमरसके प्राशनमें इन्द्रकी शक्ति और बढ गयी । जब इन्द्रने सोमरसका प्राशन किया तब इन्द्रकी शक्ति अधिक बढगयी । इसतरह दिव्य सोमरस भी इन्द्र-देवके शरीरमें पूर्णरीतिसे अपने तेजका प्रभाव दिखावे । २

आपके ज्ञानके कारणही बडे बडे काम होते हैं और आप भी अपने ज्ञानके साथ प्रकट होते हैं । आप अपने पराक्रमके तेजसे चारों ओर फैलते हैं। आप अपनी शूरतासे और बलसे दुष्ट शत्रुओंका नाश करते हैं । आप सबको देखनेवाले हैं । स्तुति करनेवाले लोगोंको आप कृपारूपी सम्पत्ति और वैभव प्रदान करते हैं । इस लिये दिव्य और सत्यप्रभाव सोमरस इन्द्र-देवके शरीरमें पूर्णरीतिसे अपने तेजका प्रभाव दिखावें । ३

हे रणभूमिमें पराक्रम दिखलानेवाले इन्द्र, आपका पराक्रम प्राचीन कालसे सब जगत् विदितही है । आपके पराक्रमसे सब जगत्का कल्याण ही होता है । आपने ईश्वरी सामर्थ्यसे दिव्य उदकोंको बन्धनसे मुक्त किया और पृथिवीपर प्राणज्योतिको प्रकट किया । इन्द्रने नास्तिक और दुष्ट लोगोंका अपने तेजसे नाश किया । इस लिये प्रज्ञावान् देव हमारे शरीरमें शूरता उत्पन्न करें और उत्साह भी उत्पन्न करें । ४

---

१ महिषः तुविशुष्मः त्रिकद्रुकेषु यथा अवशत् (तथा) यवाशिरम् सुतं सोमं विष्णुना तृपत् अपिबत् . स (सोमः) महि कर्म कर्तवे ईं महाम् उरुं ममाद, देवः सत्यः स इन्दुः देवम् एनम् इंद्रम् सश्चत् ।

२ अध त्विषीमान् इंद्रः ओजसा युधा क्रिविं अभ्यभवत्, अस्य (सोमस्य) मज्मना ववृधे, रोदसी च आपृणतः (इंद्रः) अन्यं जठरे अधत्त (अन्यः) ईं प्रारिच्यत, (अतः) देवः सत्यः स इन्दुः, देवम् सत्यं एनम् इंद्रम् सश्चत् ।

३ (त्वम् इंद्रः) क्रतुना साकं जातः ओजसा साकं ववक्षिथ वीर्यैः साकं वृद्धः (सन्) विचर्षणिः मृधः सासहिः (भवसि), काम्यम् राधः वसु च स्तुवते दाता (असि, अतः) देवः सत्यः स इन्दुः, देवं सत्यं एनं इंद्रं सश्चत ।

४ हे इंद्र, हे नृतो, तत् तव नर्यं दिवि प्रवाच्यं पूर्व्यं अपः प्रथमं कृतं (एतद् भवति), यत् देवस्य शवसा अपः रिणन असुं प्रारिणाः । शतक्रतुः विश्वं अदेवं ओजसा अभिभुवत्, ऊर्जं विदात, इषं विदात ।

अनुवाक ३.

सूक्त २३.

॥ ऋषि--गृत्समद । देवता--बृहस्पति ॥

हे बृहस्पति, आप लोगोंके समुदायके स्वामी है; इस लिये आपका नाम गणपति है। आप ज्ञानवान् लोगोंमें बडे श्रेष्ठ हैं। जिनकी कीर्ति उत्कृष्ट है उनमें भी आप श्रेष्ठ है। हे राजाधिराज, आपको बडे आदरसे हम बुलाते है। हे ब्रह्मणस्पते, हमारी पुकार सुनिये और सब शक्तिके साथ शीघ्रतासे हमारी ओर आकर आसनपर विराजमान हूजिये। १

हे बृहस्पति, हे परमात्मन्, आप ज्ञानवान् होनेके कारण ही यज्ञमें सब देवोंको हवि अर्पण किया जाता है। जिस तरह देदीप्यमान सूर्य अपने तेजसे उषाके प्रकाशको उत्पन्न करता है उसीतरह हमारे सब प्रार्थनास्तोत्रोंके आपही पिता और स्वामी है। २

निन्दा करनेवाले लोग और अन्धःकार दोनोंका अपने तेजसे नाशकरके सत्यधर्मरूपी तेजोमय रथमें बैठकर आप चारों ओर घूमते हैं। हे बृहस्पते, सत्यधर्मरूपी तेजोमय रथ उग्र, दुष्टराक्षसोंका नाश करनेवाला, ज्ञानरूप धेनुओंको रोकनेवाले किलोंका भी नाश करनेवाला और स्वर्गको प्राप्त करानेवाला है। ३

हे बृहस्पति, आप लोगोंको सदाचारके मार्गसे ले जाकर उनकी रक्षा करते हैं। जो आपकी (अनन्यभावसे) भक्ति करते हैं उनसे पाप और दुःख दोनों दूर हट जाते हैं। ब्रह्मद्वेषी मनुष्यको आप सताते हैं और उनपर बड़ा बृथा क्रोध करते हैं। हे बृहस्पते, इस लिये, आपका महिमा बडी है। ४

---

१ ब्रह्मणस्पते गणानां गणपतिं, कवीनां कविं, उपमश्रवस्तमं, ज्येष्ठराजं त्वा हवामहे । नः शृण्वन् ऊतिभिः सदनं आ सीद ।

२ हे असुर्य, बृहस्पते, प्रचेतसः देवाः चित् ते यज्ञियं भागं आनशुः । महः सूर्यः ज्योतिषा उस्रा इव, त्वं इत् विश्वेषां ब्रह्मणां जनिता असि ।

३ बृहस्पते, परिरपः तमांसि च विबाध्य ऋतस्य ज्योतिष्मन्तं भीमं अमित्रदम्भनं, रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदं रथं आतिष्ठसि ।

४ जनं सुनीतिभिः नयसि त्रायसे च; यः तुभ्यं दाशात् तं अंहः नाश्नवत् । त्वं ब्रह्मद्विषः तपनः मन्युमीः असि, (अतः) हे बृहस्पते, ते तत् महित्वनम् महि (एव) ।

हे ब्रह्मणस्पते, भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये आप सदा तैयार रहते हैं। जिन भक्तोंकी आप रक्षा करते हैं उनको पाप छूता भी नहीं और उनपर संकट भी नहीं आता है। दुष्ट, कपटी और नीचा मनुष्य भी आपके भक्तोंको दबावमें नहीं रख सकता। क्योंकि सन्मार्गसे भ्रष्ट करनेवाले दुष्ट लोगोंको आप आपने भक्तोंके पाससे दूर भगा देते हैं। ५

हे बृहस्पति, आप सबको देख सकते हैं। आप हमारी रक्षा करनेवाले हैं और आपही हमें नीतिका मार्ग दिखाते हैं। आपकी आज्ञाके अनुसार ही प्रशंसायोग्य स्तोत्रोंसे हम आपका भजन करते हैं। इस लिये, हे बृहस्पति, हमारा नाश करनेके लिये जो मनुष्य कपटनीतिका अनुसरण करेगा उस कपटनीतिके द्वारा उसीका नाश होवे। ६

हे बृहस्पति, हमारे साथ शत्रुता करनेवाला, घमण्ड करनेवाला, दूसरेके धनको हरण करनेवाला, जो मनुष्य हम जैसे निरपराधी भक्तोंको फसानेका प्रयत्न करेगा उसको सरल मार्गमें चूभनेवाले काटेकासा दूर हटाइये। और हमारा मार्ग सीधा बनाइये। ७

जगतकी रक्षा करनेवाले बृहस्पति, हमें बल प्रदान करनेवाले आपही है और हमपर प्रेम करके हमें सन्तुष्ट करनेवाले आपही है। इस लिये हम आपकी प्रार्थना करते हैं। हे बृहस्पते, देवोंकी निन्दा करनेवाले दुष्ट लोगोंका आप नाश कीजिये। उत्कृष्ट सुखका भाण्डार जहां भरा हुआ है वह भण्डारका स्थान पापी और दुष्ट लोगोंके हाथमें चले न जाय। ८

हमारी उन्नति आपही पर निर्भर है; इसलिये हे ब्रह्मणस्पति, आपकी कृपासे हमारा और सब लोगोंका वैभवरूपी लाभ होवे। हमारे साथ शत्रुता करनेवाले, सत्यकर्म न करनेवाले और हमपर चढाई करनेवाले दुष्ट लोगोंका आप नाश कीजिये। ९

---

५ ब्रह्मणः पते, सुगोपाः (त्वं) यं रक्षसि तं अंहः न, तं कुतश्चन दुरितम्, न अरातयः नापि द्वयाविनः तितिरुः। यतः अस्माद (भक्तात) विश्वा इत् ध्वरसः वि बाधसे।

६ विचक्षणः त्वं नः गोपा पिथकृत, (वयं) तव व्रताय मतिभिः जरामहे। बृहस्पते यः नः अभि ह्वरः दधे तं हरस्वती स्वा दुच्छुना मर्मर्तु।

७ उत वा यो अरातीवा सानुको वृकः मर्तः नः अनागमः मर्चयात् बृहस्पते, तं (नः) पथः अपवर्तय, अस्यै देववीतये नः सुगं कृधि।

८ हे अवस्पर्तः, तनूनां त्रातारम्, अस्मयुं अधिवक्तारं त्वा हवामहे। बृहस्पते देवनिदः निबर्हय, उत्तरं सुम्नं दुरे वाः मा उन्नशन्।

९ ब्रह्मणस्पते, त्वया सुवृधा वयं स्वार्हा मनुष्या वसु आ ददीमहि। याः अरातयः दूरे याः तळितः नः अभि सन्ति, ताः अनप्नसः जम्भय।

हे बृहस्पति, आप हमारे मनोरथ पूरे करनेवाले हैं । हमें उदारतासे सहायता देनेवाले आपही हैं । आपकी कृपासेही हम अपनी युवा अवस्थाका उत्साह रख सकते हैं । आपकी कृपासे गाली देनेवाले और पाप करनेवाले दुष्ट लोगोंका दबाव हमपर न पडे । पवित्र अन्तःकरणसे सत्य भाषा बोलनेवाले हम हैं; इस लिये आपकी कृपासे हमारी उन्नति होवें । १०

आप बडे पराक्रमी हैं; आप सब वीरोंमें श्रेष्ठ हैं; युद्धके लिये आप दौडते चले जाते हैं । आप युद्धमें शत्रुका नाश करके सदा विजय पाते हैं । हे ब्रह्मणस्पति, आप सत्यवान् हैं । इस लिये भक्तोंका ऋण चुका देते हैं । विषयसुखमें मग्न हुए मनुष्यकी घमण्ड आप उतार देते हैं । ११

हे बृहस्पति, आपके भक्तोंका नाश करनेकी इच्छा करनेवाले, पूर्णरीतिसे नास्तिक बने हुए, और बडी घमण्डसे हमारा वध करनेकी इच्छा करनेवाले, दुष्ट लोगोंके शस्त्रोंका घाव आपकी कृपासे हमपर न लगे । सज्जन लोगोंका अपमान करनेवाले दुष्ट और क्रोधी राक्षसोंकी घमण्ड आपकी कृपासे हम ही उतार सकें । १२

हे बृहस्पति, जब हम आनन्दमें मग्न होते हैं तब आपका स्मरण करना चाहिये और आपकी सेवामें भी मग्न होना चाहिये । आप युद्धमें शत्रुओंकी भीडमें घुसकर हरएक प्रकारकी सम्पत्ति भक्तोंको अर्पण करते हैं । हे बृहस्पति देव, जिस तरह युद्धमें शत्रुका रथ भग्न हो जाता है उसी तरह भक्ति न करनेवाले और पापी लोगोंका नाश आप कीजिये । १३

आपका पराक्रम प्रकट होनेपर भी जो लोग आपकी निन्दा करते हैं उन दुष्ट पापी लोगोंको आप अपने उग्र तेजसे जला दीजिये । हे बृहस्पति, आपकी शूरता प्रशंसा करने योग्य है । इस लिये अपनी वीरताको आप प्रकट कीजिये और आप निन्दा करनेवाले लोगोंका नाश कीजिये । १४

---

१० बृहस्पते त्वया पप्रिणा सस्निना युजा वयं उत्तमं वयः धीमहे । दुःशंसः अभिदिप्सुश्च नः मा ईशत, सुशंसाः (वयं) मतिभिः प्र तारिषीमहि ।

११ अनानुदः वृषभः, आहवं जग्मिः, शत्रुं निष्टप्ता, पृतनासु सासहिः । हे ब्रह्मणस्पते त्वं सत्यः (अतः) ऋणयाः, उग्रस्य वीळु हर्षिणश्चित् दमिता असि ।

१२ यः अदेवेन मनसा रिषण्यति, (आत्मानं) शास्तं उग्रो मन्यमानः (नः) जिघांसति, हे बृहस्पते, तस्य वधः नः मा प्रणक्, अस्य दुरेवस्य शर्धतः मन्युं नि कर्म ।

१३ सः भरेषु हव्यः, नमसा उपसद्यः, वाजेषु गन्ता, धनं धनं सनिता । स त्वं बृहस्पतिः, विश्वा इत् अर्यः अभिदिप्स्वः मृधः रथाँ इव वि ववर्ह ।

१४ दृष्टवीर्यमपि त्वा (पुनः) ये निदे दधिरे तान् रक्षसः तेजिष्ठया तपनी तप । यत्ते उक्थ्यं (ओजः) असत् तत् आविः कृष्व, हे बृहस्पते परिरपः वि अर्दय ।

हे बृहस्पति, जिस ऐश्वर्यको भक्ति न करनेवाला मनुष्य कभी नहीं पाता है, जो ऐश्वर्य, ज्ञान और बलसे विभूषित और देदीप्यमान दिखाई देता है और जो स्वयंप्रकाशित है ऐसे अद्भुत ऐश्वर्यको, सत्यधर्मकी रक्षा करनेके लिये प्रकट होनेवाले देव, हमपर कृपा करके हमें प्रदान कीजिये। १५

वर्तमान अवस्थामें सन्तुष्ट रहनेवाले सज्जन लोगोंको जो दुष्ट शत्रु फँसाते हैं और उनके धनका हरण करते हैं ऐसे पापी लोगोंके आधीन हमें मत कीजिये। हे बृहस्पति, ऐसे शत्रु देवोंकी निन्दा ही करते हैं किन्तु आपके भक्तलोग सदा आपहीकी स्तुतिमें मग्न रहते हैं। आपके भक्तलोग आपकी स्तुतिके अतिरिक्त किसीकी ओर ध्यान नहीं देते। १६

त्वष्टा देव तीन लोगोंसे भी श्रेष्ठ है और उसीने आपको प्रकट किया। सामगानकी रचना करनेवाले जो कवि है वही ब्रह्मणस्पति है। वह देव भक्तोंका भक्तिरूपी ऋण लेता है और परिवर्तनमें उनके पापोंका ऋण चुका देता है। जब आप सत्यधर्मका परिपालन करते हैं तब आप पापोंका भी नाश कर डालते हैं। १७

हे अङ्गिरसका सन्मान करनेवाले देव, जब आपने ज्ञानरूप धेनुओंको बन्धनसे छुडाकर भूमिपर भेज दिया तब सबसे श्रेष्ठ पर्वतका भी भंग हुआ। उससे आपका गौरव बहुत बढ़ गया। हे बृहस्पति, इन्द्र और आप दोनों एकही रूपमें मिलगये। जो जलका निधि-जिसमें लहरे उछलती थी- अन्धकाररूपी पर्वतसे ढका हुआ था उसको आपने गिरा दिया अथवा बन्धनसे छुडा दिया। १८

हे ब्रह्मणस्पते, हमारी स्तुतिको आपही पा लीजिये। हमारे पुत्र और पोतेकी भी उन्नति कीजिये। जिस ओर आप कृपाकी दृष्टिसे देखते हैं वह सब कल्याणरूप हो जाता है। आप ऐसा कीजिये जिससे हम अपने शूर पुत्रोंके साथ यज्ञसभामें आपके यशका वर्णन करें। १९

---

१५ बृहस्पते, यत्, अर्यः अर्हात्, जनेषु च द्युमत् क्रतुमत् विभाति, यत् च शवसा दीदयत्, हे ऋतप्रजात, तत् चित्रं द्रविणं अस्मासु धेहि।

१६ ये अभिद्रुहः रिपवः निरामिणः पदे अन्नेषु जगृध्नुः तेभ्यः स्तेनेभ्यः नः मा (दाः), ते हृदि आ देवानां अकः सन्ति विदुः (अतिरिक्तं) साम्नः परः (न किंचिदपि) विदुः।

१७ त्वष्टा त्वा विश्वेभ्यो भुवनेभ्यः परि अजनत्, त्वं च साम्नः साम्नः कविः (असि)। स ब्रह्मणस्पतिः ऋणचित् ऋणया: च, महः ऋतस्य धर्तरि, द्रुहः हन्ता।

१८ हे अंगिरः यत् पर्वतः व्यजिहीत, त्वं च गवां गोत्रं उदसृजः (तत्) तवश्रिये (एव भवति) (अपि च) इंद्रेण युजा, (त्वं) तमसा परिवृतं अपां अर्णवं औब्जः।

१९ हे ब्रह्मणस्पते, त्वं अस्य सूक्तस्य यन्ता बोधि, नः तनयं च जिन्व। देवाः यदवन्ति तत् भद्रमेव, (तत्) सुवीराः वयं विदथे बृहत् वदेम।

हिन्दी श्रुतिबोध.

हिन्दी, मराठी, गुजराती और अङ्ग्रेजी
चार भाषाओंमें अलग अलग
प्रसिद्ध होनेवाला
वेदोंका भाषांतर।

प्रति मासमें ६४ पृष्ठ. ३२ पृष्ठ संहिता [स्वर और पदपाठ सहित]
३२ पृष्ठ भाषान्तर

प्रबन्ध २] भाद्रपद संवत १९७०—आक्टोबर सन १९१३ [अंक १६

सम्पादक.

रामचंद्र विनायक पटवर्धन,
अच्युत बलवंत कोल्हटकर,
रंगो अप्पाजी गुर्जरपुरकर,

वार्षिक मूल्य
डा. व्य. सहित. रु. ४

'श्रुतिबोध'
ऑफिस.
४७ कालबादेवी.
बम्बई

इस अंकका मूल्य
आठ आने.

Printed at Shruti B... & Published at ... Bodh Office 47,
Kalbadevi ...

॥ अथ द्वितीयाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ ३७ ॥ ऋषिः—गृत्समदः । देवता—द्रविणोदः । छन्दः—जगती ॥

॥३७॥ मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसोऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ १ ॥
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ २ ॥
मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेऽरिषण्यन्वीळयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥ ३ ॥

॥ अथ द्वितीयाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

मंदस्व । होत्रात् । अनु । जोषं । अंधसः । अध्वर्यवः । सः । पूर्णां । वष्टि । आऽसिचं । तस्मै । एतं । भरत । तत्ऽवशः । ददिः । होत्रात् । सोमं । द्रविणःऽदः । पिब । ऋतुऽभिः ॥ १ ॥ यं । ऊं इति । पूर्वं । अहुवे । तं । इदं । हुवे । सः । इत् । ऊं इति । हव्यः । ददिः । यः । नाम । पत्यते । अध्वर्युऽभिः । प्रऽस्थितं । सोम्यं । मधु । पोत्रात् । सोमं । द्रविणःऽदः । पिब । ऋतुऽभिः ॥ २ ॥ मेद्यंतु । ते । वह्नयः । येभिः । ईयसे । अरिषण्यन् । वीळयस्व । वनस्पते । आऽयूय । धृष्णो इति । अभिऽगूर्य । त्वं । नेष्ट्रात् । सोमं । द्रविणःऽदः । पिब । ऋतुऽभिः ॥ ३ ॥

अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥ ४ ॥
अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥ ५ ॥
जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन्देवाँ उशतः पायया हविः ॥ ६ ॥ १ ॥

॥ ३८ ॥ ऋषिः-गृत्समदः । देवता-सविता । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥३८॥ उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात् ।
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्नमथाभजद्वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥ १ ॥

अपात् । होत्रात् । उत । पोत्रात् । अमत्त । उत । नेष्ट्रात् । अजुषत । प्रयः । हितं । तुरीयं । पात्रं । अमृक्तं । अमर्त्यं । द्रविणःऽदाः । पिबतु । द्राविणःऽदसः ॥ ४ ॥ अर्वाचं । अद्य । यय्यं । नृऽवाहनं । रथं । युंजाथां । इह । वां । विऽमोचनं । पृंक्तं । हवींषि । मधुना । आ । हि । कं । गतं । अथ । सोमं । पिबतं । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ॥ ५ ॥ जोषि । अग्ने । संऽइधं । जोषि । आऽहुतिं । जोषि । ब्रह्म । जन्यं । जोषि । सुऽस्तुतिं । विश्वेभिः । विश्वान् । ऋतुना । वसो इति । महः । उशन् । देवान् । उशतः । पायय । हविः ॥ ६ ॥ १ ॥

उत् । ऊं इति । स्यः । देवः । सविता । सवाय । शश्वत्ऽतमं । तत्ऽअपाः । वह्निः । अस्थात् । नूनं । देवेभ्यः । वि । हि । धाति । रत्नं । अथ । आ । अभजत् । वीतिऽहोत्रं । स्वस्तौ ॥ १ ॥

विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन् ॥ २ ॥
आशुभिश्चिद्यान्वि मुचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥ ३ ॥
पुनः समव्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत्संहायास्थाद्व्यृतूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥ ४ ॥
नानौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः ।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥ ५ ॥ २ ॥

विश्वस्य । हि । श्रुष्टये । देवः । ऊर्ध्वः । प्र । बाहवा । पृथुऽपाणिः । सिसर्ति ।
आपः । चित् । अस्य । व्रते । आ । निऽमृग्राः । अयं । चित् । वातः । रमते ।
परिऽज्मन् ॥ २ ॥ आशुऽभिः । चित् । यान् । वि । मुचाति । नूनं । अरीरमत् ।
अतमानं । चित् । एतोः । अह्यर्षूणां । चित् । नि । अयान् । अविष्यां । अनु । व्रतं ।
सवितुः । मोकी । आ । अगात् ॥ ३ ॥ पुनरिति । सं । अव्यत् । विऽततं । वयन्ती ।
मध्या । कर्तोः । नि । अधात् । शक्म । धीरः । उत् । संऽहायं । अस्थात् । वि ।
ऋतून् । अदर्धः । अरमतिः । सविता । देवः । आ । अगात् ॥ ४ ॥ नाना ।
ओकांसि । दुर्यः । विश्वं । आयुः । वि । तिष्ठते । प्रऽभवः । शोकः । अग्नेः । ज्येष्ठं ।
माता । सूनवे । भागं । आ । अधात् । अनु । अस्य । केतं । इषितं । सवित्रा ॥५॥२॥

समाववर्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां काममचरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥ ६ ॥
त्वया हितमप्यमप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि तस्थुः ।
वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥ ७ ॥
याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिषि जर्भुराणः ।
विश्वो मार्ताण्डो व्रजमा पशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥ ८ ॥
न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥ ९ ॥

सम्ऽआववर्ति । विऽस्थितः । जिगीषुः । विश्वेषां । कामः । चरतां । अमा । अभूत् । शश्वान् । अपः । विऽकृतं । हित्वी । आ । अगात् । अनु । व्रतं । सवितुः । दैव्यस्य ॥ ६ ॥ त्वया । हितं । अप्यं । अपऽसु । भागं । धन्व । अनु । आ । मृगयसः । वि । तस्थुः । वनानि । विऽभ्यः । नकिः । अस्य । तानि । व्रता । देवस्य । सवितुः । मिनंति ॥ ७ ॥ यात्ऽराध्यं । वरुणः । योनिं । अप्यं । अनिऽशितं । निऽमिषि । जर्भुराणः । विश्वः । मार्ताण्डः । व्रजं । आ । पशुः । गात् । स्थऽशः । जन्मानि । सविता । वि । आ । अकरित्यकः ॥ ८ ॥ न । यस्य । इंद्रः । वरुणः । न । मित्रः । व्रतं । अर्यमा । न । मिनंति । रुद्रः । न । अरातयः । तं । इदं । स्वस्ति । हुवे । देवं । सवितारं । नमःऽभिः ॥ ९ ॥

भगं धियं वाजयन्तः पुरंन्धिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्यं सङ्गथे रंयीणां प्रिया देवस्यं सवितुः स्याम ॥ १० ॥

अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वयां दत्तं काम्यं राध आ गांत् ।
शं यत्स्तोतृभ्यं आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥ ११ ॥ ३ ॥

॥ ३९ ॥ ऋषिः–गृत्समदः । देवता–अश्विनौ । छन्दः–त्रिष्टुप् ॥

॥३९॥ ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासां दूतेव हव्या जन्यां पुरुत्रा ॥ १ ॥

प्रातर्यावांणा रथ्येव वीराजेवं यमा वरमा संचेथे ।
मेने इव तन्वा३ शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥ २ ॥

भगं । धियं । वाजयंतः । पुरंऽधिं । नराशंसः । ग्नाः । पतिः । नः । अव्याः । आऽअये ।
वामस्यं । संऽगथे । रयीणां । प्रियाः । देवस्यं । सवितुः । स्याम ॥ १० ॥ अस्मभ्यं ।
तत् । दिवः । अत्ऽभ्यः । पृथिव्याः । त्वयां । दत्तं । काम्यं । राधः । आ । गात् ।
शं । यत् । स्तोतृऽभ्यः । आपये । भवाति । उरुऽशंसाय । सवितः । जरित्रे ॥ ११ ॥ ३ ॥

ग्रावांणाऽइव । तत् । इत् । अर्थं । जरेथे इतिं । गृध्राऽइव । वृक्षं । निधिऽमंतं ।
अच्छ । ब्रह्माणाऽइव । विदथें । उक्थऽशासां । दूताऽइव । हव्यां । जन्यां ।
पुरुऽत्रा ॥ १ ॥ प्रातःऽयावांना । रथ्याऽइव । वीरा । अजाऽइव । यमा । वरं । आ ।
सचेथे इतिं । मेनें इवेति मेनेऽइव । तन्वा । शुंभमाने इतिं । दंपती इवेति दंपतीऽइव ।
क्रतुऽविदां । जनेषु ॥ २ ॥

शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् शफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥ ३ ॥
नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥ ४ ॥
वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् ।
हस्ताविव तन्वे३ शम्भविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥ ५ ॥ ४ ॥
ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥ ६ ॥

शृंगाऽइव । नः । प्रथमा । गंतं । अर्वाक् । शफाऽइव । जर्भुराणा । तरःऽभिः ।
चक्रवाकाऽइव । प्रति । वस्तोः । उस्रा । अर्वाचा । यातं । रथ्याऽइव । शक्रा ॥ ३ ॥
नावाऽइव । नः । पारयतं । युगाऽइव । नभ्याऽइव । नः । उपधी इवेत्युपधीऽइव ।
प्रधी इवेति प्रधीऽइव । श्वानाऽइव । नः । अरिषण्या । तनूनां । खृगलाऽइव । विऽस्रसः ।
पातं । अस्मान् ॥ ४ ॥ वाताऽइव । अजुर्या । नद्याऽइव । रीतिः । अक्षी इवेत्यक्षीऽइव ।
चक्षुषा । आ । यातं । अर्वाक् । हस्तौऽइव । तन्वे । शंऽभविष्ठा । पादाऽइव । नः ।
नयतं । वस्यः । अच्छ ॥ ५ ॥ ४ ॥ ओष्ठाऽइव । मधु । आस्ने । वदंता ।
स्तनाऽइव । पिप्यतं । जीवसे । नः । नासाऽइव । नः । तन्वः । रक्षितारा । कर्णाऽइव ।
सुऽश्रुता । भूतं । अस्मे इति ॥ ६ ॥

हस्तेव शक्तिमभि संददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि ।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥ ७ ॥
एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।
तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ८ ॥ ५ ॥

॥ ४० ॥ ऋषिः–गृत्समदः । देवता–सोमापूषणौ । छन्दः–जगती ॥

॥४०॥ सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥ १ ॥
इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥ २ ॥

हस्ताऽइव । शक्तिं । अभि । संददी इति संऽददी । नः । क्षामऽइव । नः । सं । अजतं । रजांसि । इमाः । गिरः । अश्विना । युष्मऽयंतीः । क्ष्णोत्रेणऽइव । स्वऽधितिं । सं । शिशीतं ॥ ७ ॥ एतानि । वां । अश्विना । वर्धनानि । ब्रह्म । स्तोमं । गृत्सऽमदासः । अक्रन् । तानि । नरा । जुजुषाणा । उप । यातं । बृहत् । वदेम । विदथे । सुऽवीराः ॥ ८ ॥ ५ ॥

सोमापूषणा । जनना । रयीणां । जनना । दिवः । जनना । पृथिव्याः । जातौ । विश्वस्य । भुवनस्य । गोपौ । देवाः । अकृण्वन् । अमृतस्य । नाभिं ॥ १ ॥ इमौ । देवौ । जायमानौ । जुषंत । इमौ । तमांसि । गूहतां । अजुष्टा । आभ्यां । इंद्रः । पक्वं । आमासु । अंतरिति । सोमापूषऽभ्यां । जनत् । उस्रियासु ॥ २ ॥

सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।

विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥ ३ ॥

दिव्यन्यः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे ।

तावस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं वि ष्यतां नाभिमस्मे ॥ ४ ॥

विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।

सोमापूषणाववतं धियं मे युवाभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥ ५ ॥

धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।

अवतु देव्यदितिरनर्वा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ६ ॥ ६ ॥

सोमापूषणा । रजसः । विऽमानं । सप्तऽचक्रं । रथं । अविश्वऽमिन्वं । विषुऽवृतं । मनसा । युज्यमानं । तं । जिन्वथः । वृषणा । पंचऽरश्मिं ॥ ३ ॥ दिवि । अन्यः । सदनं । चक्रे । उच्चा । पृथिव्यां । अन्यः । अधि । अंतरिक्षे । तौ । अस्मभ्यं । पुरुऽवारं । पुरुऽक्षुं । रायः । पोषं । वि । स्यता । नाभिं । अस्मे इति ॥ ४ ॥ विश्वानि । अन्यः । भुवना । जजान । विश्वं । अन्यः । अभिऽचक्षाणः । एति । सोमापूषणौ । अवतं । धियं । मे । युवाभ्यां । विश्वाः । पृतनाः । जयेम ॥ ५ ॥ धियं । पूषा । जिन्वतु । विश्वंऽइन्वः । रयिं । सोमः । रयिऽपतिः । दधातु । अवतु । देवी । अदितिः । अनर्वा । बृहत् । वदेम । विदथे । सुऽवीराः ॥ ६ ॥ ६ ॥

॥ ४१ ॥ ऋषिः—गृत्समदः । देवता—वायुः । छन्दः—गायत्री ॥

॥ ४१ ॥ वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि ।

नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ १ ॥

नियुत्वान्वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते ।

गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २ ॥

शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः ।

आ यातं पिबतं नरा ॥ ३ ॥

अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा ।

ममेदिह श्रुतं हवम् ॥ ४ ॥

राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे ।

सहस्रस्थूण आसाते ॥ ५ ॥ ७ ॥

वायो इति । ये । ते । सहस्रिणः । रथासः । तेभिः । आ । गहि । नियुत्वान् । सोमऽपीतये ॥ १ ॥ नियुत्वान् । वायो इति । आ । गहि । अयं । शुक्रः । अयामि । ते । गंता । असि । सुन्वतः । गृहं ॥ २ ॥ शुक्रस्य । अद्य । गोऽआशिरः । इंद्रवायू इति । नियुत्वतः । आ । यातं । पिबतं । नरा ॥ ३ ॥ अयं । वां । मित्रावरुणा । सुतः । सोमः । ऋतऽवृधा । मम । इत् । इह । श्रुतं । हवं ॥ ४ ॥ राजानौ । अनभिऽद्रुहा । ध्रुवे । सदसि । उत्ऽतमे । सहस्रऽस्थूणे । आसाते इति ॥ ५ ॥ ७ ॥

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती ।

सचेते अनवह्वरं ॥ ६ ॥

गोमदू षु नासत्याश्वावद्यातमश्विना ।

वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ७ ॥

न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू ।

दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८ ॥

ता न आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसंदृशम् ।

धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ९ ॥

इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् ।

स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ १० ॥ ८ ॥

ता । संऽराजा । घृतासुती इति घृतऽआसुती । आदित्या । दानुनः । पती इति । सचेते इति । अनवऽह्वरं ॥ ६ ॥ गोऽमत् । ऊं इति । सु । नासत्या । अश्वऽवत् । यातं । अश्विना । वर्तिः । रुद्रा । नृऽपाय्यं ॥ ७ ॥ न । यत् । परः । न । अंतरः । आऽदधर्षत् । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू । दुःऽशंसः । मर्त्यः । रिपुः ॥ ८ ॥ ता । नः । आ । वोळ्हं । अश्विना । रयिं । पिशंगऽसंदृशं । धिष्ण्या । वरिवःऽविदं ॥ ९ ॥ इंद्रः । अंग । महत् । भयं । अभि । सत् । अप । चुच्यवत् । सः । हि । स्थिरः । विऽचर्षणिः ॥ १० ॥ ८ ॥

इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।

भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ११ ॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।

जेता शत्रून्विचर्षणिः ॥ १२ ॥

विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् ।

एदं बर्हिर्नि षीदत ॥ १३ ॥

तीव्रो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः ।

एतं पिबत काम्यम् ॥ १४ ॥

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।

विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ १५ ॥ ९ ॥

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।

अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥ १६ ॥

इंद्रः । च । मृळयाति । नः । न । नः । पश्चात् । अघं । नशत् । भद्रं । भवाति । नः । पुरः । ॥ ११ ॥ इंद्रः । आशाभ्यः । परि । सर्वाभ्यः । अभयं । करत् । जेता । शत्रून् । विऽचर्षणिः ॥ १२ ॥ विश्वे । देवासः । आ । गत । शृणुत । मे । इमं । हवं । आ । इदं । बर्हिः । नि । सीदत ॥ १३ ॥ तीव्रः । वः । मधुऽमान् । अयं । शुनऽहोत्रेषु । मत्सरः । एतं । पिबत । काम्यं ॥ १४ ॥ इंद्रऽज्येष्ठाः । मरुत्ऽगणाः । देवासः । पूषऽरातयः । विश्वे । मम । श्रुत । हवं ॥ १५ ॥ ९ ॥ अंबिऽतमे । नदीऽतमे । देविऽतमे । सरस्वति । अप्रशस्ताःऽइव । स्मसि । प्रऽशस्ति । अंब । नः । कृधि ॥ १६ ॥

त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।

शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १७ ॥

इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।

या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥ १८ ॥

प्रेतां यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे ।

अग्निं च हव्यवाहनम् ॥ १९ ॥

द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ।

यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥ २० ॥

आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः ।

इहाद्य सोमपीतये ॥ २१ ॥ १० ॥

त्वे इति । विश्वा । सरस्वति । श्रिया । आयूंषि । देव्या । शुनऽहोत्रेषु । मत्स्व । प्रऽजा । देवि । दिदिड्ढि । नः ॥ १७ ॥ इमा । ब्रह्म । सरस्वति । जुषस्व । वाजिनीऽवति । या । ते । मन्म । गृत्सऽमदाः । ऋतऽवरि । प्रिया । देवेषु । जुह्वति ॥ १८ ॥ प्र । इतां । यज्ञस्य । शंऽभुवा । युवां । इत् । आ । वृणीमहे । अग्निं । च । हव्यऽवाहनं ॥ १९ ॥ द्यावा । नः । पृथिवी इति । इमं । सिध्रं । अद्य । दिविऽस्पृशं । यज्ञं । देवेषु । यच्छतां ॥ २० ॥ आ । वां । उपऽस्थं । अद्रुहा । देवाः । सीदंतु । यज्ञियाः । इह । अद्य । सोमऽपीतये ॥ २१ ॥ १० ॥

॥ ४२ ॥ ऋषिः–गृत्समदः । देवता–इन्द्रः । छन्दः–त्रिष्टुप् ॥

॥ ४२ ॥ कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्ति वाचमरितेव नावम् ।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥ १ ॥
मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान्वीरो अस्ता ।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥ २ ॥
अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥ ११ ॥

कनिक्रदत् । जनुषं । प्रऽब्रुवाणः । इयर्ति । वाचं । अरिताऽइव । नावं ।
सुऽमंगलः । च । शकुने । भवासि । मा । त्वा । का । चित् । अभिऽभा । विश्व्या ।
विदत् ॥ १ ॥ मा । त्वा । श्येनः । उत् । वधीत् । मा । सुऽपर्णः । मा । त्वा ।
विदत् । इषुऽमान् । वीरः । अस्ता । पित्र्यां । अनु । प्रऽदिशं । कनिक्रदत् ।
सुऽमंगलः । भद्रऽवादी । वद । इह ॥ २ ॥ अव । क्रंद । दक्षिणतः । गृहाणां ।
सुऽमंगलः । भद्रऽवादी । शकुंते । मा । नः । स्तेनः । ईशत । मा । अघऽशंसः ।
बृहत् । वदेम । विदथे । सुऽवीराः ॥ ३ ॥ ११ ॥

॥ ४३ ॥ ऋषिः–गृत्समदः । देवता–इन्द्रः । छन्दः–जगती ॥

॥४३॥ प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः ।
उभे वाचौ वदति सामगा इव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥ १ ॥
उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि ।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ २ ॥
आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ।
यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ३ ॥ १२ ॥ ४ ॥ २ ॥

प्रऽदक्षिणित् । अभि । गृणंति । कारवः । वयः । वदंतः । ऋतुऽथा । शकुंतयः । उभे इति । वाचौ । वदति । सामगाःऽइव । गायत्रं । च । त्रैस्तुभं । च । अनु । राजति ॥ १ ॥ उद्गाताऽइव । शकुने । साम । गायसि । ब्रह्मऽपुत्रःऽइव । सवनेषु । शंससि । वृषाऽइव । वाजी । शिशुऽमतीः । अपिऽइत्य । सर्वतः । नः । शकुने । भद्रं । आ । वद । विश्वतः । नः । शकुने । पुण्यं । आ । वद ॥ २ ॥ आऽवदन् । त्वं । शकुने । भद्रं । आ । वद । तूष्णीं । आसीनः । सुऽमतिं । चिकिद्धि । नः । यत् । उत्ऽपतन् । वदसि । कर्करिः । यथा । बृहत् । वदेम । विदथे । सुऽवीराः ॥ ३ ॥ १२ ॥ ४ ॥ २ ॥

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः । द्वितीयं मंडलं समाप्तं ॥

॥ अथ तृतीयं मण्डलम् ॥

॥ प्रथमोऽनुवाकः ॥

॥ १ ॥ ऋषिः-विश्वामित्रः । देवता-अग्निः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥ १ ॥ सोमस्य मा तवसं वक्ष्यग्ने वह्निं चकर्थ विदथे यजध्यै ।
देवाँ अच्छा दीद्यद्युञ्जे अद्रिं शमाये अग्ने तन्वं जुषस्व ॥ १ ॥
प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित्तवसे गातुमीषुः ॥ २ ॥
मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्वन्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ॥ ३ ॥

सोमस्य । मा । तवसं । वक्षि । अग्ने । वह्निं । चकर्थ । विदथे । यजध्यै ।
देवान् । अच्छ । दीद्यत् । युंजे । अद्रिं । शंऽआये । अग्ने । तन्वं । जुषस्व ॥ १ ॥
प्राचं । यज्ञं । चकृम । वर्धतां । गीः । समित्ऽभिः । अग्निं । नमसा । दुवस्यन् ।
दिवः । शशासुः । विदथा । कवीना । गृत्साय । चित् । तवसे । गातुं । ईषुः ॥ २ ॥
मयः । दधे । मेधिरः । पूतऽदक्षः । दिवः । सुऽबंधुः । जनुषा । पृथिव्याः ।
अविंदन् । ऊं इति । दर्शतं । अप्ऽसु । अंतः । देवासः । अग्निं । अपसि ।
स्वसॄणां ॥ ३ ॥

अवर्धयन्त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा ।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ॥ ४ ॥

शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥ ५ ॥ १३ ॥

वव्राजा सीमनदतीरदब्धा दिवो यह्वीरवसाना अनग्नाः ।
सना अत्र युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्त वाणीः ॥ ६ ॥

स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ॥ ७ ॥

बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद्दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥ ८ ॥

अवर्धयन् । सुऽभगं । सप्त । यह्वीः । श्वेतं । जज्ञानं । अरुषं । महिऽत्वा । शिशुं । न । जातं । अभि । आरुः । अश्वाः । देवासः । अग्निं । जनिमन् । वपुष्यन् ॥ ४ ॥ शुक्रेभिः । अङ्गैः । रजः । आऽततन्वान् । क्रतुं । पुनानः । कविऽभिः । पवित्रैः । शोचिः । वसानः । परि । आयुः । अपां । श्रियः । मिमीते । बृहतीः । अनूनाः ॥ ५ ॥ १३ ॥ वव्राजं । सीं । अनदतीः । अदब्धाः । दिवः । यह्वीः । अवसानाः । अनग्नाः । सनाः । अत्र । युवतयः । सऽयोनीः । एकं । गर्भं । दधिरे । सप्त । वाणीः ॥ ६ ॥ स्तीर्णाः । अस्य । संऽहतः । विश्वऽरूपाः । घृतस्य । योनौ । स्रवथे । मधूनां । अस्थुः । अत्र । धेनवः । पिन्वमानाः । मही इति । दस्मस्य । मातरा । समीची इति संऽईची ॥ ७ ॥ बभ्राणः । सूनो इति । सहसः । वि । अद्यौत् । दधानः । शुक्रा । रभसा । वपूंषि । श्चोतन्ति । धाराः । मधुनः । घृतस्य । वृषा । यत्र । ववृधे । काव्येन ॥ ८ ॥

पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्वि धेनाः।
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥ ९ ॥
पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत्पीप्यानाः।
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये३नि पाहि ॥ १० ॥ १४ ॥
उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धापो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः।
ऋतस्य योनावशयद्दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥ ११ ॥
अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः।
उदुस्रिया जनिता यो जजानापां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥ १२ ॥
अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम्।
देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥ १३ ॥

पितुः। चित्। ऊधः। जनुषा। विवेद। वि। अस्य। धाराः। असृजत्। वि। धेनाः। गुहा। चरन्तं। सखिऽभिः। शिवेभिः। दिवः। यह्वीभिः। न। गुहा। बभूव ॥ ९ ॥ पितुः। च। गर्भं। जनितुः। च। बभ्रे। पूर्वीः। एकः। अधयत्। पीप्यानाः। वृष्णे। सपत्नी इति सऽपत्नी। शुचये। सबंधू इति सऽबंधू। उभे इति। अस्मै। मनुष्ये३ इति। नि। पाहि ॥ १० ॥ १४ ॥ उरौ। महान्। अनिऽबाधे। ववर्ध। आपः। अग्निं। यशसः। सं। हि। पूर्वीः। ऋतस्य। योनौ। अशयत्। दमूनाः। जामीनां। अग्निः। अपसि। स्वसॄणां ॥ ११ ॥ अक्रः। न। बभ्रिः। संऽइथे। महीनां। दिदृक्षेयः। सूनवे। भाःऽऋजीकः। उत्। उस्रियाः। जनिता। यः। जजान। अपां। गर्भः। नृऽतमः। यह्वः। अग्निः ॥ १२ ॥ अपां। गर्भं। दर्शतं। ओषधीनां। वना। जजान। सुऽभगा। विऽरूपं। देवासः। चित्। मनसा। सं। हि। जग्मुः। पनिष्ठं। जातं। तवसं। दुवस्यन् ॥ १३ ॥

बृहन्त इद्भानवो भाऋजीकमग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः ।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतं दुहानाः ॥ १४ ॥
ईळे च त्वा यजमानो हविर्भिरीळे सखित्वं सुमतिं निकामः ।
देवैरवो मिमीहि सं जरित्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ॥ १५ ॥ १५ ॥
उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेऽग्ने विश्वानि धन्या दधानाः ।
सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अभि ष्याम पृतनायूँरदेवान् ॥ १६ ॥
आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
प्रति मर्ताँ अवासयो दमूना अनु देवान्रथिरो यासि साधन् ॥ १७ ॥

बृहंतः । इत् । भानवः । भाःऽऋजीकं । अग्निं । सचंत । विऽद्युतः । न । शुक्राः ।
गुहाऽइव । वृद्धं । सदसि । स्वे । अंतः । अपारे । ऊर्वे । अमृतं । दुहानाः ॥ १४ ॥
ईळे । च । त्वा । यजमानः । हविःऽभिः । ईळे । सखिऽत्वं । सुऽमतिं । निऽकामः ।
देवैः । अवः । मिमीहि । सं । जरित्रे । रक्ष । च । नः । दम्येभिः । अनीकैः ॥१५॥१५॥
उपऽक्षेतारः । तव । सुऽप्रनीते । अग्ने । विश्वानि । धन्या । दधानाः । सुऽरेतसा ।
श्रवसा । तुंजमानाः । अभि । स्याम । पृतनाऽयून् । अदेवान् ॥ १६ ॥ आ ।
देवानां । अभवः । केतुः । अग्ने । मंद्रः । विश्वानि । काव्यानि । विद्वान् । प्रति ।
मर्तान् । अवासयः । दमूनाः । अनु । देवान् । रथिरः । यासि । साधन् ॥ १७ ॥

नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥ १८ ॥
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतिभिः सरण्यन् ।
अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥ १९ ॥
एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचं ।
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदाः ॥ २० ॥
जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ २१ ॥

नि । दुरोणे । अमृतः । मर्त्यानां । राजा । ससाद । विदथानि । साधन् ।
घृतऽप्रतीकः । उर्विया । वि । अद्यौत् । अग्निः । विश्वानि । काव्यानि । विद्वान् ॥ १८ ॥
आ । नः । गहि । सख्येभिः । शिवेभिः । महान् । महीभिः । ऊतिऽभिः । सरण्यन् ।
अस्मे इति । रयिं । बहुलं । संऽतरुत्रं । सुऽवाचं । भागं । यशसं । कृधि । नः ॥ १९ ॥
एता । ते । अग्ने । जनिम । सनानि । प्र । पूर्व्याय । नूतनानि । वोचं । महान्ति ।
वृष्णे । सवना । कृता । इमा । जन्मन्ऽजन्मन् । निऽहितः । जातऽवेदाः ॥ २० ॥
जन्मन्ऽजन्मन् । निऽहितः । जातऽवेदाः । विश्वामित्रेभिः । इध्यते । अजस्रः । तस्य ।
वयं । सुऽमतौ । यज्ञियस्य । अपि । भद्रे । सौमनसे । स्याम ॥ २१ ॥

इमं यज्ञं संहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो ररांणः ।
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमा यंजस्व ॥ २२ ॥
इळांमग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवंमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनंयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ २३ ॥ १६ ॥

॥ २ ॥ ऋषिः—विश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्दः—जगती ॥

॥ २ ॥ वैश्वानरायं धिषणांमृतावृधें घृतं न पूतमग्नयें जनामसि ।
द्विता होतांरं मनुंषश्च वाघतों धिया रथं न कुलिंशः समृंण्वति ॥ १ ॥
स रोंचयज्जनुषा रोदंसी उभे स मात्रोरंभवत्पुत्र ईड्यः ।
हव्यवाळग्निरजरश्चनोंहितो दूळभों विशामतिथिर्विभावंसुः ॥ २ ॥

इमं । यज्ञं । सहसाऽवन् । त्वं । नः । देवऽत्रा । धेहि । सुक्रतो इतिं सुऽक्रतो । ररांणः । प्र । यंसि । होतः । बृहतीः । इषः । नः । अग्ने । महिं । द्रविंणं । आ । यजस्व ॥ २२ ॥ इळां । अग्ने । पुरुऽदंसं । सनिं । गोः । शश्वत्ऽतमं । हवंमानाय । साध । स्यात् । नः । सूनुः । तनंयः । विजाऽवा । अग्ने । सा । ते । सुऽमतिः । भूतु । अस्मे इतिं ॥ २३ ॥ १६ ॥

वैश्वानरायं । धिषणां । ऋतऽवृधें । घृतं । न । पूतं । अग्नयें । जनामसि । द्विता । होतांरं । मनुंषः । च । वाघतः । धिया । रथं । न । कुलिंशः । सं । ऋण्वति ॥ १ ॥ सः । रोचयत् । जनुषा । रोदंसी इतिं । उभे इतिं । सः । मात्रोः । अभवत् । पुत्रः । ईड्यः । हव्यऽवाट् । अग्निः । अजरः । चनंःऽहितः । दुःऽदभंः । विशां । अतिंथिः । विभाऽवंसुः ॥ २ ॥

क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥ ३ ॥
आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम् ।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥ ४ ॥
अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः ।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥ ५ ॥ १७ ॥
पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥ ६ ॥

क्रत्वा । दक्षस्य । तरुषः । विऽधर्मणि । देवासः । अग्निं । जनयंत । चित्तिऽभिः । रुरुचानं । भानुना । ज्योतिषा । महां । अत्यं । न । वाजं । सनिष्यन् । उप । ब्रुवे ॥ ३ ॥ आ । मंद्रस्य । सनिष्यंतः । वरेण्यं । वृणीमहे । अह्रयं । वाजं । ऋग्मियं । रातिं । भृगूणां । उशिजं । कविऽक्रतुं । अग्निं । राजंतं । दिव्येन । शोचिषा ॥ ४ ॥ अग्निं । सुम्नाय । दधिरे । पुरः । जनाः । वाजऽश्रवसं । इह । वृक्तऽबर्हिषः । यतऽस्रुचः । सुऽरुचं । विश्वऽदेव्यं । रुद्रं । यज्ञानां । साधत्ऽइष्टिं । अपसां ॥ ५ ॥ १७ ॥ पावकऽशोचे । तव । हि । क्षयं । परि । होतः । यज्ञेषु । वृक्तऽबर्हिषः । नरः । अग्ने । दुवः । इच्छमानासः । आप्यं । उप । आसते । द्रविणं । धेहि । तेभ्यः ॥ ६ ॥

आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।
सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥ ७ ॥
नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत्पुरोहितः ॥ ८ ॥
तिस्रो यह्वस्य समिधः परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः ।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥ ९ ॥
विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे ।
स उद्वतो निवतो याति वेविषत्स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ॥ १० ॥ १८ ॥
स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान्वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः ।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ॥ ११ ॥

आ । रोदसी इति । अपृणत् । आ । स्वः । महत् । जातं । यत् । एनं । अपसः । अधारयन् । सः । अध्वराय । परि । नीयते । कविः । अत्यः । न । वाजऽसातये । चनःऽहितः ॥ ७ ॥ नमस्यत । हव्यऽदातिं । सुऽअध्वरं । दुवस्यत । दम्यं । जातऽवेदसं । रथीः । ऋतस्य । बृहतः । विऽचर्षणिः । अग्निः । देवानां । अभवत् । पुरःऽहितः ॥ ८ ॥ तिस्रः । यह्वस्य । संऽइधः । परिऽज्मनः । अग्नेः । अपुनन् । उशिजः । अमृत्यवः । तासां । एकां । अदधुः । मर्त्ये । भुजं । ऊं इति । लोकं । ऊं इति । द्वे इति । उप । जामिं । ईयतुः ॥ ९ ॥ विशां । कविं । विश्पतिं । मानुषीः । इषः । सं । सीं । अकृण्वन् । स्वऽधितिं । न । तेजसे । सः । उत्ऽवतः । निऽवतः । याति । वेविषत् । सः । गर्भं । एषु । भुवनेषु । दीधरत् ॥ १० ॥ १८ ॥ सः । जिन्वते । जठरेषु । प्रजज्ञिऽवान् । वृषा । चित्रेषु । नानदत् । न । सिंहः । वैश्वानरः । पृथुऽपाजाः । अमर्त्यः । वसु । रत्ना । दयमानः । वि । दाशुषे ॥ ११ ॥

वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः ।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥ १२ ॥
ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्यमा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम् ।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥ १३ ॥
शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम् ।
अग्निं मूर्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥ १४ ॥
मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥ १५ ॥ १९ ॥

वैश्वानरः । प्रत्नऽथा । नाकं । आ । अरुहत् । दिवः । पृष्ठं । भंदमानः । सुमन्मऽभिः । सः । पूर्वऽवत् । जनयन् । जंतवे । धनं । समानं । अज्मं । परि । एति । जागृविः ॥ १२ ॥ ऋतऽवानं । यज्ञियं । विप्रं । उक्थ्यं । आ । यं । दधे । मातरिश्वा । दिवि । क्षयं । तं । चित्रऽयामं । हरिऽकेशं । ईमहे । सुऽदीतिं । अग्निं । सुविताय । नव्यसे ॥ १३ ॥ शुचिं । न । यामन् । इषिरं । स्वःऽदृशं । केतुं । दिवः । रोचनऽस्थां । उषःऽबुधं । अग्निं । मूर्धानं । दिवः । अप्रतिऽस्कुतं । तं । ईमहे । नमसा । वाजिनं । बृहत् ॥ १४ ॥ मंद्रं । होतारं । शुचिं । अद्वयाविनं । दमूनसं । उक्थ्यं । विश्वऽचर्षणिं । रथं । न । चित्रं । वपुषाय । दर्शतं । मनुःऽहितं । सदं । इत् । रायः । ईमहे ॥ १५ ॥ १९ ॥

॥ ३ ॥ ऋषिः–विश्वामित्रः । देवता–अग्निः । छन्दः–जगती ॥

॥ ३ ॥ वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥ १ ॥
अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥ २ ॥
केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
अपांसि यस्मिन्नधि सन्दधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके ॥ ३ ॥
पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥ ४ ॥
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहं तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियं दधुः ॥ ५ ॥ २० ॥

वैश्वानराय । पृथुऽपाजसे । विपः । रत्ना । विधंत । धरुणेषु । गातवे । अग्निः । हि । देवान् । अमृतः । दुवस्यति । अथ । धर्माणि । सनता । न । दूदुषत् ॥ १ ॥ अंतः । दूतः । रोदसी इति । दस्मः । ईयते । होता । निऽसत्तः । मनुषः । पुरःऽहितः । क्षयं । बृहंतं । परि । भूषति । द्युऽभिः । देवेभिः । अग्निः । इषितः । धियाऽवसुः ॥ २ ॥ केतुं । यज्ञानां । विदथस्य । साधनं । विप्रासः । अग्निं । महयंत । चित्तिऽभिः । अपांसि । यस्मिन् । अधि । संऽदधुः । गिरः । तस्मिन् । सुम्नानि । यजमानः । आ । चके ॥ ३ ॥ पिता । यज्ञानां । असुरः । विपःऽचितां । विऽमानं । अग्निः । वयुनं । च । वाघतां । आ । विवेश । रोदसी इति । भूरिऽवर्पसा । पुरुऽप्रियः । भंदते । धामऽभिः । कविः ॥ ४ ॥ चंद्रं । अग्निं । चंद्रऽरथं । हरिऽव्रतं । वैश्वानरं । अप्सुऽसदं । स्वःऽविदं । विऽगाहं । तूर्णिं । तविषीभिः । आऽवृतं । भूर्णिं । देवासः । इह । सुऽश्रियं । दधुः ॥ ५ ॥ २० ॥

अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः ॥ ६ ॥
अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुन्यूर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः ।
वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ॥ ७ ॥
विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥ ८ ॥
विभावा देवः सुरणः परि क्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ॥ ९ ॥
वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥ १० ॥

अग्निः । देवेभिः । मनुषः । च । जंतुऽभिः । तन्वानः । यज्ञं । पुरुऽपेशसं । धिया । रथीः । अंतः । ईयते । साधदिष्टिऽभिः । जीरः । दमूनाः । अभिशस्तिऽचातनः ॥६॥ अग्ने । जरस्व । सुऽअपत्ये । आयुनि । ऊर्जा । पिन्वस्व । सं । इषः । दिदीहि । नः । वयांसि । जिन्व । बृहतः । च । जागृवे । उशिक् । देवानां । असि । सुऽक्रतुः । विप्राणां ॥ ७ ॥ विश्पतिं । यह्वं । अतिथिं । नरः । सदा । यंतारं । धीनां । उशिजं । च । वाघतां । अध्वराणां । चेतनं । जातऽवेदसं । प्र । शंसंति । नमसा । जूतिऽभिः । वृधे ॥ ८ ॥ विभाऽवा । देवः । सुऽरणः । परि । क्षितीः । अग्निः । बभूव । शवसा । सुमत्ऽरथः । तस्य । व्रतानि । भूरिऽपोषिणः । वयं । उप । भूषेम । दमे । आ । सुवृक्तिऽभिः ॥ ९ ॥ वैश्वानर । तव । धामानि । आ । चके । येभिः । स्वःऽवित् । अभवः । विऽचक्षण । जातः । आ । अपृणः । भुवनानि । रोदसी इति । अग्ने । ता । विश्वा । परिऽभूः । असि । त्मना ॥ १० ॥

वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥ ११ ॥ २१ ॥

॥ ४ ॥ ऋषिः—विश्वामित्रः । देवता—आप्रियः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥४॥ समित्समित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः ।
आ देव देवान्यजथाय वक्षि सखा सखीन्त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥ १ ॥
यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद्घृतयोनिं विधन्तम् ॥ २ ॥
प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै ।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान्यक्षदिषितो यजीयान् ॥ ३ ॥
ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः ॥ ४ ॥

वैश्वानरस्य । दंसनाभ्यः । बृहत् । अरिणात् । एकः । सुऽअपस्यया । कविः । उभा । पितरा । महयन् । अजायत । अग्निः । द्यावापृथिवी इति । भूरिऽरेतसा ॥ ११ ॥ २१ ॥

समित्ऽसमित् । सुऽमनाः । बोधि । अस्मे इति । शुचाऽशुचा । सुऽमतिं । रासि । वस्वः । आ । देव । देवान् । यजथाय । वक्षि । सखा । सखीन् । सुऽमनाः । यक्षि । अग्ने ॥ १ ॥ यं । देवासः । त्रिः । अहन् । आऽयजंते । दिवेऽदिवे । वरुणः । मित्रः । अग्निः । सः । इमं । यज्ञं । मधुऽमंतं । कृधि । नः । तनूऽनपात् । घृतऽयोनिं । विधंतं ॥ २ ॥ प्र । दीधितिः । विश्वऽवारा । जिगाति । होतारं । इळः । प्रथमं । यजध्यै । अच्छ । नमःऽभिः । वृषभं । वंदध्यै । सः । देवान् । यक्षत् । इषितः । यजीयान् ॥ ३ ॥ ऊर्ध्वः । वां । गातुः । अध्वरे । अकारि । ऊर्ध्वा । शोचींषि । प्रऽस्थिता । रजांसि । दिवः । वा । नाभा । नि । असादि । होता । स्तृणीमहि । देवऽव्यचाः । वि । बर्हिः ॥ ४ ॥

सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभीइमं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः ॥ ५ ॥ २२ ॥
आ भन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वाइविरूपे ।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ॥ ६ ॥
दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥ ७ ॥
आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥

सप्त । होत्राणि । मनसा । वृणानाः । इन्वंतः । विश्वं । प्रति । यन् । ऋतेन । नृऽपेशसः । विदथेषु । प्र । जाताः । अभि । इमं । यज्ञं । वि । चरंत । पूर्वीः ॥ ५ ॥ ॥ २२ ॥ आ । भंदमाने इति । उषसा । उपाके इति । उत । स्मयेते इति । तन्वा । विरूपे इति विऽरूपे । यथा । नः । मित्रः । वरुणः । जुजोषत् । इंद्रः । मरुत्वान् । उत । वा । महःऽभिः ॥ ६ ॥ दैव्या । होतारा । प्रथमा । नि । ऋंजे । सप्त । पृक्षासः । स्वधया । मदंति । ऋतं । शंसंतः । ऋतं । इत् । ते । आहुः । अनु । व्रतं । व्रतऽपाः । दीध्यानाः ॥ ७ ॥ आ । भारती । भारतीभिः । सऽजोषाः । इळा । देवैः । मनुष्येभिः । अग्निः । सरस्वती । सारस्वतेभिः । अर्वाक् । तिस्रः । देवीः । बर्हिः । आ । इदं । सदंतु ॥ ८ ॥ तत् । नः । तुरीपं । अध । पोषयित्नु । देव । त्वष्टः । वि । रराणः । स्यस्वेति स्यस्व । यतः । वीरः । कर्मण्यः । सुऽदक्षः । युक्तऽग्रावा । जायते । देवऽकामः ॥ ९ ॥

वन॑स्पतेऽव॑ सृजोप॑ दे॒वान॒ग्निर्ह॒विः श॑मि॒ता सू॑दयाति ।
सेदु॒ होता॑ स॒त्यत॑रो यजाति॒ यथा॑ दे॒वानां॒ जनि॑मानि॒ वेद॑ ॥ १० ॥
आ या॑ह्यग्ने समिधा॒नो अ॒र्वाङिन्द्रे॑ण दे॒वैः स॒रथं॑ तु॒रेभिः॑ ।
ब॒र्हिर्न॑ आस्ता॒मदि॑तिः सुपु॒त्रा स्वाहा॑ दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ताम् ॥११॥२३॥

॥ ५ ॥ ऋषिः—विश्वामित्रः । देवता—अग्निः । छन्दः—त्रिष्टुप् ॥

॥ ५ ॥ प्रत्य॒ग्निरु॒षस॒श्चेकि॑ता॒नोऽबो॑धि॒ विप्रः॑ पद॒वीः क॑वी॒नाम् ।
पृ॒थु॒पाजा॑ देव॒यद्भिः॒ समि॑द्धोऽप॒ द्वारा॒ तम॑सो॒ वह्नि॑रावः ॥ १ ॥
प्रेद्व॒ग्निर्वा॑वृधे॒ स्तोमे॑भिर्गी॒र्भिः स्तो॑तॄ॒णां न॑म॒स्य॑ उ॒क्थैः ।
पू॒र्वीरृ॒तस्य॑ सं॒दृश॑श्चका॒नः सं दू॒तो अ॑द्यौदु॒षसो॑ वि॒रोके॑ ॥ २ ॥
अधा॑य्य॒ग्निर्मानु॑षीषु वि॒क्ष्व१॒॑पां गर्भो॑ मि॒त्र ऋ॒तेन॒ साध॑न् ।
आ ह॑र्य॒तो य॑ज॒तः सान्व॑स्था॒दभू॑दु॒ विप्रो॒ हव्यो॑ मती॒नाम् ॥ ३ ॥

वन॑स्पते । अव॑ । सृ॒ज॒ । उप॑ । दे॒वान् । अ॒ग्निः । ह॒विः । श॒मि॒ता । सू॒द॒या॒ति॒ । सः । इत् । ऊँ इति॑ । होता॑ । स॒त्यऽत॑रः । य॒जा॒ति॒ । यथा॑ । दे॒वानां॑ । जनि॑मानि । वेद॑ ॥ १० ॥ आ । या॒हि॒ । अ॒ग्ने॒ । स॒म्ऽइ॒धा॒नः । अ॒र्वाङ् । इन्द्रे॑ण । दे॒वैः । स॒ऽरथं॑ । तु॒रेभिः॑ । ब॒र्हिः । नः॒ । आ॒स्तां॒ । अदि॑तिः । सु॒ऽपु॒त्रा । स्वाहा॑ । दे॒वाः । अ॒मृताः॑ । मा॒द॒य॒न्तां॒ ॥ ११ ॥ २३ ॥

प्रति॑ । अ॒ग्निः । उ॒षसः॑ । चेकि॑तानः । अबो॑धि । विप्रः॑ । प॒द॒ऽवीः । क॒वी॒नां । पृ॒थु॒ऽपाजाः॑ । दे॒व॒यत्ऽभिः॑ । सम्ऽइ॑द्धः । अप॑ । द्वारा॑ । तम॑सः । वह्निः॑ । आव॒रित्या॑वः ॥ १ ॥ प्र । इत् । ऊँ इति॑ । अ॒ग्निः । व॒वृ॒धे॒ । स्तोमे॑भिः । गीः॒ऽभिः । स्तो॒तॄ॒णां । न॒म॒स्यः॑ । उ॒क्थैः । पू॒र्वीः । ऋ॒तस्य॑ । स॒म्ऽदृशः॑ । च॒का॒नः । सं । दू॒तः । अ॒द्यौ॒त् । उ॒षसः॑ । वि॒ऽरोके॑ ॥ २ ॥ अधा॑यि । अ॒ग्निः । मानु॑षीषु । वि॒क्षु । अ॒पां । गर्भः॑ । मि॒त्रः । ऋ॒तेन॑ । साध॑न् । आ । ह॒र्य॒तः । य॒ज॒तः । सानु॑ । अ॒स्था॒त् । अभू॑त् । ऊँ इति॑ । विप्रः॑ । हव्यः॑ । म॒ती॒नां ॥ ३ ॥

मित्रो अग्निर्भवति यत्समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।
मित्रो अध्वर्युरिषिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥ ४ ॥
पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥ ५ ॥ २४ ॥
ऋभुश्चक्र ईळ्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।
ससस्य चर्म घृतवत्पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥ ६ ॥
आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात्पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
दीद्यानः शुचिरृष्वः पावकः पुनःपुनर्मातरा नव्यसी कः ॥ ७ ॥
सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥ ८ ॥

मित्रः । अग्निः । भवति । यत् । सम्ऽइद्धः । मित्रः । होता । वरुणः । जातऽवेदाः ।
मित्रः । अध्वर्युः । इषिरः । दमूनाः । मित्रः । सिन्धूनां । उत । पर्वतानां ॥ ४ ॥
पाति । प्रियं । रिपः । अग्रं । पदं । वेः । पाति । यह्वः । चरणं । सूर्यस्य । पाति ।
नाभा । सप्तऽशीर्षाणं । अग्निः । पाति । देवानां । उपऽमादं । ऋष्वः ॥ ५ ॥ २४ ॥
ऋभुः । चक्रे । ईळ्यं । चारु । नाम । विश्वानि । देवः । वयुनानि । विद्वान् । ससस्य ।
चर्म । घृतऽवत् । पदं । वेः । तत् । इत् । अग्निः । रक्षति । अप्रऽयुच्छन् ॥ ६ ॥
आ । योनिं । अग्निः । घृतऽवन्तं । अस्थात् । पृथुऽप्रगाणं । उशन्तं । उशानः ।
दीद्यानः । शुचिः । ऋष्वः । पावकः । पुनःऽपुनः । मातरा । नव्यसी इति ।
करिति कः ॥ ७ ॥ सद्यः । जातः । ओषधीभिः । ववक्षे । यदि । वर्धन्ति । प्रऽस्वः ।
घृतेन । आपःऽइव । प्रऽवता । शुम्भमानाः । उरुष्यत् । अग्निः । पित्रोः । उपऽस्थे ॥ ८ ॥

उदु ष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अधि नाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान् ॥ ९ ॥
उदस्तम्भीत्समिधा नाकमृष्वोऽग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम् ।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ॥ १० ॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥ २५ ॥

॥ ६ ॥ ऋषिः-विश्वामित्रः । देवता-इन्द्रः । छन्दः-त्रिष्टुप् ॥

॥ ६ ॥ प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड्वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥ १ ॥
आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥ २ ॥

उत् । ऊँ इति । स्तुतः । सम्ऽइधा । यह्वः । अद्यौत् । वर्ष्मन् । दिवः । अधि । नाभा । पृथिव्याः । मित्रः । अग्निः । ईड्यः । मातरिश्वा । आ । दूतः । वक्षत् । यजथाय । देवान् ॥ ९ ॥ उत् । अस्तंभीत् । सम्ऽइधा । नाकं । ऋष्वः । अग्निः । भवन् । उत्ऽतमः । रोचनानां । यदि । भृगुऽभ्यः । परि । मातरिश्वा । गुहा । संतं । हव्यऽवाहं । सम्ऽईधे ॥ १० ॥ इळां । अग्ने । पुरुऽदंसं । सनिं । गोः । शश्वत्ऽतमं । हवमानाय । साध । स्यात् । नः । सूनुः । तनयः । विजाऽवा । अग्ने । सा । ते । सुऽमतिः । भूतु । अस्मे इति ॥ ११ ॥ २५ ॥

प्र । कारवः । मनना । वच्यमानाः । देवद्रीचीं । नयत । देवऽयंतः । दक्षिणाऽवाट् । वाजिनी । प्राची । एति । हविः । भरंती । अग्नये । घृताची ॥ १ ॥ आ । रोदसी इति । अपृणाः । जायमानः । उत । प्र । रिक्थाः । अध । नु । प्रयज्यो इति प्रऽयज्यो । दिवः । चित् । अग्ने । महिना । पृथिव्याः । वच्यंतां । ते । वह्नयः । सप्तऽजिह्वाः ॥ २ ॥

द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।
यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥ ३ ॥
महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥ ४ ॥
व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥ ५ ॥ २६ ॥
ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।
अथा वह देवान्देव विश्वान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥ ६ ॥
दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥ ७ ॥

द्यौः । च । त्वा । पृथिवी । यज्ञियासः । नि । होतारं । सादयंते । दमाय । यदि । विशः । मानुषीः । देवऽयंतीः । प्रयस्वतीः । ईळंते । शुक्रं । अर्चिः ॥ ३ ॥ महान् । सधऽस्थे । ध्रुवः । आ । निऽसत्तः । अंतः । द्यावा । माहिने इति । हर्यमाणः । आस्क्रे इति । सपत्नी इति सऽपत्नी । अजरे इति । अमृक्ते इति । सबर्दुघे इति सबःऽदुघे । उरुऽगायस्य । धेनू इति ॥ ४ ॥ व्रता । ते । अग्ने । महतः । महानि । तव । क्रत्वा । रोदसी इति । आ । ततंथ । त्वं । दूतः । अभवः । जायमानः । त्वं । नेता । वृषभ । चर्षणीनां ॥ ५ ॥ २६ ॥ ऋतस्य । वा । केशिना । योग्याभिः । घृतऽस्नुवा । रोहिता । धुरि । धिष्व । अथ । आ । वह । देवान् । देव । विश्वान् । सुऽअध्वरा । कृणुहि । जातऽवेदः ॥ ६ ॥ दिवः । चित् । आ । ते । रुचयंत । रोकाः । उषः । विऽभातीः । अनु । भासि । पूर्वीः । अपः । यत् । अग्ने । उशधक् । वनेषु । होतुः । मंद्रस्य । पनयंत । देवाः ॥ ७ ॥

उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।
ऊमा वा ये सुहवासो यजत्रा आयेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥ ८ ॥
ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥ ९ ॥
स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥ १० ॥
इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥ ११ ॥ २७ ॥ ८ ॥ २ ॥

उरौ । वा । ये । अंतरिक्षे । मदंति । दिवः । वा । ये । रोचने । संति । देवाः । ऊमाः । वा । ये । सुऽहवासः । यजत्राः । आऽयेमिरे । रथ्यः । अग्ने । अश्वाः ॥ ८ ॥ आ । एभिः । अग्ने । सऽरथं । याहि । अर्वाङ् । नानाऽरथं । वा । विऽभवः । हि । अश्वाः । पत्नीऽवतः । त्रिंशतं । त्रीन् । च । देवान् । अनुऽस्वधं । आ । वह । मादयस्व ॥ ९ ॥ सः । होता । यस्य । रोदसी इति । चित् । उर्वी इति । यज्ञंऽयज्ञं । अभि । वृधे । गृणीतः । प्राची इति । अध्वराऽइव । तस्थतुः । सुमेके इति सुऽमेके । ऋतवरी इत्यृतऽवरी । ऋतऽजातस्य । सत्ये इति ॥ १० ॥ इळां । अग्ने । पुरुऽदंसं । सनिं । गोः । शश्वत्ऽतमं । हवमानाय । साध । स्यात् । नः । सूनुः । तनयः । विजाऽवा । अग्ने । सा । ते । सुऽमतिः । भूतु । अस्मे इति ॥ ११ ॥ २७ ॥ ८ ॥ २ ॥

॥ इति द्वितीयाष्टकेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

अध्याय ८.

सूक्त ३७.

॥ ऋषि-गृत्समद । देवता-द्रविणोद ॥

[हे **द्रविणोदा**, हे अग्नि] आप होताके पात्रमें सोमरसका आकण्ठ प्राशन करके प्रसन्न हूजिये । हे अध्वर्युजन, केवल तृप्ति होनेतक अर्पण किये हुवे सोमरसको वे चाहते हैं । अतः इस **अग्निको** अर्पण करनेके लिये सोमरसको ले आइये । (हे **द्रविणोदा**,) आप बहोत उदार हैं और इस मधुर सोमरसके ऊपर आपका अतीव प्रेम है, इस लिये भक्तोंको सामर्थ्यरूप धन अर्पण करनेवाले हे **अग्निदेव**, आप हरएक यज्ञसमयपर इधर आकर होताके यज्ञपात्रमें सोमरसका प्राशन कीजिये । १

जिसको मैं आगे बुलाता था उसको आजभी बुलाता हूं । यदि कोई देव स्मरण करनेके योग्य हो तो यही अति उदार देव है । वह सर्वोका स्वामी है । इस लिये, (भक्तोंको) सामर्थ्यरूप धन अर्पण करनेवाले हे **अग्निदेव**, हरएक यज्ञसमयपर इधर आकर अध्वर्युने आपको अर्पण किये हुवे इस मधुर सोमरसका, होताके यज्ञपात्रसे प्राशन कीजिये । २

जिनको जोतकर आप सर्वत्र गमन करते हैं वे आपके ज्वालारूप घोडे पुष्ट हो । आप सब वृक्ष—वनस्पतिओंके भी स्वामी हैं । अत एव हे भगवन, भक्तोंकी किसी प्रकार हानि न होने दीजिये और उनको प्रबल कीजिये । हे धैर्यके समुद्र, हे सामर्थ्यरूप धनको अर्पण करनेवाले अग्निदेव, आप यहां आइये और हमारा उत्साह बढाइये । हरेक यज्ञसमयमें, **नेष्टा** नामक ऋत्विजके पात्रमेंही आप सोमरसका प्राशन कीजिये । ३

---

१ होत्रात् अनु जोषम (सोमस्य) अन्धसः मन्दस्व, हे अध्वर्यवः सः अग्निः पूर्णाम् आसिचम् वष्टि । (अतः) तस्मै एतं (अन्धः) भरत, गः ददः तद्वशः हि, तत हे द्रविणोदः त्वम ऋतुभिः होत्रात् सोमं पिब ।

२ यम उ पूर्व अहुवे तम् इदं हुवे, यः नाम पत्यते सः इत ददिः हव्यः । अध्वर्युभिः सोम्यं मधु प्रस्थितम (तत) हे द्रविणोद , त्वम् ऋतुभिः पोत्रात सोमं पिब ।

३ येभिः त्वं ईयसे ते ते वन्हयः मेद्यन्तु, हे वनस्पते (अग्ने) अरिष्यन त्वम् (भक्तान) वीळयस्व, हे धृष्णो द्रविणोदः, त्वम् आगूय अभिगूर्य, ऋतुभिः नेष्ट्रात् सोमं पिब ।

अग्निदेवने सोमरसका होताके पात्रसे प्राशन किया। पोता नामक ऋत्विजके भी पात्रसे उसका प्राशन कर वह तुष्ट हुवा। और नेष्टाके पात्रसेभी मधुर सोमरसका स्वीकार कर उसको आनन्द प्राप्त हुवा। अब जो चौथा यज्ञपात्र है वह निर्मल और अमरपद देनेवाला है। और सब दानशूर यजमान उससेही सोमरसका दान करते हैं। इसलिये सामर्थ्यरूपी धन देनेवाला यह अग्निदेव इस चौथे पात्रसे सोमरसका प्राशन करे। ४

आपका रथ आपके तुल्य शूरोंको बैठने योग्य है और वह बहुत वेगसे जाता है। इस लिये आज हमारी ओर आनेके उद्देशसे उसको जोड़कर शीघ्र चलिये और यहां आ पहुँच अश्वोंको मुक्त कीजिये। आपके मधुर रससे हमारे हविको पावन करिये, प्रसन्न चित्तसे यहां आइये और हे सात्त्विक धनके भाण्डार, आप इस सोमका स्वीकार कीजिये। ५

हे अग्नि, समिधोंका स्वीकार कर तुष्ट हूजिये, हविसे प्रसन्न रहिये, हितकारक और उत्कृष्ट स्तोत्रसे आनन्दका लाभ लीजिये और स्तवनोंमें सन्तोष मानिये। हे दिव्य धनके भाण्डार अग्निदेव, प्रेमपूर्ण चित्तसे आपके सर्व सामर्थ्योंके साथ आकर सब श्रेष्ठ और प्रेमी देवताओंको उचित समयपर सोमरसके हवियोंका आस्वाद कराइये। ६ (१)

सूक्त ३८.

॥ ऋषि–गृत्समद । देवता–सविता ॥

देखिये, यह देदीप्यमान सविता—यह विश्वकी प्रेरणा और निग्रह करनेवाला पवित्र देव—अखिल प्राणियोंको उत्साह देनेके लिये उदित हुवा है। उसका यह उद्योग निर्विघ्न चला है। उसीने सब देवोंके पास रत्नोंका भाण्डार रखकर जो कोई भक्त यज्ञकर्मोंपर ध्यान रखता है उसको अनुपम सौख्यका विभागी किया है। १

---

४ सः होत्रात् अपात उत पोत्रात् अमत्त, उत नेष्ट्रात् हितं प्रयः अजुषत। तुरीयं पात्रं अमृक्तं अमृतं च (भवति), (तद्) द्रविणोदाः (तस्मात् तुरीयात्) द्राविणोदसः रसं पिबतु।

(५. युवयोः यज्यं नृवाहणं रथं अद्य अर्वाञ्चं युज्याथाम् (ततः) वाम् इह विमोचनम् अस्तु। नः हवींषि मधुना पृङ्क्तम् कम् आगतम् हि, अथ हे वाजिनी वसू सोमं पिबतम्।

६ हे अग्ने इमां समिधं जोषि, आहुतिम् जोषि, ब्रह्म जोषि, ब्रह्म जोषि सुष्टुतिम् जोषि,। हे वसो, विश्वाभिः (स्व शक्तिभिः आगत्य) महः उशतः विश्वान् देवान् त्वम् उशन् ऋतुना हविः पायय।

१ स्यः देवः सविता वन्हिः, शश्वत्तम तद्पाः उद् अस्थात्। सः नूनं देवेभ्यो रत्नम् वि दधाति हि; अथ वीतिहोत्रम् स्वस्तौ आ अभजत।

विश्वका हित करनेके लिये यह हमेशा सिद्ध है । सर्वत्र फैलनेवाला किरणोंका समुदाय यही उसका हाथ है । अखिल विश्वके कल्यानके लिये इस हाथको वह बारबार बढ़ाता है । उसके आज्ञासेही पातकोंका नाश करनेका सामर्थ्य जलमें आया है और वायु अन्तरिक्षमें सञ्चार और क्रीडा करता है । २

अपने अतीव वेगवान अश्वोंको रथको जोतकर जातेही वह उनको छोड़ देता है, किन्तु इस रीतिसे जब वह रथको खड़ा करता है उस समय शीघ्रतामे चलनेवाले सब मुसाफिरोंको वह आराम करनेके लिये ठहराता है और सर्पकी तरह आवेशसे आगे दौड़नेवाले वीरोंका वेगही वह कुण्ठित करता है । रातभी सविता देवके आज्ञासे वृद्धि पाती है । ३

अन्धकाररूपी बहुत बड़ा कपडा बुनकर तैयार करनेवाले रातने जब उसको सब विश्वपर फैला दिया, उसी समय ज्ञानवान भक्तने अपना पूजनकर्म बीचमें छोड़ दिया था, किन्तु थोड़े अवसरके बाद निद्राका त्याग कर वह फेर पूजा करने लगा और इतनेमें परम तेजस्वी सविता, जिसको आराम कभी नही मिलता और जिसने सब ऋतुओंका योग्य काल निश्चित किया है, फेर उदय पाया । ४

इस गृहाग्नीका तेज यजमानोंको घरमें फैला जाता है । इतनाही नही किन्तु सब सचेतन प्राणियोंके शरीरमेंभी वह प्रवेश करता है । इसी कारण, अग्निदेवके इच्छाके अनुसार (सुखोका) जो श्रेष्ठ भाग सर्वको प्रेरणा करनेवाले देवसे उषा माताको मिला है उसी भागको वह अपने भक्तरूपी पुत्रोंको अर्पण करती है । ५ (२)

---

२ सः देवः विश्वस्य श्रुष्टये ऊर्ध्वः हि, पृथुपाणि. सः बाहुवा प्र सिसर्ति । अस्य व्रते आ आपः चित् निमृग्राः, अयं वातः चित् परिज्मन् रमते ।

३ आशुभिः चित् यान् सः (तान्) विमुचाति, (परं) नूनम् अतमानत् चित् एतोः अरीरमत् । अह्यर्षूण चित् अविष्याम् नि अयान्, सावितुः व्रतम् अनु मोकी आ अगात् ।

४ विततं (तमः) वयन्ती (तमिस्रा) तत् पुनः समव्यत् धीरः शक्म मध्या कर्तोः नि अधात् । (अचिरात् निद्रां) सहाय उदस्थात्, इदानीं अरमतिः सविता देवः यः ऋतून् वि अदर्धः सः आ अगात् च ।

५ पुर्यः प्रभव. अग्नेः शोकः (न केवलं) नाना ओकांसि किंतु विश्वम् आयुः वि तिष्ठते । (अतः) अस्य केतुम् अनु सवित्रा सुषितम् ओष्ठम् भागं माता सुनवे आ आधात् ।

जयप्राप्तिके लिये जो उत्सुक है ऐसा वीर रणमैदानपर कितनाहि दूर क्यों न गया हो तोभी लोटके आता है। इतनाही नही किन्तु सब दिन इधर उधर परिभ्रमण करनेवाले प्राणियोंका ध्यान घरपर लग जाता है। तमाम लोग अपना पुरा न हुवा काम वैसाही छोड़कर आराम करने लगते हैं और जगतको प्रेरणा करनेवाले ईश्वरके आज्ञेसेही यह सब होता है। ६

आकाशमें जो जलका सञ्चय आपने रक्खा है वह जलरहित और रेतीले प्रदेशमें निवास करनेवाले प्राणियोंको प्राप्त होता है। जङ्गलके सब वृक्षोंकोभी आपने पक्षियोंके रहनेके लिये अर्पण किये हैं। तात्पर्य, सर्वप्रेरक और तेजस्वी सविताकी आज्ञा कोई भङ्ग नहीं कर सकता। ७

प्रवासके लिये सबसे सुभीताका स्थान समुद्र है। उस समुद्रको और आकाशको यह सविता एक क्षणमें, सूर्यका अस्त होतेही, वरुणका रूप लेकर व्याप्त करता है। सब पक्षी उस समय अपने २ को रोंमे घुसते हैं और सब पशु अपने २ आश्रा. सके स्थानमें जा बैठते हैं। तात्पर्य, जगत्प्रेरक सविताजीने सबको विश्राम लेनेका स्थल निश्चित कर दिया है। ८

इसके कार्यका नाश जो इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, और रुद्रभी नही कर सकता तो अधर्मी और दुष्ट लोग उसको क्या करेंगे? इसी कारण मैं जगत्प्रेरक और तेजस्वी सविताको नमन और उसका स्तवन करके सबके कल्याणके लिये उसको बुलाता हूं। ९

---

६ विम्यिन जिगीषु. समावर्वात, विश्रेषा चरता कामः असा अभूत्। शश्वान् लोक. विकृत अप. हित्वी आ अगात्, परं सर्वम् एतत् सवितु. देव्यस्य व्रतम अनु।

७ अप्यं भागं त्वया अप्सु हितं धन्वा अनु मृगयसः आ वि तस्थुः। त्वम् वनानि विभ्यः (अददः), अस्य सवितुः देवस्य तानि व्रतानि नकिः मिनन्ति।

८ (सः) वरुणः यात् राध्यं अप्यं योनिम् निमिषि अनिशितं जर्भुराणः (अभवत्)। विश्वः मार्तण्डः पशुश्च व्रजं आ गात्, सविता जन्मानि स्थशः वि आ अकः।

९ यस्य व्रतं (अस्य कृपात्मकः) इंद्रः न, वरुणः न, मित्रः न, अर्यमा रुद्रः वा न मिनन्ति। अरातयोपि नेति (किमु वक्तव्यम्), तं सवितारं देवं हुवं स्वस्ति नमोभिर्हुवे।

श्रेष्ठ भाग्य, मनकी एकाग्रता और स्फूर्ति इनका लाभ अपने पराक्रमसे करानेके लिए हम अतीव उत्सुक हैं। अतः सब लोगोंके स्तुतिको पात्र और दिव्य शक्तिके स्वामी सविता हमारे ऊपर कृपादृष्टि रखें। यद्यपि हमको उत्कृष्ट धनका लाभ हो या ऐश्वर्यका उपभोग मिले तोभी हम इतनाही चाहते हैं कि इस जगत्प्रेरक देवके हम प्रिय भक्त बन जायँ। १०

हे देव, आपने हमारे ऊपर किया हुवा प्रसाद हमको आकाशसे, उदकसे और पृथिवीसेभी प्राप्त हो। हे विश्वको प्रेरणा करनेवाले देव, उससे जगत्का केवल हितही होता है। आपकी हमेश स्तुति करनेवाले कवि-भक्तोंकोभी उससे एक प्रेमल मित्रकी प्राप्ति होती है। ११ (३)

सूक्त ३९

॥ ऋषि—गृत्समद। देवता—अश्विदेव॥

जैसा दो सोमपाषाणोंका ध्वनि [सोमरसको निचोडना] इसी एक उद्देशसे होता है उसी प्रकार आप दोनों एकही भक्तकी प्रशंसा करते हैं। गधिकी समान क्षुधासे पीडित पक्षी जैसे फलोंसे भरे हुवे झाडकी ओर दौडते हैं उसी प्रकार आपभी प्रेमसे भरे हुवे भक्तकी ओर बहुत त्वरासे दौडते हैं। देवताओंका स्तवन करनेवाले ब्रह्मा नामक ऋत्विज जैसे दो रहते हैं उसी प्रकार आपभी दो हैं। लोगोंके हितकी इच्छा करनेवाले मध्यस्थ जैसे दो होते हैं वैसे आपभी दोंही हैं। १

युद्धकुशल वीरके समान आप रणशूर हैं। आप भक्तकी ओर बडी प्रभात जाते हैं। आप जन्मरहित हैं और आप अपने इच्छासेही चलते हैं। जैसी सुन्दर युवतियाँ अलङ्कारोंको धारण करनेसे और भी सुन्दर दिखती हैं उस प्रकार आपकी मधुर वाणी सुन्दर है। यह सबको विदित है कि जैसी कोई स्त्रीपुरुषोंकी जोडी ईश्वरकी उपासनामें प्रवीण रहती है वैसा आप दोनोंकोभी ईश्वरके कर्तृत्वका गुह्य ज्ञान है। २

---

१० वयं भगं धियं पुरन्धिं न वाजयन्तः, तत् नराशंसः ग्नास्पतिः नः अव्याः। वामस्य आये, रयीणां संगथेऽपि सवितुर्देवस्य प्रियाः (भक्ताः) स्याम।

११ हे सवितः यत् स्तोतृभ्यः शर्म, उरुशंसाय जरित्रे आपये भवाति तद् त्वया दत्तम् काम्यम् राधः, असभ्यम् दिवः अद्भयः पृथिव्याश्च आ गात्।

१ युवां ग्रावणेव तदिदर्थं (भक्तम्) जरेथे, गध्रेव (अशमयार्दितौ पक्षिणौ) वृक्षं (उप इयेथे तथा युवां) निधिमन्तं अच्छ आ पततः। विदथे उक्थशासा ब्रह्माणेव अथवा जन्या दूतेव स्तः, पुरुत्रा हव्या (भवथा)।

२ रथ्या वीरेव प्रातर्यावाना, आजा इव (युवां) यमा वरम् आसचेथे। तन्वा शुंभमाने मेने इव युवां शुभमाने भवथः, दंपतीव युवा क्रतुविदेति जनेषु (प्रसिद्धौ)।

सींगोंकी तरह आप पहले हमारी ओर (अपनी दृष्टि रखकर) आइये । खुरोंके समान वेगसे दौडते २ आप हमारी ओर आइये । हे तेजस्वी आश्विनों, हे पराक्रमी देव, चक्रवाक पक्षीओंकी तरह या दो पराक्रमी पुरुषोंके समान आप हरदिन प्रभातसमय हमारी ओर आइये । ३

जैसी नाव लोगोंको किनारेके पास ले जाता है उस प्रकार आप हमको दुःखोंके पार ले आइये । जिसका दोनों तरफका जोखड, दोनों तरफका चाक और दोनों तरफका दूसराभी सामान अच्छा है ऐसे रथके समान हमको सङ्कटोंके पार ले आइये । आपकी हानि होनेका कभी सम्भव नही है। इस लिये आप जागृत रहकर हमानी कुत्तेके समान हमको बचाइये । कवचकी तरह सब प्रकारकी दुर्बलतासे हमारी रक्षा कीजिये। ४

वायुके समान आपको कभी क्षीणता नही आती । नदीओंके समान आपका गमन शीघ्र है और जिनकी शक्ति क्षीण हुई नही ऐसे आंखोंके समान आपकी जोडी अभंग है। इस लिये हमारी ओर आइये । जैसे शरीरके हाथ पांव अवश्य हैं उस प्रकार आपभी हमको बहोत सुख देनेवाले हैं । अतः इच्छा करनेके लायक धनकी ओर हमको ले आइये । ५ (५)

जैसे हमारे होंट हमारे लिये मधुर बात करते हैं उस प्रकार आप भी हमारे साथ मीठी बात कीजिये । जननीके दो स्तनोंके समान हमको दुग्ध पिलाइये, इस उद्देशसे कि हम अपना आयुष्य आनन्दमें ले जायें । शरीरमें जैसा नाक मुख्य है वैसे हमारी रक्षा करनेमें आप प्रधान हैं । इस लिये जैसे हमारे कान हमारा शब्द तत्परतासे सुनेंगे वैसे आपभी हमारा शब्द अच्छी तरह सुनिये । ६

---

३ (अश्विनौ) शृंगेव प्रथमा नः अर्वाक् आ गन्तम्, शफाविव तरोभिः जर्भुराणा आगतं । हे उस्रा हे शक्रा, चक्रवाकाविव, अथवा रथ्याविव प्रतिवस्तोः अर्वाञ्चा यातम् ।

४ नावेव नः पारयतं, (अश्वस्य रथस्य) युगेव, नभ्येव, उपधीव, प्रधीव नः पारयतम् । अरिषण्या युवा श्वानेव नः तनूनां पातम्, कृकलेव अस्मान् विस्रसः पातम ।

५ युवां वातेव अजुर्या, नद्येव रीतिः, चक्षुषा अक्षी इव अर्वाक् आ यातम् । हस्ताविव तन्वे शंभविष्ठा युवां पदेव नः वस्वः अच्छ नयतम् ।

६ ओष्ठाविव मधु वदन्ता (भवतः) स्तनाविव जीवसे नः पिप्यतम् । नासेव नः तन्वः रक्षितारा (भवतः), कर्णाविव च अस्मे सुश्रुता भूतम् ।

हमको ऐसा उत्कृष्ट सामर्थ्य दीजिये कि जाणों आपही हमारे हाथ हैं। सूखे घासके समान हमारे पातकोंका नाश कीजिये। हे अश्विदेवो, हमारी स्तुति आपमें रममाण हो गई है इस लिये जैसे पत्थरपर छुरीको धार लगाते हैं उस प्रकार हमारे स्तुतिको तीक्ष्णता देके उसको उत्कृष्ट बनाइये। ७

हे अश्विदेवो, हम गृत्समद ऋषिओंने आपका महिमा बढानेवाली और आपको अतीव आनन्द देनेवाली स्तुति की है। इस लिये, हे वीरो, आप प्रसन्न होके यहां आइये और हमारे मित्रगणसमेत यज्ञसभामें आपके यशाका वर्णन करने दीजिये। ८ (५)

सूक्त ४०

॥ ऋषि-गृत्समद । देवता-सोमापूषण ॥

हे सोम, सृष्टिके पोषण करनेवाले हे देव, आप दिव्य सम्पत्तिके, आकाशके और इस भूमिकेभी पिता है। सर्व भुवनोंकी रक्षा करनेवाले आप अचानक प्रकट हुवे। सब देवताओंने ऐसी गवाही दी है कि अमर्त्यपनका प्रधान—तत्त्व आपही हैं। १

ये दोनों देव प्रकट होतेंही सब देवताओंको आनन्द प्राप्त हुवा। क्यों कि सर्व लोगोंको अप्रिय होनेवाले अन्धकारका उन्होंने नाश किया। सोम और पूषा इन दोन देवोंके लिये, यद्यपि धेनुओंकी वाढ पूर्ण नही हुई थी तोभी इन्द्रने उनके शरीरमें सफेद और मधुर दूध निर्माण किया। २

---

७ नः हस्तेव न शक्तिम् अभि संददी (भवतः). क्षामेव नः रजांसि समजतम्। हे अश्विना, इमाः गिरः युष्मयन्तीः क्ष्मात्रेण स्वधितिम् इव सम शिशितम्।

८ हे अश्विना यानि एतानि वां वर्धनानि, ब्रह्म (वा) स्तोमं वा गृत्समदासः अक्रन्। हे नरा तानि जुजुषाणा यात (येन) सुवीराः वयं विदथे बृहत् वदेम्।

१ हे सोमा पूषणा, युवां रयीणां जनना, दिवो जनना, पृथिव्याश्च जनना (भवथः)। युवां जातौ एव विश्वस्य भुवनस्य गोपौ, देवा अपि युवां अमृतस्य नाभिम् अकृण्वन्।

२ इमौ देवौ जायमानौ (दृष्ट्वा देवाः) जुषन्त, यतः इमौ अजुष्टा तमांसि गूहतां। आभ्यां सोमपूषभ्यां, इंद्रः आमास्वपि उस्रियासु अन्तः पक्वं (प्रकाश दुग्धं) जनत्।

हे सोम, (विश्वका) पोषण करनेवाले हे देव, रजोलोक बहुतही बड़ा है किन्तु आपका रथ उसकाभी नाप ले सकेगा । आपके रथको सात चाक हैं। अखिल विश्वकोभी आपके रथका ज्ञान नही होता । चाहे वहां वह जा सकता है और केवल संकल्पसे वह जोड़ा जाता है । हे वीरश्रेष्ठ देवो, किरणरूप पांच लगाम लगाके आप अपने रथको दौड़ने दीजिये । ३

आप दोनोंमेंसे एकका निवास सबसे ऊँचे आकाशमें है और दूसरा पृथिवी और आकाश इनके बीचमें रहता है । ये दो देव हमको ऐश्वर्यका ऐसा उत्कर्ष दें कि जिसको सब लोग चाहते हैं और जिसमें सब सामर्थ्य एकट्ठा होता है । वे हमारे कुलमें श्रेष्ठ सन्ततिकोभी निर्माण करे । ४

आपसे एकने सब भुवनोंको निर्माण किया और दूसरा अखिल विश्वोंको देखता २ परिभ्रमण करता है । इस लिये, हे सोम, हे पूषा हमारी पूजाकी ओर कृपादृष्टि फेंकिये क्यों कि आपके कृपासे हम अपने (शत्रुओंके) सेनाका पराभव कर सकें । ५

सब भुवनोंमें सञ्चार करनेवाला यह सर्वपोषक पूषा हमको एकाग्र ध्यानकी प्रेरणा करें और दिव्य धनका स्वामी सोम हमको श्रेष्ठ ऐश्वर्य दें । सर्वाङ्गसे परिपूर्ण रहनेवाली दिव्य चिच्छक्ति हमारी रक्षा करें और यज्ञसभामें हमारे शूर मित्रोंके समेत हमारे मुंहसे देवोंका यश-वर्णन चलावें । ६

---

३ हे सोमापूषणा, हे वृषणा, युवयोः, रजसः विमानं, सप्तचक्रं, अविश्वमिन्वं, विषुवृतं, मनसा युज्यमानं तं पञ्चरश्मिं, रथं जिन्वथः ।

४ युवयोः अन्यः उच्चा दिवि सदनं चक्रे, अन्यः पृथिव्यां अंतरिक्षे च अधि (चक्रे) । तौ युवां अस्मभ्यं पुरुवारं पुरुक्षुं रायस्पोषं (धत्तां), अस्मे नाभिं च विष्यतां ।

५ युवयोः अन्यः विश्वानि भुवनानि जजान, अन्यः विश्वं अभिचक्षाणः एति । हे सोमापूषणौ मे धियं अवतं येन युवभ्यां विश्वाः पृतना जयेम ।

६ विश्वमिन्वः पूषा धियं जिन्वतु, रयिपतिः सोमः रयिं दधातु । अनर्वा अदितिः देवी अवतु, येन सुवीराः वयं बृहत् वदेम ।

सूक्त ३८.

॥ ऋषि—गृत्समद । देवता—वायु ॥

हे वायुदेव, आपके पास वेगसे दौडनवाले जो हजारों रथ हैं उनको नियुत् नामक घोडे जोतकर सोमरसकी रुचि लेनेके लिये हमारी ओर आइये । १

हे वायुदेव, अपने नियुत् नामक घोडे रथको जोतकर आइये । देखिये, यह सोम-रस आपको अर्पण किया है । सोमरस अर्पण करनेवाले भक्तके घरको आप जातेही हैं ।२

इस सफेद और तेजस्वी सोमरसमें दही मिला दिया है । इस लिये, हे इन्द्र, हे वायु, हे वीरोंके नायक, अपने नियुत् नामक घोडे जोतकर (यहां) आइये और इस सोमरसको चखिये । ३

हे मित्रावरुणो, (सनातन) धर्मकी रक्षा करनेवाले हे देवो, आपके लिये यह सोमरस छाना रखा है । अतः आप हमारी प्रार्थना सुनिये । ४

ये सब देवताओंके अधिपति हैं, किन्तु इनके मनको द्वेष, मत्सर इत्यादि विकारोंका कभी स्पर्शभी नही होता । इनका मन्दिर अचल, ऊंचा और अगणित खम्भोंसे सजा हुवा है और ये उसमें रहते हैं । ५ (७)

---

१ हे वायो ये ते सहस्रिणःरथासः तेभिः नियुत्वान् सोमपीतये आ गहि ।

२ हे वायो त्वं नियुत्वान् आ गहि, अयं ते शुक्रः रसः अयामि । यतः त्वम् सुन्वतो गृहं गन्तासि एव ।

३ हे इंद्रवायु, हे नरा, युवा नियुत्वत. (नियुज्य) आयातम् , शुक्रस्य गवाशिरः सोमस्यं चाद्य पिबतम् ।

४ हे मित्रावरुणा. हे ऋता वृधा, अयं सोमः वां (अर्थे) सुतः, तदिह ममेत् हवं श्रुतम् ।

५, तौ राजानौ अनभिद्रुहा, ध्रुवे उत्तमे सहस्रस्थूणे सदसि आसाते ।

यद्यपि ये सब विश्वके अधिपति हैं तोभी ये आहुतियोंका प्रेमसे स्वीकार करते हैं। समस्त उदार लोगोंमें ये आदित्य श्रेष्ठ हैं; और जिसका मन निर्मल है ऐसे भक्तके पास ये हमेश रहते हैं। ६

हे सत्यस्वरूप अश्विनो, अपने प्रकाशयुक्त और सर्वव्यापी सामर्थ्योंके साथ जल्दीसे यहां आइये। हे रुद्रो, यह हमारा यज्ञगृह आपकी रक्षाके सर्वथा योग्य है। ७

पराक्रम और धनके स्वामी हे अश्विनो, बाहरसे या अन्दरसे वैर करनेवाले दुष्ट मानवभी जिसको छिन नहीं सकेंगे। ८

और ध्यानसे दर्शन देनेवाले हे अश्विदेवो, जो बहुतसे उत्कृष्ट सौख्यकी प्राप्ति कराता है और जिसको उपमा नहीं है ऐसे सौन्दर्यका तेज जिसमें अच्छी तरहासे दिखाई देता है ऐसा वैभव हमारे लिये ले आइये। ९

कोई सङ्कट कितनाही भयंकर और हिम्मत घटानेवाला क्यों नहो इन्द्र उसका नाश करताही है। क्यों कि वही सबको देखनेवाला, हरकहीं सञ्चार करनेवाला और अचल है। १० (८)

---

६ ता सम्राजा घृतासुता, (ता) दानुनस्पता आदित्या अनवह्वरम् एव (भक्त) सचेथे।

७ हे नासत्या अश्विना, गोमत् अश्ववत् सु यातम्, हे रुद्रा नः वर्तिः नृपाय्यमेव।

८ हे वृषण्वसू यत् न परः नापि अन्तरः दुर्शंसः मर्त्यः रिपुः आदधर्षत।

९ हे धिष्ण्य अश्विना ता युवां तत् पिशंगसंदृशम् वरिवोविदम् रयिं न आ वोळ्हम्।

१० इन्द्रः अंग महदपि सत् भयम् अप चुच्यवत्, यतः स हि स्थिरः विचर्षणिः च।

यह इन्द्र हमारे ऊपर प्रेम करें। क्यों कि इसके कृपासे हमको पातक नही छुएंगा और आगेभी हमारा सर्वथा हित होगा। ११

इन्द्र हमको हरेक तरह निर्भय करें। यही सर्वसाक्षी देव शत्रुओंका पराभव करनेवाला है। १२

हे सर्व देवो, यहां आइये, हमारी बात सुनिये और इस कुशासनपर बिराजमान हूजिये। १३

हे सर्व देवो, तीव्र, तथापि मधुर, तथा आनन्द देनेवाले और सबके प्यारे सोम-रसका शुनहोत्रोंके यज्ञमण्डपमें प्राशन कीजिये। १४

हे सर्व देवो, आपमें इन्द्र श्रेष्ठ है। आपमें पूषा बहुत उदार है। आपमें मरुद्गणही हैं। आप हमारी बात सुनिये। १५

हे श्रेष्ठ माता, हे श्रेष्ठ नदी, हे श्रेष्ठ देवि सरस्वती, हमारी बहुत अकीर्ति हो गई है। इस लिये हमारी विख्याति कीजिये। १६

---

११ इन्द्रश्च नः मृळयाति, (तेन) अघं पश्चात् नः न नशत् अपरं च पुरः भद्रं भवाति (एव) नः।

१२ इन्द्रः सर्वाभ्यः आशाभ्यः परि अस्माकं अभयं करत्, स हि शत्रून् जेता विचर्षणिः च।

१३ हे विश्वेदेवासः आगत, मे इमं हवं शृणुत। इदम् बर्हिः आ निषीदत।

१४ अयं सोम तीव्रोऽपि मधुमान मत्सरश्च, एतं काम्यं (अन्धः) अस्मासु शुनहोत्रेषु (प्रसन्नां युयं) पिबत।

१५ हे इन्द्रज्येष्ठा, मरुद्गणाः, पूषरातयः विश्वे देवासः मे हवम् श्रुत।

१६ हे अम्बितमे, नदितमे, देवितमे, सरस्वति, अप्रशस्ताः इव स्मसि, हे अम्ब नः प्रशस्तिम् कृधि।

हे **सरस्वती**, हमारा सबका आयुष्य आपके हाथमें है । इस लिये हमारे—शुनहोत्रोंके—घरको आकर आप प्रसन्न हूजिये और हमको सन्तति और सेवकोंका लाभ कराइये । १७

हे सात्विक सामर्थ्य धारण करनेवाली और सत्यधर्मकी रक्षा करनेवाली **सरस्वती**, देवोंको प्रिय होनेवाले और हमने दिलसे गायन किये हुवे स्तोत्र आपको गृत्समदोंने अर्पण किये है । इनका स्वीकार कर आप प्रसन्न हूजिये । १८

[आप और अग्नि ये] दोनों यज्ञका उत्कर्ष करनेवाले हैं, इस लिये आप दोनों यहां आ जायँ ऐसी हम हवि पहुँचानेवाले अग्निके पास प्रार्थना करते हैं । १९

हमारे हेतुकी सिद्धि करानेवाले और स्वर्गको जा पहुँचानेवाले इस यज्ञको **द्यावापृथिवी** देवोंको अर्पण करे । २०

जिनके चित्तमें द्वेष इत्यादि विकारोंका कभी वास्तव्यभी नहीं होता ऐसे ये सबको पूज्य देव सोमरसका प्राशन करनेके लिये आपके निकट आ बैठें। २१(१०)

---

१७ हे सरस्वति, विश्वा आयूंषि त्वे (एव) श्रिता, (अतः) हे देवि शुनहोत्रेषु मत्स्व, प्रजाम् च नः दिदिड्ढि ।

१८ हे वाजिनीवति, ऋतावरि, सरस्वति, गृत्समदाः या इमा देवेषु प्रिया ब्रह्म मन्म च ते जुह्वति (ता ब्रह्माणि) जुषस्व ।

१९ यज्ञस्य शंभुवा युवाम् प्र इताम् युवाम् हव्यवाहनम् अग्निं च इत् आवृणीमहे ।

२० द्यावा पृथिवी इमं सिध्रम् दिविस्पृशम् यज्ञम देवेषु यच्छताम ।

२१ हे अद्रुहा, हे यज्ञिया देवाः अद्य सोमपीतये, वांम उपस्थं आ सीदन्तु ।

सूक्त ४२.

॥ ऋषि—गृत्समद । देवता—कपिंजल ॥

जैसा मल्लाह सन्देह छोडकर नौका चलाता है उस प्रकार यह कपिञ्जल नामक पक्षी अपना मधुर अवाज बारबार सुनानेसे अपने श्रेष्ठपनको बतलाने लियेहि अपना मीठा शद्व खुले दिलसे निकालता है। हे श्रेष्ठ पक्षी, तु हमको मंगल शकुन कर। अन्दरसे या बाहरसे तुझपर कभी हमला न होगा। २२

गीध या गरुड तेरा घात न करे। धनुष बाण हाथमें लेनेवाले शिकारीसेभी तेरेको जखम न हो। पितरोंके दिशाकी ओर बार बार शद्व कर तु हमको मंगल और हितप्रद ऐसी बात सुनाव। २

हे कपिञ्जल, तु मंगल और हितप्रद बात सुनानेवाला है। इस लिये घरके सीधे बाजूमे तु अपना शद्व कर। चोर और घात करनेवाले पातकीयोंकी प्रभुता हमारे ऊपर कभी न हो और ऐसा हो कि शूर वीरोंके साथ, यज्ञसभामें हम देवोंका गुणवर्णन करें। ३ (११)

---

१ (अयं कपिंजलः) कनिक्रदत् स्वं जनुषं प्रब्रुवाणः अरितेव नावं, वाचंम इयर्ति। हे शकुने, सुमंगलश्च भवासि, काचित् विश्वया अभिभा त्वा मा विदत्।

२ श्येनः त्वा मा उत् वधीत् मा सुपर्णः वीरः अस्ता इषुमान् च त्वा मा विदत्। पित्र्यां प्रदिशम् अनु कनि क्रदत् त्वम् सुमंगलः भद्रवादी इय वद।

३ हे शकुन्ते, त्वं (भक्तानां) गृहाणां दक्षिणतः सुमंगलः भद्रवादी अव क्रन्द। स्तेनः नः मा ईशत अघशंसोपि मा, येन सुवीराः वयं विदथे बृहत वदेम।

सूक्त ४३

॥ ऋषि--गृत्समद । देवता--कपिंजल ॥

ये कपिञ्जल पक्षी कवि हैं। ये जाणों तरुणाईका उमदा गाना गाते २ दक्षिण दिशाकी ओर सुस्वर गायन करते हैं। सामगायनमे प्रवीण गवैयाके तरह ये दोनों प्रकारके ध्वनि निकालते हैं। गायत्र और त्रैष्टुभ ऐसे दोनों प्रकारके मधुर रागमें ये गाते हैं। १

हे कपिञ्जल, सामगायनमें प्रवीण उद्गाताकी नाईं तु सामगायन करता है। ब्रह्मपुत्र नामक ऋत्विजोंके समान तु यज्ञकालमें (देवोंके) गुणोंका वर्णन करता है। जैसा कोई पराक्रमी पुरुष साहसका काम करता है उस विधि तु बच्चा होनेसेभी हमारे लिये सर्वत्र मंगल शद्ब कर। हे पक्षी, तु सर्वत्र शुभ और मंगल गायन कर। २

हे पक्षी, बोलते समय तु मंगल शद्ब कर, चुप बैठनेके समय हमारे कल्याणका चिन्तन कर, ऊडते समय कर्करी नामक वादनयन्त्रके तुल्य मञ्जुल ध्वनि कर और हमेशा ऐसी प्रार्थना कर कि हम अपने शुर मित्रोंके साथ यज्ञसभामें [देवोंके] यशका वर्णन करते रहें। ३ (१२) (४) (२)

---

१ शकुन्तयः एव कारवः ऋतुथा वयः वदन्तः, प्रदक्षिणित अभि गृणन्ति। (अयं) सामगा इव उभौ वाचौ वदति, गायत्रं त्रैष्टुभं च अनु राजति।

२ हे शकुने त्वं उद्गातेव साम गायसि, ब्रह्मपुत्रः इव सवनेषु शंससि। शिशुमती अपीत्य अपि त्वं वृषा वाजीव सर्वतः नः भद्रं आ वद, हे शकुने विश्वतः नः पुण्यं आ वद।

३ हे शकुने त्वं आवदन् (नः) भद्रं आ वद तूष्णीम् आसीनः नः सुमतिं चिकिद्धि। यत् उत्पतन् वदसि यथा कर्करिः (तथा मंजु वद आशंसस्व यत) सुवीराः वयं विदथे बृहत् वदेम।

॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः। द्वितीयं मंडलं समाप्तं ॥

ॐ

द्वितीय मण्डल.

प्रथम अनुवाक १.

सूक्त १.

॥ ऋषि-विश्वामित्र । देवता-अग्नि ॥

हे अग्नि, इस यज्ञमन्दिरमें यज्ञ करनेके लिये आपने मुझको पुरोहित बनाया है। अतः मुझको सोमयज्ञ करनेकी शक्ति दीजिये। आपका प्रकाश देवलोकतक जा पहुँचा है और मैंभी सोमरस तैयार करनेवाले पत्थरोंको एकट्ठे किये है। इस लिये, हे अग्नि, आप अब प्रसन्न हूजिये। १

हमने लगभग इस यज्ञको पूर्ण किया है। अतः स्तोत्रोंका गान दिलसे चलने दीजिये। (ऋत्विजोंनेभी) अग्निको वन्दन कर और उसको समिधा अर्पण कर उसका पूजन किया है। पूजनकी यह रीति (देवोंने) स्वर्गलोकसे आकर ऋषियोंको सिखलाई है। और भक्तोंको ज्ञान और सामर्थ्य मिले इस हेतुसे उन्होंने यज्ञमार्गका उत्कर्ष किया है। २

अग्नि बहुत ज्ञानवान है और सब पवित्र कार्योंका उसका आधार रहता है। स्वर्ग और पृथिवी जबसे निर्माण हुई उस दिनसे उनकी रक्षा करनेवाला यही है। सबका हित उसके हाथमें है। जब यह सुन्दर अग्नि दिव्य उदकोंमे अपने बहिनोंके-अर्थात् नदीयोंके-कार्यमे निमग्न था उस समय उसको देवोंने वश किया। ३

---

१ हे अग्ने, (यद् त्वम्) विदथे यजध्यै (मां) वन्हिम् चकर्थ (तद्) सोमस्य तवसं मां वक्षि। (तेजः ते) देवान् अच्छा दीद्यत्, अद्रिं युञ्जे, तत्वं शमाये, (तद्) हे अग्न जुषस्व।

२ यज्ञं प्राचम् चकृम, (तद्) गीः वर्धताम, (ऋत्विजोऽपि) अग्निम् समिद्भिः नमसा च दुवस्यन्। (सर्वमेतद् देवाः) दिवः कवीनां विदथा शशासुः (तथा च) गृत्साय तवसे चित् गातुम् ईषुः।

३ मेधिरः पूतदक्षः, दिवः पृथिव्याश्च जनुषा सुबन्धुः (एतादृशः) अग्निः मयः दधे। (तमेतम्) दर्शतम् अग्निम् अप्सु अन्तः स्वसॄणां अपसि (वर्तमानं) देवाः अविन्दन्।

महाभाग, तथा वर्णसे शुभ्र किन्तु अपना श्रेष्ठ कार्य करनेके समय लाल रंग धारण करनेवाला यह अग्नि प्रकट होतेही उसकी सात नदीयोंने पालना की । थोड़े दिनके बच्चेको जैसे सब लोग प्रेमसे देखनेको चाहते हैं उसी प्रकार अग्निको देखनेके लिये सब देव दौड़े और उसका रूप देखकर वे अचम्भा करने लगे । ४

वह अपने शुभ्र तेजसे आकाशको व्याप्त करता है और अपने दिव्य ज्ञानस्फूर्तिसे भक्तोंकी उपासनाको पावन करता है । प्रकाशरूपी कपड़ा पहिननेवाला और सब विश्वको आयुष्य अर्पण करनेवाला यह अग्नि भक्तको अपनी विस्तीर्ण और उत्कृष्ट सुन्दरताको दिखलाता है । ५

सब नदीयों आकाशकी कन्या है । वे कभी खाती नहीं । किन्तु उनको कोई हरा नहीं सकता । वे कभी कपड़ा पहिनती नहीं । तो भी वे नंगी नहीं रहती । बहुत पुरानी हानेसे भी वे तरुण दिखती हैं । जब अग्निने उन्होंमें प्रवेश किया उस समय एक जगह जन्म लेनेवाली सात नदीयोंने एकही गर्भको धारण किया । ६

जहांसे दिव्य उदकोंकी घीके तुल्य वृष्टि होती है और मधुर जलकी धारा जहांसे बहती है उस जगहतक—अर्थात् स्वर्गतक—भी अग्निके एकट्ठे हुवे भिन्न भिन्न रंगके किरणोंका समूह जा पहुंचा है । जिनके स्तन अमृतसे भरे हुए हैं ऐसी दिव्य धेनु वहां रहती हैं । अद्भुत कर्म करनेवाले इस अग्निके मातापिताभी उधर वास करते हैं । ७

सामर्थ्यसे जन्म लेनेवाले हे अग्निदेव जब आपकी पालना हो रही थी उस समय आप शुभ्र, अद्भुत और भयानक तेज धारण करके प्रकाशने लगे । भक्तोंके स्फूर्तियुक्त काव्यमें जिस २ जगह यह श्रेष्ठ वीर प्रकट होता है वहां २ घीके तुल्य तेजस्वी और अमृतके समान मधुर ऐसे जलकी वृष्टि होती है । ८

---

४ तम् सुभगं, (आर्द्रा) श्वेतमं (परं च) महित्वा अरुषं जज्ञानम् तम् सप्त यह्वीः अवर्धयन् । अश्वाः देवासः जातं शिशुं न अग्निम अभ्यारुः (परं च ते) अग्निम् जनिमन् वपुष्यन् ।

५ शुक्रेभिः अंगैः रजः आततन्वान् , पाविक्रैः कविभिः क्रतुं पुनानः, शोचिर्वसानः, (सर्वेषाम्) आयुः च सः अग्निः स्वस्य अपां बृहतीः अनूनाः श्रियः परि मिमीते ।

६ अनदतीः अपि अदब्धाः, अवसानाः अपि अनग्नाः दिवः यह्वीः वव्राज । अत्र सयोनीः युवतयः सप्त वाणीः एकं गर्भं दधिरे ।

७ अस्य विश्वरूपाः संहताः, घृतस्य योनौ मधूनां स्रवथे स्तीर्णाः । अत्र (दिव्याः) पिन्वमानाः धेनवः. दस्मस्य (अग्नेः) समीची मही मातरा च अस्थुः ।

हे सहसः सूनो बभ्राणः त्वमं शुक्रा रभसा वपूंषि दधानः वि अश्वैत् । वृषा सः यत्र काव्येन वावृधे तत्र घृतस्य मधुनः च धामः चरतांति ।

द्यू मनुष्योंका पिता है। उसकी छाति मेघोंसे ढांपी गई थी। अग्निदेवने प्रकट होतेही उसका पता लगाया और पानीकी बड़ी वृष्टि करके आकाशवाणीको—अर्थात् मेघगर्जनाको—भूलोकपर भेजा। जब अग्नि विश्वके हित करनेवाले अपने मित्रोंके साथ छिपके सञ्चार करता है उस समय वह किसीको मिलता नही। किन्तु जब वह स्वर्ग-लोकके बड़ी नदीयोंके सङ्ग क्रीडा करता है वह गुप्त नहीं रहता। १०

जगत्‌की रक्षा करनेवाले और उसको निर्माण करनेवाले ईश्वरके सृष्टिरूपी गर्भकी अग्निनेही पालना की। यद्यपि ईश्वरकी शक्तियाँ अगणित हैं अकेला अग्नि उनके बड़े स्तनोंमें रहनेवाला दूध पीता है। हे अग्निदेव सपत्नी होनेसेभी ये जो दो बहिनों प्रेमसे रहती हैं उनकी हमारे शूर और सद्गुणी यजमानके लिये रक्षा कीजिये। ११

जिसको सीमा नही है और जिसको दूसरे कोईका आधार नही लगता ऐसे आकाशमें अग्नि बचपनसे रहा। कीर्तिसे भूषित और अपार अपोदेवीयोंने उसकी पालना की अतएव इन बहिनोंके और कुटुम्बियोंके पालनेमें—अर्थात् सत्यधर्मके उत्पत्तिके स्थानमें—यह शान्त चित्तवाला अग्नि सो रहा।

जब बड़ी बड़ी सेना परस्परसे झगडती है यह तेजकी वृष्टि करनेवाला और अतीव सुन्दर अग्नि कोई भयङ्कर वीरके तरह (भक्तोंको) सहाय्य देता है। अपोदेवी-योंके उदरमें अग्नि बीजरूपसे रहता है। वही श्रेष्ठ वीर—सदैव सञ्चार करनेवाला वही देव—जगत्‌का पिता है। प्रभातसमयका तेजस्वी प्रकाश उसने निर्माण किया। १२

इस नानाविध रूपोंको धारण करनेवाले और अपोदेवीके उदरमें सूक्ष्म रूपसे रहनेवाले अग्निको वनस्पतीयोंमें बहुत सुन्दर अरणिने जन्म दिया। अग्नि प्रकट होतेही सब देव भक्तिसे उसके पास गये और उन्होंने स्तुतिको सर्वथा योग्य और पराक्रमी अग्निकी उपासना की। १३

---

९ पितुः चित (मध्यस्थानं) ऊधः जनुषा विवेद, अस्य च धाराः वि असृजत्, धनाश्च वि असृजत्,। (यदि) शिवाभिः सखिभिः गुहा चरन्तम (कोऽपि न विवेद, परं) देवः यह्वीभिः चरति गुहा न बभूव।

१० (अयम) जगत पितु जनितुश्च (विश्वात्मकं) गर्भं बभ्रे. एकोऽपि सन पीप्याना. पूर्वी. (शक्ती.) अधयन्। हे अग्ने अस्मै वृष्णे शुचये (यजमानाय, अस्य) सुबन्धू मनुष्ये सपत्नी नि पाहि।

११ उरौ अनिबाधे (आकाशे) महान् सः ववर्ध. तम अग्निम यशसः पूर्वीः आपः (अपि) सं वर्धयामासुः। जामीनाम् स्वसृणां अर्यासि (नाम) ऋतस्य योनौ (अयं) दमूनाः अग्निः अशयत्।

१२ महीनां समिथे (अयम) दिदृक्षेयः भार्ऋजीकः अकः वाग्निः न। यः अपां गर्भः सन्नपि नृतमः यह्वः (सः) अग्निः जनिता, उस्रियाः उत् जजान।

१३ विरूपं अपां दर्शतं गर्भं अग्निम्, ओषधीनां वना सुभगा च (अरणिः) जजान। जातम् तम् देवासः चित् मनसा सं जग्मुः हि, तं पनिष्ठं तवसं दुवस्यन् च।

अपने तेजकी चारों ओर वृष्टि करनेवाले अग्निकी सेवा करनेको सब किरणोंका समुदाय तैयार हुआ। वह किरणोंका समुदाय ऐसा तेजःपुञ्ज था कि वह तेजस्वी बिजलीके समान दिखता था। असीम और अपार आकाशसे अमृतरूपी दूधका दोहन करके वह छिपके बढते २ अचानक बडे हुए अग्निकी सेवा करनेको तैयार हुआ। १४

आपके लिये यज्ञ करनेवाला मैं भक्त आपको हवि अर्पण करके आपका स्तवन करता हूं। बडी अधीरतासे मैं आपके पास आपका प्रेम और कृपा इनकोही मांगता हूं। अतः, हे देव, अपने दिव्य शक्तियोंके साथ आपकी स्तुति करनेवाले हमारे ऊपर आपकी कृपा कीजिये और अपने अनिवार्य तेजसे हमारी रक्षा कीजिये। १५

सन्मार्गको बतलानेवाले हे अग्निदेव, ऐसा कीजिये कि आपके सेवामें रहनेवाले हमको ऐश्वर्यका भाग मिले और जो केवल पराक्रमसेही हो सकता है ऐसे सत्कृत्य करनेके इल्लाससे हम आगे आकर देवोंका वैर करनेवाले शत्रुओंके सेनाका पराभव करें। १६

हे अग्नि, आप देवताओंका बडा झण्डा है। आप सदा आनन्दमें निमग्न रहते हैं। आप सदा आनन्दमें निमग्न रहते हैं और भक्तोंने किया हुआ सब काव्य आप पहलेही जानते हैं। आपका चित्त शान्त है। हमारे समान दुर्बल मानवोंको आपने रहनेके लिये पृथक् स्थान दिया है। देवोंका यज्ञ अच्छी तरह समाप्त करके रथमें विराजमान होकर आप देवोंकेही पीछे जाते हैं। १७

---

१४ भाऋजीकसं अग्निम् विद्युतः न शुक्राः वृहन्तः भानवः सचन्त इत्। (ते) ऊर्वं अपारं अमृतं दुहानाः गुहेव स्वे सदसि अन्तः (सपद्येव) वृद्धम अग्निम (सचन्त)

१५ अहं यजमानः त्वा हविर्भिः ईळे, (ते) सखित्वं सुमतिम् च निकामोऽहम्। (नः) देवैः (आगत्य) जरित्रे अवः सं मिमीहि, दम्येभिः अनीकैः च नः रक्ष।

१६ हे सुप्रणीते अग्ने (वयं) तव उपक्षितारः विश्वानि धन्या दधानाः, सुरेतसा श्रवसा तुञ्जमाना अदेवान् पृतनायून अभिष्याम।

१७ हे अग्ने त्वं देवानां केतुः आ अभवः, त्वं विश्वानि काव्यानि विद्वान् (असि)। दमूनाः त्वं मर्तान् प्रति अवासयः, रथिरः च (यज्ञ) साधन् देवान् अनु यासि।

सब मनुष्योंको अमर्त्य स्वामी यह अग्नि यज्ञसभाका कार्य समाप्त करके अपने घरमें बैठा है। जिसका वर्ण घृतके समान उज्ज्वल है और भक्तोंके काव्यका ज्ञान जिसको आगेही होता है ऐसे अग्निका तेज बहुत दूरतक फैला गया है। १८

अपने हितकारक प्रेमके साथ हमारी ओर आइये। आप बहुत बलवान हैं इस लिये अपने सबसे प्रबल सामर्थ्यके साथ दौडतेही आप हमारी ओर आइये। सब दुःखोंमेंसे बचानेवाला श्रेष्ठ वैभव हमको दीजिये और जिसकी सर्वत्र प्रशंसा हो रही है और जो सदैव विजयी होता है ऐसा भाग्य हमको अर्पण कीजिये। १९

हे अग्निदेव, आपके पुराने तथा नये अवतारोंका यह जो वर्णन मैंने किया है वह आप सनातनदेवके लीयेही है। आपको सब वस्तुओंका ज्ञान है क्यों कि हरेक प्राणीके अन्तःकरणमें हमेशाके लिये आपकी स्थापना हो चुकी है। २०

जिसको सब वस्तुओंका ज्ञान है और जिसकी स्थापना हरेक प्राणीके अन्तःकरणमें हो चुकी है ऐसे अग्निको कुशिकके कुलमें जन्म लेनेवाले ऋषियोंने प्रज्वलित करके रखा है। इस लिये ऐसा हो कि परम पूज्य ऐसे अग्निके कृपालुत्वके और मंगल सौजन्य आश्रयमें हम रहें। २१

---

१८ (अयं) मर्त्यानां अमृतो राजा विदथानि साधन दुरोणे नि षसाद। घृत प्रतीकः स विश्वानि काव्यानि विद्वान अग्निः उर्विया वि अद्यौत्।

१९ त्वं शिवेभिः सख्येभिः नः आगहि, महान त्वं महीभिः ऊतिभिः सरण्यन (आगहि)। सं तरुत्रं बहुलं रयिमं अस्मे (कृधि) सुवाचं यशसं च भागं नः कृधिः।

२० हे अग्ने एता ते सनानि जनिम नूतनानि च जनिम ते पूर्व्याय (एव) प्रवोचं। इमा महान्ति सवना ते वृष्णे कृता (यतः) जातवेदाः त्वं जन्मन् जन्मन् निहितः।

२१ जातवेदाः त्वं जन्मन जन्मन निहितः विश्वा मित्रेभिः अजस्रः इध्यते। तस्य यज्ञियस्य सुमतौ, तस्य भद्रे सौमनसेच वयं अपि स्याम।

हे पराक्रमी और ज्ञानी अग्निदेव, आप उदार मनसे हमारे यज्ञको देवोंके पास पहुँचाइये। यज्ञकी सिद्धि करनेवाले हे अग्निदेव, आप हमको बहुत उत्साह देतेही हैं इस लिये इस यज्ञसे हमको सामर्थ्यरूपी श्रेष्ठ धन अर्पण कीजिये। २२

हे अग्निदेव, ऐसा कीजिये कि धन-धान्यसे युक्त भूमि और अद्भुत कृत्योंसे युक्त ज्ञान आपका दिलमें स्मरण करनेवाले भक्तको सदैव प्राप्त हो। हे अग्निदेव, पुत्रपौत्रोंसे हमारे वंशका विस्तार करके हमारे ऊपर आपकी निरुपम कृपा रखिये। २३ (१६)

सूक्त ३.

॥ ऋषि-विश्वामित्र। देवता-अग्नि॥

यह अग्नि वैश्वानर, सर्व जगतका हित करनेवाला है। वही सत्यधर्मका उत्कर्ष करता है। इस लिये जैसे इस अग्निको आपन घीका पवित्र हवि देते हैं उसी प्रकार उसके लिये ध्यान करनेके योग्य स्तोत्रभी बनाएंगे। यन्त्र चलानेमें होशियार मनुष्य जैसा रथको जल्दीसे चलाता है उसी प्रकार [देव और मनुष्य] इन दोनोंके यज्ञकी सिद्धि करनेवाले अग्निको हमारे यजमान और ऋत्विज आतुरतासे बुलाते हैं। १

प्रकट होतेही उसने आकाश और पृथ्वीको अपने उज्ज्वल तेजसे प्रकाशित किया और सबसे "धन्य जगतके मातापितरोंके पुत्रकी" ऐसा धन्यवाद प्राप्त किया। सबको उनका २ हवि देनेवाले अग्निको बुढापेका स्पर्शभी नही होता। वह प्रेमल, अजय और भक्तोंका पाहुना है। उसके पास प्रकाशरूपी धन बहुत है। २

---

२२ हे सहमान्वन सुक्रतो, रराणः त्वं इमं नो यज्ञं देवत्रा धेहि। हे होतः, बृहतीः इषः नः यंसि, (तस्मात्) हे अग्ने महि द्रविणम् नः आ यजस्व।

२३ हे अग्ने त्वां हवमानाय इळां, गोः सनिमं च शश्वत् तमं साध। अग्ने नः तनयः सूनुश्च विजावा स्यात्, ते सा सुमतिश्च अस्मे भूतु।

१ वैश्वानराय ऋतावृधे अग्नये, पूतं घृतं न, धिषणां जनामसि कुलिशः रथं न, (तं) द्विता होतारं मनुषः वाघतः च धिया समृण्वति।

२ सः जनुषा उभे रोदसी रोचयत, मात्रोः च स ईड्यः पुत्रः अभवन्। (अयमं) हव्यवाट् अग्निः अजरः स च वनोहितः दूळभः विशां अतिथिः विभा वसुश्च।

अपने सदा यशस्वी होनेवाले चातुर्यसे तथा एकाग्र ध्यानसे देवोंने इस नानारूप विश्वमें अग्निको प्रकट किया । हमको सात्त्विक सामर्थ्यके लाभकी इच्छा है । इस लिये पराक्रमी वीरके समान इस तेजस्वी और श्रेष्ठ अग्निकी मैं स्तुति करता हूं । ३

किसीकी परवा न करनेवाला जो अग्नीका उत्कृष्ट और प्रशंसायोग्य सामर्थ्य है उसके प्राप्तिकी हम भक्तजन बड़ी इच्छा रखते हैं । इस लिये भृगुके कुलमें जन्म लेनेवाले भक्तोंका कृपालु दाता, कवियोंके स्फूर्तिका तेज और अपने अलौकिक तेजसे प्रकाशित होनेवाला जो अग्निदेव उसकी हम बहुत नम्रतासे प्रार्थना करते हैं । ४

अपने सात्त्विकतासे विख्यात हुए अग्निकी स्थापना भक्तोंने सोमरसमेंसे दर्भोंके टुकडे चूनके निकालकर [यज्ञमें] अपने सामने वेदीपर किया । हवि देनेके लिये यज्ञचमस उठाकर इस तेजस्वी अग्निकी उन्होंने सेवा की । यह सर्व देवोंका स्वामी, यज्ञकर्मका फल देनेवाला और रुद्ररूप है । ५(१७)

आपका तेज सबको पावन करता है । इस लिये हे यज्ञको सिद्धि देनेवाले देव, दर्भोंके टुकडे चूनकर सोमरसको तैयार करके भक्तजन आपके निवास स्थानपर आपकी उपासना करते हैं । हे अग्नि, सेवासे आपके प्रेमकी इच्छा रखनेवाले मनुष्य भक्तिसे आपका पूजन करते हैं । इस लिये, हे देव, उनको धन अर्पण कीजिये । ६

---

३ तरुषः दक्षस्य क्रत्वा देवासः तं अग्निम् चित्तिभिः (अस्मिन) विधर्मणि (जगति) जनयन्त (अतः) वाजम् सनिष्यन् अहं अत्यं न, (इमं) भानुना ज्योतिषा रुरुचानम् महाम् अग्निम् उपब्रुवे ।

४ (अस्य) मन्द्रस्य यद् अन्हयं वरेण्यम् ऋग्मियम (यद) वाजः (तद)सनिष्यन्तः वयम् ,(इमं) भृगूणां रातिम् उशिजम् कवि क्रतुम् दिव्येन शोचिषा राजन्तं अग्निम् (तद) आ वृणीमहे ।

५ वाजश्रवसं अग्निम् वृक्त बर्हिषः जनाः इह पुरः सुम्नाय दधिरे । यतस्रुचश्च ते इमं सुरुचमं विश्व देव्यमं यज्ञानां अपसां साधत् इष्टिमं रुद्रम् (पर्यचरन) ।

६ हे पावकशोचे होतः, वृक्तबर्हिषः नरः यज्ञेषु तव क्षयं परि (त्वाम अर्चन्ति), हे अग्ने दुवः आप्यं इच्छमानासः ते त्वामं उपासते, (तद) तेभ्यः द्रविणम् धेहि ।

अग्निके प्रकट होतेही स्वकीय कर्ममें तत्पर होनेवाले ऋत्विजोंने उसकी वेदपिर स्थापना की। उस समय उसने आकाश और बहुत उंचाईपर रहनेवाले स्वर्गकोभी अपने प्रकाशसे व्याप्त किया। जैसे कोई पराक्रमी वीरको युद्धमें विजयी होनेके लिये ले जाते हैं उस प्रकार इस ज्ञानी अग्निको यज्ञसिद्धिके लिये भक्तजन ले जाते हैं ७

यह देवोंको हवि पहुँचाता है और यज्ञकी सिद्धि करता है। इसको साष्टाङ्ग नमन करो। घरके मनुष्यके समान यह प्रेमल और सब वस्तुओंको जाननेवाला है। इस लिये भक्तिसे इसका पूजन करो। श्रेष्ठ सनातन धर्मकी रक्षा करनेके लिये यह रथमें बैठकर तैयार रहता है और इससेही यह सर्वसाक्षी देवोंका अगुआ बना है। ८

सब विश्वको घेरनेवाले और अकुण्ठित गतिमें चलनेवाले अग्निके तीन अमर और तेजस्वी विभूतियोंने भक्तिमान सेवकोंको पावन किया। अग्निके तीन विभूतियोंमें एकको भक्तोंने भूलोकपर रहवाया। बाकी दोनों भूलोकके साथही उत्पन्न हुए स्वर्गलोकको चली गई। ९

जैसे तलवारको तेज करनेके लिये उसको धार लगाते हैं उसी प्रकार मनुष्योंके प्रार्थनासे सब लोगोंके स्वामी अग्निमें तीव्रता आ गई है। पृथिवीके प्रदेश चाहे ऊंचे हो या नीचे हो अग्निने व्याप्त किये हैं और अपना बीज उसने सब भुवनोंके भीतर रखाहै। १०

बहुत ज्ञानवान और पराक्रमी अग्नि पृथिवीके गुफामें भयङ्कर गर्जना करनेवाले सिंहकी नाई बहुत जोरसे वृद्धि पाता है। सर्व लोगोंका प्यारा और अपने अनन्त तेजसे विराजमान होनेवाला यह अमर देव अपने भक्तोंको दिव्य रत्नोंकी और सब इच्छित वस्तुओंकी प्राप्ति कर देता है। ११

---

७ यत् जातमं एनं अपसः (ऋत्विजः) अधारयन् (तदा सः) रोदसी महत् स्वश्च आ पृणत। अत्यः (वीरः) वाजसातये न, सः कविः चनोहितः अग्निः अध्वराय वाजसातये परिणीयते।

८ (इमम्) हव्यदातिं स्वध्वरं अग्निम् नमस्यत, दम्यं जातवेदसमं दुवस्यत। (अतः) बृहतः ऋतस्य रथीः (अयं) विचर्षणिः अग्निः देवानां पुरोहितः अभवत्।

९ परिज्मनः यह्वस्य अग्नेः तिस्रः अमृत्यवः समिधः उशिजः अपुनन। तासाम् एकाम् भुजम् मर्त्ये अदधुः (अपरे) द्वे जामिं उलोकम उप ईयतुः।

१० स्वधितिं तेजसे न, विशां विस्पतिं कविम् सीम् अग्निमं मानुषाः इषः सम कृण्वन । (अतः) सः उद्वतः निवतः वेविषत् याति। स च एषु भुवनेषु गर्भं दीधरत्।

११ सः प्रजज्ञिवान् वृषा (पृथिव्याः) चित्रेषु जठरेषु नानदन् सिंह न जिन्वते। स च पृथुपाजाः अमर्त्यः वैश्वानरः वसु रत्ना च दाशुषे वि दयमानः (भवति)।

सर्व लोगोंका प्यारा अग्नि अनादि कालसे द्युलोकके शिखरपर आरूढ हुआ है। भक्तोंनेभी हरेक समयपर बनाई मनोहर और ख्याल रखने योग्य स्तुतिओंसे उसके दिव्य वैभवकी प्रशंसा की है। जैसा पुरातन कालमें यह (भक्तोंके) दिव्य धन देताथा उसी विधि अबभी उनका ख्याल रखकर दिव्य धनका दान करनेमें यह अपनी पुरानी रीतिसेही चलता है। १२

यह सद्धर्मप्रिय, बहुत ज्ञानी और पूज्य है। इतनाभी नही किन्तु वह स्तवनके योग्य और भूलोकमें वास करनेवाला है। मातरिश्वाने इसकी भूमिपर स्थापना की। इसकी गति अद्भुत और किरणरूपी बाल पीले हैं इस तेजस्वी अग्निकी प्रार्थना बहुत सौख्य प्राप्त होनेके इच्छेसे हम लीनतापूर्वक करते हैं। १३

जो बहुत पवित्र और दिव्य लोकको देखनेवाला अग्नि आकाशका झण्डा है जो तेजस्वी द्युलोकमें रहता है जो उषाको जगाता है और द्युलोकके शिरके समान दिखता है, जो अजिन और पराक्रमी है और इच्छित लाभोंकी प्राप्तिके यत्नमें जो भक्तोंको हिम्मत देता है ऐसे अग्निको वन्दन करके हम बहुत नम्रतासे उसकी स्तुति करते हैं। १४

जो आनन्दमय, पवित्र और निष्कपट है, जिसका चित्त शान्त है, जो स्तुतिको योग्य और सर्वसाक्षी ऐसा यज्ञहोता है, अद्भुत रथके समान जो अपने मनोहर प्रभासे सुन्दर दिखता है और जो लोगोंका हित करनेवाला है ऐसे अग्निके पास हम बहुत नम्रतासे ऐश्वर्यकी याचना करते हैं। १५ (१९)

---

१२ वैश्वानरः प्रत्नथा दिवः पृष्ठम् नाकं सुमन्मभिः भन्दमानः आ रुहत्। स जागृविः जन्तवे पूर्ववत् (सृष्टिरूपं) धनं जनयन् समानं अज्मं परि एति।

१३ ऋतावानं, यज्ञियं, विप्रं उक्थ्यं, दिवि क्षयम् यम् एनं मातरिश्वा (भुवि) आ दधे। तम् चित्रयामं हरिकेशम् सुदीतिम् अग्निम् नव्यसे सुविताय ईमहे।

१४ शुचिम् स्वर्दृशम्, दिवः केतुं, रोचनस्थां उषर्बुधं दिवः मूर्धानम् अप्रतिष्कुतम् वाजिनं तम् अग्निम् वामन् इषिरं न बृहत् नमसा ईमहे।

१५ मन्द्रं शुचिम् अद्रुयाविनं दमूनसं उक्थ्यं विश्वचर्षणिम्, चित्रं रथं न (चित्रं), वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं होतारं सदमित् राय ईमहे।

ऋषि—विश्वामित्र । देवता—अग्नि सबके प्यारे और अपने तेजसे विराजमान होनेवाले अग्निकी उपासना भक्तजन अपने उत्कृष्ट स्तोत्रोंसे करते हैं उसमें यह उद्देश है कि वे अग्निके शाश्वत स्थानोंको जा सकें । यद्यपि अग्नि अमर है वह (यज्ञमें) देवताओंको राजी रखता है । अतः धर्मको दाग लगे असा आचरण कोईभी कभी न करना चाहिये । १

अद्भुत कर्म करनेवाला अग्नि भक्तोंका प्रतिनिधि बनकर द्युलोक और भूलोकके बीचमें अपने इच्छासे सञ्चार करता है । वह सब भक्तोंके यज्ञको सिद्धि देनेवाला और यज्ञका मुख्य आचार्य है । इसने देवोंके प्रार्थनासे उनके विशाल निवासस्थलको— अर्थात् आकाशको—तारामण्डलसे सुशोभित किया । भक्तोंका स्तवन और ध्यान यही इसका धन है । २

अग्नि यज्ञका तेजस्वी झण्डा और धर्मसभाके उन्नतिका आदिकारण है इस लिये उसकी श्रेष्ठताका वर्णन ज्ञानवान मनुष्य एकाग्र चित्तसे करते हैं । जिसको सब भक्तजन अपनी पूजा और स्तुति अर्पण करते हैं उसी अग्निसे श्रेष्ठ सौख्योंका लाभ होनेकी यजमान उम्मेद रखते हैं । ३

जो यज्ञका पिता है, जिसको ज्ञानवान ऋषि ' परमात्मा ' है, जो स्तोत्र करने- वाले ऋत्विजोंके भक्तिका नाप और हल है और जो सबको प्यारा है ऐसे अग्निने विशाल द्यावापृथिवीको व्याप्त किया । उसके किरणोंको स्पर्श होतेही कविकी उन्नति होति है । ४

जो आनन्द देनेवाला है, जिसका रथभी आनन्द देनेवाला है, जिसकी हरेक आज्ञा सोनेके समान बहुमूल्य है, जो सबका प्यारा है, सब वस्तुओंके अन्तरंगका जिसको ज्ञान है जो स्वर्गमें गमन करनेवाला और पराक्रमी है, जिसका वेग बड़ा है और जो सुन्दर कान्तिसे युक्त है ऐसे अग्निकी स्तुत देवोंने पृथ्वीपर स्थापना की।५(२०)

---

१ पृथुपाजसे वैश्वानराय विपः धरुणेषु गातवे रत्ना विधन्त । अमृतः अग्निः हि देवान् दुवस्यति. अथ न कापि सनता धर्माणि दूदुषत् ।

२ दस्मः अग्निः दूतः सन रोदसी अन्तः ईयते, स च मनुषः होता पुरोहितः सन निषत्तः । देवेभिः इषितः अग्निः तेषां बृहन्तम क्षयम द्युभिः परि भूषति (यतः सः) धियावसुः ।

३ यज्ञानां केतुं विदथस्य साधनम अग्निम विप्रासः चित्तिभिः महयन्त । (भक्ताः) यस्मिन् अधि अपांसि गिरश्च सन्दधुः तस्मिन् यजमानः सुम्नानि आ चके ।

४ यज्ञाना पिता, विपश्चिताम् असुरः, वाघताम् विमानं वयुनं च, (एतादृशः) पुरुप्रियः अग्निः भूरिवर्पसा रोदसी आ विवेश, (अतः अस्य) धामभिः कविः प्र द्रवे ।

५ चन्द्रम्, चन्द्ररथं, हरिव्रतम्, अप्सुपदम्, स्वर्विदम् (अंतःकरणानि) विगाहं, तूर्णिम्, तविषीभिः आवृतं भूर्णिम्, (एतादृशं) सुश्रियं वैश्वानरं देवासः इह दधुः ।

देव और मनुष्य इन दोनोंको साथ लेकर हरेक यज्ञको अग्नि पूर्ण करता है। रथमें आरूढ होनेवाला यह वीरोंका अग्रणी—शान्त चित्तवाला यह अग्निदेव—भक्तोंकी निन्दा करनेवाले दुर्जनोंका नाश कर और भक्तोंको उपासनाका फल देकर भूलोकमें सर्वत्र सञ्चार करता है। ६

हे अग्निदेव, जिसको सुपुत्र हैं उसको दीर्घ आयुष्य दीजिये और उसकी तेजस्विता बढाइये। हमको उत्साह अर्पण कीजिये और हमारे यजमानकी उम्मेदभी बढाइये। हे हमेशा जागृत रहनेवाले देव, आप देवोंके उपर प्रेम करनेवाले हैं। ज्ञानी पुरुषोंकी अद्भुत कर्तव्यशक्तिभी आपही हैं। ७

मनुष्योंका अधिपति होनेपर भी जो हमेशा उद्योगी रहता है, जो भक्तोंका पाहुना, बुद्धिका नियमन करनेवाला, ऋत्विजोंके प्रेमके लिये उत्कण्ठित होनेवाला और यज्ञोंका केवल प्राण है और जिसको सब वस्तुओंका ज्ञान रहता है ऐसे अग्निको वन्दन करके सब भक्तजन अपने उत्कर्षके लिये दिलसे अर्पण किये हुए स्तोत्रोंसे उसकी उपासना करते हैं। ८

मधुर बात करनेवाले तेजस्वी अग्निदेवने अपने स्वयंप्रेरित रथमें विराजमान होकर सब जगत्को अपने सामर्थ्यसे, जो चाहे उतना बढ़ सकता है, व्याप्त किया है। इस लिये विश्वका पोषण करनेवाले अग्निके यज्ञमन्दिरमें शुद्ध चित्तसे उसका पूजन करना अपना कर्तव्य है। ९

हे सबके प्यारे अग्निदेव, जिस महिमासे आप भक्तोंको दिव्य प्रकाश अर्पण करते हैं उसकेही ऊपर हमारा प्रेम है। क्योंकि आपने प्रकट होतेही दोनों लोगोंको, अर्थात् सब भुवनोंको, व्याप्त करके उनको बाहेरसे भी घेरा है। १०

---

६ देवेभिः मनुषः जन्तुभिश्च धिया पुरुपेशसं यज्ञम् तन्वानः अग्निः रथीः, मानत इर्षिभिः, आरः, दमूनाः, अभिशस्तिचातनश्च (भुवनम्) अन्तः ईयते।

७ हे अग्ने स्वपत्ये आयूंनि जरस्व, उर्जा पिन्वस्व, नः इषः संदिदीहि। ८ जागृवे, बृहतश्च वयांसि जिन्व, (त्वम्) देवानाम् उशिक् विपाम् सुक्रतुः असि।

८ विश्पतिम्, यह्वम (भक्तानां) अतिथिम्, धीनाम् सदा यन्तारम्, वाघतां च उशिजम् अध्वराणां चेतनं (एतादृशं) जातवेदसं अग्निं नरः जूर्तिभिर्नमसा च वृधे प्रशंसन्ति।

९ विभावः, सुरणः देवः, सुमतरथः अग्निः क्षितीः परिबभूव। (अतः) तस्य भूरिपोषिणः व्रतानि, दमे आ, सुवृक्तिभिः वयम् उप भूषेम।

१० हे वैश्वानर, हे विचक्षण, येभिः त्वम् स्वर्वित् अभवः तानि तव धामानि आ चके। हे अग्ने, जातः (त्वम्) भुवनानि रोदसी च (न केवलं) आ अपृणः (किंतु) विश्वा ता त्मना परिभूः असि।

यदि काव्य करनेवाला भक्त अपने कर्तव्यमें तत्पर रहेगा सबको प्यारे अग्निके अद्भुत पराक्रमोंसे अपना कार्य, वह चाहे उतना बडा क्यों न हो, बना सकेगा। जगतके मातापिता पृथिवी और द्यु जिनका उत्पत्ति करनेका सामर्थ्य विशाल है उनका आदर करके अग्नि प्रकट हुआ है। ११ (२१)

सूक्त ४३

॥ ऋषि--विश्वामित्र। देवता--आप्री ॥

हे अग्नि जिस प्रमाणमें आपका तेज बढेगा उसी प्रमाण आपके कृपाको बढाइये और अपने बढते हुए तेजके साथ अपने उत्कृष्ट वैभवकी ओर हमारा ध्यान लगाइये। हे अग्नि, अपने देवगणको हमारे यज्ञके लिये ले आइये। आप हमारा मित्र हैं इस लिये हमारे ऊपर प्रसन्नता धारण कर अपने मित्रोंको, अर्थात देवोंको, सन्तुष्ट कीजिये। १

हरदिन तीन बार यज्ञ करनेके लिये आपको वरुण, मित्र और अग्नि सन्तुष्ट करते हैं। आप तनूनपात्, देवोंका आदर करनेवाले और घीसे प्रकट होनेवाले हैं। इस लिये आप हमारे यज्ञको मधुर अमृतसे भरिये। २

सब विश्वकी मनोहरता जिसमें भरी है ऐसी एकाग्र स्तुति हमारे पुरातन आचार्य जो अग्नि उसको हवि अर्पण करनेके लिये और सब इष्ट पदार्थोंकी वृष्टि करनेवाले अग्निको वन्दन करनेके उद्देशसे बडी लीनतासे आगे आती है। इस लिये यह अग्नि हमारे प्रार्थनासे हमारा याजक बनके देवोंको सन्तुष्ट करे। ३

इस यज्ञमें आप दोनोंके कर्तव्यका मार्ग अच्छा हुआ है। अग्निकी ज्वाला भी रजोलोककी ओर जाती है और यज्ञोंकी सिद्धि करनेवाला वह अग्नि द्युलोकके मध्यमें ऊंचे जगहपर विराजमान हुआ है। अतः सब देवोंके विशाल आसनको अब तैयार रखना चाहिये। ४

---

११ एकः कविः स्वपस्यया, वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहद्रिणात्। (अतः) सः अग्निः (जगतः) उभा पितरा द्यावा पृथिवी महयन् अजायत।

१ समित् समित् अस्मे सुमनाः बोधि, शुचाशुचा वस्वः सुमतिं रासि। (अतः) हे देव देवान् यजथाय वक्षि, हे अग्ने सखा त्वम् सुमनाः सखीन् यक्षि।

२ यम् देवासः वरुणः, मित्रः, अग्निश्च दिवे दिवे त्रिः अहन् (भक्तकृतेन) यज्ञेन आयजन्ते। स त्वं तनूनपात् इमं नः घृतयोनिम् (देवान्) विधन्तम् यज्ञं मधुमन्तम् कृधि।

३ (भक्तस्य) विश्ववारा दीधितिः प्रथमं होतारं इळः यजध्यै वृषभं अच्छा नमोभिः वन्दध्यै प्र जिगाति। (अस्माभिः) इषितः सः यजीयान् (अग्निः) देवान् यक्षत्।

४ (हे पत्नी यजमानौ) वाम् गातुः अध्वरे ऊर्ध्वः अकारि, (अग्नेः) शोचींषि ऊर्ध्वा (सन्ति) रजांसि प्रस्थिता। होता वा दिवः नाभा नि असादि, (अतः) देवव्यचाः बर्हिः वि स्तृणीमहि।

सातों यज्ञकर्मोंकी जिनको बडी इच्छा है वे सब देव सर्व जगत्‌को आनन्दित करके अपने नियमानुसार हमारी ओर आये हैं। नानाविध देवताभी जिनकी चेष्टा वीर पुरुषोंके समान है और जिनका यज्ञसभामेंही दर्शन होता है हमारे यज्ञकी ओर आ गई हैं। ५

अपने यशसे विराजमान होनेवाली उषा और रात रूपमें भिन्न होनेसेही परस्परसे संयुक्त रहती हैं। वे हमारी ओर अपना हास्य करें। उनका कृपापूर्वक हास्य होने-सेही मित्र, वरुण और अपने वैभवके साथ प्रकट होनेवाला मरुतोंका स्वामी इन्द्र हमारे ऊपर कृपा करेगा। ६

आगे जो दो दिव्य यज्ञ थे उनका मैं आदर करता हूं। सामर्थ्यवान सात ऋषि अपने पुरानी पद्धतिकी अनुसार आनन्दित हो गये हैं। वे सत्यधर्मके महात्म्यका वर्णन करते हैं, अबाधित सत्य भाषण करते हैं और धर्माचारोंका युक्तरीतिसे परिपालन करके भगवत्‌की आज्ञानुसार ध्यानमें मग्न होते हैं। ७

भारती अपने सेवकोंके साथ, प्रेमी इडा देवसमुदायके साथ और अग्नि मनुष्य तथा ऋषियोंके साथ, यहां भूलोकपर आकर कुशासनपर बैठे। ८

उज्ज्वल कान्तिसे विराजमान होनेवाले हे त्वष्टा आप सन्तुष्ट होकर हमारे प्रबल वीर्यको ऐसे काममें लगाइये कि हमारा पुत्र शूर, सदाचारी, चतुर, सोमयाग करने-वाला और भगवत्‌का भक्त होगा। ९

---

५. याः मनसा सप्त होत्राणि वृणाना, विश्वम् इन्वन्तः ऋतेन (नः) प्रति गत । ताः पूर्वाः (देवीः) नृपेशसः विदथेषु प्र जाताः इमं यज्ञम् अभि विचरन्त ।

६ उप वन्दमाने वपसा नक्ता विरूपेपि उषाके(सत्यौ)यथा मित्रः वरुणः उत वा मरुत्वान इन्द्र महोभिः नः जुजोषत् तथा आ (गत्य) स्मयेते ।

७ (इदानीं) दैव्या प्रथमा होतारा नि ऋञ्जे, सप्त पृक्षासः च स्वधया मदन्ति । व्रतपाः ते व्रतम् अनु शोध्यानाः, ऋतं शंसन्तः च ऋतमित् आहुः ।

८भारती भारतीभिः, सजोषाः इळा देवेभिः, अग्निः मनुष्येभिः, सरस्वती च सारस्वतेभिः (एते) तिस्रः देवी अर्वाक् आगत्य इदं बर्हिः आसीदन्तु ।

९ अथ हे देव त्वष्टः रराणः त्वं नः पोषयित्नु तत् तुरीपं वि स्यस्व, यतः (पुत्रः नः) वीरः कर्मण्यः सुदक्षः, युक्तग्रावा, देवकामाश्च जायते ।

हे यूप, अपने पासका हवि देवोंको अर्पण कर। अग्नि अपनी सत्तासे उसको पकाएगा। वह सत्यस्वरूप है इस लिये यज्ञकी सिद्धि करके वही उसको पूर्ण करेगा। देवोंकी उसको अच्छी पहिचान है। १०

हे अग्नि, आप प्रज्वलित होकर त्वरासे यहां आनेके लिये सिद्ध हुए देवोंको लेकर और एकही रथमें इन्द्रके साथ बैठकर यहां आइये। सत्पुत्रोंको जन्म देनेवाली चिच्छक्ति अदिति भी यहां कुशासनपर विराजमान हो। 'स्वाहा' शब्द होतेही हवियोंका स्वीकार करके सब देव आनन्दमें मग्न हो। ११

सूक्त ५.

॥ ऋषि- विश्वामित्र। देवता–अग्नि ॥

हरदिन अपने प्रकाशसे उषाओंको अच्छी तरह देखनेवाला और कवियोंको मार्ग बतलानेवाला यह ज्ञानवान अग्नि जागृत हुआ है। भक्तोंने उसको प्रज्वलित करनेके पीछे अपनी प्रभा प्रकट करके हवि पहुँचानेवाले पवित्र अग्निने अन्धकारके बन्द हुए दरवाजे फोडे और मार्गको खुला किया। १

पूजनको योग्य अग्नि भक्तोंके स्तुतिसे और सामगायनोंसे बहुत आनन्दित हुआ। सनातन धर्मकी नानाविध शोभा उसको बहुत हर्ष देती है। भक्तोंका प्रतिनिधि होकर वह उषाका तेज प्रकट होतेही प्रकाशित हुआ है। २

प्रेमी अग्नि दिव्य उदकोंके उत्पत्तिका स्थान है। वह सत्यधर्मसेही (भक्तोंका) सब कार्य और उद्देश सफल करता है। मर्त्यलोकमें उसकी संस्थापना हो गई है और इसी लिये यह सुन्दर पूज्य और ज्ञानवान अग्नि (वेदीके) शिखरपर विराजमान हुआ है और उत्कृष्ट स्तोत्रोंसे स्तवन करनेको योग्य हुआ है। ३

---

१० हे वनस्पते देवान उप हविः अव सृज, अग्निः च दैव्यः शमिता सन् तत् सूदयाति। स इत् उ सत्यतरः होता यथा देवानां जनिमानि वेद (तथा) यजाति।

११ हे अग्ने समिधानः सन इन्द्रेण (सह) सरथम्, तुरेभिः देवेभिश्च सह अर्वाङ् आयाहि। अत्र सुपुत्रा अदितिः नः बर्हिः आस्ताम्, अमृताः देवाश्च 'स्वाहा' (इत्यनेन) मादयन्ताम्।

१ (दिवे दिवे) उषसः चेकितानः, कवीनां पदवीः विप्रः अग्निः प्रत्यबोधि। सः पृथुपाजाः देवयद्भिः (भक्तैः) समिद्धः वन्हिः तमसः द्वारा अप आवः।

२ नमस्यः अग्निः स्तोतॄणां स्तोमेभिः गीर्भिः उक्थैः च। ववृधे ऋतस्य पूर्वीः संदृशः चकानः (भक्तानां) दूतः सन् सः उषसः विरोके समद्यौत्।

३ मित्रः अग्निः अपां गर्भः ऋतेन साधन मानुषीषु विक्षु अधायि। अतः स हर्यतः यजतः विप्रः (वेधाः) सानु आस्थात्, मर्तानाम् हव्यः च अभूत्।

जब अग्नि प्रज्वलित होता है उस समय वह यज्ञकी सिद्धि करता है। वही मित्र और सब वस्तुओंको जाननेवाला वरुण होता है। सर्व जगत्का मित्र, सबको उत्साह देनेवाला और चित्तको शान्त करनेवाला अग्निही अध्वर्यु होता है और महानदीयोंपर और पर्वतोंपर उपकार करता है। ४

वह पृथ्वीकी तथा (दिव्य) पक्षीके प्यारे और ऊंचे घरकी रक्षा करता है। जिसके गतिको भङ्ग नहीं ऐसा अग्नि सूर्यके सातों मार्गोंकी रक्षा करता है। (पृथ्वीके) मध्यभागपर निवास कर वह सात शिरवाले छन्दोंकी रक्षा करता है। देवोंको आनन्द देनेवाले यज्ञकी रक्षाभी वही श्रेष्ठ अग्नि करता है। ५(२४)

सर्व धर्मविधियोंका जिसको उत्कृष्ट ज्ञान है ऐसे अग्निदेवने ऋभुका रूप धारण कर अपने सुन्दर नामकी कीर्ति औरभी बढाई है। जगतमें जितना अनाज और धन है उसकी ढालके नाईं रक्षा करके अग्नि दिव्य पक्षीके जगहका वचावभी बहुत होशीयारीसे करता है। ६

घीके समान बलप्रद, विशाल और (देवोंके आगमनके लिये) उत्कण्ठित हुए यज्ञस्थलपर अग्निदेव बहुत आतुरतासे चढा है। देदीप्यमान, श्रेष्ठ, पवित्र और दूसरेकोभी पवित्रता अर्पण करनेवाला अग्नि अपने अरणिरूपी माताओंको हरेक समय फिर तरुणाई देता है। ७

जैसे लताओंके कोमल अङ्कुरोंका पोषण आकाशके पानीसे होता है उसी विधि अग्नि अचानक प्रकट होनेही वृक्षोंमें वृद्धि पाता है। ऊंचे जगहसे जोरसे नीचे गिरनेवाले जलप्रवाहके समान अग्निकी ज्वाला प्रबल है। हमारे मातापिताके—अर्थात पृथ्वी और आकाशके—गोदपर बैठे हुए हमको अग्नि पापसे मुक्त करे। ८

---

४ मित्रो अग्निः यत समिद्धः (तदा सः) होता, मित्रः (भवति) जातवेदाः वरुणोपि (भवति)। स (एव) मित्रः इषिरः दमूनाः (अग्निः) अध्वर्युः, उत स (एव) सिंधूनां पर्वतानां च मित्रः।

५ रिपः प्रिय (च) अग्रं च वेः पदं पाति, स च यह्वः सूर्यस्य चरणं पाति। (सः) अग्निः नाभा सप्तशीर्षाणम् पाति, स ऋत्वः च देवानां उन्मादं च पाति।

६ विश्वानि वयुनानि विद्वान् सः देवः ऋभुः (भूत्वा) स्वीयं चारु नाम ईड्यं चक्रे। ससस्य चर्म वेः घृतवत् च पदं शाचित तत् अग्निः अप्रयुच्छन् इव रक्षति।

७ घृतवन्तं प्रथुप्रगानं (देवान्) उशन्तं (यज्ञस्य) योनिम अग्निः उशानः आ अस्थात्। (आस्थाय) दीद्यानः शुचिः, ऋष्वः पावकः च अग्नि, मातरा पुनः पुनः नव्यसी अकः।

८ यदि प्रस्वः घृतेन वर्धन्ति (एवं) सः सद्यः जातः ओषधीभिः ववक्षे। (अग्निः) प्रवताः आपः इव शुम्भमानः पित्रोः उपस्थे (वर्तमानान् नः) उरुष्यत्।

जब हमने अग्निका स्तवन किया उस समय अखण्डगतिवाला अग्नि अपने प्रखर तेजसे पृथ्वीके मध्यभागसे आकाशके सबसे ऊंचे शिखरतक प्रकाशने लगा। यह सर्वत्र पूज्य अग्निही मित्र और मातरिश्वा है। वह हमारा प्रतिनिधि बने और देवोंको यहां बुलाए। ९

देवोंको हवि पहुँचानेवाला अग्नि आगे गुप्त था। किन्तु मातरिश्वाने उसको भृगुओंसे ले आकर प्रदीप्त किया। अपने कान्तिसे आकाशके तारागणमें श्रेष्ठ होकर उसने खास आकाशमण्डलकाभी धारण किया। १०

हे अग्निदेव, जो दिलसे आपका स्मरण करता है उसको अनाज, धन, भूमि और सामर्थ्यसे युक्त (दिव्य) ज्ञानकी हमेशा प्राप्ति हो। हमारे पुत्रपौत्र हमारे वंशकी वृद्धि करे और हे अग्निदेव आपकी निरुपम कृपाभी हमारे ऊपर हो। ११ (२५)

सूक्त ६.

॥ ऋषि–विश्वामित्र। देवता · इन्द्र ॥

हे स्तोतृगण, आप देवोंके सेवामें तत्पर हैं। देवोंके चिन्तनसे आपका हृदय प्रसन्न हुआ है। इस लिये देवोंकी सेवा करनेके लिये उत्कण्ठित हुए इस यज्ञचमसको उठावो। सामर्थ्य देनेवाला और घीसे भरा हुआ यह यज्ञचमस अग्निदेवके लिये हविको उठाकर पूर्वदिशाको अभिमुख होता है और दक्षिणदिशासे उसकी ओर जाता है। १

हे परम पूज्य अग्निदेव, प्रकट होतेही आपने आकाश और पृथ्वीको व्याप्त किया इतनाही नही किन्तु आप उनसेही बढे। हे अग्निदेव, आपके सात जीभवाले घोडे आपके सामर्थ्यसे आकाश और पृथ्वीमें दौडते २ ही यहां आ जायँ। २

---

९ (अस्माभिः) स्तुतः सन् सः यह्वः समिधा पृथिव्याः नाभा अधि दिवः वर्ष्मन् उदु अद्यौत। इळः अग्निः (एव) मित्रः मातरिश्वा च, सः दूतः (भूत्वा) देवान् यजथाय वक्षत।

१० हव्यवाहं (अग्निम) गुहा सन्तं यदि मातरिश्वा भृगुभ्यः परि (आदाय) समिधे, (तदानीं) सः क्षत्वः अग्निः (स्व) महिना, रोचनानां उत्तमो भवन् नाकं उदस्तम्भीत्।

११ हे अग्ने (मनसा) हवमानाय (इमां) इळां गोमं पुरुदंसं सनिम् शश्वत्तमं साध। नः सूनुः तनयः विजावा स्यात्, अग्ने ते सा सुमतिश्च अस्मे भूतु।

१ हे कारवः देवयन्तः यूयं मनसा वच्यमानाः देवद्रीचीम स्रचं (पुरः) नयत। असौ वाजिनी घृताची अग्नये हविर्भरन्ती प्राची दक्षिणावाद् एति।

२ हे प्रयज्यो, जायमानः त्वं रोदसी (न केवलं) आ अपृणाः (किन्तु) उत अत्र नु प्ररिक्थाः। (अतः) अग्ने ते सप्तजिह्वाः वन्हयः दिवः पृथिव्याश्चित् ते महिना(अर्वाङ्) वच्यान्तां।

भगवत्‌की सेवाके लिये उत्कण्ठित हुए मनुष्य आनन्दित होकर आपके शुभ्र और तेजःपुंज कान्तिका वर्णन करते हैं। द्युलोक, पृथ्वी और पूज्य देवोंने आपको होता बनाकर पातकोंका नाश करनेके लिये आपकी भूलोकपर स्थापना की है। ३

श्रेष्ठ भक्तोंको प्यारा और अचल अग्निदेव विशाल आकाशके अन्दर देवलोकमें विराजमान हुआ है। सपत्नी होनेसेही परस्परोंके ऊपर प्रेम रखनेवाली, सदैव तरुणाईका उपभोग लेनेवाली, निर्मल और अमृतरूपी दूध देनेवाली द्यावापृथ्वी अपने यज्ञसे सब जगत्‌को व्याप्त करनेवाले अग्निकी धेनु बनीं। ४

अग्निदेव, आप श्रेष्ठ हैं और आपकी आज्ञाभी श्रेष्ठ हैं। आपने विशाल भूलोक और स्वर्गलोकको अपने पराक्रमसे सर्वत्र फैलाया है। हे श्रेष्ठ वीर, प्रकट होतेही आप मनुष्योंके प्रतिनिधि और चराचरोंके नायक बने। ५

बड़ी अयालवाले आपके घोडे वर्षाकी वृष्टि करनेवाले और लाल रंगके हैं। उनको लगाम लगाकर अपने सत्यधर्मरूपी रथको जोडिये और सब देवोंको यहां लाइये और हमारे यज्ञकी सिद्धिभी कीजिये। इस जगत्‌में जो कुछ है आप उसको जानते हैं। ६

आपके तेजकी प्रभा खास आकाशको पहुंचकर वहां प्रकाशने लगी है। अनेक उषाओंके पीछेही आपका प्रकाश जाता है। हे अग्निदेव, आप भक्तोंको आनन्द देनेवाला होता हैं और इसी लिये जंगलमें दिखनेवाले आपके पराक्रमकी प्रशंसा देवोंने की है। ७

---

३ यदि देवयन्तीः मानुषीः विशः प्रयस्वतीः (अग्नेः) शुक्रं अर्चिः इळते (अतः) द्यौश्च पृथिवी यज्ञियासो (देवाश्च) त्वा (अग्निम) होतारं दमाय (भुवि) निषादयन्ते।

४ असौ महान् हर्यमाणः (अग्निः) ध्रुवः सन् माहिने द्यावा अन्तः सधस्थे आ निषत्तः। (अमूच) आस्के, सपत्नी, अजरे, अमृक्ते सबर्दुधे (रोदसी; अस्य) उरुगायस्य धेनू (भवतः)।

५ हे अग्ने महतः ते व्रता महानि (एव त्वं) क्रत्वा रोदसी आतत थ। त्वं जायमानः दूतः अभवः, हे वृषभ त्वं (हि) चर्षणीनां नेता (असि)।

६ अथवा ये ते केशिना घृतस्नुवा रोहिता (अश्वा स्तः तौ) ऋतस्य ते रथस्य धुरि योग्याभिः धिष्व। अथ हे देव विश्वान् देवान् आ वह, न सुध्वरा कृणुहि (यतः त्वम्) जातवेदाः हि।

७ हे अग्ने यत् ते मन्द्रस्य होतुः वनेषु उशधक अपः देवाः पनयन्त। अथ ते रोका दिवि चित् आ रुचयन्त, विभातीः पूर्वीः उषश्च अनु भासि।

अन्तरिक्षमें आनन्दसे वास करनेवाले, द्युलोकके तारामण्डलमें रहनेवाले, भक्तोंकी रक्षामें तत्पर होकर उनकी प्रार्थना सुननेवाले और, हे अग्नि, जिन्होंने अपने घोड़े अभीतक रोके हैं। ८

ऐसे सब देवोंको अपने रथमें बैठाकर हमारी ओर ले आइये। चाहे तो उनको पृथक् २ रथमेंही बैठाइये। आपके घोडे साधारण नही हैं किन्तु बहुत प्रबल हैं। इस लिये ३३ देवोंको उनके पत्नियोंके साथ अपने नियमके अनुसार ले आइये और उनको आनन्द दीजिये। ९

द्यावापृथिवी जिनकी मर्यादा नहीं है उनके प्रशंसाको पात्र होता यही अग्नि है। धर्मकी रक्षा करनेवाली, सत्यस्वरूप और सुन्दर द्यावापृथ्वीभी सनातन सत्यसे जन्म लेनेवाले अग्निके इच्छानुसार हमेशा चलती हैं। १०

हे अग्निदेव, दिलमें आपका स्मरण करनेवाले भक्तको अनाज, धन, भूमि, सामर्थ्य और ज्ञान अर्पण कीजिये। हे अग्निदेव, हमारे पुत्रपौत्र हमारे वंशकी वृद्धि करे और हमको आपकी उत्कृष्ट कृपाका लाभ मिले। ११

---

८ (अथवा) ये उरौ अन्तरिक्षे मदन्ति ये वा देवा दिव रोचने सन्ति, ये वा ऊमाः सुहवासः, (अथवा) हे अग्ने ये रथ्याः च ये अश्वाः (अधारयन्) आसीमासः।

९ हे अग्ने एभिः (सर्वैः) सरथं याहि ... वा आ याहि। विभवः हि ते अश्वाः। त्रिंशतं त्रींश्च देवान् पत्नीवतः अनुष्वधं त्वं आ वह (तान्) मादयस्व च।

१० यस्य यज्ञे यज्ञ उर्वी रोदसी (अपि) पूर्वे आभ गृणीतः सः (असौ) होता (भवति। अतः) ऋतेके ऋतावरी सत्ये (एतादृशे द्यावा पृथिव्यौ) ऋतजातस्य अग्ने. अन्वेव तस्थतुः।

११ हे अग्ने (मनसा) हवमानाय (इमां) इळां गोमत् पुरुदंसं सनिं शश्वतं साध। नः सूनुः तनयः विजावा स्यात्, अग्ने ते सा सुमतिश्च अस्मे भूतु।